ओ३म्

मानवार्य्यभाष्य की भूमिका

यदुक्तं मनुना पूर्वं तदेव भेषजं महत् ।
छान्दोग्ये वर्णितञ्चैतत्तस्मान्मनोः प्रधानता ॥१॥
मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्न प्रशस्यते ।
मनुस्मृतिं विना काचिन्नान्या स्मृतिः सनातनी ॥२॥
वेदशास्त्रानुगुण्येन तर्केण महता मनुः ।
वैदिकधर्ममर्यादां चचक्षे वेदतत्त्ववित् ॥ ३ ॥
तस्मान्मिथ्यार्थवादोहि नह्यत्रास्ति मनागपि ।
मिथ्यावादोऽर्थवादश्च अन्यैरत्र प्रवेशितः ॥ ४ ॥
मिथ्यावादार्थवादौहि हित्वा भावः सनातनः ।
वर्ण्यते मुनिनार्य्येण लोकानां हितकाम्यया ॥ ५ ॥

"यत्किञ्चिन्मनुरवदत्तद्भेषजं भेषजतायाः" छान्दो०=जो कुछ मनुजी ने वर्णन किया है वह सम्पूर्ण औषधियों का सार है, इस उपनिषद् वाक्य से स्पष्ट है कि मनुस्मृति से पुरानी तथा प्रामाणिक अन्य कोई स्मृति नहीं ॥

कई एक अनुसन्धानकर्त्ताओं का विचार है कि पहले मानवधर्मसूत्र थे, श्लोकबद्ध कोई स्मृति न थी, और अब वह मानवधर्मसूत्र लुप्त होगये हैं हमारे विचार में यह कथन सर्वथा

निर्मूल है, क्योंकि औपनिषद समय में श्लोकबद्ध ग्रन्थ लिखने की प्रथा थी और सूत्रवत् संकुचित लिखने की प्रथा बहुत पीछे चली है, अन्य युक्ति यह है कि यदि कोई मानवधर्मसूत्र होते तो उनका नाम मनुस्मृति में अवश्य आता, परन्तु मनु में कहीं सूत्रों का नाम न आने से सिद्ध है कि यह ग्रन्थ श्लोकबद्ध ही था सूत्ररूप नहीं, अस्तु प्रसङ्ग यह है कि मनुस्मृति सब स्मृतियों से पुरानी ही नहीं किन्तु प्रामाणिक भी यही है, जैसाकि "**मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्न प्रशस्यते**"= मनु के अभिप्राय से भिन्न जो स्मृति है वह प्रशस्त=श्रेष्ठ नहीं, इस लेख से स्पष्ट है कि अन्य स्मृतिकार भी मनुस्मृति को ही श्रेष्ठ मानते हैं, और इसके श्रेष्ठ होने का कारण यह था कि यही पूर्णतया वेदानुकूल स्मृति थी, क्योंकि सृष्टि की आदि में मनुजी ने ही वेद के आशय को धर्मशास्त्ररूप में ग्रन्थन किया था, इसलिये यह शास्त्र अनृत, व्याघात, पुनरुक्त इन तीनो दोषों से रहित था, "**अनृत**"=इसमें कोई मिथ्या बात न थी, "**व्याघात**"= परस्परविरुद्ध और "**पुनरुक्त**"=एक बात को विना प्रयोजन दुबारा दोहराना, इन तीनो दोषों का इस शास्त्र में गन्ध भी न था, क्योंकि यह शास्त्र एकमात्र वेद को प्रमाण मानकर निर्माण किया गया था, जैसाकि :—

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।
धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥मनु० २।१३॥

अर्थ—जो अर्थ तथा कामनाओं में फंसे हुए नहीं उन्हीं को धर्म के ज्ञान का विधान है अर्थात् वही इस शास्त्र के अधिकारी हैं अन्य नहीं, और उन धर्म के जिज्ञासुओं के लिये परम=

सर्वोपरि प्रमाण एक श्रुति ही है, इससे स्पष्ट है कि मनुजी एकमात्र वेद को ही परम प्रमाण मानते थे इसी कारण यह ग्रन्थ वैदिकभावों का भाण्डार था ॥

और जो इसमें अब अवैदिकभाव पाये जाते हैं वह समय के हेर फेर से पीछे मिलाये गये हैं, जैसाकि :—

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ।
पतिसेवा गुरौवासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥
अग्निहोत्रस्य शुश्रूषा सायमुद्वासमेव च ।
कार्यं पत्न्या प्रतिदिनं इति कर्म च वैदिकम् ॥

अर्थ—स्त्रियों की केवल विवाहविधि ही वैदिक होती है, इनके लिये घर का काम काज ही अग्निहोत्र और पतिसेवा ही गुरुकुल वास है, सायं प्रातः अग्निहोत्र के पात्र तथा स्थानादि शुद्ध करना, यही स्त्री का प्रतिदिन का वैदिक कर्म है, अन्य कोई वैदिक विधान स्त्रियों के लिये नहीं, इत्यादि श्लोक इस मानवधर्मशास्त्र में उस समय मिलाये गये जबकि "स्त्रीशूद्रौ-नाधीयाताम्"=स्त्री, शूद्र न पढ़ें, इस प्रकार के कपोल कल्पित वाक्यों के नाद से समस्त नभोमण्डल गूंज उठा था, इसी घोर नाद के घटाघनघोर में ऐसे २ लेख भी मनु में मिलाकर मनु के नाम से प्रचलित करदिये गये कि अस्थि रहित क्षुद्र कीटों की एक गाड़ीभर परिमाण में मारी जाय तो एक शूद्रवध के बराबर प्रायश्चित्त का दोष होता है, अर्थात् कीड़ेमकौड़ों के समान शूद्र है, इसी भाव को अत्रिस्मृति में यों लिखा है, कि:—

वध्यो राज्ञा स वै शूद्रो जपहोमपरश्च यः ।
ततोराष्ट्रस्य हन्तासौ यथा वह्नेश्च वै जलम् ॥१९॥

अर्थ—राजा को चाहिये कि वह उस शूद्र को वध दण्ड दे जो जप तथा होम करता है, वह राज्य का उसी प्रकार नाशक है जैसे जल अग्नि का नाशक होता है ॥

अथास्यवेदमुपशृण्डतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रपूर्णम् । पद्युह वा एतत् श्मशानं यच्छूद्रस्तस्मात् शूद्रसमीपे नाध्येतव्यमिति ॥

अर्थ—यदि शूद्र वेद को सुनले तो उसके कानों को लाख तथा सिक्के से भरवादे, क्योंकि शूद्र का मुख पैरों वाला श्मशान है जो चलता फिरता है, इसलिये उसके समीप वेद का अध्ययन नहीं करना चाहिये, आर्यजाति को दूषित करने वाले इत्यादि लेख कईएक आधुनिक स्मृतियों तथा शङ्करभाष्यादि ग्रन्थों में पड़े हैं और इसी प्रकार के बहुत से श्लोक मनु में भी पाये जाते हैं जो हमारे विचार में सब प्रक्षिप्त हैं ॥

शूद्र-विचारों की तो कथा ही क्या, इन गृहदीप्ती देवियों का भी वेद-पढ़ने का अधिकार सर्वथा छीनकर उन्हें मूर्खा रखने का बलपूर्वक यत्न किया गया है, जैसाकि पूर्व श्लोकों में स्पष्ट है, इस प्रकार के लेख जो मनु में मिलते हैं वह सर्वथा प्रक्षिप्त हैं, जिसका प्रमाण यह है कि पूर्वकाल में घोषा, अपाला, अदिति और लोपामुद्रा आदि स्त्रियें भी ऋषिका पद प्राप्त कर पूर्ण ब्रह्मवेत्ता हुई हैं जिनके नाम से वेदों के सूक्त के सूक्त

भरे हुए हैं, जिसप्रकार ब्रह्मविद्या के अधिकारी पुरुष समझे गये इसीप्रकार मैत्री, गार्गी तथा सुलभा आदि विदुषी स्त्रियां भी ब्रह्मज्ञान में पूर्ण हो ब्रह्मवादिनी हुईं जिनके नाम उपनिषदादि शास्त्रों में स्पष्ट हैं, अधिक क्या वाल्मीकिरामायण सुन्दरकाण्ड पंचमसर्ग में स्पष्ट लिखा है कि :—

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी॥

अर्थ—सन्ध्याकाल में मन वाली अर्थात् प्रातः सायं सन्ध्या करने वाली जानकी निःसन्देह इस शुभ जल वाली नदी पर आवेगी, यहां विचारणीय यह है कि वाल्मीकिरामायण मनुस्मृति से बहुत पीछे बना है, जब वह सन्ध्या विषयक वेद मन्त्रों के पढ़ने का अधिकार स्त्रियों को सिद्ध करता है तो फिर यह लेख कि स्त्रियों का विवाहसंस्कार ही समन्त्रक हो और अन्य सब कर्म अमन्त्रक हों सर्वथा निर्मूल है॥

जब से स्त्रियों को शूद्रवत् ठहराया और उनसे विद्याध्ययन करने का अधिकार छीन लिया तभी से चारो ओर अधोगति के सामान दिखाई देने लगे जिसके वर्णन करने से विस्तार अधिक होता है,प्रकृत यह है कि पुत्रों के समान ही पुत्रियों की शिक्षा का विधान आर्षग्रन्थों में पाया जाता है, जैसाकि वात्स्यायन मुनि ने लिखा है कि "कन्याप्येवं पालनीया शिक्षणीया प्रयत्नतः"=पुत्रों के समान ही कन्याओं का भी पालन तथा शिक्षण यत्नपूर्वक होना चाहिये, यही नहीं जिस प्रकार शास्त्र में पुरुषों के लिये जीवनपर्य्यन्त स्वाध्याय का विधान

है इसीप्रकार वात्स्यायन मुनि ने कन्याओं के लिये भी विधान किया है कि "पत्युरभिप्रायात् शास्त्रं एकदेशं वा गृह्णीयात्"=विवाह के पश्चात् भी कन्या शास्त्र का ग्रहण करे अर्थात् जीवनपर्य्यन्त स्वाध्याय करती रहे, फिर यह कहना कि "गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया"=घर का काम काज करना ही स्त्रियों का अग्निहोत्र है, यह मनघड़ित मनुवाक्य कपोलकल्पित नहीं तो और क्या हैं ? ॥

इसी आशय से आजकल पाश्चात्य विद्वान् मनुस्मृति पर अन्याय का दोष लगाते और ब्राह्मणों को दोषी ठहराते हैं कि उन्होंने अन्य लोगों पर अत्याचार किया, हमारे विचार में यह दोष मनु के प्रक्षिप्त स्थलों को लेकर लगाया जाता है यदि प्रक्षिप्तांश पृथक् करादिया जाय तो मनु में उक्त दोष का गन्ध भी नहीं रहता, क्योंकि मनु १-नीचजाति की माताओं से उत्पन्न सन्तान को ऋषियों का अधिकार देता, २-चारो वर्णों के परस्पर विवाह वर्णन करता, और ३-संस्कारहीन जातियों का आर्यकुलोद्भव होना वर्णन करता है,इत्यादि लेखों से जान पड़ता है कि मनु में असंख्यात विमल रत्न भरे हुए हैं, जिनकी दमक को समय २ के प्रक्षिप्तरूपी मैल ने दबा छोड़ा है, जिसका प्रमाण यह है कि जितने विषय मनु में हैं वह प्रायः दो २ प्रकार के पाये जाते हैं, एक स्थान में नियोग की विधि है तो दूसरे स्थान में उसकी निन्दा, एक स्थान में मांसभक्षण का निषेध है तो दूसरे में विधान है, एक स्थान में निरामिष श्राद्ध की प्रशंसा है तो दूसरे में लम्बे कानों वाले बकरे के मांस से १२ वर्ष तक पितरों

की तृप्ति कथन की है, एक स्थान में ब्राह्मण को चारो वर्णों की स्त्रियों का विधान है; तो दूसरे स्थान में शूद्रभार्या का निषेध है, इस प्रकार मनु में परस्पर विरुद्ध सैकड़ों विषय पाये जाते हैं जिनमें से पाठक लोग किसको प्रमाण तथा किसको अप्रमाण ठहरावें, और यह तो कहा ही नहीं जासक्ता कि दोनों ही एक ग्रन्थकर्ता की कलम से निकले हैं, क्योंकि इस प्रकार का कोई ग्रन्थ भूमण्डल में नहीं पाया जाता जो परस्पर विरुद्ध उन्मत्तप्रलापवत् एक दूसरे से असम्बद्ध एक ही विद्वान् कर्त्ता का लिखा हुआ हो, इसीलिये पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वान् इस बात में सहमत हैं कि जो वर्त्तमान समय में मनुस्मृति उपलब्ध होती है उसमें समयानुसार बहुत से परिवर्त्तन हुए हैं, अब रही यह बात कि उनमें कौन नवीन और कौन प्राचीन लेख हैं ? इसका निर्णय किस प्रकार किया जाय ? इसमें कई एक समीक्षकों की यह सम्मति है कि इस बात का निर्णय करना दुर्घट ही नहीं किन्तु असम्भव है, क्योंकि कोई कैसे कहसक्ता है कि अमुक मनु का तथा अमुक लेख पीछे डाला गया है, हमारे विचार में इसका निर्णय दुर्घट अवश्य है असम्भव नहीं, क्योंकि जब उन भावों का पता लगसक्ता है जो मनु के समय में थे तो उन भावों के ग्रन्थन करने वाले श्लोकों का पता लगना भी कोई असंभव नहीं, जिसका प्रकार यह है कि जैसे उन दो श्लोकों पर दृढ़तापूर्वक कहा जासकता है जिनमें स्त्रियों को केवल घर का काम काज करना "अग्निहोत्र" और पतिसेवा करना ही "गुरुकुलवास" कथन किया गया है, यह श्लोक नितान्त नये हैं, और जो नवीन भावों वाले श्लोक हैं वह प्रक्षिप्त हैं, यह हम स्त्री शूद्र के

अध्ययन विषय में भलीभांति स्पष्ट कर आये हैं, यहां इस बात को स्पष्ट करते हैं कि यदि सौ प्रति मनुस्मृति की हस्तलिखित इकट्ठी कीजायं तो उनमें वही श्लोक प्रायः आपस में नहीं मिलते जिनपर या तो प्राचीन टीकाकारों की टीकायें नहीं अथवा उनमें ऐसी गर्हित गाथायें हैं जिनका प्राचीन समय में बीज ही न था, दूसरी कसौटी इस सत्यासत्य के निर्णय की यह है कि महाराज मनु इस मानवधर्मशास्त्र को पूर्ण करते हुए अन्त में लिखते हैं कि:—

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्चकाश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥
मनु० १२।९५

अर्थ—जो स्मृति वेदबाह्य=वेदविरुद्ध और कुदृष्टि=कुतर्क-युक्त हैं वह सब निष्फल हैं, क्योंकि वह अन्धकार में लेजाने वाली हैं, यह श्लोक लिखते हुए मनुजी का आशय यह है कि मेरी बनाई हुई स्मृति का यदि कोई अंश वेदविरुद्ध प्रतीत हो तो वह निष्फल है, इसी भाव को अग्रिम श्लोक में इस प्रकार स्फुट किया है कि:—

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित् ।
तान्यर्वाकालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥
मनु० १२।९६

अर्थ—जो वेदविरुद्ध=वेद से अन्यमूलक जितने ग्रन्थ हैं वह सब अर्वाकालिक=आधुनिक होने से निष्फल हैं और वह उत्पन्न=बनते तथा नष्ट होते रहते हैं, इत्यादि श्लोकों में

महर्षि मनु ने स्पष्ट करादिया कि मेरी बनाई स्मृति तथा अन्य ग्रन्थों में जो वेदविरुद्ध अंश हैं उनका त्याग ही श्रेय है, क्योंकि वह अन्धकार की और लेजाने वाले हैं, इसी भाव को लक्ष्य रखकर मनुस्मृति और अन्य शास्त्रों पर भाष्य करते हुए हमने इस आशय को पूर्णतया दर्शाया हैं कि आर्षग्रन्थों में जो२ अंश वेदविरुद्ध, अयुक्त तथा सदाचार के विरोधी हैं वह स्वार्थपरायण पुरुषों ने पीछे से मिलाये हैं, यह उन महर्षि रचित नहीं जिनका लक्ष्य एकमात्र वेद था॥

सो जो हमको स्पष्ट रीति से वेदबाह्य लेख प्रतीत होते हैं उनको हम कैसे मान सकते हैं, जैसाकि मनु० ३। २७१ में लिखा है कि "वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादश वार्षिकी"="वार्ध्रीणस"=लम्बे कानों वाले बकरे का मांस श्राद्ध में खिलाने से पितर बारह वर्ष तक तृप्त रहते हैं, प्रथम तो मरे हुए पितरों की तृप्ति ही वेद के किसी मन्त्र में किसी को भोजन देने से नहीं मानी, और अमुक प्रकार के बकरे के मांस से पितरों की तृप्ति हो इसका लेशमात्र भी वेदों में नहीं मिलता, फिर ऐसे श्लोकों को मनघड़ित तथा मनु के नाम को दूषित करने वाले न मानाजाय तो और क्या मानाजाय, यदि यह कहाजाय कि वेदों में मांसभक्षण का विधान होने से उसी को स्पष्टरूप से बोधन करने के लिये मनु ने ऐसा लिखदिया है? इसका उत्तर यह है कि वेदों में मांस का विधान नहीं प्रत्युत निषेध है, जैसाकि "यदधिगवं क्षीरं मांसं वा तदेव नाश्नीयात्" अथर्व० ९। ३। ६=अधिगवक्षीर=नई प्रसूता

धेनु का दूध और मांस (न, अश्नीयात) न खाय, इसी प्रकार "य. आमम्मांसमदन्तिगर्भान् खादन्ति केशव"= अथर्व० ८।४।२=जो कच्चामांस तथा अंडों को खाते हैं वह निन्दित तथा राक्षस कहलाते हैं, इत्यादि मन्त्रों में मांसभक्षण का निषेध है, यदि यह कहाजाय कि यहां तो कच्चे मांस का निषेध है पकाये हुए का नहीं ? इसका उत्तर यह है कि उपलक्षण * की रीति से यहां मांसमात्र का निषेध किया है कच्चे पक्के का कोई विचार नहीं, यदि यह कहाजाय कि पहले समय में पशुओं का यज्ञ करते और यज्ञ से बचा हुआ हविशेष खाते थे ? इसका उत्तर यह है कि पशुयज्ञ का विधान वेदों में नहीं, इस भाव को हमने "मीमांसार्य्यभाष्य" की भूमिका और अन्यत्र भी कई स्थलों में दर्शाया है कि वेद में पशुयज्ञ तथा मांसभक्षण की विधि नहीं, जैसाकि "यथा मांसं यथा सुरा यथाऽक्षाधिदेवने" अथर्व० ६।७।१=इस वाक्य में मद्य, मांस तथा जुए को एक कोटि में रक्खा है, इससे स्पष्ट है कि वेद मांसभक्षण को निन्दित मानता है, फिर मनुस्मृति में मांसभक्षण की विधि कहां से आया ॥

इतना ही नहीं मनु में जैसे मांसभक्षण की विधि है वैसे ही निषेध भी है, यदि मांसभक्षण की विधि को मनुप्रोक्त मानाजाय तो निषेध को मनुप्रोक्त क्यों न माना जाय ? या यों कहो कि यदि जैन तथा बौद्धों के प्रभाव से मांसभक्षण का निषेध लिखा जाना

---

* "काकेभ्योदधिरक्षताम्"=कौओं से दधि को बचाना, तो क्या इससे यह तात्पर्य्य यह है कि कुत्ते खावें तो न बचाना ॥

मानाजाय तो फिर यह क्यों न मान लिया जाय कि वाममार्गियों के प्रभाव से मनुस्मृति में मद्य मांसादि की विधि आगई है, और वस्तुतः बात भी यही सत्य है कि वाममार्गियों के घोर अत्याचार के समय मनु में ऐसे २ श्लोकों का प्रक्षेप किया गया कि :—

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये नच मैथुने ।
प्रवृत्तिरेषाभूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥

मनु० ५ । ५६

अर्थ—मांसभक्षण में कोई दोष नहीं, न मद्य पीने में और न व्यभिचार में दोष है किन्तु यह प्रवृत्ति मार्ग है और न खाना निवृत्ति मार्ग है, इत्यादि लेखों से स्पष्ट पाया जाता है कि वाममार्ग के घोर आन्दोलन के समय श्राद्ध में मांस के पिण्ड तथा मांसभक्षण की विधि लिखदी है अन्यथा कब सम्भव था कि पञ्चमाध्याय श्लो०७।१६।१८।२३।२७।२९।४१ इत्यादि अनेक श्लोकों में यज्ञार्थ पशुवध का विधान तथा मांसभक्षण की विधि होती, हमारे विचार में तो मनु का मन्तव्य यह था कि :—

समुत्पत्तिञ्च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम् ।
प्रसमीक्ष्य निवर्त्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥

मनु० ५ । ४९

अर्थ—मांस की घृणित शुक्र शोणित से उत्पत्ति और प्राणियों के वधबंध रूप क्रूरकर्मों को देखकर सब प्रकार के मांस का भक्षण न करे, इस प्रकार के बहुत से श्लोक मनुस्मृति में पाये जाते हैं जिनमें स्पष्टतया मांस का निषेध है परन्तु जब मिलावट का समय आया तब इस प्रकार प्रक्षेप किया गया है कि:—

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।
अनभ्यर्च्य पितॄन्देवांस्ततोऽन्योनास्त्यपुण्यकृत् ॥

मनु० ५ । ५२ ॥

अर्थ—देव तथा पितरों का पूजन किये विना जो दूसरे के मांस से अपना मांस बढ़ाने की इच्छा करता है उससे बढ़कर कोई पापी नहीं, अर्थात् देव और पितरों को पहले भेंट करके पीछे खालेवे तो कुछ पाप नहीं, इस प्रकार के श्लोक जिनमें आधे में निषेध और आधे में विधि रखकर मांस के पक्ष को पुष्ट करते हुए बहुत से मिलाये गये हैं, यहां तक कि यज्ञों का सहारा लेकर मांसभक्षण का पूरा २ प्रचार करदिया है जो हमारे विचार में महाभारत के पश्चात् मनुस्मृति में मिलाया गया है जिसका प्रमाण यह है कि उक्त श्लोक महाभारत के अनुशासनपर्व में इस प्रकार है कि :—

स्वमांसं परमांसेन यो वर्द्धयितुमिच्छति ।
नास्ति क्षुद्रतरस्तस्मात्स नृशंसतरो नरः ॥

महा० अनु० प० अ० ११६ । ११.

अर्थ—जो पुरुष पशुपक्षियों को खाकर अपने मांस को बढ़ाता है उससे अधिक कोई क्रूर तथा पापात्मा नहीं, वस्तुतः यह श्लोक महाभारत का था और इसमें उत्तरार्द्ध मांसभक्षण के पक्ष का मिलाकर मनु में मिला दिया है; यदि यह कहें कि यह श्लोक मनु का ही क्यों न मानाजाय ? इसका उत्तर यह है कि संस्कृत साहित्य में कोई ऐसा श्लोक नहीं जिसके पूर्वार्द्ध में बलपूर्वक एक बात का खण्डन और उत्तरार्द्ध

में इसी का मण्डन हो, इस युक्ति से स्पष्ट है कि यह श्लोक महाभारत से लेकर इकट्ठा करके मनु में मिलाया गया है, एवं यज्ञशेष मांसभक्षण की विधि और वृथामांसभक्षण का निषेध, इस पक्ष को अवलम्बन करके मांस विषयक बहुत सी मिलावट मनु में की गई है जो हमने सब निकालकर ग्रन्थ के पीछे लगादी है और मनु का जो शुद्ध पक्ष था वही रक्खा है, क्योंकि आर्षग्रन्थों में ऐसा ही उल्लेख पाया जाता है, महाभारत के अनुशासन पर्व में लिखा है कि :—

मधुमांसं च ये नित्यं वर्जयन्तीह धार्मिकाः ।
जन्मप्रभृति मद्यञ्च सर्वे ते मुनयः स्मृताः ॥

महा० अनु० प० अ० ११५ । ७२

अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परो दमः ।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः ॥

महा० अनु० प० अ० ११६ । ३८

अर्थ—जो पुरुष मद्य मांस का सर्वथा त्याग करते हैं वह मुनि कहाते हैं, क्योंकि अहिंसा ही परमधर्म, अहिंसा ही दम, दान और अहिंसा ही परम तप है ॥

इसी भाव से महर्षि व्यास ने इसको सार्वभौमव्रत लिखा है जो सब देश काल में पालन करने योग्य है, इससे सिद्ध है कि मनु ने यज्ञादि विषयों में मांस का विधान नहीं किया किन्तु वाममार्गमतानुयायी स्वार्थी पुरुषों ने ऐसे २ विषय मिला दिये हैं जो सर्वथा त्याज्य हैं ॥

इसी प्रकार नियोग विषय है इसमें भी मनु में दो प्रकार

के लेख पाये जाते हैं, पहिले नियोग की विधि फिर पीछे निन्दा, एवं चारो वर्ण की स्त्री ग्राह्य फिर उसका निषेध, इस प्रकार के कई एक विषय मनु में परस्पर विरुद्ध लिखे हुए मिलते हैं, इसलिये हमने वेदानुकूल लेखों को प्रमाण रखकर आधुनिक वेदबाह्य प्रक्षिप्त लेखों को निकाल दिया है, हमारे संग्रहीत मनु में भी बहुत से श्लोक प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं जिनको हम कई कारणों से नहीं निकाल सके, हमसे अधिक अनुसन्धान करने वालों को उचित है कि समयान्तर में उनका भी संशोधन करें ॥

इस " मानवार्य्यभाष्य " में हमने यह अपूर्वता की है कि जो श्लोक हमें प्रक्षिप्त प्रतीत हुए हैं उनको पृथक् करके ग्रन्थ के अन्त में अर्थसहित छाप दिये हैं जिससे पाठकों पर कोई बुरा प्रभाव न पड़े और प्रक्षिप्त भाग का भी पूरा २ ज्ञान होजाय ॥

हमने प्रक्षिप्त श्लोकों में से प्रत्येक की समीक्षा इसलिये नहीं की कि उस प्रकरण तथा अर्थ से ही उनका प्रक्षिप्त होना विदित होजाता है, जिनको पाठकगण विचारपूर्वक पढ़कर स्वयं समझसक्ते हैं ॥

और विचित्रता यह की है कि पद पदार्थ लिखकर श्लोक के अर्थ को भली भांति स्फुट करादिया है जिससे सर्वसाधारण को मनुस्मृति का आशय समझने में सुगमता हो, और यह प्रकार आजतक किसी आर्य्यटीकाकार ने अवलम्बन नहीं किया था ॥

आर्य्यमुनिः

मानवार्य्यभाष्य का विषयसूची

प्रथमाध्याय

विषय		पृष्ठ	पंक्ति
मनुजी से ऋषियों का धर्मविषयक प्रश्न	....	१	२
मनुजी का ऋषियों को धर्मोपदेश करते हुए प्रथम सृष्टि उत्पत्ति का निरूपण	....	३	७
परमात्मा का जगत् को उत्पन्न करना	....	५	९
"नारायण" शब्द का निर्वचन	....	७	१३
"ब्रह्मा" शब्द का वाच्यार्थ	....	८	५
लिङ्गशरीर की उत्पत्ति का कथन	....	११	१४
प्रकृति से सब भूतों की उत्पत्ति का वर्णन	....	१२	६
प्रकृति से विकारी कार्य्य की उत्पत्ति के प्रकार का वर्णन....	....	१३	८
ब्रह्मा के प्रति वेदप्राप्ति का कथन....	....	१७	११
गिरि, समुद्रादिकों की उत्पत्ति का वर्णन	....	१८	७
चारो वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन	....	२०	११
पशु, पक्षी तथा वनस्पत्यादिकों की उत्पत्ति का वर्णन	....	२१	२०
प्रलयकाल का वर्णन	....	२५	३
प्रलयानन्तर सृष्टि की उत्पत्ति का कथन	....	२७	१९

कालविभाग का वर्णन.... .... २८ १८
ब्राह्म अहोरात्र का कथन ३० १३
ब्राह्मणादि वर्णों के कर्मों का वर्णन ३५ ९
ब्राह्मण की प्रशंसा का कथन ३७ ११
प्राणियों की उत्तरोत्तर श्रेष्ठता कथन करते हुए
ब्राह्मण के सर्वोत्कृष्ट होने का वर्णन ३९ १३
आचार प्रशंसा ४२ १०

द्वितीयाध्याय

धर्म का लक्षण ४६ ५
धर्म के साधनभूत सकाम तथा निष्काम कर्मों का वर्णन ४६ १६
धर्म में वेदादि प्रमाणों का कथन.... .... ४८ १९
नास्तिक का लक्षण तथा उसको जातिवाह्य करने
की आज्ञा ५० १८
चतुर्विध धर्म का लक्षण ५१ १०
वेद की परमप्रमाणता का कथन ५१ २२
"ब्रह्मावर्त्त" देश की सीमा ५५ ६
"ब्रह्मर्षि" देश की सीमा ५६ ५
इसी देश के ब्राह्मणों से सब के विद्याध्ययन करने
का विधान ५७ ४
"मध्यदेश" की सीमा.... .... ५७ १५
"आर्य्यावर्त्त" देश की सीमा ५८ २
यज्ञ करने योग्य देश का वर्णन. ५८ १४
संस्कारों के करने का विधान ५९ २१

नाम रखने का प्रकार	६१	२०
यज्ञोपवीत की अवधि	६५	१९
ब्रह्मचारी के लिये दण्डों का विधान	६८	१२
ब्रह्मचारी के लिये भिक्षा मांगने का वर्णन	६९	९
भोजन के आदि अन्त में आचमन का विधान	७०	१६
उच्छिष्ट अन्न के खाने तथा दूसरे को देने का निषेध	७२	१८
अति भोजन करने का निषेध	७२	६
ब्रह्मचारी के केशान्तसंस्कार का विधान	७७	४
शिष्य को गुरुशिक्षा का वर्णन	७८	१५
पाठारम्भ में ओंकारोच्चारण का विधान	८१	९
वेद के नित्यत्व का प्रतिपादन	८६	७
मानसजप की श्रेष्ठता का वर्णन	८६	२१
इन्द्रियों का निग्रह तथा उनकी गणना का वर्णन	८८	२२
इन्द्रियनिग्रह का उपाय	९२	८
जितेन्द्रिय पुरुष का लक्षण	९३	९
सन्ध्योपासन की विधि का वर्णन	९४	२१
सन्ध्या करने योग्य देश का विधान	९६	१६
नित्यकर्मों में अनध्याय का निषेध....	९७	५
पढ़ाने योग्य शिष्यों का वर्णन	९८	२३
अनधिकारी को विद्यादान का निषेध	१००	५
गुरु, वृद्ध तथा ऐश्वर्य्यसम्पन्न पुरुष के प्रति अभिवादन का प्रकार निरूपण	१०२	११
अभिवादन का फल निरूपण	१०४	९
कौन किसको सत्कार पूर्वक मार्ग छोड़े	११२	१६

आचार्य्य, गुरु तथा उपाध्याय का लक्षण ११३ २२
उपाध्याय वा आचार्य्य से माता का सहस्र गुणा
गौरव वर्णन ११५ ६
वेदाध्यापक की श्रेष्ठता का वर्णन ११६ ८
विद्या से पुरुष की ज्येष्ठता का वर्णन ११८ १७
ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए अनपढ़ पुरुष की निन्दा १२१ १४
मनुष्यमात्र के लिये अहिंसा धर्म का उपदेश १२२ १९
ब्राह्मण के लिये सन्मान की इच्छा का निषेध १२४ १३
वेदाध्ययन न करने से शूद्रत्व की प्राप्ति १२७ २१
ब्रह्मचारी को प्रतिदिन सेवन करने योग्य नियम १३० ४
ब्रह्मचारी के अध्ययन का प्रकार.... .... १३७ ४
गुरुपत्नी के सत्कार का विधान १४४ ६
ब्रह्मचारी के बाह्यचिन्हों का वर्णन १४६ १७
पुरुष के धर्मादि चतुर्विध पुरुषार्थ का निरूपण १४८ ५
माता पिता आदि के तिरस्कार न करने का कथन १४९ ११
माता पिता आदि की आज्ञा पालन का फल
निरूपण १५२ १७
सब स्थानों से विद्या तथा स्त्रीरत्नके ग्रहण का वर्णन १५४ २३

तृतीयाध्याय
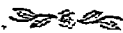
ब्रह्मचर्य्य का उपदेश १६१ ५
गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का समय १६१ १९
विवाह योग्य कन्या का कथन १६३ १
विवाह के अयोग्य कन्या का वर्णन १६३ १८

चारो वर्णों की स्त्रियों से ब्राह्मण के विवाह का विधान	१६६	१९
आठ प्रकार के विवाहों का वर्णन	१६७	१४
ब्राह्म आदि विवाहों से उत्पन्न हुए पुत्रों की प्रशंसा	१७२	५
ऋतुकाल में ही गर्भाधान का विधान	१७५	१३
वर से कुछ न लेकर कन्या देने का विधान	१७८	१९
कन्या के धन से घोर दुःख की प्राप्ति का वर्णन	१७९	४
स्त्री सत्कार के लाभों का वर्णन	१८०	२०
गृहस्थ के लिये सुखी रहने का उपाय	१८२	१५
नीच विवाहों के करने में दोषों का कथन	१८४	१
गृहस्थ के नित्यप्रति के पाप कर्मों का वर्णन	१८५	२१
नित्यप्रति के किये पापों के निवारणार्थ पंचमहायज्ञों के नित्य करने का विधान	१८६	१४
अग्निहोत्र का फल निरूपण	१८८	२१
गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता....	१८९	८
बलिवैश्वदेव का वर्णन	१९१	२१
अतिथि पूजा का विधान	१९७	२१
अनधिकारी को दान देने का निषेध	१९९	२
अधिकारी को भोजन देने में पुण्य	१९९	१४
अतिथि का लक्षण	२०१	१७
राजा आदि का वार्षिक पूजन	२०८	८
परिवित्ति और परिवेत्ता का लक्षण	२०९	२१
दिधिषूपति का लक्षण	२१०	२०
कुण्ड और गोलक का लक्षण	२११	१०
यज्ञशेष भोजन का विधान और उसकी प्रशंसा	२१२	१२

चतुर्थाध्याय
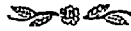
द्विजातियों के मुख्य व्यवहारों का वर्णन	....	२१४	५
सन्तोष की महिमा का वर्णन	....	२२०	१३
अग्निहोत्र के नित्य करने का विधान	....	२२७	७
सत्कार के अयोग्य पुरुषों का कथन	....	२२९	७
सत्कार के योग्य पुरुषों का वर्णन	....	२३०	१
गृहस्थ के नित्यकर्मों का विधान	....	२३०	१७
गृहस्थ की दिनचर्या का वर्णन	....	२४९	२
अनध्यायों का वर्णन	....	२५२	२
गृहस्थ के लिये अन्य उपदेश	....	२५८	१४
गृहस्थ को उत्साह सम्पन्न होने का उपदेश	....	२६१	६
वेदाभ्यास से मोक्ष प्राप्ति का कथन	....	२६५	१७
आचार की महिमा का वर्णन	....	२६७	६
सुख दुःख का लक्षण	....	२६९	१८
ब्राह्मण को दण्ड न देने का विधान	....	२७१	१८
अधर्म में प्रवृत्त पुरुष के लिये फल का कथन		२७३	२१
दाता तथा दान लेने वाले का वर्णन	....	२८०	१
वैडालवृत्ति तथा वक्रवृत्ति का लक्षण	....	२८४	१३
मनु लिखित यम नियमादिकों का वर्णन	....	२८९	९
ब्राह्मण के लिये त्याज्य अन्नों का वर्णन	....	२९०	१७
निषिद्ध अन्न खाने वालों के लिये फल का कथन		२९४	२१
दान का माहात्म्य वर्णन	....	२९७	२०

धर्म के संचय करने का उपाय ३०२ ६
अन्तकाल में धर्म के सहायक होने का वर्णन ३०२ ११
उत्तम पुरुषों से सम्बन्ध करने का कथन ३०४ १
ब्राह्मण का अन्तिम कर्तव्य ३०६ १८

पंचमाध्याय
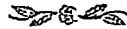
मृत्यु का ब्राह्मण पर आक्रमण करने विषयक प्रश्न ३०९ ६
उक्त प्रश्न का उत्तर ३१० ४
अभक्ष्य पदार्थों का वर्णन ३१० १८
हिंसा का निषेध ३१२ २१
मांस भक्षण का निषेध ३१५ ३
मांस भक्षण में आठ घातकों का वर्णन ३१६ २
मांस भक्षण न करने से उत्तम फल की प्राप्ति.... ३२७ ३
चारों वर्णों की प्रेतशुद्धि तथा सूतकशुद्धि का वर्णन ३१८ १६
असपिण्डों में शुद्धि का विधान ३३३ ८
सुवर्णादि द्रव्यों की शुद्धि का वर्णन ३३७ ६
वस्त्रों की शुद्धि का कथन ३४० १
स्त्रियों के धर्म का वर्णन ३४८ १३

षष्ठाध्याय
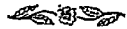
वानप्रस्थाश्रम का वर्णन ३५८ ४
वानप्रस्थ के वन जाने की विधि ३५९ २
वानप्रस्थ के लिये पंचमहायज्ञों का विधान ३५९ १९
वानप्रस्थ के भोजन का विधान ३६२ १

संन्यासाश्रम का वर्णन	३६८	२१
संन्यास विधि का विधान	३६९	१५
संन्यासी के तीन ऋणों का कथन	३६९	२१
मुक्त पुरुष के चिन्हों का वर्णन	३७२	२१
संन्यासी के नैत्यक कर्मों का विधान	३७३	१३
संन्यासी का भिक्षा मांगने का समय	३७७	८
संसार से छूटने के लिये वेदाभ्यास की आवश्यकता का कथन	३८६	५
ज्ञानी संन्यासियों के कर्मयोग का वर्णन	३८७	३
गृहस्थाश्रम का महत्व वर्णन	३८८	१
धर्म के दशलक्षण का वर्णन	३८८	२१
उक्त लक्षणों के अनुष्ठान का फल	३८९	१३

सप्तमाध्याय

राजधर्म का वर्णन	३९२	४
राजा का कर्तव्य वर्णन	३९२	१२
राजा के दण्डधर्म का कथन	३९७	७
अधिकारियों सहित राजा की दिनचर्य्या का वर्णन	४०४	१८
काम से उत्पन्न दश तथा क्रोध से उत्पन्न आठ व्यसनों का वर्णन	४०७	९
आठ मंत्रियों सहित विचारकर कार्य्य करने का वर्णन	४०९	२०
राजदूतों का वर्णन	४१२	२०
राजा के निवासस्थान का वर्णन	४१६	५
राजा के विवाह का कथन	४१९	४

राजा के युद्ध करने का वर्णन ४२२ ४
युद्ध में जीते हुए पदार्थों का विभाग वर्णन ४२४ १४
राज प्रबन्ध का वर्णन ४२६ १३
रिश्वत लेने वाले हाकिमों के लिये दण्ड विधान ४३४ ६
व्यापारियों से कर लेने का वर्णन ४३५ १८
अन्न, दूध, घृतादि पर कर लेने का विधान ४३६ १९
ब्राह्मण से कर लेने का निषेध ४३७ १७
राजा के लिये धर्माचरण का विधान ४४१ १२
राजा के लिये सन्धि विग्रहादि का विधान ४५१ १३
राजा के लिये विचारपूर्वक कार्य्य करने का फल ४५४ १६
शत्रु पर चढ़ाई करने का प्रकार ४५५ ८
राजा के लिये भोजन का विधान.... .... ४६७ १०
राजा के लिये ब्राह्ममुहूर्त्त में उठने का विधान ४७० ६

अष्टमाध्याय

राजसम्बन्धी १८ प्रकार के अभियोगों का वर्णन ४७२ ७
राजसभा में सत्य बोलने का विधान ४७५ ५
राजा को असमर्थों के धनरक्षण का विधान ४८० ४
ऋणी से साहूकार का धन दिलाने विषयक वर्णन ४८७ १७
पुरुष के वध में अभियोग का वर्णन ४९५ १६
गवाही में सत्य बोलने वाले के लिये फल कथन ४९९ १६
गवाही में असत्य बोलने वाले के लिये पाप का वर्णन ५०० २
पापकर्म देखने वाले देवताओं का वर्णन ५०१ १२
लोभवश गवाही देने वाले के लिये दण्ड का विधान ५१० १७

अन्याय करने वाले राजा के लिये पाप का विधान	५१३	३
" पण " आदि तोल का परिमाण कथन	५१४	६
सूद लेने का कथन	५१६	१६
धरोहर रखने योग्य पुरुष का वर्णन	५२१	१६
ऋत्विगादिकों को दक्षिणा का विधान	५३७	२२
दान किये हुए धन का पुनः दान करने का निषेध	५३९	२०
वेतन विषयक विधान	५४०	२०
प्रतिज्ञा भंग करने वालों के लिये दण्डविधान	५४२	४
दोषवती कन्या को छिपा कर देने में दण्ड विधान	५४३	१८
विवाह का लक्षण	५४९	४
सीमा का विवादविषयक वर्णन	५५१	४
गवाहों से शपथ लेने की रीति	५५४	१८
गाली देने वाले के लिये दण्ड विधान	५५८	५
मारपीट विषयक दण्ड विधान	५६०	२२
सवारी के स्वामी तथा सारथी के लिये दण्ड विधान	५६४	८
चोर के लिये दण्ड का वर्णन	५६८	१२
चोरी करने में चारो वर्णों के लिये पाप का विधान	५७१	१४
बलात्कार से धन हरण करने में दण्ड का विधान	५८१	१२
द्विजातियों के लिये युद्ध की आज्ञा	५८२	१९
आततायी का लक्षण	५८३	१६
परस्त्रीगामी के लिये दण्ड का विधान	५८४	११
व्यभिचारिणी स्त्री के लिये दण्ड वर्णन	५९६	७
राजा के कर लेने का वर्णन	५९७	२
क्रयविक्रय का भाव तथा नियत तोल की परीक्षा		

का वर्णन ५९९ ८
पुल तथा नौका पर उतरने के कर का विधान ६०० ४

नवमाध्याय

स्त्री के परतन्त्र रहने का वर्णन ६०६ ४
स्त्रियों के छः दोषों का वर्णन ६०९ १६
सुसन्तान का धर्म वर्णन ६१० १२
नियोग का वर्णन ६१८ १५
विवाहित कन्या के त्याग का वर्णन ६२२ ५
एक स्त्री की उपस्थिति में द्वितीयविवाह का विधान ६२५ ३
विवाह करने में कन्या की स्वतन्त्रता का कथन ६२६ २३
दायभाग का वर्णन ६३० ९
पुत्र का लक्षण ६३९ १४
दायभाग के भागी १२ पुत्रों का वर्णन ६४३ ३
पुनर्विवाह का विधान.... .... ६४७ २२
छः प्रकार के स्त्रीधन का वर्णन ६५३ १८
विभाग न करने योग्य धन का वर्णन ६५७ ९
चोरों के लिये दण्ड विधान ६७१ ३
अनपढ़ वैद्यों के लिये दण्ड का विधान ६८० ५
राज्य के सप्त अंगों का वर्णन ६८४ ८
राजा से ब्राह्मणों के मान का कथन ६९० १४
वैश्यधर्म का वर्णन ६९२ २२
शूद्रधर्म का वर्णन ६९५ ८

दशमाध्याय

ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण से वेद पढने का अधिकार वर्णन ६९७ ५
अपने से हीनवर्ण की स्त्री में उत्पन्न सन्तान का कथन ६९८ १९
अपने से उच्चवर्ण की कन्या में उत्पन्न सन्तान का वर्णन ७०० ७
वर्णसंकर कन्याओं से उत्पन्न सन्तान का वर्णन ७०१ १३
द्विजों से भिन्न जातियों के कर्मों का कथन ७१२ ६
चण्डाल और श्वपचों का लक्षण ७१३ १०
संक्षेप से चारो वर्णों के धर्म का कथन ७१७ ४
प्रजा के आपत्काल का वर्णन ७२२ ८
राजा के आपत्काल का वर्णन ७२९ २

एकादशाध्याय

दान के अधिकारियों का वर्णन ७३४ ३
भरण पोषण करने योग्य पुरुषों का वर्णन ७३७ १
यज्ञार्थ धन लेने का विधान ७३७ ७
चारो वर्णों के आपत्ति से पार होने का उपाय ७४४ १३
यज्ञ के अयोग्य होताओं का वर्णन ७४५ ६
निर्धन के लिये यज्ञ का निषेध ७४६ ७
अग्निहोत्र न करने वाले के लिये पाप का कथन ७४६ २२
कर्मानुसार फलप्राप्ति का वर्णन ७४८ २३
महापातकों का वर्णन ७५१ ८
उपपातकों का वर्णन ७५२ २०

महापातकियों के लिये व्रतों का विधान ७५६ २०
उपपातकियों के लिये व्रतों का वर्णन ७६८ ४
अवकीर्णी का लक्षण ७७१ १२
अभक्ष्य पदार्थों के सेवन करने में प्रायश्चित्त का विधान ७७९ १३
चोर के लिये प्रायश्चित्त का कथन ७८३ १३
गमन के अयोग्य स्त्रियों से व्यभिचार करने में
प्रायश्चित्त विधान ७८५ १८
व्यभिचारिणी स्त्री के लिये प्रायश्चित्त विधान ७८७ १३
पापियों का संग करने वालों के लिये प्रायश्चित्त
का वर्णन ७८८ २३
शुद्ध होने पर भी संसर्ग न करने वालों का वर्णन ७९० ३
नित्यकर्मों के छोड़ने में प्रायश्चित्त का वर्णन.... ७९४ ४
बड़ों के निरादर करने में प्रायश्चित्त का कथन ७९४ ११
व्रतों का लक्षण वर्णन ७९६ २
पाप से मुक्त होने का उपाय वर्णन ८०१ १३
तप की महिमा का वर्णन ८०४ १४
चारो वेदों का माहात्म्य वर्णन ८१० १३

द्वादशाध्याय
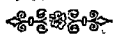
कर्मों के दशलक्षणों का वर्णन ८१२ १७
अधर्म के दश पथों के त्याग का कथन ८१४ ३
त्रिदण्डी का लक्षण ८१४ १७
सत्त्वादि तीनो गुणों का लक्षण कथन ८१९ १०
उक्त गुणों का फल वर्णन ८२१ १०

इन्द्रियों के पीछे चलने और धर्म का आचरण न करने से निन्दित गतियों की प्राप्ति का कथन	८२८	१७
आपत्ति से विना अपने कर्मों के त्याग में नीच योनियों की प्राप्ति का कथन	८३४	३
विषय सेवियों के लिये योनियों का वर्णन	८३५	४
ब्राह्मण के लिये कल्याणकारी उपदेश	८३८	६
आत्मज्ञान का महत्व वर्णन	८३८	२१
कर्मयोग का कथन	८३९	१८
वेदविरुद्ध स्मृतियों के अप्रामाणिक होने का वर्णन	८४२	५
वेद से ही पदार्थों की प्रसिद्धि का वर्णन	८४३	१
अनुष्ठानी के सर्वश्रेष्ठ होने का वर्णन	८४५	४
मानवधर्मशास्त्र का रहस्य वर्णन	८४६	१७
धर्म के व्यवस्थापक ब्राह्मण का कथन	८४७	४
दशावरा तथा त्र्यवरा सभा का वर्णन	८४७	२०
प्राणियों को समदृष्टिरूप उपदेश	८४९	१८
परमपुरुष परमात्मा का वर्णन करते हुए ग्रन्थ का समाप्त होना	८५१	१३

इति शम्

अथ मानवार्य्यभाष्यं प्रारभ्यते

मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः ।
प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन् ॥ १ ॥

पदार्थ–(महर्षयः) महर्षिलोग (एकाग्रं) एकाग्रचित्त (आसीनं) बैठे हुए (मनुं) मनुजी के (अभिगम्य) समीप जाकर (यथान्यायं) शास्त्रानुसार (प्रतिपूज्य) पूजन करके (इदं) यह (वचनं) वचन (अब्रुवन्) बोले ॥

भाष्य–महर्षिलोग, एकान्त देश में एकाग्रचित्त बैठे हुए मनुजी के निकट जाकर उनका विधिवत् सत्कार करके उनसे यह वचन बोले कि :—

भगवन् सर्व्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः ।
अन्तरप्रभवाणां च धर्मान्नो वक्तुमर्हसि ॥ २॥

पदा०–(भगवन्) हे ऐश्वर्य्यसम्पन्न ! आप (सर्व्ववर्णानां) सब वर्णों (च) और (अन्तरप्रभवाणां) वर्णसंकरों के (धर्मान्) धर्मों का (नः) हमको (यथावत्) यथाविधि (अनुपूर्वशः) क्रमपूर्वक (वक्तुं) उपदेश करने के लिये (अर्हसि) समर्थ हैं ॥

भाष्य०–हे भगवन् ! आप ब्राह्मण, क्षत्रियादि चारो वर्णों, और वर्णसंकरों के धर्मों का विधिपूर्वक क्रम से हम लोगों को

उपदेश करने के लिये समर्थ हैं, इसलिये आप हम लोगों को उपदेश करें ॥

त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयंभुवः ।
अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्य्यतत्त्वार्थवित्प्रभो ॥ ३ ॥

पदा०—(प्रभो) हे स्वामिन् (हि) निश्चय करके (स्वयंभुवः) अपौरुषेय (अचिन्त्यस्य) अचिन्त्य=अगाधविषय वाले (अप्रमेयस्य) स्वतःप्रमाण (अस्य, सर्वस्य) इस सब (विधानस्य) वेदरूप विधान के (कार्यतत्त्वार्थवित्) कार्यतत्त्व=यज्ञ तथा व्रतादि अर्थ के जानने वाले (एकः) एक (त्वं) आपही (असि) हैं ॥

भावा०—हे महाराज ! अचिन्त्य=चिन्तन में न आने वाले तथा अप्रमेय=प्रमाणान्तर की आवश्यकता न रखने वाले परमात्मा का ज्ञान जो ऋगादि चारो वेद हैं तत्सम्बन्धी जो ज्योतिष्टोमादि यज्ञ तथा सन्ध्यावन्दनादि नित्य नैमित्तिक कर्म उनके यथार्थ प्रयोजन को जानने वाले एकमात्र आपही हैं, सो आप हमें धर्मोपदेश करें ॥

स तैः पृष्टस्तथा सम्यगमितौजा महात्मभिः ।
प्रत्युवाचार्च्य तान्सर्वान्महर्षीञ्छ्रूयतामिति ॥ ४ ॥

पदा०—(अमितौजाः) अपरिमित सामर्थ्य वाले (सः) वह मनुजी (तैः) उन (महात्मभिः) महात्मा ऋषियों से (तथा, इति) उक्त प्रकार (पृष्टः) पूछे जाने पर (तान्) उन (सर्वान्) सब (महर्षीन्) महर्षियों को (अर्च्य) सत्कारपूर्वक (प्रत्युवाच) बोले कि (श्रूयताम्) सुनो ॥

भावा०—जब सब ऋषि महात्माओं ने वेदवेदाङ्गों के ज्ञाता अनुष्ठानी मनुजी से उक्त प्रकार निवेदन किया तब मनुजी उन सब का सत्कार करते हुए उनसे बोले कि मैं आप लोगों को वेदों का रहस्य वर्णन करता हूं आप ध्यानपूर्वक श्रवण करें ॥

सङ्गति—अब मनुजी ऋषियों को धर्मोपदेश करते हुए प्रथम सृष्टि उत्पत्ति का निरूपण करते हैं :—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ५ ॥

पदा०—(इदं) यह सब जगत् प्रलयकाल में (सर्वतः) सब ओर से (तमोभूतं) अन्धकारमय (अप्रज्ञातं) अप्रत्यक्ष (अलक्षणं) लक्षण से रहित (अप्रतर्क्यं) तर्क से रहित (अवि-ज्ञेयं) विशेष ज्ञान के अयोग्य (प्रसुप्तं) सोये हुए के (इव) समान (आसीत्) था ॥

भावा०—यह जगत् प्रलयकाल में अन्धकारमय होने के कारण लक्षणों से रहित, तर्क द्वारा स्वरूप से बुद्धि में न आने वाला और किसी के जानने योग्य न था, वह सब ओर से सोये हुए की भांति प्रतीत होता था ॥

प्रश्न—ऋषियों ने धर्म पूछा था, मनुजी ने सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन क्यों किया ? उत्तर—चारों वर्णों के धर्म क्रमशः वर्णन करने के लिये प्रथम सृष्टि की उत्पत्ति से आरम्भ करना साङ्गो-पाङ्ग धर्म का वर्णन कहा जासक्ता है, इसलिये ब्रह्मज्ञान की सब धर्मों में उत्तमता होने से मनुजी ने परमात्मा द्वारा जगत् की उत्पत्ति दिखाते हुए धर्मोपदेश आरम्भ किया है जो युक्ति युक्त होने से सर्वथा समीचीन है ॥

ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तोऽव्यञ्जयन्निदम् ।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ६ ॥

पदा०—(ततः) इसके अनन्तर (अव्यक्तः) वाह्य इन्द्रियों का अविषय (वृत्तौजाः) सृष्टिरचना में समर्थ (तमोनुदः) अन्धकार का नाशक (स्वयम्भूः) उत्पत्ति विनाश रहित (भगवान्) परमात्मा (इदं) इन (महाभूतादि) पांच महाभूतादिकों को (व्यञ्जयन्) प्रत्यक्ष करने योग्य अवस्था में परिणत करके (प्रादुरासीत्) पश्चात् स्वयं प्रकट हुआ ॥

भावा०—वह पूर्ण परमात्मा जो उत्पत्ति तथा विनाशरहित, इन्द्रियों का अविषय=इन्द्रियों से न जानने योग्य और अन्धकार का नाशक है उसने प्रकृति को प्रेरित करके आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथिवी यह पांच महाभूत और इनके द्वारा जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज्ज यह चार प्रकार की सृष्टि उत्पन्न की, इस प्रकार सब भूतों की उत्पत्ति, आचार, कार्य अकार्य का निर्णय और कालयोगादि अनेक प्रकार की रचना करके फिर अपने को प्रकट किया अर्थात् प्रथम जगत् को रचकर पुनः प्राणियों को अपना ज्ञान कराया ॥

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥ ७ ॥

पदा०—(यः) जो (असौ) इस लोक तथा वेद में प्रसिद्ध (अतीन्द्रियग्राह्यः) वाह्य इन्द्रियों का अविषय (सूक्ष्मः) सूक्ष्म (अव्यक्तः) निरवयव (सनातनः) नित्य (सर्वभूतमयः) सब भूतों में व्यापक (अचिन्त्यः, एव) और जो चिन्तन से रहित है (सः) वह (स्वयं) अपने आप (उद्बभौ) प्रकट हुआ ॥

भावा०—पूर्वोक्त परमात्मा बाह्य इन्द्रियों से ग्रहण नहीं हो सक्ता, क्योंकि वह परमसूक्ष्म, नित्य, सब संसार में व्यापक तथा निराकार होने से अचिन्त्य है, जैसाकि मुण्ड० ३।१।८ में वर्णन किया है कि "न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा"—वह ब्रह्म चक्षुओं से ग्रहण नहीं कियाजासक्ता, न वाणी और न अन्य इन्द्रियों से उसका ग्रहण होसक्ता है, एवं अमूर्त्त परमात्मा प्रथम जगत् को उत्पन्न करके फिर स्वयं प्रकट हुआ ॥

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥

पदा०—(स्वात्) अपने (शरीरात्) शरीर से (विविधाः) विविध प्रकार की (प्रजाः) प्रजाओं के (सिसृक्षुः) उत्पन्न करने की इच्छा वाले (सः) परमात्मा ने (हि) निश्चयकरके (अभिध्याय) ध्यानमात्र से (आदौ) आदि सृष्टि में प्रथम (अपः) वाष्परूप कारण (ससर्ज) उत्पन्न करके (तासु) उसमें (बीजं) बीज को (अवासृजत्) आरोपित किया ॥

भावा०—उपरोक्त गुणयुक्त परमात्मा ने स्वस्वामिभाव सम्बन्ध द्वारा अपने शरीर से नाना प्रकार की प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा करके ध्यानमात्र से प्रथम उसने वाष्परूप सूक्ष्म कारण उत्पन्न किया जिसको आज कल के सायंसवेत्ता सूक्ष्म वायु कहते हैं, तदनन्तर उसमें बीज स्थापित किया, बीज से तात्पर्य यहां स्थूल उपादान कारण का है अर्थात् जगत् के उपादान कारण को रचा और "अप" शब्द के अर्थ यहां अप्तृ=व्याप्तौ से

व्यापक वाष्परूप कारण के हैं अर्थात् "आप्नोति सर्वमित्याप:"=जो सर्वत्र फैला हुआ हो उस वाष्परूप कारण को "अप" शब्द से कहा है, और यहां शरीर शब्द उपादान कारण प्रकृति का वाचक है जैसाकि बृहदा० उप० के अन्तर्यामी ब्राह्मण में वर्णन किया है कि "यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्यामन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरम्"=जो पृथिवी में रहता, पृथिवी में व्यापक है, जिसको पृथिवी नहीं जानती और जिसका पृथिवी शरीर है, इत्यादि उपनिषद्वाक्यों में जैसे "शरीर" शब्द उपादान कारण के अभिप्राय से आया है, इसी प्रकार यहां भी "शरीर" शब्द उपादान कारण का वाचक है और वह उपादान कारण प्रकृति है, दूसरी बात यह है कि शरीर शब्द की व्युत्पत्ति से भी यहां उपादान कारण का ही बोध होता है, जैसाकि "शीर्यत इति शरीरम्"=जो रूपान्तर को प्राप्त हो उसका नाम "शरीर" है, इसी भाव को वेद में इस प्रकार वर्णन किया है कि :—

नमृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अन्ह आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्नपरः किंचनास॥

ऋग्० मण्ड० १० अ० ११ सू० १२९। २

अर्थ—प्रलयकाल में न मृत्यु, न अमृत=मुक्ति, न चन्द्रमा और न सूर्य्य था, केवल एकमात्र प्रकृति के सहित परमात्मा विद्यमान था उससे भिन्न अन्य कोई पदार्थ नहीं था, फिर इसी प्रकृति को लेकर परमात्मा ने सृष्टि की रचना की, यही मंत्र इस उक्त श्लोक का मूलभूत है, और यही आशय महर्षिव्यास ने

ब्र० सू० १।४।२३ में यों वर्णन किया है कि "प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानवरोधात्"=इस जगत् का उपादान कारण प्रकृति और निमित्त कारण परमात्मा है॥

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः॥९॥

पदा०—(तत्) वह बीज (हैमं) सुवर्ण सदृश (सहस्रांशुसमप्रभं) सहस्रों किरणसमूह सूर्य के समान कान्ति वाला (अण्डं) अण्डारूप (अभवत्) हुआ (तस्मिन्) उसमें (सर्वलोकपितामहः) सब लोकों का जनक (ब्रह्मा) परमात्मा (जज्ञे) प्रकट हुआ॥

भावा०—वह प्रकृतिरूप बीज सुवर्ण सदृश तथा सूर्य्य के समान चमकवाला और अण्डे के सदृश गोलाकार होगया, पुनः उस अण्डे से सब लोकों का उत्पादक परमात्मा प्रकट हुआ॥

आपोनारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥ १० ॥

पदा०—(वै) निश्चयकरके (आपः) वाष्परूप कारण (नरसूनवः) भूतों का उत्पत्ति स्थान होने से (आपः) वाष्परूप कारण को (नारा) नार (इति, प्रोक्ताः) कहा है (ताः) वह वाष्प-रूप कारण (यत्) जिसकारण (अस्य) इस ईश्वर का (पूर्वं) पहला (अयनं) निवास स्थान है (तेन) तिस कारण परमात्मा को (नारायणः) नारायण (स्मृतः) कहते हैं॥

भावा०—"अप" शब्द से यहां सूक्ष्मवाष्परूप कारण का ग्रहण है और वह कारण सब से पूर्व उत्पन्न होने से परमात्मा का प्रथम स्थान कहाता है, वह सर्वत्र व्याप्त, वही इन सम्पूर्ण स्थूल

भूतों का उपादान कारण है, और वही सूक्ष्म द्रव्य व्याप्यव्यापक भाव से परमात्मा का निवासस्थान होने के कारण "नार" नाम से कहागया है और उसमें व्यापक होने से परमात्मा का नाम "नारायण" है ॥

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।
तद्विसृष्टः सः पुरुषोलोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥

पदा०—(यत्) जो नार (कारणं) सब का कारण (अव्यक्तं) बाह्य इन्द्रियों का अविषय (नित्यं) नित्य (सदसदात्मकं) कारण कार्य्यात्मक है (तत्) उससे (विसृष्टः) मिला हुआ (सः) वह (पुरुषः) पुरुष (लोके) लोक में (ब्रह्मा, इति) "ब्रह्मा" नाम से (कीर्त्यते) कहाजाता है ॥

भावा०—जो नार सब जगत् का उपादान कारण, नेत्रादि इन्द्रियोंका अविषय, नित्य और जो सत्, असत् वस्तुओं की प्रकृति भूत प्रधान प्रकृति है उसके सहित परमात्मा को लोक में "ब्रह्मा" कहते हैं, या यों कहो कि जब परमात्मा इस प्रकृति को कार्य्याकार करता है तब उसका नाम "ब्रह्मा" होता है अर्थात् इस विविध जगत् का रचयिता होने के कारण परमात्मा का नाम "ब्रह्मा" है ॥

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वापरिवत्सरम् ।
स्वयमेवात्मनोध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा ॥१२॥

पदा०—(सः) उस (भगवान्) ब्रह्मा ने (तस्मिन्) उस (अण्डे) अण्डे में (परिवत्सरं) कल्प के सौवें भाग पर्य्यन्त (उषित्वा) निवास करके (आत्मनः) अपने (ध्यानात्) ज्ञान

से (स्वयमेव) आप ही (तदण्डं) उस अण्डे को (द्विधा) दो भागों में विभक्त (अकरोत्) किया ॥

भावा०—उस अण्डे में परिवत्सर संज्ञक कल्प पर्य्यन्त स्थित होकर उस परमात्मा ने आप ही अपने ज्ञान में उस अंडे के दो विभाग किये अर्थात् उस प्रकृतिस्थ गोलाकार अण्डे में जो परमात्मा रूप ब्रह्म स्थिर था उसने अपने ज्ञानपूर्वक यत्न से उसने दो भाग किये, एक वह जो द्यौ, सूर्य्य तथा नाना नक्षत्रों के नाम से प्रसिद्ध है और दूसरा वह जो नाना प्रकार के पृथिव्यादि भूगोलों के नाम से कहाजाता है, इस प्रकार इस कार्य्य रूप ब्रह्माण्ड को उस परमात्मा ने दो भागों में विभक्त किया ॥

ताभ्यां स शकलाभ्याञ्च दिवं भूमिञ्च निर्ममे ।
मध्ये व्योमदिशश्चाष्टावपांस्थानं च शाश्वतम् ॥१३॥

पदा०—(सः) उस ब्रह्मा ने (ताभ्यां) उन (शकलाभ्यां) दोनो भागों से (दिवं) द्युलोक (च) और (भूमिं, च) भूमि को भी (निर्ममे) निर्माण किया (च) और (मध्ये) इन दोनों के बीच में (व्योम) आकाश (अष्टौ) आठो (दिशः) दिशा (शाश्वतं) निरन्तर (अपां) जलों का (स्थानं, च) स्थान भी रचा ॥

भावा०—उस ब्रह्मा ने उन दोनो भागों से द्युलोक और पृथिवी के बीच में आकाश, पूर्वादि चार दिशा और ऐशानी आदि चार उपदिशा इस प्रकार आठ दिशा तथा धूम सदृश वर्षा के उपादान कारण परमाणु रूप सूक्ष्म जलों का स्थान अंतरिक्ष नियत किया ॥

उद्बवर्हात्मनश्चैवमनः सदसदात्मकम् ।
मनसश्चाप्यहङ्कारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥ १४ ॥

पदा०-(च) और (आत्मनः) प्रकृति से (सदसदात्मकं) कारणकार्य्यात्मक (मनः) महत्तत्व को (एव) निश्चय करके (उद्बवर्ह) उत्पन्न किया (च) और (मनसः) महत्तत्व से (ईश्वरं) अपने कार्य्य में समर्थ (अभिमन्तारं) अभिमानी सामर्थ्य वाले (अहङ्कारं) अहङ्कार को उत्पन्न किया ॥

भावा०-तदनन्तर अपने आत्मा प्रकृति से उस जगत्कर्ता परमात्मा ने संकल्प विकल्प करने वाला महत्तत्त्व और उससे अपने कार्य्य में समर्थ तथा अभिमानी सामर्थ्य वाले अहङ्कार को उत्पन्न किया, इस श्लोक में मन अहङ्कार आदि का कारण और प्रकृति का प्रथम कार्य्य होने से यहां महत्तत्त्व को "मन" शब्द कहा है ॥

महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानिच ।
विषयाणांग्रहीतॄणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणिच ॥ १५ ॥

पदा०-(महान्तं) महत्वगुणवाला (आत्मानं) महत्तत्त्व (च) और (एव) निश्चयकरके (त्रिगुणानि) तीनों गुण (विषयाणां) विषयों के (ग्रहीतॄणि) ग्रहण करने वाली (पञ्चेन्द्रियाणि) पांच इन्द्रियें (सर्वाणि) यह सब (शनैः) क्रम से उत्पन्न किये ॥

भावा०-पुनः परमात्मा ने महत्तत्त्व और सत, रज, तम, इन तीन गुणों के साथ विषयों के ग्रहण करने वाली पांच इन्द्रियों का सूक्ष्म कारण पञ्चतन्मात्राओं को क्रम से उत्पन्न किया ॥

तेषान्त्ववयवान्सूक्ष्मान्षण्णामप्यमितौजसाम् ।
सन्निवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥ १६ ॥

पदा०—(तेषां) इन (अमितौजसाम्) अपरिमित सामर्थ्य वाले (षण्णां) छः तत्त्वों के (सूक्ष्मान्) सूक्ष्म (अवयवान्) अवयवों को (आत्ममात्रासु) कार्य रूप मात्राओं में (सन्निवेश्य) सन्निवेश करके (सर्वभूतानि) सब भूतों को (निर्ममे) निर्माण किया ॥

भावा०—अपरिमित सामर्थ्य वाले पांच तन्मात्र तथा छठे अहङ्कार और सूक्ष्म अवयवों वाली अपनी २ मात्राओं से स्थूल भूतों को रचा अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध इन पांचों से आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी इन पांचों को क्रम से निर्माण किया ॥

सं०—अब लिङ्गशरीर की उत्पत्ति कथन करते हैं:—

यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्तिषट् ।
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्यमूर्त्तिं मनीषिणः ॥ १७ ॥

पदा०—(यत्) जिसकारण (मूर्त्तिः) मूर्त्त प्रकृति के (इमानि) यह (षट्) छः (सूक्ष्माः) सूक्ष्म (अवयवाः) अवयव (तस्य) इस आत्मा को (आश्रयन्ति) आश्रय करते हैं (तस्मात्) इस कारण उस (मूर्त्तिं) मूर्त्ति को (मनीषिणः) विद्वान् लोग (शरीरमिति) शरीर (आहुः) कहते हैं ॥

भावा०—परिच्छिन्न परिमाण वाली होने से प्रकृति को मूर्त्त कहा गया है और उसके पांच तन्मात्र तथा अहङ्कार यह छः सूक्ष्म अवयव हैं, और इन अवयवों का जो परस्पर मे कार्य्यस्थूल

देह है उसको भी मूर्त्त कथन किया है, यद्यपि सांख्य शास्त्र में प्रकृति को विभु कथन किया गया है, पर वह विभु शब्द वहां सापेक्ष विभु के अभिप्राय से आया है, वास्तव में प्रकृति को परिच्छिन्न मानना ही समीचीन है ॥

सं०—अब प्रकृति से सब भूतों की उत्पत्ति कथन करते हैं:—

तदाविशन्ति भूतानि महान्ति सहकर्मभिः ।
मनश्चावयवैः सूक्ष्मैः सर्वभूतकृदव्ययम् ॥ १८ ॥

पदा०—(तदा) प्रलयकाल में (महान्ति,भूतानि) सब स्थूल भूत (सहकर्मभिः) कर्मों के साथ (च) और (सूक्ष्मैः,अवयवैः) सूक्ष्म अवयवों के साथ (मनः,च) मन भी (आविशन्ति) प्रकृति में लय होजाता है (सर्वभूतकृदव्ययं) उस समय अव्यय प्रकृति को सब भूतों का कारण कथन करते हैं ॥

भावा०—जिसकाल में सूक्ष्म और स्थूल सम्पूर्ण कार्य्य उस प्रकृति में लय होजाते हैं उस समय प्रकृति को "**अव्यय**" वा "**अव्याकृत**" कहते हैं, सब भूतों का प्रकृति उपादान कारण होने से उसको "**सर्वभूतकृत्**" भी कहागया है, कई लोग "सर्वभूतकृत" के अर्थ सब भूतों के कर्त्ता होने के करते हैं, उनका आशय यह है कि सांख्य शास्त्र में ईश्वर का स्वीकार नहीं, प्रकृति ही सम्पूर्ण कार्य्यों को उत्पन्न करती है, उनका यह कथन ठीकनहीं, क्योंकि सांख्य शास्त्र में स्पष्टतया ईश्वरका स्वीकार है, जैसाकि "**समाधिसुषुप्तिमोक्षेषुब्रह्मरूपता**" सां०५ । ११६= समाधि, सुषुप्ति और मोक्ष में जीव ब्रह्म रूप को धारण करता है, इत्यादि सूत्रों में स्पष्ट है, इसलिये प्रकृति को सब भूतों का कर्त्ता

कथन करना ठीक नहीं, और जो "सर्वभूतकृत्" शब्द कर्त्ता का वाची कथन किया गया है वह उपचार से है, मुख्यार्थ सब भूतों का उपादान कारण ही है, इसलिये "सर्वभूतकृत्" के अर्थ सब भूतों के उपादान कारण के ही करने चाहियें कर्त्ता के नहीं ॥

सं०—अब अव्यय प्रकृति से विकारी कार्य की उत्पत्ति का प्रकार कथन करते हैं :—

तेषामिदन्तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् ।
सूक्ष्माभ्यो मूर्त्तिमात्राभ्यः संभवत्यव्ययाद्व्ययम् ।१९

पदा०—(अव्ययात्) उस अविनाशी प्रकृति की (सूक्ष्माभ्यः) सूक्ष्म (मूर्त्तिमात्राभ्यः) मूर्त्त मात्राओं से (व्ययं) विकारी कार्य्य जगत् (सम्भवति) उत्पन्न होता है (तु) और (इदं) यह विकारी कार्य्य (तेषां) उन प्रकृति के (महौजसाम्) महातेजस्वी (सप्तानां, पुरुषाणां) सात पुरुषों का है ॥

भावा०—महत्तत्व, अहङ्कार और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध यह पञ्चतन्मात्र, इन सात तेजस्वी=कार्य्य उत्पादन की सामर्थ्य वालों से यह निखिल ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है जिसकी उत्पत्ति का प्रकार यह है कि :—

अद्याद्यस्यगुणन्त्वेषामवाप्नोति परःपरः ।
यो यो यावतिथश्चैषां स स तावद्गुणः स्मृतः ॥ २० ॥

पदा०—(एषां) इन पांच महाभूतों के (अद्याद्यस्य) आदि२ के (गुणं) गुणों को (परः, परः) उत्तरोत्तर (अवाप्नोति) प्राप्त

होते हैं (च, तु) और निश्चयकरके (एषां) इनके बीच में (यः, यः) जो २ (यावतिथः) जितनी २ संख्या वाला है (सः, सः) वह २ (तावद्गुणः) उतने २ गुणों वाला (स्मृतः) कहाता है ॥

भावा०—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध यह पांच गुण और आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी यह पांच भूत हैं, इनमें जिस प्रकार आकाश पहिली संख्या वाला है इसी प्रकार गुणों में शब्द प्रथम संख्या पर है, और जिस प्रकार वायु द्वितीय स्थान पर है एवं गुणों में स्पर्श भी दूसरा है, आशय यह है कि जिस संख्या पर जो गुण है उतनी ही संख्या पर गुणों वाला भूत समझना चाहिये; और आदि के एक २ गुण को लेकर भूतों में गुण बढ़ते हैं, जैसे वायु में शब्द, स्पर्श, अग्नि में शब्द, स्पर्श, रूप, एवं जल में शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा पृथिवी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इस प्रकार आदि २ के गुण को लेकर अन्त २ वाले भूत में गुणों की अधिकता होती जाती है ॥

मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया ।
आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः ॥२१॥

पदा०—(सिसृक्षया) रचने की इच्छा से (चोद्यमानं) प्रेरित किया हुआ (मनः) महत्तत्व (सृष्टिं) सृष्टि को (विकुरुते) विकृत करता है (तस्मात्) उससे (आकाशं) आकाश (जायते) उत्पन्न होता है (तस्य) उस आकाश का (गुणं, शब्दं) गुण शब्द (विदुः) जानो ॥

भावा०—सृष्टि रचने की इच्छा वाले परमात्मा से प्रेरित किया हुआ मन=महत्तत्त्व सृष्टि रचता है, जिससे शब्द गुण युक्त आकाश प्रकट होता है अर्थात् जब परमात्मा की

सृष्टि रचने की इच्छा होती है तब प्रकृति से महत्तत्त्व और महत्तत्त्व में अहङ्कारादि उत्पन्न होते हैं, पुनः महत्तत्त्वादि क्रम से सृष्टि की उत्पत्ति होती है, इसलिये उपचार से महत्तत्त्व को कर्त्ता कहा है वास्तव में नहीं ॥

आकाशात्तु विकुर्वाणात्सर्वगन्धवहः शुचिः ।
बलवाञ्जायतेवायुः स वै स्पर्श गुणो मतः ॥ २२ ॥

पदा०—(अकाशात्तु, विकुर्वाणात्) और उस कार्य रूप आकाश से (सर्वगन्धवहः) सब प्रकार की सुगन्धियों को लेजाने वाला (शुचिः) पवित्र (बलवान्) वेगयुक्त (वायुः) वायु (जायते) प्रकट हुआ (सः, वै) वह वायु निश्चयकरके (स्पर्श, गुणः, मतः) स्पर्श गुण वाला है ॥

भावा०—उस कार्य रूप आकाश के प्रकट होने से स्थान पाकर सब प्रकार की सुगन्धियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाने वाला शुद्ध बलवान् वायु प्रकट हुआ जो स्पर्श गुण वाला माना गया है ॥

वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोचिष्णु तमोनुदम् ।
ज्योतिरुत्पद्यते भास्वत्तद्रूपगुणमुच्यते ॥ २३ ॥

पदा०—(वायोः, विकुर्वाणात्) उस कार्य्य रूप वायु से (तमोनुद) अन्धकार नाशक (विरोचिष्णुः) चमकीला (भास्वत्) प्रकाशमान् (ज्योतिरुत्पद्यते) अग्नि उत्पन्न होती है (तद्रूपगुणं, उच्यते) जिसका गुण रूप है ॥

भावा०—उस कार्य्य रूप वायु से अन्धकार नाशक, चमकीला प्रकाशमान् अग्नि प्रकट हुआ जिसका गुण रूप जानना चाहिये ॥

ज्योतिषश्च विकुर्वाणादापोरसगुणाः स्मृताः ।
अद्भ्योगन्धगुणा भूमिरित्येषा सृष्टिरादितः ॥२४॥

पदा०—(ज्योतिषः, विकुर्वाणात्) उस कार्य्य रूप अग्नि से (रसगुणाः) रस गुणों वाले (आपः) जल उत्पन्न हुए (अद्भ्यः) उन कार्य्य रूप जलों से (गन्धगुणा) गन्ध गुणों वाली (भूमिः) पृथिवी उत्पन्न हुई यह (आदितः) आदिकाल से (एषा, सृष्टिः) इस जगत् की उत्पत्ति का क्रम (इति, स्मृताः) इस प्रकार जानना चाहिये ॥

भावा०—उस कार्य्यरूप अग्नि से रसगुण वाला जल और जल से गन्ध गुण वाली पृथिवी उत्पन्न हुई, इस प्रकार यह प्रथम सृष्टि का क्रम वर्णन किया है ॥

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थांश्च निर्ममे ॥ २५ ॥

पदा०—(सः, ब्रह्मा) उस परमात्मा ने (एव) निश्चय करके (सर्वेषां, नामानि) सब के नाम (कर्माणि, च) कर्म (पृथक्संस्थांश्च) और पृथक् व्यवस्थायें (आदौ) आदि सृष्टि में (वेदशब्देभ्यः) वैदिक शब्दों से (पृथक्, पृथक्) भिन्न २ (निर्ममे) निर्माण कीं ॥

भावा०—उस परमात्मा ने सृष्टि की आदि में उन सब भूतों के गौ, अश्व, पुरुष, हस्ती आदि नाम, स्वभाविक शक्ति आदि कर्म और व्यवस्थायें वैदिक शब्दों द्वारा नियत कीं ॥

कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः ।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञश्चैव सनातनम् ॥२६॥

पदा०—(सः, प्रभुः) उस स्वामी ने (कर्मात्मनां, च, देवानां)

कर्मस्वभाव वाले देवताओं को (प्राणिनां,च) और प्राणियों के (साध्यानां) संस्कार होने योग्य (गणं, सूक्ष्मं) साधारण गणों (च) और (सनातनं, यज्ञं) सनातन यज्ञ को (असृजत्) निर्माण किया ॥

भावा०—इस प्राणियों के स्वामी परमात्मा ने कर्म स्वभाव वाले विद्वान् देवताओं और साधन योग्य प्राणियों अर्थात् जो संस्कार से योग्य बन सकते हैं ऐसे साधारण मनुष्यों के समूह और ज्योतिष्टोमादि सनातन यज्ञों को निर्माण किया ॥

सं०—अब देव तथा मनुष्यों की उत्पत्ति के अनन्तर ब्रह्मा आदि विद्वानों के प्रति वेदप्राप्ति कथन करते हैं:—

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञ सिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥ २७ ॥

पदा०—(तु) निश्चयकरके उस ब्रह्मा ने (यज्ञसिद्ध्यर्थं) यज्ञ सिद्धि के लिये (ऋग्यजुःसामलक्षणं) ऋचा, यजु तथा गीति लक्षणों वाले (त्रयं, ब्रह्म, सनातनं) तीन अनादि वेदों को (अग्निवायुरविभ्यः) अग्नि, वायु और आदित्य से (दुदोह) ग्रहण किया ॥

भावा०— ऋग्, यजु तथा साम इन तीन अनादि वेदों को अग्नि, वायु और आदित्य से यज्ञसिद्धि के लिये क्रमानुसार उस ब्रह्मा ने ग्रहण किया अर्थात् अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद और आदित्य से सामवेद को दुहा=प्राप्त किया, यहां "यजु" शब्द से अथर्व का भी ग्रहण है, क्योंकि "शेषे यजुः शब्दः" मीमां० २।१।३७ इस सूत्र के अनुसार "यजुः" उसको कहते हैं जो छन्दोबद्ध न हो, जैसेकि यजु और अथर्व हैं अर्थात् यजु कहने

से अथर्व का भी ग्रहण होजाता है जिसका तात्पर्य्य यह है कि अग्नि ऋषि द्वारा ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, आदित्य से सामवेद और अंगिरा से अथर्ववेद, इन चारो ऋषियों द्वारा चारो वेदों की उत्पत्ति जाननी चाहिये ॥

सं०—अब प्रसङ्गसंगति से गिरि समुद्रादिकों की उत्पत्ति वर्णन करते हैं :—

कालं कालविभक्तींश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा।
सरितः सागरान् शैलान् समानि विषमाणिच ॥२८॥

पदा०—(कालं) काल (कालविभक्तींश्च) और कालविभाग (तथा) तथा (नक्षत्राणि) नक्षत्र (ग्रहान्) ग्रह (सरितः) नदियें (सागरान्) समुद्र (शैलान्) पर्वत (समानि, विषमाणि, च) और ऊंची नीची भूमियों को उत्पन्न किया ॥

भावा०—तदनन्तर उस परमात्मा ने काल तथा सूर्य्य चन्द्रमादि से विभाग को प्राप्त निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त्त, याम, अहोरात्र, पक्ष, मास, वर्ष, कल्प, मन्वन्तरादि कालविभाग और नक्षत्र, ग्रह, नदी, समुद्र, पर्वत और ऊंची नीची भूमि को निर्माण किया ॥

कर्मणाञ्चविवेकार्थं धर्माधर्मौ व्यवेचयत् ।
द्वंद्वैरयोजयच्चेमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः ॥ २९ ॥

पदा०—(कर्मणां, च) और कर्मों के (विवेकार्थं) विवेकार्थ (धर्माधर्मौ) धर्म और अधर्म को (व्यवेचयत्) पृथक् २ निर्माण करके (इमाः, च, प्रजाः) इस प्रजा को (सुखदुःखादिभिः) सुखदुःखादि (द्वन्द्वैः) द्वन्द्वों से (अयोजयत्) युक्त किया ॥

भावा०—कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्मों के पूर्ण ज्ञानार्थ धर्म

तथा अधर्म को वर्णन करके पापपुण्यात्मक प्रारब्ध के अनुकूल सुख दुःख, काम क्रोध, लोभ मोहादि द्वन्द्वों से सम्पूर्ण प्रजा को संयुक्त किया ॥

अण्व्यो मात्राविनाशिन्यो दशार्द्धानांतु याःस्मृताः।
ताभिः सार्द्धमिदं सर्वं सम्भवत्यनुपूर्वशः ॥ ३० ॥

पदा०-(दशार्द्धानां) दश के आधे पांच भूतों की (अण्व्यः) सूक्ष्म (विनाशिन्यः) परिणामी (याः) जो (मात्राः, स्मृताः) मात्रायें कही हैं (ताभिः, सार्द्धं) उनके साथ (इदं, सर्वं) यह सब जगत् (अनुपूर्वशः) क्रम से (सम्भवति) उत्पन्न होता है ॥

भावा०-दश के आधे जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध यह पांच तन्मात्र कथन किये हैं इन्हीं परिणामी पांचों से मिला हुआ यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है ॥

यं तु कर्मणि यस्मिन्सन्ययुङ्क्त प्रथमं प्रभुः ।
स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः ॥ ३१ ॥

पदा०-(यं, तु) जिस जीव को (यस्मिन्कर्मणि) प्रारब्धानुकूल जिस २ कर्म में (सः, प्रभुः) उस परमात्मा ने (प्रथमं) आदि सृष्टि में (न्ययुङ्क्त) नियत किया (सः) वह (पुनः, पुनः) वारंवार (सृज्यमानः) उत्पन्न होकर (स्वयं) अपने आप (तदेव) उन्हीं कर्मों को (भेजे) भोगता है ॥

भावा०-प्रलयावस्था के अन्त में परमात्मा ने जीवों को पूर्वकृतकर्मानुकूल जिन २ कर्मों में नियुक्त किया उन्हीं कर्म्मों को जीव मोक्षप्राप्ति पर्य्यन्त वारंवार उत्पन्न होकर भोगता है ॥

यथर्त्तुलिङ्गान्यृतवः स्वयमेवर्त्तुपर्यये ।
स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः॥३२॥

पदा०-(यथा) जैसे (ऋतुपर्यये) ऋतु के परिवर्तन से (ऋतवः) वसन्तादि ऋतुयें (स्वयमेव) आप ही (स्वानि, स्वानि) अपने २ (ऋतुलिङ्गानि) ऋतु चिन्हों को (अभिपद्यन्ते) प्राप्त होती हैं (तथा) वैसे ही (देहिनः) जीवात्मा भी (कर्माणि) अपने २ कर्मों को प्राप्त होते हैं ॥

भावा०-जिस प्रकार वसन्तादि ऋतुयें अपने २ समय में निज २ ऋतुचिन्हों को प्राप्त होते हैं इसी प्रकार मनुष्य भी अपने २ प्रारब्धकर्मानुसार सुख दुःख को प्राप्त होते हैं ॥

लोकानांतु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्च निरवर्त्तयत् ॥ ३३ ॥

पदा०-(लोकानां, तु) और लोकों की (विवृद्ध्यर्थं) वृद्धि के लिये (मुखबाहूरुपादतः) मुख, बाहू, जंघा और चरण शरीर के इन अङ्गों के सदृश (ब्राह्मणं, क्षत्रियं, वैश्यं, शूद्रं) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारो वर्णों को (निरवर्त्तयत) रचा ॥

भावा०-लोकों की वृद्धि के निमित्त मुख स्थानी ब्राह्मण, बाहु स्थानी क्षत्रिय, ऊरु स्थानी वैश्य, पादस्थानी शूद्र इस क्रम से जगत्कर्त्ता परमात्मा ने ब्राह्मणादि वर्णों को बनाया अर्थात् जिस २ योग्यता पर शरीर में मुखादि अङ्ग हैं वैसे ही लोक में वर्णों को क्रम से निर्माण किया, इस श्लोक का मूलभूत यह मंत्र है कि :-

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहूराजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳪशूद्रोऽजायत ॥

यजु० ३१ । ११

अर्थ—ब्राह्मण मुख के समान, क्षत्रिय बाहु सदृश, वैश्य उरु के तुल्य और शूद्र पैरों के समान है, जिसप्रकार यह वैदिक व्यवस्था है इसी प्रकार उक्त श्लोक का आशय जानना चाहिये, इसी भाव को गीता में इस प्रकार स्फुट किया है कि "वर्णाश्रम्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः"=मैंने गुणकर्मानुसार वर्णाश्रमों को रचा है ॥

येषान्तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्त्तितम् ।
तत्तथा वोभिधास्यामि क्रमयोगञ्चजन्मनि ॥३४॥

पदा०—(इह) इस जगत में (येषां,भूतानां) जिन देह धारियों का (यादृशं, कर्म) जैसा कर्म (कीर्त्तितं) वर्णन किया है (तत्तथा) वह उसी प्रकार (वः) तुम्हारे प्रति (अभिधास्यामि) कहता हूं (च) और (जन्मानि) जन्म में (क्रमयोगं) क्रमयोग को भी कहूंगा ॥

भावा०—इस संसार में जिन प्राणियों का जो कर्म जैसा कीर्तन किया है उसको उसी प्रकार वर्णन करता हूं और उनके जन्म में कर्मानुसार क्रमयोग भी कथन करूंगा ॥

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः ।
रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः ॥३५॥

पदा०—(पशवः) पशु (मृगाः) मृग (व्यालाः) हाथी (च)

और (उभयतोदतः) ऊपर नीचे दांतों वाले प्राणी (रक्षांसि) राक्षस (पिशाचाः) पिशाच (च) और (मनुष्याः) मनुष्य यह सब (जरायुजाः) जेर से उत्पन्न होते हैं॥

भावा०-जेर से उत्पन्न होने वालों का नाम "जरायुज" है, गाय आदि पशु, हरिणादि मृग, हाथी, ऊपर नीचे दांतों वाले जीव, राक्षस, पिशाच और मनुष्य यह सब जेर से उत्पन्न होने के कारण "जरायुज" कहाते हैं॥

अण्डजाः पाक्षिणः सर्पानक्रामत्स्याश्च कच्छपाः।
यानिचैवं प्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च॥३६॥

पदा०-(पक्षिणः) पक्षी (सर्पाः) सांप (नक्राः) नाके (मत्स्याः) मच्छ (च) और (कच्छपाः) कछुए इसी प्रकार (यानि, चैवं, प्रकाराणि) अन्य प्रकार के जीव (च) और (स्थलजानि) स्थल में उत्पन्न होने वाले (च) तथा (औदकानि) जल में रहने वाले, यह सब (अण्डजाः) अण्डे से उत्पन्न होने के कारण अंडज कहाते हैं॥

भावा०-अण्डे से उत्पन्न होनेवालों का नाम "अण्डज" है, जैसे पक्षी, सर्प, नाके, कच्छुए तथा मच्छलियां, और इसी प्रकार अन्य जीव भी जो स्थल तथा जल में रहने वाले हैं वह सब "अण्डज" कहाते हैं॥

स्वेदजं दंशमशकं यूकामाक्षिकमत्कुणम्।
ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम्॥३७॥

पदा०-(दंशमशकं) डांस, मच्छर, (यूका, माक्षिकं, मत्कुणं) जूं, मक्खी, खटमल यह (स्वेदजं) पसीने से उत्पन्न होते हैं (ईदृशं) इन्हीं के सदृश (यच्चान्यत्) और भी (किञ्चित्) क्षुद्र

जीव जो (ऊष्मणः) गरमी से (उपजायन्ते) उत्पन्न होते हैं, वह सब भी स्वेदज कहाते हैं ॥

भावा०—पसीने से उत्पन्न होने वाले जीवों का नाम "स्वेदज" है, जैसे डांस, मच्छर, जूँ, मक्खी, खटमल इत्यादि और जो इन्हीं के सदृश गरमी से उत्पन्न होनेवाले क्षुद्रजीव हैं वह सब भी स्वेदज कहाते हैं ॥

उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः ।
ओषध्यः फलपाकान्ताबहुपुष्पफलोपगाः ॥ ३८ ॥

पदा०—(बीजकाण्डप्ररोहिणः) बीज और शाखाओं से उगने वाले वृक्ष (ओषध्यः) औषधियाँ जो (फलपाकान्ताः) फल पकने पर नाश होजाने वाली (बहुपुष्पफलोपगाः) बहुत पुष्प फलों से संयुक्त (सर्वे) ये सब (स्थावराः) स्थावर (उद्भिज्जाः) उद्भिज्ज कहाते हैं ॥

भावा०—पृथिवी को फोड़कर उगने वालों को "उद्भिज्ज" कहते हैं, जैसे बीज तथा शाखाओं से उत्पन्न होने वाले आम्र तथा गुलाब आदि वृक्ष और बहुत पुष्पफलों से युक्त तथा फल पकने पर नाश होजाने वाली धान्यादि औषधियां, यह सब स्थावर उद्भिज्ज कहाते हैं ॥

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ।
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः ॥३९॥

पदा०—(ये, अपुष्पाः) जो फूलों से रहित (फलवन्तः) फलों वाले हैं (ते, वनस्पतयः) वे वनस्पतियां (स्मृताः) कहाती हैं और जो (पुष्पिणः) फूलों (फलिनः) फलों से युक्त हैं (उभयतः, एव)

वह दोनों ही प्रकार के (वृक्षाः) वृक्ष (स्मृताः) कहे जाते हैं ॥

भावा०-जिन वृक्षों में पुष्पों के विना ही फल लगते हैं वह "वनस्पति" और जो पुष्प फल दोनों से युक्त हैं वह "वृक्ष" कहाते हैं ॥

गुच्छं गुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः ।
वीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्य एव च ॥ ४० ॥

पदा०-(गुच्छं) जो जड़ से ही गुच्छों के प्रकार में उगें (च) और (गुल्मं) जो जड़ से ही वहुत शाखाओं युक्त हों (तथैव) तैसे ही (विविधं) नाना प्रकार की (तृणजातयः) वहुत तृणों के साथ उगें (च) और (प्रतानाः) फैली हुई (वल्यः) लता, ये सव (वीजकाण्डरुहाण्येव) वीज तथा शाखाओं से ही उत्पन्न होने के कारण उद्भिज्ज कहाते हैं ।

भावा०-गुच्छ=मल्लिका=चमेली आदि, गुल्म=इक्षुदण्डादि तथा नाना प्रकार की तृणजाती शरकण्डा आदि और फैलने वाली वेल कद्दू, तुरई आदि तथा लता=गिलोय आदि, इन सवको भी वीज और शाखाओं से ही उत्पन्न होने के कारण "उद्भिज्ज" जानना चाहिये ॥

एतदन्तास्तु गतयो ब्रह्माद्याः समुदाहृताः ।
घोरेऽस्मिन् भूतसंसारे नित्यं सततयायिनि ॥४१॥

पदा०-(अस्मिन्, घोरे) इस घोर (नित्यं) नित्य (सततं) निरन्तर (यायिनि) चलायमान (भूतसंसारे) देहधारियों की संसृति में (ब्रह्माद्याः) ब्रह्मा से लेकर (एतत्) यह (अन्ताः, गतयः) स्थावर पर्यन्त उत्पत्ति क्रम (समुदाहृताः) वर्णन किया है ॥

भावा०—इस घोर तथा निरन्तर उत्पत्ति विनाश वाले देह-धारियों की संसृति में चतुर्वेदवित् ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त यह उत्पत्ति क्रम कहा ॥

एवं सर्वं स सृष्ट्वेदं मां चाचिन्त्यपराक्रमः।
आत्मन्यन्तर्दधे भूयः कालं कालेन पीडयन् ॥४२॥

पदा०—(अचिन्त्यपराक्रमः) अचिन्त्य बल वाला (सः) वह परमात्मा (इदं, सर्वं) इस सब स्थावर जङ्गम जगत् (च) और (मां) मुझको (सृष्ट्वा) उत्पन्न कर (कालं) सृष्टि समय को (कालेन) प्रलय काल से (पीडयन्) नाश करके (भूयः) पुनः (आत्मनि) अपने (अन्तः) भीतर (दधे) धारण करता है ॥

भावा०—अचिन्त्य पराक्रम वाले उस परमात्मा ने इस सम्पूर्ण स्थावर जङ्गमरूप सृष्टि और मुझ मनु को उत्पन्न कर पुनः सृष्टि को प्रलयकाल में नाश करके अपने में धारण करता हुआ प्राणियों के कर्मवश पुनः २ उत्पत्ति तथा प्रलय करता है ॥

यदा स देवो जागर्त्ति तदेदं चेष्टते जगत् ।
यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलिति॥ ४३ ॥

पदा०—(यदा, सः, देवः) जब वह देव (जागर्त्ति) जागता है (तदा) तब (इदं, जगत्) यह जगत् (चेष्टते) चेष्टा करता है (यदा) जब (शान्तात्मा) शान्तस्वरूप परमात्मा (स्वपिति) सोता है (तदा) तब (सर्वं) सब जगत् (निमीलिति) चेष्टा रहित होता है ॥

भावा०—जब प्रजापति जागता=सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति रूपा क्रिया करता है उस समय यह सम्पूर्ण जगत् के प्राणी अपनी २ क्रिया में प्रवृत्त होते हैं और जब प्रजापति की संहार

करने की क्रिया का प्रारम्भ होता है तब यह जगत् चेष्टारहित होजाता है, यही ईश्वर का सोना और जागना है ॥

तस्मिन्स्वपिति तु स्वस्थे कर्मात्मनः शरीरिणः ।
स्वकर्मभ्यो निवर्त्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति॥५४॥

पदा०-(तस्मिन्) उस परमात्मा के (स्वस्थेस्वपितिसाति) स्वस्थ होने पर (कर्मात्मनः, शरीरिणः) कर्मी देहधारी जीव (स्वकर्मभ्यः) शरीर सम्बन्धि कर्मों से (निवर्त्तन्ते) निवृत्त होजाते हैं (च) और (मनः) उनका मन भी (ग्लानिं) उदासीनता को (ऋच्छति) प्राप्त होता है ॥

भावा०-उस परमात्मा के चेष्टारहित होने पर कर्मी देहधारी जीव सुख दुःखादि अनुभव के विना सुषुप्ति अवस्था में शरीर रहित हो सब कर्मों से निवृत्त होजाते और मन भी उदासीनता को प्राप्त होजाता है, आशय यह है कि जब परमात्मा अपनी कर्तृत्व शक्ति को काम में लाता है तो सब कर्मी जीव अपने २ कर्मों में जुड़ते और जब वह कर्तृत्वशक्ति को काम में नहीं लाता अर्थात् प्रलय करने की इच्छा करता है तब सब जीव अपने कर्मों से निवृत्त होजाते हैं, यहां स्वस्थ होना केवल उपचार से कथन किया गया है वास्तविक नहीं, क्योंकि परमात्मा वास्तव में सदा ही स्वस्थ है, केवल निवृत्तेच्छा के अभिप्राय से यहां "स्वस्थ" शब्द का प्रयोग किया गया है ॥

युगपत्तु प्रलीयन्ते यदा तस्मिन्महात्मनि ।
तदायं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति निर्वृत्तः ॥ ५५॥

पदा०-(यदा, तस्मिन्) जब उस (महात्मनि) परमात्मा में

(युगपत्) एक साथ (प्रलीयन्ते) सब जगत् लय होजाता है (तदायं) तब वह (सर्वभूतात्मा) सब भूतों का आत्मा (निर्वृत्तः) जगत् के व्यापार से रहित होकर (सुखं, स्वपिति) सुख से सोता है ॥

भावा०—जब उस परमात्मा में यह सब जगत् कारणरूप होजाता है तब वह कर्तृत्वादि कर्मों से निवृत्त हुआ सोया हुआ कहा जाता है, सब भूत = प्राणी जिसके आत्मा = स्वकीय वस्तु हों उसको "सर्वभूतात्मा" कहते हैं ॥

तमोऽयन्तु समाश्रित्य चिरं तिष्ठति सेन्द्रियः ।
न च स्वं कुरुते कर्म तदोत्क्रामति मूर्त्तितः ॥ ४६ ॥

पदा०—(तदायं) तब यह जीवात्मा (तमः, समाश्रित्य) निद्रा को आश्रित करके (सेन्द्रियः) लिङ्गशरीर सहित (चिरं, तिष्ठति) दीर्घकाल पर्य्यन्त स्थित रहता है (स्वं, च, कर्म) अपने चेष्टादि कर्म (न, कुरुते) नहीं करता (तु) और (मूर्त्तितः) स्थूल देह से (उत्क्रामति) पृथक् होता है ॥

भावा०—यह जीवात्मा लिङ्गशरीर सहित बहुतकाल तक प्रलयरूप सुषुप्ति को आश्रय करके अपना श्वास प्रश्वासादि कर्म भी न करता हुआ स्थूल शरीर से पृथक् रहता है ॥

यदाणुमात्रिको भूत्वा बीजं स्थास्नुचरिष्णु च ।
समाविशति संसृष्टस्तदा मूर्त्तिं विमुञ्चति ॥ ४७ ॥

पदा०—(यदाणुमात्रिकः) जब जीव अणुमात्रा वाला (भूत्वा) होकर (स्थास्नु) स्थावर (च) और (चारिष्णु) चर स्वभाव वाले जङ्गम (बीजं) बीजों में (समाविशति) प्रविष्ट होने को

सान्निहित होता है (तदामूर्त्ति) तव इस स्थूल देह को (विमुञ्चति) त्याग कर शरीरान्तर को प्राप्त होता है ॥

भावा०—जब अणुरूप जीवात्मा स्थावर तथा जङ्गम रूप बीजों में प्रविष्ट होने को उद्यत होता है तब स्थूल देह को त्यागकर शरीरान्तर को धारण करता है ॥

एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वं चराचरम् ।
सञ्जीवयति चाजस्रं प्रमापयति चाव्ययः ॥ ५८ ॥

पदा०—(सः, अव्ययः) वह अविनाशी परमात्मा (जाग्रत्स्वप्नाभ्यां) जाग्रत तथा स्वप्न अवस्था से (इदं, सर्वं) इस सब (चराचरं) चराचर जगत को (अजस्रं) निरन्तर (सञ्जीवयति) उत्पन्न (च) और (प्रमापयति) नाश करता रहता है ॥

भावा०—वह अविनाशी परमात्मा जाग्रत तथा स्वप्नावस्था से स्थावर, जंगमरूप इस सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न तथा नाश करता रहता है, यहां परमात्मा की जाग्रत तथा स्वप्नावस्था उपचार से कथन कीगई है वास्तव में परमात्मा न सोता और न जागता है ॥

सं०—अब युगों की आयु वर्णन करने के लिये प्रथम कालक्रम कथन करते हैं :—

निमेषा दशचाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला ।
त्रिंशत्कला मुहूर्त्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः ॥ ५९ ॥

पदा०—(दशचाष्टौ, निमेषाः) अठारह निमेषों की (काष्ठा) एक काष्ठा (ताः) उन (त्रिंशत) तीस काष्ठाओं की (कला) एक कला (त्रिंशत्तु, कलाः) तीस कलाओं का (मुहूर्त्तः) एक

मुहूर्त (तु) और (तावतः) तीस मुहूर्तों का (अहोरात्रं) एक दिनरात (स्यात्) होता है ॥

भावा०—आंख का पलक झमकने को "निमेष" कहते हैं, अठारह निमेषों की एक काष्ठा, तीस काष्ठाओं की एक कला, तीस कलाओं का एक मुहूर्त=दोघड़ी, तीस मुहूर्त=साठघड़ियों का एक दिन रात होता है ॥

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥ ५० ॥

पदा०—(मानुष, दैविके) मनुष्य और देवताओं के लिये (सूर्यः, अहोरात्रे) सूर्य्य दिन रात का (विभजते) विभाग करता है (भूतानां, स्वप्नाय) प्राणियों के सोने के लिये (रात्रिः) रात्रि (कर्मणां, च) और कर्मों के (चेष्टायै) करने के लिये (अहः) दिन है ॥

भावा०—सूर्य्य मनुष्य और देवता सम्बन्धि रात, दिन का विभाग करता है, उनमें मनुष्यादि प्राणियों के सोने के लिये रात और कर्म करने के लिये दिन है ॥

सं०—अब काल की संख्या को सुखपूर्वक निरूपण करने के लिये पितृ आदि क्रम से कथन करते हैं:—

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः ।
कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥ ५१ ॥

पदा०—(मासः) मानुष मास (पक्षयोः, प्रविभागः) पक्षों के विभाग से (पित्र्ये, रात्र्यहनी) पितरों का रात दिन है (कृष्णः) कृष्णपक्ष (कर्मचेष्टास्वहः) कर्मों के निमित्त दिन (तु) और (शुक्लः) शुक्ल पक्ष (स्वप्नाय) सोने के लिये (शर्वरी) रात्रि है ॥

भावा०—मनुष्यों का एक मास पितरों का रात दिन कहाता है अर्थात् कृष्ण पक्ष कर्म करने के निमित्त दिन और सोने के लिये शुक्ल पक्ष रात्रि है ॥

दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ।
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ ५२ ॥

पदा०—(वर्षं) मनुष्यों का वर्ष (दैवे) देवताओं का (रात्र्यहनी) रात दिन है (पुनः, तयोः) पुनः उनका (प्रविभागः) विभाग इस प्रकार है कि (तत्र, उदगयनं) उत्तरायण (अहः) दिन (दक्षिणायनं) दक्षिणायन (रात्रिः, स्यात्) रात्रि है ॥

भावा०—यह मानुष वर्ष देवताओं का रात्रि दिन कहाता है अर्थात् षड्मास उत्तरायण दिन और षड्मास दक्षिणायन रात्रि है ॥

सं०—अब ब्राह्म अहोरात्र का वर्णन करते हैं :—

ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः ।
एकैकशो युगानां तु क्रमशस्तन्निबोधत ॥ ५३ ॥

पदा०—(ब्राह्मस्य) ब्रह्मा के (क्षपाहस्य) रात दिन का (समासतः) संक्षेप से (यत्प्रमाणं) जो परिमाण (तु) और (एकैकशः) एक २ (युगानां) युग का जो परिमाण है (तं, क्रमशः) उसको क्रम से (निबोधत) जानो ॥

भावा०—अब ब्राह्मरात और ब्राह्मदिन का परिमाण तथा सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, इन युगों के परिमाण को संक्षेप से कथन करते हैं ॥

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम् ।
तस्यतावच्छती संध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ॥५४॥

पदा०-(चत्वारि, सहस्राणि) चार सहस्र (वर्षाणां) वर्षों का (कृतं, युगं) सतयुग (तस्य, च) और सतयुग की (तावत् ,शती) उतने ही सैंकड़ों की (सन्ध्या) पूर्वसन्धि (तु) और (तथा,विधः) उसी प्रकार उतने ही सैंकड़ों की (सध्यांशः) परसन्धि (आहुः) कथन की है ॥

भावा०-तीनसौसाठ वर्षों का एक दैववर्ष, ऐसे चार सहस्र वर्षों का सतयुग और सतयुग की सन्ध्या=युग का पूर्वकाल तथा सन्ध्यांश=युग का उत्तरकाल चार २ सौ वर्ष के होते हैं, सन्धा और सन्ध्यांश मिलकर४८०० अड़तालीस सौ दैववर्ष का सतयुग होता है ॥

इतरेषु स सन्ध्येषु स सन्ध्यांशेषु च त्रिषु ।
एकापायेनवर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥ ५५ ॥

पदा०-(स, सन्ध्येषु) सन्ध्या (स, सन्ध्यांशेषु, च) और सन्ध्यांशों समेत (इतरेषु, त्रिषु) अन्य त्रेतादि तीनो युगों में (सहस्राणि) सतयुग के हज़ारों में से (शतानि, च) और सैंकड़ों में से (एकापायेन) एक २ घटाने पर तीनों का काल परिमाण (वर्त्तन्ते) होता है ॥

भावा०-इतर तीन = त्रेता, द्वापर, कलियुग की सन्ध्या और सन्ध्यांश को मिलाकर जो संख्या होती है वह क्रम से सतयुग के सहस्र तथा शत में से एक २ घटाने से तीनों की संख्या पूरी होती है, जैसे सतयुग ४८०० = १७२८०००. त्रेता३६०० = १२९६०००, द्वापर २४०० = ८६४०००, कलियुग १२०० = ४३२०००, ४८०० दैववर्ष का सतयुग होता है इनको ३६० से गुणने पर

१,७२८००० यह मानुष वर्ष हुए, क्योंकि ३६० मानुष वर्षों का एकदैववर्ष माना है ऐसा ही सब युगों में जानना चाहिये ॥

यदेतत्परिसंख्यातमादावेवचतुर्युगम् ।
एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥ ५६ ॥

पदा०—(यदेतत्) जो यह (आदौ) पहले (चतुर्युगम्) चतुर्युगों का काल (परिसंख्यातं) कथन किया है, (एतत्) इन चारों युगों के योग (द्वादशसाहस्रं) १२००० बारह सहस्र दैववर्षों को (देवानां) देवताओं का (युगम्) एक युग (उच्यते) कहते हैं ॥

भावा०—इससे पूर्व दो श्लोकों में जो चारो युगों की संख्या वर्णन की है, उन चारो युगों की संख्या को जोड़ने से बारह सहस्र १२००० दिव्य वर्ष होते हैं जो देवताओं का एकयुग जानना चाहिये ॥

दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया ।
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावतीं रात्रिमेव च ॥ ५७ ॥

पदा०—(दैविकानां, सहस्रं) देवताओं के हज़ार (युगानां) युगों की (परिसंख्यया) गणना से (एकं, ब्राह्मं) ब्रह्मा का एक (अहः) दिन (तावतीमेव, च) और उतनी ही (रात्रि) रात्रि (ज्ञेयं) जानो ॥

भावा०—दैव सहस्रयुगों का एक ब्राह्मदिन और उतनी ही संख्या की एक ब्राह्मरात्रि होती है अर्थात् दोसहस्रदैवयुगों का ब्राह्मरात्रि दिन होता है, १२००० बारहसहस्र दैववर्षों का एकयुग, और इसको १००० एक सहस्र से गुणने पर १२०००००० दैव वर्ष का एक ब्राह्म दिन हुआ, इसको ३६० से गुणा करने से

४३२००००००० मानुष वर्षों का ब्राह्मदिन और इतनी ही रात्रि जाननी चाहिये ॥

तद्वैयुगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः ।
रात्रिश्च तावतीमेवतेऽहोरात्रविदोजनाः ॥ ५८ ॥

पदा०—(तद्वै, युगसहस्रान्तं) उन हज़ार युगों की समाप्ति तक (ब्राह्मं) ब्रह्मा का (पुण्यं) पवित्र (अहः) दिन (विदुः) जानो (तावतीमेव, च) और उतनी ही (रात्रिं) रात्रि, जो ऐसा जानते हैं (ते, जनाः) वे विद्वान् लोग (अहोरात्र) ब्राह्मदिन रात के (विदः) जानने वाले हैं ॥

भाष्य—दिव्य सहस्र युगों की समाप्ति तक एक ब्राह्म दिन और उतने ही युगों के समाप्त होने पर एक रात्रि होती है, ब्राह्म अहोरात्र के जानने वाले कालवेत्ता ऐसा कथन करते हैं ॥

सं०—अब सृष्टि की उत्पत्ति तथा प्रलय का उपसंहार कथन करते हैं:—

तस्यसोऽहर्निशस्यान्ते प्रसुप्तः प्रतिबुद्ध्यते ।
प्रतिबुद्धश्च सृजति मनः सदसदात्मकम् ॥ ५९ ॥

पदा०—(सः) वह ब्रह्मा (तस्य) उस पूर्वोक्त (अहर्निशस्यान्ते) ब्राह्म दिन रात के अन्त में (प्रसुप्तः) सोता (प्रतिबुद्ध्यते) जागता है (प्रतिबुद्धश्च) और जागकर (सदसदात्मकं) सङ्कल्प विकल्पात्मक (मनः) मनसंयुक्त लिङ्गशरीर को (सृजति) प्रेरणा करता है ॥

भाष्य—वह ब्रह्मा पूर्वोक्त ब्राह्म रात दिन के अन्त में सोता जागता है अर्थात् दिन के अन्त में सोता और रात्रि के अन्त

में जागकर सङ्कल्प विकल्पात्मक मनसंयुक्त लिङ्गशरीर को प्रेरणा करता है ॥

यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुदितं दैविकं युगम् ।
तदेकसप्तति गुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ ६० ॥

पदा०—(इह) इस प्रकरण में (यत्प्राक्) जो पूर्व (द्वादशसाहस्र) बारह हज़ार वर्ष का (दैविकं, युगं) एक दैवयुग (उदितं) कहा है (तद्) उसको (एकसप्ततिगुणं) इकहत्तर पर गुणा करने से (मन्वन्तरं) एक मन्वन्तर (उच्यते) कहा जाता है ॥

भाष्य—पूर्व इस प्रकरण में जो बारहहज़ार दैववर्ष का एक दैवयुग कहा है उसको इकहत्तर पर गुणा करने से एक मन्वन्तर होता है ॥

मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव च ।
क्रीडन्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनः पुनः ॥ ६१ ॥

पदा०—(असंख्यानि) अगण्य (मन्वन्तराणि) मन्वन्तर (सर्गः, च) और उत्पत्ति (संहार, एव) प्रलय भी अनन्त हैं, (परमेष्ठी) प्रजापति (पुनः, पुनः) वार २ (एतत्) इस प्रलय तथा उत्पत्ति को (कीडन्निव) क्रीडावत् (कुरुते) करता है ॥

भाष्य—मन्वन्तर, उत्पत्ति तथा प्रलय अनन्त हैं जिनको वह परमात्मा वार २ क्रीडा की न्याईं विना परिश्रम स्वाभाविक ही सदा करता रहता है ॥

सं०—अब ब्राह्मणादि वर्णों के कर्म कथन करते हैं :—

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः ।
मुखबाहूरुपाज्जानां पृथक् कर्माण्यकल्पयत् ॥ ६२ ॥

पदा०-(स, महाद्युतिः) उस सब प्रकाशों में प्रकृष्ट प्रकाश वाले परमात्मा ने (अस्य, सर्वस्य) इस सब (सर्गस्य) सृष्टि के (गुप्त्यर्थं) रक्षा के निमित्त (मुखबाहूरुपाज्जानां) मुख, बाहू, जंघा और चरणों से उत्पन्न वर्णों के (कर्माणि) कर्म (पृथक्) पृथक् २ (अकल्पयत्) रचे हैं॥

भाष्य-उस महातेजस्वी परमात्मा ने सब सृष्टि की रक्षा के हेतु मुख, बाहू, जंघा और पादों से उत्पन्न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों के कर्मों को पृथक् वर्णन किया है॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहञ्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ ८८॥

पदा०-(अध्यापनं) वेद वेदाङ्गों का पढ़ाना (च) तथा अध्ययनं पढ़ना (यजनं) यज्ञ करना (च) और (याजनं) यज्ञ कराना (दानं) दान देना (प्रतिग्रहं, चैव) और दान लेना, यह सब कर्म ब्राह्मणों के (अकल्पयत्) कथन किये हैं॥

भाष्य-वेदादिसत्यशास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना, अग्निष्टोमादि यज्ञों का करना कराना, दान देना और लेना, यह छः कर्म ब्राह्मणों के हैं॥

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥ ८९॥

पदा०-(प्रजानां, रक्षणं) प्रजाओं की रक्षा करना (दानं) दान देना (इज्या) यज्ञ करना (अध्ययनं) वेदवेदाङ्गों का पढ़ना (च) और (विषयेषु) विषयों में (अप्रसक्तिः) आसक्त न होना, यह कर्म (समासतः) संक्षेप से (क्षत्रियस्य) क्षत्रिय के हैं॥

भाष्य-प्रजा की रक्षा करना, पात्र को दान देना, यज्ञ करना, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, विषयों में आसक्त न होना और शास्त्रोक्त शुभकर्मों में तत्पर रहना, यह संक्षेप से क्षत्रिय के कर्म हैं ॥

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदञ्च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥ ६५ ॥

पदा०-(पशूनां, रक्षणं) पशुओं की रक्षा करना (दानं) दान देना (इज्या) यज्ञ करना(अध्ययनं)अध्ययन करना (वणिक्पथं, च) और व्यापार करना (कुसीदं) व्याज (कृषिमेव, च) तथा खेती करना यह कर्म (वैश्यस्य) वैश्य के हैं ॥

भाष्य-गौ आदि पशुओं का पालन, दान देना, यज्ञ करना, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, व्यापार करना, व्याज लेना, और खेती करना, यह वैश्य के कर्म हैं ॥

एकमेवतु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ ६६ ॥

पदा०-(तु) और (प्रभुः) परमात्मा ने (शूद्रस्य) शूद्र का (एतेषां) इन (वर्णानां) ब्राह्मणादि तीनों वर्णों की (अनसूयया) निन्दारहित (शुश्रूषां) सेवा करना (एकमेव) एक ही (कर्म) कर्म (समादिशत्) कहा है ॥

भाष्य-परमात्मा ने शूद्रों का एक ही मुख्य कर्म कथन किया है कि वह निन्दा, छल, कपटादि दोषों से रहित होकर उक्त तीनों वर्णों की भले प्रकार सेवा करें ॥

ऊर्ध्वं नाभेर्मेध्यतरः पुरुषः परिकीर्त्तितः ।
तस्मान्मेध्यतमन्त्वस्य मुखमुक्तं स्वयम्भुवा ॥६७॥

पदा०-(स्वयम्भुवा) उस परमात्मा ने (पुरुषः) पुरुष को (नाभेः) नाभि से (ऊर्ध्वं) ऊपर (मेध्यतरः) विशेष शुद्ध (परिकीर्त्तितः) कथन किया है (अस्य, तु) और इसका (मुखं) मुख (तस्मात्) उससे भी (मेध्यतमं) परमपवित्र (उक्तं) कहा है ॥

भाष्य-उस परमात्मा ने पुरुष शरीर में नाभि से ऊपर के भाग को अतिशुद्ध और उसमें भी उत्तमाङ्ग होने से मुख को परम पवित्र वर्णन किया है ॥

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद्ब्रह्मणश्चैव धारणात् ।
सर्वस्यैवास्यसर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥ ६८ ॥

पदा०-(उत्तमाङ्गोद्भवात्) उत्तम अङ्ग जो मुख उसके सदृश होने के कारण (ज्यैष्ठ्यात्) सब से उच्च होने (च) और (ब्रह्मणः) वेद के (धारणात्) धारण करने से (अस्य, सर्वस्य) इस सम्पूर्ण (सर्गस्य) जगत् का (धर्मतः) धर्म सम्बन्ध से (ब्राह्मणः, एव) ब्राह्मण ही (प्रभुः) स्वामी है ॥

भाष्य-मुख तुल्य होने के कारण सब वर्णों में उच्च होने और क्षत्रियादि वर्णों के पढ़ाने से ब्राह्मण सब जगत् का धर्मसम्बन्ध से स्वामी है अर्थात् चारो वर्णों का धर्मशिक्षक होने से सबका पूज्य है ॥

तं हि स्वयम्भूः स्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसृजत् ।
हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये ॥ ६९ ॥

पदा०—(स्वयम्भूः) उस परमात्मा ने (तपस्तप्त्वा) ज्ञानमय तप करके (स्वात्, आस्यात्) अपने मुख से (हव्यकव्याभिवाह्याय) अग्निहोत्र द्वारा वायु आदि देवों और चन्द्रकिरणादि पितरों को हव्य कव्य पहुंचाने के निमित्त (अस्य, च, सर्वस्य) तथा इस सब (सर्गस्य) सृष्टि की (गुप्तये) रक्षा के लिये (हि) निश्चय करके (तं) उस ब्राह्मण को (आदितः) सब में मुख्य (असृजत्) उत्पन्न किया है ॥

भाष्य—पूर्व श्लोक में जो यह वर्णन किया है कि ब्राह्मण सब जगत् का प्रभु है, यह श्लोक उसकी पुष्टि में है कि ब्राह्मण को परमात्मा ने यज्ञ द्वारा देवता=दिव्यगुण सम्पन्न और पितरों=पितृवत् सुख देने के कारण चन्द्रादि किरणों को हव्य कव्य पहुंचाने के निमित्त और सकल संसार के पोषण के हेतु ज्ञानमय तप करके सब में उच्च उत्पन्न किया है ॥

भाव यह है कि उक्त दोनों श्लोक "**ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत्**" यजु० ३१ । ११ इस मंत्र का आशय लेकर बनाये हैं, और यहां मंत्र में ब्राह्मण को मुख के सदृश कथन किया है उत्पन्न होना नहीं, इसलिये यहां ब्राह्मणादि वर्णों की ज्ञान द्वारा ही मुख्यता समझनी चाहिये मुख से उत्पत्ति द्वारा नहीं ॥

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ।
कव्यानि चैव पितरः किंभूतमधिकन्ततः ॥ ७० ॥

पदा०—(यस्य) जिस ब्राह्मण के (आस्येन) मुखोच्चारित मन्त्रों के साथ (त्रिदिवौकसः) पृथिवी, द्यौ, अन्तरिक्षस्थ वायु आदि देवता (हव्यानि) हव्य (पितरश्च) और पितर=चन्द्र-

किरणादि (कव्यानि) कव्य (सदा, अश्नन्ति) निरन्तर भक्षण करते हैं (ततोऽधिकम्) उस ब्राह्मण से अधिक (किं, भूतं) अन्य कौन प्राणी है ॥

भाष्य--यज्ञ में उच्चारण किये हुए मन्त्रों से पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ लोक में रहने वाले वायु आदि देवता हव्य तथा चन्द्रकिरणादि पितर कव्यों को निरन्तर भक्षण करते हैं अर्थात् ब्राह्मण द्वारा किये हुये यज्ञ की सुगन्धि को वायु तथा किरणादि पितर ग्रहण करते हैं,इसलिये ब्राह्मण यज्ञों का प्रवर्तक होने से सब में मुख्य है, उक्त श्लोक में देवता शब्द के अर्थ भौतिक देवता के हैं अर्थात् वायु आदि देव सुगन्धित पदार्थों को विस्तृत करते और पितर स्थानी किरणें उस सुगन्धित द्रव्य को ग्रहण करती हैं, यहां देव, पितर शब्द से तात्पर्य्य प्रसिद्ध देव पितरों का है अप्रसिद्ध मृतक पितर तथा योनिविशेष वाले देवों का नहीं ॥

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सुनराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणः स्मृताः ॥ ७१ ॥

पदा०--(भूतानां) सब भूतों में (प्राणिनः) प्राणधारी (श्रेष्ठाः) श्रेष्ठ हैं (प्राणिनां) प्राणधारियों में (बुद्धिजीविनः) बुद्धिपूर्वक जीने वाले (बुद्धिमत्सु) बुद्धिपूर्वक जीवन व्यतीत करने वालों में (नराः) मनुष्य (नरेषु) मनुष्यों में भी (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण (श्रेष्ठाः) श्रेष्ठ (स्मृताः) कथन किये हैं ॥

भाष्य--सब भूतों में प्राणधारी जीव, प्राणियों में बुद्धिजीवी पशु आदि इन सब में मनुष्य और मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं ॥

ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ।
कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥ ७२ ॥

पदा०—(ब्राह्मणेषु) ब्राह्मणों में (विद्वांसः) वेदवित् (च) और (विद्वत्सु) विद्वानों में (कृतबुद्धयः) तत्त्वदर्शी (कृतबुद्धिषु) तत्त्वदर्शियों में (कर्त्तारः) अनुष्ठानी (कर्तृषु) अनुष्ठानियों में (ब्रह्मवेदिनः) ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं ॥

भाष्य—ब्राह्मणों में अधीतशास्त्र=विद्वान्, विद्वानों में तत्त्वदर्शी, तत्त्वदर्शियों में अनुष्ठानी, अनुष्ठानियों में भी ब्रह्मज्ञ=ब्रह्म के जानने वाले श्रेष्ठ हैं ॥

उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्त्तिर्धर्मस्य शाश्वती ।
स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ७३ ॥

पदा०—(विप्रस्य) ब्रह्मज्ञ की (उत्पत्तिरेव) उत्पत्ति ही (धर्मस्य) धर्म की (शाश्वती) अविनाशी (मूर्त्तिः) मूर्त्ति है, (सः) वह ब्रह्मज्ञ (धर्मार्थं) लोक में धर्म करने कराने को (उत्पन्नः) उत्पन्न हुआ है (हि) इसीकारण (ब्रह्मभूयाय) मुक्ति के लिये (कल्पते) कल्पना किया जाता है ॥

भाष्य—ब्रह्मवेत्ता की उत्पत्ति ही धर्म की मूर्त्ति है, क्योंकि वह ब्राह्मण धर्मार्थ उत्पन्न हुआ मोक्ष का अधिकारी है, ब्राह्मणादि तीन वर्णों का नाम द्विज इसलिये है कि "द्वाभ्यां संस्काराभ्यां जायत इति द्विजः"=जो दो संस्कारों से बनता है उसको "द्विज" कहते हैं अर्थात् एक जातकर्म और दूसरे उपनयन संस्कार से पुरुष द्विजन्मा होता है, इसलिये यहां ब्रह्मज्ञाता की उत्पत्ति से तात्पर्य्य दूसरे विद्यासम्बन्धि जन्म से है ॥

ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ॥ ७४ ॥

पदा०-(जायमानः,हि) निश्चयकरके विद्यागुरु के सम्बन्ध से उत्पन्न हुआ (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (पृथिव्यां) पृथिवी पर (अधिजायते) उच्च पदवी को प्राप्त होता है और (धर्मकोषस्य) धर्मकोष के (गुप्तये) रक्षार्थ (सर्वभूतानां) सब प्राणियों का (ईश्वरः) स्वामी है ॥

भाष्य-ब्राह्मण का स्नातक होना ही उत्कृष्टता का कारण है और अपने उपदेशादि द्वारा सब जीवों के धर्मरूपी कोष की रक्षा करने के कारण उसको सब का स्वामी माना गया है ॥

सर्वं स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चिज्जगतीगतम् ।
श्रैष्ठयेनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति ॥ ७५ ॥

पदा०-(यत्किञ्चित) जो कुछ (जगतीगतं) संसार में (स्वं) धन है (इदं, सर्वं) यह सब (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण का ही है, क्योंकि (श्रैष्ठ्येन) ब्राह्मधर्म रूप (अभिजनेन) श्रेष्ठता के कारण (ब्राह्मणः, वै) ब्राह्मण ही (इदं, सर्वं) इस सबको (अर्हति) ग्रहण करने योग्य है ॥

भाष्य-जो कुछ जगत में ऐश्वर्य्य है वह सब ब्राह्मण के अपने धन समान है क्योंकि ब्राह्मोत्पत्तिरूप श्रेष्ठता के कारण ब्राह्मण सम्पूर्ण जगत् के धन को ग्रहण करने योग्य है ॥

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ।
आनृशंस्याद्ब्राह्मणस्य भुञ्जते हीतरे जनाः ॥७६॥

पदा०-(ब्राह्मणः) ब्राह्मण (हि, स्वं) जो अन्य का भी धन (भुङ्क्ते) भक्षण करता (वस्ते) पहिनता (ददाति, च) और दान देता है वह सब (स्वमेव) ब्राह्मण का ही है, क्योंकि (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण की (आनृशंस्यात्) कृपा से (इतरे, जनाः) दूसरे लोग (भुञ्जते) भोगते हैं ॥

भाष्य-जो ब्राह्मण दूसरे का भी अन्न भोजन करे, वस्त्र पहिने अथवा दान देवे वह सब ब्राह्मण का ही है, अन्य क्षत्रियादि जो धन उपभोग में लाते हैं वह सब ब्राह्मण की ही कृपा है, क्योंकि ब्राह्मण धर्मोपदेश द्वारा सब की रक्षा करता है ॥

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च ।
तस्मादस्मिन्सदायुक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः ॥७७॥

पदा०-(तस्मात्) इस कारण (श्रुत्युक्तः) श्रुतियों में कहा हुआ (एव) और (स्मार्त्तः) स्मृतियों में वर्णित (आचारः) आचार (परमः, धर्मः) परम धर्म है (तस्मात्) इसलिये (आत्मवान्, द्विजः) आत्मज्ञानी द्विज (अस्मिन्) इस आचार में (सदा) सदा (नित्यं, युक्तः) नित्य युक्त (स्यात्) रहे ॥

भाष्य-श्रुति=वेद, स्मृति=मन्वादि धर्मशास्त्र में कहा हुआ आचार परमधर्म है, इसलिये अपना कल्याण चाहने वाले द्विजों को उचित है कि वह सदा ही अपने आचार में तत्पर रहे ॥

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत् ॥ ७८ ॥

पदा०-(आचारात्) आचार से (विच्युतः) गिरा हुआ (विप्रः) ब्राह्मण (वेदफलम्) वेद के फल को (न, अश्नुते)

नहीं प्राप्त होता (आचारेण, च) और आचार से (संयुक्तः) संयुक्त ब्राह्मण (सम्पूर्णफलभाक्) सम्पूर्ण फलों का भागी (भवेत्) होता है ॥

भाष्य—आचार से हीन ब्राह्मण वेद के फल को प्राप्त नहीं होता अर्थात् उसका वेदादि पढ़ना व्यर्थ होजाता है और आचार से संयुक्त ब्राह्मण सम्पूर्ण फलों को प्राप्त होता है ॥

एवमाचारतोदृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम् ।
सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम् ॥ ७९ ॥

पदा०—(एवं) इस प्रकार (मुनयः) मुनियों ने (आचारतः) आचार से (धर्मस्य, गतिम्) धर्म की प्राप्ति को (दृष्ट्वा) देखकर (सर्वस्य) सम्पूर्ण (तपसः) तप का (परं) उत्तम (मूलं) कारण (आचारं) आचार को (जगृहुः) माना है ॥

भाष्य—मुनियों ने मनुजी से कथन कीहुई धर्मप्राप्ति को आचारमूलक जानकर सब तपों का मूल आचार को ग्रहण किया और ग्रहण किये हुए आचार वाले वह मुनि ऐश्वर्य्य युक्त परमानन्द को प्राप्त हुए ॥

इति मानवार्य्यभाष्ये
प्रथमोऽध्यायः
समाप्तः

मानुषकाल

एक पलक झमकने का नाम निमेष ॥
१८ निमेष = १ काष्ठा।
३० काष्ठा = १ कला।
३० कला = १ मुहूर्त्त = २ घड़ी।
३० मुहूर्त्त = ६० घड़ी = १ दिन रात।
३० दिन रातों का = १ मास।
१२ मास = १ वर्ष।

पितृकाल

मानुप कृष्णपक्ष १५ दिन = १ दिन पितरों का।
मानुप शुक्लपक्ष १५ दिन = १ रात्रिं पितरों की।
मानुप १ मास के शुक्ल कृष्ण २ पक्ष = रात दिन पितरों के।
मानुप ३० मास = पितृ ३० अहोरात्र = १ मास पितरों के।
मानुप ३६० मास = पितृ १२ मास = १ वर्ष पितरों के।

दैवकाल

६ मानुपमास दाक्षिणायन = १ दैवरात्रि
६ मानुपमास उत्तरायण = १ दैव दिन
१२ मानुपमास = १ वर्ष = १ दैवरातादिन
३० मानुपवर्ष = १ दैवमास
१२ दैवमास = ३६० मानुपवर्ष = १ दैववर्ष

मानुषयुग

४८०० दैववर्ष = १७२८००० मानुपवर्ष = १ सतयुग
३६०० दैववर्ष = १२९६००० मानुपवर्ष = १ त्रेता
२४०० दैववर्ष = ८६४००० मानुपवर्ष = १ द्वापर
१२०० दैववर्ष = ४३२००० मानुपवर्ष = १ कालियुग
१२००० दैववर्ष = ४३२०००० मानुपवर्ष = १ दैवयुग

ब्राह्मकाल

१२००००००० दैववर्ष = ४३२००००००० मानुपवर्ष = १ ब्राह्मदिन और इतनी ही रात्रि ।

२४००००००० दैववर्ष = ८६४००००००० मानुपवर्ष = १ ब्राह्म रात दिन ।

१२००० दैववर्ष = ४३२०००० मानुपवर्ष = १ मानुपचतुर्युगी ।

७१ चतुर्युगी = ८५२००० दैववर्ष = ३०६७२०००० मानुपवर्ष = १ मन्वन्तर ।

१४ मन्वन्तर = १ कल्प वा ब्राह्मदिन ।

२८ मन्वन्तर = १ ब्राह्मरात दिन ।

३० ब्राह्मरात दिन = १ ब्राह्ममास ।

१२ ब्राह्ममास = १ ब्राह्मवर्ष ।

१०० ब्राह्मवर्ष = ३६००० ब्राह्म अहोरात्र = १ परान्तकाल ।

परान्तकाल मुक्त जीवों के पुनः संसार में लौटने का समय है, इस कारण मनुष्यों को काल परिमाण की आवश्यक्ता भी यहां तक ही है ॥

ओ३म्

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सं०—अब मनुभगवान् वर्णाश्रमों के धर्म निरूपण करने के लिये प्रथम धर्म का लक्षण कथन करते हैं :—

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत ॥ १ ॥

पदा०—(अद्वेषरागिभिः) रागद्वेषरहित (विद्वद्भिः) विद्वान् (सद्भिः) सत्पुरुषों द्वारा (नित्यं) सदा (सेवितः) सेवन किया हुआ (हृदयेन) हृदय से (अभ्यनुज्ञातः) विचारपूर्वक जाना हुआ (यो, धर्मः) जो धर्म है (तं) उसको (निबोधत) जानो ॥

भाष्य—हे ऋषि लोगो ! जो राग द्वेषादि द्वन्द्वों से रहित सत्पुरुषों द्वारा सेवन किया गया हो और जिसकी सचाई आत्मानुभव से जानी गई हो वह "धर्म" कहाता है ॥

सं०—अब उक्त धर्म के साधनभूत निष्काम कर्मों का कथन करते हैं :—

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता ।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥२॥

पदा०—(इह) इस मनुष्य जन्म में (कामात्मता) सकाम कर्म करना (न, प्रशस्ता) श्रेष्ठ नहीं (च) और (अकामता)

निष्कामता (एव) भी (न, अस्ति) श्रेष्ठ नहीं (हि) क्योंकि (वेदाधिगमः) वेदविद्या की प्राप्ति (च) और (वैदिककर्मयोगः) वेदोक्त कर्मों का अनुष्ठान भी (काम्यः) सकामकर्म है ॥

भाष्य—सकाम और निष्कामकर्म के यह अर्थ नहीं कि जो इच्छा से किया जाय वह सकाम और दूसरा निष्काम, यदि यह अर्थ होते तो वैदिक कर्मयोग तथा वेदाध्ययन भी सकाम कर्म कहलाते, इसलिये यहां मनुजी ने यह आशय प्रकट किया है कि जो अपने योगक्षेम के लिये किये जायं वह "सकामकर्म" और जो परमार्थ के लिये किये जायं वह "निष्कामकर्म" हैं ॥

सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः ।
व्रतानियमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः ॥ ३ ॥

पदा०—(वै) निश्चयकरके (कामः) इच्छा (सङ्कल्पमूलः) सङ्कल्पमूलक होती है (च) और (यज्ञाः, संकल्पसम्भवाः) यज्ञ भी सङ्कल्प से होते हैं (व्रतानियमधर्माः) व्रत यम धर्म भी (सङ्कल्पजाः) सङ्कल्प से ही होते हैं ॥

भाष्य—यज्ञादि सम्पूर्ण कर्म और व्रत, यम, धर्म यह सब सङ्कल्प से ही होते हैं, सङ्कल्प के विना संसार में कोई कार्य्य नहीं होता ॥

अकामस्य क्रिया काचिद्दृश्यते नेह कर्हिचित् ।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥ ४ ॥

पदा०—(इह) इस जगत में (अकामस्य) इच्छारहित पुरुष की (काचित, क्रिया) कोई भी क्रिया (कर्हिचित) कभी भी (न, दृश्यते) नहीं देखी जाती (हि) क्योंकि मनुष्य (यत्, यत्, किंचित्)

जो २ कुछ (कुरुते) करता है (तत्तत्) वह सब (कामस्य, चेष्टितं) इच्छापूर्वक ही होता है ॥

भाष्य—भाव यह है कि जो कुछ कार्य्य संसार में किया जाता है वह सब इच्छापूर्वक ही होता है विना इच्छा से कुछ नहीं होसकता ॥

तेषु सम्यग्वर्त्तमानो गच्छत्यमरलोकताम् ।
यथा सङ्कल्पितांश्चेह सर्वान्कामान्समश्नुते ॥ ५ ॥

पदा०—(तेषु) उक्त शास्त्रोक्त कर्मों में (सम्यग्वर्त्तमानः) भली भांति लगा हुआ पुरुष (अमरलोकतां) मोक्ष को (गच्छति) प्राप्त होता है (च) और (इह) इस लोक में भी (यथा, सङ्कल्पितान्) जैसे सङ्कल्पों की कामना करता है तदनुसार (सर्वान्, कामान्) सब कामनाओं को (समश्नुते) प्राप्त होता है ॥

भाष्य—शास्त्रोक्त कर्मों का भले प्रकार अनुष्ठान करने वाला पुरुष अमरलोक=मोक्ष को प्राप्त होता है तथा इस मनुष्य जन्म में भी जो २ सङ्कल्प करता है उन सबको प्राप्त होता है अर्थात् धर्मानुकूल आचरण करने वाला पुरुष ही इसलोक तथा परलोक के आनन्द को भोगता है ॥

सं०—अब धर्म विषय में वेदप्रमाण कथन करते हैं :—

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥ ६ ॥

पदा०—(अखिलः) चारो (वेदः) वेद (तद्विदां, स्मृतिशीले) वेद वेत्ताओं की स्मृति (च) और (साधूनां)

साधु पुरुषों का (आचारः) आचार (च) और (आत्मनः) अपनी (तुष्टिः) प्रसन्नता, यह सब (धर्ममूलं) धर्म के मूल हैं ॥

भाष्य—ऋग्, यजु, साम, अथर्व, यह चारो वेद, वेदवेत्ताओं की स्मृति तथा शील और सज्जन पुरुषों का आचरण तथा अपनी आत्मा को सन्तोष देने वाला कार्य, यह सब धर्म के मूल हैं अर्थात् इनके द्वारा धर्म जाना जाता है ॥

सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा ।
श्रुति प्रामाण्यतो विद्वान्स्वधर्मे निविशेत वै ॥ ७ ॥

पदा०—(तु) पुनः (सर्वं, इदं, निखिलं) उक्त सम्पूर्ण धर्म को (ज्ञानचक्षुषा) ज्ञान चक्षु से (समवेक्ष्य) विचार कर (विद्वान्) विद्वान् पुरुष (श्रुतिप्रामाण्यतः) श्रुतिप्रमाण द्वारा (वै) निश्चय करके (स्वधर्मे) अपने धर्म में (निविशेत) प्रविष्ट हो ॥

भाष्य—मनुष्य अपने ज्ञानद्वारा धर्म के स्वरूप को भले प्रकार जानकर श्रुति प्रमाण से अपने धर्म में स्थिर हो ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः ।
इह कीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ ८ ॥

पदा०—(श्रुतिस्मृत्युदितं) वेद और धर्मशास्त्र में कहे हुए (धर्मं) धर्म को (अनुत्तिष्ठन्) अनुष्ठान करता हुआ (मानवः) मनुष्य (हि) निश्चयकरके (इह) इसलोक में (कीर्त्तिं) कीर्त्ति को (अवाप्नोति) लाभ करता (च) और (प्रेत्य) परलोक को प्राप्त होकर (अनुत्तमं) अत्युत्तम (सुखं) सुख पाता है ॥

भाष्य—वेद और स्मृतियों में प्रतिपादित धर्म का अनुष्ठान करता हुआ पुरुष इस लोक में यश को प्राप्त करता और शरीर

त्यागकर सब से उच्च सुख को भोगता है अर्थात् धर्मात्मा पुरुष ही लौकिक तथा पारलौकिक सुख को भोगसकता है अन्य नहीं ॥

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रन्तु वै स्मृतिः ।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥९॥

पदा०-(तु) निश्चय करके (श्रुतिः) श्रुति(वेदः,विज्ञेयः) वेद को जानना चाहिये (तु) और (वै) निश्चयपूर्वक (धर्मशास्त्रं) धर्मशास्त्र को (स्मृतिः) स्मृति जानना चाहिये (ते) उक्त दोनों (सर्वार्थेषु) सब धर्मसम्बन्धि अर्थों में (अमीमांस्ये) समीक्षा करने योग्य नहीं (हि) क्योंकि (ताभ्यां) इन दोनों से ही (धर्मः) धर्म (निर्बभौ) प्रकाशित होता है ॥

भाष्य-श्रुति को वेद और मन्वादि धर्मशास्त्र को स्मृति जानना चाहिये, यह दोनों सब विषयों में निर्विवाद होने से विरुद्ध तर्क करने योग्य नहीं, क्योंकि इन दोनों से ही धर्म्म जाना जाता है, आशय यह है कि वेद स्वतःप्रमाण और स्मृति आप्त पुरुषों का कथन होने के कारण दोनों समीक्षा करने योग्य नहीं इसलिये उक्त दोनों को किसी तर्क से छिन्न भिन्न नहीं करना चाहिये ॥

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्य्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥१०॥

पदा०-(यः) जो (द्विजः) द्विज (हेतुशास्त्राश्रयात्) तर्क शास्त्र के आश्रय से (ते) उक्त दोनों (मूले) धर्म के मूल श्रुति स्मृति का (अवमन्येत) निरादर करता है (सः) वह (वेदनिन्दकः) वेदों का निन्दक (नास्तिकः) नास्तिक

है, इसलिये उसको (साधुभिः) वैदिक लोगों के संप्रदाय से (वहिष्कार्य्यः) वाहर करदेना चाहिये ॥

भाष्य—जो द्विज धर्म के हेतु वेद तथा स्मृति का कुतर्कादिकों से तिरस्कार करता है वह वेदनिन्दक नास्तिक होने से धर्मात्माओं की पङ्क्ति से वाहर कर देने योग्य है. आशय यह है कि जो मनुष्य कल्पित तर्कों से वेद का अपमान करता है, उससे वैदिकमर्यादा दूषित होती है, क्योंकि वेद ईश्वरीयज्ञान होने से सर्वथा पुरुषबुद्धिगम्य नहीं ॥

सं०—अब धर्म का अन्य लक्षण कथन करते हैं :—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ ११ ॥

पदा०—(वेदः) वेद (स्मृतिः) धर्मशास्त्र (सदाचारः) सनातन ऋषि मुनियों का आचार (च) और (स्वस्य) अपने (प्रियमात्मनः) आत्मा को प्रिय (एतत्) यह (चतुर्विधं) चार प्रकार से (धर्म्मस्य) धर्म का (साक्षात्) स्पष्ट (लक्षणं) लक्षण (प्राहुः) कहा है ॥

भाष्य—आशय यह है कि धर्म जानने के लिये ये चार प्रकार हैं कि जो श्रुत्यनुकूल, स्मृत्यनुकूल, सदाचारानुकूल तथा जो अपने आत्मा को प्रिय हो वह धर्म है, और साक्षात् लक्षण इस अभिप्राय से कहा है कि यह धर्म का मुख्य लक्षण साक्षात्कार के समान है ॥

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ १२ ॥

पदा०-(अर्थकामेषु)जो पुरुष धन और भोगों में (असक्तानां) लम्पट नहीं उन्हीं के लिये (धर्मज्ञानं) धर्मज्ञान (विधीयते) विधान किया है और (धर्मं) धर्म की (जिज्ञासमानानां) जिज्ञासा करने वालों के लिये (प्रमाणं) प्रमाण (परमं) सब से बड़ा (श्रुतिः) वेद है ॥

भाष्य-जो पुरुष धन अथवा कामनाओं में लम्पट हैं उनको धर्म का अधिकार नहीं और धर्मजिज्ञासु पुरुषों के लिये श्रुति स्मृति में श्रुति परम प्रमाण है ॥

भाव यह है कि जो सांसारिक व्यसनों में फसे हुए हैं उनको धर्म का अधिकार नहीं और धर्म की कामना वाले पुरुषों के लिये श्रुति परमप्रमाण है, जैसाकि जाबालि ऋषि ने भी कहा है कि :-

श्रुति स्मृत्योर्विरोधे श्रुतिरेव गरीयसी ।
अविरोधे सदा कार्य्यं स्मार्तं वैदिकवत्सताम् ॥

अर्थ-श्रुति तथा स्मृति के विरोध में श्रुति बलवती होती है अर्थात् श्रुति को ही प्रामाणिक मानना चाहिये और जहां विरोध नहीं वहां स्मृति में कथन किये हुए कर्मों को भी सत्पुरुष वैदिक कर्मों के समान ही करें ॥

श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ ।
उभावपि हि तौ धर्म्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः॥१३॥

पदा०-(तु) और (यत्र) जहां (श्रुतिद्वैधं, स्यात्) श्रुति दो प्रकार की हों (तत्र) वहां (उभौ, धर्मौ) दोनों ही धर्मों का (स्मृतौ) विधान है (हि) क्योंकि (तौ, उभौ, अपि) वह दोनों ही

(धर्म्मौ) धर्म (मनीषिभिः) महर्षियों ने (सम्यगुक्तौ) कर्त्तव्य कथन किये हैं ॥

भाष्य—श्रुतियों के जहां दो प्रकार हों अर्थात् भिन्न २ अर्थ का प्रतिपादन करें, वहां वह दोनों ही अनुष्ठानार्ह हैं ऐसा महर्षियों का कथन है ॥

सं०—अब उक्त अर्थ में उदाहरण कथन करते हैं :—

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ।
सर्वथा वर्त्तते यज्ञ इतीयं वैदिकीश्रुतिः ॥ १४ ॥

पदा०—(उदिते) सूर्य्योदय होने पर (च) और (अनुदिते) सूर्योदय के पूर्व (तथा) तथा (समयाध्युषिते) रात्रि दिन की सन्धि में (सर्वथा) सब कालों में (यज्ञः) यज्ञ (वर्त्तते) होता है (इयं) यह (वैदिकीश्रुतिः, इति) वैदिकविधि है ॥

भाष्य—सूर्योदय होने पर, सूर्योदय से पूर्व तथा दिन, रात की संधि में अथवा सब कालों में यज्ञ करना चाहिये, यह वैदिक विधि है अर्थात् "उदिते जुहुयात्" = सूर्योदय होने पर हवन करे "अनुदितेजुहुयात्" = सूर्योदय से पूर्व हवन करे, और "समयाध्युपिते जुहुयात्" = दोनो कालों की सन्धि में हवन करे, इस अवस्था में वैदिकविधियें भिन्नार्थाभिधायी होने पर भी परस्पर विरोध नहीं किन्तु उक्त विधियों का यह तात्पर्य्य है कि पुरुष सब कालों में होम कर सक्ता है, विरोध वह कहलाता है जो एक वाक्य दूसरे वाक्य का खण्डनकरता हो और यहां एक दूसरे का खण्डन नहीं करता किन्तु भिन्न २ प्रकार दर्शाता है, और

"वैदिकीश्रुतिः" के जो कई एक लोग यह अर्थ करते हैं कि उक्त वाक्य संहिता के न होने पर भी जो इनको वैदिक श्रुति कहा है इससे ब्राह्मण ग्रन्थों का भी वेद होना पाया जाता है, यह ठीक नहीं, क्योंकि वैदिक शब्द वेद सम्बन्धी अर्थों में भी आता है जैसा कि "वैदिकोऽयंसमाजः" = यह वैदिक समाज है, इसी प्रकार यहां "वैदिकीश्रुतिः" वेद सम्बन्धी अर्थों के अभिप्राय से और श्रुति शब्द यहां उपचार से कथन किया गया है ॥

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितोविधिः ।
तस्यशास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन्ज्ञेयो नान्यस्यकस्यचित्॥१५॥

पदा०—(निषेकादिश्मशानान्तः) गर्भाधान से अन्त्येष्टि संस्कार पर्य्यन्त (यस्य) जिस कर्म की (विधिः) विधि (मन्त्रैरुदितः) मन्त्रों द्वारा कही है (तस्य) उसी का (अधिकारः) अधिकार (अस्मिन्, शास्त्रे) इस शास्त्र में (ज्ञेयः) जानना चाहिये (अन्यस्य, कस्यचित्, न) और किसी का नहीं ॥

भाष्य—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन धर्मों को जो पुरुष प्राप्त है उसी का इस शास्त्र में अधिकार है अन्य का नहीं, क्योंकि इस शास्त्र में गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि पर्य्यन्त उक्त धर्मियों के संस्कार कथन किये गये हैं अन्य प्राकृत जनों के नहीं, आशय यह है कि जो पुरुष द्विजन्मा कहलाता है उसी का इसमें अधिकार है शूद्र का नहीं "शूद्र" शब्द से यहां किसी जातिविशेष का ग्रहण नहीं किन्तु प्राकृत पुरुषों का ग्रहण है, यदि द्विजेतर जाति को यहां शूद्र जाति समझा गया होता तो आगे जाकर संकर जातियों

को इस शास्त्र का अधिकार न वर्णन किया जाता अथवा यह श्लोक " अर्थकामेष्वसक्तानां " के समान अधिकारानधिकार परक है वास्तविक किसी वर्ण वा जातिविशेष को अनधिकारी नहीं ठहराता ॥

सं०—अब यज्ञीय देशों का निरूपण करते हैं :—

सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते ॥ १६ ॥

पदा०—(देवनद्योः) देवनदी (सरस्वतीदृषद्वत्योः)सरस्वती और अटक के (अन्तरं) मध्य में जो देश है (तं) उस (देवनिर्मितं) दिव्य पुरुषों द्वारा वसाये हुए (देशं) देश को (ब्रह्मावर्त्तं) ब्रह्मावर्त्त (प्रचक्षते) कहते हैं ॥

भाष्य—सरस्वती और दृषद्वती=अटक इन देवनदियों के वीच में देवताओं से वसाया हुआ जो देश है उसको ब्रह्मावर्त्त कहते हैं, देवनिर्मित से तात्पर्य्य यहां वेदज्ञ पुरुषों से वसाये हुए देश का है अर्थात् उक्त देश में उस समय वेदवेत्ता अधिक रहते थे इसलिये " देवनिर्मित " कहा है ॥

तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्य्यक्रमागतः ।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥ १७ ॥

पदा०—(तस्मिन्) उस (देशे) देश में (वर्णानां) वर्णों और (सान्तरालानां) वर्णसंकरों का (यः) जो (पारम्पर्य्य-क्रमागतः) परंपरा सम्बन्ध से क्रमपूर्वक आया हुआ (आचारः) आचार है (स, सदाचारः) वह सदाचार (उच्यते) कहा जाता है ॥

भाष्य—उस पूर्वोक्त ब्रह्मावर्त्त में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारो वर्णों और वर्णसंकरों का परम्परा सम्बन्ध से क्रम पूर्वक प्राप्त जो आचार है वह सदाचार = सनातन आचार सबके अनुष्ठान करने योग्य वर्णन किया है ॥

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः ।
एष ब्रह्मर्षि देशो वै ब्रह्मावर्त्तादनन्तरः ॥ १८ ॥

पदा०—(कुरुक्षेत्रं) कुरुक्षेत्र (मत्स्याश्च) मत्स्य (पञ्चाला) कान्यकुब्ज (च) और (शूरसेनकाः) शूरसेनक (एषः) यह (वै) निश्चयकरके (ब्रह्मर्षिदेशः) ब्रह्मर्षिदेश (ब्रह्मावर्त्तात्) ब्रह्मावर्त्त के साथ (अनन्तरः) मिले हुए हैं ॥

भाष्य—कुरुक्षेत्र, मत्स्य = कच्छदेश, कान्यकुब्ज, शूरसेनक = गुजरात काठियावाड़ का प्रान्त यह देश ब्रह्मर्षियों के वास स्थान हैं जो ब्रह्मावर्त्त के समीप हैं, तात्पर्य्य यह है कि सब से उत्तम देश वह है जिसको " ब्रह्मावर्त्त " कहा गया है, क्योंकि वह देश हिमालय के नीचे सरस्वती तथा अटक के बीच में हैं और इसके साथ २ मिले हुए कुरुक्षेत्रादि देश ब्रह्मर्षिदेश कहलाते हैं, जो लोग " दृषद्वती " के अर्थ गङ्गा करते हैं उनके मत में तो " कुरुक्षेत्र " ब्रह्मावर्त्त के भीतर आजाता है फिर कुरुक्षेत्र को भिन्न क्यों गिना, इससे स्पष्ट पाया जाता है कि " दृषद्वती " अर्थ गङ्गा के नहीं किन्तु अटक के हैं ॥

और युक्ति यह है कि यदि " दृषद्वती " के अर्थ गङ्गा के होते तो जिस प्रकार कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पञ्चाल, और सूरसेनक, इन देशों को ब्रह्मावर्त्त के साथ गिना है इसी

प्रकार पञ्जाव को भी गिनना चाहिये था, हमारे विचार में पंजाव को इसलिये नहीं गिना कि पंजाव दृषद्वती के भीतर आजाने के कारण " ब्रह्मावर्त्त " में आचुका है ॥

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वंस्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ १९ ॥

पदा०—(एतद्देशप्रसूतस्य) इस ब्रह्मावर्त्त में उत्पन्न हुए (अग्रजन्मनः, सकाशात्) ब्राह्मणों से (पृथिव्यां) पृथिवी के (सर्वमानवाः) सब मानव (स्वं, स्वं, चरित्रं) अपने २ चरित्रों को (शिक्षेरन्) सीखें ॥

भाष्य—इस ब्रह्मावर्त्त तथा ब्रह्मर्षि देशों के ब्रह्मवेत्ताओं से दुनियां भर के सब मानव अपनी २ विद्याओं को आकर सीखें, मनुजी ने जिस समय यह आज्ञा दी है ज्ञात होता है कि उस समय समस्त विद्याओं के जानने वाले ब्राह्मणों से यह देश सुशोभित था ॥

सं०—अब मध्य देश का वर्णन करते हैं :—

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्येयत्प्राग्विनशनादपि ।
प्रत्यगेवप्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्त्तितः ॥ २० ॥

पदा०—(हिमवद्विन्ध्ययोः) हिमालय और विन्ध्याचल के (मध्ये) बीच में (यत्) जो (प्राग्विनशनात्, अपि) विनशन= सरस्वती नदी से पूर्व (प्रत्यगेव, प्रयागाच्च) और प्रयाग से पश्चिम है वह (मध्यदेशः) मध्यदेश (प्रकीर्त्तितः) कहाता है ॥

भाष्य—हिमालय और विन्ध्याचल के बीच विनशन= कुरुक्षेत्र प्रान्त में सरस्वती से पूर्व तथा प्रयाग से पश्चिम जो भाग है वह " मध्यदेश " कहाता है ॥

सं०—अब आर्य्यावर्त्त देश का वर्णन करते हैं :—

**आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥ २१ ॥**

पदा०—(पूर्वात्)पूर्व के(आसमुद्रात्)समुद्र से लेकर(आसमुद्रात्तु, पश्चिमात्)पश्चिम के समुद्र तक (तु) और (तयोः) हिमालय तथा विन्ध्याचल (गिर्योः) पर्वतों के (अन्तरं) मध्य में जो देश है (वै) निश्चयकरके (तं, एव) उसको ही (बुधाः) बुद्धिमान्(आर्यावर्त्त) आर्यावर्त्त (विदुः) कहते हैं ॥

भाष्य—पूर्व के समुद्र से तात्पर्य्य यहां हिन्दमहासागर और पश्चिम के समुद्र से अरब के समुद्र का तात्पर्य्य है, इन दोनों समुद्रों के वीच तथा हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य में जो देश है उसका नाम "आर्यावर्त्त" है ॥

सं०—अब यज्ञ करने योग्य देश का वर्णन करते हैं :—

**कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः॥ २२ ॥**

पदा०—(यत्र) जिस देश में (कृष्णसारः) काले (मृगः) मृग (स्वभावतः) स्वभाव से (चरति) विचरते हैं (सः) वह (देशः) देश (यज्ञियः) यज्ञ करने योग्य (ज्ञेयः) जानना चाहिये (अतः, परः, तु) और इससे परे अन्य देश (म्लेच्छदेशः) म्लेच्छदेश हैं ॥

भाष्य--जिस देश में काले रङ्ग के हरिण स्वतन्त्रता से विचरें वह देश यज्ञ करने योग्य जानना चाहिये, क्योंकि काला हरिण अहिंसक तथा पवित्र देश में रहता है, आजकल भी देखने में आता है कि उपरोक्त ब्रह्मावर्त्त तथा ब्रह्मर्षि देश के समीपस्थ देशों में काले हरिण प्रायः निवास करते हैं, अतः इसी देश को सब से उच्च तथा यज्ञ करने योग्य माना है और इन ब्रह्मावर्त्त, आर्यावर्त्त तथा ब्रह्मर्षि देशों से बाह्य के देश स्मार्त्त वैदिकधर्म से रहित होने के कारण म्लेच्छ देश कहाते हैं, यद्यपि धर्मानुष्ठान मनुष्य के अधीन है देश के अधीन नहीं तथापि जिस देश में धर्मात्मा पुरुष अधिक रहते हैं वहां धर्मानुष्ठान में बाधा नहीं होती ॥

एषा धर्मस्य वो योनिः समासेन प्रकीर्त्तिता।
संभवश्चास्य सर्वस्य वर्णधर्मान्निबोधत ॥ २३ ॥

पदा०--(एषा) यह (धर्मस्य) धर्म के (योनिः) ज्ञान का कारण (च) और (अस्य, सर्वस्य) इस सब जगत् की (संभवः) उत्पत्ति (समासेन) संक्षेप से (वः) तुम्हारे लिये (प्रकीर्त्तिता) कही, अब (वर्णधर्मान्) ब्राह्मणादि चारो वर्णों के धर्मों को (निबोधत) जानो ॥

भाष्य--हे महर्षियो ! आप और सब प्रजा के निमित्त यह धर्म के ज्ञान का कारण तथा इस सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति संक्षेप से वर्णन करके अब आगे ब्राह्मणादि वर्णों के धर्म कथन करते हैं :--

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥ २४ ॥

पदा०-(द्विजन्मनां) ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों को (प्रेत्य) परलोक (च) और (इह) इसलोक में (पावनः) पवित्र करने वाले (निषेकादिः) गर्भाधानादि (शरीरसंस्कारः) शरीर के संस्कार (वैदिकैः) वेदोक्त (पुण्यः) पवित्र (कर्मभिः) कर्मों द्वारा (कार्यः) करने चाहियें॥

भाष्य-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन द्विजाति तीनों वर्णों को इस लोक तथा परलोक में पवित्र करने वाले गर्भाधान आदि षोडश संस्कार वैदिक विधि द्वारा करने चाहियें॥

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनैः।
बैजिकं गार्भिकञ्चैनो द्विजानामपमृज्यते॥२५॥

पदा०-(द्विजानां) द्विजातियों के (बैजिकं) बीज सम्बन्धि (च) तथा (गार्भिकं) गर्भसम्बन्धि (एनः) पाप (गार्भैः) गर्भाधान (जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनैः) जातकर्म, चूडाकर्म और मौञ्जीबन्धन आदि के (होमैः) होमों से (अपमृज्यते) दूर होते हैं॥

भाष्य-गर्भाधान, जातकर्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत और वेदारम्भ आदि संस्कारों के होम द्वारा द्विजातियों के गर्भ तथा बीज विषयक दोषों की शुद्धि होती है॥

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥२६॥

पदा०-(स्वाध्यायेन) वेदाध्ययन से (व्रतैः) व्रतों से (होमैः) प्रातःसायंकाल के अग्निहोत्र से (त्रैविद्येन) कर्म, उपासना, ज्ञानरूप विद्या से (इज्यया) इष्टियों से (सुतैः) धर्मपूर्वक पुत्रोत्पत्ति से (च) तथा

(महायज्ञैः) पंचमहायज्ञों से (च) और (यज्ञैः) ज्योतिष्टोमादि यज्ञों से (इयं, तनुः) यह शरीर (ब्राह्मी) ब्राह्मण का (क्रियते) बनता है ॥

भाष्य—उक्त यज्ञों तथा ब्रह्मचर्य्यादि व्रतों से ब्राह्मण शरीर बनता है अन्यथा नहीं, इससे स्पष्ट सिद्ध है कि मनुजी ने ब्राह्मणत्व को धर्म माना है जाति नहीं अर्थात् जिस पुरुष में वेदाध्ययनादि धर्म पाये जायं वही ब्राह्मण होता है अन्य नहीं ॥

प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसोजातकर्मविधीयते ।
मन्त्रवत्प्राशनंचास्यहिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥ २७ ॥

पदा०—(नाभिवर्धनात्) नाभिछेदन से (प्राक्) पहिले (पुंसः) मनुष्य का (जातकर्म, विधीयते) जातकर्म संस्कार कथन किया है (अस्य) इस पुरुष को (मन्त्रवत्) मन्त्रों द्वारा (हिरण्यमधुसर्पिषां) सुवर्ण की शलाका से शहद (च) और घृत मिलाकर (प्राशनं) चटावे ॥

भाष्य—नाभिछेदन से प्रथम पुरुष का जातकर्मसंस्कार करे जिसमें शहद, घृत मिलाकर सोने की शलाका से मन्त्रों द्वारा प्राशन करावे=चटावे, यहां शहद तथा घृत चटाने का विधान इसलिये किया है कि यह दोनों पदार्थ पौष्टिक तथा बुद्धिवर्धक होने से इनका चटाना आवश्यक है ॥

नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वास्य कारयेत् ।
पुण्येतिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥ २८ ॥

पदा०—(अस्य) इस बालक का (नामधेयं) नामकरण संस्कार (दशम्यां, वा, द्वादश्यां) उत्पत्ति दिन से दशवें वा

बाहरवें दिन (कारयेत्) करावे (वा) अथवा (पुण्ये,गुणान्विते) पवित्र गुणयुक्त (मुहूर्त्ते, नक्षत्रे, तिथौ) मुहूर्त्त, नक्षत्र तथा तिथि में करे॥

भाष्य–बालक की उत्पत्ति तिथिं से दशवें वा बारहवें अथवा जिसदिन शुद्ध तिथि नक्षत्र,मुहूर्त्त हों उस दिन प्रसन्नतापूर्वक बालक का नामकरण संस्कार करावें॥

इस श्लोक के भाव को महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में इस प्रकार दर्शाया है कि:–

"दशम्युत्तरकालं पुत्रस्य जातस्य नाम विदध्याद्-घोषवदाद्यन्तरन्तस्थमवृद्धंत्रिपुरुषानूकमनरिप्रतिष्ठितं-तद्धि प्रतिष्ठिततमं भवति द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा नाम-कृतंकुर्यान्न तद्धितमिति"॥

अर्थ–पुत्र के जन्म दिन से ११ ग्यारहवें दिन नामकरण संस्कार करे, घोषवत्=वर्गों के तीसरे, चौथे, पांचवे, अन्तस्थ=य, र, ल, व, और ह इन अक्षरों में से पिता पितामह प्रपितामह के नामों के अक्षरों के अनुसार वृद्ध संज्ञक तथा तद्धित को छोड़कर कृदन्त के अनुकूल दो अक्षर अथवा चार अक्षर का नाम रक्खे॥

मङ्गल्यं ब्राह्मणस्यस्यात्क्षत्रियस्यबलान्वितम्।
वैश्यस्यधनसंयुक्तं शूद्रस्यतुजुगुप्सितम्॥ ३१॥

पदा०–(ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण का नाम (मंगल्यं) मंगलयुक्त (क्षत्रियस्य) क्षत्रिय का (बलान्वितं) बलसंयुक्त (वैश्यस्य) वैश्य का (धनसंयुक्तं) धन सहित (तु) और (शूद्रस्य) शूद्र का (जुगुप्सितं) सेवायुक्त (स्यात्) हो॥

भाष्य—ब्राह्मण का नाम शान्तिप्रद, क्षत्रिय का रक्षासूचक, वैश्य का धनसूचक और शूद्र का सेवाजनक होना चाहिये ताकि नाम लेने से उस २ वर्ण का स्मरण होजाय ॥

शर्मवद्ब्राह्मणस्यस्याद्राज्ञोरक्षासमन्वितम् ।
वैश्यस्यपुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्यप्रेष्यसंयुतम् ॥ ३० ॥

पदा०—(ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण का नाम (शर्मवत्) शर्मसहित (राज्ञः) क्षत्रिय का (रक्षासमन्वितं) रक्षासहित (वैश्यस्य) वैश्य का (पुष्टिसंयुक्तं) पोषण युक्त (शूद्रस्य) शूद्र का (प्रेष्यसंयुतं) दास्ययुक्त (स्यात्) होना चाहिये ॥

भाष्य—ब्राह्मण का शर्मा, क्षत्रिय का वर्मा, वैश्य का गुप्त और शूद्र का नाम दास से युक्त करके रक्खे ॥

स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरंविस्पष्टार्थमनोहरम् ।
मङ्गल्यंदीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत् ॥ ३१ ॥

पदा०—(स्त्रीणां) स्त्रियों के नाम (सुखोद्यं) सुखपूर्वक उच्चारण के योग्य (अक्रूरं) सुगम (विस्पष्टार्थं) प्रकट अर्थ वाले (मनोहरं) मनोहर (मङ्गल्यं) कल्याणकर (दीर्घवर्णान्तं) अन्त में दीर्घ अक्षर युक्त (आशीर्वादाभिधानवत्)आशीर्वादात्मक रक्खे ॥

भाष्य—स्त्रियों के नाम सुगम, स्पष्ट, सुख से उच्चारण होने योग्य, मनोहर और कल्याण तथा आशीर्वाद को स्मरण कराने वाले, अन्त में दीर्घ स्वर संयुक्त होने चाहिये ॥

चतुर्थेमासिकर्त्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणंगृहात् ।
षष्ठेऽन्नप्राशनंमासियद्वेष्टंमङ्गलंकुले ॥ ३२ ॥

पदा०-(चतुर्थे, मासि) चौथे महीने में (गृहात्) जन्म गृह से (शिशोः) बालक को (निष्क्रमणं) बाहर निकाले और (षष्ठे, मासि) छठे महीने में (अन्नप्राशनं) अन्नप्राशन संस्कार (कर्त्तव्यं) करना चाहिये (यद्वा) अथवा जब (कुले) कुटुम्ब में (मङ्गलं, इष्टं) इष्ट शुभ कार्य हो तब करे ॥

भाष्य--चतुर्थ मास में बालक का निष्क्रमणसंस्कार और छठे मास अन्नप्राशनसंस्कार करे अथवा घर में जब कोई उत्सव हो तब करे ॥

चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात् ॥३३॥

पदा०-(सर्वेषामेव) सब (द्विजातीनां) द्विजातियों का (चूडाकर्म) मुण्डनसंस्कार (प्रथमे) पहले (वा) अथवा (तृतीये) तीसरे (अब्दे) वर्ष में (श्रुतिचोदनात्) वैदिक मन्त्रों द्वारा (धर्मतः) धर्मपूर्वक (कर्त्तव्यं) करना चाहिये ॥

भाष्य--ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन द्विजातियों का मुण्डनसंस्कार धर्मपूर्वक जन्म दिन से एकवर्ष अथवा तीन वर्षों के अनन्तर वैदिक मन्त्रों द्वारा करे ॥

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥ ३४ ॥

पदा०-(ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण का (उपनायनं) यज्ञोपवीत संस्कार (गर्भाष्टमे. अब्दे) गर्भ से आठवें वर्ष में (राज्ञः) क्षत्रिय का (गर्भात्, एकादशे) गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में (तु) और

(गर्भात्,द्वादशे) गर्भ से बारहवें वर्ष में (विशः) वैश्य का यज्ञोपवीत करे ॥

ब्रह्मवर्चसकामस्यकार्यंविप्रस्य पञ्चमे ।
राज्ञोबलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥ ३५ ॥

पदा०-(ब्रह्मवर्चसकामस्य) ब्रह्मतेज की इच्छा वाले (विप्रस्य) ब्राह्मण का (पञ्चमे) पांचवें वर्ष (बलार्थिनः) बल को चाहने वाले (राज्ञः) क्षत्रिय का (षष्ठे) छटे वर्ष (इह) इस जगत् में (अर्थिनः) धन की इच्छा वाले (वैश्यस्य) वैश्य का (अष्टमे) आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार (कार्यं) करना चाहिये ॥

भाष्य-शीघ्र वेदाध्ययन की योग्यता रखने वाले ब्राह्मण का गर्भ तथा जन्म दिवस से पांचवें, बलार्थी क्षत्रिय का छटे तथा धनप्राप्ति की योग्यता रखने वाले वैश्य का आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार करें, इतनी छोटी अवस्था में यज्ञोपवीत संस्कार का विधान उन बालकों के लिये है जिनके चिन्हों से ऐसा विदित हो कि यह ब्रह्मचर्य आदि व्रतों में स्थिर होकर शीघ्र ही तेजस्वी बनेंगे ॥

सं०-अब यज्ञोपवीत संस्कार की अवधि कथन करते हैं:-

आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्रीनातिवर्त्तते ।
आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतोर्विशः ॥ ३६ ॥

पदा०-(ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण का (आषोडशात्) सोलह वर्ष पर्यन्त (क्षत्रबन्धोः) क्षत्रिय का (आद्वाविंशात्) बाईस

वर्ष तक (विशः) वैश्य का (आचतुर्विंशतेः) चौवीस वर्ष तक (सावित्री) गायत्री तथा यज्ञोपवीत का अधिकार (न, अतिवर्त्तते) व्यतीत नहीं होता अर्थात् इस अवस्था तक यज्ञोपवीत का अधिकार वना रहता है ॥

अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथा कालमसंस्कृताः ।
सावित्रीपतितात्रात्याभवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥ ३७ ॥

पदा०–(अतः, ऊर्ध्वं) पूर्वोक्त अवधि से ऊपर (यथाकालं) नियत काल तक (असंस्कृताः) संस्कार न किये हुए (सावित्रीपतिता) गायत्री से पतित हुए (आर्यविगार्हिताः) श्रेष्ठ पुरुषों में निन्दित (एते, त्रयः, अपि) यह तीनों द्विज (व्रात्याः) व्रात्य संज्ञावाले (भवन्ति) होते हैं ॥

भाष्य–पूर्वोक्त नियत काल में जिन ब्राह्मण, क्षत्रि, वैश्य द्विजातियों ने यज्ञोपवीत धारण नहीं किया वह सत्पुरुषों में निन्दित तथा व्रात्य=संस्कार हीन गिने जाते हैं ॥

नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित् ।
ब्राह्मान्यौनांश्च सम्बन्धान्नाचरेद्ब्राह्मणः सह ॥ ३८ ॥

पदा०–(हि) निश्चय करके (विधिवत्) विधिपूर्वक (एतैः, अपूतैः) इन अपवित्र उपरोक्त व्रात्यों के (सह) साथ (कर्हिचित्, आपदि, अपि) किसी आपत्ति काल में भी (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (ब्राह्मान्) पठन पाठन (यौनान्) विवाह आदि के (सम्बन्धान्) सम्बन्धों को (न, आचरेत्) न करे ॥

भाष्य–ब्राह्मण को योग्य है कि जिन व्रात्यों का धर्म-

शास्त्रानुसार विधिपूर्वक प्रायश्चित्त आदि से संस्कार नहीं हुआ उनके साथ आपत्तिकाल में भी पठन पाठन तथा विवाह आदि का सम्बन्ध न करे ॥

मौञ्जीत्रिवृत्समाश्लक्ष्णाकार्याविप्रस्यमेखला ।
क्षत्रियस्यतुमौर्वीज्यावैश्यस्यशणतान्तवी ॥ ३९ ॥

पदा०--(विप्रस्य) ब्राह्मण की (मेखला) मेखला (त्रिवृत्समा, श्लक्ष्णा) तिगुनी तथा चिकनी (मौञ्जी) मूंज की (तु) और (क्षत्रिस्य) क्षत्रिय की (मौर्वी, ज्या) मौर्वीतृण की धनुष की डोरी के सदृश (वैश्यस्य) वैश्य की (शणतान्तवी) सन के तन्तुओं की (कार्या) बनानी चाहिये ॥

भाष्य--ब्राह्मण की मेखला=तगड़ी तिलड़ी चिकनी सुखस्पर्श वाली मूंज की, क्षत्रिय की मूर्वातृण की धनुष की प्रत्यंचा के सदृश और वैश्य की सन के तंतुओं की बनानी चाहिये, इन मेखलाओं के धारण करने से पुरुष का ब्रह्मचर्य्यव्रत स्थिर रहने के कारण वेदाध्ययन में कोई बाधा नहीं होती ॥

मुञ्जालाभेतु कर्त्तव्याः कुशाश्मन्तकवल्वजैः ॥
त्रिवृताग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा ॥ ४० ॥

पदा०--(तु) और (मुञ्जालाभे) मूंज के न मिलने पर (कुशाश्मन्तकवल्वजैः) ब्राह्मणादि तीनों वर्णों को क्रम से कुशा, अश्मन्तक और बल्वज की (त्रिवृता) तिगुनी (एकेन, त्रिभिः, पञ्चभिः, वा) एक, तीन वा पांच (ग्रन्थिना) गांठों से युक्त मेखला (कर्त्तव्याः) बनानी चाहिये ॥

भाष्य–मूंज के न मिलने पर कुश, अश्मन्तक, बल्वज तृणों की मेखला क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों द्विजों के ब्रह्मचारियों को एक, तीन अथवा पांच गांठों से युक्त करके बनावें ॥

कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतंत्रिवृत् ।
शणसूत्रमयंराज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम् ॥ ४१ ॥

पदा०–(विप्रस्य) ब्राह्मण का (उपवीतं) यज्ञोपवीत (ऊर्ध्ववृतं) ऊपर की ओर वटा हुआ (त्रिवृत) तिगुना (कार्पासं) कपास का (राज्ञः) क्षत्रिय का (शणसूत्रमयं) सन का (वैश्यस्य) वैश्य का (आविकसौत्रिकं) भेड़ की ऊन का (स्यात) हो ॥

सं०–अब ब्रह्मचारी के लिये दण्डों का विधान करते हैं :–

ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ ।
पैलावौदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्तिधर्मतः ॥ ४२ ॥

पदा०–(ब्राह्मणः) ब्राह्मण (वैल्वपालाशौ) वेल वा ढाक (क्षत्रियः) क्षत्रिय (वाटखादिरौ) वड़ वा खैर. (वैश्यः) वैश्य (पैलवौदुम्बरौ) पीपल वा गूलर के (दण्डान्) दण्डों को (धर्मतः) धर्मानुसार (अर्हन्ति) धारण करें ॥

केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः प्रमाणतः ।
ललाटसम्मितो राज्ञः स्यात्तु नासान्तिको विशः॥४३॥

पदा०–(ब्राह्मणस्य, दण्डः) ब्राह्मण का दण्ड (प्रमाणतः) प्रमाण से (केशान्तिकः) केश पर्य्यन्त (राज्ञः) क्षत्रिय का

(ललाटसम्मितः) मस्तकपर्यन्त (तु) और (विशः) वैश्य का (नासान्तिकः) नासिका पर्यन्त (कार्यः, स्यात्) बनाना चाहिये ॥

ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः ।
अनुद्वेगकरा न्नृणां सत्वचो नाग्निदूषिताः ॥४४॥

पदा०—(ते, सर्वे) वह पूर्वोक्त दण्ड (ऋजवः) सीधे (अव्रणाः) छिद्रादिरहित (तु) और (सौम्यदर्शनाः) देखने में सुन्दर (नृणां) मनुष्यों को (अनुद्वेगकारिणः) भयप्रद (सत्वचः) वल्कल सहित (अग्निदूषिताः) अग्नि से जले हुए (न, स्युः) न हों ॥

प्रतिगृह्येप्सितंदण्डमुपस्थाय च भास्करम् ।
प्रदक्षिणं परीत्याग्निं चरेद्भैक्षं यथाविधि ॥ ४५ ॥

पदा०—(ईप्सितं, दण्डं) ब्रह्मचारी यथेष्ट दण्ड को (प्रतिगृह्य) धारण करके (भास्करं, उपस्थाय) सूर्य के सन्मुख स्थित होकर (अग्निं, प्रदक्षिणंपरीत्य) अग्नि की प्रदक्षिणा करके (यथाविधि) विधिपूर्वक (भैक्षं, चरेत्) भिक्षा मांगे ॥

भवत्पूर्वं चरेद्भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः ।
भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ॥ ४६ ॥

पदा०—(उपनीतः) यज्ञोपवीत वाला (द्विजोत्तमः) ब्राह्मण भिक्षाबोधक वाक्य के (भवत्पूर्वं) पूर्व में "भवत्" शब्द जोड़कर (राजन्यः) क्षत्रिय (भवन्मध्यं) "भवत्" शब्द को बीच में कहकर भिक्षा मांगे (तु) और (वैश्यः,भवदुत्तरं) वैश्य "भवत्" शब्द को उत्तर में युक्त करके (भैक्षं, चरेत्) भिक्षा मांगे ॥

भाष्य—यज्ञोपवीतसंस्कारयुक्त ब्राह्मणब्रह्मचारी भिक्षा के निमित्त उच्चारण किये हुए वाक्य में "भवत्"=आप शब्द पहले, क्षत्रिय मध्य में और वैश्य अन्त में उच्चारण करके भिक्षा मांगे अर्थात् ब्राह्मण "भवती भिक्षां ददातु"=आप मुझे भिक्षादें, क्षत्रिय "भिक्षां भवती ददातु" ऐसा कहे और वैश्य "भिक्षां ददातु भवती" इस प्रकार बोलकर तीनों द्विजातियों के ब्रह्मचारी यज्ञोपवीत संस्कार के अनन्तर भिक्षा मांगें॥

मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम्।
भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं नावमानयेत्॥ ४७॥

पदा०—(मातरं) माता (वा) अथवा (स्वसारं) अपनी बहिन (वा) वा (मातुः) माता की (निजां, भगिनीं) सहोदर बहिन, इनसे (प्रथमं) पहले (भिक्षां, भिक्षेत) भिक्षा मांगे (च) और (या, एनं) जो इस ब्रह्मचारी का (न, अवमानयेत्) मांगने पर अपमान न करे उससे मांगे॥

समाहृत्य तु तद्भैक्षं यावदर्थममायया।
निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः॥ ४८॥

पदा०—(तत्, भैक्षं, यावत्, अर्थं) उस भिक्षा के सब पदार्थों को (समाहृत्य) लाकर (अमायया) छल कपट से रहित ब्रह्मचारी (गुरवे) गुरु के प्रति (निवेद्य) अर्पण करके पुनः (प्राङ्मुखः) पूर्वाभिमुख बैठ (आचम्य) आचमन कर (शुचिः) पवित्र हो (अश्नीयात्) भोजन करे॥

भाष्य–ब्रह्मचारी को उचित है कि भिक्षा के सब पदार्थ निष्कपट हो अपने गुरु के अर्पण करदेवे पुनः गुरु की तृप्ति के अनन्तर शेष भोजन पूर्वाभिमुख बैठ पवित्र हो आचमन करके स्वयं भक्षण करे ॥

उपस्पृश्यद्विजोनित्यमन्नमद्यात्समाहितः ।
भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सम्यगद्भिः खानि च संस्पृशेत्॥ ४९॥

पदा०–(समाहितः) सावधान होकर (द्विजः) ब्राह्मणादि तीनों वर्ण (नित्यं, उपस्पृश्य) सदा आचमन करके (अन्नं, अद्यात) भोजन करें (च) और (भुक्त्वा) भोजन के उपरान्त भी (सम्यक्, उपस्पृशेत) भले प्रकार आचमन करके (अद्भिः) जल से (खानि) चक्षुरादि इन्द्रियों का (संस्पृशेत) स्पर्श करें ॥

भाष्य–द्विजातियों को उचित है कि एकाग्रचित्त होकर भोजन के पूर्व तथा भोजन के पश्चात आचमन करें और भोजन के उपरान्त चक्षुरादि इन्द्रियों का स्पर्श करें, और ब्राह्मणादि तीनो वर्णों को भोजन के समय अनन्यचित्त होकर शान्तिपूर्वक भोजन करना चाहिये, क्योंकि चञ्चलता से भोजन करने से कई प्रकार की व्याधी उत्पन्न होजाती हैं ॥

पूजयेदशनंनित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् ।
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ॥ ५० ॥

पदा०–(नित्यं, अशनं, पूजयेत) सदा भोजन को सत्कार पूर्वक (अकुत्सयन्) निन्दा न करता हुआ (अद्यात) भक्षण करे (च) और (दृष्ट्वा, हृष्येत्) भोजन को देखकर हर्षित (च)

तथा (प्रसीदेत्) प्रसन्न होकर (प्रतिनन्देत्, च, सर्वशः) सब प्रकार से अन्न की प्रशंसा करे ॥

भाष्य—जो कुछ भी शुद्ध अन्न मिलजाय उसीको भक्षण करके सन्तुष्ट रहे अर्थात् नित्यप्रति भोजन का सत्कार करे तथा भोजन को देख हर्षित हो प्रसन्नतापूर्वक प्रशंसा करता हुआ भक्षण करे, क्योंकि भोजन के समय क्रोधादि दोषों से रहित होकर केवल भोजन पर ही ध्यान रख के खाने से अन्न शरीर को विशेष पुष्टिकारक होता है ॥

पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति ।
अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम् ॥५१॥

पदा०—(नित्यं) निरन्तर (पूजितं, अशनं) सत्कारपूर्वक भक्षण कियाहुआ अन्न (हिं) निश्चयकरके (बलं, च, ऊर्जं) बल, वीर्य (यच्छति) देता है (तु) और (तत्, अपूजितं, भुक्तं) अश्रद्धा से खाया हुआ अन्न (इदं,उभयं) बल, पराक्रमादि का (नाशयेत्) नाश कर देता है ॥

सं०—अब उच्छिष्ट अन्न के खाने तथा अन्य को देने का निषेध करते हैं :—

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा ।
न चैवात्यशनं कुर्यान्नचोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत्॥५२॥

पदा०—(कस्यचित्, उच्छिष्टं) किसी को उच्छिष्ट (न, दद्यात्) न देवे (च) और(न, एव) नाही (अन्तरा, अद्यात्) बीच में बहुत ठहर २ कर खाय (तथा) तथा (अति, अशनं) बहुत भोजन भी (न, कुर्यात्) न करे (च) और (उच्छिष्टः) उच्छिष्ट मुख (क्वचित्, न, व्रजेत्) कहीं न जाय ॥

भाष्य–पुरुष को उचित है कि वह अपना उच्छिष्ट भोजन किसी को न दे और नाही स्वयं किसी का उच्छिष्ट खाय तथा भोजन के नियत काल के विना वार २ भोजन वा नियत काल में भी अति भोजन न करे और उच्छिष्ट मुख कहीं न जाय ॥

सं०–अब अति भोजन करने का निषेध करते हैं:–

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चाति भोजनम् ।
अपुण्यं लोक विद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ५३ ॥

पदा०–(यस्मात) जिसकारण (अतिभोजनं) अधिक भोजन (अनारोग्यं) आरोग्यता का नाशक (अनायुष्यं) आयु क्षय करने वाला (अस्वर्ग्यं) दुःखप्रद (अपुण्यं) पुण्यों का नाशक (च) और (लोकविद्विष्टं) लोक में निन्दा कराता है (तस्मात) इस कारण (तत्) अतिभोजन (परिवर्जयेत्) कदापि न करे ॥

भाष्य–अति भोजन आरोग्यता, आयु और सुख का नाश करता है तथा शारीरिक उन्नति न होने से पुण्य कर्म भी नहीं होते, क्योंकि वह प्रमादी होजाने से उद्योगहीन होजाता है और जगत में बहुभोजी की हंसी भी होती है इसलिये मनुष्य को चाहिये कि अधिक भोजन कदापी न करे ॥

सं०–अब आचमन करने का विधान कथन करते हैं:–

ब्राह्मेणविप्रस्तीर्थेन नित्यकालमुपस्पृशेत् ।
कायत्रैदशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन॥ ५४ ॥

पदा०–(विप्रः) ब्राह्मण (ब्राह्मेण. तीर्थेन) ब्राह्मतीर्थ से

(वा) अथवा (कायत्रैदशिकाभ्यां) प्रजापति तथा देवतीर्थ से (उपस्पृशेत) आचमन करे परन्तु (पित्र्येण) पित्र्यतीर्थ से ब्राह्मण (न, कदाचन) कभी आचमन न करे ॥

अङ्गुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मंतीर्थं प्रचक्षते ।
कायमङ्गुलिमूलेऽग्रेदैवं पित्र्यं तयोरधः ॥ ५५ ॥

पदा०—(अङ्गुष्ठमूलस्य, तले) अंगूठे के मूल में (ब्राह्मं,तीर्थं) ब्राह्मतीर्थ (अंगुलिमूले, कायं) अंगुलियों की जड़ में प्रजापति तीर्थ (अग्रे, दैवं) अंगुलियों के अग्रभाग में दैवतीर्थ और (तयोः, अधः) अंगूठा तथा अंगुलि के नीचे (पित्र्यं) पित्र्यतीर्थ (प्रचक्षते) कहाता है ॥

भाष्य—अंगूठा की जड़ के नीचे बाईं ओर अर्थात् हाथ में बीच की जो खड़ी रेखा है उसके मूल में जिसको कराई कहते हैं वह "ब्राह्मतीर्थ" कनिष्ठिका अङ्गुलि के मूल में "प्राजापत्यतीर्थ" सब अंगुलियों के आगे से आचमन करना "दैवतीर्थ" और अंगूठा तथा अङ्गुलियों के बीच से आचमन करना "पित्र्यतीर्थ" कहाता है, इस पित्र्यतीर्थ से द्विजातियों को आचमन करना निषिद्ध है ॥

त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विःप्रमृज्यात्ततोमुखम् ।
खानि चैव स्पृशेदद्भिरात्मानं शिर एव च ॥ ५६ ॥

पदा०—(पूर्वं) पहले (अपः) जल से (त्रिः, आचमेत) तीन बार आचमन करे (ततः, मुखं) तदनन्तर मुखको (द्विः, प्रमृज्यात) दो बार धोवे (च) और (एव) पुनः वस्त्र से पोंछ

कर (अद्भिः) जलों से (खानि) इन्द्रियें (आत्मानं) हृदय (च) और (शिरः) शिर को (स्पृशेत्) स्पर्श करे ॥

अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थेनधर्मवित् ।
शौचेप्सुः सर्वदाचामेदेकान्तेप्रागुदङ्मुखः ॥ ५७ ॥

पदा०—(शौचेप्सुः) पवित्रता की इच्छावाला (धर्मवित्) धर्मज्ञपुरुष (प्रागुदङ्मुखः) पूर्व वा उत्तर की ओर मुख करके (अनुष्णाभिः, अफेनाभिः) झागरहित शीतल (अद्भिः) जलों से (एकान्ते) एकान्तस्थान में (तीर्थेन) पूर्वोक्त ब्राह्म आदि तीर्थों से (सर्वदा) सदा (आचामेत्) आचमन करे ॥

भाष्य—शुद्धता चाहने वाला धर्मात्मा पुरुष पूर्व वा उत्तराभिमुख एकान्त में स्थित होकर झागरहित शीतल जल से पूर्वोक्त ब्राह्म आदि नियत तीर्थों द्वारा सदा आचमन करे अर्थात् ब्राह्म तीर्थ से ब्राह्मण, प्रजापति तीर्थ से क्षत्रिय, देवतीर्थ से वैश्य और पित्र्यतीर्थ से शूद्र आचमन करे ॥

सं०—अब आचमन योग्य जल का परिमाण कथन करते हैं:—

हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः ।
वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः॥५८॥

पदा०—(हृद्गाभिः) हृदयगत (अद्भिः) जलों से (विप्रः) ब्राह्मण (कण्ठगाभिः) कण्ठ तक प्राप्त जलों से (भूमिपः) क्षत्रिय (प्राशिताभिः) मुख में गये हुए जलों से (वैश्यः) वैश्य (तु) और (अन्तत,ः स्पृष्टाभिः) मुख के स्पर्शमात्र जल द्वारा आचमन करके (शूद्रः) शूद्र (पूयते) पवित्र होता है ॥

भाष्य—आचमन किये हुए जल को हृदय तक पहुंचाने से ब्राह्मण, कण्ठ तक पहुंचाने से क्षत्रिय, मुखतक पहुंचाने से वैश्य और मुख के स्पर्श मात्र जल द्वारा आचमन करने से शूद्र पवित्र होता है ॥

सं०—अब यज्ञोपवीत सम्बन्धी सव्य तथा अपसव्य आदि कर्मों का वर्णन करते हैं :—

उद्धृते दक्षिणेपाणावुपवीत्युच्यते द्विजः ।
सव्ये प्राचीन आवीती निवीती कण्ठ सज्जने॥५९॥

पदा०—(दक्षिणे, पाणौ) दहिने हाथ को (उद्धृते) उठाकर बायें कन्धे पर जब यज्ञोपवीत रक्खा जाय तब (द्विजः) द्विज (उपवीती) उपवीती (सव्ये) बायें हाथ को उठाकर दहिने कन्धे पर यज्ञोपवीत रक्खा जाय तब (प्राचीनआवीती) प्राचीनआवीती और जब (कण्ठसज्जने) कण्ठ में यज्ञोपवीत पहिना हो तब (निवीती, उच्यते) निवीती कहाता है ॥

भाष्य—दक्षिण हाथ को बाहर निकाल के बायें कन्धे के ऊपर यज्ञोपवीत करलेने से द्विज "उपवीती" इसके विपरीत अर्थात् बायें हाथ को बाहर निकाल के दक्षिण कन्धे के ऊपर यज्ञोपवीत कर लेने से "प्राचीनआवीती" और जब यज्ञोपवीत कण्ठ में धारण किये हो तब "निवीती" कहाता है ॥

मेखलामजिनंदण्डमुपवीतं कमण्डलुम् ।
अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रवत् ॥६०॥

पदा०—(विनष्टानि) नष्ट हुए (मेखलां) मेखला (अजिनं) मृगचर्म (दण्डं) दण्ड (उपवीतं) यज्ञोपवीत (कमण्डलुं) कमण्डलु

इनको (अप्सु) जल में (प्रास्य) फेंककर (अन्यानि) और न वीन (मन्त्रवत्) मन्त्रद्वारा (गृह्णीत) धारण करे ॥

सं०—अब ब्रह्मचारी के केशान्त संस्कार का विधान करते हैं :—

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः ॥६१॥

पदा०—(ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण ब्रह्मचारी का (षोडशे, वर्षे) सोलहवें वर्ष (राजन्यबन्धोः) क्षत्रिय का (द्वाविंशे) बाईसवें वर्ष (ततः) और (वैश्यस्य) वैश्य का (द्व्यधिके) चौबीसवें वर्ष में (केशान्तः) केशान्त संस्कार करना (विधीयते) विधान किया है ॥

भाष्य—ब्राह्मण ब्रह्मचारी का सोलहवें, क्षत्रिय का बाईसवें, और वैश्य का चौबीसवें वर्ष में केशान्त संस्कार होना चाहिये, इस संस्कार का विधान वेदारम्भ तथा समावर्त्तन संस्कार के बीच ब्रह्मचर्य काल में इसलिये किया है कि ऊपर निर्दिष्ट समयों से दाढ़ी आदि के बाल कटने प्रारम्भ होते हैं अतः एक बार संस्कार द्वारा केश कटवाकर पुनः स्वेच्छा से जब चाहे तब कटवा सकता है और जिसने ब्रह्मचर्य समय में बाल रखने का व्रत कर लिया हो तो उसको समावर्त्तन के समय ही यह संस्कार कर्त्तव्य है, यह ब्रह्मचर्यविधि स्त्री पुरुष दोनों के लिये है जैसाकि "ब्राह्मणोयजेत"=ब्राह्मण यज्ञ करे, इस वाक्य में केवल ब्राह्मण के लिये ही यज्ञ की आज्ञा नहीं किन्तु ब्राह्मण ब्राह्मणी दोनों के लिये है इसी प्रकार ब्रह्मचर्य्य का विधान भी दोनों के लिये समझना चाहिये, इसी आशय से महर्षि जैमिनी ने मीमांसा

सूत्रों में स्त्रियों को यज्ञ का अधिकार कथन किया है, और जो इस स्थल में ऐसे श्लोक पाये जाते हैं कि जिनमें स्त्रियों का विवाह संस्कार ही वैदिक लिखा है अन्य नहीं वह सब प्रक्षिप्त हैं ॥

एष प्रोक्तो द्विजातीनामौपनायनिको विधिः ।
उत्पत्ति व्यञ्जकः पुण्यः कर्मयोगं निबोधत ॥६२॥

पदा०—(द्विजातीनां) द्विजातियों का (एषः) यह (उत्पत्ति-व्यञ्जकः) जन्म को जताने वाला (पुण्यः) पवित्र (औपनायनिकः) यज्ञोपवीतसम्बन्धी (विधिः) विधान (प्रोक्तः) कहा अब (कर्मयोगं) उक्त वर्णों के कर्त्तव्य कर्मों को (निबोधत) जानो ॥

भाष्य—यह ब्राह्मणादि वर्णों के द्विजन्मा होने की विधि कथन कीगई है, जैसाकि "स्वाध्यायेनव्रतैर्होमैः" इस श्लोक में पीछे कर्मोंद्वारा द्विजन्मा होने का विधान किया है, अब उक्त वर्णों के कर्त्तव्य कर्मों को विस्तारपूर्वक कथन करते हैं ॥

सं०—अब कर्त्तव्य कर्मों में प्रथम गुरुशिक्षा कथन करते हैं:—

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ।
आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च ॥६३॥

पदा०—(गुरुः, शिष्यं, उपनीय) गुरु शिष्य को यज्ञोपवीत देकर (आदितः, शौचं) पहले पवित्र रहने की विधि सिखावे (च) पुनः (आचारं) आचार (अग्निकार्यं) अग्निहोत्र का प्रकार (च) तथा (सन्ध्योपासनं) सन्ध्योपासन करने की विधि (शिक्षयेत्) सिखावे ॥

भाष्य—उपनयन के अनन्तर गुरु शिष्य को पवित्र रहने की

विधि इस प्रकार सिखावे कि हे शिष्य ! प्रथम तुम को जलादि द्वारा बाह्य शुद्धि करनी चाहिये, और फिर ब्रह्मचर्यपूर्वक अध्ययन तथा सन्ध्यावन्दनादिकों से आभ्यन्तर शुद्धि करना उचित है इस प्रकार दोनों प्रकार के शौच का विधिवत् उपदेश करे ॥

अध्येष्यमाणस्त्वाचान्तो यथाशास्त्रमुदङ्मुखः ।
ब्रह्माञ्जलिकृतोऽध्याप्यो लघुवासाजितेन्द्रियः ॥६४॥

पदा०—(अध्येष्यमाणः) अध्ययन की इच्छा वाले (जितेन्द्रियः) जितेन्द्रिय (लघुवासा) थोड़े वस्त्रों वाले (ब्रह्माञ्जलिकृतः) जिसने ब्रह्माञ्जलि की हुई हो (उदङ्मुखः) उत्तर मुखवाले (आचान्तः) आचमन किये हुए शिष्य को गुरु (यथाशास्त्रं) शास्त्रक्रम से (अध्याप्यः) पढ़ावे ॥

भाष्य—जितेन्द्रिय, आवश्यकता से अधिक कोई पदार्थ पास न रखनेवाला और हाथ जोड़कर गुरु को नमस्कार करने वाला शिष्य जब पढ़ने की इच्छा से गुरु के समीप आवे तब गुरु उक्त गुणों वाले शिष्य को यथाविधि अध्ययन करावे ॥

ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा ।
संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ॥६५॥

पदा०—(ब्रह्मारम्भे) वेद पाठ के आरम्भ (च) और (अवसाने) अन्त में (गुरोः) गुरु के (पादौ) दोनो चरणों का स्पर्श (सदा, ग्राह्यौ) नित्यप्रति ग्राह्य है, और (हस्तौ, संहत्य) हाथ जोड़कर (हि) जो (अध्येयं) अध्ययन करना है (सः, ब्रह्माञ्जलिः) वही ब्रह्माञ्जलि (स्मृतः) कथन की है ॥

भाष्य-शिष्य अध्ययन के आरम्भ तथा समाप्ति के समय नित्य प्रति गुरु को प्रणाम करे, अध्ययन समय में हाथ जोड़कर विनयपूर्वक नमस्कार करने का नाम ब्राह्मञ्जलि, है, सो ब्रह्माञ्जलि करके विनयपूर्वक शिष्य को गुरु के समीप उपस्थित होना चाहिये, ऐसा श्रद्धालु पुरुष ही अध्ययन का अधिकारी होता है ॥

व्यत्यस्त पाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः ।
सव्येन सव्यः स्पृष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः ॥ ६६ ॥

पदा०-(व्यत्यस्तपाणिना) शिष्य विपरीत हाथों से (गुरोः) गुरु के (उपसंग्रहणं) चरणों का स्पर्श (कार्यं) करे (सव्येन, सव्यः) वायें से वायां (च) और (दक्षिणेन, दक्षिणः) दहिने हाथ से दहिना चरण (स्पृष्टव्यः) स्पर्श करे ॥

भाष्य-शिष्य को उचित है कि कैंची के समान दक्षिण हाथ को वाम हाथ के ऊपर रख के गुरु के वायें चरण को वायें हाथ से और दहिने चरण को दहिने हाथ से छूकर अभिवादन करे ॥

अध्येष्यमाणं तु गुरुर्नित्यकालमतन्द्रितः ।
अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्विति चारमेत्॥६७॥

पदा०-(नित्यकालं) निरन्तर (अतन्द्रितः) आलस्य रहित होकर (गुरुः) गुरु (अध्येष्यमाणं) अध्ययन करते हुए शिष्य को (भो) हे शिष्य! (अधीष्व) पढ़ (इति, ब्रूयात्) ऐसा कहे (च) और पाठसमाप्ति के समय (विरामः, अस्तु) विराम करो (इति, आरमेत्) इस प्रकार कहकर समाप्त करे ॥

भाष्य-प्रमादरहित होकर गुरु सदा पूर्वोक्त लक्षणयुक्त पढ़ने वाले शिष्य के प्रति पाठ प्रारम्भ समय "अधीष्वभो:"= हे शिष्य! पढ़, इस प्रकार कहे और पाठसमाप्ति के समय "विरामोऽस्तु"=अब बस करो, इस प्रकार कहकर पाठ समाप्त करावे अर्थात् गुरु जितना पाठ शिष्य के योग्य समझे उतना पढ़ाकर विराम करदे ॥

सं०-अब पाठारम्भ में गुरु और शिष्य के प्रति ओंकारोच्चारण करने का नियम कथन करते हैं :-

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।
स्रवत्यनोंकृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यति ॥ ६८ ॥

पदा०-(ब्रह्मणः) वेदाध्ययन के (आदौ) आदि (च) और (अन्ते) अन्त में (सर्वदा) सदा (प्रणवं, कुर्यात्) ओंकार का उच्चारण करे (पूर्वं) वेदाध्ययन की आदि में (अनोंकृतं) ओंकार न कहाजाय तो पढ़ा हुआ वेद विषय (स्रवति) धीरे २ क्षय होजाता है (च) और (परस्तात्) पाठ के अन्त में ओंकारोच्चारण न करने से (विशीर्यति) पढ़ा हुआ विस्मृत होजाता है ॥

प्राक्कूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैवपावितः।
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओंकारमर्हति ॥ ६९ ॥

पदा०-(च) और (प्राक्कूलान्) नूतन कुशाओं के आसन पर बैठ (पवित्रैः) मार्जन मन्त्रों से (पावितः) पवित्र होकर पुनः (त्रिभिः, प्राणायामैः, पूतः) तीन प्राणायाम करने के (ततः)

अनन्तर (एव) निश्चयपूर्वक (ओंकारं, अर्हति) ओंकारोच्चारण करने योग्य होता है ॥

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः ।
वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवःस्वरितीति च ॥ ७० ॥

पदा०—(प्रजापतिः) प्रजापति ने (अकारं) अकार (उकारं, च) उकार (च) तथा (मकारं, च) मकार (अपि, च) और (भूः, भुवः, स्वः, इति) भूः, भुवः, स्वः यह तीन महाव्याहृति (वेदत्रयात्, इति) क्रमानुसार तीनों वेदों से (निरदुहत्) दुहीं ॥

भाष्य—प्रजापति ने ऋग्, यजु, साम इन तीनो वेदों से अकार, उकार, मकार और भूः, भुवः, स्वः यह तीन महाव्याहृति क्रमानुसार प्रकाशित कीं अर्थात् ऋग्वेद से अकार, यजुर्वेद से उकार और सामवेद से मकार को दुहा, और यही क्रम तीनों व्याहृतियों का जानना चाहिये ॥

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत् ।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥७१॥

पदा०—(परमेष्ठी, प्रजापतिः) सर्वोपरि प्रजापति ने (एव) निश्चयकरके (त्रिभ्यः, वेदेभ्यः) तीनों वेदों से (तत्, इति) तत्सवितुर्वरेण्यमित्यादि (अस्याः, सावित्र्याः) इस सावित्री (ऋचः) ऋचा का (पादं, पादं) क्रम से एक २ पाद (अदूदुहत्) तीनों वेदों से दुहा ॥

भाष्य—सर्वोत्कृष्ट प्रजापति ने गायत्री के "तत्सवितुर्वरेण्यमित्यादि" तीन पादों को ऋगादि तीन वेदों से प्रकाशित

किया अर्थात् ऋग्वेद से "तत्सवितुर्वरेण्यं" यजुर्वेद से "भर्गोदेवस्यधीमहि" सामवेद से "धियो योनः प्रचोदयात्" पाद को दुहा, यह तीनों पाद तीनों वेदों के तत्त्वरूप हैं अर्थात् एक २ वेद का मुख्य विषय गायत्री के एक २ चरण=पाद में होने से यह मन्त्र सब वेदों का सारभूत है ॥

एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृतिपूर्विकाम् ।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥ ७२ ॥

पदा०—(एतत्, अक्षरं) इस ओंकार अक्षर (च) और (व्याहृतिपूर्विकां) व्याहृतियों सहित (एतां) इस गायत्री को (सन्ध्ययोः) दोनों सन्ध्याओं में (जपन्) जपता हुआ (वेदवित्, विप्रः) वेद का ज्ञाता ब्राह्मण (वेदपुण्येन) वेद के पुण्य को (युज्यते) प्राप्त होता है ॥

भाष्य—वेद का जानने वाला द्विज "ओ३म्" और "भूर्भुवः स्वः" यह तीन व्याहृतीं जिसके पूर्व में युक्त हैं ऐसे:—

ओ३म्—भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यंभर्गो-
देवस्यधीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॥

इस गायत्री मंत्र को प्रातःसायं दोनों समय एकान्त शुद्ध स्थान में बैठकर विधिपूर्वक जपता हुआ वेदाध्ययन के फल को प्राप्त होता है अर्थात् वेदों के प्रधानभूत तीन विषयों का सावित्री, व्याहृति और प्रणव द्वारा बार २ अभ्यास करने से चित्त की मलिनता का नाश होकर सत्त्वगुण की प्रधानता द्वारा पुरुष वेदाध्ययन के फल को प्राप्त होता है ॥

सर्वोत्पादक परमात्मा का सर्वाङ्गरूप से वर्णन करता है, और "मौनात्सत्यंविशिष्यते" का तात्पर्य यह है कि "अकरणात्करणं श्रेयः"=न करने से करना अच्छा है, इस न्याय के अनुसार मौनधारण करने की अपेक्षा किसी सत्यता का प्रतिपादन करना उत्तम है ॥

सं०—अब वेद का नित्यत्व प्रतिपादन करते हैं :—

क्षरन्तिसर्वा वैदिक्यो जुहोतियजतिक्रियाः ।
अक्षरं दुष्करं ज्ञेयं ब्रह्मचैव प्रजापतिः ॥ ७८ ॥

पदा०—(वैदिक्यः, सर्वाः) वेद प्रतिपादित सब (जुहोतियजतिक्रियाः) होम तथा यज्ञ कर्म (क्षरन्ति) नष्ट होजाते हैं इस कारण (प्रजापतिः) प्रजाओं का रक्षक होने से (ब्रह्म,एव) वेद ही को (दुष्करं, अक्षरं) अविनाशी अक्षर (ज्ञेयं) जानना चाहिये ॥

भाष्य—शुभशिक्षा द्वारा प्रजाओं का रक्षक होने से यहां वेद का नाम "प्रजापति" है और प्रकृति, जीव तथा ब्रह्म इन तीनों महान् अनादि पदार्थों का प्रतिपादक होने से वेद को "ब्रह्म" नाम से कहा गया है, और वेद ईश्वर का ज्ञान होने के कारण इसकी अपेक्षा यज्ञादि सब क्रियायें अनित्य हैं ॥

सं०—अब यज्ञों में जपादि यज्ञों की श्रेष्ठता वर्णन करते हुए "मानस जप" को सर्वोपरि कथन करते हैं :—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥७९॥

पदा०—(विधियज्ञात्, जपयज्ञः) विधियज्ञ से जपयज्ञ (दशभिः गुणैः) दशगुना (उपांशु, शतगुणः) उपांशु सौगुना (च) और (मानसः, साहस्रः) मानस जप हजार गुना (विशिष्टः, स्मृतः, स्यात्) श्रेष्ठ कथन किया है॥

भाष्य—ज्योतिष्टोमादि विधियज्ञों से जपयज्ञ को इसलिये विशेष कहा है कि इसमें पुनः २ अभ्यास करने से परमात्मा के स्वरूप में दृढ़ता होती है, इसी अभिप्राय से महर्षि पतञ्जलि का कथन है कि—"तज्जपस्तदर्थभावनं"=जिसमें परमात्मरूप अर्थ का चिन्तन कियाजाय वह "जपयज्ञ" जिसमें जप करने से थोड़ा २ सुनाई दे वह "उपांशुजप" जिसमें केवल मन से परमात्मरूप अर्थ की भावना कीजाय वह "मानसजप" है, और यह सबसे श्रेष्ठ इसलिये है कि इसमें चित्तवृत्ति का निरोध होजाता है अर्थात् मानसजप से ही पुरुष निर्बीज समाधि को प्राप्त होता है जिसमें एकमात्र परमात्मा ही परमात्मा प्रतीत होता है॥

ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥८०॥

पदा०—(विधियज्ञसमन्विताः) विधियज्ञ सहित (ये, चत्वारः) जो चार (पाकयज्ञाः) पाकयज्ञ हैं (ते, सर्वे, जपयज्ञस्य) वह सब जपयज्ञ की (षोडशीं, कलां) सोलहवीं कला को भी (न, अर्हन्ति) नहीं पाते॥

भाष्य—वेदाध्ययनरूप ब्रह्मयज्ञ से इतर जो पञ्चमहायज्ञों के अन्तर्भूत वैश्वदेवहोम, बलिकर्म, नित्यश्राद्ध, अतिथिसत्कार यह चार

पाकयज्ञ दर्शपौर्णमास विधियज्ञ समेत जपयज्ञ के सोलहवें भाग को भी प्राप्त नहीं होसकते अर्थात् इनका फल जपयज्ञ से बहुत न्यून है, तात्पर्य्य यह है कि अग्निहोत्र, बलिवैश्वदेवयज्ञ. अतिथियज्ञ और मातापिता की सेवारूप पितृयज्ञ इन चारो यज्ञों तथा अग्निष्टोमादि यज्ञों से गायत्री का जप श्रेष्ठ है ॥

जप्येनैव तु संसिद्ध्येद्ब्राह्मणो नात्रसंशयः।
कुर्यादन्यन्नवा कुर्यान्मैत्रोब्राह्मण उच्यते ॥८१॥

पदा०–(ब्राह्मणः) ब्राह्मण (अन्यत्) और यज्ञादिकर्म (कुर्यात्) करे (वा, न, कुर्यात्) अथवा न करे केवल (जप्येन, एव) जप से ही (संसिद्ध्येत्) सिद्धि को प्राप्त होकर (मैत्रो-ब्राह्मणः, उच्यते) मैत्र ब्राह्मण कहाता है (न, अत्र, संशयः) इसमें संशय नहीं ॥

भाष्य–इस श्लोक में जो ब्राह्मण को "मैत्रोब्राह्मणः"= सबका मित्र कथन कियागया है, उसका तात्पर्य्य यह है कि ब्राह्मण प्राणीमात्र से मैत्री रखे अर्थात् मन, वाणी तथा कर्म से किसी की हिंसा न करता हुआ सदुपदेश, अध्ययन और व्रतादिकों से मनुष्यमात्र को उच्च बनावे, अधिक क्या शास्त्र ने उपकारी को मित्र माना है और सम्पूर्ण प्रजा को अपने धर्मोपदेश द्वारा उपकृत करना ब्राह्मण का मुख्य कर्त्तव्य है ॥

सं०–अब इन्द्रियों का निग्रह कथन करते हैं:–

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम् ॥८२॥

पदा०-(विद्वान्) विद्वान् पुरुष (अपहारिषु) अपनी ओर आसक्त करने वाले (विषयेषु) विषयों में (विचरतां) विचरते हुए (इन्द्रियाणां) इन्द्रियों के (संयमे) निग्रह में (वाजिनां, यन्ता, इव) घोड़ों के सारथि की भांति (यत्नं, आतिष्ठेत्) यत्नवान् हो ॥

भाष्य-जिसप्रकार सारथि घोड़ों को अपने वश में रखता है इसी प्रकार कल्याण के अभिलाषी विद्वान् पुरुष को उचित है कि वह विचरते हुए इन्द्रियों को संयमद्वारा अपने वशीभूत रक्खे ॥

एकादशेन्द्रियाण्याहुर्यानि पूर्वे मनीषिणः ।
तानि सम्यक्प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥८३॥

पदा०-(पूर्वे, मनीषिणः) प्राचीन विद्वानों ने (यानि) जो (एकादश, इन्द्रियाणि) ग्यारह इन्द्रिय (आहुः) कथन किये हैं (तानि, यथावत्) उनको यथाविधि (अनुपूर्वशः) क्रमपूर्वक (सम्यक्) भलीभांति (प्रवक्ष्यामि) वर्णन करते हैं ॥

श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ।
पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चैव दशमी स्मृता ॥ ८४ ॥

पदा०-(श्रोत्रं) कर्ण (त्वक्चक्षुषी) त्वचा, नेत्र (जिह्वा) जिह्वा (पञ्चमी, नासिका) पांचवीं नासिका (पायूपस्थं) मलमूत्र त्याग के दोनों इन्द्रिय (हस्तपादं) हाथ, पैर (च) और (एव) निश्चयकरके (दशमी, वाक्) दशवीं वाणी यह दश इन्द्रियां (स्मृता) कथन कीगई हैं ॥

बुद्धीन्द्रियाणिपञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः ।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते ॥ ८५ ॥

पदा०-(एषां) इन दश इन्द्रियों में (अनुपूर्वशः) क्रम से (श्रोत्रादीनि, पञ्च) श्रोत्रादि पांच (बुद्धीन्द्रियाणि) ज्ञानेन्द्रिय और (एषां) इनमें क्रमपूर्वक (पाय्वादीनि, पञ्च) पायु आदि पांच (कर्मेन्द्रियाणि) कर्मेन्द्रिय (प्रचक्षते) कहाते हैं ॥

एकादशंमनोज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम् ।
यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौगणौ ॥८६॥

पदा०-(यस्मिन्, जिते) जिसके वश होने पर (एतौ) यह (पञ्चकौ, गणौ) पूर्वोक्त पांच २ इन्द्रियों के गण (जितौ, भवतः) वशीभूत होजाते हैं, और जो (स्वगुणेन) अपने गुण से (उभयात्मकं) ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों में गिनाजाता है वह (एकादशं, मनः) ग्यारहवां इन्द्रिय मन (ज्ञेयं) जानना चाहिये ॥

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥८७॥

पदा०-(इन्द्रियाणां, प्रसङ्गेन) इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होने से पुरुष (असंशयं) निःसन्देह (दोषं, ऋच्छति) दोष को प्राप्त होता (ततः) और (तानि, एव, सन्नियम्य) उन्हीं इन्द्रियों को वश करने से (सिद्धिं, नियच्छति) अभीष्ट फल को उपलब्ध करता है ॥

सं०–अब भोग से इन्द्रियों का असन्तोष कथन करते हैं :–

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ ८८ ॥

पदा०–(कामानां, उपभोगेन) विषयों के उपभोग से (कामः, जातु) कामना कभी भी (न, शाम्यति) शान्त नहीं होती किन्तु (हविषा) घृत से (कृष्णवर्त्मा, इव) अग्निज्वाला के समान (भूयः, एव) पुनः २ (अभिवर्द्धते) बढ़ती है ॥

भाष्य–विषयों के भोग से पुरुष की कामना कभी शान्त नहीं होती किन्तु जैसे अग्नि में घृत डालने से ज्वाला अधिक प्रदीप्त होजाती है इसी प्रकार विषयों में लम्पट पुरुष की कामना दिनोदिन बढ़ती है और इसकी शान्ति का उपाय मन सहित इन्द्रियों को वशीभूत करना है ॥

यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान् यश्चैतान्केवलांस्त्यजेत् ।
प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते ॥८९॥

पदा०–(यः, एतान्, सर्वान्) जो इन सब विषयों को (प्राप्नुयात्) प्राप्त हो (च) और (यः, एतान्, केवलान्) जो इन सब को (त्यजेत्) त्यागदे, तो इन दोनों में (सर्वकामानां, प्रापणात्) सब विषयों की प्राप्ति से (परित्यागः, विशिष्यते) त्याग श्रेष्ठ है ॥

भाष्य–त्यागी पुरुष अपनी स्वतन्त्रता से परमार्थ सम्बन्धी सब कार्य्यों में रत रहकर अपने जीवन को पवित्र बनाता है और विषयों के साथ बंधा हुआ जल को छोड़ मीन के समान एक क्षण

भी नहीं रहसक्ता, इसी अभिप्राय से कहा है कि "बद्धो-ऽस्तिकोयोविषयानुरागी"=जो विषयों में लम्पट है उसी को बंधा हुआ जानना चाहिये, और जो संयमी है वह मनुष्य जन्म के फलों को प्राप्त होकर सुखी होता है और उसी के लिये मनु जी ने विशेष फल का विधान किया है कि विषय लम्पटता से विषयों का त्याग श्रेय है॥

सं०—अब इन्द्रियनिग्रह का उपाय कथन करते हैं:—

न तथैतानि शक्यन्ते सन्नियन्तुमसेवया।
विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः॥९०॥

पदा०—(विषयेषु, प्रजुष्टानि) विषयों में लगी हुई (एतानि) इन्द्रिय (असेवया) त्याग से (तथा) उस प्रकार (सन्नियन्तुं, न, शक्यन्ते) वशीभूत नहीं होसक्तीं (यथा, नित्यशः, ज्ञानेन) जैसे निरन्तर ज्ञान से वश में होती हैं॥

भाष्य—नित्यानित्य पदार्थ के विवेक से विना कोई पुरुष केवल त्याग से विरक्त नहीं होसक्ता, विरक्त तभी होता है जब उस पदार्थ के गुण दोषों को भलेप्रकार परिज्ञान होजाय, सो जब ज्ञान द्वारा विषयों में पुरुष की दोष दृष्टि होगी तभी वह अपनी इन्द्रियों को वश कर सक्ता है केवल त्याग से नहीं॥

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्॥९१॥

पदा०—(विप्रदुष्टभावस्य) विषयों में आसक्त पुरुष के (वेदाः) वेदाध्ययन (त्यागः) त्याग (यज्ञाः) यज्ञ (नियमाः)

नियम (च) और (तपांसि) तप आदि शुभकार्य (कर्हिचित्) कदापि (सिद्धिं) सिद्धि को (न, गच्छन्ति) प्राप्त नहीं होते ॥

भाष्य—वेदाध्ययन, अग्निष्टोमादियज्ञ, शौच, सन्तोष आदि नियम, सत्यभाषण आदि तप और संन्यास आदि त्याग यह सब विषयों में आसक्त पुरुष के सिद्ध नहीं होते अर्थात् निष्फल होजाते हैं ॥

सं०—अब जितेन्द्रिय पुरुष का लक्षण कथन करते हैं ॥

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः॥९२॥

पदा०—(यः, नरः) जो पुरुष (श्रुत्वा) सुनकर (स्पृष्ट्वा) छूकर (दृष्ट्वा) देखकर (भुक्त्वा) भोगकर (च) और (घ्रात्वा) सूंघकर (न, हृष्यति) न प्रसन्न हो (वा) और (न, ग्लायति) न ग्लानि करे (सः, जितेन्द्रियः) उसको जितेन्द्रिय (विज्ञेयः) जानना चाहिये ॥

भाष्य—जो पुरुष निन्दा स्तुति के वाक्य सुनकर, कोमल वा कठोर पदार्थ छूकर, सुन्दररूप वा कुरूप देखकर, स्वादिष्ट वा अस्वादिष्ट भोजन खाकर और सुगन्धि वा दुर्गन्धि को सूंघकर हर्ष तथा विषाद न करे उसको जितेन्द्रिय कहते हैं ॥

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥ ९३ ॥

पदा०—(सर्वेषां, इन्द्रियाणां) सब इन्द्रियों में से (यदि, एकं, इन्द्रियं) यदि एक भी इन्द्रिय (क्षरति) विषयों में आसक्त

होजाय तो (तेन) उसके द्वारा (अस्य, प्रज्ञा) इस मनुष्य की बुद्धि (दृतेः, पात्रात्) छिद्र वाली मशक में (उदकं, इव) जल के समान (क्षरति) धीरे २ नष्ट होजाती है ॥

भाष्य—जिसप्रकार मशक में छोटा सा छिद्र भी सम्पूर्ण जल को क्षीण करदेता है इसीप्रकार तत्त्वज्ञानी की यदि एक भी इन्द्रिय विषयासक्त होजाय तो वह धीरे २ उसकी निर्मल बुद्धि को नष्ट करके लक्ष्य से च्युत करदेती है, इसलिये पुरुष के कल्याण का उपाय यही है कि वह ज्ञानद्वारा विषयों में दोषदृष्टि से इन्द्रियों का संयम करके विषयों से पृथक् रहे ॥

वशेकृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ।
सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम् ॥ ९४ ॥

पदा०—(इन्द्रियग्रामं) इन्द्रिय समूह को (वशे, कृत्वा) वशीभूत (तथा, मनः, संयम्य) तथा मन को दमन करके (योगतः) उपायपूर्वक (तनुं, अक्षिण्वन्) शरीर को पीड़ा न देता हुआ पुरुष (सर्वान्, अर्थान्) सब अर्थों को (संसाधयेत्) सिद्ध करे ॥

भाष्य—बुद्धिमान् पुरुष इन्द्रियों के समूह तथा मन को स्वाधीन करके शरीर को दुःख न देता हुआ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष रूप मनुष्यजन्म के फल चतुष्टय को सिद्ध करे ॥

सं०—अब सन्ध्योपासन की विधि कथन करते हैं :—

पूर्वां सन्ध्यांजपँस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् ।
पश्चिमान्तु समासीनः सम्यगार्क्षविभावनात् ॥९५॥

पदा०—(पूर्वां, सन्ध्यां) प्रातःकाल की सन्ध्या के समय

(आर्कदर्शनात्) सूर्योदयपर्यन्त (सावित्रीं, जपन्) गायत्री को जपता हुआ (तिष्ठेत्) स्थित रहे (तु) और (पश्चिमां) सायंकाल की सन्ध्या के समय (सम्यक्) भलेप्रकार (आर्क्षविभावनात्) नक्षत्रों के उदय पर्यन्त (समासीनः) सावधानता से स्थित होकर सावित्री का जप करे ॥

भाष्य—प्रातःकाल की सन्ध्या का समय सूर्योदय होने तक है अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर स्नानादि से निवृत्त हो सूर्योदय होने तक सन्ध्यावन्दनादि सब कार्यों से निवृत्त होजाय और सायंकाल की सन्ध्या को नक्षत्र दर्शन तक समाप्त करदे अर्थात् सूर्यास्त होने से प्रथम ही सन्ध्या करने में प्रवृत्त होजाय, यही दोनों काल सन्ध्योपासन तथा सावित्री का जप करने के हैं ॥

पूर्वां सन्ध्यां जपँस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति ।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम्॥१०२॥

पदा०—(पूर्वां, सन्ध्यां) प्रभातकाल की संध्या में (जपं, तिष्ठन्)-गायत्री का जप करता हुआ पुरुष (नैशं, एनः) रात्रि भर के पापों को (व्यपोहति) नाश करता है (तु) और (पश्चिमां, समासीनः) सायंकाल की सन्ध्या में गायत्री का जप करता हुआ (दिवाकृतं, मलं) दिनके मलिन संस्कारों को (हन्ति) नाश करता है ॥

भाष्य—प्रातःकाल की संध्या से रात्रि भर के और सायं सन्ध्या से दिनभर के कुसंस्कारों का पुरुष नाश करता है अर्थात् जिसप्रकार निवास स्थान में प्रतिदिन सायं प्रातः शुद्धि की आवश्यकता है इसी प्रकार मनुष्य के इस हृदय मन्दिर में भी शुद्धि

की आवश्यकता है और वह शुद्धि प्रातः सायंकाल की सन्ध्या से हीं होसकती है ॥

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥९७॥

पदा०—(यः) जो द्विज (पूर्वां, न, तिष्ठति) प्रातः संध्या नहीं करता (तु) और (यः) जो (पश्चिमां, न, उपास्ते) सायं काल को भी सन्ध्योपासन नहीं करता (सः, सर्वस्मात) उसको सब (द्विजकर्मणः) द्विजकर्मों से (शूद्रवत) शूद्र के तुल्य (वहिष्कार्यः) वाहर करदेना चाहिये ॥

भाष्य—जो द्विज प्रातः सायंकाल सन्ध्योपासन नहीं करता उसको सम्पूर्ण द्विजकर्मों से शूद्र के समान वाहर कर देना चाहिये अर्थात् जिस प्रकार शूद्र को द्विजों के यज्ञादि कर्मों में अधिकार नहीं इसी प्रकार वह भी शूद्रवत होने से शुभकर्मों में सम्मिलित होने का पात्र नहीं ॥

सं०—अव सन्ध्या करने योग्य देश का विधान करते हैं :—

अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः ।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः ॥ ९८ ॥

पदा०—(अरण्यं, गत्वा) निर्जन देश में जाकर (अपां, समीपे) जल के समीप (नियतः, समाहितः) नियम पूर्वक अनन्य चित्त वाला (नैत्यकं, विधिं) सन्ध्यावन्दनादि नित्यविधि को (आस्थितः) आश्रय करता हुआ (सावित्रीं, अपि) गायत्री का भी (अधीयीत) जप करे ॥

भाष्य–द्विज को उचित है कि वह नित्यप्रति एकान्त स्थान में किसी जलाशय के समीप जाकर समाहित चित्त हो नियम पूर्वक सन्ध्योपासन तथा गायत्री का जप करे ॥

सं०–अब नित्यकर्मों में अनध्याय का निषेध कथन करते हैं:–

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यिके ।
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ॥ ९९ ॥

पदा०–(एव) निश्चय करके (वेदोपकरणे) वेद के साधनों में (नैत्यिके) नित्यकर्त्तव्य (स्वाध्याये) स्वाध्याय में (च) और (होममन्त्रेषु) होम के मन्त्रों में (अनध्याये, अनुरोधः) अनध्यायों का अनुरोध (नास्ति) नहीं है ॥

भाष्य–वेद के उपयोगी अङ्ग, उपाङ्ग तथा नित्यप्रति वेद के पढ़ने पढ़ाने, अग्निहोत्रादियज्ञों के करने कराने, और यज्ञों के उपयोगी मन्त्रों के अध्ययनाध्यापन में अनध्याय का विधान नहीं अर्थात् यह कर्म नित्य कर्तव्य हैं ॥

नैत्यिके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत्स्मृतम् ।
ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यमनध्याय वषट्कृतम् ॥ १०० ॥

पदा०–(नैत्यिके) नित्यकर्मों में (अनध्यायः, नास्ति) अनध्याय नहीं (हि) क्योंकि (तत्) नित्यकर्म (ब्रह्मसत्रं, स्मृतं) ब्रह्मयज्ञ कथन किये गये हैं और (ब्रह्माहुति, हुतं) वेदरूपी आहुति से हवन किया हुआ (वषट्कृतं, पुण्यं) वषट्कृत पुण्य है ॥

यः स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिना नियतः शुचिः ।
तस्य नित्यं क्षरत्येष पयोदधि घृतं मधु ॥ १०१ ॥

पदा०–(यः, अब्दं) जो पुरुष एकवर्ष पर्यन्त (नियतः)

नियम में स्थित होकर (विधिना, शुचिः) विधिपूर्वक पवित्र हो (स्वाध्यायं, अधीते) स्वाध्याय करता है (तस्य, एषः) उसको स्वाध्याय (नित्यं) निरन्तर (पयः, दधि, घृतं, मधु) दूध, दधि, घी, शहद (क्षरति) वर्षाता है ॥

भाष्य—जो पुरुष एकवर्ष पर्यन्त नियम से पवित्र होकर विधि पूर्वक वेद का स्वाध्याय तथा गायत्री का जप करता है उसका दूध, दधि, घृत, मधु यह चार पदार्थ प्राप्त होते हैं अर्थात् वेद का स्वाध्याय करनेवाला पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप मनुष्य जन्म के फलचतुष्टय को प्राप्त होता है, यहां दूध आदि फल-चतुष्टय के उपलक्षण हैं ॥

अग्नीन्धनं भैक्षचर्यामधःशय्यां गुरोर्हितम् ।
आसमावर्त्तनात्कुर्यात्कृतोपनयनो द्विजः ॥ १०२ ॥

पदा०—(कृतोपनयनः, द्विजः) यज्ञोपवीत संस्कारयुक्त द्विज (आसमावर्त्तनात्) समावर्त्तनसंस्कारपर्यन्त (अग्नीन्धनं) अग्निहोत्र (भैक्षचर्यां) भिक्षा मांगना (अधःशय्यां) पृथिवी पर शयन तथा (गुरोः, हितं) गुरु का प्रियाचरण (कुर्यात्) करे ॥

भाष्य—उपनयनसंस्कारयुक्त ब्रह्मचारी समावर्त्तन संस्कार पर्य्यन्त अर्थात् जबतक गृहस्थाश्रम में प्रवेश न करे तब तक प्रातः सायं अग्निहोत्र करना, भिक्षा मांगकर खाना, भूमि पर शयन और हितपूर्वक गुरु की सेवा में तत्पर रहे ॥

सं०—अब अध्यापन योग्य शिष्यों का वर्णन करते हैं :—

आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः ।
आप्तः शक्तोऽर्थदः साधुः स्वोऽध्याप्या दश धर्मतः ॥ १०३ ॥

पदा०-(आचार्यपुत्रः) आचार्य्य का पुत्र (शुश्रूषुः) सेवा करने वाला (ज्ञानदः) ज्ञान का देने वाला (धार्मिकः) धर्मात्मा (शुचिः) पवित्र रहने वाला (आप्तः) यथार्थवक्ता (शक्तः) बुद्धिसम्पन्न (अर्थदः) दान देने वाला (साधुः) सरलस्वभाव वाला और (स्वः) अपना कुटुम्बी (दश, अध्याप्याः) इन दश को पढ़ाना (धर्मतः) धर्म है ॥

भाष्य-आचार्य=वेदवेदाङ्ग जानने वाले का पुत्र, श्रद्धापूर्वक सेवा करनेवाला, बहुश्रुत होने से ज्ञानान्तर का देने वाला, धर्मात्मा बाहर भीतर से शुद्ध, सत्यवादी विचित्रबुद्धि वाला, परोपकारार्थ अपने पदार्थ देने में निर्लोभ, सरलस्वभाव और अपना कुटुम्बी इन दश को अध्यापक अपना धर्म समझकर पढ़ावे अर्थात् इनसे किसी प्रत्युपकार की इच्छा न रक्खे ॥

नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्नचान्यायेन पृच्छतः ।
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ॥ १०४ ॥

पदा०-(अपृष्टः) विना पूछे (च) अथवा (अन्यायेन, पृच्छतः) छल कपट से पूछे जाने पर (कस्यचित्) किसी से भी (न, ब्रूयात्) न बोले (हि) किन्तु (जानन्, अपि) जानता हुआ भी (मेधावी) विद्वान् (लोके) संसार में (जडवत्,आचरेत्) अनजान जैसा आचरण करे ॥

अधर्मेण चयः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति ।
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाधिगच्छति ॥ १०५ ॥

पदा०-(यः, अधर्मेण, प्राह) जो अधर्म से कहता (च) और (यः, अधर्मेण, पृच्छति) जो अधर्म से पूछता है

(तयोः,अन्यतरः) उन दोनों में से एक (भैति) नाश को प्राप्त होता (वा) अथवा (विद्वेषं) द्वेषभाव को (अधिगच्छति) प्राप्त होता है ॥

सं०—अब अनधिकारी को विद्यादान का निषेध कथनकरते हैं:—

धर्माथौं यत्र न स्यातां शुश्रूषा वापि तद्विधा ।
तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं वीजमिवोषरे ॥ १०६ ॥

पदा०—(यत्र) जिस शिष्य में (धर्माथौं) धर्म, अर्थ (न, स्यातां) न हों (वा) अथवा (तद्विधा) शास्त्रविहित (शुश्रूषा, अपि) सेवा भी न हो (तत्र) उस शिष्य को (शुभं, वीजं) उत्पन्न होने योग्य वीज को (ऊषरे, इव) ऊसर भूमि में वोने की भांति (विद्या) विद्या (न, वक्तव्या) न पढ़ावे ॥

विद्ययैव समं कामं मर्त्तव्यं ब्रह्मवादिना ।
आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनामिरिणेवपेत् ॥१०७॥

पदा०—(ब्रह्मवादिना) वेद के जानने वाले ब्रह्मवादी को (विद्यया, समं, कामं) चाहे विद्या के साथ (एव) ही (मर्त्तव्यं) मरना पड़े परन्तु (घोरायां, आपदि, अपि) घोर विपत्ति में भी (एनां) इस विद्या को (इरिणे, न, वपेत्) ऊपर भूमि में न वोवे ॥

भाष्य—धार्मिक, उत्साही, आलस्यरहित, नियमपूर्वक कार्य करने वाला, गुरुसेवा में निरन्तर रत, इत्यादि गुण सम्पन्न शिष्य को आचार्य्य विद्या दान दे और जो उक्त गुण सम्पन्न नहीं उसको न दे अर्थात् चाहे वेदज्ञ पुरुष को विद्या साथ लिये हुए ही मरना पड़े परन्तु घोर आपत्ति में भी कुशिष्य को विद्या न पढ़ावे, क्योंकि कुसंस्कारी को विद्यादान देना अनर्थ का हेतु होता है ॥

विद्याब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम्।
असूयकाय मां मादास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा ॥ १०८ ॥

पदा०-(विद्या, ब्राह्मणं) विद्या ब्राह्मण को (एत्य, आह) प्राप्त होकर बोली कि हे ब्राह्मण (ते, शेवधिः, अस्मि) मैं तेरा निधि हूं (मां, रक्ष) तू मेरी रक्षा कर (मां) मुझे (असूयकाय, मा, दाः) निन्दक को मत दे (तथा) इस प्रकार की रक्षा से (वीर्यवत्तमा, स्यां) मैं बड़े पराक्रम वाली होऊंगी ॥

भाष्य-विद्या ब्राह्मण से बोली कि हे ब्राह्मण! मैं तेरी निधि हूं तू मेरी रक्षा कर अर्थात् निन्दक, छली, कपटी पुरुषों को मुझे मत दे, इस प्रकार सुरक्षित हुई मैं बड़े पराक्रम वाली रहुंगी, आशय यह है कि जिसप्रकार तांबे के पात्र में दधि विष होजाता है इसी प्रकार विद्या भी निन्दक पुरुष के पास पहुंचकर निन्दा को प्राप्त होती है, इसलिये अधिकारी को ही विद्या दान देना चाहिये अनधिकारी को नहीं ॥

यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतं ब्रह्मचारिणम् ।
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने ॥१०९॥

पदा०-(यं, नियतं, ब्रह्मचारिणं) जिसको नियम से ब्रह्मचारी (शुचिं) पवित्र (अप्रमादिने) आलस्य रहित (विद्यात्) जाने (तस्मै, निधिपाय) उस निधि के रक्षक (विप्राय) ब्राह्मण के लिये (मां, ब्रूहि) मुझको कह ॥

भाष्य-इस श्लोक में अलंकार द्वारा वर्णन कियागया है कि विद्या ने ब्राह्मण से कहा कि हे ब्राह्मण! जो पुरुष अखण्डित ब्रह्मचारी, पवित्र, प्रमाद से रहित, विद्या रूप कोष की रक्षा में तत्पर

तथा अपने कर्तव्य को पालन करने वाला हो उसीको मुझे दे और ब्रह्मचर्यादि व्रतों से शून्य अनधिकारी को न दे ॥

ब्रह्म यस्त्वननुज्ञातमधीयानादवाप्नुयात् ।
स ब्रह्मस्तेयसंयुक्तो नरकं प्रतिपद्यते ॥ ११० ॥

पदा०—(यः, अननुज्ञातः) जो गुरु की आज्ञा से बिना (अधीयानात्) अन्य किसी से अभ्यास करते अथवा पढ़ते हुए से (ब्रह्म, अवाप्नुयात्) वेदविद्या को ग्रहण करता है (सः, ब्रह्मस्तेयसंयुक्तः) वह वेद पढ़ने की चोरी रूप अधर्म से युक्त हुआ (नरकं, प्रतिपद्यते) दुख को प्राप्त होता है ॥

सं०—अब गुरु के प्रति अभिवादन का प्रकार कथन करते हैं :—

लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च ।
आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ॥ १११ ॥

पदा०—(लौकिकं) लौकिक (अपि, वा) अथवा (वैदिकं) वैदिक (तथा) तथा (आध्यात्मिकं, एव) आध्यात्मिक ही (ज्ञानं) ज्ञान (यतः, आददीत) जिससे ग्रहण करे (तं, पूर्वं) उसको पहले (अभिवादयेत्) अभिवादन करना चाहिये ॥

भाष्य—आयुर्वेद तथा कलाकौशलादि लौकिक वा वेदोक्त कर्मकाण्डादि वैदिक अथवा "आध्यात्मिक"=प्रकृति, जीव तथा परमात्म सम्बन्धी ज्ञान की शिक्षा जिस अध्यापक से ग्रहण की हो उसको सबसे प्रथम प्रणाम करे ॥

सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः ।
नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥११२॥

पदा०—(सुयन्त्रितः) शास्त्रोक्त विधि निषेध में तत्पर (सावित्रीमात्रसारः, अपि) केवल गायत्री का ही अनुष्ठानी (विप्रः) ब्राह्मण (वरं) श्रेष्ठ है और (त्रिवेदोऽपि, अयन्त्रितः) तीनों वेद पढ़ा हुआ भी वेदोक्त मर्यादा का त्यागी (सर्वाशी) सर्वभक्षी तथा (सर्व, विक्रयी) सब पदार्थों का विक्रेता (न) श्रेष्ठ नहीं ॥

भाष्य—जो द्विज शास्त्रोक्त मर्यादानुसार विचरता हुआ केवल गायत्रीमात्र का ही अनुष्ठान करता है वह श्रेष्ठ है और जो चाहे तीनों वेदों का पढ़ा हुआ हो परन्तु वैदिकमर्यादा से च्युत मांसादि अभक्ष्य पदार्थों को भक्षण करने वाला तथा मद्यादि का विक्रेता माननीय नहीं ॥

सं०—अब वृद्ध तथा ऐश्वर्यसम्पन्न पुरुष के प्रति अभिवादन कथन करते हैं :—

शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् ।
शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ॥ ११३ ॥

पदा०—(श्रेयसा) गुरु के सुखदायक (अध्याचरिते) शय्या वा आसन पर शिष्य (न, समाविशेत) न बैठे (च) और (शय्यासनस्थः) अपनी शय्या वा आसन पर बैठा हुआ (एनं) गुरुजनों को आता देख (प्रत्युत्थाय) उठकर (अभिवादयेत) अभिवादन करे ॥

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते ॥ ११४ ॥

पदा०—(स्थविरे, आयति) ज्येष्ठ पुरुषों को आता देखकर (यूनः, प्राणाः) छोटे पुरुष के प्राण (हि) निश्चयकरके (ऊर्ध्वं,

उत्क्रामन्ति) ऊपर को निकलने लगते हैं, ऐसी अवस्था में (प्रत्यु-त्थानाभिवादाभ्यां) नम्रतापूर्वक उठकर प्रणाम करने से (पुनः, तान्) फिर उन प्राणों को (प्रतिपद्यते) प्राप्त होता है ॥

भाष्य-वृद्ध तथा ऐश्वर्य सम्पन्न पुरुष के सन्मुख आने पर अल्पतेज वाले पुरुष के प्राण ऊर्ध्वगति को प्राप्त होते हैं अर्थात् चित्त में उद्विग्नता होती है और जब नम्रतापूर्वक प्रणाम करे तब अभिवादन कर्ता का चित्त स्वस्थ होजाता है, इसलिये अपने से ज्येष्ठ पुरुष के निकट जाने वा उनके समीप आने पर नम्रतापूर्वक अभिवादन करे ॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्यायशोबलम् ॥११५॥

पदा०-(नित्यं, वृद्धोपसेविनः) नित्य वृद्धों की सेवा तथा (अभिवादनशीलस्य) नम्रतापूर्वक अभिवादन करने वाले पुरुष की (आयुः) आयु (विद्या) विद्या (यशः, बलं) यश, बल यह (चत्वारि) चार (वर्द्धन्ते) बढ़ते हैं ॥

भाष्य-जो पुरुष नम्रतापूर्वक वृद्धों को अभिवादन तथा उनकी सेवा में तत्पर रहता है उसकी आयु आदि उक्त चारो वृद्धि को प्राप्त होते हैं अर्थात् सत्कारपूर्वक वृद्धों से शिक्षा ग्रहण करने वाले का जीवन पवित्र होकर आयु आदि चारो बढ़ते हैं ॥

अभिवादात्परं विप्रो ज्यायांसमभिवादयन् ।
असौनामाहमस्मीति स्वंनामपरिकीर्त्तयेत् ॥११६॥

पदा०-(ज्यायांसं, अभिवादयन्) वृद्ध पुरुष को अभिवादन करता हुआ (विप्रः) बुद्धिमान् (अभिवादात्, परं) अभिवादन वाक्य से पीछे (असौ, नामा) इस नाम वाला (अहं, अस्मि)

मैं हूं (इति, स्वं, नाम) इस प्रकार अपना नाम (परिकीर्त्तयेत्) उच्चारण करे ॥

भाष्य—किसी वृद्ध पुरुष को अभिवादन करता हुआ अन्त में अपना नाम उच्चारण करे, जैसे "अभिवादयेदेवदत्तशर्म्माहमस्मि"=मैं देवदत्तशर्मा अभिवादन करता हूं ॥

भोः शब्दं कीर्त्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने ।
नाम्नां स्वरूपभावो हि भोभाव ऋषिभिः स्मृतः ॥१२७

पदा०—(अभिवादने) अभिवादन वाक्य में (स्वस्य, नाम्नः) अपने नाम के (अन्ते) अन्त में (भोः, शब्दं, कीर्त्तयेत्) भो शब्द का उच्चारण करे (हि) क्योंकि (भोभावः) "भो" शब्द का अर्थ (नाम्नां) नामों की (स्वरूपभावः) सत्ता को जतानेवाला (ऋषिभिः, स्मृतः) ऋषियों ने कहा है ॥

भाष्य—अभिवादनकर्त्ता अभिवादन वाक्य में अपने नाम के अनन्तर "भोः" शब्द का उच्चारण मान्य पुरुष के सम्बोधन करने के लिये करे, जैसे "अभिवादये देवदत्तशर्माहमस्मि भोः"= मैं देवदत्तशर्मा आपको अभिवादन करता हूं, इस "भोः" शब्द के उच्चारण का आशय यह है कि अपने से ज्येष्ठ माननीय पुरुष का नाम न ले किन्तु उनके नाम की पूर्त्ति के निमित्त "भोः" शब्द कहे, इसी कारण ऋषिमुनियों ने इस शब्द को नाम के स्वरूप की सत्ता जताने के अभिप्राय से वर्णन किया है ॥

आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ।
अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ॥१२८

पदा०—(अभिवादने, विप्रः) प्रत्यभिवादन में ब्राह्मण (आयुष्मान्, भव, सौम्य) हे सौम्य ! तू दीर्घायु हो (इति, वाच्यः) इस प्रकार कहे (च) और (अस्य, नाम्नः, अन्ते) इस अभिवादन कर्त्ता के नाम के अन्त में (पूर्वाक्षरः, अकारः) प्रथम अक्षर अकार को (प्लुतः, वाच्यः) प्लुत उच्चारण करे ॥

भाष्य—आशीर्वाद देने वाला विचारशील द्विज "आयुष्मान् भव सौम्य"=हे सौम्य ! बड़ी आयु वाला हो, इस प्रकार कहे, उक्त श्लोक में जो सौम्य शब्द से परे "इति" शब्द है वह प्रकार का वाचक है, जिसका तात्पर्य यह है कि इससे "आयुष्मानेधि" "चिरंजीव" "दीर्घायुर्भूयाः" इत्यादि वाक्य भी आशीर्वादात्मक समझने चाहियें, और नाम के अन्त में पूर्व अक्षर अकार को प्लुत उच्चारण करे, सो यहां इकारादि स्वर के उपलक्षणार्थ अकार कहागया है, क्योंकि "अच्" को ही प्लुत का विधान है और इकारान्तादि नाम भी शास्त्र से अविरुद्ध हैं. पूर्वाक्षर कहना व्यञ्जनान्त नाम में मुख्यतया चरितार्थ है, यथा—"आयुष्मानेधि देवदत्तशर्म३न्"=हे देवदत्त शर्मन् ! तेरी आयु दीर्घ हो, अथवा पूर्वाक्षर कहने से शर्म, वर्मादि पदों से पूर्व भी नामान्त स्वर भी प्लुत करना चाहिये यथा "आयुष्मान्भव-देवदत्त३शर्मन्" श्रेष्ठ जनों ने आशीर्वादात्मक वाक्यों में जो अधिकता से आयुवृद्धि का कथन किया है उसका तात्पर्य यह है कि आयु ही समस्त शुभकर्मों का मूल है, क्योंकि "जीवेम-शरदः शतम्"=मैं सौ वर्ष तक जीवित रहूं, इत्यादि मन्त्रों में आयु की ही प्रार्थना है ॥

योऽन वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् ।
नाभिवाद्यः स विदुषा यथाशूद्रस्तथैव सः ॥ ११९॥

पदा०-(यः, अभिवादस्य, प्रत्यभिवादनं) जो अभिवादन के प्रत्युत्तर को (न, वेत्ति) नहीं जानता (सः) उसको (विदुषा) विद्वान् (न, अभिवाद्यः) अभिवादन न करे, क्योंकि(यथा,शूद्रः) जैसा शूद्र है (तथा, एव, सः) वैसा ही वह है ॥

नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते ।
तान्प्राज्ञोऽहमितिब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्तथैव च ॥१२०॥

पदा०-(ये,केचित्) जो पुरुष (नामधेयस्य, अभिवादं) प्रत्यभिवादन का प्रकार (न, जानते) नहीं जानते (प्राज्ञः) बुद्धिमान् पुरुष (तान्) उनको (च) और (सर्वाः, स्त्रियः) सब स्त्रियों को (अहं) मैं प्रणाम करता हूं (तथा, इति) इस प्रकार (ब्रूयात्) कहकर अभिवादन करे ॥

भाष्य-जो व्याकरणादि शास्त्र नहीं जानते ऐसे अभिवादन योग्य पुरुषों को अभिवादन के अन्त में "अहम्" शब्द का प्रयोग करे, जैसे "अभिवादयेऽहमस्मि"=मैं अभिवादन करता हूं, इसी प्रकार शास्त्र की आज्ञानुकूल अभिवादन करने योग्य स्त्रियों को भी अभिवादन करता हुआ अपने नाम का उच्चारण न करे ॥

ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम् ।
वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥ १२१ ॥

पदा०-(समागम्य) समागम होने पर (ब्राह्मणं. कुशलं) ब्राह्मण से कुशल (क्षत्रबन्धुं) क्षत्रिय से (अनामयं) सेना की कुशल (च) और (वैश्यं, क्षेमं) वैश्य से क्षेम (एव) इसी प्रकार (शूद्रं) शूद्र से (आरोग्यं, पृच्छेत) आरोग्यता पूछे ॥

भाष्य-परस्पर मिलने पर यथोचित प्रणामादि के अनन्तर ब्राह्मण से वेदाध्ययनादि का निर्विघ्न होना, क्षत्रिय से सेना की कुशल, वैश्य से धनप्राप्ति तथा गौ आदि पशुओं की कुशल और शूद्र से शरीर की आरोग्यता पूछे ॥

अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् ।
भोभवत्पूर्वकंत्वेनमभिभाषेत धर्मवित् ॥ १२२ ॥

पदा०-(यः, दीक्षितः) जो दीक्षित (यवीयान्, अपि) अपने से छोटा भी (भवेत) हो (सः, नाम्ना) उसका नाम लेकर (अवाच्यः) न बुलावे (तु, धर्मवित) किन्तु धर्मज्ञपुरुष (एनं) उस दीक्षित को (भोभवत्पूर्वकं) "भो" अथवा "भवत" शब्द दीक्षित के नाम से पूर्व लगाकर (अभिभाषेत) भाषण करे ॥

भाष्य-जिसने ब्रह्मचर्य्य पूर्वक गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त की हो अथवा जो ज्योतिष्टोमादि यज्ञों का कराने वाला हो उसको "दीक्षित" कहते हैं, यदि दीक्षित पुरुष अपने से आयु में छोटा भी हो तब भी उसका केवल नाम लेकर न बुलावे किन्तु नाम से पूर्व "भो" अथवा "भवत्" शब्द युक्त करके सत्कारपूर्वक नाम का उच्चारण करे, ऐसा करने से पुरुष की विद्यादि की वृद्धि होती है ॥

परपत्नी तु या स्त्री स्यादसम्बन्धा च योनितः ।
तां ब्रूयाद्भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च ॥ १२३ ॥

पदा०-(च) और (या, स्त्री) जो स्त्री (योनितः, असम्बन्धा) अपने माता पिता के सम्बन्ध से रहित (परपत्नी) दूसरे की पत्नी (स्यात्) हो (तां) उससे बोलने की आवश्यकता होने पर (भवति) हे भवति ! (सुभगे) हे सुभगे ! अथवा (भगिनि) हे भगिनि ! (इति, एवं, ब्रूयात्) इस प्रकार बोले ॥

भाष्य-जो स्त्री अपने माता पिता के सम्बन्ध में न हो और अन्य किसी की स्त्री, कन्या अथवा बहिन हो उससे बोलने की आवश्यकता होने पर अपने से आयु में ज्येष्ठ हो तो "हे भवति"= आप शब्द से बोले और सम अवस्था की हो तो "हे सुभगे"= हे सौभाग्यवती ! और यदि छोटी हो तो "हे भगिनि" = हे बहिन ! ऐसा सम्बोधन करके बुलावे ॥

मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून् ।
असावहमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थाय यवीयसः ॥ १२४ ॥

पदा०-(मातुलांश्च) मामा (पितृव्यांश्च) चाचा, ताऊ (श्वशुरान्) श्वसुर (ऋत्विजः) यज्ञ करने वाला (गुरून्) अपने से ज्ञान, तप वा विद्या में बड़ा (यवीयसः) यह आयु में छोटे भी हों तब भी इनको आते देख (प्रत्युत्थाय) उठकर (असौ, अहं, इति) अमुक मैं हूं, इस प्रकार (ब्रूयात्) कहकर प्रणाम करे ॥

भाष्य-माता का भाई मामा, पिता का भाई चाचा, ताऊ,

अपनी स्त्री वा भावी का पिता = श्वसुर, यज्ञ कराने वाला=ऋत्विज, अपने से ज्ञान, तप वा विद्या में ज्येष्ठ, यह सब आयु में छोटे भी हों तब भी इनको आते देख उठकर "देवदत्तशर्माहम्" = मैं देवदत्त शर्मा हूं, इस प्रकार नाम उच्चारण करके प्रणाम करे ॥

मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा ।
सम्पूज्या गुरुपत्नीवत्समास्ता गुरुभार्यया ॥ १२५ ॥

पदा०—(मातृष्वसा) माता की भगिनी (मातुलानी) मामा की स्त्री (श्वश्रूः) सास (अथ, पितृष्वसा) और पिता की बहिन (ताः) यह सब (गुरुभार्यया) गुरुपत्नी के (समाः) समान हैं इसलिये इन सब का (गुरुपत्नीवत्) गुरुपत्नी के तुल्य (सम्पूज्या) सत्कार करे ॥

भाष्य—माता की भगिनि=मौसी, मामाकीस्त्री = मामी, अपनी स्त्री वा भावी की माता = सास और पिता की भगिनी यह सब गुरुपत्नी के समान पूज्य हैं अर्थात् इनको अभिवादन करके सत्कारपूर्वक आसन देना चाहिये ॥

भ्रातुर्भार्योपसंग्राह्या सवर्णाहन्यहन्यपि ।
विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः ॥१२६॥

पदा०—(सवर्णा, भ्रातुः, भार्या) अपने ज्येष्ठ भ्राता की स्त्री को (अहनि, अहनि) प्रतिदिन (अपि, उपसंग्राह्या) अवश्य प्रणाम करे (तु) और (विप्रोष्य) परदेश से आकर (ज्ञातिसम्बन्धियोषितः) अपने से ज्येष्ठ जातिसम्बन्ध वाली स्त्रियों को भी (उपसंग्राह्या) प्रणाम करे ॥

पितुर्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि ।
मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसि ॥१२७॥

पदा०-(पितुः, च, मातुः) पिता और माता की (भगिन्यां) वहिन (च) तथा (ज्यायस्यां, स्वसरि, अपि) अपनी ज्येष्ठ वहिन में भी (मातृवत्) माता के समान (वृत्तिं, आतिष्ठेत्) वर्त्ताव करे और (माता, ताभ्यः, गरीयसि) माता इन सबसे अधिक माननीय है ॥

दशाब्दाख्यं पौरसख्यं पञ्चाब्दाख्यंकलाभृताम् ।
त्र्यब्दपूर्वं श्रोत्रियाणां स्वल्पेनापिस्वयोनिषु॥१२८॥

पदा०-(पौरसख्यं, दशाब्दाख्यं) एक पुर निवासियों में दशवर्ष की वड़ाई छोटाई तक (पञ्चाब्दाख्यं, कलाभृतां) शिल्पादि कला कौशल जानने वालों में पांच वर्ष की न्यूनाधिकता होने पर (श्रोत्रियाणां, त्र्यब्दपूर्वं) वेद पढ़ने पढ़ाने वालों में तीन वर्ष का भेद होने पर और (स्वयोनिषु,स्वल्पेन,अपि)अपने कुटुम्ब में कतिपय मासों की ही न्यूनाधिकता से मित्रता=वरावरी का व्यवहार मानना चाहिये ॥

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्याभवति पञ्चमी ।
एतानिमान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥१२९॥

पदा०-(वित्तं, वन्धुः, वयः, कर्म) धन, वन्धु, आयु, कर्म और (पञ्चमी, विद्या) पांचवीं विद्या (एतानि, मान्यस्थानानि) यह मान के स्थान हैं और इनमें भी (यत्, यत्, उत्तरं) जो उत्तरोत्तर हैं (गरीयः, भवति) वह अधिक माननीय हैं ॥

भाष्य—जिस पुरुष के धन अधिक हो वह निर्धनों की अपेक्षा माननीय, धन वाले से जिसके पुरुष अधिक हों वह माननीय, और यदि धनाढ्य अथवा मनुष्यों वाले के पास कोई आयुवृद्ध पुरुष आवे तो वह इन दोनों से माननीय है, और आयुवृद्ध से वैदिककर्मों का अनुष्ठानी माननीय है और उससे भी ज्ञानवृद्ध माननीय है, आशय यह है कि जो ज्ञान में बड़ा है वह सब से बड़ा है, इसलिये उसकी पूजा सब से अधिक कर्त्तव्य है ॥

पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च ।
यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमींगतः ॥१३०॥

पदा०—(त्रिषु, वर्णेषु) ब्राह्मणादि तीनों वर्णों में (पञ्चानां) धनादि पूर्वोक्त पांचो गुणों में से (यत्र) जिस मनुष्य में (भूयांसि) अधिक (गुणवन्ति, स्युः) गुण हों (सः, अत्र, मानार्हः) वह इस संसार में मान योग्य है (च) और (दशमीं, गतः) नब्बे वर्ष से ऊपर की आयु को प्राप्त (शूद्रः, अपि) शूद्र भी माननीय है॥

सं०—अब कौन किसको मार्ग छोड़े यह कथन करते हैं:—

चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः ।
स्नातकस्य च राज्ञश्च पन्थादेयो वरस्य च ॥१३१॥

पदा०—(चक्रिणः) गाड़ी वाले को (दशमीस्थस्य) नब्बे वर्ष से अधिक अवस्था वाले को (रोगिणः) रोगी को (भारिणः) भार लेजाने वाले को (च) तथा (स्त्रियाः) स्त्री को (स्नातकस्य) ब्रह्मचारी को (च) और (राज्ञः) राजा (च) तथा (वरस्य) वर को (पन्था, देयः) मार्ग छोड़ना चाहिये ॥

भाष्य-रथ आदि सवारी पर चढ़े हुए पुरुष को, नव्वे वर्ष से अधिक आयुवाले को, रोगी को, भार लेजानेवाले को, स्त्री को, स्नातक ब्रह्मचारी को, राजा को और वर=जो विवाह के निमित्त जाता हो, इन आठों को मार्ग छोड़ना चाहिये अर्थात् सन्मुख आते हुए इन आठों को देखकर स्वयं एक ओर को हट जाना उचित है ॥

तेषां तु समवेतानां मान्यौ स्नातकपार्थिवौ ।
राजस्नातकयोश्चैव स्नातको नृपमानभाक् ॥१३२॥

पदा०-(तु) और (तेषां) पुरुषों के (समवेतानां) मार्ग में मिल जाने पर (स्नातकपार्थिवौ, मान्यौ) स्नातक तथा राजा को मार्ग देना चाहिये (च) और (राजस्नातकयोः) राजा तथा स्नातक के मिलने पर (स्नातक, एव) स्नातक का ही (मानभाक्) राजा को मान करना चाहिये ॥

भाष्य-उपरोक्त कथन किये हुये सब में राजा माननीय है और राजा से भी स्नातक=साङ्गोपाङ्गवेदों का अध्ययन करने वाला ब्रह्मचारी सर्वोपरि पूज्य है, सो यदि इनका कहीं मार्ग में संयोग होजाय तो "गाड़ीवाले" आदि को चाहिये कि स्नातक तथा राजा को मार्ग छोड़दें और राजा तथा स्नातक मिलजायं तो राजा को उचित है कि वह स्नातक को मार्ग छोड़कर एक ओर होजाय ॥

सं०-अब आचार्य्य, गुरु तथा उपाध्याय के लक्षण कथन करते हैं :-

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ १३३ ॥

पदा०-(यः, द्विजः) जो ब्राह्मण (शिष्यं, उपनीय) शिष्य का यज्ञोपवीत संस्कार करके (सकल्पं) कल्पसहित (च) तथा (सरहस्यं) उपनिषद्सहित (वेदं, अध्यापयेत्) वेद को पढ़ावे (तु) निश्चयकरके (तं, आचार्यं) उसको आचार्य (प्रचक्षते) कहते हैं ॥

एकदेशन्तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः ।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥१३४॥

पदा०-(यः) जो (वेदस्य, एकदेशं) वेद के एक स्थल को (अपि, वा) अथवा (वेदाङ्गानि) वेद के व्याकरणादि अङ्गों को (वृत्त्यर्थं) जीविका के निमित्त (अध्यापयति) पढ़ाता है (सः, पुनः) वह (तु) निश्चय करके (उपाध्यायः, उच्यते) उपाध्याय कहाता है ॥

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि ।
सम्भावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥१३५॥

पदा०-(यः, विप्रः) जो ब्राह्मण (निषेकादीनि, कर्माणि) गर्भाधानादि कर्मों को (यथाविधि) विधिपूर्वक (करोति) करता (च) और (अन्नेन) अन्न से (सम्भावयति) पोषण करता है (सः) वह (गुरुः, उच्यते) गुरु कहाता है ॥

अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान् ।
यः करोति वृत्तो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते ॥१३६॥

पदा०-(यः, वृत्तः) जो वर्ण किया हुआ ब्राह्मण (यस्य, अग्न्याधेयं) जिस यजमान के अग्निहोत्र (पाकयज्ञान्) दर्शपौर्णमासादि यज्ञ तथा (अग्निष्टोमादिकान्, मखान्) अग्निष्टोमादि यज्ञों

को (करोति) करता है (सः) वह यज्ञ करने वाला (तस्य) उस यजमान का (इह) इस लोक में (ऋत्विक्) ऋत्विक् (उच्यते) कहाता है ॥

सं०—अब वेद के अध्यापक वा आचार्य को सबसे श्रेष्ठ कथन करते हैं :—

य आवृणोत्यऽवितथं ब्रह्मणा श्रवणावुभौ ।
स माता स पिता ज्ञेयस्तन्नद्रुह्येत्कदाचन ॥१३७॥

पदा०—(यः) जो वेदाध्यापक ब्राह्मण (उभौ, श्रवणौ) दोनों कानों को (अवितथं, ब्रह्मणा) वर्ण स्वर सहित वेद के अध्यापन द्वारा (आवृणोति) भर देता है (स, माता, स, पिता) उसी को माता पिता (ज्ञेयः) जानना चाहिये और (तं, कदाचन) उससे कभी भी (न, द्रुह्येत) द्रोह न करे ॥

भाष्य—जो वेदाध्यापक आचार्य अङ्ग उपाङ्ग तथा वर्णस्वर सहित पवित्र वेद के शब्दार्थ सम्बन्ध तथा गूढ़ाशय को कानों द्वारा आत्मा को ज्ञान कराता है, शिष्य को चाहिये कि उसको माता पिता मानता हुआ उससे कभी विरुद्ध आचरण न करे किन्तु सदा ही उसके अनुकूल रहे ॥

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्रन्तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥१३८॥

पदा०—(दश, उपाध्यायान्) उपाध्याय की अपेक्षा दशगुना (आचार्यः) आचार्य का (आचार्याणां, शतं) आचार्य से सौ गुना (पिता) पिता का (तु) और (सहस्रं, पितॄन्) पिता से

हज़ार गुना (माता) माता का (गौरवेण, अतिरिच्यते) गौरव कथन किया गया है ॥

भाष्य–उपाध्याय की अपेक्षा दशगुना आचार्य, आचार्य से सौगुना पिता और पिता से हज़ार गुना माता का गौरव अधिक है अर्थात् माता का मान्य सबसे मुख्य है, क्योंकि पहला आचार्य वही है जो मातृभाषा की शिक्षा देती है जिसके द्वारा बालक अन्य विद्याओं को सीखता है ॥

उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् ब्रह्मदः पिता ।
ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम्॥१३९॥

पदा०–(उत्पादकब्रह्मदात्रोः) उत्पन्न करने वाला और वेद का ज्ञान दाता इन दोनों में (ब्रह्मदः, पिता, गरीयान्) वेद का ज्ञान देने वाला पिता बड़ा है (हि) क्योंकि (विप्रस्य) ब्राह्मण का (ब्रह्मजन्म) ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी जन्म (इह) इसलोक (च) तथा (प्रेत्य, च) परलोक में (शाश्वतं) निरन्तर शुभफल देने वाला होता है ॥

भाष्य–शरीर को उत्पन्न करने वाला पिता तथा वेद का ज्ञान दाता आचार्य इन दोनों में वेदाध्यापक=आचार्य्य अधिक माननीय है, क्योंकि विद्यागुरु के संयोग से प्राप्त जन्म ही इस लोक तथा परलोक में "शाश्वत"=स्थिर फल का हेतु है, आशय यह है कि जिसका ब्रह्मजन्म नहीं हुआ वह द्विज नाममात्र का द्विज है वस्तुतः उसमें द्विजत्व धर्म नहीं होता, इसी अभिप्राय से मनुजी ने अन्यत्र लिखा है कि "जन्मनः जायते-शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते"=सब मनुष्य जन्म से शूद्र

होते हैं और पुनः संस्कार से द्विज बनते हैं, "यथा काष्ठमयो-हस्ती यथा चर्ममयो मृगः" = जैसा काष्ठ का हाथी, चर्म का मृग, इसी प्रकार विद्याहीन ब्राह्मण नाममात्र का ब्राह्मण होता है वास्तविक नहीं ॥

कामान्माता पिता चैनं यदुत्पादयतोमिथः ।
सम्भूतिं तस्य तां विद्याद्यद्योनावभिजायते॥१४०॥

पदा०—(च) और (यद) जो (माता, पिता) मातापिता (एनं, कामात) कामवश हो इस पुत्र को (मिथः, उत्पादयतः) परस्पर संयोग से उत्पन्न करते हैं (तां) उस (योनौ) गर्भ से (अभिजायते) उत्पन्न हुए (तस्य) पुत्र के (सम्भूतिं) शरीर का स्वामी माता पिता को (विद्यात) जानना चाहिये ॥

भाष्य—प्रायः लोक में देखा जाता है कि स्त्री पुरुष प्रायः कामवश होकर ही गर्भाधान द्वारा सन्तान उत्पन्न करते हैं, उनका यह उद्देश्य नहीं होता कि सन्तान को योग्य बनावें, और आचार्य विद्याद्वारा इसके जीवन को पवित्र करता है जिससे वह सुखी होकर लोक को सुखी करने की चेष्टा वाला होता है, इसलिये उत्पादक पिता से आचार्य श्रेष्ठ है ॥

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः ।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साऽजराऽमरा ॥१४१॥

पदा०—(तु) निश्चयकरके (वेदपारगः, आचार्यः) वेदपारग आचार्य (अस्य) इस बालक की (विधिवत) शास्त्रानुसार (यां, जातिं) जिस जाति को (सावित्र्या) गायत्री द्वारा

(उत्पादयति) उत्पन्न करता है (सा, सत्या) वह जाति सत्य तथा (सा, अजरा, अमरा) अजर, अमर है ॥

भाष्य—उत्पत्तिमात्र की जाति को प्रथम गौण सिद्ध कर आये हैं अब मुख्य जाति का वर्णन करते हैं, जिस जाति को आचार्य गायत्री से उत्पन्न करता है वही मुख्य है अर्थात् ब्रह्मचर्यादि व्रतों द्वारा वेदवेदांगों के अध्ययन से आचार्य यदि क्षत्रिय जाति में उत्पन्न पुरुष को ब्राह्मण बना देता है तो वह ब्राह्मण बनजाता है और यदि ब्राह्मण को क्षत्रिय बनादेता है तो वह क्षत्रिय बनजाता है, जैसाकि "वीतहव्य" क्षत्रिय को भृगु ने उपदेश द्वारा ब्राह्मण बनाया, और भी विश्वामित्र तथा मतङ्ग आदिकों के अनेक दृष्टान्त हैं जो विद्याध्ययन द्वारा उच्च जाति में प्रविष्ट हुए, इसलिये ब्रह्म जन्म ही ब्राह्मणादि वर्णों का हेतु है रज वीर्यसंयोगज प्राकृत जन्म नहीं ॥

सं०—अब विद्या से पुरुष की ज्येष्ठता कथन करते हैं:—

अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः ।
तमपीह गुरुं विद्याच्छ्रुतोपक्रियया तया ॥ १४२ ॥

पदा०—(यः) जो अध्यापक (यस्य) जिस पुरुष का (श्रुतस्य) वेद सम्बन्धि (अल्पं, वा, बहु, वा) थोड़ा अथवा बहुत (उपकरोति) उपकार करे (तया, श्रुतोपक्रियया) उस वेदाध्ययनरूप उपकार के कारण (इह, तं, अपि) उसको भी (गुरुं, विद्यात्) गुरु जाने ॥

भाष्य-यह प्रथम कथन कर आये हैं कि माता पिता से आचार्य का पद विशेष है, क्योंकि वह मनुष्य के जीवन को पवित्र बनाता है, इसी भाव को यहां स्फुट किया है कि जो अध्यापक थोड़ा बहुत ही ब्रह्मज्ञान का उपदेश करता है वह भी गुरु के समान माननीय है, क्योंकि वह कल्याणप्रद तथा सन्मार्ग बतलानें वाला है ॥

ब्राह्मस्य जन्मनः कर्त्ता स्वधर्मस्य च शासिता ।
बालोऽपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः ॥१४३॥

पदा०-(ब्राह्मस्य, जन्मनः, कर्त्ता) उपनयन आदि संस्कार तथा वेदार्थ बोध का कर्त्ता (च) और (स्वधर्मस्य) अपने धर्म की (शासिता) शिक्षा देने वाला (विप्रः) ब्राह्मण (बालः, अपि) आयु में न्यून भी हो तब भी (वृद्धस्य) वृद्ध विद्यार्थी का (धर्मतः) धर्म से (पिता, भवति) पिता होता है ॥

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः ।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥१४४॥

पदा०-(वै) निश्चय करके (अज्ञः, बालः, भवति) अज्ञानी पुरुष बालक (एव) और (मन्त्रदः, पिता, भवति) विद्या दाता पिता होता है (हि) इसलिये (अज्ञं, बालं) अज्ञानी को बालक (तु) और (मन्त्रदं, पिता) विद्यादाता को पिता (इति, आहुः) कथन किया है ॥

भाष्य-वेद के सिद्धान्त को न जानने वाला अज्ञानी आयु में ज्येष्ठ होने पर भी बालक और अवस्था में छोटा भी अविद्या

कृत दुःख से बचाने वाला पिता होता है, क्योंकि महर्षियों ने अज्ञानी को बालक और वेद की शिक्षा देने वाले को पिता कहा है ॥

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥ १४५ ॥

पदा०—(नः) हमारे मध्य में (न, हायनैः) न वर्षों से (न, पलितैः) न श्वेत बाल होने से (न, वित्तेन) न बहुत धन से (न, बन्धुभिः) न अधिक कुटुम्ब के होने से (महान्) बड़ा होता है किन्तु (यः, अनूचानः) जो वेदवेदाङ्गों का ज्ञाता विद्वान् है (सः) वही सब से ज्येष्ठ है यह (धर्मं) धर्म व्यवस्था (ऋषयः, चक्रिरे) ऋषियों ने नियत की है ॥

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः ।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥ १४६ ॥

पदा०—(विप्राणां, ज्ञानतः) ब्राह्मणों की ब्रह्मज्ञान से (क्षत्रियाणां, वीर्यतः) क्षत्रियों की बल से (वैश्यानां, धान्यधनतः) वैश्यों की अन्न तथा धन से (एव) और (शूद्राणां, जन्मतः) शूद्रों की जन्म से ही (ज्यैष्ठ्यं) बड़ाई गिनी जाती है ॥

भाष्य—ब्राह्मण को वेद विद्या के अध्ययन पूर्वक धर्म की अधिकता से बड़ा मानागया है, क्षत्रियों को धनुर्वेद के अनुकूल युद्ध विद्या की अधिकता से, वैश्यों को अन्न, धन तथा गौ आदि पशुओं की अधिकता से और शूद्रों को केवल आयु के अधिक होने से ही बड़ा माना गया है ॥

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
यो वै युवाप्यधीयानस्तंदेवाः स्थविरं विदुः ॥१४७॥

पदा०—(येन) जिस आयु के कारण (अस्य) मनुष्य के जो (शिरः, पलितं) केश श्वेत होजाते हैं (तेन, वृद्धः) उस आयु की अधिकता से पुरुष वृद्ध (न, भवति) नहीं होता किन्तु (यः, युवा, अपि) जो युवा पुरुष भी (अधीयानः) विद्वान् हो (तं, देवाः) उसको विद्वान् लोग (वै) निश्चयकरके (स्थविरं, विदुः) वृद्ध कहते हैं ॥

भाष्य—शिर के केश श्वेत होजाने से पुरुष को विद्वान् लोग वृद्ध नहीं कहते किन्तु युवा पुरुष भी जो वेदवेत्ता हो वह बड़ा कहता है, आशय यह है कि विद्वान् अल्प अवस्था का भी ज्ञानवृद्ध होने के कारण आयु से बड़े पुरुषों को उसका मान करना चाहिये ॥

यथा काष्ठमयोहस्ती यथा चर्ममयोमृगः ।
यश्चविप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामविभ्रति ॥१४८॥

पदा०—(यथा, काष्ठमयः) जैसे काष्ठ का (हस्ती) हाथी (यथा, चर्ममयः, मृगः) जैसे चर्म का मृग (च) और (अनधीयानः, यः, विप्रः) विना पढ़ा हुआ ब्राह्मण (ते, त्रयः) यह पूर्वोक्त तीनों (नाम, विभ्रति) केवल नाममात्र के ही हैं ॥

भाष्य—जैसे काष्ठ का हाथी, चर्म का वना हुआ मृग यह जिसप्रकार वास्तविक हाथी, मृग से होने वाले कार्यों को नहीं करसक्ते, इसी प्रकार वेदादि शास्त्र न पढ़ा हुआ ब्राह्मण भी

विद्वान्‌ब्राह्मण के किसी धर्म को नहीं कर सक्ता, इस श्लोक में मनु जी ने यह स्पष्ट कर दिया कि ब्राह्मणादि वर्ण ब्राह्मणत्वादि धर्मों से बनते हैं जन्म से नहीं ॥

यथा षण्डोऽफलःस्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला ।
यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः॥१४९॥

पदा०-(यथा, स्त्रीषु) जैसे स्त्रियों में (षण्ढः, अफलः) नपुंसकपुरुष निष्फल है (यथा, गौः) जैसे गौ (गवि, अफला) गौ के विषय सन्तानोत्पत्ति में व्यर्थ है (च) और (यथा, अज्ञे) जैसे अज्ञानी ब्राह्मण को (दानं, अफलं) दान देना निष्फल है (तथा) इसी प्रकार (अनृचः, विप्रः) वेदाध्ययन से रहित ब्राह्मण (अफलः) व्यर्थ है ॥

भाष्य-जिस प्रकार नपुंसक में पुंसत्वधर्म नहीं होता तथा गौ से गौ में सन्तान उत्पन्न नहीं होती, इसी प्रकार अज्ञानी ब्राह्मण को दान देना निष्फल है, क्योंकि उसके दिये दान से भी किसी फल की सिद्धि नहीं होती, वेदवेदाङ्गों के ज्ञाता, सत्यवादी, धर्म प्रिय तथा अनुष्ठानी पुरुष को दिया हुआ दान ही सफल होता है, अधिक क्या वेदार्थज्ञान से शून्य ब्राह्मण सर्वथा व्यर्थ है ॥

सं०-अब मनुष्यमात्र के लिये अहिंसा धर्म का उपदेश करते हैं:-

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् ।
वाक्चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ॥१५०॥

पदा०-(धर्मं, इच्छता) धर्म की इच्छा वाले पुरुष को उचित है कि वह (मधुरा) मीठी (एव) तथा (श्लक्ष्णा) कोमल

(वाक्, प्रयोज्या) वाणी बोले (च) और (भूतानां) सब प्राणियों को (अहिंसया, एव) हिंसा रहित ही (श्रेयः, अनुशासनं) कल्याण की शिक्षा (कार्यं) करे ॥

भाष्य—किसी प्राणी को दुःख देने का नाम "हिंसा" और इससे विपरीत सुख पहुंचाने का नाम "अहिंसा" है, प्रत्येक पुरुष को उचित है कि वह किसी प्राणी की हिंसा न करता हुआ सदा ही अहिंसा पर दृष्टि रक्खे अर्थात् संसार के सम्पूर्ण प्राणियों से मधुरभाषण करता हुआ उनको शुभशिक्षा दे और धर्मोपदेश तथा शासन करते समय भी कोमलभाषण करे, ऐसे आचरणों वाला पुरुष धार्मिक कहलाता है ॥

यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा ।
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ॥१५१॥

पदा०—(यस्य, वाङ्मनसी) जिस पुरुष के मन, वाणी (सर्वदा, शुद्धे) सदा शुद्ध (च) तथा (सम्यक्) भले प्रकार (गुप्ते) रक्षित हैं (सः, वै) वह पुरुष निश्चय करके (वेदान्तोपगतं) वेदान्त से जानने योग्य (सर्वं, फलं) सम्पूर्ण फलों को (अवाप्नोति) प्राप्त होता है ॥

भाष्य—जिस पुरुष का शमदमादि साधनों से मन शुद्ध है तथा मौन अथवा मितभाषी होने से वाणी शुद्ध है वही पुरुष वेदान्त-शास्त्र प्रतिपाद्य मोक्षसुख को प्राप्त होता है अर्थात् मन के निरोध पूर्वक जितेन्द्रियता तथा मितभाषी होना यह दोनों भाव पुरुष को मोक्ष का अधिकारी बनाते हैं ॥

नारुन्तुदः स्यादार्त्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः ।
ययास्योद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत् ॥१५२॥

पदा०-(आर्त्तः, अपि) पुरुष दुःखित हुआ भी किसी का (अरुन्तुदः) मर्मच्छेदी (न, स्यात) न हो (न, परद्रोहकर्मधीः) न अन्य के द्रोह कर्म में बुद्धि दे (अस्य, यया, वाचा) इस पुरुष की जिस वाणी से (उद्विजते) अन्य को क्लेश हो (तां, अलोक्यां) उस असत्य वाणी को (न, उदीरयेत) उच्चारण न करे ॥

भाष्य-पुरुषको मधुर तथामितभाषी होना, क्रूरभाषण औरकिसी का मर्मच्छेदन न करना "अहिंसा" है, सो सुख की अभिलाषा वाले पुरुष को उचित है कि वह सदा ही अहिंसा धर्म का सेवन करे अर्थात् मर्मच्छेदन करने वाला वाक्य कभी किसी से न कहे और थोड़ा तथा मधुर बोलने वाला पुरुष सदा सुखी रहता है ॥

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ १५३ ॥

पदा०-(ब्राह्मणः) ब्राह्मण (सम्मानात, नित्यं) सन्मान से सदा (विषात, इव) विष की न्याईं (उद्विजेत) डरे (च) और (अवमानस्य, सर्वदा) अपमान की निरन्तर (अमृतस्य, इव) अमृत के तुल्य (आकाङ्क्षेत) इच्छा करे ॥

भाष्य-धर्म कोष के रक्षक ब्राह्मण को चाहिये कि स्तुति से विष तुल्य डरे और अपमान की अमृत के न्याईं अभिलाषा करे अर्थात् मान तथा अपमान रूप द्वन्द्व को सहे, क्योंकि मानापमानरूपी द्वन्द्वों से दूषित होकर पुरुष आत्मश्लाघी बनजाता

है और आत्मश्लाघी बनना उसकी अवनति का कारण है, जो अपनी त्रुटिओं पर दृष्टि रखकर काल व्यतीत करता है वह सदा ही उन्नत होता है, इसलिये पुरुष को उचित है कि वह अपनी विद्या तथा धर्म के अभिमान में आकर अपनी उन्नति का मार्ग न छोड़े ॥

सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबुद्ध्यते ।
सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति॥१५४॥

पदा०—(अवमतः, सुखं, शेते) अपमानित हुआ पुरुष सुख से सोता (च) और (सुखं, प्रतिबुद्ध्यते) सुख से जागता है पुनः जागकर (अस्मिन्, लोके) इस जगत् में (सुखं, चरति) सुख से विचरता है और (हि, अवमन्ता) निश्चयपूर्वक अपमान कर्त्ता (विनश्यति) नाश को प्राप्त होता है ॥

भाष्य—जो पुरुष अपमान को अमृत समान मानता है वह अन्य से अपमान को प्राप्त होकर भी सुखपूर्वक सोता, जागता है तथा जागकर इस जगत् में सम्पूर्ण कार्य सुखपूर्वक करता है परन्तु अपमानकर्त्ता नष्ट होजाता है, भाव यह है कि सहनशील तथा धैर्ययुक्त पुरुष ही इस संसार में बड़ा होता है और जो मिथ्या निन्दा स्तुति करके लोगों को अपमानित करता है वह क्षुद्र भावों वाला हुआ २ अन्त में नाश को प्राप्त होजाता है ॥

अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः ।
गुरावसन् सञ्चिनुयाद् ब्रह्माधिगमिकं तपः ॥१५५॥

पदा०—(अनेन, क्रमयोगेन) पूर्वोक्त क्रमानुसार शिक्षाओं

का पालन करता हुआ (संस्कृतात्मा, द्विजः) आत्म शुद्धि वाला द्विज (गुरौ, वसन्) गुरुकुल में वास करता हुआ (ब्रह्माधिगमिकं) वेदार्थप्राप्तिरूप (तपः) तप को (शनैः, सञ्चिनुयात्) संग्रह करे ॥

भाष्य—द्विज पूर्वोक्त विधि निषेध को मानता हुआ आत्मशुद्धि करके गुरुकुल में वसता हुआ वेदार्थ प्राप्ति रूप तप को धीरे २ सञ्चय करे, क्योंकि शास्त्रोक्त ज्ञान ही पुरुष को उच्च बनाता तथा सद्गति प्राप्त कराता है और जिसने गुरुकुल में वास न करके अपनी इन्द्रियों सहित मन को वशीभूत नहीं किया वह सदा ही दुःखी तथा लोक में निन्दा को प्राप्त होता है ॥

तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधिचोदितैः ।
वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना ॥१५६॥

पदा०—(तपोविशेषैः) विशेष तप (च) और (विधिचोदितैः) विधिपूर्वक विधान किये हुए (विविधैः, व्रतैः) नाना प्रकार के व्रतों द्वारा (सरहस्यः) अङ्ग उपांग सहित (कृत्स्नः, वेदः) सम्पूर्ण वेद (द्विजन्मना) द्विजाति को (अधिगन्तव्यः) पढ़ने चाहियें ॥

वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन् द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥१५७॥

पदा०—(तपः, तप्स्यन्) तप करने की इच्छा वाला (द्विजोत्तमः) ब्राह्मण (वेदं, एव) वेद का ही (सदा, अभ्यस्येत्) सदा अभ्यास करे (हि) क्योंकि (इह) इस शास्त्र में (वेदाभ्यासः) वेदाध्ययन ही (विप्रस्य, परं, तपः) ब्राह्मण का परम तप (उच्यते) कहा है ॥

आहैव स नखाग्रेभ्यः परमं तप्यते तपः।
यः स्रग्व्यपि द्विजोऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोऽन्वहम्॥१५८

पदा०-(यः, द्विजः) जो ब्राह्मण (स्रग्वी, अपि) गृहस्थी होकर भी (शक्तितः) यथाशक्ति (अन्वहं) प्रतिदिन नियम से (स्वाध्यायं) वेदाध्ययन (अधीते) करता है (सः) वह (आनखाग्रेभ्यः) नखपर्यन्त सम्पूर्ण शरीर से (ह, एव) निश्चय करके (परमं, तपः) परमतप (तप्यते) तपता है ॥

भाष्य-ब्रह्मचर्यपूर्वक सांगोपांग वेदाध्ययन करना शास्त्र ने ब्राह्मण का मुख्य कर्त्तव्य बतलाया है कि ब्राह्मण सत्य-भाषणादि तप तथा ब्रह्मचर्यादि व्रतों द्वारा वेद का अध्ययन करे, इस अध्ययन रूप तप के कारण ही ब्राह्मण को सर्वोपरि कथन किया गया है अर्थात् "ब्रह्म वेदं जानातीति ब्राह्मणः"=जो ब्रह्म=वेद का अध्ययनाध्यापन भलेप्रकार जानता है वही "ब्राह्मण" है, और यही ब्राह्मण के लिये परमतप माना गया है, ब्राह्मण को उचित है कि वह गृहस्थाश्रम में गृहस्थ सम्बन्धी व्यवहारों को करता हुआ भी नित्य नियमपूर्वक वेद का अध्ययनाध्यापन करता रहे, जो ब्राह्मण ऐसा करता है वह नख से शिखापर्यन्त सम्पूर्ण शरीर से तप तपता है और यही तप मनुष्यजन्म को उच्च बनाने वाला है ॥

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥१५९॥

पदा०-(यः, द्विजः) जो द्विज (वेदं, अनधीत्य) वेद को

न पढ़कर (अन्यत्र) अन्यत्र (श्रमं, कुरुते) श्रम करता है (सः, जीवन्, एव) वह जीता हुआ ही (सान्वयः) सपरिवार (आशु) शीघ्र (शूद्रत्वं) शूद्रभाव को (गच्छति) प्राप्त होजाता है ॥

भाष्य—जो द्विज वेद को छोड़कर पुराण, काव्यादि ग्रन्थों को पढ़ता है वह इसी जन्म में परिवार सहित शीघ्र ही शूद्रत्व को प्राप्त होजाता है, "वेद" शब्द यहां सब आर्ष ग्रन्थों का उपलक्षण है अर्थात् जो द्विज ब्रह्मचर्यपूर्वक व्याकरणादि सहित सब शास्त्रों का अध्ययन नहीं करता अथवा परा, अपरा दोनों प्रकार की विद्या को नहीं पढ़ता वह सम्पूर्ण कुटुम्बवर्ग के साथ शूद्रभाव को प्राप्त होजाता है ॥

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने ।
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ॥१६०॥

पदा०—(द्विजस्य, अग्रे) द्विज का प्रथम (अधिजननं) जन्म (मातुः) माता से (द्वितीयं, मौञ्जिबन्धने) दूसरा उपनयन संस्कार से और (तृतीयं, श्रुतिचोदनात्) तीसरा श्रुति की आज्ञानुसार (यज्ञदीक्षायां) यज्ञ दीक्षा से होता है ॥

तत्र यद् ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम् ।
तत्रास्य माता सावित्री पितात्वाचार्य उच्यते ।१६१

पदा०—(तत्र) उन तीनो जन्मों में (अस्य) इस द्विज का (मौञ्जीबन्धनचिन्हितं) मूंज की मेखला आदि चिन्हों वाला (यत्, जन्म) जो जन्म है (तत्र) उस जन्म में (अस्य) इस

बालक की (सावित्री, माता) गायत्री माता (तु) और (आचार्यः, पिता) आचार्य पिता (उच्यते) कहाता है ॥

वेदप्रदानादाचार्यं पितरं परिचक्षते ।
नह्यस्मिन्युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् १६२

पदा०—(वेदप्रदानात्, आचार्यं) वेद पढ़ाने से आचार्य को (पितरं) पिता (परिचक्षते) कहते हैं (आमौञ्जिबन्धनात्) वेदारम्भ से पहले २ (किञ्चित्, कर्म) कुछ भी कर्म (अस्मिन्) इस बालक के लिये (नहि, युज्यते) करना युक्त नहीं ॥

भाष्य—वेद के तत्वार्थ का बोधक होने से आचार्य पिता कहाता है, और उपनयन संस्कार रहित द्विजाति की श्रौतस्मार्त्त आदि शास्त्रोक्त सम्पूर्ण क्रियायें निष्फल होजाती हैं, अर्थात् यज्ञोपवीत संस्कार से पवित्र हुआ ही द्विज सम्पूर्ण शास्त्रोक्त कार्यों के करने का अधिकारी होता है और विना उपनयन से उसको वैदिक कर्मों में अधिकार नहीं है ॥

कृतोपनयनस्यास्य व्रतादेशनमिष्यते ।
ब्रह्मणो ग्रहणं चैव क्रमेण विधिपूर्वकम् ॥ १६३ ॥

पदा०—(कृतोपनयनस्य, अस्य) यज्ञोपवीत संस्कार युक्त द्विजको (व्रतादेशनं) यमनियमों का उपदेश (च) और (ब्रह्मणः, ग्रहणं) वेदका ग्रहण (विधिपूर्वकं, एव) विधिपूर्वक (क्रमेण, इष्यते) क्रम से इष्ट है ॥

भाष्य—सायं प्रातः सन्ध्याअग्निहोत्र करना, ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर क्रम पूर्वक सांगोपाङ्ग वेदों का अध्ययन करना इत्यादि उपदेश उपनयन संस्कार समय द्विजन्मा के लिये करना

विधान किया है इसलिये वेदारम्भ से पूर्व उपदेश का अधिकार नहीं ॥

सं०—अब ब्रह्मचारी के प्रतिदिन पालन करने योग्य नियमों का विधान करते हैं :—

सेवेतेमांस्तु नियमान् ब्रह्मचारी गुरौ वसन् ।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तपो वृद्ध्यर्थमात्मनः॥ १६४ ॥

पदा०—(तु) और (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी(आत्मनः, तपः, वृद्ध्यर्थं) अपने तप की वृद्धि के लिये (इन्द्रियग्रामं, सन्नियम्य) इन्द्रियों के समूह को रोककर (गुरौ, वसन्) गुरुके समीप निवास करता हुआ (इमान्, नियमान्) आगे लिखे हुए नियमों को (सेवेत) सेवन करे ॥

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम् ।
देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च ॥ १६५ ॥

पदा०—ब्रह्मचारी (नित्यं) प्रतिदिन (स्नात्वा, शुचिः) स्नान आदि से शुद्ध होकर (देवर्षिपितृतर्पणं) देव, ऋषि तथा आचार्य आदि पितरों को सन्तुष्ट (कुर्यात्) करे (हि, च) और निश्चयपूर्वक (देवताभ्यर्चनं) देवों का सत्कार करके (च, एव) पुनः (समिदाधानं) समिदाधान कर्त्तव्य है ॥

भाष्य—ब्रह्मचारी प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर स्नानादि से शुद्ध हुआ ऋषि, देव तथा पितरों को जलादि से तृप्त करे, अर्थात् उक्त महात्माओं को स्नानादि करावे, पश्चात् अपना नित्य कर्त्तव्यसमिदाधान करके होमद्वारा अग्निआदि देवताओं को तृप्त करे ॥

वर्जयेन्मधुमांसञ्च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः ।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥१६६॥

पदा०—(मधु) मद्य (मांसं) मांस (गन्धं) गन्ध (माल्यं) पुष्पों की माला (स्त्रियः) स्त्रियों में वास (रसान्) खट्टे आदि रस (शुक्तानि) कांजी आदि पदार्थ (च) और (यानि) जो (प्राणिनां, हिंसनं) प्राणियों की हिंसा है (सर्वाणि, वर्जयेत्) इन सबको ब्रह्मचारी छोड़ देवे ॥

भाष्य—मद्य, मांस, गन्ध, माला, आम्लादिरस, स्त्रीसङ्ग, सिरका आदि तीक्ष्ण पदार्थों का भक्षण और प्राणियों की हिंसा इन सब को ब्रह्मचारी त्याग देवे, यहां मांस की सन्निधि से "मधु" के अर्थ मादकद्रव्य के ही लेने चाहिये शहद के नहीं, और जो इसमें यह युक्ति देते हैं कि मद्य तो प्रथम ही निषिद्ध है पुनः उसका निषेध क्यों किया ? यह कथन इसलिये ठीक नहीं कि यह दोष तो मांस में भी आता है फिर उसका निषेध क्यों किया, "मधुमांस" का निषेध यहां अपूर्व विधि है और अपूर्व विधि में यह नियम नहीं होता कि प्राप्त पदार्थ का ही निषेध कियाजाय, किन्तु उस पदार्थ का भी निषेध किया जाता है जो राग से प्राप्त हो, जैसा कि "ब्राह्मणो न हन्तव्यः" ब्राह्मण का हनन न करे, इस स्थल में स्पष्ट है, ब्राह्मण का मारना किसी विधिवाक्य से प्राप्त नहीं किन्तु रागप्राप्त है इसलिये ब्राह्मणहनन का निषेध किया है, इसी प्रकार यहां रागप्राप्त पदार्थ का निषेध समझना चाहिये ॥

अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्त्तनं गीतवादनम् ॥१६७॥

पदा०—(अभ्यङ्गं) तैलादि का मर्दन करना (अक्ष्णोः, अञ्जनं) नेत्रों में अंजन लगाना (उपानच्छत्रधारणं) जूता तथा छाता धारण करना (कामं, क्रोधं) काम, क्रोध (लोभं, च) लोभ (नर्त्तनं) नाचना (च) और (गीतवादनं) गाना बजाना इन सब को ब्रह्मचारी त्याग दे ॥

द्यूतञ्च जनवादं च परिवादं तथानृतम् ।
स्त्रीणाञ्च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च ॥ १६८ ॥

पदा०—(द्युतं) जुआ (जनवादं) मनुष्यों के साथ वाद विवाद (परिवादं) निन्दा (अनृतं) मिथ्याभाषण (स्त्रीणां, प्रेक्षणालम्भं) स्त्रियों को राग से देखना वा स्पर्श करना (च) और (परस्य, उपघातं) दूसरे का तिरस्कार करना, यह सब ब्रह्मचारी न करे ॥

एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत् क्वचित् ।
कामाद्धि स्कन्दयन् रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥१६९॥

पदा०—(सर्वत्र, एकः, शयीत) सब जगह एक बिस्तर पर अकेला सोवे (क्वचित्, रेतः) कहीं भी वीर्य्य (न, स्कन्दयेत्) स्खलित न करे (हि) क्योंकि (कामात्, रेतः) कामचेष्टा से वीर्य्य को (स्कन्दयन्, आत्मनः) क्षीण करता हुआ अपने (व्रतं, हिनस्ति) व्रत को नष्ट करता है ॥

भाष्य—सदा ब्रह्मचारी एकाकी शयन करता हुआ कभी वीर्य को स्खलित न होने देवे क्योंकि इच्छा से वीर्य क्षीण करने वाला ब्रह्मचारी पातकी होकर अपने कर्त्तव्य से च्युत होजाता है, इसलिये ब्रह्मचारी को उचित है कि वह ऐसी चेष्टा करे

जिससे उसका वीर्य कभी स्वप्न में भी स्खलित न हो, क्योंकि अध्ययन काल में ब्रह्मचर्य्य का स्थिर रहना परमावश्यक है, जो ब्रह्मचारी नियम पूर्वक जितेन्द्रिय होकर स्वाध्याय नहीं करता वह अपने उद्देश्य से गिरा हुआ वेद के फल को प्राप्त नहीं होता अर्थात् वेद के तत्व को नहीं जान सक्ता ॥

उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकाकुशान् ।
आहरेद्यावदर्थानि भैक्षं चाहरहश्चरेत् ॥ १७० ॥

पदा०-(उदकुम्भं) जलभरे हुए घड़े (सुमनसः) पुष्प (गोशकृत्) गौ का गोबर (मृत्तिकाकुशान्) मिट्टी तथा कुशा (यावत्, अर्थानि) यह सब द्रव्य गुरु की आवश्यकता के अनुकूल (आहरेत्) लाकर गुरु को दे (च) और (अहः, अहः) प्रतिदिन (भैक्षं) भिक्षा (चरेत्) करके अन्न लावे, अर्थात् गुरुको सब आवश्यकपदार्थ समय २ पर लाकर दे जिससे वह सदा सन्तुष्ट रहें ॥

वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु ।
ब्रह्मचार्याहरेद्भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥ १७१ ॥

पदा०-जो पुरुप (वेदयज्ञैः) वेद और यज्ञ से (अहीनानां) हीन नहीं हैं तथा (स्वकर्मसु) अपने कर्मों द्वारा (प्रशस्तानां) श्रेष्ठ हैं उनके (गृहेभ्यः) घरों से (प्रयतः) नियम में तत्पर (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (अन्वहं) प्रतिदिन (भैक्षं, आहरेत्) भिक्षान्न लावे ॥

भाष्य-वेदाध्ययन तथा यज्ञों के करने वाले और अपने कर्मों में श्रेष्ठ द्विजों के घरों से जितेन्द्रिय, अपने नियमों में तत्पर

ब्रह्मचारी प्रतिदिन भिक्षा करके अन्न लावे अन्यों के घरों से नहीं, क्योंकि श्रेष्ठ कर्मों वाले के पवित्र अन्न को भक्षण करने वाले ब्रह्मचारी की बुद्धि पवित्र वेदको ग्रहण करने योग्य होती है शूद्रादि के अन्न को खाने वाले की नहीं ॥

गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु ।
अलाभेत्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् ॥ १७२ ॥

पदा०—ब्रह्मचारी (गुरोः, कुले) गुरुकुल तथा (ज्ञातिकुल-बन्धुषु) अपनी जाति वाले और कुटुम्ब के भाई आदि सम्बन्धियों के घरों में (न, भिक्षेत) भिक्षा न मांगे (अन्यगेहानां, अलाभे, तु) यदि अन्य पूर्वोक्त धार्मिक घरों से भिक्षा न मिले तो (पूर्वं, पूर्वं, विवर्जयेत) बन्धु आदि के उत्तर २ घरों को छोड़कर भिक्षा मांगे ॥

भाष्य—गुरु के कुल में, अपनी जाति वालों में तथा अपने कुटुम्ब में भिक्षा न मांगे और यदि पूर्वोक्त गृहस्थियों के घरों से भिक्षा न मिले तो अपने कुटुम्ब आदि में ही पूर्व २ घर न मिलने पर उत्तरोत्तर से मांगे, अर्थात् प्रथम बन्धुओं से मांगे, वहां न मिलने पर जाति में मांगे, यदि जाति में भी न मिले तो गुरु के कुल से ही मांग कर भक्षण करे ॥

सर्वं वापि चरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसम्भवे ।
नियम्य प्रयतो वाचमभिशस्तांस्तु वर्जयेत् ॥१७३॥

पदा०—(पूर्वोक्तानां, असम्भवे) पूर्वोक्त घरों से भिक्षा प्राप्त न होने पर (प्रयतः, वाचं) ब्रह्मचारी वाणी को (नियम्य) रोककर (सर्वं, वा, ग्रामं) सम्पूर्ण ग्राम में (चरेत) भिक्षा मांगे

(अपि, तु) परन्तु (अभिशस्तान्) पातकियों के घरों को (वर्जयेत) छोड़ दे ॥

दूरादाहृत्य समिधः सन्निदध्याद्विहायसि ।
सायं प्रातश्च जुहुयात्ताभिरग्निमतन्द्रितः ॥ १७४ ॥

पदा०-(अतन्द्रितः) ब्रह्मचारी आलस्य रहित हो (दूरात) ग्राम से दूर जाके (समिधः) ढाक आदि वृक्षों की सूखी लकड़ी (आहृत्य) लाकर (विहायसि) पृथिवी से ऊंचे स्थान पर (सन्निदध्यात) धरे (च) पुनः (ताभिः) उन समिधाओं से (सायं, प्रातः) प्रतिदिन प्रातः सायं (अग्निं, जुहुयात) अग्निहोत्र करे ॥

अकृत्वा भैक्षचरण म समिध्य च पावकम् ।
अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥ १७५ ॥

पदा०-(अनातुरः) नीरोग ब्रह्मचारी विना किसी आपत्ति के (सप्तरात्रं) सात दिन तक (भैक्षचरणं) भिक्षाचरण (च) तथा (पावकं, असमिध्य) अग्नि में समिधाओं से होम न करता हुआ (अवकीर्णिव्रतं) अवकीर्णि नामक प्रायश्चित्त का (चरेत) आचरण करे ॥

भाष्य-विना किसी व्याधि के यदि ब्रह्मचारी सात दिन तक हवन न करे तथा भिक्षा वृत्ति से अन्न न लावे तो ग्यारहवें अध्याय में कथन किये हुए "अवकीर्णिव्रत" करने से शुद्ध होता है ॥

भैक्षेण वर्त्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्व्रती ।
भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ॥ १७६ ॥

पदा०—(व्रती) ब्रह्मचारी (नित्यं) सदा (भैक्षेण) भिक्षा वृत्ति से (वर्त्तयेत्) वर्त्ते (एकान्नादी) एक के अन्न को खाने वाला (न, भवेत्) न हो क्योंकि (व्रतिनः) ब्रह्मचारी की (भैक्षेण, वृत्तिः) भिक्षा वृत्ति (उपवाससमा) उपवास के तुल्य (स्मृता) कथन की है ॥

व्रतवद् देवदैवत्ये पित्र्ये कर्मण्यथर्षिवत् ।
काममभ्यर्थितोऽश्नीयाद् व्रतमस्य न लुप्यते ॥१७७॥

पदा०—(व्रतवत्) ब्रह्मचारी अपने व्रत के अनुकूल (देव-दैवत्ये) नवीन अन्न के आने पर (अथ) अथवा (पित्र्ये,कर्मणि) विज्ञानी लोगों के निमित्त भोजन समय में, अथवा (अभ्यर्थितः) निमन्त्रित हुआ (कामं) निःशंक हो (ऋषिवत्) ऋषितुल्य (अश्नीयात्) भोजन करले, तब भी (अस्य) इस ब्रह्मचारी का (व्रतं) व्रत (न, लुप्यते) खण्डित नहीं होता है ॥

भाष्य—नवीन अन्न के आने पर जो निमन्त्रण होता है अथवा विज्ञानी पितरों के निमित्त जो ब्रह्मभोज कियाजाता है इन निमन्त्रणों में निमन्त्रित हुआ ब्रह्मचारी भोजन करने से दूषित नहीं होता, क्योंकि नवीनान्न के आने पर सब वृद्धपितरों तथा विद्वानों को तृप्त करना एक प्रकार का महोत्सव है, इसलिये इनके अन्न से कोई कुसंस्कार उत्पन्न नहीं होता, कई लोग "पित्र्ये कर्मणि" के अर्थ मृतक पितरों के निमित्त श्राद्धके करते हैं सो ठीक नहीं, क्योंकि यदि मृतक के उद्देश्य से अन्न खाने वाले ब्रह्मचारी का व्रत नष्ट नहीं होता तो फिर महाब्राह्मण तथा ब्रह्मचारी की वृत्ति में क्या भेद हुआ, क्योंकि जैसे मृत

पुरुषों की प्रतीक्षा महाब्राह्मण को करनी पड़ती है वैसे ही ब्रह्मचारी को करनी पड़ेगी ॥

सं०—अब अध्ययन का प्रकार कथन करते हैं :—

चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव वा ।
कुर्यादध्ययने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च ॥ १७८ ॥

पदा०—(गुरुणा, चोदितः) गुरु से प्रेरणा किया हुआ (वा) अथवा (अप्रचोदितः) विना प्रेरणा किया हुआ (एव) ही ब्रह्मचारी (अध्ययने) अध्ययन (च) तथा (आचार्यस्य, हितेषु) आचार्य के हित में (नित्यं, यत्नं, कुर्यात्) सदा यत्न करता रहे ॥

शरीरञ्चैव वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च ।
नियम्य प्राञ्जलिस्तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥१७९॥

पदा०—(शरीरं) शरीर (वाचं) वाणी (च) तथा (बुद्धीन्द्रियमनांसि, च) ज्ञानेन्द्रिय और मनको (नियम्य) वश में करके (गुरोः) गुरु के (मुखं, वीक्षमाणः) सन्मुख (प्राञ्जलिः, तिष्ठेत्) हाथ जोड़कर स्थित रहे अर्थात् गुरु की आज्ञा विना इधर उधर पर्यटन न करे ॥

नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्वाचारः सुसंयतः ।
आस्यतामितिचोक्तः सन्नासीताभिमुखं गुरोः ॥१८०॥

पदा०—(उद्धृतपाणिः) वस्त्र से बाहर हाथ निकाले हुए (साध्वाचारः) सदाचार युक्त तथा (नित्यं, सुसंयतः) निरन्तर जितेन्द्रिय (स्यात्) रहे (च) और (आस्यतां) बैठजाओ

(इति, उक्तः, सन्) इस प्रकार गुरु से आज्ञा पाकर ब्रह्मचारी (गुरोः, अभिमुखं) गुरु के सन्मुख (आसीत) बैठे ॥

हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
उत्तिष्ठेत्प्रथमंचास्य चरमं चैव संविशेत् ॥ १८१ ॥

पदा०-(गुरुसन्निधौ) गुरु के समीप निवास करता हुआ ब्रह्मचारी (सर्वदा) सदा (हीनान्नवस्त्रवेषः) अन्न तथा वस्त्र की सामग्री में न्यून (स्यात्) रहे (च) और (अस्य) गुरु से (प्रथमं, उत्तिष्ठेत्) पहले उठे (च) तथा (एव) निश्चय करके (चरमं) गुरु के शयन करने के पश्चात् (संविशेत्) सोवे ॥

प्रतिश्रवणसम्भाषे शयानो न समाचरेत् ।
नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः ॥१८२॥

पदा०-(शयानः) लेटा हुआ (आसीनः) बैठा हुआ (भुञ्जानः) खाता हुआ (तिष्ठन्) खड़ा हुआ (च) अथवा (पराङ्मुखः) दूसरी ओर मुख करके ब्रह्मचारी (प्रतिश्रवण-सम्भाषे) गुरु से सम्भाषण (न, समाचरेत्) न करे, किन्तु नम्रता पूर्वक हाथ जोड़ एकाग्रचित्त होकर जो कुछ कहना हो कहे, तथा गुरु की आज्ञा को स्वीकार कर प्रत्युत्तर दे ॥

आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंस्तु तिष्ठतः ।
प्रत्युद्गम्य त्वाव्रजतः पश्चाद्धावंस्तु धावतः ॥१८३॥

पदा०-(आसीनस्य) बैठे हुए गुरु को (स्थितः) शिष्य खड़ा होकर (तु) और (तिष्ठतः) खड़े हुए गुरु के (अभिगच्छन्)

सम्मुख जाकर (आव्रजतः) गुरु को अपनी ओर आते देख (प्रत्युद्गम्य) शीघ्र उनकी ओर जाके, तथा (धावतः) गमन करते हुए गुरु के (पश्चात्, धावन्) पीछे २ जाता हुआ नम्रता पूर्वक सम्भाषण (कुर्यात्) करे ॥

पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्थस्यैत्य चान्तिकम् ।
प्रणम्य तु शयानस्य निदेशे चैव तिष्ठतः ॥ १८४ ॥

पदा०–(पराङ्मुखस्य) दूसरी ओर मुख किये हुए गुरु के (अभिमुखः) सन्मुख (दूरस्थस्य) दूर बैठे हुए के (अन्तिकं) समीप (एत्य) जाकर (च) और (शयानस्य) सोते हुए (तु) तथा (तिष्ठतः) बैठे हुए के (निदेशे) निकट पहुंच (प्रणम्य) प्रणाम करके सम्भाषण करे ॥

नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ॥ १८५ ॥

पदा०–(अस्य, शय्यासनं) शिष्य का शय्या तथा आसन (सर्वदा, गुरुसन्निधौ) सदा गुरु के निकट (नीचं) नीचा रहे (तु) तथा (गुरोः, चक्षुः, विषये) गुरु के नेत्रोंके सामने (यथेष्टासनः) यथेष्ट आसन पर (न, भवेत्) न बैठे ॥

भाष्य–गुरु के समीप निवास काल में शिष्य का बिछौना तथा आसन सदा गुरु से नीचा होना चाहिये, और गुरु के समक्ष में मन मानी बैठक कभी न बैठे किन्तु बड़ी नम्रता पूर्वक नीचा मुख करके पद्मासन से बैठे ॥

नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ।
न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम् ॥१८६॥

पदा०-(अस्य) गुरु के (केवलं) केवल (नाम) नाम को (परोक्षं, अपि) पीछे भी (न, उदाहरेत्) उच्चारण न करे (च) और (अस्य) गुरु के (गतिभाषितचेष्टितं) गमन, बोलचाल तथा चेष्टा-का (न, एव, अनुकुर्वीत) कदापि अनुकरण न करे ॥

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दावापि प्रवर्त्तते ।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥१८७॥

पदा०-(यत्र) जहां (गुरोः, परीवादः) गुरु के अपगुणों का कथन (वा) अथवा (निन्दा) निन्दा (प्रवर्त्तते) होती हो (तत्र) वहां (कर्णौ) शिष्य दोनों कानों को (पिधातव्यौ) बन्द करले (वा) अथवा (ततः) वहां से (अन्यतः) अन्यत्र (गन्तव्यं) चला जावे, क्योंकि गुरु की निन्दा सुनना शिष्य का धर्म नहीं ॥

दूरस्थो नार्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रियाः ।
यानासनस्थश्चैवैनमवरुह्याभिवादयेत् ॥ १८८ ॥

पदा०-(यानासनस्थः) सवारी तथा आसनपर बैठा हुआ शिष्य (एनं) गुरु को (अवरुह्य, एव) नीचे उतरकर (अभिवादयेत्) अभिवादन करे (च) और जब शिष्य (दूरस्थः) दूरदेश में स्थित तथा (क्रुद्धः) क्रोधित हो (एव) अथवा गुरु (अन्तिके, स्त्रियाः) स्त्री के समीप बैठे हों तो इन अवस्थाओं में (एनं) गुरु को (न, अर्चयेत) अभिवादन न करे ॥

प्रतिवातेऽनुवाते च नासीत गुरुणा सह ।
असंश्रवे चैव गुरोर्न किञ्चिदपि कीर्त्तयेत् ॥१८९॥

पदा०-(प्रतिवाते) प्रतिवात (च) और (अनुवाते) अनुवात में (गुरुणा, सह) गुरु के साथ (न, आसीत) न बैठे (च) तथा (गुरोः,असंश्रवे) गुरु के न सुनने में शिष्य (किञ्चित्, अपि) कुछ भी (न, कीर्त्तयेत) भाषण न करे ॥

भाष्य-प्रतिवात=गुरु की ओर से शिष्य की ओर तथा अनुवात=शिष्य की ओर से गुरु की ओर, जहां वायु चलती हो वहां गुरु के अति निकट न बैठे, और जब गुरु किसी अन्य कार्य में आसक्त होने के कारण न सुन सक्ते हों तो उस समय शिष्य गुरु से सम्भाषण न करे ॥

गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादस्रस्तरेषु कटेषु च ।
आसीत गुरुणा सार्धं शिलाफलकनौषु च ॥१९०॥

पदा०-(गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादस्रस्तरेषु) बैल, घोड़ा, ऊंट यह जिस सवारी में जुते हों वा महल के ऊपर अटारी अथवा घास आदि के बिछौने पर (च) और (कटेषु) चटाई (शिला-फलकनौषु, च) शिला, तख्त तथा नौका इन स्थानों में शिष्य (गुरुणा, सार्धं) गुरु के साथ (आसीत) बराबर बैठजाय ॥

गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ।
न चातिसृष्टो गुरुणा स्वान्गुरूनभिवादयेत्॥१९१॥

पदा०-(गुरोः, गुरौ, सन्निहिते) यदि गुरु के गुरु समीप

आवें तो शिष्य (गुरुवत, वृत्तिं, आचरेत) अपने गुरु के समान उनका भी सत्कार करे (च) और (गुरुणा, अतिसृष्टः) गुरु की विना आज्ञा (स्वान्, गुरून्) अपने माता पिता आदि गुरुजनों को (न, अभिवादयेत) अभिवादन न करे ॥

विद्यागुरुष्वेतदेव नित्यावृत्तिः स्वयोनिषु ।
प्रतिषेधत्सु चाधर्मान् हितंचोपदिशत्स्वपि ॥१९२॥

पदा०-(विद्यागुरुषु) विद्या गुरु में (स्वयोनिषु) माता पिता में (अपि) तथा (अधर्मान्, प्रतिषेधत्सु) अधर्म से वचाने वाले (च) और (हितं, उपादिशत्सु) हित का उपदेश करने वालों में (एतत्, एव) गुरु के तुल्य ही (नित्या, वृत्तिः) सदा वर्त्ताव करे ॥

श्रेयस्सु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत् ।
गुरुपुत्रेषु चार्येषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥ १९३ ॥

पदा०-(श्रेयस्सु) श्रेष्ठ पुरुषों में (आर्येषु) आर्य पुरुषों में (गुरुपुत्रेषु) गुरुपुत्रों में (च) और (गुरोः, स्वबन्धुषु) गुरु के सम्बन्धियों में (नित्यं, एव) सदा ही (गुरुवत्) गुरु के तुल्य (वृत्तिं, समाचरेत) वर्त्ताव करे ॥

भाष्य-जो पुरुष विद्या, तप, अथवा सदाचार से वड़े हों, गुरु पुत्र अथवा गुरु के सम्बन्धी हों इन सब में गुरु के समान आचरण करे, भाव यह है कि जो विद्या से वड़ा हो अथवा आचार से वड़ा हो, बुद्धि से वड़ा हो, धन से वड़ा हो, राज्य से

बड़ा हो इन सबका सदा सन्मान करना चाहिये, इसी अभिप्राय से महाभारत में कहा है कि :-

विद्याशीलवयोवृद्धान् बुद्धिवृद्धाँश्च भारत।
धनाभिजातवृद्धाँश्च नित्यं मूढोऽवमन्यते॥

अर्थ-जो विद्या, शील, आयु, बुद्धि, धन और कुटुम्ब तथा राज्य में बड़े हैं उनका अपमान मूढ़ करते हैं श्रेष्ठ नहीं॥

बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि।
अध्यापयन्गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति॥ १९४॥

पदा०-(बालः) बालक (समानजन्मा) समान आयु वाला (वा) अथवा (शिष्यः) शिष्य (यज्ञकर्मणि) वह यज्ञकर्म में ऋत्विक् बनाया हुआ (गुरुवत्, मानं, अर्हति) गुरु के समान माननीय होता है (वा) और (अध्यापयन्) पढ़ाते हुए (गुरुसुतः) गुरुपुत्र का भी गुरु के समान ही मान करना चाहिये॥

भाष्य-जिस पुरुष का यज्ञकर्म में वरण किया हो अर्थात् ऋत्विक् बनाया गया हो, वह बालक हो, समान अवस्था वाला हो अथवा किसी विद्या के एक देश में अपना शिष्य भी हो, वह ऋत्विगावस्था में गुरु के समान मानके योग्य है, तथा गुरु की अनुपस्थिति में गुरुपुत्र अध्यापन का कार्य करता हुआ गुरु के तुल्य ही माननीय होता है॥

उत्सादनं च गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने।
न कुर्याद्गुरुपुत्रस्य पादयोश्चावनेजनम्॥१९५॥

पदा०-(गुरुपुत्रस्य, गात्राणां) गुरुपुत्र के शरीर का (उत्सादनं) मर्दन (स्नापनोच्छिष्टभोजने) मल के स्नान कराना और उच्छिष्ट भोजन (च) तथा (पादयोः) चरणों का (अवनेजनं) प्रक्षालन (न, कुर्यात्) न करे ॥

सं०-अब गुरुपत्नी के सत्कार का विधान करते हैं :-

गुरुवत्प्रतिपूज्याः स्युः सवर्णा गुरुयोपितः ।
असवर्णास्तु सम्पूज्याःप्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥१९६॥

पदा०-(सवर्णाः, गुरुयोपितः) सजातीय गुरु के घर की स्त्रियां (गुरुवत्, प्रतिपूज्याः, स्युः) गुरु के समान पूज्य हैं (तु) और (असवर्णाः) गुरु की विजातीय स्त्रियों का केवल (प्रत्युत्थानाभिवादनैः) उठकर अभिवादनपूर्वक (सम्पूज्याः) सत्कार करे ॥

भाष्य-गुरु की सजातीय गुरुपत्नी का सत्कार गुरु के सदृश करे और गुरुपत्नी यदि असवर्णा हो अर्थात् गुरु की जाति की न हो तो उसका पूजन गुरुतुल्य न करे, किन्तु केवल उठकर प्रणाम करे, इस कथन से स्पष्ट है कि पूर्वकाल में गुणकर्मानुसार चारो वर्णों में विवाह होता था ॥

अभ्यञ्जनं स्नापनं च गात्रोत्सादनमेवच ।
गुरुपत्न्या न कार्य्याणि केशानाञ्चप्रसाधनम् ॥१९७॥

पदा०-(अभ्यञ्जनं) तैल आदि से शरीर का मलना (स्नापनं) स्नान कराना (गात्रोत्सादनं) शरीर का मर्दन वा दबाना (च) और (केशानां, च, प्रसाधनं) शिर के बालों का

संस्कार यह सब कार्य शिष्य (गुरुपत्न्याः) गुरुपत्नीके (न, कार्याणि) न करे ॥

गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येहपादयोः ।
पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता ॥ १९८ ॥

पदा०—(गुणदोषौ, विजानता) ब्रह्मचर्य के गुण दोषों को जानता हुआ (पूर्णविंशतिवर्षेण) पूर्ण बीसवर्ष की आयु वाला युवावस्था को प्राप्त तरुणशिष्य (इह) इस ब्रह्मचर्य काल में (युवतिः, गुरपत्नी) युवावस्था सम्पन्न गुरुपत्नी के (पादयोः) चरणों को छूकर (नाभिवाद्या) अभिवादन न करे अर्थात् नम्रता पूर्वक दूर से अभिवादन करे ॥

सं०—अब युवागुरुपत्नी के चरण न छूने का कारण वर्णन करते हैं :—

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ १९९ ॥

पदा०—(मात्रा) माता (स्वस्रा) बहिन (वा) अथवा (दुहित्रा) पुत्री के साथ (विविक्तासनः) एकान्त स्थान में (न, भवेत्) निवास न करे, क्योंकि (इन्द्रियग्रामः) इन्द्रियों का समूह (बलवान्) बलवान् होने से (विद्वांसं, अपि) विद्वान् को भी (कर्षति) खींच लेता है ॥

कामं तु गुरुपत्नीनां युवतीनां युवा भुवि ॥
विधिवद्वन्दनं कुर्यादसावहमिति ब्रुवन् ॥ २०० ॥

पदा०—(तु) और (युवा) युवावस्था वाला शिष्य (युवतीनां, गुरपत्नीनां) युवति गुरुपत्नियों को (असौ, अहं) यह मैं हूं (इति,

शयीत) नङ्गा न सोवे (च) तथा (उच्छिष्टः, क्वचित्, न, व्रजेत्) जूंठे मुंह कहीं न जावे ॥

भाष्य—तिलयुक्त सब पदार्थ तमोगुणी होते हैं, इसलिये तमोगुणवर्द्धक कोई पदार्थ भी रात्रि को नहीं खाना चाहिये, क्योंकि रात्रि में स्वभाव से ही तमोगुण की अधिकता होती है, और यदि ऐसे पदार्थों द्वारा तमो गुण अधिक बढ़ाया जाय तो कई प्रकार के रोग होकर पुरुष सन्तानोत्पत्ति करने में असमर्थ होजाता है, इसलिये रात्रि में तमोगुणी पदार्थ कदापि भक्षण न करे॥

आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपास्तु संविशेत् ।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥७७॥

पदा०—(आर्द्रपादस्तु, भुञ्जीत) पैर धोकर गीले पैर भोजन करे (तु) परन्तु (आर्द्रपादः, न, संविशेत्) गीले पैर शयन न करे (आर्द्रपादः, तु, भुञ्जानः) गीले पैर भोजन करने वाला (दीर्घ, आयुः, अवाप्नुयात्) दीर्घायु होता है ॥

अचक्षुर्विषयं दुर्गं न प्रपद्येत कर्हिचित् ।
न विण्मूत्रमुदीक्षेत न बाहुभ्यां नदीं तरेत् ॥७८॥

पदा०—(अचक्षुर्विषयं, दुर्गं) जो दुर्ग आंखों से नहीं देखा वहां (कर्हिचित्, न, प्रपद्येत) कभी न जावे (विण्मूत्रं, न, उदीक्षेत) मलमूत्र को न देखे और (बाहुभ्यां, नदीं, न, तरेत्) अपनी भुजाओं से नदी को न तरे ॥

अधितिष्ठेन्न केशांस्तु न भस्मास्थिकपालिकाः ।
न कार्पासास्थि न तुषान्दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥७९॥

(न, अभिनिम्लोचेत्) अस्त न हो और (न, अभ्युदियात्) न उदय हो अर्थात् रात्रि को ग्राम वा नगर में वास न करे॥

सं०—अब उक्त नियम के खण्डित होजाने पर प्रायश्चित्त कथन करते हैं :—

तं चेदभ्युदियात्सूर्यः शयानं कामचारतः।
निम्लोचेद्वाप्यविज्ञानाज्जपन्नुपवसेद्दिनम् ॥२०४॥

पदा०—(चेत्) यदि (कामचारतः) अपनी इच्छा से (शयानं, तं) उस ब्रह्मचारी के सोते हुए (सूर्य्यः, अभ्युदियात्) सूर्य्य उदय होजाय (वा) अथवा (अविज्ञानात्) विना जाने (निम्लोचेत्) अस्त होजाय (अपि) तो ब्रह्मचारी (जपन्) गायत्री का जप करता हुआ (दिनं, उपवसेत्) एक दिन उपवास करे॥

सं०—अब उक्त प्रायश्चित्त न करने में पाप कथन करते हैं :—

सूर्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽभ्युदितश्च यः।
प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महतैनसा ॥२०५॥

पदा०—(यः, सूर्येण) जो ब्रह्मचारी सूर्य के (अभिनिर्मुक्तः) अस्त (च) और (अभ्युदितः) उदय होने पर (शयानः) सोता हुआ (प्रायश्चित्तं) प्रायश्चित्त (अकुर्वाणः) न करे तो (हि) निश्चय करके (महता, एनसा) बड़े पाप से (युक्तः, स्यात्) युक्त होता है॥

आचम्य प्रयतो नित्यमुभे सन्ध्ये समाहितः।
शुचौ देशे जपञ्जप्यमुपासीत यथाविधि ॥२०६॥

पदा०—(प्रयतः) जितेन्द्रिय (समाहितः) एकाग्रचित्त हुआ ब्रह्मचारी (आचम्य) आचमन करके (उभे, सन्ध्ये) सायं प्रातः

दोनों समय (शुचौ, देशे) शुद्ध एकान्त स्थान में (यथाविधि, जप्यं, जपन्) विधिपूर्वक गायत्री को जपता हुआ (उपासीत) परमात्मा की उपासना करे ॥

सं०—अब पुरुष के चतुर्विध पुरुषार्थ का निरूपण करते हैं :—

धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म एव च ।
अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः ॥२०७॥

पदा०— कोई आचार्य (धर्मार्थौ) धर्म, अर्थको (श्रेयः, उच्यते) श्रेय कहते हैं, कोई (कामार्थौ) काम तथा अर्थ को, कोई केवल (धर्म, एव, च) धर्म को (वा) और कोई (इह) इस जगत् में (अर्थ, एव, श्रेयः) एकमात्र अर्थ को ही श्रेय कथन करते हैं (इति, तु, त्रिवर्गः, स्थितिः) एवं मत भेद से धर्म, अर्थ, काम तीनों ही श्रेय हैं ॥

आचार्यो ब्रह्मणोमूर्त्तिः पितामूर्त्तिः प्रजापतेः ।
माता पृथिव्या मूर्त्तिस्तु भ्राता स्वोमूर्त्तिरात्मनः॥२०८॥

पदा०—(आचार्य्यः) आचार्य (ब्रह्मणः, मूर्त्तिः) ब्रह्मा की मूर्त्ति (पिता) पिता (प्रजापतेः, मूर्त्तिः) प्रजापति की मूर्त्ति (माता) माता (पृथिव्याः, मूर्त्तिः) पृथिवी की मूर्त्ति (तु) और (भ्राता) ज्येष्ठ भाई (स्वः, आत्मनः, मूर्त्तिः) अपने आपकी मूर्त्ति है ॥

भाष्य-जिस प्रकार चतुर्वेदविद्ब्रह्मा था इसी प्रकार आचार्य भी वेदका ज्ञाता होने से ब्रह्मा का प्रतिनिधि, पिता पालन करने से राजा का प्रतिनिधि, माता पृथिवी के समान नाना प्रकार की औषधियां देकर पुत्र का पोषण करने के कारण पृथिवी का प्रतिनिधि और भ्राता अपने आत्मा का प्रतिनिधि है

अर्थात् आत्मवत् है, यहां "मूर्त्ति" शब्द प्रतिनिधि के अभिप्रायसे आया है किसी प्रतीक के अभिप्राय से नहीं, जो लोग इसके यह अर्थ करते हैं कि आचार्य "ब्रह्मा"=परमात्मा की मूर्त्ति है और पिता "प्रजापति"=सृष्टि कर्त्ता की मूर्त्ति है, उनके मत में सृष्टि कर्त्ता और परमात्मा में क्या भेद है जब दोनों एक ही हैं तो फिर मूर्त्तियें भिन्न २ क्यों? और युक्ति यह है कि निराकार की मूर्त्ति नहीं होसकती, क्योंकि मूर्त्ति के अर्थ घनावयव वाली वस्तु के हैं और वह सघन अवयव निराकार वस्तु के नहीं होसकते, इसलिये ब्रह्मा आदि मूर्त्तपुरुषों की ही आचार्य आदिकों को मूर्त्ति कथन किया है अमूर्त्तों की नहीं॥

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः।
नार्त्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः॥२०९॥

पदा०-(आचार्यः, च) आचार्य (पिता, एव) पिता (माता) माता (च) और (पूर्वजः, भ्राता) ज्येष्ठ भाई इन सबका पुरुष (आर्त्तेन, अपि) दुःखी होने पर भी (न, अवमन्तव्या) अपमान न करे (च) और (विशेषतः) विशेषतया (ब्राह्मणेन) ब्राह्मण को कदापि उक्त गुरु जनों का तिरस्कार न करना चाहिये॥

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृत्तिः शक्या कर्त्तुं वर्षशतैरपि॥२१०॥

पदा०-(नृणां, सम्भवे) सन्तान के उत्पन्न होने पर (मातापितरौ) माता, पिता (यं, क्लेशं) जिस दुःख को (सहेते) सहते हैं (तस्य, निष्कृतिः) उसका प्रत्युपकार सन्तान (वर्षशतैः, अपि) सैकड़ों वर्ष में भी (कर्त्तुं, न, शक्यते) करने को समर्थ नहीं होती॥

भाष्य-सन्तान की उत्पत्ति, पालन, पोषण तथा शिक्षणादि के समय जो कष्ट माता पिता भोगते हैं उसका प्रत्युपकार सन्तान सैकड़ों वर्षों में भी नहीं कर सक्ती, इसलिये मन, वाणी, कर्म से माता पिता का कदापि अपमान न करता हुआ सदा उनकी सेवा में तत्पर रहे ॥

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्य्यास्य च सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥ २११ ॥

पदा०-(तयोः) माता पिता (च) तथा (आचार्यस्य) आचार्य का (सर्वदा) सदा (नित्यं) प्रतिदिन (प्रियं, कुर्यात्) प्रियाचरण करे (च) और (तेषु, एव, त्रिषु) उन तीनों के ही (तुष्टेषु) प्रसन्न रहने से (सर्वं, तपः) सम्पूर्ण तप (समाप्यते) पूर्ण होजाते हैं ॥

तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते ।
न तैरभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥ २१२ ॥

पदा०-(तेषां, त्रयाणां) उन माता आदि तीनों की (शुश्रूषा) सेवा (परमं, तपः) परमतप (उच्यते) कथन कीगई है (तैः) उन तीनों की (अभ्यननुज्ञातः) आज्ञा के विना (अन्यं, धर्मं) किसी दूसरे धर्म का (न, समाचरेत्) आचरण न करे ॥

भाष्य-जो पुरुष मातृमान् तथा पितृमान् है अर्थात् जिसके माता पिता अधीतशास्त्र हैं वह उनके उपदेश से विना किसी धर्मान्तर को ग्रहण न करे, भाव यह है कि सदा उनकी आज्ञानुकूल सम्पूर्ण कार्य करने में तत्पर रहे, और कदापि उनकी आज्ञा का उलंघन न करे ॥

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः ।
त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः॥२१३॥

पदा०-(हि) निश्चय करके (ते, एव) वही माता आदि (त्रयः, लोकाः) तीनों लोक (ते, एव) वही (त्रयः, आश्रमाः) तीनों आश्रम (ते, एव) वही (त्रयः, वेदाः) तीनों वेद (हि) और (ते, एव) वही त्रयः, अग्नयः) तीनों अग्नि (उक्ताः) हैं॥

भाष्य-माता, पिता, आचार्य्य यही पृथिवी, द्यौ, अन्तरिक्ष लोक, यही गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास तीनों आश्रम तथा गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय तीनों अग्नि और यही ऋक्, यजु, साम तीनों वेद हैं अर्थात् उन्हीं तीनों को सर्वोपरि मानकर उन्हीं की आज्ञा से धर्म ग्रहण करे॥

पिता वै गार्हपत्योग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः ।
गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी ॥ २१४ ॥

पदा०-(वै) निश्चय करके (पिता) पिता (गार्हपत्यः, अग्निः) गार्हपत्य अग्नि (माता) माता (दक्षिणः, अग्निः) दक्षिणाग्नि (तु) और (गुरुः) आचार्य्य (आहवनीयः) आहवनीय अग्नि (स्मृतः) कथन किया है और (सा, अग्नित्रेता) यही त्रेताग्नि (गरीयसी) अत्यन्त श्रेष्ठ है॥

भाष्य-पिता को गार्हपत्याग्नि के समान इसलिये कथन किया है कि जिस प्रकार गार्हपत्याग्नि गृहस्थी का एक मात्र देव है इसी प्रकार पिता भी पुरुष का सर्वोपरि देव है, दक्षिणाग्नि पुरुष को मातावत् पालन करती है इसलिये माता को दक्षिणाग्नि के समान वर्णन किया है और आहवनीय ब्रह्मचर्यावस्था में ब्रह्मचारी के

यज्ञ का एकमात्र आधार होती है, इसी प्रकार आचार्य भी ब्रह्मचर्यरूपी यज्ञ का एकमात्र आधार होता है इसलिये आचार्य को आह्वनीयाग्नि कथन किया है ॥

त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रींल्लोकान् विजयेद्गृही ।
दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते ॥ २१५ ॥

पदा०-(एतेषु, त्रिषु) इनतीनों में (अप्रमाद्यन्) प्रमाद रहित होकर सेवा करता हुआ (गृही) गृहस्थी (त्रीन्, लोकान्) तीनो लोकों को (विजयेत) जीतता (स्ववपुषा) अपने शरीर से (दीप्यमानः) कान्ति को प्राप्त होता और (दिवि) विज्ञानी जनों के मध्य में (देववत) विद्वानों के समान (मोदते) आनन्द को प्राप्त होता है ॥

भाष्य-गृहस्थी पुरुष आलस्य छोड़कर माता, पिता, गुरु इन तीनों की सेवा करता हुआ आगे कहे प्रकार से तीनों लोकों को जीत लेता है और अपने शरीर से शुद्ध निर्मल सत्वगुण सम्बन्धी तेज से प्रकाशमान होकर विज्ञानी लोगों के मध्य में दिव्यगुण सम्पन्न विद्वान् देवताओं के समान आनन्द भोगता है ॥

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् ।
गुरुशुश्रूषयात्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥ २१६ ॥

पदा०-(मातृभक्त्या) माता की भक्ति करने से (इमं, लोकं) इस पृथिवी लोक को (पितृभक्तया) पिता की भक्ति से (मध्यमं) अन्तरिक्ष लोक को (तु) और (एवं) इसी प्रकार (गुरुशुश्रूषया) गुरु की सेवा करने से (ब्रह्मलोकं) मोक्ष को (समश्नुते) प्राप्त करता है ॥

भाष्य—माता की भक्ति करने वाला पुरुष लौकिक विज्ञान को लाभ करता है और यही इसका इसलोक को जीतना है अर्थात् इसलोक के व्यवहारों में निपुण होजाता है, पिता की भक्ति द्वारा मध्य लोक के पदार्थों का ज्ञाता होता है, अर्थात् माता की भक्ति से इसलोक का ज्ञान, पिता की भक्ति से मध्यलोक और आचार्य की भक्ति से ब्रह्मलोक = मुक्ति को प्राप्त होता है ॥

सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥२१७॥

पदा०—(यस्य, एते, त्रयः) जिसकी सेवा से उक्त तीनों (आदृताः) सन्तुष्ट होते हैं (तस्य) उस शिष्य वा पुत्र के (सर्वे, धर्माः, आदृताः) सब धर्म आदर को प्राप्त हुए शुभ फल वाले होते हैं (तु) और (यस्य) जिसकी भक्ति से (एते,अनादृताः) माता आदि असन्तुष्ट होते हैं (तस्य) उसके (सर्वाः, क्रियाः) सब कर्म (अफलाः) निष्फल होजाते हैं ॥

भाष्य—जिस सन्तान ने माता, पिता, आचार्य इन तीनों को अपनी भक्ति द्वारा सन्तुष्ट कर लिया है उसको मनुष्य जन्म के सब फल प्राप्त होते हैं और जिसने इनका आदर नहीं किया उसका मनुष्य जन्म व्यर्थ है, अर्थात् उसके सब कर्म निष्फल होजाते हैं ॥

यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत्।
तेष्वेव नित्यं शुश्रूषां कुर्यात् प्रियहिते रतः ॥२१८॥

पदा०—(एव) निश्चय करके (यावत्) जबतक (ते, त्रयः,

जीवेयुः) उक्त तीनों जीवित रहें (तावत्, अन्यं) तबतक अन्य की सेवा (न, समाचरेत्) न करे, किन्तु (तेषु) उन तीनों के (प्रियहिते, रतः) प्रिय हित में रत हुआ (नित्यं) निरन्तर उन्हीं की (शुश्रूषां) सेवा (कुर्यात्) करे ॥

तेषामनुपरोधेन पारत्र्यं यद्यदाचरेत् ।
तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ॥ २१९ ॥

पदा०–(तेषां, अनुपरोधेन) माता, पिता आदि की आज्ञा से (पारत्र्यं) पारलौकिक (यत्. यत, आचरेत्) जो २ कर्म करे (तत्, तत्) वह २ (मनोवचनकर्मभिः) मन, वाणी तथा कर्म द्वारा (तेभ्यः) उन तीनों के प्रति (निवेदयेत) निवेदन कर दे ॥

सं०–अब माता पिता की सेवा को अर्थवाद वाक्य द्वारा समाप्त करते हैं :–

त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते ।
एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥ २२० ॥

पदा०–(हि) निश्चयकरके (एतेषु, त्रिषु) उक्त तीनों की सेवा करने से (पुरुषस्य,इतिकृत्यं) पुरुष के सम्पूर्ण कर्म (समाप्यते) पूर्ण होते हैं (एषः) यही (साक्षात्, परः, धर्मः) सब पुरुषार्थों की सिद्धि करने वाला सर्वोपरि धर्म है और (अन्यः) अन्य (उपधर्मः) उपधर्म (उच्यते) कहाते हैं ॥

सं०–अब सब स्थानों से स्त्री तथा विद्या रत्न का ग्रहण करना कथन करते हैं :–

श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि ।
अन्त्यादपि परंधर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥ २२१ ॥

पदा०—(श्रद्दधानः) धर्म में श्रद्धावान् पुरुष (अवरात्, अपि) नीच से भी (शुभां, विद्यां) उत्तम विद्या को (अन्त्यात्, अपि) शूद्र से भी (परं, धर्मं) उत्कृष्ट धर्म को तथा (दुष्कुलात्, अपि) दूषितकुल से भी (स्त्रीरत्नं) स्त्रीरत्न को (आददीत) ग्रहण कर लेवे ॥

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ।
अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम् ॥२२२॥

पदा०—(विषात्, अपि) विष से भी (अमृतं) अमृत को (बालात्, अपि) बालक से भी (सुभाषितं) हितकारी वचन को (अमित्रात्, अपि) शत्रु से भी (सद्वृत्तं) सदाचार को और (अमेध्यात्, अपि) अशुद्धस्थान से भी (काञ्चनं) सुवर्ण को (ग्राह्यं) ग्रहण कर लेना चाहिये ॥

स्त्रियोरत्नान्यथो विद्याधर्मः शौचं सुभाषितम् ।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥२२३॥

पदा०—(स्त्रियः) स्त्रियें (रत्नानि) रत्न (अथ) और (विद्या) विद्या (धर्मः) धर्म (शौचं) पवित्रता (सुभाषितं) मधुर वचन (च) और (विवधानि, शिल्पानि) अनेक प्रकार की कारीगरी, यह सब (सर्वतः) सब स्थानों से (समादेयानि) ग्रहण करने चाहिये ॥

नाब्राह्मणे गुरौ शिष्यो वासमात्यन्तिकं वसेत् ।
ब्राह्मणे चाननूचाने काङ्क्षन्गतिमनुत्तमाम्॥२२४॥

पदा०-(अनुत्तमां, गतिं) सर्वोत्तम गति को (काङ्क्षन्) चाहने वाला (शिष्यः) शिष्य (अब्राह्मणे) ब्राह्मण से भिन्न क्षत्रियादि (च) और (अननूचाने, ब्राह्मणे) साङ्गोपाङ्गवेद न पढ़े हुए ब्राह्मण (गुरौ) गुरु के समीप (आत्यन्तिकं) अत्यन्त (वासं) वास (न, वसेत्) न करे ॥

यदि त्वात्यन्तिकं वासं रोचयेत गुरोः कुले।
युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात् ॥ २२५ ॥

पदा०-(यदि, गुरोः, कुले) जो ब्रह्मचारी गुरुकुल में (आत्यन्तिकं, वासं) चिरकाल तक वास (रोचयेत) करना चाहे तो (युक्तः) अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ (आशरीरविमोक्षणात्) जीवनपर्यन्त (एनं) गुरु की (परिचरेत्) भक्ति पूर्वक सेवा करे ॥

आसमाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम् ।
स गच्छत्यञ्जसा विप्रो ब्रह्मणः सद्मशाश्वतम्॥२२६॥

पदा०-(यः, शरीरस्य) जो शरीर की (आसमाप्तेः) समाप्ति पर्यन्त (गुरुं) गुरु की (शुश्रूषते) सेवा करता है (सः, विप्रः) वह ब्राह्मण (ब्रह्मणः) परमात्मा के (सद्मशाश्वतं) परमानन्दस्वरूपमोक्ष को (अञ्जसा) निर्विघ्नता पूर्वक (तु) निश्चयकरके (गच्छति) प्राप्त होता है ॥

न पूर्वं गुरवे किञ्चिदुपकुर्वीत धर्मवित् ।
स्नास्यंस्तु गुरुणाज्ञप्तः शक्त्यागुर्वर्थमाहरेत् ॥ २२७ ॥

पदा०—(धर्मवित्) धर्मज्ञ शिष्य (पूर्वं) समावर्त्तनसंस्कार से पूर्व (किञ्चित्) कुछ भी धनादि पदार्थ (गुरवे) गुरु के लिये (न, उपकुर्वीत) अर्पण न करे (तु) और (स्नास्यन्) स्नातक होकर (गुरुणा, आज्ञप्तः) गुरु की आज्ञा से (शक्त्या) यथाशक्ति (गुर्वर्थं, आहरेत्) गुरु के निमित्त धनादि लाकर देवे॥

क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रोपानहमासनम् ।
धान्यं शाकं च वासांसि गुरवे प्रीतिमावहेत् ॥२२८॥

पदा०—(क्षेत्रं, हिरण्यं, गां, अश्वं) पृथिवी, सुवर्ण, गौ, घोड़ा (छात्रोपानहमासनं) छाता, जूता, आसन (धान्यं, शाकं) अन्न, शाक (च) और (वासांसि) वस्त्र (गुरवे) गुरु के लिये (प्रीतिमावहेत्) प्रीति पूर्वक अर्पण करे ॥

आचार्ये तु खलु प्रेते गुरुपुत्रे गुणान्विते ।
गुरुदारे सपिण्डे वा गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ॥ २२९ ॥

पदा०—(आचार्ये, खलु, प्रेते) गुरु के मरजाने पर (गुणान्विते, गुरुपुत्रे) गुणसम्पन्न गुरुपुत्र में (गुरुदारे) गुरु की स्त्री में (वा) अथवा (सपिण्डे) गुरु के सम्बन्धियों में (गुरुवत्, वृत्तिं) गुरु के तुल्य वर्त्ताव (आचरेत्) करे ॥

एतेष्वविद्यमानेषु स्थानासनविहारवान् ।
प्रयुञ्जानोऽग्निशुश्रूषां साधयेद्देहमात्मनः ॥ २३० ॥

पदा०—(एतेषु, अविद्यमानेषु) पूर्वोक्त सम्बन्धियों के न रहने पर (स्थानासनविहारवान्) गुरु के स्थान तथा आसन में बैठकर (अग्निशुश्रूषां) अग्निहोत्र तथा ब्रह्मयज्ञ (प्रयुञ्जानः) करता हुआ (आत्मनः, देहं, साधयेत्) अपने शरीर तथा इन्द्रियों को वशीभूत करे ॥

सं०—अब उक्त प्रकरण का उपसंहार करते हैं :—

एवं चरति यो विप्रो ब्रह्मचर्य्यमविप्लुतः ।
स गच्छत्युत्तमं स्थानं न चेहाजायते पुनः ॥२३१॥

पदा०—(यः, विप्रः) जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी (एवं, अविप्लुतः) पूर्वोक्त प्रकार से अखण्डित व्रतवाला (ब्रह्मचर्य्यं, चरति) जीवन पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्यव्रत का पालन करता है (सः, उत्तमं, स्थानं) वह मुक्ति को (गच्छति) प्राप्त होता है (च) और (पुनः) फिर (इह) इस संसार में (न, आजायते) जन्म नहीं लेता अर्थात् मुक्ति की आयुपर्य्यन्त आनन्द भोगता है ॥

भाष्य—"ना चेहाजायतेपुनः" इस वाक्य से कई एक लोग जीव की मुक्ति ईश्वर के बराबर सिद्ध करते हैं अर्थात् जिस प्रकार ईश्वर नित्यमुक्त है इसी प्रकार जीव को भी नित्यमुक्त ठहराते हैं परन्तु इस वाक्य से जीव नित्यमुक्त सिद्ध कदापि नहीं होसकता क्योंकि (१) जीव के साधन परिमित हैं जो परिमित साधनों से सिद्ध वस्तु होती है वह अनन्त नहीं होसकती (२) मुक्ति सादी है जो भाव पदार्थ सादी होता है वह सान्त

अवश्य होता है मुक्ति भी भाव है इसलिये उसका अन्त अवश्य होना चाहिये (३) ईश्वर के ज्ञान में जीवों की संख्या है वा नहीं ? यदि नहीं तो ईश्वर अल्पज्ञ हुआ यदि है तो फिर एक २ करके अनन्त काल में कभी सब समाप्त होजायेंगे फिर संसार की उत्पत्ति किस प्रकार होगी "संख्याताऽस्यनिमिषोजनानां" अथर्व= ईश्वर के ज्ञान में जीव की आंखों के निमेष भी गिने हुए हैं पुनः जीव असंख्यात कैसे होसकते हैं (४) मुक्ति अवस्था में जीव ब्रह्म नहीं बन जाता किन्तु ब्रह्म के समान स्वतन्त्र होजाता है तथा ब्रह्मानन्दादि भावों को प्राप्त होता है परन्तु यह सब ऐश्वर्य्य उसके परिमित होते हैं इत्यादि अनेक युक्तियां मुक्ति को सावधिक सिद्ध करती हैं जो विस्तार के कारण यहां नहीं लिखी जातीं आगे छटे अध्याय में विस्तार पूर्वक वर्णन की जायेंगी, यहां केवल इस बात का उत्तर देना है कि जो इस वाक्यार्थ पर यह बल देते हैं कि "न चेहाजायते पुनः" इसके यही अर्थ होते हैं कि फिर संसार में उत्पन्न नहीं होता ? इसका उत्तर यह है कि "न च पुनरावर्त्तते, न च पुनरावर्त्तते"=फिर नहीं आता, फिर नहीं आता, ब्रह्मलोक की प्राप्ति सूचक इस वाक्य में जैसे पुनरावृत्ति का निषेध किया है और वह निषेध अर्थवाद है क्योंकि ब्रह्मलोक की प्राप्ति से लोकविशेषवादी सब पुनरावृत्ति मानते हैं जैसा गीता में कृष्ण जी ने कहा है कि "आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन !"=हे अर्जुन ! ब्रह्मलोक की प्राप्ति वाले पुरुष सब लौट आते हैं, इससे सिद्ध हुआ कि ब्रह्मलोक की प्राप्ति को नित्य कथन करने वाला वाक्य अर्थवाद वाक्य है एवं "न चेहाजायते पुनः"

यह भी अर्थवाद वाक्य है इसलिये मुक्ति को निरवधिक सिद्ध नहीं करता ॥

इतिमानवार्य्यभाष्ये

द्वितीयोऽध्यायः

समाप्तः ॥

ओ३म्

अथ तृतीयोऽध्यायः

सं०–अब वर्णों की व्यवस्था तथा गृहस्थाश्रम का विधान करने के लिये प्रथम ब्रह्मचर्य्य का उपदेश करते हैं:—

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् ।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥ १ ॥

पदा०–(गुरौ) गुरुकुल में (त्रैवेदिकं, व्रतं) तीनों वेदों के निमित्त जो व्रत किया जाता है वह (षट्त्रिंशदाब्दिकं) छत्तीसवर्ष (तदर्धिकं, पादिकं, वा) उससे आधा वा चतुर्थांश (वा) अथवा (ग्रहणान्तिकं) जबतक विद्याग्रहण नहो तबतक(चर्यं,एव)ब्रह्मचर्य्य पूर्वक ही रहे ॥

भाष्य–यज्ञोपवीतसंस्कार के पश्चात् ब्रह्मचारी गुरुकुल में वास करता हुआ ३६ वर्ष पर्य्यन्त पूर्ण ब्रह्मचर्य्य द्वारा ऋगादि चारो वेदों का अध्ययन करे,यह हम पीछे निरूपण कर आये हैं कि "यजु" कहने से चौथे अथर्व का भी ग्रहण होजाता है,यदि इतने काल ब्रह्मचर्य्य न होसके तो उससे आधा १८ वर्ष वा चतुर्थांश ९ वर्ष अथवा जितने काल में वेद पढ़ सके उतने काल तक ब्रह्मचर्य्यव्रत का अवश्य ही पालन करे ॥

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥ २ ॥

पदा०–(अविप्लुतब्रह्मचर्यः) अखण्डित व्रत वाला ब्रह्मचारी

(वेदान्) चारो वेद (वा) वा (वेदौ) दो वेद (वा) अथवा (वेदं) एक वेद को (यथाक्रमं; अधीत्य) क्रमानुसार पढ़कर (गृहस्थाश्रमं) गृहस्थाश्रम में (आविशेत्) प्रवेश करे ॥

भाष्य—चारो वेद, दो वेद अथवा एक वेद को शिक्षा, कल्प तथा व्याकरणादि अङ्ग उपाङ्गों सहित पढ़कर अखण्डित ब्रह्मचर्य्य को पूर्ण करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे ॥

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः ।
स्रग्विणं तल्पआसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा ॥ ३ ॥

पदा०—(स्वधर्मेण) ब्रह्मचर्य्यव्रत के सेवन रूप धर्म से जिसने (ब्रह्म, प्रतीतं) वेद को प्राप्त किया है (पितुः, दायहरं) पिता के दायभाग को प्राप्त (स्रग्विणं) पुष्पमाला धारण किये (तल्पे, आसीनं) उत्तम शय्या पर बैठे हुए (तं) उस ब्रह्मचारी का (प्रथमं) पहले (गवा) गोदान से (अर्हयेत्) पूजन करे ॥

भाष्य—जब ब्रह्मचारी गुरुकुल में ब्रह्मचर्य्यव्रतपूर्वक साङ्गोपाङ्ग वेदों का अध्ययन करके अपने घर आवे तब प्रथम ही उसको उत्तम शय्या पर बैठाकर फूल माला और गोदान से पिता तथा अन्य सम्बन्धी लोग उसका विधिपूर्वक पूजन=सत्कार करें ॥

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥४॥

पदा०—(समावृत्तः) गुरुकुल से लौटा हुआ (द्विजः) ब्रह्मचारी (यथाविधि, स्नात्वा) विधिपूर्वक स्नानादि से पवित्र होकर (गुरुणा, अनुमतः) गुरु की आज्ञा से (शुभलक्षणान्वितां) शुभलक्षणयुक्त (सवर्णां,भार्यां) अपने समान गुण कर्म वाली स्त्री से (उद्वहेत) विवाह करें ॥

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥५॥

पदा०-(या) जो स्त्री (मातुः, असपिण्डा) माता की सात पीढ़ी (च) और (या) जो (पितुः, असगोत्रा) पिता के गोत्र की नहो (सा) वह (द्विजातीनां) द्विजातियों को (दारकर्मणि, मैथुने) विवाह करने के लिये (प्रशस्ता) उत्तम है ॥

भाष्य-जो कन्या माता की सपिण्ड=सात पीढ़ी और पिता के गोत्र की न हो वही ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य को यज्ञादि कर्मों और सन्तानोत्पत्ति के लिये श्रेष्ठ है अर्थात् उसी के साथ विवाह करना चाहिये ॥

महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः ।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥६॥

पदा०-(गोजाविधनधान्यतः) गौ, बकरी, भेड़, धन तथा अन्नादि से (महान्ति, अपि, समृद्धानि) बड़े धनाढ्य और प्रतिष्ठित भी हों परन्तु (एतानि, दश, कुलानि) यह आगे कहे हुए दश कुल (स्त्रीसम्बन्धे) विवाह सम्बन्ध में (परिवर्जयेत्) त्याग देवें ॥

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दोरोमशार्शसम् ।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥७॥

पदा०-(हीनक्रियं) क्रियाहीन (निष्पुरुषं) जिस कुल में कोई पुरुष न हो (निश्छन्दः) वेदाध्ययन से शून्य (रोमशं) जिस कुल में मनुष्य बहुत रोमयुक्त हों (अर्शसम्) जिस कुल में बवासीर रोग हो (क्षयि) राजयक्ष्मा रोग हो (आमयावि) मन्दाग्नि हो (अप-

स्मारि) मृगी रोग हो (श्वित्रिकुष्ठिकुलानि) और जिस कुल में श्वेत तथा गलित कुष्ठ हो,इन दश कुलों में विवाह सम्बन्ध न करें ॥

भाष्य-(१) जो कुल क्रियाहीन=निरुद्योगी=आलसी= जीविकाहीन हो अथवा जो गर्भाधानादि संस्कारों से रहित हो (२) जिस कुल में कोई पुरुष न हो स्त्रियां ही स्त्रियां हों (३) जिस कुल में वेद का पठन पाठन न हो (४) जिस कुल में पुरुषों के शरीर पर बहुत वाल हों (५) जिस कुल में बवासीर रोग हो (६) जिस कुल में राजयक्ष्मा=थाइसिज रोग हो (७) जिस कुल में मन्दाग्नि रोग हो (८) मिरगी रोग हो (९) श्वेत कुष्ठ हो (१०) गलित कुष्ठ हो, ऐसे कुलों की कन्या के साथ विवाह न करे, और :—

नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम्॥८॥

पदा०—(कपिलां) भूरे वालों वाली (अधिकाङ्गीं) अधिक अङ्गों वाली (रोगिणीं) सदा रोगयुक्त रहने वाली (अलोमिकां) जिसके लोम न हों, (वा) अथवा (अतिलोमां) जिसके शरीर पर बहुत बाल हों (वाचाटां) बहुत तथा कटुवचन बोलने वाली और (पिङ्गलां) पीले वर्ण वाली (कन्यां) कन्या से (न, उद्वहेत) विवाह न करे, और :—

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥९॥

पदा०—(च) और (नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं) नक्षत्र,वृक्ष तथा नदी पर जिसका नाम हो (अन्त्यपर्वतनामिकां) नीच तथा पर्वत

नाम वाली हो (पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं) पक्षी, सर्प और दासी पर जिसका नाम हो तथा (भीषणनामिकां) भयानक नाम वाली कन्या के साथ (न) विवाह न करे ॥

भाष्य—बदरी आदि वृक्षों के नाम पर, तारा, रेवती आदि नक्षत्रों के नाम पर, गङ्गा, यमुनादि नदी नाम वाली, चाण्डाली, विन्ध्या, हिमा, आदि नाम वाली, भुजङ्गी, सर्पिणी, दासी, आदि नाम वाली और पिशाची, राक्षसी आदि भयंकर नाम वाली कन्या के साथ विवाह न करे ॥

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वंगीमुद्वहेत् स्त्रियम् ॥१०॥

पदा०—(अव्यङ्गाङ्गीं) जिसके अङ्ग टेढ़े=जो लूली लंगड़ी न हो (सौम्यनाम्नीं) सुन्दर नाम वाली हो (हंसवारणगामिनीं) हंस तथा हस्ती के समान चाल वाली (तनुलोमकेशदशनां) केश और दांत जिसके सूक्ष्म हों, ऐसी (मृद्वङ्गीं) कोमल अङ्गों वाली (स्त्रियं) स्त्री के साथ (उद्वहेत्) विवाह करे ॥

यस्यास्तु न भवेद् भ्राता न विज्ञायेत वा पिता ।
नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाऽधर्मशंकया ॥ ११ ॥

पदा०—(तु) और (यस्याः) जिसका (भ्राता, न, भवेत्) भ्राता न हो (वा) अथवा जिसका (पिता, न, विज्ञायेत) पिता न जानाजाय कि कौन है (प्राज्ञः) बुद्धिमान् स्नातक (तां) ऐसी स्त्री के साथ (पुत्रिकाधर्मशङ्कया) कन्यामात्र होने की शङ्का अथवा अधर्म के भय से (न, उपयच्छेत) विवाह न करे ॥

सं०—ननु, ब्राह्मणादि का अन्य वर्णस्थ स्त्री के साथ विवाह होसक्ता है वा नहीं ? उत्तर :—

सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि ।
कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशोऽवराः ॥१२॥

पदा०—(अग्रे) प्रथम तो (द्विजातीनां) द्विजों को (दारकर्मणि) विवाहसंस्कार के लिये (सवर्णा, प्रशस्ता) अपने २ वर्ण की स्त्री उत्तम है (तु) परन्तु (कामतः, प्रवृत्तानां) काम में प्रवृत्त ब्राह्मणादि को (इमाः, अवराः, क्रमशः, स्युः) यह अग्रिम श्लोक में कथन कीहुई वर्णों की स्त्रियों से भी विवाह करलेना चाहिये ॥

भाष्य—धर्मशास्त्र में सवर्णा=समान वर्ण अथवा समान गुण, कर्म, स्वभाव वाली कन्या के साथ ही ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य को विवाह करने का विधान है परन्तु कामयुक्त द्विज असवर्णाओं के साथ भी विवाह करसक्ता है और असवर्णाओं में भी पर २ की अपेक्षा पूर्व २ असवर्णा के साथ विवाह करना श्रेष्ठ है अर्थात् वैश्य कन्या की अपेक्षा क्षत्रिया के साथ ब्राह्मण का सम्बन्ध होना अच्छा है ॥

भाव यह है कि सवर्णा स्त्री के साथ विधिपूर्वक विवाह करना श्रेष्ठ और असवर्णा के साथ विवाह करना निकृष्ट है ॥

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते ।
ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वाचाग्रजन्मनः ॥१३॥

पदा०—(शूद्रस्य, भार्या, शूद्रा, एव) शूद्र की स्त्री शूद्रा ही हो (सा, च, स्वा, च, विशः, स्मृते) शूद्रा और अपने वर्ण की वैश्या स्त्री से वैश्य विवाह करे (ते, च, स्वा, च, एव, राज्ञः, च)

शूद्रा, वैश्या और क्षत्रिया के साथ क्षत्रिय विवाह करे (च) और (ताः, स्वा, च, अग्रजन्मनः) शूद्रा, वैश्या, क्षत्रिया तथा ब्राह्मणी चारो वर्णों की स्त्रियों के साथ ब्राह्मण विवाह कर सक्ता है ॥

सं०—अब महात्मा मनु ऋषियों के प्रति आठ प्रकार के विवाह कथन करते हैं :—

चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्यचेह हिताहितान् ।
अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्निबोधत ॥ १४ ॥

पदा०—(चतुर्णा, आपि, वर्णानां) चारो वर्णों के (इह) इस लोक (च) और (प्रेत्य) परलोक में (हिताहितान्) हित तथा अहित करने वाले (इमान्) यह (अष्टौ) आठ (स्त्रीविवाहान्) स्त्रियों के विवाह (समासेन) संक्षेप से (निबोध) सुनो ॥

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥१५॥

पदा०—(ब्राह्मः) ब्राह्म (दैवः) दैव (तथा, एव) वैसे ही (आर्षः) आर्ष (प्राजापत्यः) प्राजापत्य (तथा) इसी प्रकार (आसुरः) आसुर (गान्धर्वः) गान्धर्व (राक्षसः) राक्षस (च, एव) और (पैशाचः) पैशाच, यह आठ विवाह हैं इनमें (अष्टमः, अधमः) आठवां अधम है ॥

भाष्य—(१) ब्राह्म (२) दैव (३) आर्ष (४) प्राजापत्य (५) आसुर (६) गान्धर्व (७) राक्षस (८) पैशाच, यह

आठ प्रकार के विवाह हैं जिनमें आठवां "पैशाच" विवाह अति निन्दित है ॥

सं०–अब उक्त आठ विवाहों का वर्णन करते हैं:—

आच्छाद्यचार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ।
आहूयदानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्त्तितः॥१६॥

पदा०–(आच्छाद्य) कन्या को वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर (च) और (स्वयं, आहूय) वर को स्वयं बुला (अर्चायित्वा) उसका यथायोग्य सत्कार करके (श्रुतिशीलवते) विद्या तथा शीलसम्पन्न वर को (कन्यायाः) कन्या का (दानं) दान देना (ब्राह्मः, धर्मः) ब्राह्मविवाह (प्रकीर्त्तितः) कहाता है ॥

भाष्य–कन्या के गुण कर्मानुसार विद्या तथा शीलसम्पन्न वर को स्वयं अपने घर बुला आचमन तथा मधुपर्कादि से सत्कार करके उसको वस्त्राभूषणों से अलंकृत कन्या का दान देना "ब्राह्मविवाह" कहाता है, यह उत्तम कक्षा का विवाह ब्राह्मण को कर्त्तव्य है ॥

यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्मकुर्वते ।
अलंकृत्यसुतादानं दैवंधर्मं प्रचक्षते ॥ १७ ॥

पदा०–(तु) और (वितते, यज्ञे) विस्तृत यज्ञ में (सम्यगृत्विजे, कर्मकुर्वते) जहां ऋत्विक् भलीभांति कर्म करते हों वहां अपनी (अलङ्कृत्य) अलङ्कृत (सुतादानं) कन्या का जो दान देना है उसको (दैवंधर्मं) दैवविवाह (प्रचक्षते) कहते हैं ॥

भाष्य–ज्योतिष्टोमादि विस्तृत यज्ञों में शास्त्रोक्त पूर्णविधि

अनुसार यज्ञाङ्गों को पूर्ण करते हुए ऋत्विज संज्ञक देव को वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत कन्या देना "देवविवाह" कहाता है ॥

एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥ १८ ॥

पदा०—(एकं, गोमिथुनं) गौ का एकजोड़ा (वा) अथवा (द्वे) दो जोड़ा (वरात्) वर से (धर्मतः) धर्मपूर्वक (आदाय) लेकर (विधिवत्) विधिपूर्वक (कन्या, प्रदानं) कन्या का जो दान देना है (सः) वह (आर्षः, धर्मः) आर्ष विवाह (उच्यते) कहाता है ॥

भाष्य—अपनी निर्धन दशा में कन्या तथा वर के सत्कारार्थ एक गौ एक बैल अथवा दो गौ दो बैल वा दो तथा चार गौ वर से लेकर जो विधिपूर्वक कन्या का दान देना है उसको "आर्ष विवाह" कहते हैं ॥

सहोभौ चरतं धर्ममिति वाचानुभाष्य च ।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिःस्मृतः ॥ १९ ॥

पदा०—(उभौ) तुम दोनों (सह) एक साथ (धर्मं) धर्म का (चरतं) आचरण करो (इति, अनुभाष्य) ऐसा कहकर (च) और (अभ्यर्च्य) वर का पूजन करके (कन्याप्रदानं) जो कन्या का प्रदान है उसको (प्राजापत्यः, विधिः) प्राजापत्य-विवाह (स्मृतः) कहते हैं ॥

भाष्य—कन्या और वर तुम दोनों मिलकर वेदोक्त नित्य नैमित्तिक सब कर्मों का अनुष्ठान करते हुए उत्तम सन्तान उत्पन्न

करो, इस प्रकार कन्यादान समय कन्या का पिता उन दोनों को अपना अभीष्ट सुनाकर और वर का पूजन करके जो कन्या का दान करता है उसका नाम "प्राजापत्यविवाह" है ॥

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः ।
कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्मउच्यते ॥२०॥

पदा०-(ज्ञातिभ्यः) कन्या के जाति वालों (च) तथा (कन्यायै) कन्या के लिये (शक्तितः, एव) यथाशक्ति (द्रविणं, दत्वा) धन देकर (स्वाच्छन्द्यात्) स्वतन्त्रता से (कन्याऽऽप्रदानं) जो कन्या का ले आना है वह (आसुरः, धर्मः) आसुर विवाह (उच्यते) कहाता है ॥

भाष्य-कन्या को लाते समय विघ्न न करें इसलिये उस के कुल के पुरुषों को कुछ यथोचित धन देकर तथा यथाशक्ति कन्या को भी प्रसन्न करने के लिये कुछ धन अथवा अनेक विध लालच देकर शास्त्रोक्त विधि का परित्याग करके अपनी इच्छापूर्वक जो कन्या का ले आना है उसको "आसुर विवाह" कहते हैं ॥

इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ।२१।

पदा०-(तु) और (कन्यायाः) कन्या (च) तथा (वरस्य) वर की (इच्छया) इच्छा द्वारा (मैथुन्यः, कामसम्भवः) मैथुन की कामना से (अन्योन्यसंयोगः) जो परस्पर संयोग होना है (सः) वह (गान्धर्वः) गान्धर्व विवाह (विज्ञेयः) जानना चाहिये ॥

हत्वा छित्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥ ३३ ॥

पदा०—(च) और (हत्वा, छित्वा, भित्वा, च) कन्या के सम्बन्धियों को मारकर, छेदकर तथा परस्पर फोड़कर (गृहात्) घर से (प्रसह्य, बलात्कार (क्रोशन्तीं, रुदतीं) रोती चिल्लाती तथा कोशती हुई (कन्याहरणं) कन्या का जो हरण करना है वह (राक्षसः, विधिः) राक्षस विवाह (उच्यते) कहाता है ॥

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति ।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥ ३४ ॥

पदा०—(सुप्तां) सोती हुई (मत्तां) मद्यादि पीकर उन्मत्त हुई (वा) अथवा (प्रमत्तां) क्रीड़ा आदि में भूली हुई कन्या के साथ जो (रहः, उपगच्छति) संयोग करना है (सः) वह (विवाहानां) पूर्वोक्त विवाहों के बीच (पापिष्ठः) पापयुक्त (अष्टमः, अधमः) आठवां अधम (पैशाचः) पैशाच विवाह जानना चाहिये ॥

अद्भिरेव द्विजाग्र्याणां कन्यादानं विशिष्यते ।
इतरेषां तु वर्णानामितरेतरकाम्यया ॥ ३५ ॥

पदा०—(द्विजाग्र्याणां) ब्राह्मणों को (अद्भिः, एव) जलादि द्वारा ही (कन्यादानं, विशिष्यते) कन्यादान करना श्रेष्ठ है (तु) परन्तु (इतरेषां) अन्य (वर्णानां) क्षत्रियादि वर्णों में (इतरेतरकाम्यया) परस्पर की इच्छा से कन्यादान करना उचित है ॥

भाष्य—ब्राह्मणों को जल के साथ ही अर्थात् अर्घ्य जलादि

द्वारा वर का पूजन कर कन्या का दान देना प्रधान है स्वयंवरादि विधि से कन्या दान देना अथवा लेना प्रधान नहीं, और अन्य क्षत्रियादि वर्णों में परस्पर की इच्छा से विवाह का स्वीकार होजाने पर कन्या का दान देना समीचीन है ॥

दशपूर्वान्परान्वंश्यानात्मानं चैकविंशकम् ।
ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृन्मोचयत्येनसः पितॄन् ॥२५॥

पदा०—(सुकृतकृत्) पुण्यकर्म सेवन करने वाला (ब्राह्मीपुत्रः) ब्राह्म विवाह से उत्पन्न हुआ पुत्र (दशपूर्वान्) अपने से पूर्व के दश (पितॄन्) पिता पितामह आदिकों को (च) और (परान्, वंश्यान्) अपने से दश आगे के वंशों में होने वाले सन्तानों को तथा (आत्मानं, एकविंशकम्) इक्कीसवें अपने को (एनसः) अपयश रूप पापों से (मोचयति) छुड़ा देता है ॥

भाष्य—वेदोक्त कर्म करने वाले ब्राह्मण का पुत्र अर्थात् ब्राह्मविवाह के अनुकूल यथार्थविधि से विवाहित कन्या में उत्पन्न हुआ पुत्र पूर्व के पिता पितामह आदि दश पितरों और कुल की परम्परा को बढ़ाने वाले अपने आगे के पुत्रादि दश, यह दोनों मिलकर बीस और इक्कीसवें अपने को अपयश रूप पाप से छुड़ादेता है ॥

भाव यह है कि सन्तान की उत्पत्ति तथा सुधार का मूल कारण विवाह संस्कार=स्त्री पुरुष का संयोग है उसी के यथोचित होने से सन्तान भी श्रेष्ठ तथा दीर्घायु होसक्ते हैं, जिस कुल में एक तेजस्वी, प्रतापी कुल उजागर पुत्र उत्पन्न हो जाता है तो वह उस कुल को देदीप्यमान करदेता है और यह

लोक में भी प्रत्यक्ष है कि शुभकर्मों तथा धर्मानुकूल अनुष्ठान से जिसका जगत् में मान्य बढ़ जाता है उसके पिता आदि की बुराई छिपजाती है और पुत्र पर उत्तम संस्कार पड़ने से वह भी योग्य बनकर संसार में सदा सुख भोगता है, इसलिये उचित है कि अपने गुण कर्मानुसार स्त्री से विवाह करें जिससे उत्तम सन्तान उत्पन्न होकर कुल प्रकाशित हो ॥

दैवोढाजः सुतश्चैव सप्तसप्त परावरान् ।
आर्षोढाजः सुतस्त्रींस्त्रीन्षट्षट्कायोढजः सुतः ।२६।

पदा०—(दैवोढाजः, सुतः) दैव विवाह से उत्पन्न हुआ पुत्र (परावरान्) अपने से अगली पिछली (सप्त, सप्त) सात २ पीढ़ियों को (च) और (आर्षोढाजः, सुतः) आर्ष विवाह से उत्पन्न हुआ पुत्र (त्रीन्, त्रीन्) तीन २ तथा (कायोढजः, सुतः) प्राजापत्य विवाह से उत्पन्न हुआ पुत्र (षट्, षट्) अपने से अगली पिछली छः २ पीढ़ियों के अपयश रूप पाप को दूर करता है ॥

ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः ।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसम्मताः ॥२७॥

पदा०—(ब्राह्मादिषु, चतुर्षु, एव, विवाहेषु) ब्राह्मआदि चार ही विवाहों में (अनुपूर्वशः) क्रम से (ब्रह्मवर्चस्विनः) वेदतत्त्वार्थ को धारण करने योग्य तथा (शिष्टसम्मताः) श्रेष्ठों के मध्य में सत्कार पाने वाले (पुत्राः, जायन्ते) पुत्र उत्पन्न होते हैं अन्यों में नहीं ॥

रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः ।
पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः॥२८॥

पदा०-(च) और पूर्वोक्त चार विवाहों से ही उत्पन्न हुए पुत्र (रूपसत्त्वगुणोपेताः) सुदर्शन तथा दया आदि सत्त्वगुणयुक्त (धनवन्तः) धनाढ्य (यशस्विनः) यशस्वी (पर्याप्तभोगाः, धर्मिष्ठाः) सर्वऐश्वर्य सम्पन्न, धर्मात्मा और (शतंसमाः, जीवन्ति) सौ वर्ष की आयु वाले होते हैं॥

भाष्य-उपरोक्त आठ विवाहों में से ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य इन चार विवाहों से ही उत्पन्न हुए सन्तान वदोक्त शुभ कर्मों के करने वाले तथा विद्वानों में सत्कार को प्राप्त होने वाले पुत्र जन्मते हैं और वही सुदर्शन, ऐश्वर्यसम्पन्न तथा धर्मात्मा होते और सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं॥

इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ॥ २९ ॥

पदा०-(तु) और (इतरेषु, शिष्टेषु, दुर्विवाहेषु) शेष आसुरादि निकृष्ट विवाहों में (नृशंसानृतवादिनः) कुकर्मी, मिथ्यावादी तथा (ब्रह्मधर्मद्विषः) वैदिक कर्मों के द्वेषी (सुताः, जायन्ते) पुत्र उत्पन्न होते हैं॥

अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा ।
निन्दितैर्निन्दितानृणां तस्मान्निन्द्यान्विवर्जयेत् ।३०।

पदा०-(नृणां) मनुष्यों के (अनिन्दितैः, स्त्रीविवाहैः) निन्दारहित विवाहों से (अनिन्द्या, प्रजा, भवति) निर्दोष

सन्तान उत्पन्न होती और (निन्दितैः, निन्दिता) निषिद्ध आसुरादि विवाहों से निन्दित सन्तान उत्पन्न होती है (तस्मात्) इसलिये (निन्द्यान्, विवर्जयेत्) निषिद्ध आसुरादि विवाह नहीं करने चाहिये ॥

भाष्य—आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच, इन विवाहों से कुकर्मी, मिथ्यावादी, छली, कपटी और वैदिककर्मों के द्वेषी पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥

भाव यह है कि उत्तम विवाहों से उत्तम निर्दोष सन्तान उत्पन्न होती है जो अपने कुल और अपने को पवित्र बनाती है और निषिद्ध विवाहों से निन्दित सन्तान होती है जिससे उसका कुल नाश को प्राप्त होता है, इसलिये उक्त त्याज्य, निषिद्ध विवाहों को पुरुष कदापि न करे ॥

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा ।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥ ३१ ॥

पदा०—(सदा, स्वदारनिरतः ऋतुकालाभिगामी, स्यात्) सदा अपनी ही स्त्री से संयोग की इच्छा वाला पुरुष ऋतुकाल में ही अपनी स्त्री के निकट जाय (च) और (रतिकाम्यया) रति की कामना वाला (तद्व्रतः) उसी विवाहिता के साथ संयोग का व्रत रखने वाला पुरुष (पर्ववर्जं, एनां, च, व्रजेत्) पर्वों को छोड़कर अन्य तिथियों में गमन करे ॥

भाष्य—विवाह का उद्देश्य उत्तम सन्तानोत्पत्ति करना है, सो गृहस्थ पुरुष के लिये यह परम कर्तव्य है कि ऋतुकाल में ही गर्भाधान संस्कार करे, जिससे दोनों का बल वीर्य आरोग्यता बुद्धि और

विद्या सदा बढ़ती रहे, और यदि रति की कामना वाला पुरुष जो अपनी विवाहित स्त्री के साथ ही संयोग का व्रत रखने वाला है वह ऋतुकालाभिगामी न होसके तो पर्ववर्ज=अमावस्या, पौर्णमासी, चतुर्दशी और अष्टमी इन पर्वतिथियों को छोड़कर गमन करे, परन्तु प्रथम अवस्था उच्च है ॥

ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः शोडश स्मृताः ।
चतुर्भिरितरैः सार्द्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥ ३२ ॥

पदा०–(सद्विगर्हितैः) श्रेष्ठपुरुषों से निन्दित (इतरैः, चतुर्भिः, अहोभिः) इतर चार दिनों के (सार्धं) साथ (षोडशरात्रयः) सोलह रात्रि पर्यन्त (स्त्रीणां, स्वाभाविकः) स्त्रियों का स्वाभाविक (ऋतुः, स्मृताः) ऋतु काल कहा है ॥

भाष्य–गर्भधारण के समय का नाम "ऋतु" है, धर्मानुकूल व्यवहार की मर्यादा बांधने वाले श्रेष्ठ पुरुषों ने ऋतुकाल के पहिले चार दिन सहित १६ रात्रि पर्यन्त ऋतु माना है अर्थात् रोगादि विशेष कारण विना स्वस्थ दशा में होने वाला ऋतु सोलह दिन माना गया है ॥

तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या ।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दशरात्रयः ॥ ३३ ॥

पदा०–(तासां) उन षोडश रात्रियों में (या) जो (आद्याः, चतस्रः) पहली चार रात्रि (च) और (एकादशी) एकादशी (तु) तथा (त्रयोदशी) त्रयोदशी की रात्रि (निन्दिता) गर्भाधान के लिये निन्दित हैं (शेषाः) शेष (दशरात्रयः) दशरात्रियें (प्रशस्ताः) श्रेष्ठ हैं ॥

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्तवे स्त्रियम् ॥३४॥

पदा०—(युग्मासु, रात्रिषु) पूर्वोक्त छठी आदि सम रात्रियों में संयोग करने से (पुत्राः, जायन्ते) पुत्र उत्पन्न होते (अयुग्मासु) पांचवीं आदि विषम रात्रि में स्त्रीसंयोग से (स्त्रियः) कन्या उत्पन्न होती हैं (तस्मात्) इस कारण (पुत्रार्थी) पुत्र चाहने वाला पुरुष (आर्त्तवे, स्त्रियं) ऋतुकाल में स्त्री के साथ (युग्मासु) छठी आदि सम रात्रियों में (संविशेत्) संयोग करे ॥

भाष्य—दिन में मैथुन का निषेध करने के लिये इस श्लोक में रात्रि शब्द का प्रयोग किया है अर्थात् दिन में कदापि स्त्री संग न करे, छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं चौदहवीं तथा सोलहवीं इन छः रात्रियों में स्त्री के शरीर में पुत्रोत्पादन की शक्ति विशेष होती है, इसलिये पुत्रार्थी पुरुष को प्रायः इन्हीं रात्रियों में गर्भाधान करना चाहिये और कन्यार्थी ग्यारहवीं तथा तेरहवीं इन दो विषम रात्रियों को छोड़कर शेष पांचवीं, सातवीं, नवमी और पन्द्रहवीं रात्रियों में गर्भाधान करे ॥

पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिकेस्त्रियाः ।
समेऽपुमान्पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः॥३५॥

पदा०—(पुंसः, शुक्रे, अधिके) पुरुष का वीर्य्य अधिक होने पर (पुमान्) पुत्र (स्त्रियाः, अधिके) स्त्री का आर्त्तव अधिक होने पर ((स्त्री, भवति) कन्या उत्पन्न होती है और

(समे) स्त्री पुरुष दोनों का रज वीर्य बराबर होने से (अपुमान्) नपुंसक (वा) अथवा (पुंस्त्रियौ) कन्या तथा पुत्र दो एक साथ उत्पन्न होते हैं (च) और (क्षीणेऽल्पे, विपर्ययः) दोनों का वीर्य क्षीण अथवा अल्प होने पर सन्तान उत्पन्न नहीं होती ॥

निन्द्यास्वष्टासुचान्यासु स्त्रियोरात्रिषु वर्जयन् ।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥३६॥

पदा०—(यत्रतत्राश्रमे, वसन्) जिस किसी आश्रम में स्थित पुरुष (निन्द्यासु) निन्दित (च) तथा (अन्यासु, अष्टासु, रात्रिषु) अन्य आठ रात्रियों में (स्त्रियः, वर्जयन्) स्त्री को त्यागने वाला (ब्रह्मचारी, एव, भवति) ब्रह्मचारी ही होता है ॥

भाष्य—चाहे किसी आश्रम में क्यों न हो, जो पुरुष पूर्वोक्त छः निन्दित रात्रियों और पर्वादि सहित आठ अन्य रात्रियों में स्त्री गमन न करता हुआ शेष दो रात्रियों में केवल सन्तानोत्पत्ति के विचार से गर्भाधान करता है वह ब्रह्मचारी के समान ही है अर्थात् ऐसा पुरुष बल तथा तेजादि से सम्पन्न हुआ पूर्ण आयु को प्राप्त होता और उसकी सन्तति नीरोग तथा बलवान् होती है ॥

न कन्यायाः पिताविद्वान्गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि ।
गृह्णंश्छुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ॥३७॥

पदा०—(विद्वान्, कन्यायाः, पिता) कन्या का विद्वान् पिता (अण्वपि, शुल्कं) वर से अणुमात्र भी धन (न, गृह्णीयात्)

न लेवे (हि) क्योंकि (लोभेन, शुल्कं, गृह्णन्) लोभ से धन लेने वाला (नरः) मनुष्य (अपत्यविक्रयी, स्यात्) सन्तान के वेचने रूप दोष का भागी होता है जो अति निन्दित पाप कर्म है॥

स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः ।
नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगतिम्॥३८॥

पदा०—(तु) और (ये, बान्धवाः) जो कन्यापक्ष के वन्धुजन (मोहात्, स्त्रीधनानि) लोभवश होकर कन्या के धन से (नारीयानानि) सवारी से (वा) अथवा (वस्त्रं) वस्त्र से (उपजीवन्ति) जीवन निर्वाह करते हैं (ते, पापाः) वह पापिष्ठ (अधः, गतिं, यान्ति) घोर दुःख को प्राप्त होते हैं ॥

भाष्य—जो कन्या के पिता तथा भाई आदि बान्धव विवाह के पश्चात् उसी कन्या के घर के घोड़े आदि यान अथवा वस्त्रों को लोभ से भोगते हैं वह पापात्मा नीचगति को प्राप्त होकर नरक के अधिकारी होते हैं ॥

आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव तत् ।
अल्पोऽप्येवं महान् वापि विक्रयस्तावदेवसः ॥३९॥

पदा०—(केचित्) कोई आचार्य (आर्षे, गोमिथुनं,शुल्कं) आर्ष विवाह में गौ का एक जोड़ा कन्या के मूल्य में लेना (आहुः) कहते हैं (तत्) वह उनका कथन (मृषा, एव) मिथ्या ही है (अपि,एवं) क्योंकि इसप्रकार(अल्पः,अपि,वा,महान्) थोड़ा अथवा वहुत जो कुछ धन लेना है (सः, तावत्) वह एक प्रकार का (विक्रयः, एव) सन्तान वेचना ही है, इसलिये कुछ न लेकर कन्यादान देना ही श्रेष्ठ है ॥

यासां नाददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः ।
अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्यं च केवलम् ॥४०॥

पदा०—(यासां, शुल्कं) जिन कन्याओं का मूल्य (ज्ञातयः) कन्या की जाति वाले (न, आददते) ग्रहण नहीं करते और वर से कुछ धन प्राप्त हुआ भी कन्या के निमित्त ही देदेते हैं (सः) वह कन्या का दान (न, विक्रयः) विक्रय नहीं कहाता किन्तु (केवलं, आनृशंस्यं, कुमारीणां) केवल दयापूर्वक कन्याओं का (तत्, अर्हणं) वह पूजन है ॥

भाष्य—वर से न्यून धन लेकर अर्थात् एक वा दो गौ मात्र लेके कन्या देना जो आर्षविवाह पीछे लिख आये हैं वह भी ठीक नहीं, क्योंकि पूरा मूल्य लेने अथवा कम मूल्य लेने वाले दोनों ही सन्तान के वेचने रूप पाप के भागी होते हैं ॥

और जो कन्या के पिता आदि उसके विवाह समय वर से कुछ मूल्य नहीं लेते किन्तु कन्या को वस्त्राभूषणों से सुशोभित कर वा धन सहित कन्या देने के लिये वर से कुछ धन लेते हैं वह कन्या का बेचना नहीं वह केवल दयापूर्वक कन्याओं का पूजन है अर्थात् अपने स्वार्थ के लिये धन लेने की अपेक्षा वह अच्छा है परन्तु कुछ न लेकर कन्यादान देना अति श्रेष्ठ है ॥

सं०—अब स्त्री सत्कार के लाभ वर्णन करते हैं :—

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्याभूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥४१॥

पदा०—(बहुकल्याणं, ईप्सुभिः) अधिक कल्याण के चाहने वाले (पितृभिः, भ्रातृभिः, पतिभिः, देवरैः) पिता, भ्राता, पति,

देवर आदि को उचित है कि (एताः) अपनी २ स्त्रियों का (भूषयितव्याः, तथा, पूज्याः, च) आभूषण तथा वस्त्रादिकों द्वारा सदा सत्कार करें ॥

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः॥४२॥

पदा०-(तु) क्योंकि (यत्र) जहां (नार्यः, पूज्यन्ते) स्त्रियों का यथोचित सत्कार होता है (तत्र, देवताः, रमन्ते) वहां देवता रमण करते हैं (तु) और (यत्र, एताः, न, पूज्यन्ते) जहां इनकी पूजा नहीं होती (तत्र, सर्वाः, क्रियाः) वहां अग्नि-होत्रादि सब शुभकर्म (अफलाः) व्यर्थ होजाते हैं अर्थात् उनका कुछ फल प्राप्त नहीं होता ॥

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा ॥४३॥

पदा०-(यत्र) जिस कुल में (जामयः) स्त्रियां (शोचन्ति) शोक से आकुल रहती हैं (तत्.कुलं) वह कुल (आशु, विनश्यति) शीघ्र ही नाश होजाता है (तु) और (यत्र) जिस कुल में (एताः) स्त्रियें (न,शोचन्ति) शोक नहीं करतीं (तत्) वह कुल (हि) निश्चयकरके (सर्वदा) सदा (वर्द्धते) बढ़ता है ॥

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः ।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥४४॥

पदा०-(जामयः) स्त्रियां (अप्रतिपूजिताः) तिरस्कृत हुईं दुःखी होकर (यानि, गेहानि) जिन घरों को (शपन्ति)

शाप देती हैं (तानि) वह घर (कृत्या, हतानि, इव) यत्नपूर्वक कीहुई क्रियाओं से हत हुए की भांति (समन्ततः, विनश्यन्ति) सब प्रकार से नाश होजाते हैं ॥

भाष्य—भोजन वस्त्रादिकों से असन्तुष्ट, अनादृत तथा दुःखी होकर स्त्रियां जिन घरों को शाप देतीं अथवा कोशती हैं वह घर यत्नपूर्वक अनेकों को मारने के लिये कीहुई क्रियाओं के समान सब प्रकार के सुखों से वंचित हुए नष्ट भ्रष्ट होजाते हैं ॥

तस्मादेताः सदापूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ४५ ॥

पदा०—(तस्मात) इस कारण (भूतिकामैः) ऐश्वर्य्य की इच्छा वाले (नरैः) मनुष्यों को उचित है कि (नित्यं) नित्यप्रति और (सत्कारेषु, उत्सवेषु, च) इष्टमित्रादिकों के सत्कार तथा उत्सव काल में (एताः) स्त्रियों को (भूषणाच्छादनाशनैः) भोजन, वस्त्र तथा भूषणों से (सदा, पूज्याः) सदा प्रसन्न रक्खें ॥

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥४६॥

पदा०—(यस्मिन्, एव, कुले) जिस कुल में (भार्यया) स्त्री से (भर्त्ता) पति (च) और (तथा, एव, भर्त्रा, भार्या) इसी प्रकार पति से पत्नी (सन्तुष्टः) प्रसन्न रहती है (तत्र) उस कुल में (वै) निश्चय करके (नित्यं, ध्रुवं, कल्याणं) सदा स्थिर सुख रहता है ॥

यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ।
अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ॥ ४७ ॥

पदा०-(हि) निश्चयकरके (यदि, स्त्री) जो स्त्री (न, रोचेत) वस्त्राभूषणादि से रोचक=शोभायमान नहो वह (पुमांसं) पुरुष को (न, प्रमोदयेत्) प्रसन्न नहीं करसक्ती (पुनः) और (पुंसः, अप्रमोदात्) पुरुष की अप्रसन्नता से (प्रजनं, न, प्रवर्त्तते) सन्तान उत्पन्न नहीं होती अर्थात् परस्पर दोनों की प्रसन्नता से उत्तम सन्तान उत्पन्न होती है अन्यथा नहीं ॥

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥ ४८ ॥

पदा०-(तु) और (स्त्रियां, रोचमानायां) स्त्री के प्रसन्न रहने पर (तत्, कुलं, सर्वं) वह सब कुल (रोचते) प्रसन्न होता (तु) और (तस्यां, अरोचमानायां) स्त्री के अप्रसन्न रहने से (सर्वं, एव) सब कुल (न, रोचते) शोभा रहित रहता है, इसलिये यत्नपूर्वक स्त्री को सदा प्रसन्न रखना चाहिये ताकि सम्पूर्ण कुल प्रसन्न रहे ॥

यदा भर्त्ता च भार्या च परस्परवशानुगौ ।
तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपि संगमः ॥४९॥

पदा०-(यदा, भर्त्ता, च, भार्या, च, परस्परवशानुगौ) जिस कुल में भर्त्ता और भार्या परस्पर प्रसन्न रहते हैं (तदा) उस कुल में (धर्मार्थकामानां) धर्म, अर्थ तथा काम इन (त्रयाणां, अपि, संगमः) तीनों का निश्चयकरके मेल होता है अर्थात् उस कुल में तीनों ही वास करते हैं ॥

सं०-अब नीच विवाहों के करने में दोष कथन करते हैं:—

कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥५०॥

पदा०-(कुविवाहैः) आसुर आदि निन्दित विवाह करने से (क्रियालोपैः) जातकर्म आदि वैदिक संस्कार न होने के कारण (वेदानध्ययनेन) वेद के न पढ़ने (च) और (ब्राह्मणातिक्रमेण, च) ब्राह्मण का तिरस्कार करने से (कुलानि, अकुलतां) कुल नीचता को (यान्ति) प्राप्त होते हैं ॥

अयाज्ययाजनैश्चैव नास्तिक्येन च कर्मणाम् ।
कुलान्याशु विनश्यन्ति यानि हीनानि मन्त्रतः ॥५१॥

पदा०-(च) और (अयाज्ययाजनैः) यज्ञ न करने योग्यों से यज्ञ कराने वाले (नास्तिक्येन, कर्मणा) श्रुति, स्मृति प्रतिपाद्य कर्मों को न मानने वाले (च) तथा (यानि, हीनानि, मन्त्रतः) जो कुल वेदाध्ययन से हीन हैं वह (कुलानि) कुल (आशु, एव, विनश्यन्ति) शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं ॥

मन्त्रतस्तुसमृद्धानि कुलान्यल्पधनान्यपि ।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ॥५२॥

पदा०-(तु) निश्चयकरके (अल्पधनानि, अपि, कुलानि) थोड़े धन वाले भी कुल (मन्त्रतः, समृद्धानि) वेदाध्ययन से बढ़े हुए (कुलसंख्यां, च, गच्छन्ति) उत्तम कुलों में गिने जाते (च) तथा (महत्, यशः) बड़ी कीर्ति को (कर्षन्ति) प्राप्त होते हैं ॥

भाष्य-अल्प धन होने पर भी जिन कुलों में वेदाध्ययन, सन्ध्योपासन तथा अग्निहोत्रादि शुभकर्म होते हैं वह कुल श्रेष्ठ कुलों में गिने जाते और बड़े यश को प्राप्त होते हैं ॥

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि ।
पञ्चयज्ञविधानञ्च पक्तिं चान्वाहिकीं गृही ॥५३॥

पदा०—(गृही, गृह्यं, कर्म) गृहस्थ पुरुष गृहसम्बन्धी कर्म (च) और (पञ्चयज्ञविधानं) पञ्चमहायज्ञों की विधि (च) तथा (आन्वाहिकीं, पक्तिं) प्रतिदिन के पकाये हुए भोजन पाक को (यथाविधि) विधिपूर्वक (वैवाहिके, अग्नौ) विवाह की अग्नि में (कुर्वीत) करे ॥

भाष्य—गृहस्थ पुरुष गर्भाधानादि संस्कारों के समय होने वाला होम और पंचमहायज्ञों में से अग्निहोत्र, वैश्वदेव तथा प्रतिदिन का भोजन पाक पकाना, इन सब कर्मों को गृह्यअग्नि अर्थात् विवाह के समय जिस अग्नि में विवाह सम्बन्धी लाजा होम किया जाता है उस अग्नि में विधिपूर्वक सब कर्म करे ॥

भाव यह है कि विवाह समय कन्या के पिता के घर जिस अग्नि में होम किया जाता है उस अग्नि को विवाहित कन्या के साथ ही वर अपने घर लावे, इसी का नाम "गृह्यअग्नि" है, इस अग्नि को गृहाश्रम का समय पूर्ण होने तक द्विज यत्नपूर्वक घर में रखे, और उसी अग्नि में नित्य अग्निहोत्र तथा वैश्वदेव आदि कर्म करे ॥

सं०—अब उन कर्मों का विधान करते हैं जिनके नित्य करने से गृहस्थ पाप का भागी होता है:—

पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन् ॥५४॥

पदा०-(गृहस्थस्य) गृहस्थी के (चुल्ली) चूल्हा (पेषणी) चक्की वा शिलवटना (उपस्करः) झाड़ू तथा सूप (कण्डनी) उखली मूसल वा खरल आदि (च) और (उदकुम्भः) जलपात्र तथा घड़ौंची (पञ्च, सूनाः) यह पांच हिंसा के स्थान हैं (तु) सो (याः, वाहयन्) इनको कार्य में लाता हुआ गृहस्थी (वध्यते) दूषित होता है ॥

भाष्य-गृहस्थी के प्रतिदिन काम में आने वाले पांच हिंसा के स्थान हैं (१) चूल्हा, अंगीठी अर्थात् अग्नि जलाने तथा भोजन पकाने का स्थान (२) चक्की तथा शिल वटना (३) सूप तथा झाड़ू (४) उखली मूसल वा खरल आदि (५) जल भरा कलश और घड़े रखने का स्थान, इन पांचों में प्रायः हिंसा होती है अर्थात् इन कर्मों को करता हुआ गृहस्थ हिंसारूप दोष से दूषित होता है ॥

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः ।
पञ्चक्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥५५॥

पदा०-(तासां, सर्वासां) इन्हीं पांचो दोषों की (क्रमेण, निष्कृत्यर्थं) क्रमपूर्वक निवृत्ति के लिये (महर्षिभिः) महर्षियों ने (गृहमेधिनां) गृहस्थियों को (प्रत्यहं) प्रतिदिन (पंचमहायज्ञाः) पांच महायज्ञ करने का (क्लृप्ताः) विधान किया है ॥

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥५६॥

पदा०-(अध्यापनं, ब्रह्मयज्ञः) पढ़ाना ब्रह्मयज्ञ (तर्पणं,

पितृयज्ञः) तर्पण*पितृयज्ञ (होमः, दैवः) अग्निहोत्रादि दैवयज्ञ (बलिः, भौतः) प्राणियों को बलिदेना भूतयज्ञ (तु) और (अतिथिपूजनं, नृयज्ञः) अतिथियों को भोजन देना नृयज्ञ, यह पांच महायज्ञ हैं ॥

पंचैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः ।
स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्नलिप्यते ॥५७॥

पदा०—(यः) जो द्विजाति (एतान्, पंचमहायज्ञान्) इन पूर्वोक्त पंचमहायज्ञों को (शक्तितः, न, हापयति) अपनी शक्ति के अनुसार नहीं त्यागता (सः, नित्यं) वह निरन्तर (गृहे, अपि, वसन्) घर वास करता हुआ भी (सूनादोषैः) हिंसारूप दोषों से (न, लिप्यते) दूषित नहीं होता है ॥

देवतातिथिभृत्यानां पितॄणामात्मनश्च यः ।
न निर्वपति पंचानामुच्छ्वसन्न स जीवति ॥५८॥

पदा०—(यः) जो द्विज (देवतातिथिभृत्यानां) देवता, अतिथि, भृत्य(पितॄणां) पितर=गुरुजन (च) तथा (आत्मनः) अपनी आत्मा (पंचानां) इन पांचों को (न, निर्वपति) भोजनादि से सन्तुष्ट नहीं रखता (सः, उच्छ्वसन्) वह जीता हुआ भी (न, जीवति) मरे हुए के तुल्य है ॥

अहुतं च हुतं चैव तथा प्रहुतमेव च ।
ब्राह्मं हुतं प्राशितं च पंचयज्ञान्प्रचक्षते ॥५९॥

---

* पितृजनों के सत्कार का नाम "तर्पण" है ॥

पदा०—(अहुतं, च) अहुतयज्ञ (हुतं, च, एव) हुतयज्ञ (तथा, एव) तथा (प्रहुतं, च) प्रहुत यज्ञ (ब्राह्मंहुतं) ब्राह्म यज्ञ (च) और (प्राशितं) प्राशित यज्ञ (पञ्चयज्ञान्) इन पांच नामों से भी अनेक विद्वान् पञ्चमहायज्ञों को (प्रचक्षते) कहते हैं ॥

जपोऽहुतो हुतो होमः प्रहुतो भौतिको बलिः ।
ब्राह्मं हुतं द्विजाग्र्यार्चा प्राशितं पितृतर्पणम् ॥९०॥

पदा०—(अहुतः, जपः) अहुतयज्ञ=जप (हुतः, होमः) हुतयज्ञ=होम (प्रहुतः, भौतिकोबलिः) प्रहुतयज्ञ=बलिवैश्वदेव (ब्राह्मंहुतं, द्विजाग्र्यार्चा) अग्रगण्य ब्राह्मणों की पूजा करना= ब्राह्मयज्ञ (प्राशितं, पितृतर्पणं) अन्नादि से श्रद्धापूर्वक अपने गुरुजनों की सेवा करना प्राशितयज्ञ है ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि ।
दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम् ॥९१॥

पदा०—(इह) गृहस्थाश्रम में वास करता हुआ पुरुष (स्वाध्याये) वेदाध्ययन (च, एव) तथा (दैवे, कर्मणि) अग्निहोत्रादि दैवयज्ञ में (नित्ययुक्तः, स्यात्) सदा तत्पर रहे (हि) क्योंकि (दैवे,कर्मणि, युक्तः) देवयज्ञ में तत्पर द्विज (इदं, चराचरं) इस स्थावर जङ्गमरूप जगत् का (बिभर्त्ति) पोषण करता है ॥

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥९२॥

पदा०—(सम्यक्, अग्नौ) भले प्रकार अग्नि में (प्रास्ता, आहुतिः) डाली हुई आहुति (आदित्यं, उपतिष्ठते) सूर्य को प्राप्त होती है (आदित्याद्, वृष्टिः, जायते) सूर्य से वर्षा होती है (वृष्टेः, अन्नं) वर्षा से अन्न होता (ततः) पुनः (प्रजाः) अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है, इसीलिये देवयज्ञ प्रजा की उत्पत्ति का परम्परा सम्बन्ध से कारण है और जो पुरुष इसको नित्य प्रति करता है वह सम्पूर्ण प्रजा का पोषक कहाता है ॥

यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः ।
तथागृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वआश्रमाः ॥६३॥

पदा०—(यथा, वायुं, समाश्रित्य) जिसप्रकार वायु के आश्रय (सर्वजन्तवः, वर्त्तन्ते) सब प्राणी जीते हैं (तथा) इसी प्रकार (गृहस्थं, आश्रित्य) गृहस्थाश्रम को आश्रय करके (सर्वे, आश्रमाः, वर्त्तन्ते) ब्रह्मचर्यादि सब आश्रम स्थिर होते हैं ॥

यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥६४॥

पदा०—(यस्माद्) जिसकारण (त्रयः, अपि,आश्रमिणः) अन्य तीनों आश्रम के पुरुषों को (गृहस्थेन, एव) गृहस्थी ही (ज्ञानेन, अन्नेन, च) ज्ञान तथा अन्न द्वारा (धार्यन्ते) स्थिर रखता है (तस्माद्) इस कारण (गृही) गृहस्थाश्रम (ज्येष्ठाश्रमः) सब में बड़ा है ॥

स सन्धार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥६५॥

पदा०-(अक्षयं, स्वर्गं, इच्छता) नाशरहित स्वर्ग=मोक्ष की इच्छा वाला (च) और (इह) इस संसार में (सुखं, इच्छता) सुख चाहने वाला पुरुष (नित्यं, प्रयत्नेन) सदा यत्न से (सः, सन्धार्यः) गृहस्थाश्रम को धारण करे (यः) जो गृहस्थाश्रम (दुर्बलेन्द्रियैः) निर्बल इन्द्रिय पुरुषों से (अधार्यः) धारण करने योग्य नहीं अर्थात् सर्वशक्ति सम्पन्न पुरुष ही गृहस्थाश्रम के भार को उठासक्ता है ॥

ऋषयः पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा ।
आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानता ॥६६॥

पदा०-(ऋषयः) ऋषि (पितरः) पितर=वृद्ध, पितादि (देवाः) देवता=विद्वान् (भूतानि) भूत (तथा) और (अतिथयः) अतिथि, यह सब (कुटुम्बिभ्यः, तेभ्यः) गृहस्थियों से ही अपनी सम्पूर्ण (आशासते) आशायें रखते हैं, इस कारण (विजानता) विचारशील गृहस्थियों को उचित है कि उनका (कार्यं) भले प्रकार सत्कार करें ॥

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि ।
पितॄन्श्राद्धैश्च नॄनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥६७॥

पदा०-(स्वाध्यायेन, ऋषीन्) वेदाध्ययन से ऋषियों का (होमैः, देवान्) होमों से जगत् भर में व्याप्त अग्नि आदि देवताओं का (श्राद्धैः, पितॄन्) श्रद्धापूर्वक भोजन आदि द्वारा पितामह आदि गुरुजनों का (अन्नैः, नॄन्) अन्न आदि से अतिथियों का (च) और (बलिकर्मणा, भूतानि) बलिवैश्वदेव से भूतों का (यथाविधि, अर्चयेत्) गृहस्थी विधिपूर्वक पूजन=सत्कार करे ॥

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥ ६८ ॥

पदा०—(अन्नाद्येन, उदकेन, वा) अन्नादि तथा जल से (अपि, वा) अथवा (पयोमूलफलैः) कन्द, मूल, फल तथा दूध से (पितृभ्यः, प्रीतिं, आवहन्) पिता, पितामह आदि गुरुजनों का (अहः अहः) प्रतिदिन (श्राद्धं, कुर्यात्) श्रद्धापूर्वक सत्कार करे ॥

एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थे पांचयज्ञिके ।
न चैवात्राशयेत्कश्चिद्वैश्वदेवं प्रति द्विजम् ॥६९॥

पदा०—(पाञ्चयज्ञिके, पित्रर्थे) पञ्चमहायज्ञों की संख्या में वर्णित पितृयज्ञ के निमित्त (एकं, अपि, विप्रं, आशयेत्) एक ही सुपात्र ब्राह्मण को भोजन करावे (च) और (अत्र, वैश्वदेवं, प्रति) वैश्वदेव कर्म के निमित्त (कश्चित्, एव, द्विजं) किसी ब्राह्मण को (न, आशयेत्) भोजन न करावे ॥

भाष्य—पञ्चमहायज्ञ सम्बन्धी पितृयज्ञ के निमित्त एक ही सुपात्र ब्राह्मण को भोजन करावे अर्थात् यदि साक्षात् पिता, पितामह आदि न हों तो पितृत्वगुणयुक्त=ब्रह्मचर्य्यपूर्वक वेदाध्ययन किये हुए सदाचारी वृद्ध एक वा अनेक ब्राह्मणों को यथाशक्ति भोजन करावे, क्योंकि गुरुजनों का अन्न वस्त्रादि से सत्कार करना ही "पितृयज्ञ" है, परन्तु बलिवैश्व देव के स्थान में किसी को भोजन न करावे वह उसी प्रकार यथाविधि बलिदान करे ॥

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम् ।
आभ्यःकुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम्॥७०॥

पदा०-(गृह्ये, अग्नौ) गृह्य अग्नि में (सिद्धस्य, वैश्वदेवस्य) वैश्वदेव के लिये पकाये हुए अन्न का (विधिपूर्वकं) शास्त्रोक्त विधि के अनुसार (आभ्यः, देवताभ्यः) अग्नि आदि देवताओं के निमित्त (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (अन्वहं, होमं, कुर्यात्) प्रतिदिन होम करे ॥

अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः ।
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो धन्वन्तरय एव च ॥७१॥

पदा०-(आदौ) प्रथम (अग्नेः, सोमस्य) अग्नि तथा सोम को (च) फिर (तयोः, समस्तयोः) दोनों को मिलाकर (च, एव) पुनः (विश्वेभ्यः, देवेभ्यः) विश्वदेव को (च, एव) तदनन्तर (धन्वन्तरये, एव, च) धन्वन्तरि के निमित्त होम करे ॥

भाष्य-बलिवैश्वदेव का प्रकार यह है कि "अग्नये स्वाहा" "सोमायस्वाहा" "अग्निसोमाभ्यां स्वाहा" "विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा" "धन्वन्तरये स्वाहा" और :—

कुह्वै चैवानुमत्यै च प्रजापतय एव च ।
सह द्यावापृथिव्योश्च तथा स्विष्टकृतेऽन्ततः ॥७२॥

पदा०-(च) और (कुह्वै) "कुह्वै स्वाहा" (अनुमत्यै) "अनुमत्यै स्वाहा" (च, एव) तथा (प्रजापतये) "प्रजापतये स्वाहा" (च,एव) और (सहद्यावापृथिव्योः) "सहद्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा" (अन्ततः, एव) पुनः अन्त में (स्विष्टकृते) "स्विष्टकृते स्वाहा" इस प्रकार होम करे ॥

एवं सम्यग्घविर्हुत्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम् ।
इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः सानुगेभ्यो बलिं हरेत् ॥७३॥

पदा०—(एवं, सम्यक्, हविः, हुत्वा) एवं क्रमपूर्वक भले प्रकार होम करके (सर्वदिक्षु, प्रदक्षिणं) सब दिशाओं में प्रदक्षिणा करने के क्रम से (सानुगेभ्यः, इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः) सहचारियों सहित इन्द्र, यम, वरुण और सोम इनके लिये (बलिं, हरेत) बलि नाम ग्रासों का विभाग करके, तदनन्तरः—

मरुद्भ्य इति तु द्वारि क्षिपेदप्स्वद्भ्य इत्यपि ।
वनस्पतिभ्य इत्येवं मुसलोलूखले हरेत् ॥७४॥

पदा०—(मरुद्भ्यः) "मरुद्भ्यो नमः" (इति) इस प्रकार कहकर (द्वारि, क्षिपेत) द्वार में रक्खे (अपि) और (अद्भ्यः) "अद्भ्योनमः" (इति) इस प्रकार कहकर (अप्सु) जलों में (तु) और (वनस्पतिभ्यः) "वनस्पतिभ्यो नमः" (इति, एवं) इसप्रकार कहकर (मुसलोलूखले) ऊखल मूसल के निमित्त (हरेत) बलि देवे॥

उच्छीर्षके श्रियै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः ।
ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत् ॥७५॥

पदा०—(श्रियै) "श्रियै नमः" इस मन्त्र से (उच्छीर्षके) घर की छत पर (च) और (भद्रकाल्यै) "भद्रकाल्यै नमः" इससे (पादतः) घर की भूमि में (तु) और (ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां) "ब्रह्मणेनमः" "वास्तोष्पतयेनमः" इन मन्त्रों से (वास्तुमध्ये) वास्तु=घर के मध्य में (बलिं, हरेत) बलि रखे ॥

विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत् ।
दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तञ्चारिभ्य एव च ॥७६॥

पदा०—(विश्वेभ्यः, देवेभ्यः) "विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः"

इस वाक्य को उच्चारण करके विश्वेदेवों को (च) और (दिवाचरेभ्यः, च, एव, नक्तञ्चारिभ्यः, भूतेभ्यः)"दिवाचरेभ्यो-भूतेभ्योनमः" ".नक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्योनमः" इन दोनों मन्त्रों से दिवाचर तथा रात्रिचरों को (आकाशे, बलिं, उत्क्षिपेत्) आकाश में बलि देवे ॥

पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये ।
पितृभ्यो बलिशेषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेत् ॥७७॥

पदा०-(सर्वात्मभूतये) " सर्वात्मभूतयेनमः " इस मन्त्र से (पृष्ठवास्तुनि) घर के पृष्ठ भाग में (बलिं, कुर्वीत) बलि धरे (तु) और (सर्वं, बलिशेषं) बलिकर्म से बचे हुए अन्न को (पितृभ्यः) पितरों के निमित्त (दक्षिणतः, हरेत्) दक्षिण दिशा में बलि रखे ॥

भाष्य-सब देवों=दिव्यगुणसम्पन्न पदार्थों, विद्वानों और प्राणी, अप्राणी रूप जगतस्थ पदार्थों के निमित्त अपने भोजन में से भाग देना "वैश्वदेव" कहाता है, और इसी का नाम भूतबलि है, जैसाकि "भूतानि बलिकर्मणा" पीछे श्लोक में कह आये हैं, पूर्वोक्त श्लोक में कथन किये अनुसार चूल्हा, चक्की आदि से काम लेता हुआ गृहस्थ कुछ न कुछ थोड़ी बहुत जगत् की हानि करता है, या यों कहो कि अन्य प्राणियों को कुछ न कुछ क्लेश अवश्य पहुंचाता है, उसी के प्रायश्चित्त के लिये सब जगत् के उपकाररूप वैश्वदेव वा बलि का विधान किया है, और मनुष्यमात्र को नित्यप्रति अग्निहोत्र का विधान भी इसी निमित्त बतलाया है कि पुरुष मलमूत्रादि

त्याग द्वारा जगत् का अनुपकार करता है जिसका प्रायश्चित्त अग्निहोत्र है, अस्तु यह प्रकरणान्तर है प्रकृत यह है कि जगत् के उपकारार्थ ही वैश्वदेव का विधान है, जिसका तात्पर्य्य यह है कि सूक्ष्म वा स्थूल भूत जिनसे यह शरीर बना है इन्हीं को उक्त श्लोकों में बलि देने का विधान है और वह वायु के समान सर्वत्र फैले हुए हैं, अब हमारा कर्तव्य यह है कि हम उन सब भूतों को सदा शुद्ध पवित्र रखें जिससे हमारे शरीर सदा नीरोग हृष्ट, पुष्ट तथा बलवान् रहें, इसी उद्देश्य को लक्ष्य रखकर ऋषियों ने अग्निहोत्र का विधान किया है अर्थात् होम का तात्पर्य्य उन २ द्रव्यों की पुष्टि तथा शुद्धि आदि है जिनके सङ्घात से यह शरीर बना है, अतएव पुरुष का कर्तव्य है कि जो २ बलि जिस २ तत्त्व वा द्रव्य की पुष्टि तथा शुद्धि के लिये पीछे लिखी है उस २ के निमित्त पत्तल वा थाल में भाग धरकर गृह्य अग्नि में "वैश्वदेवस्य सिद्धस्य" इस श्लोक के अनुसार चढ़ावें, परन्तु यह द्रव्य क्षार लवणादि से रहित मिष्ट तथा पुष्टिकारक होने चाहियें॥

तात्पर्य्य यह है कि जिस देवता का जहां २ सम्बन्ध है उसी के नाम से बलि धरकर गृह्य अग्नि पर चढ़ावे, जैसाकि इन्द्र के निमित्त पूर्वदिशा में, यम के निमित्त दक्षिण दिशा में, वरुण के निमित्त पश्चिम दिशा में, सोम के निमित्त उत्तर दिशा में, वायु के निमित्त द्वार में,क्योंकि वायु का आना जाना द्वार के द्वारा होता है, जल के निमित्त जल में, वनस्पति के निमित्त मूसल उलूखल में इत्यादि, एवं प्रकार सब तत्त्व वा द्रव्यों का सम्बन्ध जानना चाहिये, जैसाकि श्लोकों में वर्णन किया है॥

यद्यपि उक्त इन्द्रादि नामक देव सामान्यतः सर्वत्र व्याप्त रहते हैं परन्तु उनकी पूर्वादि दिशाओं में प्रधान स्थिति होने से उन २ दिशाओं में उनके लिये बलि का विधान है, जैसाकि वायु सर्वत्र विचरता है परन्तु घर के अन्य भागों की अपेक्षा द्वार में अधिक प्रचार होने से उसका स्थान द्वार कहागया है ॥

चाहे धन, धान्यादि पदार्थ स्थूल हैं परन्तु उनके सूक्ष्मांश सर्वत्र विद्यमान हैं और वह हवि में भी होते हैं जो अग्नि की सहायता से उन आकाशस्थ कारणरूप परमाणुओं को पुष्ट वा शुद्ध करके अपने कार्य्यरूप घर के धनादि ऐश्वर्य्य को बढ़ाते और पुष्ट वा शुद्ध करते हैं, इस प्रकार अप्राणिरूप पदार्थों को बलि देना सार्थक है, इसका अधिक विस्तार यथावसर प्राप्त अन्यत्र लिखेंगे, वास्तव में यह अनुष्ठानार्ह विषय है, यदि प्रत्येक आर्य्य पुरुष इसका अनुष्ठान करे तो बड़ी सुगमता से उक्त विषय के तत्त्व को अवगत करसक्ता है ॥

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ।
वायसाना कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि॥७८॥

पदा०—(शुनां)"श्वभ्योनमः"(पतितानां)"पतितेभ्योनमः"(च) और(श्वपचां)"श्वपचेभ्योनमः" (पापरोगिणां) "पापरोगिभ्योनमः" (वायसानां) "वायसेभ्योनमः" (च) और (कृमीणां) "कृमिभ्यो नमः" इन छः मन्त्रों से (शनकैः, भुवि) धीरे से पृथिवी पर बलि (निर्वपेत्) रखे ॥

भाष्य—कुत्ता आदि आश्रित पशुओं, जाति बाह्य किये प्रायश्चित्त योग्य महापातकी आदि पतितों, चाण्डाल,

कुष्ठादि महारोग वालों, कौवे आदि पक्षियों और कृमि आदि क्षुद्र जन्तुओं के लिये पृथिवी पर धीरे से बलि रखे ताकि उसमें मिट्टी धूल न लगे ॥

पूर्वोक्त छओं के लिये छः भाग अलग २ भूमि पर धरे, इन भागों का कोई विशेष परिमाण नियत नहीं है. कोई समर्थ गृहस्थ एक सेर दो सेर अथवा उक्त समुदायों की क्षुधा के अनुसार देसक्ता है परन्तु सामान्य दशा में एक २ रोटी उक्त छओं में से प्रत्येक को देवे और यदि अधिक दरिद्र हो तो एक २ ग्रास भी देना उत्तम है ॥

एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति ।
स गच्छति परंस्थानं तेजोमूर्त्तिः पथर्जुना ॥७९॥

पदा०—(एवं, यः ब्राह्मणः) इस प्रकार जो ब्राह्मण (सर्वभूतानि) सम्पूर्ण प्राणियों को (नित्यं, अर्चति) सदा पूजता है (सः, तेजोमूर्त्तिः) वह निष्पाप शुद्ध ब्राह्मण (ऋजुना, पथा) सीधे मार्ग द्वारा (परंस्थानं) परमधाम मोक्ष को (गच्छति) प्राप्त होता है ॥

भाष्य—जो द्विज गृहस्थ उक्त सब अनाथ प्राणियों को भोजन देकर सत्कार करता है वह शुद्ध, निष्पाप तथा तेजस्वी हुआ २ सर्वोत्तम सुख को प्राप्त होता है ॥

कृत्वैतद्बलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत् ।
भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे ॥८०॥

पदा०—(एवं) इसप्रकार (एतद, बलिकर्म, कृत्वा) बलि-

वैश्वदेव कर्म करके (पूर्वं, अतिथिं, आशयेत्) प्रथम अतिथि को भोजन करावे (च) और (भिक्षवे, ब्रह्मचारिणे) भिक्षार्थी ब्रह्मचारी को (विधिवत्) विधिपूर्वक (भिक्षां,दद्यात्) भिक्षा देवे ॥

यत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्त्वा विधिवद्गुरोः ।
तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्त्वा द्विजो गृही ॥८१॥

पदा०-(विधिवत्) विधिपूर्वक (गुरोः, गां. दत्त्वा) गुरु को गौ देकर (यत्, पुण्यफलं. आप्नोति) शिष्य जिस पुण्यफल का भागी होता है (तत्, पुण्यफलं) वही पुण्यफल (भिक्षां. दत्त्वा) ब्रह्मचारी को भिक्षा देने से (द्विजः, गृही) गृहस्थी द्विज को (आप्नोति) प्राप्त होता है अर्थात् ब्रह्मचारी को भिक्षा देना गो दान के समान है ॥

भिक्षामप्युदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ।
वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ ८२ ॥

पदा०-(वेदतत्त्वार्थविदुषे) वेद के तत्त्वार्थ को जानने वाले (ब्राह्मणाय) ब्राह्मण के लिये (विधिपूर्वकं, सत्कृत्य) यथाविधि सत्कारपूर्वक (भिक्षां) भिक्षा (अपि, वा) अथवा (उदपात्रं) जल से पूर्ण पात्र अवश्य (उपपादयेत्) समर्पण करे ॥

भाष्य-वेद के तत्त्वार्थ को जानने वाले अर्थात् जिसने सांगोपाङ्ग वेदों का अध्ययन किया है ऐसा ब्राह्मण घर आवे तो गृहस्थ को उचित है कि उसके लिये यथेष्ट भिक्षा देवे, यदि भिक्षा देने की शक्ति न हो तो सन्मानपूर्वक उसको उच्चासन दे और केवल जल ही का लोटा भरकर उसके समर्पण करे ॥

नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम् ।
भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानिदातृभिः ॥८३॥

पदा०-(भस्मीभूतेषु, विप्रेषु) वेदविहित कर्मों से हीन भस्मरूप=निःसत्त्व ब्राह्मणों को (मोहात्) अज्ञान से (दातृभिः, दत्तानि) जो दाता दान देते हैं उन (अविजानतां, नराणां) सुपात्र, कुपात्र को न जानने वाले दाताओं के (हव्यकव्यानि, नश्यन्ति) हव्य कव्य नष्ट होजाते हैं ॥

भाष्य-वेदोक्तधर्म के त्याग अथवा पापकर्मों के सेवन से जिनका ब्राह्मणपन राख के तुल्य निःसत्व होगया है ऐसे जातिमात्र के अभिमानी ब्राह्मण को दिया हुआ दान व्यर्थ होता है, या यों कहो कि सुपात्र कुपात्र को न जानते हुए पुरुष का दान राख में होम करने के तुल्य निष्फल है अर्थात् सुपात्र को दान देना सफल और कुपात्र को देना व्यर्थ है, और :—

विद्यातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ।
निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात् ॥८४॥

पदा०-(विद्यातपःसमृद्धेषु) विद्या तथा तप से बढ़े हुए तेजस्वी (विप्रमुखाग्निषु) ब्राह्मणों के मुखरूप अग्नि में (हुतं) भोजनरूप हवि का हवन किया हुआ अर्थात् भोजन कराया हुआ (दुर्गात्) दुस्तर (च) तथा (महतः, च, एव, किल्बिषात्) बड़े २ अज्ञानान्धकाररूप पापों से (निस्तारयति) तार देता है ॥

भाष्य-विद्वान् तथा तेजस्वी ब्राह्मण को कराया हुआ भोजन तथा दिया हुआ दान बड़े दुस्तर और अज्ञानान्धकार

रूप पापों से छुड़ा देता है अर्थात् सुपात्र को दिया हुआ दान ही फलीभूत होता है कुपात्र का नहीं, इसलिये सुपात्र और कुपात्र को विचारकर दान देना ही श्रेय है ॥

संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके ।
अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्यविधिपूर्वकम् ॥८५॥

पदा०-(तु) और (संप्राप्ताय, अतिथये) स्वयं प्राप्त हुए अतिथि का (विधिपूर्वकं) यथाविधि (आसनोदके) आसन तथा जल से (सत्कृत्य) सत्कार करके (यथाशक्ति) शक्ति के अनुसार (अन्नं, दद्यात्) भोजन देवे ॥

भाष्य-गृहस्थ के घर पर स्वयं आये हुए अतिथि को गृहस्थी प्रथम सन्मानपूर्वक उच्चासन दे, फिर मुखादि धोने के लिये जल देवे, पश्चात् अपनी शक्ति के अनुसार थोड़ा अथवा क्षुधा निवृत्ति योग्य पकाया हुआ अन्न देवे, ऐसा करने से गृहस्थी पवित्र होता है ॥

शिलानप्युञ्छतो नित्यं पञ्चाग्नीनपि जुह्वतः ।
सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो वसन् ॥ ८६ ॥

पदा०-(शिलान्, अपि, उञ्छतः) खेत में पीछे से रहे हुए शिला को बीनकर जीवन निर्वाह करने तथा (पञ्चाग्नीन्, नित्यं, जुह्वतः) नित्यप्रति पञ्चमहायज्ञ करने वाले गृहस्थी के (अपि) भी (सर्वं, सुकृतं) सब पुण्यकर्मों को (अनर्चितः, ब्राह्मणः, वसन्) अपूजित ब्राह्मण घर में रहा हुआ (आदत्ते) लेजाता है ॥

भाष्य-वेदादि सत्यशास्त्रों का ज्ञाता ब्राह्मण अतिथि यदि घर में आजाय तो गृहस्थ यथाविधि उसका सत्कार करे और

ऐसी चेष्टा करे जिससे उसका कोई निरादर तथा अपमान न होने पावे, क्योंकि अपूजित=सत्कार से रहित एक रात भी घर में रहा हुआ ब्राह्मण गृहस्थी के सब पुण्यकर्म लेजाता है अर्थात् ऐसा करने से गृहस्थी के सब पुण्यकर्म व्यर्थ होजाते हैं ॥

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता ।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥८७॥

पदा०-(तृणानि) तृण आदि का आसन (भूमिः) बैठने का स्थान (उदकं) जल (च) और (चतुर्थी, सूनृता, वाक्) चौथा प्रियसत्यभाषण (एतानि, अपि) यह तो (सतां, गेहे) श्रेष्ठपुरुषों के घरों से (कदाचन) कभी भी (न, उच्छिद्यन्ते) नष्ट नहीं होते अर्थात् सदा सत्कारार्थ यह पदार्थ विद्यमान रहते हैं॥

भाष्य-तृणादि का आसन, बैठने का स्थान, जल और प्रियभाषण, यह पदार्थ तो गृहस्थी के समीप सदा ही विद्यमान रहते हैं अर्थात् गृहस्थी यदि भोजनादि से अतिथि का सत्कार न करसके तो प्रियवाणी तथा आसनादि से अतिथि का अवश्य सत्कार करे, ऐसा करने से भी गृहस्थी पाप का भागी नहीं होता॥

सं०-अब "अतिथि" का लक्षण कथन करते हैं:—

एकरात्रं तु निवसन्नातिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते॥८८॥

पदा०-(एकरात्रं, निवसन्) अकस्मात् कहीं से आया हुआ एकरात्रि एक स्थान में वास करने वाला (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (तु) निश्चयकरके (अतिथिः, स्मृतः) अतिथि कहा है

(हि) क्योंकि (यस्मात्, अनित्य, स्थितः) जिस कारण उसकी अनियत स्थिति है (तस्मात्, अतिथिः, उच्यते) इसलिये वह अतिथि कहाता है ॥

नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं साङ्गतिकं तथा ।
उपस्थितं गृहे विद्याद्भार्या यत्राग्नयोऽपि वा ॥८९॥

पदा०—(एकग्रामीणं, साङ्गतिकं) एक ग्राम में निवास करता हुआ कथा आदि सुनाकर जीविका करने वाला (तथा) तथा (भार्या) स्त्रीसहित (अग्नयः, अपि, वा) पंचमहायज्ञ करने वाला (विप्रं) ब्राह्मण (यत्र, गृहे, उपस्थितं) गृहस्थी के घर पर आजाय तो उसको (अतिथि, न, विद्यात्) अतिथि न जाने ॥

भाष्य—अतिथि वही है जो अकस्मात् कहीं से आजाय अर्थात् जिसके आने की तिथि नियत नहो, और जो एक रात्रि से अधिक एकस्थान में वास करने वाला नहो, और जो एक ही गांव में रहने वाला तथा नानाप्रकार की कथा सुनाकर जीविका करने वाला और परदेश में निकलने पर भी स्त्री बालबच्चे तथा अग्निहोत्र का सामान जिसके साथ हो, ऐसा ब्राह्मण यदि गृहस्थी के घर आजाय तो वह उसको अतिथि न माने अर्थात् वह अतिथि नहीं, परन्तु उसका यथाशक्ति सत्कार करना गृहस्थी का कर्त्तव्य है ॥

उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः ।
तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ॥९०॥

पदा०—(ये, अबुद्धयः, गृहस्थाः) जो बुद्धिहीन गृहस्थी (परपाकं, उपासते) अन्य के अन्न को भक्षण करते हैं (तेन)

उस पराये अन्न के भक्षण करने के कारण (ते) वह निर्बुद्धी गृहस्थी (प्रेत्य) मरकर (अन्न दिदायिनां) अन्नादि देने वालों के (पशुतां, व्रजन्ति) पशु बनते हैं ॥

अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिना ।
काले प्राप्तस्त्वकाले वा नास्यानश्नन्गृहे वसन् ॥९१॥

पदा०-(सूर्योढः, सायं) सूर्यास्त होने पर सायंकाल में (काले, तु, अकाले) भोजन के समय अथवा असमय में (प्राप्तः, अतिथिः) आये हुए अतिथि का (गृहमेधिना,अप्रणोद्यः) गृहस्थी तिरस्कार न करे (वा) और (अस्य) अतिथि को (गृहे) घर में (अनश्नन्) विना भोजन कराये (न, वसेत्) न ठहरावे किन्तु उसका भोजनादि से प्रीतिपूर्वक सत्कार करे ॥

न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं चातिथिपूजनम् ॥९२॥

पदा०-(यत्, अतिथिं, न, भोजयेत्) जो पदार्थ अतिथि को न जिमावे (तत्, स्वयं) उसको अपने आप भी (न,अश्नीयात्) न खाय (वै) क्योंकि (अतिथिपूजनं) अतिथि सत्कार (धन्यं, यशस्यं, आयुष्यं स्वर्ग्यं, च) धन, यश, आयु और स्वर्ग का देने वाला है ॥

भाष्य-जो पदार्थ अतिथि को भोजन न करावे उसको गृहस्थी स्वयं भी न खाय अर्थात् अपने शरीर की पुष्टि तथा स्वाद को अतिथि से बड़ा न माने, भोजन योग्य सब पदार्थ अतिथि के समीप उपस्थित करे खाने न खाने में वह स्वतन्त्र है, इसप्रकार सत्कार करने वाला गृहस्थी सद्गति को प्राप्त होता है ॥

आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम् ।
उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीने हीनं समे समम् ॥९३॥

पदा०-(आसनावसथौ) आसन, स्थान (शय्यां) शय्या (अनुव्रज्यां) आते जाते समय उत्थान, प्रत्युत्थान तथा पीछे चलकर बिदाकरना आदि (उत्तमेषु, उत्तमं) उत्तमों की उत्तम (हीने, हीनं) हीनों की हीन तथा (समे, समं) मध्यमों की मध्यम (उपासनां) प्रीतिपूर्वक सेवा (कुर्यात्) करे ॥

वैश्वदेवे तु निर्वृत्ते यद्यन्योऽतिथिराव्रजेत् ।
तस्याप्यन्नं यथाशक्ति प्रदद्यान्न बलिंहरेत् ॥९४॥

पदा०-(तु) और (वैश्वदेवे, निर्वृत्ते) वैश्वदेव के होचुकने पर (यदि, अन्यः, अतिथिः, आव्रजेत्) यदि कोई अन्य अतिथि आजाय तो (तस्य, अपि, यथाशक्तिः) उसको भी अपनी शक्ति के अनुसार (अन्नं, प्रदद्यात्) भोजन देवे परन्तु (बलिं, न, हरेत्) पुनः होम वा बलिवैश्वदेव न करे ॥

न भोजनार्थं स्वे विप्रः कुलगोत्रे निवेदयेत् ।
भोजनार्थं हि ते शंसन्वान्ताशीत्युच्यते बुधैः॥९५॥

पदा०-(विप्रः, भोजनार्थं) ब्राह्मण भोजन के निमित्त (स्वे, कुलगोत्रे) अपने कुलगोत्र को (न, निवेदयेत्) उच्चारण न करे (हि) क्योंकि (भोजनार्थं, ते, शंसन्) भोजन के निमित्त कुलगोत्र उच्चारण करने वाले को (बुधैः) विद्वानों ने (वान्ताशी) वान्ताशी (इति, उच्यते) कहा है ॥

भाष्य-ब्राह्मण अतिथि सत्कारपूर्वक उत्तम भोजन के लिये मैं अमुक प्रतिष्ठित विद्वान् का पुत्र वा पौत्र हूं, मैं भृगु

वा वसिष्ठ गोत्री हूं, इत्यादि इस प्रकार अपने कुल और गोत्र की प्रशंसा न सुनावे, भोजन के लिये प्रशंसा सुनाने वाले पुरुष को विद्वानों ने नीच कहा है ॥

न ब्राह्मणस्य त्वतिथिगृहे राजन्य उच्यते ।
वैश्यशूद्रौ सखाचैव ज्ञातयो गुरुरेव च ॥९६॥

पदा०-(ब्राह्मणस्य, गृहे) ब्राह्मण के घर पर आये हुए (राजन्यः) क्षत्रिय (वैश्यशूद्रौ) वैश्य, शूद्र (सखा) अपना मित्र (ज्ञातयः) जाति वाले (च) और (गुरुः, एव) गुरु भी (अतिथिः, न, उच्यते) अतिथि नहीं माने जाते ॥

यदि त्वतिथिधर्मेण क्षत्रियो गृहमाव्रजेत् ।
भुक्तवत्सूक्तविप्रेषु कामं तमपि भोजयेत् ॥९७॥

पदा०-(तु) और (यदि, गृहं) यदि ब्राह्मण के घर पर (अतिथिधर्मेण) अतिथि धर्म से (क्षत्रियः, आव्रजेत) क्षत्रिय आजाय तो (उक्तविप्रेषु, भुक्तवत्सु) पूर्वोक्त ब्राह्मण अतिथियों के भोजन करने पर (तं, अपि) उस क्षत्रिय को भी (कामं, भोजयेत) इच्छानुकूल भोजन देवे ॥

वैश्याशूद्रावपिप्राप्तौकुटुम्बेऽतिथिधर्मिणौ ।
भोजयेत्सहभृत्यैस्तावानृशंस्यं प्रयोजयन् ॥९८॥

पदा०-(कुटुम्बे) ब्राह्मण के कुटुम्ब में (अतिथिधर्मिणौ) अतिथि के धर्म वाले (वैश्यशूद्रौ, प्राप्तौ) वैश्य, शूद्र आजायं तो (तौ, अपि) उनको भी (आनृशंस्यं, प्रयोजयन्) दया पूर्वक (भृत्यैः,सह,भोजयेत) भृत्यों के साथ भोजन करावे ॥

इतरानपि सख्यादीन्संप्रीत्यागृहमागतान् ।
सत्कृत्यान्नंयथाशक्ति भोजयेत्सहभार्यया ॥९९॥

पदा०—(संप्रीत्या) प्रीतिपूर्वक (गृहे) घर में (आगतान्) आये हुए (इतरान्, सख्यादीन्, अपि) अन्य मित्रादिकों को भी (सत्कृत्य) सत्कारपूर्वक (यथाशक्तिः) यथाशक्ति (भार्यया, स्त्री के साथ (अन्नं, भोजयेत्) भोजन करावे ॥

सुवासिनीः कुमारीश्च रोगिणो गर्भिणीः स्त्रियः ।
अतिथिभ्योऽग्र एवैतान् भोजयेदविचारयन् ॥१००॥

पदा०—(सुवासिनीः) नवीन विवाहिता (कुमारीः) क्वांरी (रोगिणः) रोगी (च) तथा (गर्भिणीः, स्त्रियः) गर्भवती स्त्री (एतान्) इन सब को (अतिथिभ्यः) अतिथियों से (अग्रे, एव) पहले ही (अविचारयन्) निःसन्देह (भोजयेत्) भोजन करावे ॥

अदत्त्वा तु य एतेभ्यः पूर्वं भुंक्तेऽविचक्षणः ।
स भुञ्जानो न जानातिश्वगृध्रैर्जग्धिमात्मनः॥१०१॥

पदा०—(यः, अविचक्षणः) जो अज्ञानी गृहस्थी (एतेभ्यः, अदत्त्वा) पूर्वोक्त अतिथियों को भोजन न देकर (पूर्वं, भुङ्क्ते) पहले स्वयं खालेता है (सः. भुञ्जानः) वह खाता हुआ (आत्मनः, न.जानाति) अपने आपको नहीं जानता कि मरणानन्तर (श्वगृध्रैः, जग्धि) कुत्ते तथा गिद्ध मुझे भक्षण करेंगे अर्थात् न जाने उसकी क्या गति होगी ॥

भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि।
भुञ्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टंतु दम्पती ॥१०२॥

पदा०-(अथ) अतिथियों के भोजनानन्तर (विप्रेषु) गुरुजन (च, एव) और (स्वेषु, भृत्येषु) अपने भृत्य (भुक्तवत्सु) भोजन करचुकें (ततः, पश्चात) उसके पीछे (अवशिष्टं, तु) बचे हुए अन्न को (हि) निश्चयपूर्वक (दम्पती, भुञ्जीयातां) स्त्री पुरुष भक्षण करें ॥

देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन्गृह्याश्चदेवताः।
पूजयित्वा ततः पश्चाद्गृहस्थः शेषभुग्भवेत्॥१०३॥

पदा०-(गृहस्थः) गृहस्थी (देवान्, ऋषीन्, मनुष्यान्) अग्न्यादि देवों, ऋषियों, अतिथियों (च) तथा (पितॄन्, गृह्याः, देवताः) पिता पितामह आदि पितरों, घर के विश्वेदेवाः आदि देवताओं को (पूजयित्वा) भलेप्रकार भोजनादि से सन्तुष्ट करके (ततः, पश्चात) फिर (शेषभुक्, भवेत) शेष अन्न को स्वयं भक्षण करे ॥

भाष्य-अग्निहोत्रादि से अग्न्यादि देवों, सन्ध्योपासन तथा वेदाध्ययन से ऋषियों, अतिथि यज्ञ से मनुष्यों, श्रद्धापूर्वक पितरों और वैश्वदेव कर्म से घर में रहने वाले देवताओं का पूजन करके पश्चात गृहस्थी स्वयं भोजन करे ॥

अघं स केवलंभुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात्।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते ॥ १०४ ॥

पदा०-(यः, आत्मकारणात, पचति) जो गृहस्थी अपने निमित्त भोजन पकाता है (सः, केवलं, अघं, भुङ्क्ते) वह केवल

पाप ही खाता है (हि) क्योंकि (एतत्, यज्ञशिष्टाशनं) यज्ञ से बचा हुआ अन्न (सतां, अन्नं, विधीयते) सज्जनों का भोजन है ॥

भाष्य—जो गृहस्थ अतिथि आदि का पूजन किये विना ही भोजन खाता है वह पाप ही भक्षण करता है, अतिथि तथा गुरुजनों को खिलाकर बचा हुआ अन्न उत्तम गृहस्थी का भोजन है किसी को न देकर अपने आप खालेना गृहस्थी का धर्म नहीं किन्तु पाप है ॥

राजर्त्विक्स्नातकगुरुन् प्रियश्वशुरमातुलान् ।
अर्हयेन्मधुपर्केण परिसम्वत्सरात्पुनः ॥ १०५ ॥

पदा०—(राजर्त्विक्स्नातकगुरून्) राजा ऋत्विक्, स्नातक, गुरु (प्रियश्वशुरमातुलान्) मित्र, जमाई, श्वशुर, मामा इन सातों की (परिसम्वत्सरात्) प्रत्येक वर्ष में (पुनः, मधुपर्केण, अर्हयेत्) मधुपर्कादि से पूजा करे ॥

राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञकर्मण्युपस्थितौ ।
मधुपर्केण सम्पूज्यौ न त्वयज्ञइति स्थितिः ॥१०६॥

पदा०—(राजा) राजा (च) और (श्रोत्रियः) वेदवेत्ता ब्राह्मण (यज्ञकर्मणि, उपस्थितौ) यज्ञकर्म में उपस्थित हों तो (एव) निश्चयकरके उन दोनों का (मधुपर्केण, सम्पूज्यौ) मधुपर्क से सत्कार करे (न, तु, अयज्ञे) यदि यज्ञ से भिन्न समय में आवें तो उनका मधुपर्क से सत्कार न करके अन्य पदार्थों से करे (इति, स्थितिः) यह शास्त्र मर्यादा है ॥

सायं त्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं वलिंहरेत् ।
वैश्वदेवं हि नामैतत्सायं प्रातर्विधीयते ॥ १०७ ॥

पदा०-(तु) और (सायं) सन्ध्या समय (सिद्धस्य, अन्नस्य) पकाये हुए भोजन में से (पत्नी) स्त्री (अमन्त्रं, बलिं, हरेत्) मन्त्रोच्चारण किये विना बलिवैश्वदेव करे (हि) क्योंकि (एतत्, वैश्वदेवं, नाम) यह वैश्वदेव कर्म गृहस्थियों के लिये (सायं, प्रातः, विधीयते) प्रतिदिन सायं प्रातः विधान कियः है ॥

अव्रतैर्यद्द्विजैर्भुक्तं परिवेत्रादिभिस्तथा ।
अपाङ्क्तेयैर्यदन्यैश्च तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥ १०८ ॥

पदा०-(यत्) जो भोजन (अव्रतैः, द्विजैः) वेदाध्ययनादि व्रत से रहित ब्राह्मण (तथा) तथा (परिवेत्रादिभिः) परिवेत्ता आदि (च) अथवा (अन्यैः, अपाङ्क्तेयैः) अन्य पङ्क्ति बहिष्कृतों ने (यत्) जो अन्न भक्षण किया है (तत्) उसको (वै) निश्चय करके (रक्षांसि, भुञ्जते) राक्षस भक्षण करते हैं अर्थात् निष्फल है ॥

भाष्य-वेदाध्ययन तथा पंचमहायज्ञादि कर्मों से रहित और परिवेत्तादि अनुचित कर्म करने वाले अथवा अन्य पापकर्मों के कारण जातिबहिष्कृत=जाति से निकाले हुओं को जो अन्न खिलाता है वह उसका खिलाया हुआ अन्न व्यर्थ है अर्थात् उसका फल विपरीत होता है, इसलिये पूर्वोक्त कथन किये हुए साधनसम्पन्न पुरुषों का सत्कार करना धर्म और शास्त्रोक्त संस्कारों से शून्य नीच पुरुषों की सेवा करना व्यर्थ है ॥

दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते ।
परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ १०९ ॥

पदा०-(यः) जो (अग्रजे, स्थिते) ज्येष्ठ भाई के होते हुए

पहले (दाराग्निहोत्रसंयोगं. कुरुते) विवाह तथा गार्हपत्याग्नि को रखने का नियम करता है (सः. परिवेत्ता) वह "परिवेत्ता" (तु) और (पूर्वजः. परिवित्तिः) ज्येष्ठ भ्राता को "परिवित्ति" (विज्ञेयः) जानना चाहिये ॥

भाष्य—जो बड़े भाई के होते हुए प्रथम विवाह करके अपने घर में गार्हपत्याग्नि को स्थापन करता है वह "परिवेत्ता" है, या यों कहो कि वह निन्दित कर्मों का करने वाला है और बड़ा भाई "परिवित्ति" कहलाता है ॥

परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते ।
सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥१७०॥

पदा०—(परिवित्तिः, परिवेत्ता) पूर्वोक्त परिवित्ति और परिवेत्ता (च) तथा (यया. परिविद्यते) जिस कन्या के साथ विवाह हुआ है (दातृयाजकपञ्चमाः) कन्या का दाता तथा विवाह कराने वाला याजक (सर्वे. ते) यह पांचो (नरकं. यान्ति) नरक को प्राप्त होते हैं ॥

भाष्य—पूर्वोक्त शास्त्रनिषिद्ध कर्म करने से छोटा तथा बड़ा भाई जिसके साथ विवाह किया है वह स्त्री, कन्या के दान करने वाले माता पिता आदि और विवाह कराने वाला पुरोहित यह पांचों अपने २ कर्मानुकूल दुःख की अवस्था को प्राप्त होते हैं ॥

भ्रातुर्मृतस्य भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः ।
धर्मेणापि नियुक्तायां स ज्ञेयो दिधिषूपतिः ॥१७१॥

पदा०—(यः) जो (मृतस्य. भ्रातुः. भार्यायां) मरे हुए

भ्राता की स्त्री में (धर्मेण, अपि, नियुक्तायां) धर्म से भी नियुक्त हुआ (कामतः, अनुरज्येत) कामासक्त हो अनुराग करता है (सः, दिधिषूपतिः, ज्ञेयः) उसको "दिधिषूपति" जानना चाहिये ॥

भाष्य–जो पुरुष शास्त्रमर्यादानुसार नियोग द्वारा सन्तानोत्पत्ति के लिये ऋतुकाल में अपने भाई की मृत्यु के अनन्तर उस की भार्या के साथ गमन करता है वह श्रेष्ठ है और जो नियम का उल्लङ्घन करके ऋतुकाल से बिना भी अपनी स्त्री के तुल्य अनुराग से वर्तता है उसको "दिधिषूपति" जानो अर्थात् वह निन्दित है॥

परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ ।
पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्त्तरि गोलकः॥११२॥

पदा०–(परदारेषु) नियोग द्वारा अन्य स्त्री से उत्पन्न हुए (द्वौ, सुतौ) दो पुत्रों को (कुण्डगोलकौ) कुण्ड तथा गोलक (पत्यौ, जीवति, कुण्डः) पति के जीवित समय नियोग मे हुए पुत्र का नाम कुण्ड और (मृते, भर्त्तरि) पति की मृत्यु के अनन्तर उत्पन्न हुए पुत्र का नाम (गोलकः, स्यात्) गोलक कहाता है ॥

भाष्य–नियोग द्वारा पर स्त्री से उत्पन्न हुए दो पुत्रों को कुण्ड तथा गोलक कहते हैं अर्थात् पति के जीवित रहने पर जो पुत्र उत्पन्न होता है उसकी " कुण्ड " संज्ञा और जो पति के मरने पश्चात् उत्पन्न होता है उस की गोलक संज्ञा है ॥

वसून्वदन्ति वै पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान् ।
प्रपितामहांश्चादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी॥११३॥

पदा०-(वै) निश्चयकरके (वसून्, पितॄन्) वसु ब्रह्मचारी को पिता (च, एव) और (रुद्रान्, पितामहान्) रुद्र ब्रह्मचारी को पितामह (तथा) तथा (आदित्यान्, प्रपितामहान्) आदित्य ब्रह्मचारी को प्रपितामह (वदन्ति) कहते हैं (एषा, सनातनी, श्रुतिः) यह सनातन श्रुति है ॥

भाष्य-२५ वर्ष ब्रह्मचर्य्य धारण करने वाले को वसु=पिता, ३६ वर्ष ब्रह्मचर्य्य धारण करने वाले का नाम रुद्र=पितामह, और ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य्यपूर्वक वेदाध्ययन करने वाले का नाम आदित्य=प्रपितामह है अर्थात् यह सब ब्रह्मचारी यज्ञस्वरूप होने से पिता, पितामह तथा प्रपितामह के समान सत्कार योग्य जानने चाहियें, यह वेदोक्त मर्यादा है ॥

विघसाशी भवेन्नित्यं नित्यं वामृतभोजनः ।
विघसो भुक्तशेषन्तु यज्ञशेषं तथाऽमृतम् ॥११४॥

पदा०-(नित्यं) द्विज सदा (विघसाशी) विघस अन्न (वा) अथवा (नित्यं, अमृतभोजनः) निरन्तर अमृत भोजन करने वाला (भवेत्) हो (भुक्तशेषं, तु, विघसः) अतिथि आदि के भोजन से शेष विघस (तथा) तथा (यज्ञशेषं, अमृतम्) यज्ञ का शेष=बचा हुआ अन्न अमृत कहाता है ॥

भाष्य-द्विजों को सदा ही विघस तथा अमृत भोजन करने वाला होना चाहिये, जैसाकि पीछे वर्णन कर आये हैं अर्थात् अतिथि ब्राह्मणों को भोजन कराके शेष बचे अन्न का नाम "विघस" और यज्ञशेष का नाम "अमृत" है ॥

एतद्वोऽभिहितं सर्वं विधानं पाञ्चयाज्ञिकम् ।
द्विजातिमुख्यवृत्तीनं विधानं श्रूयतामिति ।११५।

पदा०—(एतत्) यह (पांचयाज्ञिकं) पञ्चमहायज्ञ सम्बन्धी (सर्वं, विधानं) सब विधान (वः) तुम्हारे प्रति (अभिहितं) कथन किया, अब (द्विजातिमुख्यवृत्तीनां) द्विजातियों की मुख्य वृत्तियों का (विधानं) विधान (श्रूयतां) सुनो, " इति " शब्द अध्याय की समाप्ति के लिये आया है ॥

इति मानवार्य्यभाष्ये
तृतीयोऽध्यायः
समाप्तः

ओ३म्

अथ चतुर्थोऽध्यायः

सं०—अब द्विजातियों की मुख्य वृत्तियों=व्यवहारों का वर्णन करते हैं:—

चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाऽऽद्यं गुरौ द्विजः।
द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥१॥

पदा०—(द्विजः, आयुषः, चतुर्थं, आद्यं, भागं) ब्राह्मणादि द्विज अपनी आयु के पहले भाग में (गुरौ, उषित्वा) गुरु के समीप रहकर वेदाध्ययन करे, फिर (कृतदारः) अपने अनुकूल कन्या से विवाह करके (आयुषः, द्वितीयं, भागं, गृहे, वसेत्) आयु के दूसरे भाग में गृहस्थाश्रम में निवास करे ॥

भाष्य—शास्त्रकारों ने मनुष्य की आयु १०० वर्ष की मानी है, यदि पुरुष नियमानुसार वर्त्ते तो कुछ अधिक होना भी सम्भव है, जैसाकि " **भूयश्च शरदः शतात्** " इस मन्त्र में वर्णन किया है, आयु के चतुर्थभाग=पच्चीसवर्ष की अवस्था पर्य्यन्त गुरुकुल में गुरु के समीप वास करता हुआ साङ्गोपाङ्ग वेदों का अध्ययन करे, तदनन्तर गुरु की आज्ञा से समान गुण, कर्म वाली सवर्णा कन्या से विवाह करके आयु के द्वितीयभाग=पच्चीस से पचास वर्ष पर्य्यन्त गृहस्थाश्रम में वास करता हुआ धर्मानुकूल गृहकार्यों की सिद्धि करे ॥

अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः ।
या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥२॥

पदा०-(अनापदि, भूतानां, अद्रोहेण, एव) आपत्काल से भिन्न अनुकूल समय में सब प्राणियों के साथ सर्वथा ही अद्रोह से (पुनः, अल्पद्रोहेण, वा) अथवा किसी को किञ्चित भी दुःख न पहुंचाता हुआ (या, वृत्तिः, तां, समास्थाय, विप्रः, जीवेत) जो जीविका होसके उसी का आश्रय लेकर ब्राह्मण अपना निर्वाह करे ॥

भाष्य-किसी के अधिकार वा स्वत्व पर अपना अधिकार न जामता हुआ अर्थात "मागृधः कस्य स्विद्धनम्"=किसी के धन की इच्छा न करके धर्मानुकूल जो उपजीविका मिलजाय उसी से अपनी जीवनयात्रा पूर्ण करता हुआ ब्राह्मण गृहस्थ धर्म का पालन करे ॥

यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः ।
अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम् ॥३॥

पदा०-(अगर्हितैः, स्वैः, कर्मभिः) गृहस्थ ब्राह्मण अपने अनिन्दित कर्मों से (यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं) भोजन वस्त्रादि साधारण निर्वाह के लिये (शरीरस्य, अक्लेशेन) शरीर को अधिक क्लेश न देकर (धनसञ्चयं, कुर्वीत) धनादि पदार्थों का सञ्चय करे ॥

भाष्य-गृहस्थ द्विज अपने उत्तम कर्मों से प्राण रक्षण, कुटुम्ब पोषण तथा नित्यकर्मानुष्ठान=पञ्चमहायज्ञमात्र के लिये अधिक कष्ट न सहकर धनसञ्चय करे, क्योंकि अन्य तीनों आश्रमी, जीव

जन्तुओं तथा पशु पक्षियों का निर्वाह गृहस्थ के सिर पर होने से उसको धन की विशेष आवश्यकता है ॥

ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा ।
सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥४॥

पदा०—(ऋतामृताभ्यां) ऋत, अमृत (मृतेन, प्रमृतेन, वा) मृतवृत्ति वा प्रमृत=खेती से(वा)अथवा(सत्यानृताभ्यां,अपि)वाणिज्य वृत्ति से भी (जीवेत्) जीविका करे परन्तु (श्ववृत्त्या, कदाचन) श्व=कुत्ते की वृत्ति से कदापि (न) उपजीविका न करे ॥

ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयाचितम् ।
मृतं तु याचितं भैक्षं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥५॥

अर्थ–(उञ्छशिलं, ऋतं, ज्ञेयम्) उञ्छ तथा शिलावृत्ति को ऋत जानना चाहिये (अयाचितं, अमृतं, स्यात्) अयाचित को अमृत जानो (तु) और (याचितं, भैक्षं) याचना भिक्षावृत्ति को (मृतं) मृत (कर्षणं) खेती को (प्रमृतं) प्रमृत (स्मृतं) कहा है ॥

भाष्य—अन्न का एक२ दाना सञ्चय करने का नाम "उञ्छ" अनेक दानों का संघट गेहूँ वा जौकी बाली आदि का नाम "शिल" इन दोनों को "ऋत" कहते हैं अर्थात् ऋत नाम सत्य बोलने से जो शुभ फल प्राप्त होता है वही ऋत नामक अन्न भक्षण करने से फल होता है, अयाचित=बिना मांगे जो मिलजाय वह "अमृत" अर्थात् अमृत तुल्य सुख का कारण है, याचना करने से जो भिक्षा प्राप्त हो उसको "मृत" कहते हैं,

क्योंकि याचना करना मृत्यु के समान है, और कर्षण=खेती से जीविका करना "प्रमृत"=भिक्षावृत्ति से भी अधम है, क्योंकि खेती अनेक प्राणियों के मरण का निमित्त होने से इसका फल भी दुःखजनक होता है ॥

भाव यह है कि स्नातक ब्राह्मण के लिये ऋत नामक अन्न का भक्षण करना अति श्रेष्ठ, अयाचित अन्न उससे अधम और शेष वृत्तियें उत्तरोत्तर एक दूसरे से अधम हैं ॥

सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते ।
सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

पदा०-(तु) और (सत्यानृतं, वाणिज्यं) सत्यानृत वाणिज्य (च, एव, वा, तेन, अपि) अथवा सूद से भी (जीव्यते) जीविका करे, परन्तु (सेवा, श्ववृत्तिः, आख्याता) सेवा कर्म को कुत्ते की वृत्ति कहा है (तस्मात्) इसलिये (तां, परिवर्जयेत्) ब्राह्मण उसको त्याग दे अर्थात् परसेवा से उपजीविका न करे ।

भाष्य-भाव यह है कि खेती, व्यापार तथा सूद का लेना आदि जो निकृष्ट कर्म हैं उनको चाहे ब्राह्मण करले परन्तु पर सेवा से उपजीविका न करे ॥

कुशूलधान्यको वा स्यात्कुम्भी धान्यक एव वा ।
त्र्यहैहिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव वा ॥ ७ ॥

पदा०-(कुशूलधान्यकः, वा, स्यात्) स्नातक गृहस्थ ब्राह्मण कोठार वा कुठिला, कुठिया में अन्न का संचय करे (कुम्भीधान्यक, एव, वा) अथवा गोरी वा बड़ा घड़ा भर के अन्न

का संचय रखे (त्र्यहैहिकः, वा, अपि, भवेत) वा तीन दिन निर्वाह मात्र के लिये धन वाला हो (वा) अथवा (अश्वस्तनिकः, एव) एक दिन का निर्वाह करके दूसरे दिन के लिये जिसके पास अन्न शेष न हो ऐसा ब्राह्मण गृहस्थी हो ॥

चतुर्णामपि चैतेषां द्विजानां गृहमेधिनाम् ।
ज्यायान्परः परोज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तमः ॥८॥

पदा०-(एतेषां, चतुर्णां, अपि, गृहमेधिनां, द्विजानां) उक्त चार प्रकार की जीविका वाले चारों गृहस्थ ब्राह्मणों में (परः, परः, ज्यायान्, ज्ञेयः) उत्तरोत्तर श्रेष्ठ जानना चाहिये, क्योंकि वह (धर्मतः, लोकजित्तमः) धर्म का अधिक सेवन करने से लोगों को धर्ममर्यादा में चलाने के कारण श्रेष्ठ है ॥

भाष्य-जो पिछले श्लोक में कुशूलधान्यक आदि चार प्रकार के गृहस्थ द्विज वर्णन किये हैं उनमें से उत्तरोत्तर श्रेष्ठ जानने चाहियें, क्योंकि जो अधिक अनुष्ठानी है वही अनेक लोगों को धर्ममर्यादा में चला सक्ता है अर्थात् पांच की अपेक्षा दश को सुधारने वाला श्रेष्ठ है ॥

षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्त्तते ।
द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति ॥ ९ ॥

अर्थ-(एषां, एकः, षट्कर्मा, भवति) पूर्वोक्त चार प्रकार के गृहस्थियों में पहला षट्कर्मा हो (त्रिभिः, अन्यः, प्रवर्त्तते) अन्य=दूसरा तीन कर्मों वाला हो (द्वाभ्यां, एकः) तीसरा दो कर्मों वाला (तु) और (चतुर्थः, ब्रह्मसत्रेण, जीवति) चौथा एक ब्रह्मयज्ञ को ही करता हुआ जीवन व्यतीत करे ॥

भाष्य—पहला गृहस्थ ब्राह्मण जिसके पास निर्वाह के साधन अधिक हैं वह अध्यापन, अध्ययन, यजन, याजन, दान देना लेना, यह षट्कर्म नित्यप्रति करे, तभी विशेष अन्नादि की प्राप्ति द्वारा धर्म का निर्वाह होसक्ता है, दूसरा अध्यापन, याजन=यज्ञ कराना तथा दान लेना, इन तीन कर्मों में प्रवृत्त रहे, तीसरा जिसके पास तीन दिन के निर्वाहार्थ अन्न है वह अध्यापन और याजन इन दो कर्मों द्वारा ही निर्वाह करे, क्योंकि इन्हीं कर्मों से शीघ्र अन्न मिलना सम्भव है, और एक दिन का अन्न रखने वाला चौथा ब्राह्मण केवल ब्रह्मसत्र नामक यज्ञ से ही अपना निर्वाह करे, क्योंकि थोड़ी चाहना एककर्म द्वारा ही सिद्ध होसक्ती है, वेद के पठन पाठन का नाम "ब्रह्मसत्र" यज्ञ है ॥

वर्त्तयंश्च शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः ।
इष्टीः पार्वायनान्तीयाः केवला निर्वपेत्सदा ॥१०॥

पदा०—(शिलोञ्छाभ्यां, वर्त्तयन्) शिला वा गिरे हुए अन्न के दाने बीनकर जीवननिर्वाह करता हुआ (अग्निहोत्र-परायणः) नित्य अग्निहोत्र करने में तत्पर रहे (च) और (पार्वायनान्तीयाः, केवला, इष्टीः, सदा, निर्वपेत) पर्वों के अन्त में होने वाली केवल इष्टियों को सदा करे ॥

भाष्य—तपस्वी गृहस्थ ब्राह्मण शिला आदि से निर्वाह करता हुआ नित्यप्रति अग्निहोत्र करने में तत्पर रहे और उसके साथ ही अमावस्या तथा पौर्णमासी नामक पर्वों के अन्त और प्रतिपदा के आरम्भ में होने वाली दर्शेष्टि तथा पौर्णमासेष्टि आदि इष्टियों को भी करे और अधिक व्यय वाले बड़े २ यज्ञ न करे ॥

न लोकवृत्तं वर्त्तेत वृत्तिहेतोः कथञ्चन ।
अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद्ब्राह्मणजीविकाम् ॥११॥

पदा०-(वृत्तिहेतोः, लोकवृत्तं, कथंचन, न वर्त्तेत) ब्राह्मण जीविका के कारण लौकिकचाल पर कदापि न चले.किन्तु (अजिह्मामशठां) निन्दा तथा दम्भ से रहित (शुद्धां) शुद्ध (ब्राह्मणजीविकाम्, जीवेत्) ब्राह्मणजीविका से अपना निर्वाह करे ॥

भाष्य-ब्राह्मण का यह कर्तव्य है कि वह जीविका प्राप्त करने के कारण शास्त्र मर्यादा से विरुद्ध, धर्म रहित लोकाचाल के प्रवाह में कदापि न वहे अर्थात् जीविका के कारण शास्त्रविरुद्ध मर्यादा पर कभी न चले किन्तु निन्दा तथा दम्भ से रहित उपरोक्त कथन कीहुई शुद्ध जीविका से अपना जीवन व्यतीत करे ॥

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥१२॥

पदा०-(सुखार्थी) सुख का चाहने वाला (परं, सन्तोषं, आस्थाय) उत्तम सन्तोष को धारण करके (संयतः भवेत्) संयमी होवे, क्योंकि (सन्तोषमूलं, हि, सुखं) निश्चयकरके सन्तोष ही सुख का मूलकारण और (दुःखमूलं, विपर्ययः) इससे विपरीत असन्तोष दुःख का कारण है ॥

अतोऽन्यतमया वृत्त्या जीवंस्तु स्नातको द्विजः ।
स्वर्ग्यायुष्ययशस्यानि व्रतानीमानि धारयेत् ॥१३॥

पदा०-(अतः) इस कारण पूर्वोक्त वृत्तियों में से(अन्यतमया,

वृत्त्या) चाहे जिस वृत्ति से (स्नातकः, द्विजः, जीवन्) स्नातक द्विज जीविका करता हो (तु) परन्तु (स्वर्ग्यायुष्ययशस्यानि) स्वर्ग, आयु तथा यश के हितकारी (इमानि, व्रतानि, धारयेत्) इन आगे कहे व्रतों को अवश्य धारण करे ॥

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।
तद्धि कुर्वन्यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् ॥१४॥

पदा०—(वेदोदितं, स्वकं, कर्म) द्विज वेद प्रतिपादित अपने कर्म (अतन्द्रितः, नित्यं, कुर्यात्) आलस्य त्यागकर सदा करे (हि) क्योंकि (तत्) उन कर्मों को (यथाशक्ति, कुर्वन्) अपनी शक्ति के अनुसार करता हुआ ही (परमां, गतिं, प्राप्नोति) परमगति=मोक्षपद को प्राप्त होता है ॥

नेहेतार्थान्प्रसंगेन न विरुद्धेन कर्मणा ।
न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्त्यामपि यतस्ततः ॥१५॥

पदा०—(विद्यमानेषु, अर्थेषु) निर्वाहार्थ धन समीप होने पर (आर्त्यां, अपि) अथवा अत्यन्त आपत्ति आने पर भी (प्रसङ्गेन) गाने बजाने आदि के प्रसङ्ग से वा (विरुद्धेन, कर्मणा) शास्त्र विरुद्ध कर्मों द्वारा (अर्थान्, यतः, ततः, न, ईहेत) इधर उधर से धन सञ्चय करने की इच्छा न करे ॥

इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः ।
अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा संनिवर्त्तयेत् ॥१६॥

पदा०—(सर्वेषु, इन्द्रियार्थेषु) सब इन्द्रियों के विषयों में (कामतः, न, प्रसज्येत) पुरुष विषयभोग की कामना से

आसक्त न हो (च) और (एतेषां, अतिप्रसक्तिं) इन इन्द्रियों की अत्यन्त आसक्ति को (मनसा, संनिवर्त्तयेत्) अपने मानस विचारों द्वारा दोषदृष्टि से सम्यक् रोकता रहे ॥

भाष्य—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि जो इन्द्रियों के विषय हैं इनमें गृहस्थ रागपूर्वक आसक्त न हो, इन्द्रियों के विषयों में होने वाली अत्यन्त आसक्ति=फसावट को विचार द्वारा दोष दृष्टि से भले प्रकार रोकता रहे अर्थात् विषयों की उत्कण्ठा होने पर उनमें सदा ही दोष का चिन्तन करे, इन सब में कामासक्ति को सम्भालने वाला गृहस्थ सुखी रहता है, क्योंकि यही सबका मूल है, इसलिये गृहस्थी का यह परम कर्तव्य है कि वह व्यसनों से पृथक् रहकर नित्य नैमित्तिक कर्मों को करता हुआ कभी प्रमादी न हो ॥

सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिनः ।
यथातथाध्यापयंस्तु सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥ १७ ॥

पदा०—(यथा, तथा, अध्यापयन्) येन केन उपाय से वेदाध्यापन कराता हुआ ब्राह्मण (स्वाध्यायस्य, विरोधिनः) स्वाध्याय के विरोधी (सर्वान्, अर्थान्, परित्यजेत्) सब अर्थों को त्याग दे (हि) क्योंकि (सा) स्वाध्याय में निरन्तर तत्परता ही (अस्य, कृतकृत्यता) ब्राह्मण की सफलता है ॥

भाष्य—वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना, सुनाना आदि द्विजों का परमधर्म है, सो जो द्विज सांसारिक व्यसनों में फंसकर उस पठन पाठनादि परम धर्म को त्यागता है वह अपने होने वाले महत्सुख का नाश करता है, इसलिये द्विज का कर्तव्य है कि

वह स्वाध्याय के विरोधी सब कर्मों को छोड़कर नित्य अपने कर्मों में तत्पर रहे ॥

वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ।
वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेदिह ॥ १८ ॥

पदा०—(वयसः) आयु (कर्मणः) कर्म (अर्थस्य) धन (श्रुतस्य) वेद (च) और (अभिजनस्य) कुल के अनुसार (वेषवाग्बुद्धिसारूप्यं, आचरन्) वेष, वाणी तथा बुद्धि को समान रखता हुआ (इह, विचरेत्) इस संसार में विचरे ॥

भाष्य—आयु, कर्म, धन, वेद तथा कुल के अनुसार वेष, वाणी और बुद्धि को समान रखे अर्थात् अवस्था के अनुकूल वेष तथा वाणी आदि रखता हुआ अनुकूल आचरण करना धर्म और विपरीत आचरण करना धर्मविरुद्ध है, जैसाकि वृद्धावस्था में युवकों जैसा वेष, वाणी तथा बुद्धि आदि रखना और निर्धन होकर धनी जैसा तथा धनी होकर दरिद्रों का सा वेष, वाणी तथा बुद्धि रखना धर्म से विरुद्ध कर्म है, या यों कहो कि उचित से विपरीत वर्ताव "अधर्म" और समान भाव रखना "धर्म" है, इसलिये गृहस्थ वेद तथा अपने कुल की मर्यादानुसार ही वर्ते न्यूनाधिक नहीं ॥

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च ।
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमाँश्चैव वैदिकान् ॥१९॥

पदा०—(आशु, बुद्धिवृद्धिकराणि) शीघ्र ही शुभ बुद्धि को बढ़ाने (धन्यानि) धर्मानुकूल धन संचय के उपायों की शिक्षा देने वाले (च) और (हितानि, च) अपने हितकारक

(शास्त्राणि) शास्त्रों (च) तथा (वैदिकान्, निगमान्) वेद के आशय में निरन्तर प्रवेश कराने वाले निरुक्त, ब्राह्मणादि ग्रन्थों को (नित्यं, अवेक्षेत) नित्य प्रति पढ़े पढ़ावे अर्थात् द्विज अभ्युदय तथा निःश्रेयस की सिद्धि रूपशास्त्रों के चिन्तन में कदापि प्रमाद न करे ॥

यथायथा हि पुरुषः शास्त्रं समाधिगच्छति ।
तथातथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥२०॥

पदा०-(पुरुषः, यथा, यथा) ज्यों ज्यों पुरुष (शास्त्रं, समाधिगच्छति) शास्त्रों का अभ्यास करता जाता है (तथा, तथा, विजानाति) त्यों त्यों विशेष ज्ञान को प्राप्त होता है (च) और (हि) निश्चयकरके (अस्य) इस पुरुष को (विज्ञानं, रोचते) विज्ञान में अधिक प्रीति होती जाती है ॥

शास्त्रस्य पारं गत्वा तु भूयोभूयस्तदभ्यसेत ।
तच्छास्त्रंशबलं कुर्यान्नचाधीत्य त्यजेत्पुनः ॥२१॥

पदा०-(शास्त्रस्य, पारं, गत्वा) शास्त्र को आद्योपान्त पढ़कर (तु) पुनः (भूयः, भूयः, तत्, अभ्यसेत) बार २ उस पठित शास्त्र का अभ्यास करे (तत्, शास्त्रं, शबलं, कुर्यात्) क्योंकि उस शास्त्र के बार २ अभ्यास से निर्मल ज्ञान होता है अर्थात् ज्ञान की वृद्धि होती है, इसलिये (अधीत्य, पुनः, नच, त्यजेत्) पढ़कर बार २ अभ्यास न त्यागे ॥

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ॥२२॥

पदा०-(ऋषियज्ञं, देवयज्ञं, भूतयज्ञं, च) स्वाध्याय,

सन्ध्योपासनादि, अग्निहोत्र, बलिवैश्वदेव (नृयज्ञं, पितृयज्ञं, च,) अतिथि पूजन और पितातुल्यवृद्ध ब्राह्मणों का श्रद्धापूर्वक सत्कार, इन पांच यज्ञों को गृहस्थी (सर्वदा) सदा करे (यथा शक्ति, न, हापयेत्) यथाशक्ति न त्यागे अर्थात् आपत्तिकाल में भी जब तक शरीर में शक्ति रहे तब तक बराबर करता रहे॥

एतानेके महायज्ञान्‍ यज्ञशास्त्रविदोजनाः ।
अनीहमानाः सततमिन्द्रियेष्वेवजुह्वति ॥ २३ ॥

पदा०-(यज्ञशास्त्रविदः, एके, जनाः) यज्ञों की शिक्षा के तत्व को जानने वाले कोई २ महात्मा जन (एतान्, महायज्ञान्) इन पञ्च महायज्ञों को (अनीहमानाः) शरीर द्वारा न करते हुए (सततं, इन्द्रियेषु, एव, जुह्वति) इन्द्रियों में ही निरन्तर होम करते हैं॥

भाष्य-यज्ञ के मर्म को कोई विरले ज्ञानी ही जानते हैं सर्वसाधारणं नहीं, और जो यज्ञ के मर्म को जान लेते हैं वह शरीर द्वारा न करते हुए इन्द्रियों में ही निरन्तर होम करते हैं अर्थात् ज्ञान द्वारा प्रत्येक इन्द्रिय का निग्रह करके अपने में लीन कर लेते हैं, या यों कहो कि इन्द्रियों को बाह्य विषयों से रोक कर योग द्वारा परमात्मा में लगाना यज्ञ है, और इस तत्व के जानने वाले अभ्युदय तथा निःश्रेयसरूप दोनों प्रकार के सुख को प्राप्त होते हैं॥

वाच्येके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वदा ।
वाचि प्राणे च पश्यन्तो यज्ञनिर्वृत्तिमक्षयाम् ॥२४॥

पदा०-(एके, प्राणे, वाचं) कोई एक प्राण में वाणी (च) और (सर्वदा, वाचि, प्राणं) वाणी में प्राण का निरन्तर (जुह्वति) होम करते हैं (च) और (वाचि, प्राणे, अक्षयां, यज्ञनिर्वृत्तिं, च, पश्यन्तः) वाणी तथा प्राण में यज्ञ की अक्षय फलसिद्धि को देखते हैं ॥

भाष्य-कोई एक विद्वान् प्राण में वाणी और वाणी में प्राण का निरन्तर होम करते हैं अर्थात् प्राणायाम और मौन धारण करके अक्षय सुख को प्राप्त होते हैं, या यों कहो कि पढ़ाना वा धर्मोपदेशरूप यज्ञ अथवा जप तप आदि कर्मों में प्रवृत्त हुए प्राण में वाणी का लय रूप होम करते हैं, इसी प्रकार प्राण की गति का निरोध करके वाणी की शक्ति का प्राणसम्बन्धी इन्द्रियों में होम कर देते हैं, इस अवस्था में उनका देखना सुनना रागद्वेष से रहित सामान्य रहजाता है, और वाणी तथा प्राण में होम करने से फल यह होता है कि अनन्तकाल तक स्थिर रहने वाली यज्ञफल सिद्धि को ज्ञानदृष्टि से देखते हुए आनन्दित रहते हैं॥

ज्ञानेनैवापरे विप्रायजन्त्येतैर्मखैः सदा ।
ज्ञानमूलां क्रियामेषां पश्यन्तो ज्ञानचक्षुषा ॥२५॥

पदा०-(अपरे, विप्राः, ज्ञानमूलां, क्रियां) कोई २ विप्र इन महायज्ञों की ज्ञानमूलक क्रिया को (ज्ञानचक्षुषा) ज्ञान चक्षुओं से (पश्यन्तः) देखते हुए (एतैः, मखैः, सदा, ज्ञानेन, एव, यजन्ति) निरन्तर इन पञ्च महायज्ञों का ज्ञान से ही यजन करते हैं॥

भाष्य-यम नियमादिकों द्वारा होने वाली यज्ञक्रिया स्थूल, वाणी तथा प्राण से सम्बन्ध रखने वाली अर्थात् प्राणायाम तथा

मौन धारणरूप यज्ञ क्रिया मध्यम. और धारणा, ध्यान, समाधि से सम्बन्ध रखने वाले महायज्ञों की क्रिया सर्वोत्तम है, और इसी का नाम ज्ञानयज्ञ है, सो ज्ञानचक्षुओं द्वारा देखते हुए कोई २ ज्ञानी केवल ज्ञान द्वारा ही इन पंचमहायज्ञों को सदा करते हैं अर्थात् प्रथम की दो कक्षाओं मे उत्तीर्ण होकर तीसरी सर्वोत्तम कक्षा में पहुंच ज्ञान से पवित्र हुए परमात्म परायण होते हैं॥

अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोः सदा ।
दर्शेन चार्धमासान्ते पौर्णमासेन चैव हि ॥२६॥

पदा०—(द्युनिशोः, आद्यन्ते, सदा, अग्निहोत्रं) दिन के आदि अन्त और रात्रि के आदि अन्त में नित्य अग्निहोत्र (अर्द्धमासान्ते, दर्शेन) आधेमास की समाप्ति अमावस्या के दिन दर्शेष्टि (च, एव) तथा (पौर्णमासेन) मास की समाप्ति पर पौर्णमासेष्टि यज्ञ (हि) निश्चयपूर्वक (जुहुयात्) करे ॥

भाष्य—गृहस्थ का यह परमकर्तव्य है कि दिन के आरम्भ तथा अन्त में और रात्रि के आदि अन्त में अर्थात् प्रातः सायं समय सदा प्रतिदिन अग्निहोत्र करे, और अमावस्या को दर्शेष्टि तथा पौर्णमासी को पौर्णमासेष्टि विधि से प्रतिमास यज्ञ करे ॥

तात्पर्य्य यह है कि जैसे ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मयज्ञ का करना परम आवश्यक है इसी प्रकार गृहस्थाश्रम में अग्निहोत्र नामक देवयज्ञ अवश्य कर्तव्य है ॥

सस्यान्ते नवसस्येष्ट्या तथर्त्त्वन्ते द्विजोऽध्वरैः ।
पशुना त्वयनस्यादौ समान्ते सौमिकैर्मखैः ॥२७॥

पदा०—(द्विजः, सस्यान्ते, नवसस्येष्ट्या) ब्राह्मणादि-द्विज

खेती पकने पर नवीन अन्न से नवसस्येष्टि (तथर्त्वन्ते,अध्वरैः) तथा ऋतु २ के आदि अन्त में उस २ ऋतु के फल, मूलादि से अध्वर यज्ञ (अयनस्य, आदौ, पशुना) उत्तरायन,दक्षिणायन के आरम्भ में गौ आदि पशुओं द्वारा उत्पन्न हुए घृतादि से आग्रायणेष्टि (तु) और (समान्ते, सौमिकैः, मखैः) वर्ष के अन्त में सोमयाग करें ॥

भाष्य—द्विजों के लिये यह विधान है कि होम के साधन द्रव्यों की जिस २ काल में अधिकता हो उस२ काल में पूर्वोक्त नवसस्येष्टि आदि याग करें ॥

यहां **"पशुना"** शब्द से कई एक टीकाकारों ने पशु के मांस का होम करना विधान किया है, उनका यह कथन सर्वथा अयुक्त है, क्योंकि " **मुग्धादेवा उत शुना यजन्त** " अथर्व० ७।१।५ इत्यादि मन्त्रों में पशुहोम का स्पष्ट खण्डन किया है अर्थात् यज्ञ में हिंसा का सर्वथा निषेध है, इसलिये पशु का विकार जो हिंसादि दोष से रहित हो उसी की कल्पना करना धर्मशास्त्र के अनुकूल है और वह पशु के घृतादि हैं, और मांस के ग्रहण में हिंसारूप दोष का आरोप होने से यह कल्पना शास्त्र विरुद्ध है, इस विषय को " **मीमांसार्य्यभाष्य** " की भूमिका में भले प्रकार स्फुट किया है विशेषाभिलाषी वहां देखलें॥

आसनाशनशय्याभिरद्भिर्मूलफलेन वा ।
नास्य कश्चिद्वसेद्गेहे शक्तितोऽनर्चितोऽतिथिः॥२८॥

पदा०—(आसनाशनशय्याभिः, अद्भिः, मूलफलेन, वा)

आसन, भोजन, शय्या, जल और फलमूल इनसे (शक्तितः) यथाशक्ति (अनर्चितः, कश्चित्, अतिथिः) नहीं पूजा हुआ कोई अतिथि (अस्य, गृहे, न, वसेत्) गृहस्थी के घर में न रहना चाहिये अर्थात् उक्त पदार्थों से गृहस्थ अतिथि का अवश्य सत्कार करे ॥

सं०—अब सत्कार के अयोग्य पुरुषों को गिनाते हैं:—

पाषण्डिनो विकर्मस्थान्वैडालव्रतिकाञ्छठान् ।
हैतुकान्बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥२९॥

पदा०—(पाषण्डिनः) पाखण्डी (विकर्मस्थान्) निषिद्ध कर्म करने वाला (वैडालव्रतिकान्) विडालवृत्ति (शठान्) मूर्ख (हैतुकान्) वेद में अश्रद्धालु (च) और (बकवृत्तीन्) बकवृत्ति वालों का (वाङ्मात्रेण, अपि, न, अर्चयेत्) गृहस्थ वाणीमात्र से भी सत्कार न करे ॥

भाष्य—पाखण्डी=ऊपर से बनावटी वेष वाले जिनका आचरण भ्रष्ट हो, विकर्मी=वेद तथा धर्म से विरुद्ध कर्म करने वाले अथवा आश्रम के धर्मों पर न चलने वाले, विडालवृत्ति= बिलाई कीसी चेष्टा रखने वाले अर्थात् बड़ी सावधानी वा चतुराई से दूसरे का धन हरण करने वाले,शठ=ऊपर से प्रियभाषी और भीतर से कुटिलता धारण किये हुए विद्या से शून्य मूर्ख, हैतुकान्=वेद के सिद्धान्त से विरुद्ध अर्थात् वेद का आशय न जानकर भी जीविकार्थ वेद के आशय को प्रकट करने में प्रवृत्त होने वाले, और बकवृत्ति=बगुला का सा ध्यान लगाकर माला हाथ में लिये ब्राह्मण वा पण्डित कहाने वाले धूर्तों का सत्कार गृहस्थ वाणीमात्र से भी न करे ॥

वेदविद्याव्रतस्नाताञ्छ्रोत्रियान् गृहमेधिनः ।
पूजयेद्धव्यकव्येन विपरीताँश्च वर्जयेत् ॥३०॥

पदा०-(वेदविद्यव्रतस्नातान्) विद्यास्नातक, व्रतस्नातक, विद्याव्रतस्नातक तथा (श्रोत्रियान्) श्रोत्रिय (गृहमेधिनः) गृहस्थियों को (हव्यकव्येन, पूजयेत्) हव्य कव्य से पूजे (च) और (विपरीतान्) इनसे विपरीतों को (वर्जयेत्) त्याग देवे ॥

भाष्य-यः समाप्य वेदान् असमाप्य व्रतानि समावर्त्तते स विद्यास्नातकः, यः समाप्य व्रतानि असमाप्य वेदान् समावर्त्तते स व्रतस्नातकः, उभयं समाप्य यः समावर्त्तते स विद्याव्रतस्नातकः" हारीत स्मृति०= जो वेदों को समाप्त कर और व्रतों को समाप्त किये विना ही गुरुकुल से घर आजाय वह "विद्यास्नातक" जो व्रतों को समाप्त कर और वेदों के समाप्त किये विना ही घर आजाय वह "व्रतस्नातक" और जो वेद तथा व्रत दोनों को समाप्त करके घर आवे उसको "विद्याव्रतस्नातक" कहते हैं, इन तीनों स्नातकों और श्रोत्रिय गृहस्थियों का हव्य कव्य से सदा सत्कार करे, इनसे विपरीतों का नहीं ॥

शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृहमेधिना ।
संविभागश्च भूतेभ्यः कर्त्तव्योऽनुपरोधतः ॥३१॥

पदा०-(गृहमेधिना, शक्तितः) गृहस्थी यथाशक्ति (अपचमानेभ्यः, दातव्यं) स्वयं भोजन न पकाने वाले संन्यासी वा

ब्रह्मचारी को पका हुआ भोजन देवे (च) और (अनुपरोधतः) विना रुकावट निरन्तर (भूतेभ्यः, संविभागः, कर्त्तव्यः) भूतों को विभाग=बलिवैश्वदेव करे ॥

राजतोधनमन्विच्छेत्संसीदन्स्नातकः क्षुधा ।
याज्यान्तेवासिनोर्वापि न त्वन्यत इति स्थितिः॥३२॥

पदा०-(क्षुधा, संसीदन्, स्नातकः) क्षुधा से पीड़ित स्नातक (राजतः) राजा (अपि, वा) अथवा (याज्यान्तेवासिनोः) यजमान वा शिष्य से (धनं, अन्विच्छेत्) धन की इच्छा करे (न, तु, अन्यतः) अन्य से नहीं (इति, स्थितिः) यह शास्त्र मर्यादा है, अर्थात् आपत्काल के समय में भी गृहस्थ ब्राह्मण शूद्रादि से धन की याचना न करे ॥

न सीदेत्स्नातको विप्रः क्षुधा शक्तः कथंचन ।
न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति ॥३३॥

पदा०-(शक्तः, स्नातकः, विप्रः) स्नातक ब्राह्मण समर्थ होने पर (कथंचन, क्षुधा, न, सीदेत्) किसी प्रकार लोभ वा आलस्यवश हो क्षुधा से पीड़ित न रहे (च) और (विभवे, सति) धनादि ऐश्वर्य के विद्यमान होने पर (जीर्णमलवद्वासा, न, भवेत्) फटे टूटे वा मलिन वस्त्र धारण न करे ॥

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः ।
स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च॥३४॥

पदा०-(क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः) गृहस्थ ब्राह्मण शिर के केश, नख और दाढ़ी आदि के वालों को कटवाकर ठीक रखे, जटा

धारी न हो (दान्तः) जितेन्द्रिय (शुक्लाम्बरः, शुचिः) श्वेत वस्त्रधारी, पवित्र (च) तथा (स्वाध्याये) वेद के पठन पाठन (च) और (आत्महितेषु) आत्मा के हित में (नित्यं, युक्तः, स्यात्) सदा तत्पर रहे ॥

वैणवीं धारयेद्यष्टिं सोदकं च कमण्डलुम् ।
यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले ॥३५॥

पदा०—(वैणवीं, यष्टिं) बांस का दण्ड (सोदकं, कमण्डलुं) जल से पूर्ण कमण्डलु (यज्ञोपवीतं) यज्ञोपवीत (वेदं) वेद (च) और (शुभे, रौक्मे, च, कुण्डले) स्वच्छ सुवर्ण के दो कुण्डल कानों में धारण करे ॥

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यान्तं कदाचन ।
नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् ॥३६॥

पदा०—(उद्यन्तं, अस्तं, यान्तं) उदय तथा अस्त समय (उपसृष्टं) ग्रहण लगते समय (वारिस्थं) जल में प्रतिबिम्बित तथा बादलों से निकलते हुए और (नभसः, मध्यं, गतं, आदित्यं) आकाश के मध्य में प्राप्त हुए सूर्य को (कदाचन, न, ईक्षेत) कभी भी न देखे, क्योंकि इन अवस्थाओं में सूर्य्य को देखने से दृष्टि मन्द होती है ॥

न लङ्घयेद्वत्सतन्त्रीं न प्रधावेच्च वर्षति ।
न चोदके निरीक्षेत स्वं रूपमिति धारणा ॥३७॥

पदा०—(वत्सतन्त्रीं, न, लङ्घयेत्) बछड़े के बन्धी हुई रस्सी को न लांघे (च) और (वर्षति, न, प्रधावेत्) वर्षा

में दौड़कर न चले (च) तथा (उदके, स्वं, रूपं, न, निरीक्षेत) जल में अपने शरीर की छाया न देखे (इति, धारणा) यह धर्मज्ञों की मर्यादा है ॥

मृदं गां दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम् ।
प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन् ॥३८॥

पदा०—(मृदं) मिट्टी का ऊंचा टीला वा खेरा (गां, दैवतं, विप्रं) गौ, देवालय, ब्राह्मण (घृतं, मधु) घृत, मधु (चतुष्पथं) चौराहा (च) और (प्रज्ञातान्, वनस्पतीन्) वड़, पीपल आदि प्रसिद्ध वनस्पतियों को (प्रदक्षिणानि, कुर्वीत) दाहिनी ओर छोड़ के बाईं ओर होकर चले ॥

नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्त्तवदर्शने ।
समानशयने चापि न शयीत तया सह ॥३९॥

सं०—अब गृहस्थ की नैत्यकी मर्यादा कथन करते हैं :—

पदा०—(प्रमत्तः, अपि) कामातुर हुआ भी गृहस्थ (आर्त्तव-दर्शने, स्त्रियं) ऋतुदर्शन के समय स्त्री के समीप (न, उपगच्छेत्) गमन न करे (च) और (तया, सह) उस ऋतुमती स्त्री के साथ (समानशयने, अपि, न, शयीत) एक शय्या पर शयन भी न करे ॥

रजसाभिप्लुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः ।
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते ॥४०॥

पदा०—(हि) क्योंकि (रजसा, अभिप्लुतां, नारीं) रज से

युक्त हुई स्त्री के साथ (उपगच्छतः, नरस्य) गमन करने वाले पुरुष की (प्रज्ञा, तेजः, बलं, चक्षुः) बुद्धि, तेज, बल, दृष्टि (च) और (आयुः, प्रहीयते) आयु घट जाती है ॥

तां विवर्जयतस्तस्य रजसा समभिप्लुताम् ।
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रवर्द्धते ॥४१॥

पदा०-(च) और (तां, रजसा, समभिप्लुतां) उस रजस्वला स्त्री को (विवर्जयतः, तस्य) छोड़ने वाले गृहस्थ के (प्रज्ञा,तेजः, बलं, चक्षुः) बुद्धि, तेज, बल, दृष्टि (च) तथा (आयुः,एव, प्रवर्द्धते) आयु निश्चय करके बढ़ते हैं॥

नाश्नीयाद् भार्यया सार्द्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम् ।
क्षुवतीं जृम्भमाणां वा न चासीनां यथासुखम्॥४२॥

पदा०-(भार्यया, सार्द्धं, न, अश्नीयात) स्त्री के साथ भोजन न करे (च) और (अश्नतीं, क्षुवतीं, जृम्भमाणां) भोजन करती हुई, छींकती हुई, जम्भाई लेती हुई (वा) अथवा (यथासुखं, आसीनां, च) स्वेच्छा से सुखपूर्वक बैठी हुई (एनां, न, ईक्षेत) स्त्री को न देखे ॥

नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे नचाभ्यक्तामनावृताम् ।
न पश्येत्प्रसवन्तीं च तेजस्कामो द्विजोत्तमः ॥४३॥

पदा०-(तेजस्कामः, द्विजोत्तमः) तेज की इच्छा वाला ब्राह्मण (स्वके, नेत्रे) अपने नेत्रों में (अञ्जयन्तीं) अञ्जन लगाती हुई (अभ्यक्तां) तैल लगाती हुई (च) और (अनावृतां) नङ्गी

(च) तथा (प्रसवन्तीं) सन्तान उत्पत्ति के समय स्त्री को (न, पश्येत) न देखे ॥

उपेत्य स्नातको विद्वान्नेक्षेन्नग्नां परस्त्रियम् ।
सरहस्यं च सम्वादं परस्त्रीषु विवर्जयेत् ॥४४॥

पदा०—(स्नातकः, विद्वान्) स्नातक विद्वान् (नग्नां, परस्त्रियं) नग्न परस्त्री को (उपेत्य, न,ईक्षेत) समीप जाकर न देखे, न (च) तथा (परस्त्रीषु, सरहस्यं, सम्वादं) अन्य की स्त्री के साथ एकान्त में बात चीत भी (विवर्जयेत) न करे ॥

नान्नमद्यादेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत् ।
न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि गोव्रजे ॥४५॥

पदा०—(एकवासा, अन्नं, न, अद्यात) गृहस्थ द्विज केवल एक धोती ही धारण किये हुए भोजन न करे (नग्नः, स्नानं, न, आचरेत) नङ्गा होकर स्नान न करे (पथि, भस्मनि, गोव्रजे) मार्ग, राख तथा गौशाला में (मूत्रं, न, कुर्वीत) पेशाब न करे ॥

न फालकृष्टे न जले न चित्यां नच पर्वते ।
न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ॥४६॥

पदा०—(फालकृष्टे) हल से जुते हुए खेत में (जले) जल में (चित्यां) चिता में (पर्वते) ऊंचे टीलों पर (जीर्णदेवायतने) पुरानी यज्ञशाला में तथा (वल्मीके) वमयी आदि कीड़ों के बिलों में (कदाचन, न) कदापि मलमूत्र न त्यागे ॥

न ससत्वेषु गर्त्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः ।
न नदीतीरमासाद्य नच पर्वतमस्तके ॥४७॥

पदा०—(ससत्त्वेषु, गर्त्तेषु) जीव वाले गढ़ों में (गच्छन्,अपि च, स्थितः) चलते तथा खड़े हुए (नदीतीरं, आसाद्य) नदी आदि जलाशय के किनारे (च) और (पर्वतमस्तके, न) पर्वत की चोटी पर मलमूत्र न त्यागे ॥

वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाः ।
न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥४८॥

पदा०—(वाय्वग्निविप्रं, आदित्यं, अपः) वायु, अग्नि, विप्र, आदित्य, जल (तथा, एव, गाः) और गौ को (पश्यन्) देखता हुआ (विण्मूत्रस्य, विसर्जनं) मलमूत्र का त्याग (कदाचन, न कुर्वीत) कदापि न करे ॥

तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठलोष्टपत्त्रतृणादिना ।
नियम्य प्रयतो वाचं संवीतांगोऽवगुण्ठितः॥४९॥

पदा०—(काष्ठलोष्टपत्त्रतृणादिना,तिरस्कृत्य) काष्ठ, मिट्टी तथा तृणादि की आड़ में बैठ (संवीताङ्गः,अवगुण्ठितः) वस्त्र से अङ्ग को ढांपकर तथा मस्तक को बांधकर (नियम्य,प्रयतः,वाचं, उच्चरेत्) प्रतिदिन नियम से मौन हो मलमूत्र त्यागे ॥

मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ सन्ध्ययोश्च यथा दिवा॥५०॥

पदा०—(दिवा, उदङ्मुखः) दिन में उत्तराभिमुख (रात्रौ, दक्षिणाभिमुखः) रात्रि में दक्षिण की ओर(च और सन्ध्ययोः, यथा, दिवा) सायं प्रातः भी दिन के समान उत्तर की ओर मुख करके (मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं, कुर्यात्) मलमूत्र त्यागे ॥

छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ।
यथा सुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधाभयेषु च ॥५१॥

पदा०—(छायायां) भित्ति वा मेघादि की छाया में (अन्धकारे) रात्रि, आंधी तथा मेघादि द्वारा हुए विशेष अन्धकार में (च) और (प्राणबाधाभयेषु) शारीरिक क्लेश अथवा किसी प्रकार की आपत्ति के आजाने का भय हो ऐसी अवस्थाओं में (द्विजः) द्विज (रात्रौ, वा, अहनि) रात्रि वा दिन के समय दिशा का ज्ञान न होने पर (यथासुखमुखः, कुर्यात्) चाहे जिधर को मुख करके मलमूत्र त्यागे ॥

प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यंश्च प्रतिसोमोदकद्विजान् ।
प्रति गां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥५२॥

पदा०—(प्रत्यग्निं) अग्नि (प्रतिसूर्यं) सूर्य (प्रतिसोमोदकद्विजान्) चन्द्र, जल, द्विज (प्रतिगां) गौ (च) और (प्रतिवातं) वायु के सन्मुख (मेहतः) मलमूत्र त्यागने वाले पुरुष की (प्रज्ञा, नश्यति) निर्मल बुद्धि मलिन तथा नष्ट होजाती है ॥

नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम् ।
नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ न च पादौ प्रतापयेत् ॥५३॥

पदा०—(अग्निं मुखेन, न, उपधमेत्) अग्नि को मुख से न फूंके (नग्नां, स्त्रियं न, ईक्षेत) नंगी स्त्री को न देखे (अग्नौ, अमेध्यं, न, प्रक्षिपेत्) अग्नि में अशुद्ध पदार्थ न डाले (च) और (पादौ, न, प्रतापयेत्) पैरों को अग्नि पर न तपावे ॥

अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमभिलङ्घयेत् ।
न चैनं पादतः कुर्यान्न प्राणाबाधमाचरेत् ॥५४॥

पदा०—(अधस्तात्, न, उपदध्यात्) खट्वा के नीचे अग्नि न रक्खे (एनं, नच, अभिलङ्घयेत्) अग्नि को न लांघे (एनं, नच, पादतः, कुर्यात्) अग्नि को पैर से इकट्ठा न करे (प्राणाबाधं, न, आचरेत्) अग्नि से प्राणवध न करे अर्थात् अग्नि से जीवों को पीड़ा होने वाला कर्म न करे तथा अग्नि को रगड़ कर न बुझावे ॥

नाश्नीयात्सन्धिवेलायां न गच्छेन्नापि संविशेत् ।
न चैव प्रलिखेद्भूमिं नात्मनोपहरेत्स्रजम् ॥५५॥

पदा०—(सन्धिवेलायां, न, अश्नीयात्) सायं प्रातः सन्ध्याकाल में भोजन न करे (न, गच्छेत्, न, अपि, संविशेत्) न कहीं जाय और न शयन करे (नच, एव, भूमिं, प्रलिखेत्) न पृथिवी पर लकीरें खींचे (आत्मनः, स्रजं, न, उपहरेत्) पहनी हुई फूलों की माला को सन्ध्या समय स्वयं न उतारे ॥

भाष्य—सन्ध्याकाल में सदैव वेद मंत्रों का जप, प्राणायाम तथा अग्निहोत्र करे, यह पीछे विधान कर आये हैं, भोजनादि में लगा हुआ तथा शयन करने वाला उक्त कर्म नहीं करसकता इसलिये सन्ध्या समय में भोजनादि का निषेध किया है, भूमि आदि का खोदना व्यर्थ चेष्टा कहाती है, सो सभी काल में त्याज्य है परन्तु सन्ध्या समय में विशेष कर त्याज्य जानो ॥

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत् ।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥५६॥

पदा०— मूत्रं, पुरीषं, ष्ठीवनं, वा) मूत्र, विष्ठा, थूक=खकार कुल्ला तथा (अन्यत्, वा, अमेध्यलिप्तं) विष्ठा आदि अशुद्ध पदार्थों से लिपटे हुए वस्त्रादि (वा) अथवा (लोहितं, वा, विषाणि) रुधिर वा विषैले पदार्थ (अप्सु, न, समुत्सृजेत्) जल में न डाले ॥

नैकः सुप्याच्छून्यगेहे श्रेयांसं न प्रबोधयेत् ।
नोदक्ययाभिभाषेत यज्ञं गच्छेन्नचावृतः ॥ ५७ ॥

पदा०—(शून्यगेहे, एकः, न, सुप्यात्) सूने मकान में अकेला न सोवे (श्रेयांसं, न, प्रबोधयेत्) किसी सोते हुए श्रेष्ठ पुरुष को न जगावे (उदक्यया, नाभिभाषेत) रजस्वला स्त्री के साथ सम्भाषण न करे (अवृत्तः, यज्ञं, नच, गच्छेत्) यजमान के विना बुलाये वा स्वीकार किये यज्ञ वा ब्रह्मभोजादि में न जाय ॥

अग्न्यागारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ ।
स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् ॥५८॥

पदा०—(अग्न्यागारे) यज्ञशाला (गवां, गोष्ठे) गौशाला (ब्राह्मणानां, च, सन्निधौ) ब्राह्मणों के निकट (स्वाध्याये) वेदपाठ (च, एव) और (भोजने) भोजन काल में (दक्षिणं, पाणिं, उद्धरेत्) दाहिने हाथ को बाहर निकाले ॥

एकः स्वादु न भुञ्जीत स्वार्थमेको न चिन्तयेत् ।
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात् ॥५९॥

पदा०-(स्वादु, एकः, न, भुञ्जीत) स्वादिष्ट भी अकेला न करे (एकः, स्वार्थं, न, चिन्तयेत) अकेला स्वार्थ की चिन्ता न करे (एकः, अध्वानं, न, गच्छेत) अकेला दूर की यात्रा न करे और (सुप्तेषु, एकः, न, जागृयात) सब के सोते हुए अकेला न जागे ॥

न वारयेद्गां धयन्तीं न चाचक्षीत कस्यचित् ।
न दिवीन्द्रायुधं दृष्ट्वा कस्यचिद्दर्शयेद्बुधः ॥६०॥

पदा०-(धयन्तीं, गां, न, वारयेत) अपनी वा अन्य की गौ को जल पीने से न हटावे (च) और (कस्यचित, न, आचक्षीत) न किसी अन्य से हटाने को कहे (बुधः) विचारशील पुरुष (दिवि, इन्द्रायुधं, दृष्ट्वा) आकाश में इन्द्र धनुष के दीखने पर (कस्यचित, न, दर्शयेत) किसी अन्य को न दिखावे, क्योंकि इसके दर्शन से दृष्टि की हानि होती है ॥

नाधार्मिके वसेद्ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम् ।
नैकः प्रपद्येदध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ॥६१॥

पदा०-(अधार्मिके) जहां अधिकांश अधर्मी हों अथवा (व्याधिबहुले,भृशं) जहां जल वायु आदि के विकार से वार २ भयङ्कर रोग उठते हों ऐसे (ग्रामे, न, वसेत) ग्राम में न बसे (एकः, अध्वानं, न, प्रपद्येत) अकेला मार्ग में न चले और (चिरं, पर्वते, न, वसेत) अधिक काल तक पहाड़ पर वास न करे ॥

न शूद्रराज्ये निवसेन्नाधार्मिकजनावृते ।
न पाषण्डिगणाक्रान्ते नोपसृष्टेऽन्त्यजैर्नृभिः ॥६२॥

पदा०-(शूद्रराज्ये) शूद्र राजा के राज्य में (अधार्मिकजनावृते) अधार्मिक पुरुषों से घिरे हुए (पापण्डिगणाक्रान्ते) पाखण्डी तथा (अन्त्यजैः,नृभिः,उपसृष्टे) चाण्डालादि नीच पुरुषों से भरे हुए ग्राम वा नगर में निवास न करे ॥

न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं नातिसौहित्यमाचरेत् ।
नातिप्रगे नातिसायं न सायं प्रातराशितः ॥६३॥

पदा०-(उद्धृतस्नेहं) जिस पदार्थ से चिकनाई निकाल ली हो ऐसे पदार्थ (न, भुञ्जीत) न खाय (अतिसौहित्यं,न, आचरेत) इच्छा का विघात करके भोजन न करे (अतिप्रगे, अतिसायं) सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय भी न खाय और (प्रातराशितः, न, सायं) प्रातः काल अधिक भोजन करने पर सायंकाल को भोजन न करे ॥

न कुर्वीत वृथा चेष्टां न वार्यञ्जलिना पिबेत् ।
नोत्संगे भक्षयेद्भक्ष्यान्न जातु स्यात्कुतूहली ॥६४॥

पदा०-(वृथा, चेष्टां, न, कुर्वीत) निष्प्रयोजन हाथ पांव से व्यर्थ चेष्टा न करे (अञ्जलिना, वारि, न, पिबेत) अञ्जलि से पानी न पीवे (उत्सङ्गे, भक्ष्यान्, न, भक्षयेत) भक्षण करने योग्य किसी पदार्थ को गोद में रख कर न खाय (जातु,कुतूहली, न, स्यात) निष्प्रयोजन किसी विषय को जानने के लिये आश्चर्य से व्याकुल न होवे ॥

न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत् ।
नास्फोटयेन्न च क्ष्वेडेन्न च रक्तो विरावयेत् ॥६५॥

पदा०-(न,नृत्येत) स्नातक द्विज नृत्यकर्म न करे (न,गायेत) अश्लील तथा व्यर्थ राग न गावे (वादित्राणि, न वादयेत) बाजा बजाने आदि का कर्म न करे (न, आस्फोटयेत) तालियां न पीटे (न, क्ष्वेडेत, च) तुतली वाणी बनाकर न बोले (च) और (रक्तः, न, विरावयेत) किसी राग में आकर अपशब्द उच्चारण न करे ॥

न पादौ धावयेत्कांस्ये कदाचिदपि भाजने ।
न भिन्नभाण्डे भुञ्जीत न भावप्रतिदूषिते ॥६६॥

पदा०-(कांस्ये, भाजने, कदाचिदपि, पादौ, न, धावयेत) कांसे के पात्र में कभी पाओं न धोवे (भिन्नभाण्डे) फूटे पात्र में और (भावप्रतिदूषिते) जिस पात्र में अशुद्ध होने की शङ्का होगई हो उस पात्र में (न, भुञ्जीत) भोजन न करे ॥

उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्नधारयेत् ।
उपवीतमलङ्कारं स्रजं करकमेव च ॥६७॥

पदा०-(च) और (उपानहौ) जूता (वासः) वस्त्र (उपवीतं, अलङ्कारं) यज्ञोपवीत, भूषण (स्रजं) माला (च) तथा (करकं) कमण्डलु (अन्यैः, धृतं) दूसरों के धारण किये हुए इनको (न,धारयेत) धारण न करे अर्थात किसी का उतरन न पहने॥

नाविनीतैर्व्रजेद्धुर्यैर्नच क्षुद्व्याधिपीडितैः ।
न भिन्नशृंगाक्षिखुरैर्न वालधिविरूपितैः ॥६८॥

पदा०-(अविनीतैः) अशिक्षित (क्षुद्व्याधिपीडितैः) भूख प्यास से दुःखित (भिन्नशृङ्गाक्षिखुरैः) सींग, नेत्र तथा खुरों से हीन (च) और (वालधिविरूपितैः) जिनके कन्धे कुरूप तथा दुःखते हों ऐसे घोड़ों वा बैलों की सवारी में यात्रा न करे, क्योंकि ऐसे घोड़े आदि से गिरने तथा सवारी टूटने का भय होता है ॥

विनीतैस्तु व्रजेन्नित्यमाशुगैर्लक्षणान्वितैः ।
वर्णरूपोपसम्पन्नैः प्रतोदेनातुदन्भृशम् ॥ ६९ ॥

पदा०-(विनीतैः, आशुगैः, लक्षणान्वितैः) शिक्षित, शीघ्र गामी, शुभचिन्हों से युक्त (तु) और (वर्णरूपोपसम्पन्नैः) दर्श-नीय रूप रङ्ग वाले घोड़ों वा बैलों पर (भृशं, प्रतोदेन, अतुदन्) वार २ कोड़ा वा बेंत से न मारते हुए (नित्यं, व्रजेत्) नित्य गमन करे ॥

बालातपः प्रेतधूमो वर्ज्यं भिन्नं तथासनम् ।
न छिन्द्यान्नखलोमानि दन्तैर्नोत्पाटयेन्नखान् ॥७०॥

पदा०-(बालातपः) सूर्योदय के अनन्तर तीन मुहूर्त्त दिन चढ़े तक धूप (प्रेतधूमः) जलते मुर्दे का धुआं (तथा) तथा (भिन्नं, आसनं, वर्ज्यं) फटा टूटा हुआ आसन त्याज्य है (नख-लोमानि, न, उत्पाटयेत्) रोम तथा नखों को न उखाड़े और (दन्तैः, नखान्, न, छिन्द्यात्) दांतों से नखों को न काटे ॥

न मृल्लोष्टं च मृद्नीयान्नछिंद्यात्करजैस्तृणम् ।
न कर्मनिष्फलं कुर्यान्नायत्यामसुखोदयम् ॥७१॥

पदा०—(मृल्लोष्टं, न, मृद्नीयात्) मिट्टी के ढेले को न मलता रहे (करजैः, तृणं, न, छिन्द्यात्) नखों से तृण छेदन न करे (निष्फलं, कर्म) व्यर्थ कार्य्य तथा (आयत्यां, असुखोदयं, न, कुर्यात्) जिनका फल दुःख हो ऐसे कर्म न करे ॥

लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः ।
स विनाशं व्रजत्याशु सूचकोऽशुचिरेव च ॥७२॥

पदा०—(यः, नरः) जो मनुष्य (लोष्टमर्दी, तृणच्छेदी) मिट्टी के ढेले को मलता वा तृणों को हाथ से तोड़ता (नखखादी) नखों को दांतों से काटता रहता (च) और (सूचकः, अशुचिः) अपवित्र तथा दूसरों की निन्दा करता है (सः, आशु, विनाशं, एव, व्रजति) वह शीघ्र ही अधोगति को प्राप्त होजाता है ॥

न विगृह्य कथां कुर्याद्बहिर्माल्यं न धारयेत् ।
गवां च यानं पृष्ठेन सर्वथैव विगर्हितम् ॥ ७३ ॥

पदा०—(विगृह्य, कथां, न, कुर्यात्) कोई व्याख्यान वा कथा वार्त्ता ऐसी न करे जिससे किसी की हानि वा लड़ाई का भय हो तथा (माल्यं, बहिः, न, धारयेत्) वस्त्रों के ऊपर माला धारण न करे (च) और (गवां, पृष्ठेन, यानं) बैल की पीठ पर सवारी करना तो (सर्वथा, एव, विगर्हितम्) सर्वथा ही निन्दित है, इसलिये इसका आचरण न करे ॥

अद्वारेण च नातीयाद्ग्रामं वा वेश्म वाऽऽवृतम् ।
रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ७४ ॥

पदा०-(आवृतं) घिरे हुए (ग्रामं, वा, वेश्म) नगर अथवा घर में (अद्वारेण, न, अतीयात) द्वार के विना भीतर न जावे (च) और (रात्रौ, वृक्षमूलानि, दूरतः, परिवर्जयेत) रात्रि को वृक्ष के नीचे न रहे ।

भाष्य-भाव यह है कि नगर वा घर में द्वार के मार्ग जावे दीवार कूद कर न जावे, क्योंकि कूद कर जाने में चोट लगने का भय और चोरादि के तुल्य पकड़ा जाना सम्भव है, और रात्रि को वृक्ष के नीचे वास करने से कई प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते हैं, क्योंकि रात्रि के समय वृक्ष का वायु स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है ॥

नाक्षैः क्रीडेत्कदाचित्तु स्वयं नोपानहौ हरेत् ।
शयनस्थोऽपि भुंजीत न पाणिस्थं नचासने ॥७५॥

पदा०-(कदाचित, तु) कभी भी (अक्षैः, न क्रीडेत) जुआ न खेले (उपानहौ, स्वयं, न, हरेत) अपने जूते हाथ में लेकर न चले (शयनस्थः) शय्या पर (अपि) अथवा (पाणिस्थं) हाथ पर (च) और (आसने) आसन पर रखकर (न, भुञ्जीत) भोजन न करे किन्तु पात्र में रख कर खावे ॥

सर्वं च तिलसम्बद्धं नाद्यादस्तमिते रवौ ।
नच नग्नः शयीतेह नचोच्छिष्टःक्वचिद्व्रजेत् ॥७६॥

पदा०-(अस्तमिते, रवौ) सूर्य्य के अस्त होने पर (तिलसम्बद्धं, सर्वं, च, न, अद्यात) तिल मिश्रित सब पदार्थों का भोजन न करे (च) और (इह) इस संसार में (नग्नः, न,

ब्रुवन्) इस प्रकार कहता हुआ (भुवि) पृथिवी पर (कामं) यथेष्ट (विधिवत्, वन्दनं, कुर्यात) विधिपूर्वक अभिवादन करे ॥

विप्रोष्य पादग्रहणमन्वहं चाभिवादनम् ।
गुरुदारेषु कुर्वीत सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ २०१ ॥

पदा०—(सतां) श्रेष्ठ पुरुषों के (धर्मं, अनुस्मरन्) धर्म का स्मरण करनेवाला धर्मात्मा शिष्य (गुरुदारेषु) गुरु पत्नियों को (विप्रोष्य) विदेश से आकर (पादग्रहणं) चरण छूकर प्रणाम करे, (च) और (अन्वहं) पुनः प्रतिदिन (अभिवादनं) पूर्वोक्त प्रकार से ही अभिवादन (कुर्वीत) करे ॥

यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ २०२ ॥

पदा०—(यथा) जिस प्रकार (नरः) मनुष्य (खनित्रेण) कसी आदिकों से (खनन्) पृथिवी को खोदता हुआ (वारि, अधिगच्छति) जल को प्राप्त होता है (तथा) इसी प्रकार (शुश्रूषुः) गुरु की सेवा करने वाला शिष्य (गुरुगतां, विद्यां) गुरु की विद्या को क्रमपूर्वक (अधिगच्छति) प्राप्त होता है ॥

सं०—अब ब्रह्मचारी के बाह्यचिन्ह कथन करते हैं :—

मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिखाजटः ।
नैनं ग्रामेऽभिनिम्लोचेत्सूर्योनाभ्युदियात्कचित्॥२०३॥

पदा०—(मुण्डः) शिर के सब बाल मुड़े हुए हों (वा) अथवा (जटिलः) जटा वाला हो (अथवा) अथवा (शिखाजटः, स्यात) केवल शिखा ही एक जटा हो (वा) और (एनं) ब्रह्मचारी को (ग्रामे) ग्राम में (कचित्, सूर्यः) कभी सूर्य्य

पदा०-(दीर्घं, आयुः, जिजीविषुः) बहुत दिन जीने की इच्छा वाला पुरुष (केशान्) केश (भस्मास्थिकपालिकाः) भस्म, अस्थि, फूटे हुए मिट्टीपात्र के टुकड़े (कार्पासास्थि) कपास की लकड़ियें (तु) और (तुषान्) भूसे पर (न,अधितिष्ठेत्) न बैठे ॥

भाष्य-भाव यह है कि मृतसमान निस्सार पदार्थों पर बैठने तथा उनका स्पर्श करने से मरण वा निस्सार बनाने के हेतु कई प्रकार के रोगादि बैठने वा स्पर्श करने वाले के देह में प्रविष्ट होजाते हैं, इसलिये उक्त निस्सार पदार्थों और पीछे कथन किये हुए फटे आसन,जीर्ण तथा मलिन वस्त्रों को उपयोग में न लावे, क्योंकि ऐसे पदार्थों का त्याग और सार पदार्थों का संयोग ही जीवन का हेतु होता है ॥

न संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्न पुल्कसैः ।
न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः॥८०॥

पदा०-(पतितैः) पतित (चाण्डालैः) चाण्डाल (पुल्कसैः) पुल्कस * (मूर्खैः) मूर्ख (अवलिप्तैः) धन से गर्वित (अन्त्यैः) धोबी, चमार आदि(च)और (अन्त्यावसायिभिः) अन्त्यावसायियों† के साथ (न, संवसेत्) वास तथा व्यवहार न करे, क्योंकि नीचों के साथ मेल मिलाप तथा सहवास करने से पुरुष नीचा होजाता है और उच्च पुरुषों के साथ सहवास करने से ऊंचा होता है, यह नियम है और:—

---

* निषाद से शूद्रा कन्या में उत्पन्न हुए का नाम "पुल्कस" है ॥

† निषाद की स्त्री में चाण्डाल से उत्पन्न हुए को "अन्त्यावसायी" कहते हैं ॥

न कृतघ्नैरनुद्युक्तैर्नमहापातकान्वितैः ।
न दस्युभिर्नाशुचिभिर्नामित्रैश्च कदाचन ॥८१॥

पदा०-(कृतघ्नैः) कृतघ्न (अनुद्युक्तैः) उद्योगहीन=आलसी (महापातकान्वितैः) महापातकी (दस्युभिः) दस्यु (अशुचिभिः) अपवित्र (च) और (अमित्रैः) शत्रुजनों के साथ (कदाचन, न) कभी भी वास न करे ॥

न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः ।
न स्पृशेच्चैतदुच्छिष्टो नच स्नायाद्विना ततः ॥८२॥

पदा०-(संहताभ्यां, पाणिभ्यां) एक साथ दोनों हाथों से (आत्मनः, शिरः, न, कण्डूयेत) अपना शिर न खुजलावे (एतत, उच्छिष्टः, न, स्पृशेत) जूठे हाथों से शिर का स्पर्श न करे (च) और (ततः, विना, न, स्नायात्) शिर पर पानी डाले विना स्नान न करे किन्तु सब से पहिले उत्तमाङ्ग शिरको धोकर पश्चात् अन्य अङ्गों को धोवे ॥

केशग्रहान प्रहारांश्च शिरस्येतान्विवर्जयेत ।
शिरःस्नातश्च तैलेन नांगं किञ्चिदपि स्पृशेत्॥८३॥

पदा०-(केशग्रहान्, प्रहारान्) केश पकड़ कर खेंचना वा शिर में मारना (शिरसि, एतान्, विवर्जयेत) यह दो काम शिर में न करे (च) और (तैलेन, शिरः, स्नातः, किञ्चिदपि, अङ्गं, न, स्पृशेत) शिर में तैल लगाकर अन्य किसी अङ्ग का स्पर्श न करे, जिससे धर्माधर्म के विवेचन करने वाली पवित्र बुद्धि में कोई बाधा न हो ॥

सं०—अब गृहस्थ की दिनचर्या कथन करते हैं:—

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्वार्थमेव च ॥८४॥

पदा०—(ब्राह्मे, मुहूर्त्ते, बुद्धयेत) ब्राह्ममुहूर्त्त=रात्रि के चौथे पहर=दो घड़ी रात रहने पर उठे (च) और उठकर (धर्मार्थौ, कायक्लेशान्) धर्म, अर्थ के सञ्चय तथा शारीरिक व्याधियों के दूर करने के (तन्मूलान्) उपायों (च) तथा (वेदतत्त्वार्थं, एव, अनुचिन्तयेत्) वेद के तत्त्वार्थ को विचारे ॥

उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः ।
पूर्वां सन्ध्यां जपँस्तिष्ठेत्स्वकाले चापरां चिरम्॥८५॥

पदा०—(उत्थाय, आवश्यकं, कृत्वा) फिर उठ आवश्यक शौचादि से निवृत्त हो (कृतशौचः, समाहितः) पवित्र होकर एकाग्रचित्त बैठ (पूर्वां, सन्ध्यां, चिरं, जपन्) प्रातः काल की सन्ध्या में चिरकाल तक जप करता रहे (च) और (स्वकाले, अपरां, तिष्ठेत्) सायंकाल की सन्ध्या में भी ठीक समय पर चिरकाल तक जप करता हुआ स्थिर रहे, क्योंकिः—

ऋषयो दीर्घसन्ध्यात्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः ।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च ॥८६॥

पदा०—(ऋषयः, दीर्घसन्ध्यात्वात्) ऋषिलोग चिरकाल तक सन्ध्या के अनुष्ठान से (दीर्घं, आयुः) दीर्घ आयु (प्रज्ञां) बुद्धि (यशः) यश (कीर्त्तिं) कीर्त्ति (च) और (एव) निश्चयकरके (ब्रह्मवर्चसं) ब्रह्मतेज को (अवाप्नुयुः) प्राप्त हुए हैं, इसलिये जो

उक्त कर्मों को विधिवत् अनुष्ठान करेगा वह भी उक्त दीर्घ आयु आदि को प्राप्त होगा ॥

श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाप्युपाकृत्य यथाविधि ।
युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान्विप्रोऽर्धपञ्चमान् ॥८७॥

पदा०—(श्रावण्यां) श्रावणी (अपि, वा, प्रौष्ठपद्यां) अथवा भाद्रपद की पूर्णिमा को (यथाविधि, उपाकृत्य) गृह्यसूत्रानुसार उपाकर्म करके (युक्तः, विप्रः) जितेन्द्रिय तथा सावधान होकर ब्राह्मण (अर्धपञ्चमान्, मासान्) साढ़े चार मास (छन्दांसि, अधीयीत) वेदों का निरन्तर अध्ययन करे ॥

पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद्बहिरुत्सर्जनं द्विजः ।
माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि ॥८८॥

पदा०—(द्विजः) ब्राह्मण (पुष्ये, वा, माघशुक्लस्य) पौष तथा माघ मास के शुक्लपक्ष की (प्रथमेऽहनि, पूर्वाह्णे, प्राप्ते) प्रतिपदा के दिन प्रातःकाल (छन्दसां, उत्सर्जनं, बहिः, कुर्यात्) वेदपाठसमाप्तिरूप उत्सर्ग नामक कर्म ग्राम से बाहर शुद्ध स्थान पर करे, और :—

यथाशास्त्रन्तु कृत्वैवमुत्सर्गं छन्दसां बहिः ।
विरमेत्पक्षिणीं रात्रिं तदेवैकमहर्निशम् ॥८९॥

पदा०- (यथाशास्त्रं, एवं) इसप्रकार गृह्यसूत्रों के अनुकूल (छन्दसां, उत्सर्गं, बहिः, कृत्वा) वेदों का उत्सर्ग नामक कर्म ग्राम से बाहर करके (पक्षिणीं, रात्रिं) अगले पिछले दो दिन और

बीच की रात्रि (तु) अथवा (तदा. एव, एकं, अहर्निशं) उसी दिनरात्रि का (त्रिरमेव) अनध्याय रक्खे ॥

अत ऊर्ध्वं तु छन्दांसि शुक्लेषु नियतः पठेत् ।
वेदांगानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु संपठेत् ॥९०॥

पदा०—(अतः. ऊर्ध्वं) इस उत्सर्ग के अनध्याय के उपरान्त द्विज (शुक्लेषु. छन्दांसि, नियतः, पठेत्) नियम में तत्पर रहकर शुक्लपक्ष में नियमपूर्वक वेदों का अध्ययन (च) और (कृष्णपक्षेषु, सर्वाणि, वेदाङ्गानि, संपठेत्) कृष्णपक्ष में वेदों के सम्पूर्ण अङ्गों को पढ़े ॥

नाविस्पष्टमधीयीत न शूद्रजनसन्निधौ ।
न निशान्ते परिश्रान्तो ब्रह्माधीत्य पुनः स्वपेत् ॥९१॥

पदा०—(अविस्पष्टं, शूद्रजनसन्निधौ) वर्णस्वर से हीन अस्पष्ट तथा शूद्रों के निकट वेद न पढ़े तथा (निशान्ते, ब्रह्माधीत्य) प्रातः काल वेदपाठ करके (परिश्रान्तः) थका हुआ (पुनः, न, स्वपेत्) फिर शयन न करे ॥

यथोदितेन विधिना नित्यं छन्दस्कृतं पठेत् ।
ब्रह्मछन्दस्कृतं चैव द्विजो युक्तो ह्यनापदि ॥९२॥

पदा०—(हि) निश्चयकरके (युक्तः, द्विजः) सावधान हुआ द्विज (यथोदितेन, विधिना) यथोक्त विधि से (नित्यं, छन्दस्कृतं) नित्य गायत्री आदि छन्दों से युक्त मन्त्र पढ़े (च)और (अनापदि) आपत्तिकाल के बिना शुभसमय में (ब्रह्मछन्दस्कृतं, एव, पठेत्) साधारण वेदपाठ और छन्दों सहित मन्त्र नियमपूर्वक पढ़ा करे ॥

सं०—अब अनध्यायों का वर्णन करते हैं:—

इमान्नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत् ।
अध्यापनं च कुर्वाणः शिष्याणां विधिपूर्वकम् ॥९३॥

पदा०—(अधीयानः) वेदाध्ययन करने वाला शिष्य (च) और (शिष्याणां, विधिपूर्वकं) शिष्यों को विधिपूर्वक (अध्यापनं, कुर्वाणः) वेदाध्यापन कराने वाला गुरु (इमान्, अनध्यायान्, नित्यं, विवर्जयेत्) इन आगे कहे हुए अनध्यायों में पठन पाठन न करें ॥

कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांसुसमूहने ।
एतौ वर्षास्वनध्यायावध्यायज्ञाः प्रचक्षते ॥९४॥

पदा०—(कर्णश्रवे, रात्रौ, अनिले) रात्रि के समय कानों में सुनाई देने वाले वायु के चलते हुए और (पांसुसमूहने, दिवा) दिन में धूल उड़ाने वाले वायु के चलते हुए (वर्षासु, एतौ, अनध्यायौ) यह वर्षाकाल में दो अनध्याय (अध्यायज्ञाः, प्रचक्षते) स्वाध्याय के जानने वाले महर्षिलोग कथन करते हैं ॥

एतांस्त्वभ्युदितान्विद्याद्यदाप्रादुष्कृताग्निषु ।
तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ॥९५॥

पदा०—(प्रादुष्कृताग्निषु) होमार्थ अग्नि के प्रज्वलित होजाने पर (यदा, एतान्, अभ्युदितान्, विद्यात्) जब वर्षा ऋतु में विद्युत चमकने आदि उपद्रवों को होते जाने (तु) अथवा (अनृतौ, च, अभ्रदर्शने) वर्षाऋतु के विना आकाशमण्डल मेघों से आवृत्त होजाय (तदा, अनध्यायं, विद्यात्) तब अनध्याय करे ॥

निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने ।
एतानाकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि ॥९६॥

पदा०-(निर्घाते) अन्तरिक्ष में उत्पात शब्द होने(भूमिचलने) भूकम्प (च) और (ज्योतिषां, उपसर्जने) सूर्य्यादिकों के उपद्रव में (ऋतौ, अपि) जिन ऋतुओं में भूकम्पादि होते हों उनमें भी (एतान्,अनध्याय न्) इन अनध्यायों को (आकालिकान्,विद्यात्) जबतक उपद्रव रहे तबतक माने ॥

प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिःस्वने ।
सज्योतिः स्यादनध्यायः शेषे रात्रौ यथा दिवा ॥९७॥

पदा०-(अग्निषु, प्रादुष्कृतेषु) होमार्थ अग्नि प्रज्वलित होने पर (विद्युत्स्तनितनिःस्वने) बिजली की गर्ज तथा वर्षा होजाय तो (सज्योतिः) सूर्यास्तपर्य्यन्त (शेषे, रात्रौ, यथा, दिवा) और रात्रि में जब तक तारागण रहें तब तक (अनध्यायः, स्यात्) अनध्याय करे ॥

नित्यानध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषु च ।
धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धे च सर्वदा ॥ ९८ ॥

पदा०-(धर्मनैपुण्यकामानां) धर्म की अतिशय इच्छा वाले पुरुषों को (ग्रामेषु, नगरेषु, च) ग्राम वा नगर में (च) तथा (पूतिगन्धे, सर्वदा) जहां दुर्गन्ध सदा आती हो वहां (नित्यानध्याय, एव, स्यात्) नित्य अनध्याय ही होता है अर्थात् एकान्त शुद्ध देश में वेदाध्ययन होना उत्तम है और दुर्गन्धि में कदापि पढ़ना नहीं चाहिये ॥

अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ ।
अनध्यायो रुद्यमाने समवाये जनस्य च ॥ ९९ ॥

पदा०—(अन्तर्गतशवे, ग्रामे) जिस ग्राम में मुरदा पड़ा हो (वृषलस्य, सन्निधौ) अधार्मिक पुरुष के समीप (रुद्यमाने) जहां रुदन का शब्द कान में आता हो (च) और (जनस्य, समवाये) जहां मनुष्यों का संघट्ट हो, ऐसे स्थानों पर (अनध्यायः) अनध्याय करे ॥

नीहारे बाणशब्दे च सन्ध्ययोरेव चोभयोः ।
अमावास्याचतुर्दश्योः पौर्णमास्यष्टकासु च ॥ १०० ॥

पदा०—(नीहारे) कुहर में (बाणशब्दे) बाणों के शब्द में (च) और (उभयोः, एव, च, सन्ध्ययोः) सायं प्रातः दोनों ही सन्ध्याओं में (अमावास्याचतुर्दश्योः) अमावस्या, चतुर्दशी (पौर्णमास्यष्टकासु) पौर्णमासी और अष्टमी इन तिथियों में न पढ़े, क्योंकि यह इष्टियों की तिथि हैं ॥

पांसुवर्षे दिशां दाहे गोमायुविरुते तथा ।
श्वखरोष्ट्रे च रुवति पङ्क्तौ च न पठेद्द्विजः ॥ १०१ ॥

पदा०—(पांसुवर्षे, दिशां, दाहे) जब धूलि वर्षती हो, ग्राम आदि में अग्नि लगने से किसी दिशा में अधिक दाह हो (गोमायुविरुते, तथा, श्वखरोष्ट्रे, च, रुवति) गीदड़, कुत्ता, गधा तथा ऊँट रोते चिल्लाते हों (च) और (पङ्क्तौ, द्विजः, न, पठेत्) अनेक मनुष्यों की पंक्ति में बैठकर द्विज न पढ़े ॥

नाधीयीत श्मशानान्ते ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा ।
वसित्वा मैथुनं वासः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च॥१०२॥

पदा०—(श्मशानान्ते, ग्रामान्ते) श्मशान वा ग्राम के समीप में (गोव्रजे) गौशाला में (च) और (मैथुनं, वासः, वसित्वा) मैथुन समय के वस्त्रों को धारण करके (अपि, वा) अथवा (श्राद्धिकं, प्रतिगृह्य) श्रद्धापूर्वक निमन्त्रण में भोजन करके वा दान लेकर ब्राह्मण वेदपाठ न करे ॥

चौरैरुपप्लुते ग्रामे संभ्रमे चाग्निकारिते ।
आकालिकमनध्यायं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु च ॥१०३॥

पदा०—(चौरैः, उपप्लुते, ग्रामे) चोर, डाकू आदि दुष्ट पुरुषों के उपद्रव से युक्त ग्राम में (अग्निकारिते, सम्भ्रमे) अग्नि से उत्पन्न हुए कोलाहल के समय में (च) और (सर्वाद्भुतेषु) भूकम्प अथवा आकाशादि के अद्भुत चमत्कार होने पर (आकालिकं, अनध्यायं, विद्यात) वेदाध्ययन का आकालिक अनध्याय जाने अर्थात जब तक उपद्रव रहे तब तक अनध्याय करे ॥

उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षेपणं स्मृतम् ।
अष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु ॥१०४॥

पदा०—(उपाकर्मणि, च, उत्सर्गे) उपाकर्म और उत्सर्ग में (त्रिरात्रं, क्षेपणं, स्मृतं) तीन रात्रि अनध्याय कहा है (तु) तथा (अष्टकासु, अहोरात्रं) अष्टकाओं में एक दिन रात (च) और (ऋत्वन्तासु, रात्रिषु) ऋतु के अन्त की एक रात्रि में अनध्याय करे ॥

भाष्य–उपाकर्म तथा उत्सर्ग का वर्णन पीछे ८७–८८ श्लोकों में कर आये हैं, मार्गशीर्ष के प्रारम्भ से लेकर फाल्गुण के अन्त तक प्रत्येक मास की कृष्णाष्टमियों का नाम अष्टका है॥

नाधीयीताश्वमारूढो न वृक्षं नच हस्तिनम् ।
न नावं न खरं नोष्ट्रं नेरिणस्थो न यानगः॥१०५॥

पदा०–(अश्वं) घोड़ा (वृक्षं) वृक्ष (हस्तिनं) हाथी (नावं) नौका (उष्ट्रं) ऊंट (च) और (खरं) खिचर पर (आरूढः) चढ़ा हुआ (ईरिणस्थः) ऊषर भूमि में बैठकर तथा (यानगः) गाड़ी आदि में बैठा हुआ भी (न, अधीयीत) वेद न पढ़े ॥

न विवादे न कलहे न सेनायां न संगरे ।
न भुक्तमात्रे नाजीर्णे नवमित्वा न सूतके ॥१०६॥

पदा०–(विवादे, कलहे, सेनायां, सङ्गरे) विवाद में, कलह में, सेना में, युद्ध में (भुक्तमात्रे) तत्काल भोजन करके (अजीर्णे) अजीर्ण में (वमित्वा) वमन करके और (सूतके) सूतक में न पढ़े ॥

अतिथिञ्चाननुज्ञाप्य मारुते वाति वा भृशम् ।
रुधिरे च स्रुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते ॥ १०७ ॥

पदा०–(अतिथिं, च, अननुज्ञाप्य) अपने घर पर अतिथि ठहरा हो तो उसकी विना आज्ञा (मारुते, वाति, वा, भृशं) अथवा वायु के वेग से चलने पर (च) और (शस्त्रेण, च, परिक्षते) शस्त्र वा फोड़े से (गात्राद, रुधिरे, स्रुते) शरीर का रक्त बहते समय न पढ़े ॥

सामध्वनावृग्यजुषी नाधीयीत कदाचन ।
वेदस्याधीत्य वाप्यन्तमारण्यकमधीत्य च ॥१०८॥

पदा०—(सामध्वनौ, ऋग्यजुषी, कदाचन, न, अधीयीत) साम की ध्वनि में ऋग्वेद तथा यजुर्वेद कदापि न पढ़े (च) और (वेदस्य, अन्तं, अधीत्य) वेदान्त को पढ़कर (अपि, वा) अथवा (आरण्यकं, अधीत्य) ऐतरेयादि आरण्यक को पढ़कर तत्काल वेद का अध्ययन प्रारम्भ न करे ॥

भाष्य—किसी एक वेद को पढ़कर तत्काल ही दूसरे वेद का प्रारम्भ न करे, क्योंकि शिथिल बुद्धि हुआ दूसरे के भाव को यथावत् नहीं समझ सक्ता, इसी प्रकार वेदान्त तथा आरण्यक ग्रन्थों के अध्ययनान्तर उन २ विषयों की ओर झुकी हुई बुद्धि वाला वेदाशय को भले प्रकार नहीं समझसक्ता और न वेद को रुचिपूर्वक पढ़सक्ता है इसलिये निषेध किया है कि इन ग्रन्थों के पश्चात् तत्काल ही वेद का अध्ययन प्रारम्भ न करे ॥

एतद्विदन्तो विद्वांसस्त्रयीनिष्कर्षमन्वहम् ।
क्रमशः पूर्वमभ्यस्य पश्चाद्वेदमधीयते ॥ १०९ ॥

पदा०—(एतत्, विदन्तः, विद्वांसः) इस प्रकार जानने वाले विद्वान् (त्रयीनिष्कर्षं) तीनों वेदों के साररूप गायत्री, ओ३म् तथा महाव्याहृतियों को (अन्वहं, पूर्वं, अभ्यस्य) प्रतिदिन क्रमपूर्वक प्रथम जप कर (पश्चात्, वेदं, अधीयते) पश्चात् वेद को पढ़ते हैं ॥

पशुमण्डूकमार्जारश्वसर्पनकुलाखुभिः ।
अन्तरागमने विद्यादनध्यायमहर्निशम् ॥ ११० ॥

पदा०-(पशुमण्डूकमार्जारश्वसर्पनकुलाखुभिः) बैल आदि पशु, मेड्क, बिल्ली, कुत्ता, सर्प, न्योला और चूहा पढ़ाते समय गुरु और शिष्य के (अन्तरागमने) बीच में से निकल जायं तो (अहर्निशं, अनध्यायं, विद्यात्) एक रात दिन का अनध्याय करे॥

द्वावेव वर्जयेन्नित्यमनध्यायौ प्रयत्नतः ।
स्वाध्यायभूमिंचाशुद्धामात्मानं चाशुचिं द्विजः॥१११॥

पदा०-(स्वाध्यायभूमिं, अशुद्धां) वेदाध्ययन का स्थान अशुद्ध होजाय अर्थात् कोई बाह्य विघ्न हो (च) अथवा (आत्मानं, अशुचिं) आत्मा में कोई व्यग्रता आजाय अर्थात् किसी प्रकार के दुःख में ग्रसित होजाय तो (द्विजः) द्विज (नित्यं) नित्य (द्वौ, एव, अनध्यायौ) इन दो अनध्यायों को (प्रयत्नतः, वर्जयेत्) अवश्य त्याग दे अर्थात् उस समय वेदाध्ययन न करे ॥

सं०-अब गृहस्थाश्रम का उपदेश कथन करते हैं :—

अमावास्यामष्टमीञ्च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् ।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ॥११२॥

पदा०-(अमावास्यां, अष्टमीं) अमावास्या, अष्टमी (पौर्णमासीं, च, चतुर्दशीं) पौर्णमासी और चतुर्दशी, इन तिथियों में (ऋतौ, अपि, स्नातकः, द्विजः) स्नातक द्विज ऋतुकाल में भी भार्या के समीप न जाय (नित्यं, अपि, ब्रह्मचारी, भवेत्) नित्य ब्रह्मचारी ही रहे ॥

न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि ।
न वासोभिः सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये ॥११३॥

पदा०—(भुक्त्वा, आतुरः, महानिशि) भोजन करके, रोग में, मध्य रात्रि में (अजस्रं, सहवासोभिः) वस्त्रों के साथ वा दिन में कई वार अथवा (अविज्ञाते, जलाशये) अज्ञात जलाशय में (स्नानं, न, आचरेत्) स्नान न करे, क्योंकि ऐसी दशा में स्नान करने से बीमार होजाने तथा डूब जाने का भय है ॥

देवतानां गुरोराज्ञः स्नातकाचार्ययोस्तथा ।
नाक्रामेत् कामतश्छायां बभ्रुणो दीक्षितस्य च॥११४॥

पदा०—(देवतानां) विद्वानों (गुरोः, राज्ञः) गुरु, राजा (तथा) तथा (स्नातकाचार्ययोः) स्नातक, आचार्य (बभ्रुणः) कपिल=पिंगल (च) और (दीक्षितस्य, छायां) दीक्षित=यज्ञ में प्रतिष्ठित, इनकी छाया (कामतः, न, आक्रामेत्) अपनी इच्छा से न लांघे, क्योंकि छाया लांघने से इनका अनादर होता है ॥

उद्वर्त्तनमपस्नानं विण्मूत्रे रक्तमेव च ।
श्लेष्मनिष्ठ्यूतवान्तानि नाधितिष्ठेत्तु कामतः॥११५॥

पदा०—(उद्वर्त्तनं) उबटन के मैल की पीठी (अपस्नानं) स्नान से बचा हुआ जल (विण्मूत्रे, रक्तं,) मल, मूत्र, रुधिर (श्लेष्मनिष्ठ्यूतवान्तानि, च) कफ, थूक और वमन (कामतः, न, अधितिष्ठेत्) इनके ऊपर जानकर खड़ा न हो, क्योंकि चित्त में ग्लानि आने से बीमार होजाना सम्भव है ॥

वैरिणं नोपसेवेत सहाय्यं चैव वैरिणः ।
अधार्मिकं तस्करञ्च परस्यैव च योषितम्॥११६॥

पदा०-(एव) निश्चयकरके (वैरिणं) शत्रु (वैरिणः, सहाय्यं) उसके सहायक (अधार्मिकं) अधर्मी (तस्करं, च) चोर, डाकू (च) तथा (परस्य, च, योषितं) दूसरे की स्त्री से (न, उपसेवेत) मेल न रखे, क्योंकि इनके साथ मेल मिलाप रखने से पुरुष पतित होजाता है ॥

न हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते ।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ ११७ ॥

पदा०-(हि) निश्चय करके (इह, लोके) इस जगत में (पुरुषस्य, अनायुष्यं) पुरुष की आयु को नष्ट करने वाला (यादृशं, परदारोपसेवनं) जैसा परस्त्रीगमन है (ईदृशं, किञ्चन, न, विद्यते) ऐसा अन्य कोई भी दुष्कर्म शीघ्र आयु का नाशक नहीं है, इसलिये इस परस्त्रीगमन रूप महापातक को गृहस्थ मन, वाणी तथा कर्म से सर्वथा त्याग दे ॥

क्षत्रियंचैव सर्पंच ब्राह्मणंच बहुश्रुतम् ।
नावमन्येत वै भूष्णुः कृशानपि कदाचन ॥ ११८ ॥

पदा०-(भूष्णुः) अपनी वृद्धि तथा ऐश्वर्य्य की इच्छा वाला गृहस्थ (क्षत्रियं) क्षत्रिय (सर्पं) सर्प (बहुश्रुतं, च, ब्राह्मणं) और विद्वान् ब्राह्मण यह (कृशान्, अपि) निर्बल हों तो भी (वै) निश्चयकरके (कदाचन, न, अवमन्येत) कदापि इनका अपमान न करे, क्योंकि :—

एतत्त्रयं हि पुरुषं निर्दहेदवमानितम् ।
तस्मादेतत्त्रयं नित्यं नावमन्येत बुद्धिमान् ॥ ११९ ॥

पदा०-(हि) निश्चयकरके(एतत्,त्रयं) यह तीनों (अवमानितं) अपमान करने से (पुरुषं, निर्दहेत्) अपमानकर्त्ता को भस्म कर देते हैं (तस्मात्, बुद्धिमान्, एतत्,त्रयं) इसलिये बुद्धिमान् इन तीनों का (नित्यं, न, अवमन्येत) कदापि अपमान न करे ॥

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।
आमृत्योःश्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम्॥१२०॥

पदा०-(पूर्वाभिः, असमृद्धिभिः) यत्न करने से द्रव्य न मिले तो भी (आत्मानं, न, अवमन्येत) "मैं मन्दभागी हूँ, मेरी प्रारब्ध में धन नहीं" इस प्रकार अपनी आत्मा का तिरस्कार न करे (एनां, दुर्लभां, न, मन्येत) सम्पत्ति को दुर्लभ न समझता हुआ (आमृत्योः,श्रियं, अन्विच्छेत्) मरणपर्यन्त सम्पत्ति के लिये यत्न करे अर्थात् निरुत्साही कभी न हो ॥

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियंच नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥१२१॥

पदा०-(सत्यं, ब्रूयात्, प्रियं, ब्रूयात्) सत्य बोले प्रिय बोले (अप्रियं, सत्यं, न, ब्रूयात्) जो अप्रिय हो ऐसा सत्य न बोले (च) और (अनृतं, प्रियं, न, ब्रूयात्) असत्य प्रिय भी न बोले (एषः, सनातनः, धर्मः) यह सनातनधर्म=महात्माओं की बांधी हुई मर्यादा है ॥

भद्रं भद्रमितिब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत् ।
शुष्कवैरं विवादचं न कुर्यात्केनचित्सह ॥१२२॥

पदा०-(भद्रं, भद्रं, इति, ब्रूयात्) जिस वाक्य का परिणाम

कल्याण युक्त हो अर्थात् "अच्छा" "बहुत अच्छा" ऐसे बोले (वा) अथवा (भद्रं, इति, एव,वदेत्) केवल "अच्छा" ही कहे (च) और (शुष्कवैरं, विवादं) निष्प्रयोजन शत्रुता तथा विवाद (केनचित्, सह, न, कुर्यात्) किसी के साथ न करे ॥

नातिकल्पं नातिसायं नातिमध्यन्दिने स्थिते ।
नाज्ञातेन समं गच्छेन्नैको न वृषलैः सह ॥१२३॥

पदा०-(अतिकल्पं) प्रातः उषःकाल (अतिसायं) प्रदोष काल=सन्ध्या समय अन्धकार होजाने पर(अतिमध्यन्दिने,स्थिते) ठीक दोपहर के समय (अज्ञातेन, समं) अनजान के साथ (एकः, वृषलैः, सह) अकेला और दुष्ट के साथ (न, गच्छेत्) मार्ग न चले ॥

हीनांगानतिरिक्तांगान् विद्याहीनान् वयोधिकान् ।
रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥१२४॥

पदा०-(हीनाङ्गान्) अङ्गहीन (अतिरिक्ताङ्गान्) अधिक अङ्ग वाले (विद्याहीनान्) मूर्ख (वयोधिकान्) वृद्ध (च) और (रूप-द्रव्यविहीनान्, जातिहीनान्, च) कुरूप, धनहीन तथा जाति से हीन को (न, आक्षिपेत्) तिरस्कार न करे अर्थात् ऐसा वाक्य न बोले जिससे उनका चित्त दुःखित हो ॥

न स्पृशेत् पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान् ।
न चापि पश्येदशुचिःस्वस्थो ज्योतिर्गणान दिवि॥१२५॥

पदा०-(विप्रः, उच्छिष्टः, पाणिना) द्विज भोजन करके जूंठे

हाथ से (गोब्राह्मणानलान्) चक्षुरादि इन्द्रियों, ब्राह्मणों तथा अग्नि का (न, स्पृशेत) स्पर्श न करे (च) और (स्वस्थः, अशुचिः, दिवि, ज्योतिर्गणान्, न, पश्येत) व्याधिरहित पुरुष अपवित्र हुआ आकाश में सूर्यादि को न देखे ॥

स्पृष्ट्वैतानशुचिर्नित्यमद्भिः प्राणानुपस्पृशेत् ।
गात्राणि चैव सर्वाणि नाभिं पाणितलेन तु ॥१२६॥

पदा०-(अशुचिः, एतान्, स्पृष्ट्वा) यदि अपवित्र हुआ पुरुष इन इन्द्रियादि का स्पर्श करले तो (एव) निश्चयकरके हाथ में जल लेकर (प्राणान्, गात्राणि, सर्वाणि) चक्षुरादि इन्द्रिय सम्पूर्ण गात्र (च) और (नाभिं, पाणितलेन) नाभि को हाथ की तली से (नित्यं, अद्भिः, स्पृशेत) नित्य जल द्वारा स्पर्श करे, यह अशुचि पुरुष के लिये प्रायश्चित्त विधान किया है ॥

अनातुरः स्वानि खानि न स्पृशेदनिमित्ततः ।
रोमाणि च रहस्यानि सर्वाण्येव विवर्जयेत् ॥१२७॥

पदा०-(अनातुरः) नीरोग पुरुष (स्वानि, खानि) अपने इन्द्रियों (च) और (रहस्यानि, सर्वाणि, रोमाणि) सब गुप्त बालों को (अनिमित्ततः, न, स्पृशेत) विना प्रयोजन कदापि स्पर्श न करे ॥

मंगलाचारयुक्तः स्यात् प्रयतात्मा जितेन्द्रियः ।
जपेच्च जुहुयाच्चैव नित्यमग्निमतन्द्रितः ॥१२८॥

पदा०-(मंगलाचारयुक्तः, प्रयतात्मा, जितेन्द्रियः, स्यात) सदाचारयुक्त, शुचि तथा जितेन्द्रिय रहे (च) और (अतन्द्रितः)

आलस्य रहित होकर (नित्यं, जपेत्) नित्य जप तथा (अग्निं, जुहुयात्) देवयज्ञ=अग्निहोत्र करे, क्योंकि :—

मंगलाचारयुक्तानां नित्यञ्च प्रयतात्मनाम् ।
जपतां जुह्वताञ्चैव विनिपातो न विद्यते ॥१२९॥

पदा०—(मङ्गलाचारयुक्तानां) सदाचारी (नित्यं, प्रयतात्मनां) सर्वदा पवित्र रहने वाले (च) तथा (जपतां, जुह्वतां) सदा जप=सन्ध्योपासन और अग्निहोत्र करने वालों को (विनिपातः, न, विद्यते) आपत्ति नहीं आती अर्थात् रोगादि नहीं होते ॥

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः ।
तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥१३०॥

पदा०—(अतन्द्रितः, यथाकालं, वेदं, एव, नित्यं, अभ्यसेत्) गृहस्थ अप्रमादी होकर ठीक समय पर वेद ही का नित्य अभ्यास करे (हि) क्योंकि (अस्य, तं, परं, धर्मं, आहुः) यह इसका परमधर्म कहा है (च) और (उपधर्मः, अन्यः, उच्यते) दूसरे धर्म इससे नीचे हैं ॥

वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च ।
अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥१३१॥

पदा०—(सततं, वेदाभ्यासेन) निरन्तर वेदाभ्यास करने (शौचेन) शुचि रहने (तपसा, एव, च) तप करने (च) और (भूतानां, अद्रोहेण) प्राणियों के साथ द्रोह=वैरादि न करने से (पौर्विकीं, जातिं, स्मरति) पूर्वजन्म की जाति का स्मरण होता है अर्थात् पूर्वजन्म को जान जाता है ॥

पौर्विकीं संस्मरन् जातिं ब्रह्मैवाभ्यसते पुनः ।
ब्रह्माभ्यासेनचाजस्रमनन्तं सुखमश्नुते ॥१३२॥

पदा०—(पौर्विकीं, जातिं, संस्मरन्) जो पूर्वजन्म को स्मरण करता हुआ (पुनः, ब्रह्म, एव, अभ्यसते) पुनः नित्य वेद ही का अभ्यास करता है वह (ब्रह्माभ्यासेन, च, अजस्रं) उस वेदाभ्यास से (अनन्तं, सुखं, अश्नुते) अनन्त सुख=मोक्ष को प्राप्त होता है ॥

सावित्रान् शान्तिहोमाँश्च कुर्यात् पर्वसु नित्यशः ।
पितॄँश्चैवाष्टकास्वर्चेन्नित्यमन्वष्टकासु च ॥ १३३ ॥

पदा०—(पर्वसु, सावित्रान्, शान्तिहोमान्, च, नित्यशः, कुर्यात्) अमावास्या, पौर्णमासी नामक पर्व तिथियों में सावित्री देवता वाले मन्त्रों, तथा शान्तिपाठ से सर्वदा होम करे (च) और (अष्टकासु, अन्वष्टकासु, च, पितॄन्, नित्यं, अर्चयेत्) हेमन्त, शिशिर ऋतुओं के कृष्णपक्ष की अष्टमियों और उनके समीप की नवमी तिथियों में विशेष कर पितरों=पिता, पितामहादि गुरुजनों की पूजा करे अर्थात् और दिनों की अपेक्षा खानपानादिकों से विशेषतया सत्कार करे ॥

दूरादावसथान्मूत्रं दूरात् पादावसेचनम् ।
उच्छिष्टान्नं निषेकञ्च दूरादेव समाचरेत् ॥१३४॥

पदा०—(आवसथात्) यज्ञशाला तथा वासस्थान से (दूरात्, मूत्रं, दूरात्, पादावसेचनं) मल मूत्र त्याग, पैर धोना स्नानादि

करना (उच्छिष्टान्नं, निषेकं, च) और जूठन का फेंकना आदि (दूरादं,एव,समाचरेत्) दूर ही करे अर्थात् घर के समीप कोई ऐसा पदार्थ न डाले जिससे दुर्गन्ध फैले, और घर के चारों ओर दूर २ तक शुद्ध स्थान रक्खे ॥

मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम् ।
पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम् ॥१३५॥

पदा०—(मैत्रं, प्रसाधनं, स्नानं, दन्तधावनं, अञ्जनं) मलत्याग, शिर में तैल लगाना, काढ़ना, स्नान, दतोन करना, आंखों में अञ्जन लगाना (च) और (देवतानां, पूजनं) देवताओं के लिये होम तथा विद्वानों का भोजनादि से सत्कार करना, यह कर्म (पूर्वाह्णे, एव, कुर्वीत) मध्याह्न से पूर्व ही करे ॥

दैवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकाँश्च द्विजोत्तमान् ।
ईश्वरँश्चैव रक्षार्थं गुरूनेव च पर्वसु ॥ १३६ ॥

पदा०—(रक्षार्थं) पुरुष अपनी रक्षा के लिये (दैवतानि) यज्ञशालाओं (धार्मिकान्, द्विजोत्तमान्) धार्मिक ब्राह्मणों (ईश्वरं) राजा (च) और (गुरून्) गुरुजनों के समीप (पर्वसु, अभिगच्छेत्) पर्वतिथियों में अवश्य जावे ॥

अभिवादयेद्वृद्धाँश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् ।
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात्॥१३७॥

पदा०—(वृद्धान्, अभिवादयेत्) घर आये वृद्धजनों को नमस्कार करे (स्वकं, आसनं, चैव, दद्यात्) अपने आसन पर

सत्कारपूर्वक बैठावे (च) तथा (कृताञ्जलिः, उपासीत) हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक उनके समीप रहे (च) और (गच्छतः, पृष्ठतः, अन्वियात्) उनके चलने पर स्वयं पीछे २ चलता हुआ विदा करे ॥

सं०—अब आचार की महिमा वर्णन करते हैं :—

श्रुतिस्मृत्युदितंसम्यङ्निबद्धं स्वेषुकर्मसु ।
धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः ॥ १३८ ॥

(श्रुतिस्मृत्युदितं) वेद तथा धर्मशास्त्र में वर्णित (स्वेषु, कर्मसु, सम्यक्, निबद्धं) अपने २ कर्मों में भले प्रकार नियम से बांधा हुआ (धर्ममूलं, सदाचारं) धर्म का मूल जो सदाचार उसको (अतन्द्रितः, निषेवेत) आलस्य रहित होकर सदा सेवन करे ॥

भाष्य—ब्राह्मणादि द्विज गृहस्थों का यह परमकर्तव्य है कि वेद तथा धर्मशास्त्र में कहे हुए अपने२ वेदाध्ययनादि कर्मों से भले प्रकार सम्बन्ध रखने वाले धर्ममूलक सदाचार=शौचादि आचरणों अर्थात् शुभाचरण रूप कर्मों को निरालस हो कर सेवन करें, जैसाकि अन्यत्र भी कहा है कि :—

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च ।
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः॥
आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत् ॥

मनु० १—१०७—१०८

इनके अर्थ यथावसर देखलें, तात्पर्य्य यह है कि आचार से च्युत पुरुष वेद के फल को प्राप्त नहीं होता अर्थात् उसका वेद पढ़ना व्यर्थ है और सदाचारी पुरुष की सम्पूर्ण कामनायें सफल होती हैं, इसलिये, गृहस्थ को उचित है कि वह सम्यक् प्रकार से सदाचार का अवलम्बन करे और यही परमधर्म है ॥

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥१२९॥

पदा०-(आचारात्, आयुः, हि, लभते) निश्चयकरके गृहस्थ आचार से आयु को प्राप्त होता है अर्थात् सम्पूर्ण आयु भोगता है (आचारादीप्सिताः प्रजाः) आचार से अनुकूल सन्तति उत्पन्न होती है (आचाराद्धनमक्षय्यं) आचार से अक्षय धन प्राप्त होता (च) और (आचारः, अलक्षणं, हन्ति) आचार ही अशुभ लक्षणों का नाश करता है ॥

भाष्य-सदाचारी पुरुष ही सम्पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, जैसाकि "सदाचारेण पुरुषः शतवर्षाणि जीवति"= सदाचारी पुरुष सौ वर्ष पर्य्यन्त पूर्ण आयु भोगता है, सदाचारी पुरुष की सन्तति अनुकूल, उत्तम, आज्ञाकारी और ऐश्वर्य्य-शाली होती है, आचार सम्पन्न पुरुष के यहां ही लक्ष्मी का वास होता है और आचार ही दरिद्रता तथा सब अशुभ लक्षणों का नाश करके पुरुष को पवित्र बना देता है, इसलिये गृहस्थ को उचित है कि धर्म के मूल आचार का निरालस होकर प्रयत्न से सेवन करे अर्थात् सदाचारी बने ॥

सं०—अब आचार से भ्रष्ट पुरुष का लक्षण कथन करते हैं:—

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेवं च ॥१४०॥

पदा०—(हि) निश्चयकरके (दुराचारः) दुराचारी (पुरुषः) पुरुष (लोके, भवति, निन्दितः) लोक में निन्दा को प्राप्त होता (दुःखभागी, सततं) निरन्तर दुःख भोगता (च) और (व्याधितः) रोगी रहता (च) तथा (अल्पायुः, एव) निश्चयकरके थोड़ी आयु वाला होता है ॥

सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ।१४१।

पदा०—(सर्वलक्षणहीनः, अपि) सुदर्शन आदि सब शुभ लक्षणों से हीन होने पर भी (यः, नरः) जो पुरुष (सदाचारवान्) सदाचारी=उत्तम आचरणों वाला (श्रद्दधानः) श्रद्धायुक्त (च) और (अनसूयः) दूसरे के दोषों को न कहने वाला है वह (शतं, वर्षाणि, जीवति) सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहता अर्थात् बड़ी आयु वाला होता है ॥

सं०—अब सुख दुःख का लक्षण कथन करते हैं:—

यद्यत्परवशंकर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ।
यद्यदात्मवशं तु स्यात् तत्तत्सेवेत यत्नतः ।१४२।

पदा०—(यत्, यत्, परवशं, कर्म) जो २ कर्म दूसरे के अधीन हैं (तत्, तत्, यत्नेन, वर्जयेत्) उन २ को यत्न से

छोड़ देवे (तु) और (यत्, यत्, आत्मवशं, स्यात्) जो२ अपने अधीन हैं (तत्, तत्, सेवेत, यत्नतः) उसको यत्न से करे॥

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥१४३॥

पदा०—(सर्वं, आत्मवशं, सुखं) स्वाधीन होना ही सम्पूर्ण सुख और (सर्वं, परवशं, दुःखं) पराधीन होना ही सम्पूर्ण दुःख है (एतत्, समासेन) यह संक्षेप से (सुखदुःखयोः, लक्षणं, विद्यात्) सुख दुःख का लक्षण जानो ॥

भाष्य—पराधीनता=दूसरे के अधीन होना परम दुःख है, इसलिये जहां तक होसके पराधीनता को सोच विचार कर यत्न से छोड़ देवे अर्थात् स्वतन्त्र आजीविका का भलेप्रकार प्रबन्ध करके पराधीनता का त्याग करे, अन्यथा नहीं ॥

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोन्तरात्मनः ।
तत्प्रयत्नेनकुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत् ॥१४४॥

पदा०—(यत्कर्म, कुर्वतः) जिस कर्म के करने से (अस्य, अन्तरात्मनः, परितोषः, स्यात्) गृहस्थ का अन्तरात्मा प्रसन्न हो (तत्, प्रयत्नेन, कुर्वीत) वह कर्म यत्नपूर्वक करे (तु) और (विपरीतं, वर्जयेत्) विपरीत कर्मों को छोड़दे ॥

भाष्य—जिस कर्म के करने में गृहस्थ के अन्तरात्मा वा मन में सन्तोष, प्रसन्नता तथा उत्साह हो उस कर्म को भलेप्रकार मन लगाकर करे, और जिसमें असन्तोष, ग्लानि, लज्जा, शङ्का तथा भय हो ऐसे कर्म को तत्काल त्याग देवे ॥

आचारं च प्रवक्तारं पितरं मातरं गुरुम् ।
न हिंस्याद्ब्राह्मणान् गाश्चसर्वांश्चैव तपस्विनः१४५

पदा०-(आचारं) आचार्य्य (प्रवक्तारं) वेद का व्याख्यान करने वाला (च) और (पितरं, मातरं, गुरुम्) पिता, माता, गुरु (ब्राह्मणान, गाः, च, सर्वान्, एव, तपस्विनः) ब्राह्मण, गौ और निश्चयकरके सम्पूर्ण तपस्वी (न, हिंस्यात्) इनको दुखित न करे ॥

भाष्य-यज्ञोपवीतादि संस्कार द्वारा मन्त्रोपदेश करके वेदाध्ययन कराने वाले का नाम " आचार्य्य " और अध्यापक अथवा उपाध्याय को "प्रवक्तार" कहते हैं, इनकी और माता, पिता, गुरु, ब्राह्मण, गौ और तपस्वी, इन सब की कदापि हिंसा न करे और न कभी इनके चित्त को दुःखावे, क्योंकि अन्य प्राणियों की अपेक्षा यह अधिक उपकारक हैं ॥

सं०-अब गृहस्थ के लिये अन्य निन्दित कर्मों का त्याग कथन करते हैं :—

नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम् ।
द्वेषं दम्भं च मानं च क्रोधं तैक्ष्ण्यं च वर्जयेत्॥१४६।

पदा०-(नास्तिक्यं, वेदनिन्दां) नास्तिकता, वेदनिन्दा (च) तथा (देवतानां,च,कुत्सनम्) विद्वान् धर्मात्माओं का अनादर(च) और (द्वेषं, दम्भं, मानं, च, क्रोधं, तैक्ष्ण्यं, च, वर्जयेत्) वैर, दम्भ, अभिमान, क्रोध, और चञ्चलता इनको सर्वथा छोड़दे ॥

परस्य दण्डं नोद्यच्छेत्क्रुद्धो नैव निपातयेत् ।
अन्यत्रपुत्राच्छिष्याद्वाशिष्ट्यर्थंताडयेत्तु तौ॥१४७॥

पदा०-(पुत्राच्छिष्याद्, वा, अन्यत्र) पुत्र अथवा शिष्य को छोड़कर (परस्य, दण्डं, न, उद्यच्छेत्) अन्य किसी पर मारने को दण्ड न उठावे (क्रुद्धो, नैव, निपातयेत्) और क्रोध में आकर किसी के दण्डा आदि न मारे (तु) परन्तु (शिष्ट्यर्थं, ताड़येत्, तौ) पुत्र तथा शिष्य को शिक्षार्थ अवश्य ताड़न करे ॥

ब्राह्मणायावगूर्य्यैव द्विजातिर्वधकाम्यया ।
शतं वर्षाणि तामिस्त्रे नरके परिवर्त्तते ॥१४८॥

पदा०-(वधकाम्यया) प्राणघात की कामना=इच्छा से (ब्राह्मणायावगूर्य्यैव) ब्राह्मण पर दण्डादि उठाने ही से (द्विजातिः) द्विज (शतं, वर्षाणि, तामिस्त्रे, नरके, परिवर्त्तते) सौवर्ष तक अन्धकाररूप नरक में पड़ता है अर्थात् दुर्गति को प्राप्त होता है ॥

ताडयित्वा तृणेनापि संरम्भान्मतिपूर्वकम् ।
एकविंशतिमाजातीः पापयोनिषु जायते ।१४९।

पदा०-(ताडयित्वा, तृणेन, अपि, संरम्भात्, मतिपूर्वकं) क्रोध से तृणद्वारा भी बुद्धिपूर्वक मारने से (एकविंशतिं, आजातीः, पापयोनिषु, जायते) इक्कीस पापयोनियों में जन्मता है अर्थात् यदि कोई द्विज=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ब्राह्मण को बुद्धिपूर्वक तनिक भी अपमान करे तो वह घोर नरक को प्राप्त होता है ॥

अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यासृगंगतः ।
दुःखं सुमहदाप्नोति प्रेत्याप्राज्ञतया नरः ॥ १५० ॥

पदा०-(अयुध्यमानस्य, ब्राह्मणस्य, अङ्गतः,असृक्, उत्पाद्य) जो किसी से लड़ता भिड़ता न हो ऐसे ब्राह्मण के शरीर से लड़ाई द्वारा कोई रक्त निकाल दे तो वह (नरः) मनुष्य (अप्राज्ञतया, प्रेत्य, सुमहत्, दुःखं, आप्नोति) मूढ़योनियों को प्राप्त होकर महान् दुःख पाता है ॥

न कदाचिद् द्विजे तस्माद् विद्वानवगुरेदपि ।
न ताडयेत्तृणेनापि न गात्रात्स्रावयेदसृक् ॥१५१॥

पदा०-(तस्मात्) इसलिये (द्विजे, कदाचित्, विद्वानव-गुरेदपि, न) द्विज के मारने को कभी दण्ड न उठावे (न, ताड-येत, तृणेन,अपि) तृणादि से भी कदापि ताड़न न करे और (न, गात्रात्, स्रावयेदसृक्) न शरीर से कभी रक्त निकाले ॥

अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् ।
हिंसारतश्च यो नित्यं नेहाऽसौ सुखमेधते ।१५२।

पदा०-(अधार्मिकः, नरः,यः,हि) निश्चयकरके अधर्म करने वाला पुरुष (च) और (यस्य)जिसका (अनृतं, अपि, धनम्) अनृत ही धन है अर्थात् सदा असत्य व्यवहार करने वाला (च) और (हिंसारतः, यः, नित्यं) जो नित्य हिंसा करने में रत रहता है (न, इह, असौ, सुखमेधते) वह इस लोक में सुख पूर्वक नहीं बढ़ता अर्थात उसका जीवन दुःखमय होता है ॥

सं०-अब अधर्म में प्रवृत्त पुरुष के लिये फल कथन करते हैं:—

न सीदन्नपिधर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् ।
अधार्मिकाणां पापानामाशुपश्यन्विपर्ययम्।१५३।

पदा०-(अधार्मिकाणां, पापानां, आशु, विपर्ययं, पश्यन्) अधर्म करने वाले पापियों को शीघ्र ही विपर्यय=उलटा फल देखता हुआ (धर्मेण, सीदन्, अपि) धर्म करने से पीड़ित होता हो तोभी (अधर्मे, मनः, न, निवेशयेत्) मन को अधर्म में न लगावे, क्योंकि:—

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥१५४॥

पदा०-(लोके, चरितः, अधर्मः, सद्यः, गौरिव, न, फलति) इस लोक में अधर्म किया हुआ उसी समय नहीं फलता, जैसे पृथिवी वा गौ तत्काल फल नहीं देतीं (शनैः, आवर्तमानः, तु) किन्तु धीरे २ फैलता हुआ (कर्तुः, कृन्तति) अधर्म करने वाले की जड़ें काट देता है ॥

भाष्य-अधर्म=पाप करने वाले पापियों को शीघ्र ही फूलता फलता तथा ऐश्वर्य्यवान् देखे और धर्मात्मा धर्म करने से अपने आपको दुःखी देखे तब भी वह धार्मिक अपने आपको अधर्म में न लगावे, अधर्म का फल सदा दुःख और धर्म का फल सर्वदा सुख होता है,परन्तु इस लोक में अधर्म किया हुआ तत्काल ही नहीं फलता, जैसे पृथिवी में बोया हुआ अन्न धीरे २ काल पाकर उगता, बढ़ता, फलता फूलता है, और जैसे गौ को दाना घास आदि खिलाये हुए का दूधरूप फल कालान्तर में होता है वैसे ही किया हुआ अधर्म धीरे २ फैलता हुआ कर्त्ता की जड़ें काट देता है अर्थात् उसके परिवार का नाशक होता है, जैसाकि:—

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत् पुत्रेषु नप्तृषु ।
नत्वेवं तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः ॥१५५॥

पदा०—(कृतः, अधर्मः) किया हुआ अधर्म (कर्तुः, निष्फलः, न, भवति) कर्त्ता को निष्फल नहीं होता (तु) किन्तु (यदि, न, आत्मनि, कर्तुः, पुत्रेषु) यदि कर्त्ता के देह तथा धनादि का तत्काल नाश न करे तो उसके पुत्र में सफल होता है अर्थात् उसके पुत्र का नाश करता है (तु) और (न, चेत्, पुत्रेषु, नप्तृषु) यदि पुत्रों में भी न फले तो पौत्रों में फलता है ॥

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततःसपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति ॥१५६॥

पदा०—(तावत्, अधर्मेण, एधते) पुरुष प्रथम तो अधर्म से बढ़ता है (ततः, भद्राणि, पश्यति) फिर कल्याण को देखता अर्थात् घोड़े, हाथी, नौकर चाकर आदि सुख के सामान एकत्रित करके सुख पाता है (ततः सपत्नान्, जयति) तदनन्तर शत्रुओं को भी जीतता है, (तु) और फिर पाप के परिपक्व होने पर (समूलः, विनश्यति) समूल=परिवार सहित नाश को प्राप्त होजाता है, इसलिये गृहस्थ को उचित है किः—

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।
शिष्यांश्चशिष्याद्धर्मेणवाग्बाहूदरसंयतः ॥१५७॥

पदा०—(सत्यधर्मार्यवृत्तेषु) सत्य, धर्म, सदाचार (च) तथा (शौचे, एव, रमेत, सदा) शौच धर्म के पालन करने में सदा तत्पर रहे (धर्मेण, शिष्यान्, शिष्यात्) धर्मपूर्वक शिष्यों

को शिक्षा देवे (च) और (वाक्, बाहु, उदर संयतः) वाणी, बाहु तथा उदर इनका संयम करे अर्थात् सदा सत्यभाषण करे, किसी दूसरे को कभी पीड़ा न दे और धर्मपूर्वक उपार्जन किये हुए अन्न का भोजन करे, यह उक्त तीनों का संयम जानो ॥

परित्यजेदर्थकामौ यौस्यातां धर्मवर्जितौ ।
धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च ॥१५८॥

पदा०—(यौ. धर्मवर्जितौ, स्यातां) जो धर्म से रहित (अर्थकामौ, परित्यजेत्) अर्थ तथा काम हों उनको त्यागदे (च) तथा (धर्मं,अपि, असुखोदर्कं) भविष्यत् में दुःख देने वाला धर्म (लोकविक्रुष्टं, एव, च) और लोक में निन्दित कर्म भी न करे ॥

भाष्य—इस श्लोक का आशय यह है कि धर्म से विरुद्ध जो अर्थ तथा काम है उनको त्याग दे अर्थात् चोरी, छल, कपट तथा परहिंसा से कदापि धन उपार्जन न करे, न परस्त्री गमन करे और भविष्यत् काल में दुःख देने वाला धर्म भी न करे जिसमें पुत्र पौत्रादि परिवार को क्लेश हो, जैसे सर्वस्व दानादि अथवा पुण्यकर्म के सहायार्थ किसी को अत्यन्त कष्ट देना आदि, इनका उत्तरकाल में फल दुःख होता है, और लोक में निन्दित कर्म भी न करे ॥

न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः ।
न स्याद्वाक् चपलश्चैव न परद्रोहकर्मधीः ॥६९॥

पदा०—(न, पाणि,पाद,चपलः) निष्प्रयोजन हाथ पांओं से चपलता न करे (न, नेत्र, चपलः, अनृजुः) न आंखों से चपलता

करे न निर्दयतायुक्त हो (न, वाक्, चपलः, एव, स्यात्) वाणी से भी चपलता वाला न हो (च) और (न, परद्रोहकर्मधीः) न दूसरे से द्रोह=बुराई की कभी बुद्धि करे ॥

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥१७०॥

पदा०—(येन, अस्य, पितरः, याता, येन, याता, पितामहाः) जिस धर्ममार्ग से इसके पिता, पितामह चलते रहे हों (तेन, सतां, मार्गं, यायात्) उसी सन्मार्ग से आप चले, क्योंकि (तेन, गच्छन्, न, रिष्यते) उसमें चलने से बुराई नहीं होती अर्थात् दुःख से पीड़ित नहीं होता ॥

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः ।
बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः ॥१७१॥
मातापितृभ्यां यामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया ।
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ॥१७२॥

पदा०—(ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैः) ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य्य (मातुलातिथिसंश्रितैः) मामा, अतिथि तथा अपने आश्रित रहने वाले (बालवृद्धातुरैः) बालक, वृद्ध तथा रोगी (वैद्यैः) वैद्य (ज्ञाति, सम्बन्धिबान्धवैः) अपने चाचा आदि, श्वसुर, साले आदि, नाना आदि (मातापितृभ्यां, यामीभिः) माता, पिता तथा बहिन वा पुत्रवधू आदि (पुत्रेण) पुत्र (भार्यया) अपनी स्त्री (दुहित्रा) अपनी बेटी (भ्रात्रा) भाई (दासवर्गेण) अपने सेवक, इनके साथ (विवादं, न, समाचरेत्) विवाद न करे ॥

एतैर्विवादान्संत्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
एभिर्जितैश्च जयति सर्वांल्लोकानिमान्गृही ॥१७३॥

पदा०-(गृही) गृहस्थी (एतैः) उक्त ऋत्विकादि के साथ (विवादान्) विवादों को (संत्यज्य) त्यागकर (सर्वपापैः,प्रमुच्यते) सब पापों से छूट जाता है (च) और (एभिः) इनके (जितैः) जीते जाने पर (इमान्, सर्वान्, लोकान्, जयति) इन सब संसारस्थ लोगों को जीत लेता है ॥

आचार्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पिता प्रभुः ।
अतिथिस्त्विन्द्रलोकेशो देवलोकस्यचर्त्विजः ।१७४।

पदा०-(आचार्यः, ब्रह्मलोकेशः) आचार्य्य ब्रह्म=वेदलोक का स्वामी (पिता, प्राजापत्ये, प्रभुः) पिता प्रजापति लोक का प्रभु (अतिथिः, तु, इन्द्रलोकेशः) अतिथि इन्द्रलोक का ईश (च) और (ऋत्विजः, देवलोकस्य) ऋत्विज् देवलोक का स्वामी है ॥

भाष्य-आचार्य्य को ब्रह्मलोक का स्वामी इसलिये कहा है कि उसीकी कृपा से ब्रह्म=वेद की प्राप्ति होती है, इसी प्रकार उत्पादक होने से पिता प्रजापति लोक का स्वामी, इन्द्र= मेघ के तत्त्व को समझने वाली बुद्धि का उपदेशक होने से अतिथि को इन्द्रलोक का ईश कहा है, और ऋत्विज् यज्ञ द्वारा वायु आदि दिव्य लोकों को पवित्र करता है इसलिये उसको देवलोक का प्रभु कहा गया है ॥

जामयोऽप्सरसां लोके वैश्वदेवस्य बान्धवाः ।
सम्बन्धिनोह्यपां लोके पृथिव्यां मातृमातुलौ।१७५।

आकाशेशास्तु विज्ञेया बालवृद्ध कृशातुराः ।
भ्राताज्येष्ठः समः पित्रा भार्या पुत्रः स्वकातनूः ।१७६।

पदा०–(जामयः, अप्सरसां, लोके) भगिनी तथा पुत्रवधू आदि अप्सरालोक की स्वामिनी अर्थात् सुन्दर होने से अप्सराओं के समान घर की शोभा हैं (बान्धवाः, वैश्वदेवस्य) बान्धव वैश्वदेव लोक के (सम्बन्धिनः, हि, अपां, लोके) निश्चय करके जललोक के सम्बन्धि लोग और (पृथिव्यां, मातृमातुलौ) भूलोक के माता तथा मामा स्वामी हैं, क्योंकि यह पृथिवी के समान उत्पत्ति की भूमि हैं (तु) और (बाल, वृद्ध, कृशः, आतुराः) बालक, वृद्ध, कृश तथा आतुर इन्हें (आकाशेशाः) आकाश के स्वामी (विज्ञेया) जानो, क्योंकि यह निराश्रय हैं (ज्येष्ठः, भ्राता) बड़ा भाई (पित्रा, समः) पिता के समान, और (भार्या, पुत्रः, स्वका, तनुः) स्त्री तथा पुत्र अपना शरीर जानो, इसलिये इनसे कदापि विवाद करना उचित नहीं ॥

छायास्वो दासवर्गश्च दुहिता कृपणं परम् ।
तस्मादेतैरधिक्षिप्तः सहेतासंज्वरः सदा ॥ १७७ ॥

पदा०–(दासवर्गः) सेवकसमूह (स्वः) अपनी (छाया) छाया के सामान अपने अनुयायी होते हैं (च) और (दुहिता, परं, कृपणं) अपनी कन्या परमकृपा का पात्र है (तस्मात्) इसलिये (एतैः, अधिक्षिप्तः, असंज्वरः, सदा, सहेत) इनसे कुछ अनुचित कहागया भी सर्वदा सह लेवे बुरा न माने ॥

सं०–अब दान लेने और देने का विधान करते हैं :–

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत् ।
प्रतिग्रहेणह्यस्याशु ब्राह्मंतेजः प्रशाम्याते ॥१७८॥

पदा०-(प्रतिग्रह, समर्थः, अपि) प्रतिग्रह=दान लेने को समर्थ होने पर भी (तत्र, प्रसङ्गं, वर्जयेत) उसमें आसक्त न हो अर्थात अधिक लालच न करे (हि) क्योंकि (अस्य, प्रतिग्रहेण) प्रतिग्रह लेने से ब्राह्मण का (ब्राह्मंतेजः, आशु, प्रशाम्यति) ब्रह्मतेज शीघ्र ही नष्ट होजाता है ॥

न द्रव्याणामविज्ञाय विधिंधर्म्यं प्रतिग्रहे ।
प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यादवसीदन्नपि क्षुधा ॥१७९॥

पदा०-(प्रतिग्रहे) दान लेने में (द्रव्याणां) द्रव्यों की (धर्म्यं, विधिं, अविज्ञाय) धर्मयुक्त विधि को न जानकर (क्षुधा, अवसीदन्, अपि, प्राज्ञः) क्षुधा=भूख से पीड़ित हुआ भी बुद्धिमान् (प्रतिग्रहं न, कुर्यात) प्रतिग्रह न लेवे ॥

भाष्य-विद्या, तप, सदाचार तथा अन्य उत्तम शुभ कर्मों से युक्त होने के कारण दान लेने का अधिकारी भी दान लेने में अधिक लालच न करे अर्थात उसी ओर चित्तवृत्ति को न लगाये रहे, क्योंकि उचितानुचित दान लेने से ब्रह्मतेज घट कर दीनता आजाती तथा आकृति भी मलिन होजाती है, यदि अपना धर्म समझकर दान लेवे भी तो जबतक यह न जान ले कि यह दानयोग्य पदार्थ दाता ने धर्मानुकूल उपार्जन किये हैं तब तक क्षुधा से पीड़ित तथा दुःखित रहता हुआ भी ब्राह्मण कदापि दान न ले ॥

हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान्घृतम् ।
प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मी भवति दारुवत् ॥१८०॥

पदा०-(अविद्वान्) वेदादिशास्त्रों को न जानने वाला (हिरण्यं, भूमिं, अश्वं, गां, अन्नं, वासः, तिलान्, घृतम्) सुवर्ण भूमि, घोड़ा, गाय,अन्न, वस्त्र,तिल तथा घृतादि का (प्रतिगृह्णन्) दान लेता हुआ (दारुवत्, भस्मी, भवति) अग्निसंयोग से लकड़ी के समान भस्म होजाता है ॥

भाष्य-भाव यह है कि मूर्ख दान के लालच में फस जाने के कारण स्वतन्त्रतापूर्वक खुलकर दाता के सन्मुख सर्वथा सत्य का बलपूर्वक समर्थन नहीं करसक्ता अर्थात् विद्वान् के चित्त में धर्म का अंकुर होने से उसका आत्मा अधिक संकुचित नहीं होता और मूर्ख का आत्मा निर्बल होने से शीघ्र पतित होजाता है जिससे वह यथार्थ शिक्षा नहीं देसक्ता, इसलिये वह दान का पात्र नहीं ॥

हिरण्यमायुरन्नं च भूर्गौश्चाप्योषतस्तनुम् ।
अश्वश्चक्षुस्त्वचं वासो घृतं तेजस्तिलाःप्रजाः॥१८१॥

पदा०-(हिरण्यं, च, अन्नं, आयुः) सुवर्ण तथा अन्न आयु को (भूः, गौः, अपि, तनुमोषतः) भूमि तथा गाय शरीर को (अश्वः, चक्षुः) अश्व आंख को (वासः, त्वचं) वस्त्र त्वचा को (घृतं, तेजः) घृत तेज को (च) और (तिलाः, प्रजाः) तिल प्रजा को जलाते हैं ॥

भाष्य-यदि मूर्ख उक्त पदार्थों का दान ले और उसका

प्रत्युपकार न करे तो उसका जीवन इस प्रकार नष्ट होता है कि सुवर्ण और अन्न का दान अज्ञानी को विषयासक्त करके उसकी आयु का नाश करने वाला होता है, क्योंकि विना परिश्रम से आया हुआ धन मूर्ख के अवश्य नाश का कारण होता है, भूमि और गोदान अज्ञानी के देह को इसलिये क्षीण करते हैं कि विना परिश्रम आये हुए उक्त दोनों के द्वारा मिथ्याहार विहार करता है और मिथ्या आहार विहार करने वाले का शरीर चिरकाल तक स्थायी नहीं रहता, एवं अश्व आंख का तथा वस्त्र त्वचा का नाश करते हैं,वृथादान से मिला हुआ घी अधिक खाने पीने से तेज का नाशक होता है और इसी प्रकार मिथ्या प्रयोग में लाये हुए तिल वीर्य्य को विगाड़ देते हैं जिससे वह सन्तान का मुख नहीं देखसक्ता, अतएव अज्ञानी को उचित है कि वह दान लेने से सदा बचा रहे ॥

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ।
अम्भस्यश्मप्लवेनेव सहतेनैवमज्जति ॥१८२॥

पदा०—(अतपाः, तु, अनधीयानः) जिसने तप नहीं तपा और न जिसने वेदादि शास्त्रों का पठन पाठन किया है ऐसा (प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः) प्रतिग्रह लेने की इच्छा वाला द्विज (अम्भसि, अश्मप्लवेन, इव) पानी में पत्थर की नौका के समान (तेनैव, सह, मज्जति) नियश्चकरके उस दानभोग के साथ ही डूब जाता है ॥

तस्मादविद्वान्बिभियाद्यस्मात्तस्मात्प्रतिग्रहात् ।
स्वल्पकेनाप्यविद्वान् हि पङ्के गौरिव सीदति ॥१८३॥

पदा०—(तस्मात्, अविद्वान्, यस्मात्, तस्मात्, प्रतिग्रहात्, बिभियात्) इसलिये अविद्वान् को उचित है कि वह ऐसे वैसे दान से सदा भयभीत रहे (हि) क्योंकि (अविद्वान्, स्वल्पकेनापि) अविद्वान् अल्प=थोड़े दान से भी (पङ्के,गौः,इव,सीदति) कीचड़ में गौ के समान फस जाता है ॥

न वार्यपि प्रयच्छेत्तु बैडालव्रतिके द्विजे ।
न वकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित् ॥१८४॥

पदा०—(धर्मवित्) धर्म का जानने वाला गृहस्थ (बैडालव्रतिके, द्विजे) बैडालवृत्ति द्विज (वकव्रतिके, विप्रे) वकवृत्ति विप्र (तु) और (नावेदविदि) वेद के न जानने वाले को (न, वार्यपि, प्रयच्छेत्) जल भी न देवे अर्थात् द्विज वा विप्र नामधारी का जल से भी सत्कार न करे ॥

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम् ।
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥ १८५ ॥

पदा०—(विधिना, अपि, अर्जितं, धनं) न्यायपूर्वक कमाया हुआ धन भी (त्रिषु, अपि, एतेषु, दत्तं) इन तीनों को दिया हुआ (हि) निश्चयकरके (दातुः) देने वाले (च) और (आदातुः) लेने वाले को (परत्र) जन्मान्तर में (अनर्थाय, भवति) अनर्थ का हेतु होता है ॥

यथाप्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन् ।
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥१८६॥

पदा०-(यथा) जैसे (औपलेन) पत्थर की (प्लवेन) नौका से (उदके) जल में (तरन्) तरता हुआ पुरुष (निमज्जति) डूब जाता है (तथा) इसी प्रकार (दातृप्रतीच्छकौ) दान देने वाला और लेने वाला दोनों (अज्ञौ) अज्ञानी (अधस्तात्,निमज्जतः) नीचे डूब जाते हैं ॥

भाष्य-उपरोक्त तीनों विप्र वा द्विज नामधारी का कदापि सत्कार न करे और न इनको कभी दान दे, इनको दान देने से दाता को इसलिये अनिष्ट होता है कि वह पाखण्डियों को देकर उनकी संख्या की वृद्धि करता है और लेने वाले को इसलिये अनर्थ होता है कि वह जगत् का कोई उपकार नहीं करसक्ता प्रत्युत व्यसनों में फसकर नष्ट भ्रष्ट होजाता है,अतएव विद्वानों का दानादि से सत्कार कर्तव्य है मूर्खों का नहीं ॥

धर्मध्वजी सदालुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः ।
वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः॥१८७॥

पदा०-(धर्मध्वजी) दिखाने के लिये धर्म का आचरण करने वाला (सदा,लुब्धः)सदा लोभी (छाद्मिकः) कपटी (लोकदम्भकः) लोगों में दम्भ फैलाने वाला (हिंस्रः) हिंसकस्वभाव वाला (सर्वाभिसन्धकः) दूसरे के गुणों को न सहारने वाला (वैडाल-व्रतिकः, ज्ञेयः) वैडालव्रतिक जानना चाहिये ॥

भाष्य-जो लोगों में प्रसिद्धि के लिये धर्म करे, आपभी कहता रहे कि मैंने अमुक धर्मकार्य्य किया और दूसरों से भी प्रख्यात कराता रहे वह "धर्मध्वजी" कहाता है, सदा लोभी= परधन की इच्छा वाला,छली, कपटी तथा लोगों में दम्भ फैलाने

वाला, प्राणियों को दुःख देने वाला, दूसरे के गुणों का सदा निन्दक और बिल्ली के समान चेष्टा वाला "बैडालव्रतिक" कहाता है॥

अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्पर।
शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः॥१८८॥

पदा०-(अधोदृष्टिः, नैष्कृतिकः) नीचे दृष्टि रखने वाला, निठुर=दया से हीन (स्वार्थसाधनतत्परः) स्वार्थसाधन में तत्पर (शठः) मूर्ख (च) और (मिथ्याविनीतः) मिथ्या विनय करने वाले (द्विजः) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को (बकव्रतचरः) "बकव्रती" कहते हैं॥

सं०-अब "बैडालव्रतिक" तथा "बकव्रती" को फल कथन करते हैं:-

ये बकव्रतिनो विप्रा येच मार्जारलिंगिनः।
ते पतन्त्यन्धतामिस्रे तेन पापेन कर्मणा॥१८९॥

पदा०-(ये) जो (विप्राः) विप्र (बकव्रतिनः, ये, च, मार्जारलिङ्गिनः) बकव्रती तथा जो बैडालव्रती वाले हैं (ते) वह (तेन, पापेन, कर्मणा) उस पाप कर्म से (पतन्त्यन्धतामिस्रे) अन्धतामिस्र=घोर अन्धकार में गिरते हैं॥

न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रतं चरेत्।
व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन्स्त्रीशूद्रदम्भनम्॥१९०॥

पदा०-(पापं, व्रतेन, प्रच्छाद्य) पाप को व्रत से ढककर

(स्त्रीशूद्रदंभनं, कुर्वन्) स्त्री तथा शूद्रों को दम्भ से बहकाता हुआ (धर्मस्य, अपदेशेन) धर्म के वहाने (पापं, कृत्वा) पाप करके (व्रतं, न, चरेत्) व्रत न करे ॥

भाष्य–इस श्लोक का भाव यह है कि 'प्राजापत्य तथा चान्द्रायणादि व्रत करने से किया हुआ पाप दूर होजाता है अर्थात् फिर उसका फल नहीं मिलता, इस प्रकार स्त्री तथा शूद्रों को मोहता हुआ पुरुष धर्म के वहाने पाप करके व्रत का आचरण न करे अर्थात् किये हुए पाप का व्रत से फल न मिलेगा यह नहीं, किन्तु किये हुए पाप का अवश्य अशुभ फल प्राप्त होगा, यह शास्त्रमर्यादा है ॥

प्रेत्येह चेदृशा विप्रा गर्ह्यन्ते ब्रह्मवादिभिः ।
छद्मनाचरितं यच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति ॥१९१॥

पदा०–(प्रेत्य) परलोक (च) तथा (इह) इस लोक में (ईदृशाः) ऐसे (विप्राः) विप्र (ब्रह्मवादिभिः, गर्ह्यन्ते) ब्रह्मवादियों से निन्दित हैं (च) और (यत्, व्रतं) जो व्रत (छद्मना, आचरितं) छल से कियाजाता है वह (रक्षांसि, गच्छति) राक्षसों को पहुंचता है अर्थात् उसका कुछ फल नहीं मिलता ॥

अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति ।
स लिङ्गिनां हरत्येनस्तिर्यग्योनौ च जायते ॥१९२॥

पदा०–(यः) जो (अलिङ्गी) अब्रह्मचारी (लिङ्गिवेषेण) ब्रह्मचारी के वेष से (वृत्तिं, उपजीवति) भिक्षा मांगकर निर्वाह करता है (सः) वह (लिङ्गिनां, एनः, हरति) ब्रह्मचारियों के

पाप को भोगता (च) और (तिर्यग्योनौ, जायते) तिर्यक्योनि=सर्पादिकों की योनि में जन्म लेता है ॥

परकीयनिपानेषु न स्नायाच्च कदाचन।
निपानकर्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते ॥१९३॥

पदा०—(परकीयनिपानेषु) दूसरे के बनाये जलाशय में (कदाचन, न, स्नायात्) कदापि स्नान न करे (तु) क्योंकि (स्नात्वा) स्नान करने से उसको (निपानकर्तुः) जलाशय बनाने वाले के (दुष्कृतांशेन, लिप्यते) बुरे अंश लग जाते हैं ॥

भाष्य—इस श्लोक का भाव यह है कि यदि किसी ने अपने निज के लिये कोई जलाशय=हौज़ आदि बना रखा है पबलिक नहीं तो उसमें स्नान न करे, क्योंकि उसमें स्नान करने से उसके शारीरिक विकार मलादि रहते हैं और उनका अन्य को भी लगजाना सम्भव है, या यों कहो कि उसका जल में आया हुआ रोगरूप दोष अन्य को लगता, और द्वेषादि होजाना भी सम्भव है, इसलिये न न्हाना ही श्रेयस्कर है ॥

यानशय्यासनान्यस्य कूपोद्यानगृहाणि च।
अदत्तान्युपभुञ्जान एनसः स्यात्तुरीयभाक् ॥१९४॥

पदा०—(यानशय्यासनानि, च, कूपोद्यानगृहाणि) सवारी, शय्या, आसन, कुआं, बगीचा और घर (अदत्तानि) विना दिये हुए (उपभुञ्जानः) भोग करने वाला (अस्य, एनसः, तुरीयभाक्, स्यात्) स्वामी के पाप के चतुर्थभाग का भोगने वाला होता है, अतएव स्वामी की विना आज्ञा उक्त पदार्थ कदापि न भोगे ॥

नदीषु देवखातेषु तड़ागेषु सरस्सु च ।
स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्त्तप्रस्रवणेष च ॥१९५॥

पदा०-(नदीषु) नदियों में (तड़ागेषु, च, सरस्सु, गर्त्तप्रस्रवणेषु, च) सरोवर, तालाव,वा झरने जो (देवखातेषु) स्वाभाविक=कुदरती वने हुए हैं उनमें (नित्यं, स्नानं, समाचरेत) नित्य स्नान किया करे, क्योंकि नित्य स्नान करने से पुरुष की दीर्घायु होती और शारीरिक बल बढ़ता है ॥

यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः ।
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन् ॥१९६॥

पदा०-(बुधः, सततं) बुद्धिमान् सर्वदा (यमान्, सेवेत) यमों का सेवन करे (नियमान्, न, नित्यं) नियमों का चाहे नित्य सेवन न करे (यमान्, अकुर्वाणः, केवलान्, नियमान्, भजन्) यमों का सेवन न करके केवल नियमों का सेवन करता हुआ पुरुष (पतति) पतित होजाता है ॥

भाष्य-"**अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्य्यापरिग्रहायमाः**" यो०२।३०=हिंसा न करना, सत्यभाषण करना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य्यपूर्वक रहना, और अपरिग्रह=आवश्यकता से अधिक पदार्थ पास न रखना, यह पांच "**यम**" और "**शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः**" यो०२।३२=शौच=पवित्र रहना, संतोष, तप, स्वाध्याय=नित्य धर्मग्रन्थों का पठनपाठन और फल की इच्छा छोड़कर केवल ईश्वर की प्रसन्नता के लिये वेदोक्त कर्मों के अनुष्ठान का नाम "ईश्वरप्रणिधान" है, यह पांच "**नियम**" हैं, बुद्धिमान् पुरुष को

उचित है कि वह निरन्तर यमों का सेवन अवश्य करे, यमों की अवश्यकर्त्तव्यता बोधन करने से यह तात्पर्य्य नहीं कि नियमों का सेवन अकर्तव्य है किन्तु यह तात्पर्य्य है कि प्रथम यमों का और पश्चात् नियमों का अनुष्ठान करे, और जो यमों का सेवन न करता हुआ केवल नियमों का ही अनुष्ठान करता है वह सिद्धि को प्राप्त नहीं होता ॥

सं०—अब भगवान् मनु लिखित यम नियमादिकों का वर्णन करते हैं :—

आनृशंस्यं क्षमासत्यमहिंसा दममस्पृहा ।
ध्यानं प्रसादोमाधुर्यमार्जवं च यमा दश ॥१९७॥
अहिंसा सत्यवचनं ब्रह्मचर्य्यमकल्पता ।
अस्तेयमिति पंचैते यमाश्चोपव्रतानि च ॥ १९८॥

पदा०—(आनृशंस्यं, क्षमा, सत्यं) किसी को दुःख न देना, सहन शील होना, सत्य बोलना (अहिंसा, दमं, अस्पृहा) हिंसा का त्याग, इन्द्रियों को जीतना, बहुत लोभ लालच में न फसना (ध्यानं, प्रसादः, माधुर्यं) चित्त को एकाग्र करना, प्रसन्न रहना, मधुर भाषण करना (च) और (आर्जवं, यमाः, दश) नम्रता, यह दश यम—और (अहिंसा, सत्यवचनं) किसी प्राणी को न दुखाना, सत्य बोलना (ब्रह्मचर्यं, अकल्पता) ब्रह्मचर्य्य, उत्साहसम्पन्न होना (च) और (अस्तेयं, इति) चोरी का त्याग (पंचैते, यमाः, च, उपव्रतानि) यह पांच यम और उपव्रत भी कहाते हैं ॥

शौचमिज्यातपोदानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहौ ।
व्रतोपवासौ मौनं च स्नानं च नियमा दश।१९९।

अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहार लाघवम् ।
अप्रमादश्च नियमाः पञ्चैवोपव्रतानि च ॥२००॥

पदा०—(शौचं, इज्या, तपः, दानं) पवित्र रहना, अग्निहोत्रादि यज्ञ करना, संयमी होना, पात्र को दान देना (स्वाध्यायोपस्थनिग्रहौ) धर्म ग्रन्थों का पठन पाठन, ब्रह्मचर्य्य (व्रतोपवासौ, मौनं, च) व्रत=नियमपालन, उपवास करना, मौन रहना (स्नानं, च, नियमा, दश) और नित्य नियमपूर्वक स्नान करना, यह दश नियम—और (अक्रोधः, गुरुशुश्रूषा) क्रोध का त्याग, गुरुसेवा (शौचमाहारलाघवम्) आभ्यन्तर तथा बाह्य शुद्धि, स्वल्पाहार (अप्रमादः, च, नियमाः) पञ्चैवोपव्रतानि) और अप्रमाद, यह पांच नियम और उपव्रत भी कहाते हैं, " उपरोक्त योगशास्त्र और मनुशास्त्र के यम नियमों का आशय एक ही है" ॥

सं०—अब ब्राह्मण के लिये त्याज्य अन्नों का वर्णन करते हैं:—

नाश्रोत्रियतते यज्ञे ग्रामयाजिकृते तथा ।
स्त्रिया क्लीवेन च हुतेभुञ्जीत ब्राह्मणः क्वचित्।२०१।

पदा०—(अश्रोत्रियतते) जिस यज्ञ में आचार्य्य वेदपाठी न हो (तथा) और (ग्रामयाजिकृते) जहां सम्पूर्ण ग्रामभर के (यज्ञे) यज्ञ में (स्त्रिया, च, क्लीवेन, हुते) स्त्री तथा नपुंसक आहुति देते हों अर्थात् अध्वर्यु वा उद्गातादि बने हों, ऐसे यज्ञ

में (ब्राह्मणः, कचित्, न, भुंजीत) ब्राह्मण कदापि भोजन न करे ॥

अश्लीकमेतत् साधूनां यत्र जुह्वत्यमी हविः ।
प्रतीपमेतद्देवानां तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ २०२ ॥

पदा०—(यत्र) जिस यज्ञ में (अमी) पूर्वोक्त होता आदि (हविः, जुह्वति) हवन करते हैं (एतत्) यह कर्म (साधूनां) सज्जनों को (अश्लीकं) बुरा लगने वाला और (देवानां, प्रतीपं) देवता=विद्वानों को अप्रिय है (तस्मात्) इसलिये (तत्) उसको (परिवर्जयेत्) त्याग दे अर्थात् उसमें भोजन न करे ॥

मत्तक्रुद्धातुराणां च न भुंजीत कदाचन ।
केशकीटावपन्नं च पादस्पृष्टं च कामतः ॥ २०३ ॥

पदा०—(मत्तक्रुद्धातुराणां) उन्मत्त, क्रोधी, रोगी, इनका (च) और (केशकीटावपन्नं) बाल तथा कीड़ों से मिला हुआ (च) और (कामतः, पादस्पृष्टं) जानकर पैर लगाया हुआ अन्न (कदाचन, न, भुंजीत) कभी न खाय ॥

भ्रूणघ्नावेक्षितञ्चैव संस्पृष्टञ्चाप्युदक्यया ।
पतत्रिणावलीढञ्च शुना संस्पृष्टमेव च ॥ २०४ ॥

पदा०—(भ्रूणघ्नावेक्षितं) भ्रूण हत्यारों का देखा हुआ (उदक्यया, संस्पृष्टं) रजस्वला का छुआ हुआ (च) तथा (पतत्रिणावलीढं) कौवा आदि पक्षियों का चाटा हुआ (च) और (शुना,संस्पृष्टं,एव) कुत्ते से छुए हुए अन्न का भी भोजन न करे॥

गवा चान्नमुपघ्रातं घुष्टान्नस्य विशेषतः ।
गणान्नं गणिकान्नं च विदुषां च जुगुप्सितम् ।२०५।

पदा०-(गवा, उपघ्रातं, अन्नं) गौ का सूंघा हुआ अन्न (विशेषतः, घुष्टान्नस्य) वहुत घोटा हुआ (गणान्नं) समुदाय के अन्न को (गणिकान्नं) वेश्या के अन्न को (च) और (विदुषां, जुगुप्सितं) विद्वानों से निन्दित अन्न को कदापि न खाय ॥

स्तेनगायनयोश्चान्नं तक्ष्णोवार्धुषिकस्य च ।
दीक्षितस्य कदर्यस्य वद्धस्य निगड़स्य च ॥२०६॥

पदा०-(स्तेन, गायनयोः, तक्ष्णः, वार्धुषिकस्य) चोर, गवैया, वढ़ई, व्याज से उपजीविका करने वाला (दीक्षितस्य, कदर्यस्य, वद्धस्य, निगड़स्य, च) यज्ञ में दीक्षा को प्राप्त हुए यजमान का, कृपण का और हतकड़ी आदि से वन्धे हुए कैदी का (अन्नं) अन्न न खाय ॥

अभिशस्तस्य षण्ढस्य पुंश्चल्यादाम्भिकस्य च ।
शुक्तं पर्युषितञ्चैव शूद्रस्योच्छिष्टमेव च ॥२०७॥

पदा०-(अभिशस्तस्य) महापातकादि करने से निन्दित पुरुष का (षण्ढस्य) नपुंसक का (पुंश्चल्याः) व्यभिचारिणी स्त्री का (दाम्भिकस्य) दंभी का (शुक्तं, पर्युषितञ्चैव) रखे रहने से खट्टा, सड़ा, वासा (च) और (शूद्रस्य) शूद्र का (उच्छिष्टं, एव) उच्छिष्ट=भोजन करके वचा हुआ अन्न भी कदापि न खाय॥

चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्योच्छिष्टभोजिनः ।
उग्रान्नंसूतिकान्नं च पर्याचान्तमनिर्दशम् ॥२०८॥

पदा०-(चिकित्सकस्य) वैद्य का (मृगयोः) व्याध=शिकारी का (क्रूरस्य) क्रूर का (उच्छिष्टभोजिनः) उच्छिष्ट खाने वाले का (उग्रान्नं, सूतिकान्नं च) एक के अपमान में दूसरा भोजन करे वह अन्न और सूतक निवृत्त न हुए का अन्न ब्राह्मण भोजन न करे ॥

अनर्चितं वृथामांसमवीरायाश्च योषितः ।
द्विषदन्नं नगर्य्यन्नं कदर्यान्नमवक्षुतम् ॥२०९॥

पदा०-(अनर्चितं) विना सत्कार के दिया हुआ (वृथामांसं) वृथा अभक्ष्य अन्न, मांस (अवीरायाः) जिसके पति तथा पुत्र न हो ऐसी (योषितः) स्त्री का अन्न (द्विषदन्नं) शत्रु का अन्न (नगर्यन्नं) नगर के स्वामी का (कदर्यान्नं) कदर्य=कृपण का (च) और (अवक्षुतं) जिस पर छींक दिया हो ऐसा अन्न कदापि भोजन न करे ॥

पिशुनानृतिनोश्चान्नं क्रतुविक्रयिणस्तथा ।
शैलूषतुन्नवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च ॥ २१० ॥

पदा०-(पिशुनानृतिनोः, च, अन्नं) पीछे निन्दा करने वाले तथा झूठ बोलने वाले का अन्न (क्रतुविक्रयिणः, तथा) यज्ञ बेचने वाले और (शैलूषतुन्नवायान्नं) नट वा दरज़ी का अन्न भोजन न करे (च) और (कृतघ्नस्यान्नमेव) कृतघ्न=दूसरे के उपकार को न मानने वाले का भी अन्न न खाय ॥

कर्मारस्यनिषादस्य रंगावतारकस्य च ।
सुवर्णकर्तुर्वैणस्य शस्त्रविक्रयिणस्तथा ॥ २११ ॥

पदा०-(कर्मारस्य, निषादस्य) लोहार, निषाद (रङ्गाव-

तारकस्य) तमाशा करने वाले (सुवर्णकर्तुः) सुनार (वैणस्य) बांस का काम बनाने वाले (च) और (शस्त्रविक्रयिणः) शस्त्र बेचने वाले का अन्न न खाय ॥

श्ववतां शौण्डिकानां च चैलनिर्णेजकस्य च ।
रञ्जकस्य नृशंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे ॥२१२॥

पदा०-(श्ववतां) हिंसा के निमित्त कुत्ते पालने वाले (शौण्डिकानां) कलाल (रञ्जकस्य) कपड़ा रङ्गने वाला (चैलनिर्णेजकस्य) धोबी (नृशंसस्य) निर्दयी (च) और (यस्य, गृहे, उपपतिः) जिसके घर में जार रहता हो, उसके अन्न को भोजन न करे ॥

मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्रीजितानां च सर्वशः ।
अनिर्दशं च प्रेतान्नमतुष्टिकरमेव च ॥२१३॥

पदा०-(ये) जो (उपपतिं, मृष्यन्ति) स्त्री के जार को जानकर सहन करते हैं उनका (च) और (सर्वशः, स्त्रीजितानां) सब प्रकार स्त्री के अधीन हैं उनका (च) तथा (अनिर्दशं) दश दिन से पूर्व (प्रेतान्नं) सूतकान्न को (च) और (अतुष्टिकरं,एव) तृप्ति न करने वाले अन्न का भी द्विज सेवन न करे ॥

सं०-अब उक्त निषिद्ध अन्न खाने वालों के लिये फल कथन करते हैं :—

राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ।
आयुःसुवर्णकारान्नं यशश्चर्मावकर्त्तिनः ॥२१४॥

पदा०-(राजान्नं,तेजः) राजा का तेज को (शूद्रान्नं,ब्रह्मवर्चसं)

शूद्र का अन्न वेदाध्ययनादि से उत्पन्न हुई कान्ति को (सुवर्णकारान्नं, आयुः) सुनार का अन्न आयु को (च) और (चर्मावकर्त्तिनः, यशः) चमार का अन्न यश को लेजाता है ॥

कारुकान्नंप्रजांहन्ति बलं निर्णेजकस्य च ।
गणान्नं गणिकान्नं च लोकेभ्यःपरिकृन्तन्ति ॥२१५

पदा०-(कारुकान्नं, प्रजां, हन्ति) बढ़ई का अन्न सन्तति का नाश करता (च) तथा (निर्णेजकस्य, बलं) धोबी का अन्न बल को हरता (गणान्नं, च, गणिकान्नं) समुदाय=पञ्चायत और गणिका=वेश्या का अन्न (लोकेभ्यः, परिकृन्तति) लोकों का नाश करता है अर्थात् उच्च सुख की अवस्था से गिरा देता है "इसलिये इनके अन्न का सेवन न करे" ॥

पूयं चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्यास्त्वन्नमिन्द्रियम् ।
विष्ठा वार्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयिणो मलम्॥२१६॥

पदा०-(चिकित्सकस्य, अन्नं, पूयं) वैद्य का अन्न पीप के समान (तु) और (पुंश्चल्याः, अन्नं, इन्द्रियं) वेश्या का अन्न इन्द्रिय सम (वार्धुषिकस्य, अन्नं, विष्ठा) व्याज से वृद्धि को प्राप्त अर्थात् सूद लेने वाले का अन्न विष्ठा और (शस्त्रविक्रयिणः,मलं) शस्त्र वेचने वाले का अन्न शरीर के मल समान है ॥

य एतेऽन्येत्वभोज्यान्नाः क्रमशः परिकीर्त्तिताः ।
तेषां त्वगस्थिरोमाणि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥२१७॥

पदा०-(य, एते) जो ये (क्रमशः) क्रम से (अन्ये, अभोज्यान्नाः) भोजन करने के अयोग्य और अन्न (परिकीर्त्तिताः) कथन किये हैं (तेषां) उनको (मनीषिणः) मननशील पुरुष

(त्वगस्थिरोमाणि, वदन्ति) त्वचा, अस्थि तथा रोम के समान अभक्ष्य कहते हैं ॥

भुक्त्वातोऽन्यतमस्यान्नममत्या क्षपणं त्र्यहम् ।
मत्या भुक्त्वाचरेत्कृच्छ्रं रेतोविण्मूत्रमेव च ॥२१८॥

पदा०—(अतः) इसलिये (अन्यतमस्य, अन्नं) इनमें से किसी के अन्न को (अमत्या, भुक्त्वा) बिना जाने भक्षण करने से (त्र्यहं, क्षपणं) तीन दिन उपवासरूप प्रायश्चित्त करे और (मत्या, भुक्त्वा) जानकर खाने से (कृच्छ्रं,आचरेत्) कृच्छ्रव्रत करे (च) और इसी प्रकार बिना जाने (रेतः, विण्मूत्रं) वीर्य, मल, मूत्र के भक्षण करने में भी कृच्छ्रव्रत=सात दिन का व्रत करे, जैसाकि ११वें अध्याय में लिखा है ॥

नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः ।
आददीताममेवास्मादवृत्तावेकरात्रिकम् ॥२१९॥

पदा०—(विद्वान्, द्विजः) विद्वान् ब्राह्मण (अश्राद्धिनः) अश्रद्धालु (शूद्रस्य) शूद्र का (पक्वान्नं,न, अद्यात्) पक्वान्न भोजन न करे (अवृत्तौ) यदि और से अन्न न मिले तो (एकरात्रिकं) एक रात्रि के निर्वाहार्थ (अस्मात्, एव) शूद्र से ही (आमं, आददीत)कच्चा अन्न लेलेवे, अर्थात् श्रद्धालु शूद्र का पक्वान्न ग्राह्य और अश्रद्धालु का अग्राह्य है ॥

श्रोत्रियस्यकदर्यस्यवदान्यस्य च वार्धुषेः ।
मीमांसित्वोभयं देवाः सममन्नमकल्पयन् ॥२२०॥

पदा०—(कदर्यस्य, श्रोत्रियस्य) कृपण, श्रोत्रिय=वेदपाठी (च) और (वार्धुषेः वदान्यस्य) वृद्धि से जीविका करने वाले

(उभयं, अन्नं) इन दोनों के अन्न को (मीमांसित्वा) विचारकर (देवाः) विद्वान् लोग (समं, अकल्पयन्) समान कहते थे॥

तान्प्रजापतिराहैत्य माकृध्वं विषमं समम् ।
श्रद्धापूतं वदान्यस्य हतमश्रद्धयेतरत् ॥ २२१ ॥

पदा०-(तान्, एत्य, प्रजापतिः, आह, यूयं) उन देवताओं के निकट आकर ब्रह्मा बोले कि तुम लोग(विषमं, समं, माकृध्वं) विषम को सम मत करो (वदान्यस्य) बुद्धिजीवी दाता का अन्न (श्रद्धापूतं) श्रद्धापूर्वक दिया हुआ पवित्र होता है और (इतरत्) कृपण श्रोत्रिय का अन्न (अश्रद्धया) अश्रद्धा से दिया हुआ (हतं) दूषित होता है, इसलिये दोनों सम नहीं ॥

श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।
श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः ॥२२२॥

पदा०-(श्रद्धया, इष्टं) श्रद्धापूर्वक सदा यज्ञादि करे (च) और (अतन्द्रितः) आलस्यरहित होकर (पूर्तं, नित्यं, कुर्यात्) कूपतड़ागादिकों को सर्वदा बनावे (हि) क्योंकि (स्वागतैः, धनैः) न्यायपूर्वक संचय किये हुए धनों से (श्रद्धाकृते) श्रद्धापूर्वक किये हुए (ते) उक्त कर्म (अक्षये, भवतः) अक्षय होते हैं अर्थात् मुक्ति फल को देते हैं ॥

सं०-अब दान का महात्म्य कथन करते हैं :—

दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम् ।
परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्य शक्तितः ॥२२३॥

पदा०-(परितुष्टेन, भावेन) प्रसन्न मन से (पात्रं, आसाद्य) योग्य पात्र को प्राप्त होकर (शक्तितः) यथाशक्ति (ऐष्टिक-

पौर्तिकं, दानधर्मं, नित्यं, निषेवेत) यज्ञादि, कूपतड़ागादि तथा दान धर्मों को सदा करे ॥

यत्किंचिदपिदातव्यं याचितेनानसूयया ।
उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः ॥ २२४ ॥

पदा०—(अनसूयया, याचितेन, यत्, किंचित्) ईर्षा से रहित होकर जो अपने से कुछ मांगे तो (दातव्यं, अपि) उस को अवश्य ही देना चाहिये (हि) क्योंकि दाता को (तत्पात्रं) वह पात्र भी(उत्पत्स्यते) प्राप्त होजाता है (यत्) जो (सर्वतः,तारयति) सब पापों से तार देता है अर्थात् उसका उद्धार करदेता है ॥

भाष्य—ईर्षा से रहित=कोई दोष न लगाकर जो अपने से कुछ मांगे उसको यथाशक्ति अवश्य देना चाहिये अर्थात् दान करने का स्वभाव प्रत्येक पुरुष का अवश्य हो, जिस पुरुष का दान करने का स्वभाव है उसको कभी न कभी कोई ऐसा अधिकारी सुपात्र मिल जाता है जिसको देने तथा सत्संग करने से दाता का जीवन पवित्र होजाता है ॥

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ।
तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ॥ २२५ ॥

पदा०—(वारिदः, तृप्तिं) जल का दान देने वाला तृप्ति को (अन्नदः, अक्षय्यं, सुखं) अन्न का देने वाला अक्षय्य=नाश न होने वाले सुख को(तिलप्रदः,इष्टां,प्रजां) तिलों का देने वाला यथेच्छित सन्तति (च) और (दीपदः, उत्तमं, चक्षुः) दीपक देने वाला उत्तम चक्षुओं को (आप्नोति) प्राप्त होता है ॥

भूमिदोभूमिमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ।
गृहदोग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम्॥२२६॥

पदा०-(भूमिदः, भूमिं) भूमि का दान देने वाला भूमि (हिरण्यदः, दीर्घं, आयुः) सुवर्ण का देने वाला दीर्घ=बड़ी आयु (गृहदः, अग्र्याणि, वेश्मानि) घर का दान करने वाला उत्तम महल (रूप्यदः, उत्तमं, रूपं) और चांदी देने वाला उत्तम रूप को (आप्नोति) प्राप्त होता है ॥

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ।
अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम् ।२२७।

पदा०-(वासोदः, चन्द्रसालोक्यं) वस्त्र देने वाला चन्द्र समान उज्ज्वल शरीर पाता है (अश्वदः, अश्विसालोक्यं) घोड़े देने वाला अश्व वालों के स्थान को प्राप्त होता है (अनडुहः, पुष्टां, श्रियं) बैल का देने वाला बहुत सम्पत्ति (च) और (गोदः, ब्रध्नस्य, विष्टपं) गोदान करने वाला सूर्य्य समान तेज को प्राप्त होता है ॥

यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः ।
धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदोब्रह्मसार्ष्टिताम्।२२८।

पदा०-(यानशय्याप्रदः, भार्यां) सवारी तथा शय्या का देने वाला भार्या (अभयप्रदः, ऐश्वर्यं) अभय का देने वाला राज्य (धान्यदः, शाश्वतं, सौख्यं) अन्न का देने वाला निरन्तर सुख (च) और (ब्रह्मदः, ब्रह्मसार्ष्टितां) वेद का दान करने वाला ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकांचनसर्पिषाम् ॥ २२९ ॥

पदा०—(वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकांचनसर्पिषाम्) जल, अन्न, गौ, भूमि, वस्त्र, तिल, सुवर्ण तथा घृत (एव) निश्चय करके (सर्वेषां, दानानां) इन सब दानों से (ब्रह्मदानं, विशिष्यते) वेद का पढ़ाना रूप दान विशेष फलदायक है ॥

येन येन तु भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति ।
तत्तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः ॥२३०॥

पदा०—(येन, येन, भावेन) पुरुष जिस २ भाव से (यत्, यत्, दानं, प्रयच्छति) जो २ दान देता है (तत्, तत्, तेन, एव, भावेन) निश्चयकरके उसी २ भाव से दिये हुए का फल (प्रतिपूजितः, प्राप्नोति) सत्कारपूर्वक पाता है ॥

योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददात्यर्चितमेव च ।
तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये ॥२३१॥

पदा०—(यः) जो (अर्चितं, प्रतिगृह्णाति) सत्कारपूर्वक दान लेता है (च) और जो (अर्चितं, ददाति) सत्कारपूर्वक देता है (तौ, उभौ, स्वर्गं, गच्छतः) वह दोनों स्वर्ग=उत्तम गति को प्राप्त होते हैं (तु) और (विपर्यये) विना सत्कार देने वाला तथा लेने वाला दोनों (नरकं) नरक=दुर्गति को प्राप्त होते हैं ॥

न विस्मयेत तपसा वदेदिष्ट्वा च नानृतम् ।
नार्तोऽप्यपवदेद्विप्रान्न दत्वा परिकीर्तयेत् ॥२३२॥

पदा०—(तपसा, न, विस्मयेत) तप करके आश्चर्य्य न करे

कि मैंने बड़ा तप किया है (च) और (इष्ट्वा,अनृतं,न, वदेत्) यज्ञ करके असत्य न बोले अर्थात् गप्प न मारे (आर्तः,अपि) पीड़ित हुआ भी (विप्रान्, न, अपवदेत्) ब्राह्मणों की निन्दा न करे, और (दत्वा, न, परिकीर्तयेत्) दान देकर चारो ओर लोगों में कीर्त्तन न करता फिरे, क्योंकि :—

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् ।
आयुर्विप्रापवादेन दानं च परिकीर्त्तनात् ।२३३।

पदा०—(अनृतेन, यज्ञः, क्षरति) असत्यभाषण करने से यज्ञ का फल नष्ट होजाता है (विस्मयात्, तपः, क्षरति) विस्मय करने से तप (विप्रापवादेन, आयुः) ब्राह्मणों की निन्दा से आयु (च) और (परिकीर्त्तनात्, दानं) चारो ओर कहने से दान का फल जाता रहता है ॥

पात्रभूतो हि यो विप्रः प्रतिगृह्य प्रतिग्रहम् ।
असत्सु विनियुंजीत तस्मै देयं न किंचन॥२३४॥
संचयं कुरुते यस्तु प्रतिगृह्य समन्ततः ।
धर्मार्थं नोपयुङ्क्ते च न तं तस्करमर्चयेत् ॥२३५॥

पदा०—(हि) निश्चयकरके (यः, विप्रः) जो ब्राह्मण (पात्रभूतः, प्रतिग्रहं, प्रतिगृह्य) दानपात्र बना हुआ प्रतिग्रह=दान लेकर (असत्सु, विनियुंजीत) निकृष्ट मनुष्यों को देवे वा बुरे कामों में लगाता हो तो (तस्मै, देयं, न, किञ्चन) उसको कभी दान न दे—और (यः) जो (समन्ततः, प्रतिगृह्य, सञ्चयं, कुरुते) चारो ओर से दान लेकर धन सञ्चय करे (धर्मार्थं, च,

(उपयुङ्क्ते) और धर्म के कामों में कुछ न लगावे (तं) उस (तस्करं, न, अर्चयेत्) तस्कर का सत्कार कदापि न करे ॥

सं०—अब धर्म के संचय करने का उपाय तथा उसकी महिमा वर्णन करते हैं :—

धर्मं शनैः संचिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः ।
परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ २३६ ॥

पदा०—(परलोकसहायार्थं) परलोक में सहायक होने के लिये (सर्वभूतानि, अपीडयन्) सम्पूर्ण जीवों को पीड़ा न देता हुआ (धर्मं, शनैः, संचिनुयात्) धीरे २ धर्म का संचय करे (वल्मीकं, इव, पुत्तिकाः) जैसे डीमक बांबी को बनाती है ॥

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारं न ज्ञातिधर्मस्तिष्ठति केवलः ॥२३७॥

पदा०—(हि) निश्चयकरके (अमुत्र) परलोक में (पिता, माता, सहायार्थं, न, तिष्ठतः) पिता, माता सहायक नहीं होते (न, पुत्रदारं, न, च, ज्ञातिः) न पुत्र, न स्त्री और न अन्य सम्बन्धि सहायक होते हैं (धर्मः, तिष्ठति, केवलः) वहां केवल एक धर्म ही सहायक होता है ॥

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुंक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥२३८॥

पदा०—(जन्तुः) जीव (एकः, एव) अकेला ही (प्रजायते) उत्पन्न होता और (एकः, एव, प्रलीयते) अकेला ही मरता है (एकः) अकेला ही (सुकृतं) पुण्यफल (च) और (एकः, एव) अकेला ही (दुष्कृतं) पाप के फल को (अनुभुंक्ते) भोगता है ॥

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥२३९॥

पदा०-(कष्ठलोष्टसमं) लकड़ी तथा मिट्टी के ढेले समान (मृतं, शरीरं,क्षितौ, उत्सृज्य) मृतक शरीर को भूमि पर छोड़कर (बान्धवाः, विमुखाः, यान्ति) बान्धव विमुख=पीछे मुख मोड़कर लौट आते हैं अर्थात् उसके साथ कोई नहीं जाता (धर्मः, तं, अनुगच्छति) केवल धर्म उसके पीछे जाता है ॥

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः ।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥२४०॥

पदा०-(तस्मात्) इस कारण (धर्मं, सहायार्थं) अपनी सहायता के लिये धर्म को (नित्यं, शनैः, संचिनुयात्) सर्वदा धीरे २ संचित करे (हि , क्योंकि (धर्मेण, सहायेन) धर्म ही की सहायता से (तमः, तरति, दुस्तरं) पुरुष अतिकठिन दुःख से तरता है ॥

धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम् ।
परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम् ॥२४१॥

पदा०-(तपसा, हतकिल्बिषं) तप से नष्ट होगया है पाप जिसका ऐसे (धर्मप्रधानं) धर्मपरायण (भास्वन्तं) तेजस्वी (खशरीरिणं) मुक्तस्वरूप (पुरुषं) पुरुष को धर्म (आशु) शीघ्र ही (परलोकं) मोक्षधाम को (नयति) लेजाता है ॥

सं०-अब विवाह आदि सम्बन्धों का वर्णन करते हैं कि:—

उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं सम्बन्धानाचरेत्सह ।
निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत् ॥२४२॥

पदा०-(कुलं, उत्कर्षं, निनीषुः) अपने कुल को उन्नत करने की इच्छा वाला पुरुष (नित्यं) सर्वदा (उत्तमैः, उत्तमैः, सह, सम्बन्धान्) उत्तम २ पुरुषों के साथ सम्बन्ध करे और (अधमान्, अधमान्) अधम=नीचकुल वाले पुरुषों के साथ सम्बन्ध (त्यजेत्, त्यागदे) अर्थात् कभी न करे, क्योंकि :—

उत्तमानुत्तमान्गच्छन्हीनान्हीनांश्चवर्जयन् ।
ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ॥२४३॥

पदा०-(उत्तमान्, उत्तमान्, गच्छन्) उत्तम २ पुरुषों के साथ सम्बन्ध करने (च) और (हीनान्, हीनान्, वर्जयन्) हीन=नीच पुरुषों के त्याग से (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (श्रेष्ठतां, एति) श्रेष्ठता को प्राप्त होता है और (प्रत्यवायेन) नीच सम्बन्धों से (शूद्रतां) नीचता को प्राप्त होता है ॥

दृढ़कारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन् ।
अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथा व्रतः॥२४४॥

पदा०-(दृढ़कारी, मृदुः, दान्तः) दृढ़वृत्ति वाला, कोमल स्वभाव वाला, सहनशील (क्रूराचारैः, असंवसन्) क्रूर=खोटे आचरण करने वालों का साथ छोड़ने वाला (अहिंस्रः) हिंसा न करने वाला (तथा) तथा (व्रतः) श्रेष्ठ आचरणों वाला पुरुष (दमदानाभ्यां) इन्द्रियों के दमन और दान से (स्वर्गं, जयेत्) स्वर्ग को जीतता=सद्गति को प्राप्त होता है ॥

यादृशोऽस्य भवेदात्मा यादृशं च चिकीर्षितम्।
यथा चोपचरेदेनं तथात्मानं निवेदयेत् ॥२४५॥

पदा०—(अस्य, यादृशः, आत्मा) इसका जैसा आत्मा हो (च) तथा (यादृशं, चिकीर्षितम्) जो इसको कर्तव्य हो (च) और (यथा) जैसे (एनं) इसकी (उपचरेत्) कोई सेवा करे (तथा) उसी प्रकार (आत्मानं, निवेदयेत्) अपने को निवेदन करदे ॥

योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते ।
स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः॥२४६॥

पदा०—(यः) जो (अन्यथा, सन्तं) है कुछ और (अन्यथा, सत्सु, भाषते, आत्मानं) और अपने आत्मा से विरुद्ध कुछ और कहता है (सः) वह (आत्मापहारकः) अपनी आत्मा का हनन करने वाला (स्तेनः) चोर (लोके) इस लोक में (पापकृत्तमः) महापापी होता है ॥

वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः।
तांस्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥२४७॥

पदा०—(सर्वे, अर्थाः, वाचि, नियताः) सम्पूर्ण अर्थ वाणी में नियत=बंधे हैं (वाङ्मूला, वाग्, विनिःसृताः) सब का मूल वाणी ही है और सब वाणी ही से निकले हैं (तान्, वाचः) उस वाणी को (यः) जो पुरुष (स्तेनयेत्) चुराता है (सः) वह (नरः) मनुष्य (सर्वस्तेयकृत्) सब चोरियों का करने वाला है ॥

भाष्य—सत्पुरुषों का यह लक्षण है कि जैसा उनकी आत्मा में हो वैसा ही बाहर प्रकट करें और उसी के अनुकूल अपने आचरण बनावें, जैसाकि अन्यत्र भी कहा है कि " **मनस्येकं**

वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् "=जो मन में हो वही वाणी से कहे और जो वाणी से कहे वैसा ही कर्तव्य में लावे, यह महात्माओं का चिन्ह है, और जो कहता कुछ और करता कुछ है वह निन्दित तथा दुरात्मा काहाता है,जैसाकि शास्त्र में कहा भी है कि " मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम्"=जिसके मन में कुछ, वाणी से कुछ और जिसका कर्तव्य कुछ और ही है वह दुरात्मा=अपनी आत्मा का हनन करने वाला चोर है, और ऐसा पुरुष लोक में पाप का संचय करने वाला महापापी कहाता है, क्योंकि सम्पूर्ण अर्थों की सिद्धि वाणी से होती है, जिस पुरुष की वाणी निष्फल है, या यों कहो कि जो अपनी वाणी से कहे हुए के अनुकूल आचरण नहीं करता वह अपनी वाणी का चोर होने से सब चोरियों का करने वाला पापी इस संसार में सदा निन्दा को प्राप्त होता है, अतएव पुरुष का कर्तव्य है कि वह महात्मा बने अपनी वाणी को कभी निष्फल न जाने दे, ऐसा पुरुष सिद्धि को प्राप्त हो कर उच्च बनता है ॥

सं०—अब ब्राह्मण का अन्तिम कर्तव्य कथन करते हैं :—

महर्षिपितृदेवानांगत्वाऽऽनृण्यं यथाविधि ।
पुत्रे सर्वं समासज्य वसेन्माध्यस्थमाश्रितः ॥२४८॥

पदा०—(महर्षिपितृदेवानां, आनृण्यं) ऋषि, पितर तथा देवताओं के ऋण से उऋण होकर और (यथाविधि, पुत्रे, सर्वं, समासज्य) यथाविधि पुत्र को कुटुम्ब का सब भार देकर (माध्यस्थं, आश्रितः, वसेत्) आप समदर्शी होकर रहे ॥

एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनः ।
एकाकी चिन्तयानो हि परंश्रेयोऽधिगच्छति॥२४९॥

पदा०—(विविक्ते, एकाकी, हितमात्मानः, नित्यं, चिन्तयेत्) निर्जन स्थान में अकेला सदा आत्मा का हित चिन्तन करे (हि) क्योंकि (एकाकी, चिन्तयानः) अकेला चिन्तन करता हुआ ही (परंश्रेयः,अधिगच्छति) मुक्ति को प्राप्त होता है॥

भाष्य—वेदाध्ययनरूप स्वाध्याय से " ऋषिऋण " अग्निहोत्रादि देवयज्ञ से " देवऋण " और गुणकर्मानुकूल सवर्णा स्त्री से विवाह कर सन्तानोत्पत्ति करने से " पितृऋण " को चुकाकर शास्त्र में विधान किये अनुसार उऋण हो घर के प्रबन्ध का सब भार पुत्र को सौंपकर आप " माध्यस्थमाश्रित "=काम, क्रोध, लोभ, मोह की मध्य दशा का आश्रय लेकर अर्थात् कामादिकों में आसक्ति, ममता तथा अहंकार को छोड़कर सम दशा में रहे, या यों कहो कि हानि,लाभ,मानापमान को सहारता तथा निर्द्वन्द्व सब का भला सोचता हुआ समदर्शी हो, और पवित्र एकान्तस्थान में अकेला बैठकर नित्य अपना आत्महित चिन्तन किया करे, जैसाकि पीछे लिख आये हैं कि " जीव अकेला ही उत्पन्न हुआ, अकेला ही मरेगा, बीच में स्त्री पुत्रादिकों का सम्बन्ध होगया परन्तु कोई साथ जाने वाला नहीं, अपने २ किये शुभाशुभ कर्मों का फल सब ने भोगना है " इत्यादि , एकान्त में चित्त को स्थिर कर चिन्तन किया करे, और परमात्मा की आज्ञा का पालन तथा समीप होने का उपाय भी सोचे, इस प्रकार अकेला बैठकर चिन्तन करने से यह बन्धनरूप संग छोड़ पुरुष परम कल्याण को प्राप्त होता है ॥

एषोदिता गृहस्थस्य वृत्तिर्विप्रस्य शाश्वती ।
स्नातकव्रतकल्पश्च सत्ववृद्धिकरः शुभः ॥२५०॥

पदा०-(एषा, गृहस्थस्य, विप्रस्य) यह गृहस्थ ब्राह्मण की (शाश्वती, वृत्तिः) सनातन वृत्ति=व्यवहार (च) और (सत्ववृद्धि-करः) सत्वगुण को बढ़ाने वाला (शुभः) शुभ (स्नातकव्रतकल्पः) स्नातक के व्रत का विधान (उदिता) कहा ॥

अनेन विप्रो वृत्तेन वर्तयन्वेदशास्त्रवित् ।
व्यपेतकल्मषो नित्यं ब्रह्मलोके महीयते ॥२५१॥

पदा०-(वेदशास्त्रवित, विप्रः) वेदशास्त्र के जानने वाला ब्राह्मण (अनेन, वृत्तेन) उक्त शास्त्रोक्त आचार से (नित्यं,वर्तयन्) सदा कर्मानुष्ठान करता हुआ (व्यपेतकल्मषः) पापों से रहित होकर (ब्रह्मलोके, महीयते) ब्रह्मलोक=ब्रह्म के समीप प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है ॥

इति मानवार्य्यभाष्ये
चतुर्थोऽध्यायः
समाप्तः

ओ३म्

अथ पञ्चमोऽध्यायः

सं०-अब यह वर्णन करते हैं कि किन कारणों से मृत्यु ब्राह्मण पर आक्रमण करता है:—

श्रुत्वैतानृषयोधर्मान्स्नातकस्य यथोदितान् ।
इदमूचुर्महात्मानमनलप्रभवं मनुम् ॥१॥
एवं यथोक्तं विप्राणां स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ।
कथं मृत्युः प्रभवति वेदशास्त्रविदां प्रभो ॥२॥

पदा०-(ऋषयः, स्नातकस्य यथोदितान्, एतान्) ऋषि लोग स्नातक के यथोक्त (धर्मान्,श्रुत्वा) धर्मों को सुनकर (अनल-प्रभवं) अग्नि के समान तेजस्वी (महात्मानं, मनुं) महात्मा मनु से (इदं, ऊचुः) यह वचन बोले कि हे प्रभो ! (विप्राणां,स्वधर्मं, अनुष्ठितां) जो ब्राह्मण अपने धर्म का अनुष्ठान करते और (वेदशास्त्रविदां) वेदशास्त्र के जानने वाले हैं उनको (एवं) इस प्रकार (यथोक्तं) यथोक्त करते हुए (मृत्युः, कथं, प्रभवति) मृत्यु कैसे मारता है ? ॥

भाष्य-पूर्व चतुर्थाध्याय में वर्णन किये हुए स्नातक गृहस्थ के नियमों तथा धर्मों को सुनकर भगवान् मनु से ऋषियों ने पूछा कि हे प्रभो ! आपके कथनानुसार अपने धर्म का सेवन करने तथा वेदशास्त्र के जानने वाले विद्वान् गृहस्थ ब्राह्मणादिकों

को मृत्यु किस प्रकार दबा लेता है अर्थात् मनुधर्मशास्त्र के अनुसार आचरण करने वाले पुरुष को मृत्यु कैसे मार लेजाता है ? ॥

सं०—अब भगवान् मनु ऋषियों के उक्त कथन का उत्तर देते हैं:—

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥३॥

पदा०—(वेदानां,अनभ्यासेन) वेदों का अनभ्यास (आचारस्य, वर्जनात्) सदाचार के त्याग (आलस्यात्) सत्कर्मों में आलस्य करने (च) और (अन्नदोषात्) अभक्ष्य पदार्थों के दोष से (मृत्युः) मृत्यु (विप्रान्) ब्राह्मणों को (जिघांसति) मारना चाहता है ॥

भाष्य—मनुजी ने उन ऋषियों को यह उत्तर दिया कि वेदों का पठन पाठन न करने, आचार के छोड़देने, सत्कर्मों के अनुष्ठान में आलस्य करने और अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण करने से ब्राह्मणों की अकाल मृत्यु होती है, और जो इनका यथाविधि अनुष्ठान करते हैं वह पूर्ण आयु को प्राप्त होकर १०० वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहते हैं ॥

सं०—अब अभक्ष्य पदार्थों का कथन करते हैं :—

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च ।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवानि च ॥४॥

पदा०—(लशुनं) लहसन (गृञ्जनं) गाजर (पलाण्डुं) प्याज (कवकानि) छत्राक (च) और जो (अमेध्यप्रभवानि) मैले में उत्पन्न हों वह सब पदार्थ (द्विजातीनां,अभक्ष्याणि) द्विजातियों को अभक्ष्य हैं ॥

लोहितान्वृक्षनिर्यासान्वृश्चनप्रभवांस्तथा ।
शेलुं गव्यं च पेयूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥५॥

पदा०-(लोहितान्) लालगोंद (तथा) तथा (वृश्चनप्रभवान्) वृक्षों के छेदन से (वृक्षनिर्यासान्) निकाला हुआ रस (शेलुं) लभेड़ा (च) और (गव्यं, पेयूषं) नवीन ब्याई हुई गाय का दूध (प्रयत्नेन, विवर्जयेत्) यत्न से त्यागदे ॥

अनिर्दशाया गोः क्षीरमौष्ट्रमैकशफं तथा ।
आविकं सन्धिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः ॥६॥

पदा०-(अनिर्दशायाः) ब्याने से दश दिन तक (गोः,क्षीरं) गौ का दूध (औष्ट्रं) ऊंटनी का दूध (ऐकशफं) एक खुर वाली घोड़ी आदि का दूध (आविकं) भेड़ का दूध(सन्धिनीक्षीरं) ऋतुमती (तथा) तथा (विवत्सायाः) जिसका बच्चा मरगया हो उस (गोः, पयः) गौ का दूध न पीवे ॥

आरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां माहिषं विना ।
स्त्रीक्षीरं चैव वर्ज्यानि सर्वशुक्तानि चैव हि ॥७॥

पदा०-(माहिषं, विना) भैंस को छोड़कर (सर्वेषां, च) अन्य सब (आरण्यानां, मृगाणां) वन के मृगों (च) और (स्त्रीक्षीरं) स्त्री का दूध (च) तथा (सर्वशुक्तानि) रखने से खट्टी हुई वस्तु, यह सब (हि) निश्चयकरके (वर्ज्यानि) न खावे पीवे ॥

दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु सर्वं च दधिसम्भवम् ।
यानि चैवाभिषूयन्ते पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥ ८ ॥

पदा०-(च) और (शुक्तेषु) रखने से खट्टी हुई वस्तुओं में (दधि) दधि (च) तथा (सर्वं, दधिसम्भवं) दधि से उत्पन्न हुए मट्ठा आदि सब (भक्ष्यं) भक्ष्य हैं (च) और (यानि) जो खट्टे रस (शुभैः, पुष्पमूलफलैः) मादकता रहित फल, फूल तथा मूलों से (अभिषूयन्ते) निकले हुए अचारादि भक्ष्य हैं ॥

यत्किञ्चित्स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम् ।
तत्पर्युषितमप्याद्यं हविः शेषं च यद्भवेत् ॥९॥

पदा०-(यत्, किञ्चित्) जो कुछ (भक्ष्यं) पक्वान्न तथा (भोज्यं) भोजन (स्नेहसंयुक्तं) घृत से बना हुआ (अगर्हितं) शुद्ध रखा हो (अपि, च) अथवा (यत्, हविः शेषं, भवेत्) पुरोडाश आदि हवि बच रहे तो (तत्, पर्युषितं, आद्यं) उस को बासी होजाने पर भी भक्षण कर लेवे ॥

चिरस्थितमपि त्वाद्यमस्नेहाक्तं द्विजातिभिः ।
यवगोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रिया ॥ १० ॥

पदा०-(यवगोधूमजं, सर्वं) यव और गेहूं के पदार्थ (अस्नेहाक्तं) घृत आदि से रहित (चिरस्थितं, अपि) चिर काल तक रक्खे हुए भी (तु) और (पयसः, च, एव, विक्रिया) दूध के विकृत बासे पदार्थ (द्विजातिभिः, आद्यं) द्विजातियों को खालेने चाहियें, इत्यादि ॥

सं०-अब हिंसा का निषेध कथन करते हैं :—

गृहे गुरावरण्ये वा निवसन्नात्मवान्द्विजः ।
नावेदविहितां हिंसामापद्यपि समाचरेत् ॥ ११ ॥

पदा०-(आत्मवान्, द्विजः) जितेन्द्रिय द्विज (गृहे) गृह-

स्थाश्रम में (गुरौ) ब्रह्मचर्यावस्था में (वा) अथवा (अरण्ये) वानप्रस्थाश्रम में (निवसन्) निवास करता हुआ (आपदि,अपि) आपत्तिकाल में भी (अवेदविहितां) वेदविरुद्ध (हिंसां) हिंसा (न, समाचरेत्) न करे ॥

या वेदविहितां हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे ।
अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ॥१२॥

पदा०–(अस्मिन्, चराचरे) इस चराचर जगत् में (या) जो (हिंसा) हिंसा (वेदविहिता, नियता) वेदविहित है (तां, अहिंसां, एव, विद्यात्) उसको अहिंसा ही जानो (हि) क्योंकि (धर्मः) धर्म (वेदात्, निर्बभौ) वेद से प्रकाशित हुआ है ॥

भाष्य–हिंसक मनुष्यों तथा सिंह सर्पादि दुष्ट जीवों को दण्ड देना वेदविहित हिंसा है और इसको अहिंसा ही जानना चाहिये, क्योंकि दुष्ट जीवों को दण्ड न देने से प्रजा को हानि होती है और प्रजा का रक्षण करना क्षत्रिय का धर्म है, इसी प्रकार दुष्ट पुरुषों को ताड़न न किया जाय तो वह शिष्टों का अपमान करने तथा उनको हानि पहुंचाने के लिये सदा ही कटिबद्ध रहते हैं, इसलिये प्रजा के रक्षणार्थ दुष्ट पुरुषों और दुष्ट जीवों को दण्ड देना अथवा उनको शरीर से वियुक्त कर देना यह वेदविहित हिंसा है जिसके करने से क्षत्रिय पाप का भागी नहीं होता, हां सत्पुरुषों को दण्ड देना तथा निर-पराध पशुपक्षियों को जिह्वा के स्वादवशात् मारना यह

अवैदिकी हिंसा है जिसका मनु भगवान् ने धर्मशास्त्र में सर्वथा निषेध किया है, जैसाकि :—

योऽहिंसकानिभूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ।
स जीवंश्च मृतश्चैव न कचित्सुखमेधते ॥ १३ ॥

पदा०—(यः, आत्मसुखेच्छया) जो पुरुष अपने सुख की इच्छा से (अहिंसकानि, भूतानि) अहिंसक जीवों को (हिनस्ति) मारता है (सः) वह पुरुष (जीवन्) जीता हुआ इस लोक (च) तथा (मृतः) मर कर परलोक में (कचित्, एव) कहीं भी (सुखं, न, एधते) सुख नहीं पाता ॥

यो बन्धनवधक्लेशान्प्राणिनां न चिकीर्षति ।
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ १४ ॥

पदा०—(यः) जो पुरुष (प्राणिनां) प्राणियों के (बन्धन-वधक्लेशान्) बन्धन, वध तथा क्लेशों की (न, चिकीर्षति) इच्छा नहीं करता किन्तु (सर्वस्य, हितप्रेप्सुः) सब के हित की इच्छा करता है (सः) वह (अत्यन्तं, सुखं, अश्नुते) अत्यन्त सुख को भोगता है ॥

यद्ध्यायति यत्कुरुते धृतिं बध्नाति यत्र च ।
तदवाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्ति न किञ्चन ॥१५॥

पदा०—(यः) जो पुरुष (किञ्चन, न, हिनस्ति) किसी जीव की हिंसा नहीं करता (सः) वह (यद्, ध्यायति) जो सोचता (यद्, कुरुते) जो करता (च) और (यत्र, धृतिं,

बध्नाति) जहां धृति बांधता है (तत्, अयत्नेन) वह सब उस को विना ही यत्न से (अवाप्नोति) प्राप्त होजाता है ॥

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्॥१६॥

पदा०-(प्राणिनां, हिंसां, अकृत्वा) प्राणियों की हिंसा किये विना (क्वचित्, मांसं, न, उत्पद्यते) मांस कभी उत्पन्न नहीं होता (च) और (प्राणिवधः, न, स्वर्ग्यः) प्राणियों की हिंसा स्वर्ग=सद्गति देने वाली नहीं (तस्मात्) इसलिये (मांसं, विवर्जयेत्) मांसभक्षण सर्वथा त्याग देवे ॥

समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम् ।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥ १७ ॥

पदा०-(मांसस्य, च, समुत्पत्तिं) शुक्र शोणित से मांस की उत्पत्ति (च) और (देहिनां, वधबन्धौ) प्राणियों के वध बन्धनरूप दुःख को (प्रसमीक्ष्य) देखकर (सर्वमांसस्य, भक्षणात्) सब प्रकार के मांस भक्षण को (निवर्त्तेत) छोड़ देवे ॥

न भक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा पिशाचवत् ।
स लोके प्रियतां याति व्याधिभिश्च न पीड्यते॥१८॥

पदा०-(यः) जो पुरुष (विधिं, हित्वा, पिशाचवत्) शास्त्र मर्यादा को त्यागकर पिशाच के समान (मांसं, न, भक्षयति) मांसभक्षण नहीं करता (सः, लोके) वह संसार में (प्रियतां, याति) सर्वप्रिय होता (च) तथा (व्याधिभिः, न, पीड्यते) व्याधियों से दुःखित नहीं होता है ॥

सं०—अब मांसभक्षण में आठ घातकों का वर्णन करते हैंः—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥१९॥

पदा०—(अनुमन्ता)मारने की सलाह देने वाला (विशसिता) मरे हुए पशु के अङ्गों को पृथक् २ करने वाला (निहन्ता) वध करने वाला (क्रयविक्रयी) मांस को मोल लेने तथा बेचने वाला (च) और (संस्कर्ता) संस्कार करने वाला (उपहर्ता) परोसने वाला (च) तथा (खादकः) भक्षण करने वाला (इति, घातकाः) यह आठो घातक हैं ॥

भाष्य—(१) जीव को मारने की सम्मति देने वाला (२) अङ्गों को काटकर अलग २ करने वाला (३) मारने वाला (४) मांस मोल लेने वाला (५) बेचने वाला (६) पकाने वाला (७) परोसने वाला और (८) खाने वाला, यह सब घातक=मारने वाले के समान ही हैं अर्थात् जो पाप घातक को होता है वही पकाने वाले आदि आठों को होता है, इसलिये धार्मिक पुरुष को उचित है कि वह मांसभक्षण से सदा पृथक् रहे ॥

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ।
मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् ॥२०॥

पदा०—(यः) जो (वर्षे, वर्षे) प्रत्येक वर्ष में (शतं, समाः) सौ वर्ष पर्य्यन्त (अश्वमेधेन, यजेत) अश्वमेध यज्ञ करता है (च) और (यः) जो मरण पर्य्यन्त (मांसानि, न, खादेत्) मांसभक्षण

नहीं करता (तयोः) उन दोनों को (पुण्यफलं, समं) समान पुण्य फल होता है ॥

फलमूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानां च भोजनैः ।
न तत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात् ॥२१॥

पदा०–(यत्, फलं) जो फल (मांसपरिवर्जनात्) मांसभक्षण त्याग से (अवाप्नोति) प्राप्त होता है (तत्) वह फल (मेध्यैः, फलमूलाशनैः) पवित्र फल मूलों के खाने (च) तथा (मुन्यन्नानां, भोजनैः) मुनि अन्न भक्षण करने से भी (न) नहीं होता ॥

सदा यजति यज्ञेन सदा दानानि यच्छति ।
स तपस्वी सदा विप्रो यश्च मांसं विवर्जयेत् ॥२२॥

पदा०–(च) और (यः) जो पुरुष (मांसं, विवर्जयेत्) मांस नहीं खाता (सः, विप्रः) वह बुद्धिमान् जन मानो (सदा, यज्ञेन, यजति) सदा यज्ञ करता (सदा, दानानि, यच्छति) सदा दान देता और वही (तपस्वी) तपस्वी है ॥

मांसभक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२३॥

पदा०–(यस्य, मांसं) जिसके मांस को (अहं, इह, अद्मि) मैं इस लोक में खाता हूँ (सः, अमुत्र, मां, भक्षयिता) वह परलोक में मुझको खायगा (एतत्, मांसस्य, मांसत्वं) यह मांस का मांसत्व (मनीषिणः, प्रवदन्ति) विद्वान् लोग कहते हैं ॥

भाष्य–" मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे " यजु०=

हम सब प्राणियों को मित्रता की दृष्टि से देखें, यह वेदाज्ञा है, जो पुरुष परमात्मा की इस अहिंसारूप आज्ञा का पालन करता है उसको वह फल प्राप्त होता है जो मुनिअन्न=शिला आदि बीन-कर खाने वाले पुरुष को धर्मानुष्ठान करने से होता है, उसको वह फल होता है जो यज्ञ करने वाले, दान देने वाले तथा तप करने वाले को होता है, इत्यादि, और जो इससे विपरीत प्राणियों की हिंसा करते हैं उनको दान पुण्यादि सुकृत किये हुए का फल भी विपरीत ही होता है, मांसभक्षण में और बड़ा दोष यह है कि जो जिसका मांस खाता है वह जीव जन्मान्तर में उसका मांस भक्षण करता है अर्थात् उसी प्रकार से वह खाने वाले के गले पर छुरी रखता है, यह मांसभक्षण में सर्वोपरि अनिष्ट फल है, इसलिये सर्वथा मांसभक्षण का त्याग ही श्रेष्ठ है ॥

सं०—अब चारो वर्णों की प्रेतशुद्धि तथा द्रव्यशुद्धि का कथन करते हैं:—

प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि द्रव्यशुद्धिं तथैव च ।
चतुर्णामपि वर्णानां यथावदनुपूर्वशः ॥२४॥

पदा०—(चतुर्णां, वर्णानां) चारो वर्णों की (प्रेतशुद्धिं) प्रेतशुद्धि (च) और (तथा, एव) इसी प्रकार (द्रव्यशुद्धिं, अपि) द्रव्यशुद्धि को भी (यथावत्, अनुपूर्वशः) यथाविधि क्रम से (प्रवक्ष्यामि) आगे कहूँगा ॥

दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते ।
अशुद्धा बान्धवाः सर्वे सूतके च तथोच्यते ॥२५॥

पदा०—(दन्तजाते) दांत निकलने पर ही (च) अथवा (अनुजाते) दांत निकलने के अनन्तर (च) और (कृतचूडे) मुण्डनसंस्कार होने पर बालक के (संस्थिते) मरने से (सर्वे, बान्धवाः, अशुद्धाः) सब बान्धवों को अशुद्धि (च) और (तथा, सूतके, उच्यते) इसी प्रकार सूतक लगता है ॥

दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ।
अर्वाक्संचयनादस्थ्नां त्र्यहमेकाहमेव च ॥२६॥

पदा०—(सपिण्डेषु) सपिण्डों में (शावं) मृतक की (आशौचं) अशुद्धि (दशाहं) दश दिन तक रहती है, किन्हीं के (अर्वाक्, अस्थ्नां, संचयनात्) अस्थिसंचयन तक किन्हीं के (त्र्यहं) तीन दिन और किसी के (एकाहं, एव) एक दिन तक ही अशौच रहता है ॥

भाष्य—सपिण्डों में मृतक का अशौच १० दिन तक मानना शास्त्र में विधान किया है पर यह विचार सामान्य ब्राह्मणों के लिये है अर्थात् जो गुणों में जितना अधिक हो उसको उतना ही पातक कम होता है, या यों कहो कि सूतक पातकों में ज्ञान तथा आचार की न्यूनाधिकता ही कारण है, जैसाकि सर्वोत्तम ज्ञानी तथा आचार सम्पन्न पुरुष को केवल एक दिन, उससे ज्ञान तथा आचार में कम दो दिन, उससे भी न्यून गुणों वाला तीन दिन और सर्वसाधारण को दश दिन तक अशौच मानना चाहिये ॥

सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते ।
समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ॥ २७ ॥

पदा०-(सप्तमे, पुरुषे) सातवीं पीढ़ी में (सपिण्डता) सपिण्डता (तु) और (जन्मनाम्नोः, अवेदने) कुल में उत्पन्न हुओं के जन्म तथा नाम स्मरण न रहने से (समानोदकभावः, तु) समानोदकता का सम्बन्ध भी (विनिवर्त्तते) छूट जाता है अर्थात् सपिण्डता का सम्बन्ध सातवीं पीढ़ी तक ही रहता है पश्चात् नहीं और कुल में उत्पन्न हुए बड़ों के नाम जन्म स्मरण न रहें तो समानोदकता=साथ खाने पीने का सम्बन्ध भी छूट जाता है ॥

यथेदं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ।
जननेऽप्येवमेवस्यान्निपुणं शुद्धिमिच्छताम् ॥२८॥

पदा०-(यथा) जैसे (इदं, शावं, आशौचं) यह मृतक का अशौच (सपिण्डेषु) सपिण्डों में (विधीयते) विधान किया है (एवं, एव) इसीप्रकार (निपुणं, शुद्धिं, इच्छतां) अधिक शुद्धि चाहने वाले को (जनने, अपि, स्यात्) बालक के जन्म समय में भी अशौच मानना चाहिये ॥

भाष्य-जैसा मरने में सपिण्डों को अशौच विधान किया है इसी प्रकार पुत्रादि के उत्पन्न होने में भी अच्छी शुद्धता की इच्छा वालों को अशौच होता है ॥

उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते ।
दानं प्रतिग्रहो यज्ञः स्वाध्यायश्च निवर्त्तते ॥२९॥

पदा०-(उभयत्र) जन्म और मृत्यु दोनों में (दशाहानि) दश दिन तक (कुलस्य, अन्नं) अतिथि आदि उस कुल का अन्न (न, भुज्यते) नहीं खाते (च) और (दानं) देना (प्रतिग्रहः) लेना

(यज्ञः) यज्ञ करना (च) तथा (स्वाध्यायः) स्वाध्याय (निवर्त्तते) यह सब रुके रहते हैं ॥

सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम् ।
सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥३०॥

पदा०-(शावं, आशौचं) मृत पुरुष के निमित्त अशौच (सर्वेषां) सब सपिण्डों को (तु) और (सूतकं) जन्मनिमित्त सूतक (मातापित्रोः) माता पिता को ही रहता है और उसमें भी (मातुः, एव) माता को ही (सूतकं) सूतक रहता है,क्योंकि पिता स्नानादि करके शुद्ध होजाता है ॥

अह्ना चैकेन रात्र्या च त्रिरात्रैरेव च त्रिभिः ।
शवस्पृशो विशुध्यन्ति त्र्यहादुदकदायिनः ॥३१॥

पदा०-(शवस्पृशः) मृतक को स्पर्श करने वाले (अह्ना, एकेन) एक दिन (रात्र्या) एक रात्रि (च) और (त्रिभिः, त्रिरात्रैः) तीन से तीन को गुणने से नवरात्रि तथा एक मिलाकर १०दिन में शुद्ध होते हैं (च) और (उदकदायिनः) मृतक को स्नानादि कराने के लिये जल देने वाले (त्र्यहात्, विशुध्यन्ति) तीसरे दिन शुद्ध होते हैं ॥

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् ।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति ॥ ३२ ॥

पदा०-(तु) और (शिष्यः) शिष्य (प्रेतस्य, गुरोः) मरे हुए गुरु की (पितृमेधं, समाचरन्) अन्त्येष्टि करके (तत्र, प्रेतहारैः,

समं) उस मृतक को लेजाने वालों के समान (दशरात्रेण,शुद्ध्यति) दश दिन में शुद्ध होता है ॥

भाष्य—उपरोक्त ३१वें श्लोक का भाव यह है कि मृतक का स्पर्श=स्नानादि कराने वाले दश दिन में और स्नानादि के लिये जल देने वाले तीन दिन में शुद्ध होते हैं, और मृत गुरु की अन्त्येष्टि करने वाला शिष्य, प्रेत=मृतगुरु की शव उठाने वालों के समान दशवें दिन शुद्ध होता है ॥

रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुध्यति ।
रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ ३३ ॥

पदा०—(गर्भस्रावे) जितने मास का गर्भस्राव हो (मास-तुल्याभिः, रात्रिभिः) उतने ही दिनों में स्त्री शुद्ध होती है, और (साध्वी, रजस्वला) रजस्वला स्त्री (रजसि, उपरते) जिस दिन रज की निवृत्ति हो उस दिन (स्नानेन, विशुध्यति) स्नान करके शुद्ध होती है ॥

नृणामकृतचूडानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ।
निर्वृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ३४ ॥

पदा०—(अकृतचूडानां, नृणां) जिन बालकों का मुण्डन संस्कार नहीं हुआ उनके मरने से (विशुद्धिः, नैशिकी, स्मृता) एक दिन में शुद्धि कही है (तु) और (निर्वृत्तचूडकानां) जिन का मुण्डनसंस्कार होगया हो उनके मरने से (त्रिरात्रात्, शुद्धिः, इष्यते) तीन रात्रि में शुद्धि होती है ॥

ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः ।
अलङ्कृत्य शुचौ भूमावस्थिसंचयनादृते ॥३५॥

पदा०—(ऊनद्विवार्षिकं, प्रेतं) दो वर्ष से न्यून अवस्था वाले मृतक बालक को (बान्धवाः) बन्धु लोग (अलंकृत्य) वस्त्रादि से ढांपकर (बहिः) ग्राम से बाहर (शुचौ, भूमौ) पवित्र स्थान में (अस्थिसंचयनाद्, ऋते) विना अस्थिसंचयन किये (निदध्युः) गाड़ देवें ॥

नास्य कार्योऽग्नि संस्कारो नच कार्योदकक्रिया ।
अरण्ये काष्ठवत्त्यक्त्वा क्षपेयुस्त्र्यहमेव च ॥३६॥

पदा०—(च) और (अस्य) उक्त बालक का (अग्निसंस्कारः, न, कार्यः) अग्निसंस्कार न करे (च) और (उदकक्रिया, न, कार्या) न उदक क्रिया करे (च) किन्तु (अरण्ये) बन में (काष्ठवद्, त्यक्त्वा) काष्ठ की न्याई मन से त्यागकर भूमि में दबा देवे (एव) और (त्र्यहं, क्षपेयुः) तीन दिन अशौच रक्खें ॥

नात्रिवर्षस्य कर्त्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया ।
जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति ॥३७॥

पदा०—(अत्रिवर्षस्य, उदकक्रिया) तीन वर्ष से न्यून अवस्था वाले बालकों की उदक क्रिया (बान्धवैः, न, कर्त्तव्या) बन्धुजन न करें (वा) और (जातदन्तस्य) दांत निकलने (वा) अथवा (नाम्नि, कृते, सति) नामकरणसंस्कार होजाने पर (कुर्युः) दाह संस्कार करना चाहिये ॥

सब्रह्मचारिण्येकाहमतीते क्षपणं स्मृतम् ।
जन्मन्येकोदकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥३८॥

पदा०—(सब्रह्मचारिणि, अतीते) सहाध्यायी=साथ पढ़ने वाले के मरने में (एकाहं, क्षपणं, स्मृतं) एक दिन अशुद्धि माने (तु) और (एकोदकानां, जन्मनि) सम्बन्धियों में पुत्रादि का जन्म होने पर (त्रिरात्रात्, शुद्धिः, इष्यते) तीन दिन में शुद्धि होती है ॥

सन्निधावेष वै कल्पः शावाशौचस्य कीर्त्तितः ।
असन्निधावयं ज्ञेयो विधिः सम्बन्धिबान्धवैः ॥३९॥

पदा०—(वै) निश्चयकरके (सन्निधौ) समीप रहने वाले सम्बन्धियों के निमित्त (एषा, शावाशौचस्य, कल्पः) यह मृत सम्बन्धी अशुद्धि का प्रकार (कीर्त्तितः) कथन किया गया और (असन्निधौ) विदेश में रहने वाले मृतक के (सम्बन्धि-बान्धवैः) सम्बन्धि तथा बान्धव (अयं, विधिः, ज्ञेयोः) यह आगे कहे अनुसार अशौच विधान जानें ॥

सं०—अब विदेश में रहने वालों के लिये अशौच कथन करते हैं:—

विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्योह्यनिर्दशम् ।
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥४०॥

पदा०—(तु) और (यः) जो पुरुष (विदेशस्थं, विगतं) परदेश में मरा हो और (अनिर्दशम्) दशदिन पूरे न हुए हों (हि) तो (शृणुयात्) सुनने पर (दशरात्रस्य, यत्, शेषं) दश दिन में जो शेष दिन रहे हों (तावत्, एव, अशुचिः, भवेत्) उतने ही दिन अशौच रहे ॥

मासत्रये त्रिरात्रं स्यात्षण्मासे पक्षिणी तथा ।
अहस्तु नवमासादर्वागूर्ध्वं स्नानेन शुध्यति ॥४१॥

पदा०-(मासत्रये, त्रिरात्रं, स्यात्) तीन मास बीतने पर सुने तो तीन रात्रि (तथा) तथा (षण्मासे, पक्षिणी) छः मास बीतने पर सुने तो डेढ़ दिन (तु) और (नवमासात्, अर्वाक्) नवमास के भीतर सुने तो (अहः) एक दिन अशोच माने, और इसके(ऊर्ध्वं) पश्चात् (स्नानेन, शुध्यति) स्नान मात्र से शुद्ध होजाता है ॥

अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।
सम्वत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुध्यति ॥४२॥

पदा०-(च) और (दशाहे, अतिक्रान्ते) दश दिन बीतने पर सुने तो (त्रिरात्रं, अशुचिः, भवेत्) तीन दिन तक अशौच रहे (तु) परन्तु (सम्वत्सरे, व्यतीते) एकवर्ष बीत गया हो तो (अपः, स्पृष्ट्वा) तत्काल स्नान करने से (एव) ही (विशुद्धयति) शुद्ध होजाता है ॥

निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च ।
सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः ॥४३॥

पदा०-(निर्दशं, ज्ञातिमरणं) दश दिन के उपरान्त अपने सपिण्ड के मरण (च) तथा (पुत्रस्य, जन्म) पुत्र के जन्म को (श्रुत्वा) सुनकर (सवासाः, जलं, आप्लुत्य) वस्त्रों सहित जल में स्नान करने से (मानवः, शुद्धः, भवति) पुरुष शुद्ध होता है ॥

बाले देशान्तरस्थे च पृथक् पिण्डे च संस्थिते ।
सवासा जलमाप्लुत्य सद्य एव विशुध्यति ॥४४॥

पदा०-(देशान्तरस्थे, बाले) सगोत्र बालक परदेश में मरा हो (च) तथा (पृथक्, पिण्डे, च, संस्थिते) जो सपिण्ड न हो ऐसे बालक का मरण सुनकर (सवासाः, जलं, आप्लुत्य) वस्त्र सहित जल में स्नान करने से (सद्यः, एव, विशुद्ध्यति) तत्काल शुद्ध होजाता है ॥

अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी ।
तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम् ॥४५॥

पदा०-(चेत्) यदि (अन्तर्दशाहे) दशाह=दश दिन के बीच में (पुनः, मरणजन्मनी, स्यातां) पुनः किसी के मरने वा उत्पन्न होने से अशौच होवे तो (तावत्, विप्रः, अशुचिः, स्यात्) ब्राह्मण तब तक शुद्ध न होगा (यावत्, तत्, अनिर्दशं, स्यात्) जब तक पहले अशौच के दश दिन पूर्ण न होजायं ॥

त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति ।
तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः ॥४६॥

पदा०-(आचार्ये, संस्थिते, सति) आचार्य के मरने पर शिष्य को (त्रिरात्रं, आशौचं, आहुः) तीन दिन अशौच रहता है (च) और (तस्य, पुत्रे, पत्न्यां, च) आचार्य के पुत्र वा स्त्री के मरने पर (दिवारात्रं) एक दिन रात अशौच रहता है (इति, स्थितिः) यह शास्त्रमर्यादा है ॥

श्रोत्रिये तूपसम्पन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।
मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च ॥४७॥

पदा०-(तु) और (उपसम्पन्ने, श्रोत्रिये) समीप स्थित

वेदपाठी के मरने पर (त्रिरात्रं) तीन दिन (च) और उसके (मातुले) मामा (च) अथवा (शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु) शिष्य, ऋत्विक् और बान्धवों के मरने पर (पक्षिणीं, रात्रिं) डेढ़ दिन (अशुचिः, भवेत्) द्विज अशुद्ध रहता है ॥

प्रेते राजनि सज्योतिर्यस्य स्याद्विषये स्थितः ।
अश्रोत्रिये त्वहः कृत्स्नमनूचाने तथा गुरौ ॥ ४८ ॥

पदा०—(यस्य, विषये, स्थितः, स्यात्) जिसके राज्य में रहता हो (प्रेते, राजनि) उस राजा के मरने पर (सज्योतिः) सूर्यास्त तक अशौच माने (अश्रोत्रिये) जो श्रोत्रिय न हो तो (अहः, कृत्स्नं) दिन भर (च) और (अनूचाने, तथा, गुरौ) जिसने पूर्ण वेदाध्ययन किया हो वा सामान्य गुरु के मरने पर भी एक दिन अशौच रहता है ॥

सं०—अब क्षत्रियादि का अशौच विधान करते हैं :—

शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ४९ ॥

पदा०—(विप्रः) ब्राह्मण मरण वा जन्म के आशौच से (दशाहेन, शुद्ध्येत्) दश दिन में शुद्ध होता है (भूमिपः, द्वादशाहेन) क्षत्रिय बारह दिन में (वैश्यः, पञ्चदशाहेन) वैश्य पन्द्रह दिन में (शूद्रः, मासेन, शुद्ध्यति) और शूद्र एक मास में शुद्ध होता है ॥

नवर्धयेदघाहानि प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः ।
न च तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्योऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ ५० ॥

पदा०-(अघाहानि, न, वर्धयेत्) अशौच के दिनों को न बढ़ावे (अग्निषु, क्रियाः, न, प्रत्यूहेत्) अग्निहोत्रादि कर्म न त्यागे (अपि) क्योंकि (तत्, कर्म, कुर्वाणः) अग्निहोत्र कर्म को करने वाला (सनाभ्यः, अशुचिः, न, भवेत्) अपने सम्बन्धियों सहित अपवित्र नहीं होता ॥

दिवाकीर्त्तिमुदक्यां च पतितं सूतिकां तथा ।
शवं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्ध्यति ॥५१॥

पदा०-(दिवाकीर्त्ति) चाण्डाल (उदक्यां) रजस्वला स्त्री (पतितं) पतित (सूतिकां) प्रसूता स्त्री (शवं) मृतक (च) तथा (तत्स्पृष्टिनं) मृतक को स्पर्श करने वाले का (स्पृष्ट्वा) स्पर्श होजाने पर (स्नानेन, एव, शुध्यति) ब्राह्मणादि द्विज स्नान से शुद्ध होते हैं ॥

आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने ।
सौरान्मन्त्रान्यथोत्साहं पावमानीश्च शक्तितः ॥५२॥

पदा०-(अशुचिदर्शने) शुभकर्म का आरम्भ करते समय चाण्डलादि अपवित्रों का समीप से दर्शन होजाय तो (आचम्य, प्रयतः, नित्यं) नित्य सावधान हो आचमन कर (उत्साहं, च, यथा, शक्तितः) यथाशक्ति उत्साह के साथ (सौरान्, पावनीः, जपेत्) " उदुत्यं जातवेदसं० " इत्यादि सौर्य मन्त्र और पवमान देवता वाले मन्त्रों को जपे ॥

नारं स्पृष्ट्वास्थिसस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुध्यति ।
आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा ॥५३॥

पदा०-(नारं, अस्थिसस्नेहं, स्पृष्ट्वा) मनुष्य की स्नेह युक्त=गीली हड्डी छूने से (विप्रः, स्नात्वा) ब्राह्मण स्नान करने से (तु) और (निःस्नेहं) सूखी हड्डी को स्पर्श करने पर (गां, आलभ्य, आचम्य) मिट्टी से हाथ धोकर आचमन करके (वा) अथवा (अर्क. ईक्ष्य, एव) सूर्य के सन्मुख खड़े होने से ही (विशुद्धयति) शुद्ध होजाता है ॥

आदिष्टीनोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात् ।
समाप्ते तूदकं कृत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्धयति ॥ ५४ ॥

पदा-(आदिष्टी, आव्रतस्य, समापनात) ब्रह्मचारी अथवा चान्द्रायणादि व्रत करने वाला गृहस्थ व्रत की समाप्ति पर्यन्त (उदकं, न. कुर्यात) सम्बन्धियों के मरने पर मृतक को स्नानादि न करावे (तु) और (समाप्ते) व्रत समाप्त होजाने पर (उदकं, कृत्वा) उदककर्म करके (त्रिरात्रेण, एव, शुध्यति) तीन रात्रि में ही शुद्ध होजाता है ॥

वृथासंकरजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठताम् ।
आत्मनस्त्यागिनां चैव निवर्तेतोदकक्रिया ॥५५॥

पदा०-(वृथासंकरजातानां) वृथा=जो कोई उपकारिक कार्य्य नहीं करते, वर्णसङ्करों (प्रव्रज्यासु, तिष्ठतां) संन्यासमार्ग में स्थित अर्थात संन्यासियों (च) और (आत्मनः, त्यागिनां) आत्मघातियों की (एव) भी (उदकक्रिया, निवर्तेत) उदकक्रिया निवृत्त होजाती है अर्थात इन सब की उदकक्रिया आवश्यक नहीं ॥

पाषण्डमाश्रितानां च चरन्तीनां च कामतः ।
गर्भभर्तृद्रुहां चैव सुरापीनां च योषिताम् ॥५६॥

पदा०-(पाषण्डं, आश्रितानां) पाखण्डमतों के आश्रित रहने वाली अर्थात् वेदविरुद्धमतानुयायी (कामतः, चरन्तीनां) स्वेच्छाचारिणी (सुरापीनां) सुरापान करने वाली (च) और (गर्भभर्तृद्रुहां) गर्भपात तथा पतिघात करने वाली (योषितां) स्त्रियों के मरने पर अशौच का नियम मानना आवश्यक नहीं ॥

आचार्यं स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम् ।
निर्हृत्य तु व्रती प्रेतान्न व्रतेन वियुज्यते ॥५७॥

पदा०-(स्वं, आचार्यं, उपाध्यायं, पितरं, मातरं, गुरुं) अपने आचार्य, उपाध्याय, पिता, माता, गुरु के (प्रेतान्, निर्हृत्य) प्रेत कृत्य करने से (व्रती, व्रतेन, न, तु, वियुज्यते) ब्रह्मचारी का व्रत भङ्ग नहीं होता ॥

दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत् ।
पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथायोगं द्विजन्मनः ॥५८॥

पदा०-(शूद्रं, मृतं) शूद्रों के मृतक को (पुरद्वारेण, दक्षिणेन) नगर के दक्षिण द्वार से (तु) और (द्विजन्मनः) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के मृतकों को (यथायोगं) क्रमानुसार (पश्चिमोत्तरपूर्वैः) पश्चिम, उत्तर, तथा पूर्व द्वार से (निर्हरेत्) निकाले अर्थात् वैश्य के पश्चिम, क्षत्रिय के उत्तर और ब्राह्मण के मृतक को पूर्व से निकाले ॥

न राज्ञामघदोषोऽस्ति व्रतिनां नच सत्रिणाम् ।
ऐन्द्रं स्थानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा ॥५९॥

नोत्तमाः ।

पदा०-(राज्ञां) राजा (व्रतिनां) ब्रह्मचारी व्रत करने वाला (च) और (सत्रिणां) यज्ञ ॥९५॥ (अघदोषः, नास्ति) अशौच नहीं लगता (हि) क्योंकि (ऐन्द्रं, स्थानं, उपासीनाः) यह इन्द्र के पद पर बैठे हुए (म...च का विधान सदा निष्पाप हैं, यहां "इन्द्र" शब्द शुद्ध तथा उच्च ...) वाचक है ॥

राज्ञो माहात्मिके स्थाने सद्यः शौचं विधीयते ।
प्रजानां परिरक्षार्थमासनञ्चात्रकारणम् ॥९७॥

पदा०-(माहात्मिके, स्थाने) माहात्मिक राज्यसिंहासन पर (स्थितस्य, राज्ञः) बैठे हुए राजा की (सद्यः, शौचं, विधीयते) तत्काल ही शुद्धि होजाती है (अत्र, च) इस तात्कालिक शुद्धि में (प्रजानां, परिरक्षार्थं, आसनं,कारणं) प्रजा की रक्षार्थ न्यायासन पर बैठ कर रक्षा करना कारण है ॥

डिम्बाहवहतानां च विद्युता पार्थिवेन च ।
गोब्राह्मणस्य चैवार्थे यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥९८॥

पदा०-(डिम्बाहवहतानां, च) राजसम्बन्ध के विना जो युद्ध में शस्त्र द्वारा मरे हों (विद्युता, पार्थिवेन, च) विद्युत के गिरने अथवा राजा की आज्ञानुसार फांसी आदि से मरे हों तथा (गोब्राह्मणस्य, चैव, अर्थे) गौ ब्राह्मण की रक्षा के निमित्त मरे हुओं का (च) और (यस्य, पार्थिवः, इच्छति) जिसको राजा अपने कार्य्य के लिये चाहे अर्थात् मन्त्री वा पुरोहित की शुद्धि तत्काल होजाती है ॥

ग्ानलेन्द्राणां वित्ताप्पत्योर्यमस्य च ।
पाषण्डमाश्चिकपालानां वपुर्धारयते नृपः ॥ ६२ ॥

गर्भभर्तृद्रुहां(ोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणां) चन्द्र, अग्नि, सूर्य, पवन, पदा०-प्पत्योः, यमस्य, च) कुबेर, वरुण और यम (अष्टानां, लोकपालानां, वपुः) इन आठ लोकपालों का शरीर (नृपः, धारयते) राजा धारण करता है, अर्थात् राजा में लोकपालनार्थ उक्त आठों के आठ दिव्य गुण रहते हैं ॥

लोकेशाधिष्ठितो राजा नास्याशौचं विधीयते ।
शौचाशौचं हि मर्त्यानां लोकेशप्रभवाप्ययम् ॥६३॥

पदा०-(लोकेशाधिष्ठितः, राजा) उक्त आठो लोकपालों के स्थान पर रहने के कारण (न, अस्य, आशौचं, विधीयते) राजा को अशौच विधान नहीं किया (हि) क्योंकि (मर्त्यानां, शौचाशौचं) मनुष्यों का शौच तथा अशौच (लोकेशप्रभवाप्ययम्) उक्त लोकपालों से ही उत्पन्न तथा नाश होता है ॥

उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च ।
सद्यः सन्तिष्ठते यज्ञस्तथाशौचमिति स्थितिः ॥६४॥

पदा०-(आहवे, उद्यतैः, शस्त्रैः) युद्धक्षेत्र में उठाये हुए शस्त्रों से (क्षत्रधर्महतस्य, च) क्षात्रधर्मानुकूल शत्रु को विना पीठ दिखाये जो प्राण देता है उसको (सद्यः, यज्ञः, तथा, शौचं सन्तिष्ठते) अग्निष्टोमादि यज्ञों का फल मिलता तथा शुद्धि भी तत्काल होजाती है (इति, स्थितिः) यह शास्त्र मर्यादा है ॥

एतद्वोऽभिहितं शौचं सपिण्डेषु द्विजोत्तमाः ।
असपिण्डेषु सर्वेषु प्रेतशुद्धिं निबोधत ॥६५॥

पदा०—(द्विजोत्तमाः) हे द्विज श्रेष्ठो ! (सपिण्डेषु, वः, एतत्, शौचं, अभिहितं) यह सपिण्डों में तुम्हारे प्रति अशौच का विधान किया और (सर्वेषु, असपिण्डेषु) सब असपिण्डों में (प्रेतशुद्धिं) प्रेतशुद्धि का विधान (निबोधत) आगे सुनो ॥

सं०—अब असपिण्डों में शुद्धि का विधान कथन करते हैं:—

असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत् ।
विशुद्ध्यति त्रिरात्रेण मातुराप्तांश्च बान्धवान्॥६६॥

पदा०—(विप्रः) यदि ब्राह्मण (असपिण्डं, द्विजं, प्रेतं) असपिण्ड द्विज के मृतक का (बन्धुवत्, निर्हृत्य) बन्धु के समान अन्त्येष्टि आदि कर्म करे (च) और (मातुः, आप्तान्, बान्धवान्) अपने गोत्र से भिन्न माता के सम्बन्ध वाले मामा, नाना, साले, श्वशुर आदि बान्धवों की दाह क्रिया करे तो (त्रिरात्रेण, विशुद्ध्यति) तीन दिन में शुद्ध होता है ॥

यद्यन्नमत्ति तेषां तु दशाहेनैव शुद्ध्यति ।
अनदन्नन्नमह्नैव चेत्तस्मिन्गृहे वसेत् ॥ ६७ ॥

पदा०—(यदि, तेषां, अन्नं, अत्ति) जो दाहादि करने वाला विप्र मृतक के सपिण्डों का अन्न खाता हो तो (दशाहेन, एव, शुद्ध्यति) दशदिन में ही शुद्ध होता है (तु) और जो (अनदन्, अन्नं) अन्न न खाता हो (न, चेत्तस्मिन्, गृहे, वसेत्)तथा

उनके घर में भी न रहता हो तो (अह्ना, एव) एक दिन में ही शुद्ध होजाता है ॥

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेवच ।
स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुद्धयति।६८।

पदा०-(इच्छया, ज्ञातिं, अज्ञातिं, एव, च, प्रेतं, अनुगम्य) स्वेच्छा से स्वजातीय वा विजातीय मुर्दे के पीछे जान बूझ कर जाने से (सचैलः, स्नात्वा) वस्त्रों सहित स्नान (अग्नि, स्पृष्ट्वा) अग्नि स्पर्श=अग्नि के सन्मुख तप कर (च) और (घृतं, प्राश्य, विशुद्धयति) घृत खाकर शुद्ध होता है ॥

न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नाययेत् ।
अस्वर्ग्याह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसंस्पर्शदूषिता ।६९।

पदा०-(स्वेषु, तिष्ठत्सु) अपनी जाती वालों के होने पर (मृतं, विप्रं) मरे हुए ब्राह्मण को दाहार्थ (शूद्रेण, न, नाययेत) शूद्र न लेजाय (हि) क्योंकि (शूद्रसंस्पर्शदूषिता) शूद्र के स्पर्श से दूषित हुई (सा, आहुतिः) वह शरीर की आहुति (अस्वर्ग्या, स्यात) स्वर्ग=कल्याण के देने वाली नहीं होती ॥

ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन्मनो वार्युपाञ्जनम् ।
वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तॄणि देहिनाम् ।७०।

पदा०-(ज्ञानं, तपः, अग्निः, आहारः) ज्ञान, तप, अग्नि, भोजन (मृत, मनः, वारि, उपाञ्जनं) मिट्टी, मन, जल, लेपनं (वायुः, कर्म, अर्ककालौ, च) वायु, कर्म, सूर्य्य और काल

यह सब (देहिनां, शुद्धेः, कर्तॄणि) प्राणियों को शुद्ध करने वाले हैं अर्थात् इन सब को शौच और अशौच का कारण जानना चाहिये ॥

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारि शुचिः शुचिः ॥७१॥

पदा०-(सर्वेषां, एव, शौचानां) इन सब शौचों में (अर्थशौचं, परं, स्मृतं) अर्थशुद्धि परम श्रेष्ठ है (हि) क्योंकि (यः, अर्थे, शुचिः) जो पुरुष धन के व्यवहार में शुद्ध है (सः, शुचिः) वही वस्तुतः शुद्ध है और (मृद्वारिशुचिः) मिट्टी तथा जल से बाह्य शुद्धि होती है इस कारण (न, शुचिः) यह शुद्धि अर्थ शुद्धि के समान नहीं ॥

भाष्य-जिसका व्यवहार शुद्ध है, जो अन्याय से दूसरे का धन लेने की इच्छा नहीं करता, जैसाकि यजुर्वेद में भी कहा है कि " **मागृधः कस्य स्विद्धनम्** "=किसी के धन की इच्छा मत कर, सो जो यथान्याय धर्मपूर्वक धन उपार्जन करके धर्मपूर्वक वर्त्तते हैं उनका यह अर्थशौच सब से श्रेष्ठ कहा है, और जिनका अर्थशौच नहीं उनकी मृतिकादि से शुद्धि निष्फल है अर्थात् न होने के समान है, अधिक क्या तत्व यह है कि जो अर्थ में शुद्ध है वही शुद्ध है ॥

क्षान्त्या शुद्धयन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः ।
प्रच्छन्न पापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ॥७२॥

पदा०-(विद्वांसः, क्षान्त्या) विद्वान् क्षमा से (अकार्य-

कारिणः) यज्ञादिक कर्म न करने वाले (दानेन) दान से (प्रच्छन्नपापाः, जप्येन) गुप्त पाप करने वाले गायत्री आदि के जप से, और (वेदवित्तमाः तपसा, शुध्यन्ति) वेदवेत्ता तप करने से शुद्ध होते हैं ॥

मृत्तोयैःशुध्यते शोध्यं नदी वेगेन शुध्यति ।
रजसा स्त्री मनोदुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तमः ॥७३॥

पदा०-(शोध्यं, मृत्तोयैः, शुध्यते) मल युक्त पदार्थ मिट्टी तथा जल से शुद्ध होता है (नदी, वेगेन) नदी जल के प्रवाह से (मनोदुष्टा,स्त्री,रजसा) मन से दुर्विचार करने वाली स्त्री रजोदर्शन से और (संन्यासेन, द्विजोत्तमः, शुध्यति) ब्राह्मण संन्यास=त्याग से शुद्ध होता है ॥

अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।७४।

पदा०-(गात्राणि, अद्भिः, शुध्यन्ति) जल से शरीर शुद्ध होते हैं (मनः, सत्येन, शुध्यति) मन सत्य भाषण से शुद्ध होता है (विद्यातपोभ्यां, भूतात्मा) विद्या तथा तप से जीवात्मा और (बुद्धिः, ज्ञानेन, शुध्यति) बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है ॥

एष शौचस्य वः प्रोक्तः शारीरस्य विनिर्णयः ।
नानाविधानां द्रव्याणां शुद्धेः शृणुत निर्णयम्॥७५॥

पदा०-हे महर्षिलोगो ! (वः) तुम्हारे प्रति (एषः, शारीरस्य, शौचस्य, विनिर्णयः, प्रोक्तः) यह शरीर सम्बन्धी शुद्धि का

निर्णय कहा, अब आगे (नानाविधानां द्रव्याणां) अनेक प्रकार के द्रव्यों की (शुद्धिः) शुद्धि का (निर्णयं,शृणुत) निर्णय सुनो ॥

सं०—अब अनेक प्रकार के द्रव्यों की शुद्धि का निर्णय करते हैं :—

तैजसानां मणीनां च सर्वस्याश्ममयस्य च ।
भस्मनाद्भिर्मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः। ७६ ।

पदा०—(तैजसानां) सुवर्णादि (मणीनां) हीरा आदि मणियों (च) और (सर्वस्य, अश्ममयस्य, च) सम्पूर्ण पाषाणमय पदार्थों की (भस्मना, अद्भिः, मृदा) भस्म, जल तथा मिट्टी से (शुद्धिः) शुद्धि (मनीषिभिः, च, एव, उक्ता) मननशील पुरुषों ने विधान की है ॥

निर्लेपं काञ्चनं भाण्डमद्भिरेव विशुध्यति ।
अब्जमश्ममयं चैव राजतं चानुपस्कृतम् ॥७७॥

पदा०—(निर्लेपं) जिसमें उच्छिष्टादि न लगा हो ऐसा (काञ्चनं, भाण्डं) सुवर्ण का पात्र (अब्जं) शङ्ख, मोती आदि (च) और (अश्ममयं) पत्थर के पात्र (च) तथा (अनुपस्कृतं, राजतं) विना चित्रित हुए चांदी के पात्र, यह सब (अद्भिः, एव, विशुध्यति) जल से ही शुद्ध होजाते हैं, क्योंकिः—

अपामग्नेश्च संयोगाद्धैमं रौप्यं च निर्बभौ ।
तस्मात्तयोः स्वयोन्यैव निर्णेको गुणवत्तरः ॥७८॥

पदा०—(अपां, अग्नेः,च, संयोगात्) जल तथा अग्नि के संयोग

से (हैमं, रौप्यं, च, निर्बभौ) सोना, चांदी उत्पन्न हुए हैं (तस्मात्) इसलिये (तयोः) इन दोनों की (निर्णेकः) शुद्धि (स्वयोन्या, एव) अपनी योनि जल तथा अग्नि से करना (गुणवत्तरः) सर्वोत्तम है ॥

ताम्रायः कांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीसकस्य च ।
शौचं यथार्हं कर्त्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः ॥७९॥

पदा०—(ताम्रायः, कांस्यरैत्यानां) तांबा, लोहा, कांसी, पीतल (त्रपुणः, सीसकस्य, च) रांग और सीसे के पात्रों की (शौचं) शुद्धि (यथार्हं) जिससे जो उचित हो (क्षाराम्लोदक-वारिभिः, कर्त्तव्यं) खार=खट्टे पानी तथा केवल पानी से करनी चाहिये ॥

द्रवाणां चैव सर्वेषां शुद्धिराप्लवनं स्मृतम् ।
प्रोक्षणं संहतानां च दारवाणां च तक्षणम् ॥८०॥

पदा०—(द्रवाणां, च, एव, सर्वेषां) द्रवों=बहने वाले घृत, तैलादि पदार्थों की शुद्धि (आप्लवनं) छानने से (संहतानां, च, प्रोक्षणं) तथा अनेक अवयवों मे मिले हुए खट्वा आदि पदार्थों की धोने से (च) और (दारवाणां, तक्षणं) काष्ठ के पात्रों को छीलने से (शौचं, स्मृतं) शुद्धि कही है, परन्तु स्मरण रहे कि:—

मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ।
चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥८१॥

पदा०—(यज्ञकर्मणि) यज्ञकर्म में (यज्ञपात्राणां) यज्ञ पात्रों की (शुद्धिः) शुद्धि (पाणिना, मार्जनं) हाथ द्वारा मार्जन करने से

(तु) और (चमसानां, ग्रहाणां, च) चमसा, चिमटा तथा सड़सी आदिकों की (प्रक्षालनेन) केवल धोने से शुद्धि होती है ॥

चरूणां स्रुक्स्रुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा ।
स्फ्यशूर्पशकटानां च मुसलोलूखलस्य च ॥८२॥

पदा०-(चरूणां, स्रुक्स्रुवाणां) स्नेहयुक्त चरुस्थाली आदि, स्रुक्, स्रुव (स्फ्यशूर्पशकटानां,) स्फ्य, शूर्प, शकट (च) और (मुसलोलूखलस्य) उखली, मूसल इन सब यज्ञ सम्बन्धी पदार्थों की (शुद्धिः, उष्णेन, वारिणा) शुद्धि गरम जल से होती है ॥

अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम् ।
प्रक्षालनेन स्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते ॥८३॥

पदा०-(बहूनां, धान्यवाससां) बहुत धान्यों=अन्नों तथा बहुत वस्त्रों की (शौचं) शुद्धि (अद्भिः, प्रोक्षणं) जल के प्रोक्षण=छिड़कने से होती है (तु) परन्तु (अल्पानां, अद्भिः, प्रक्षालनेन, शौचं,विधीयते)थोड़े हों तो उनकी शुद्धि धोने से विधान की है ॥

चैलवच्चर्मणां शुद्धिर्वैदलानां तथैव च ।
शाकमूलफलानाञ्च धान्यवच्छुद्धिरिष्यते ॥८४॥

पदा०-(चर्मणां, तथा, एव, वैदलानां) चमड़ों तथा बेंतादि से बनी चटाइयों की (शुद्धिः, चैलवत्) शुद्धि वस्त्रवत् होती है जैसी पीछे विधान की है (च) और (शाकमूलफलानां, च) शाक, मूल तथा फलों की (शुद्धिः) शुद्धि (धान्यवत्, इष्यते) धान्य के तुल्य करनी चाहिये ॥

कौशेयाविकयोरूषैः कुतपानामरिष्टकैः ।
श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः ॥ ८५ ॥

पदा० -(कौशेयाविकयोः, ऊषैः) रेशमी और ऊनी वस्त्रों की रेह आदि से (कुतपानां, अरिष्टकैः) पहाड़ी उत्तरदेशीय कम्बलों की रीठों से (अंशुपट्टानां, श्रीफलैः) वृक्ष की छालों से बने हुए वस्त्रों की बेल से और (क्षौमाणां, गौरसर्षपैः) मुकटा तथा पीताम्बरों की पीली सरसों से शुद्धि होती है ॥

क्षौमवच्छङ्खशृङ्गाणामस्थिदन्तमयस्य च ।
शुद्धिर्विजानता कार्या गोमूत्रेणोदकेन वा ॥८६ ॥

पदा०—(शङ्खशृङ्गाणां, अस्थिदन्तमयस्य, च) शंख,शृंग=सींग, हड्डी और दांत के बने हुए पात्रों की (शुद्धिः) शुद्धि (विजानता) शास्त्र का जानने वाला पुरुष (गोमूत्रेण, वा, उदकेन) गोमूत्र अथवा जल से (कार्या) करे अथवा (क्षौमवत) जैसे पीछे पीताम्बरादिकों की शुद्धि विधान की है इस प्रकार करें ॥

प्रोक्षणात्तृणकाष्ठं च पलालं चैव शुद्ध्यति ।
मार्जनोपाञ्जनैर्वेश्म पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ ८७ ॥

पदा०—(तृणकाष्ठं, च, एव, पलालं) तृण, पलाल तथा काष्ठादि की शुद्धि (प्रोक्षणात) चारों ओर जल सेचन करने से (च) और (वेश्म, मार्जनोपाञ्जनैः) घर झाड़ू तथा लेपन से (च) और (मृन्मयं, पुनः, पाकेन, शुद्ध्यति (मिट्टी के पात्र पुनः अग्नि में देने से शुद्ध होते हैं, परन्तु :—

मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा ष्ठीवनैः पूयशोणितैः ।
संस्पृष्टं नैव शुध्येत पुनः पाकेनमृन्मयम् ॥ ८८ ॥

पदा०-(मद्यैः, मूत्रैः, पुरीषैः, ष्ठीवनैः, पूयशोणितैः, वा) मद्य, मूत्र, मल, थूक, कफादि, राध और रुधिर से (संस्पृष्टं) दूषित हुआ (मृन्मयं) मिट्टी का पात्र (पुनः, पाकेन, नैव, शुध्येत) पुनः अग्नि में पकाने से भी शुद्ध नहीं होता ॥

सम्मार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च ।
गवां च परिवासेन भूमिः शुद्ध्यतिपञ्चभिः ॥८९॥

पदा०-(सम्मार्जनोपाञ्जनेन) झाड़ने, लीपने, छिड़कने, छीलने (च) और (गवां, परिवासेन) गौ के वास करने, इन (पञ्चभिः,भूमिः, शुद्ध्यति, पांच प्रकारों से भूमि शुद्ध होती है ॥

पक्षिजग्धं गवा घ्रातमवधूतमवक्षुतम् ।
दूषितं केशकीटैश्च मृत्प्रक्षेपेण शुद्ध्यति ॥९०॥

पदा०-(पक्षिजग्धं) पक्षी से खाया हुआ (गवा, घ्रातं, अवधूतं) गाय से सूँघा हुआ, पैर से कुचला हुआ (अवक्षुतं) जिसके ऊपर छींक दिया हो (च) और (केशकीटैः, दूषितं) बाल तथा कीड़ों से दूषित हुआ स्थान (मृत्प्रक्षेपेण, शुद्ध्यति) मिट्टी डालने से शुद्ध होता है ॥

यावन्नापैत्यमेध्याक्ताद्गन्धो लेपश्च तत्कृतः ।
तावन्मृद्वारि चादेयं सर्वासु द्रव्यशुद्धिषु ॥९१॥

पदा०-(अमेध्याक्तान) अमध्य पदार्थ के लेप से (मत्रांसु. द्रव्यशुद्धिषु) सब द्रव्य शुद्धियों में (यावत) जब तक (तद्गन्धः. गन्धः. च. लेपः) उसका गन्ध और लेप रहे (तावत) तब तक (मृद्वारि. च. आदेयः) मिट्टी तथा पानी से उसको धोवे ॥

भाष्य-शुद्धि करते हुए भूल से अथवा बिना जाने अमेध्य-विष्ठा आदि से कोई स्थान दुर्गन्धित होजाय तो जब तक उस की दुर्गन्धि न जाय तब तक उसको मिट्टी तथा पानी से बराबर धोता रहे ॥

त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ।
अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्चवाचा प्रशस्यते ॥१२॥

पदा०-(देवाः) देवताओं ने (ब्राह्मणानां) ब्राह्मणों के (त्रीणि, पवित्राणि, अकल्पयन्) तीन पदार्थ पवित्र कहे हैं एक अदृष्ट=जिसकी अशुद्धि आंखों से न देखी हो अद्भिः. निर्णिक्तं) दूसरा जल से शुद्ध किया हुआ (च) और तीसरा (यच, वाचा, प्रशस्यते) जो ब्राह्मणों ने शुद्ध कह दिया हो ॥

आपः शुद्धा भूमिगता वैतृष्ण्यं यासुगोर्भवेत् ।
अव्याप्ताश्चेदमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः ॥१३॥

पदा०-(यासु. गोः. वैतृष्ण्यं. भवेत) जिस पानी में गाय की प्यास निवृत्त होसके और जो (अमेध्येन. अव्याप्ताः. चेत) मल मूत्रादि के संसर्ग से रहित (गन्धवर्णरसान्विताः) सुगन्धित. स्वच्छ तथा स्वादिष्ट हो ऐसा (आपः) जल (भूमिगताः) पृथिवी पर भरा हुआ (शुद्धाः) शुद्ध है ॥

नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्ये यच्च प्रसारितम् ।
ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः ॥९४॥

पदा०—(कारुहस्तः, नित्यं, शुद्धः) कारीगर का हाथ सदा शुद्ध है (च) और (यच, पण्ये, प्रसारितम्) जो पदार्थ बेंचने के निमित्त बाज़ार में रखा हो तथा (ब्रह्मचारिगतं, भैक्ष्यं) ब्रह्मचारी के हाथ में प्राप्त हुई भिक्षा (नित्यं, मेध्यं) सदा शुद्ध है (इति, स्थितिः) यह शास्त्र मर्यादा है ॥

शुचिरग्निः शुचिर्वायुः प्रवृत्तो हि बहिश्चरः ।
जलंशुचिविविक्तस्थं पन्था संचरणे शुचिः॥९५॥

पदा०—(शुचिः, अग्निः) अग्नि सर्वत्र पवित्र है और (बहिश्चरः, प्रवृत्तः वायुः, शुचिः) बाहर बहता हुआ वायु पवित्र है (विविक्तस्थं, जलं, शुचिः) एकान्त देश में भरा हुआ जल (हि) तथा (पन्थासंचरणे, शुचिः) चलते हुए मार्ग शुद्ध होते हैं ॥

ऊर्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि मेध्यानि सर्वशः ।
यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चैव मलाश्च्युताः ।९६।

पदा०—(नाभेः, ऊर्ध्वं, यानि, खानि) नाभि से ऊपर जो इन्द्रिय हैं (तानि, सर्वशः, मेध्यानि) वह सब पवित्र हैं (च) और (यानि, अधः) जो नाभि से नीचे हैं (तानि, अमेध्यानि) वह अपवित्र हैं, क्योंकि (देहात, एव, मलाः, च्युताः) शरीर से निकले मल अशुद्ध हैं जो नाभि के नीचे भाग से निकलते हैं॥

मक्षिका विप्रुषश्छाया गौरश्वः सूर्यरश्मयः ।
रजो भूर्वायुरग्निश्च स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत्॥९७॥

पदा०—(मक्षिकाः) मक्षिका=मक्खी (विप्रुषः) उड़ते हुए छोटे २ जलविन्दु (छाया) छाया (गौः, अश्वः) गौ, घोड़ा (सूर्यरश्मयः) सूर्य की किरण (रजः, भूः, वायुः, अग्निः, च) धूलि, पृथिवी, वायु और अग्नि यह सब (स्पर्शे, मेध्यानि, निर्दिशेत्) स्पर्श में पवित्र कथन किये हैं ॥

विण्मूत्रोत्सर्गशुद्ध्यर्थं मृद्वार्यादेयमर्थवत् ।
दैहिकानां मलानां च शुद्धिषु द्वादशस्वपि ॥९८॥

पदा०—(विण्मूत्रोत्सर्गशुद्ध्यर्थं) मल मूत्र के त्याग (च) और (दैहिकानां, द्वादशसु, मलानां) शरीर सम्बन्धी बारह मलों की (शुद्धिषु) शुद्धि के लिये (अर्थवत्, मृद्वारि, आदेयं) उतनी मिट्टी वा जल लेवे जितने से दुर्गन्धादि मिट जाय ॥

सं०—अब मनुष्य देह में १२ मलों का वर्णन करते हैं :—

वसा शुक्रमसृङ्मज्जा मूत्रविड् घ्राणिकर्णविट् ।
श्लेष्माश्रुदूषिकास्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥९९॥

पदा०—(वसा, शुक्रं, असृक्, मज्जा) वसा=चरबी, शुक्र=वीर्य, रक्त, मज्जा (मूत्रविट्, घ्राणकर्णविट्) मूत्र, विष्ठा, नाक का मैल, कान का मैल (श्लेष्माश्रुदूषिकास्वेदः) कफ, आंसू, आंख की कीचड़ और पसीना (द्वादशैते, नृणां, मलाः) यह बारह प्रकार के मल मनुष्य शरीर में होते हैं ॥

एका लिंगे गुदे तिस्रस्तथैकत्रकरे दश ।
उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता ॥१००॥

पदा०-(शुद्धिं, अभीप्सता) शुद्धि को चाहने वाला (एका, लिङ्गे) मूत्र त्यागकर एक वार उपस्थेन्द्रिय को (गुदे, तिस्रः) मल त्यागकर तीन वार गुदा को (तथा) इसी प्रकार (एकत्रकरे, दश) बायें हाथको दश वार और (उभयोः, सप्त, मृदः, दातव्याः) दोनों हाथों को मिला सातवार मिट्टी लगाकर जल से धोवे ॥

एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणम् ।
त्रिगुणं स्याद्वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥१०१॥

पदा०-(एतत्, शौचं, गृहस्थानां) यह पूर्वोक्त शुद्धि का क्रम गृहस्थियों का है (द्विगुणं, ब्रह्मचारिणं) ब्रह्मचारियों की इससे दूनी (त्रिगुणं, वनस्थानां) वानप्रस्थियों की तिगुनी (तु) और (चतुर्गुणं, यतीनां, स्यात्) यति=संन्यासियों की चौगुनी जाननी चाहिये ॥

कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा खान्याचान्त उपस्पृशेत् ।
वेदमध्येष्यमाणश्च अन्नमश्नंश्च सर्वदा ॥१०२॥

पदा०-(मूत्रं, वा, पुरीषं, कृत्वा) मलमूत्र त्याग के पश्चात् (सर्वदा, आचान्तः, खानि, उपस्पृशेत्) सदा शुद्ध होकर आचमन और चक्षुरादि इन्द्रियों का जलसे स्पर्श करे, और (वेदं, अध्येष्यमाणः, अन्नं, अश्नन्) वेद पढ़ने से पूर्व तथा भोजन समय सदा आचमन करे ॥

त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ।
शरीरं शौचमिच्छन् हि स्त्री शूद्रस्तु सकृत् सकृत् ॥१०३॥

पदा०-(शरीरं, शौचं, इच्छन्) शरीरशुद्धि की इच्छा

वाला द्विज भोजनोत्तर (पूर्वं, त्रिः, आचामेत) प्रथम तीन बार आचमन करे (ततः, मुखं, द्विः, प्रमृज्यात) फिर दो बार मुख धोवे (तु) और (स्त्री, शूद्रः) स्त्री तथा शूद्र (सकृत, सकृत) एक २ बार आचमन करें और मुख धोवें ॥

सं०—अब शूद्र के लिये नियम विधान करते हैं:—

शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्त्तिनाम् ।
वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टं च भोजनम् ॥१०४॥

पदा०—(न्यायवर्त्तिनां,शूद्राणां,मासिकं,वपनं,कार्यं) न्याय पर चलने वाले अर्थात् अपने धर्म में स्थित शूद्रों को मुण्डन महीने भर में एक बार कराना चाहिये (च) और (शौचकल्पः,वैश्यवत) सूतकादिकों में वैश्य के तुल्य शौच मानें (च) तथा (द्विजः, उच्छिष्टं, भोजनं) द्विजों के भोजन कर लेने के अनन्तर शेष भोजन शूद्र करे ॥

नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या विप्रुषोऽङ्गे पतन्ति याः ।
न श्मश्रूणि गतान्यास्यन्न दन्तान्तरधिष्ठितम्॥१०५॥

पदा०—(याः, मुख्याः, विप्रुषः, अङ्गे, पतन्ति) जो मुख से थूक के सूक्ष्म कण सम्भाषण करते समय शरीर पर गिरते हैं (न, उच्छिष्टं, कुर्वते) उनसे मनुष्य अशुद्ध नहीं होता (आस्यं, गतानि, श्मश्रूणि) मुख में गए हुए मूंछों के बाल तथा (दतान्तः, अधिष्ठितं, न) दांतों के भीतर रहने वाला अन्न झूंठा नहीं कहाता॥

स्पृशन्ति विन्दवः पादौ य आचामयतः परान् ।
भौमिकैस्ते समा ज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत् ॥१०६॥

पदा०-(परान्, आचामयतः) अन्य को आचमन कराते अथवा जल पिलाते समय (ये, विन्दवः, पादौ, स्पृशन्ति) जो बून्दें पैरों पर पड़ती हैं (ते, भौमिकैः, समाः, ज्ञेयाः) उन बून्दों को भूमि पर वर्षने वाली बून्दों के समान जानो (तैः, अप्रयतः, न, भवेत्) उन से पुरुष अशुद्ध नहीं होता है ॥

उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तः कथञ्चन ।
अनिधायैव तद्द्रव्यमाचान्तः शुचितामियात् ।१०७।

पदा०-(द्रव्यहस्तः, कथञ्चन, उच्छिष्टेन, संस्पृष्टः) कोई शुद्ध पदार्थ हाथ में लिये हुए किसी प्रकार उच्छिष्ट वा अशुद्धि से स्पर्श होजाय (तु) तो (अनिधाय, एव, तत्, द्रव्यं) उस पदार्थ को हाथ में ग्रहण किये हुए ही (आचान्तः, शुचितां, इयात्) आचमन करने से पवित्र होजाता है ॥

वान्तो विरक्तः स्नात्वा तु घृतप्राशनमाचरेत् ।
आचामेदेव भुक्त्वान्नं स्नानं मैथुनिनःस्मृतम्॥१०८।

पदा०-(वान्तः, विरक्तः, तु, स्नात्वा) वमन तथा जिसका मलत्याग हुआ हो वह स्नान करके (घृतप्राशनं, आचरेत्) थोड़ा घृत पीवे, और (अन्नं, भुक्त्वा, आचामेत्) भोजन करके वमन किया हो तो वह आचमन से ही शुद्ध होजाता है (एव) और (मैथुनिनः, स्नानं, स्मृतं) मैथुन करके स्नान से शुद्ध होता है यह शिष्टमर्यादा है ॥

सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च निष्ठीव्योक्त्वाऽनृतानि च।
पीत्वापोऽध्येष्यमाणश्च आचामेत्प्रयतोऽपि सन्॥१०९॥

पदा०—(सुप्त्वा, क्षुत्वा, च, भुक्त्वा, निष्ठीव्य, अनृतानि, उक्त्वा, च, अपः, पीत्वा) सोने, छींकने, भोजनकरने, थूकने, भूल से झूंठ बोलने और जल पीने के अनन्तर (च) तथा (अध्येष्यमाणः) वेदाध्ययन के प्रारम्भ में (प्रयतः, अपि, सन्, आचामेत) शुद्ध हुआ भी पुरुष आचमन अवश्य करे ॥

एष शौचविधिः कृत्स्नो द्रव्यशुद्धिस्तथैव च।
उक्तो वः सर्ववर्णानां स्त्रीणां धर्मान्निबोधत ॥११०॥

पदा०—हे महर्षिलोगो ! (वः) तुम्हारे प्रति (सर्ववर्णानां, एषः, कृत्स्नः, शौचविधिः) सब वर्णों की सम्पूर्ण शौचविधि (तथा) और (द्रव्यशुद्धिः, एव) द्रव्यों की शुद्धि (उक्तः) कथन की, अब (स्त्रीणां, धर्मान्, निबोधत) स्त्रियों के धर्म सुनोः—

सं०—अब स्त्रियों के धर्म कथन करते हैं :—

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता ।
न स्वातन्त्र्येण कर्त्तव्यं किञ्चित्कार्यं गृहेष्वपि॥१११॥

पदा०—(बालया,वा,युवत्या,वा, वृद्धया,वा, अपि, योषिता) बालक, युवती, अथवा वृद्ध स्त्री भी (गृहेषु) घरों में (किञ्चित्, अपि, कार्यं) कोई भी कार्य (स्वातन्त्र्येण,न, कर्त्तव्यं) स्वतन्त्रता पूर्वक न करे ॥

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने ।
पुत्राणां भर्त्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम् ॥११२॥

पदा०—(स्त्री, बाल्ये, पितुः, वशे) स्त्री बाल्यावस्था में पिता के अधीन (यौवने, पाणिग्राहस्य) युवावस्था में पति के अधीन और (प्रेते, भर्त्तरि, पुत्राणां) पति के न रहने पर पुत्रों के

अधीन रहे (स्वतन्त्रतां, न, भजेत) स्त्री किसी अवस्था में भी स्वतन्त्र न रहे ॥

पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद्विरहमात्मनः ।
एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्यादुभे कुले ॥११३॥

पदा०-(पित्रा, भर्त्रा, वा, अपि, सुतैः) पिता, पति तथा पुत्र से स्त्री (आत्मनः, विरहं, स्त्री, न, इच्छेत) पृथक् रहने की इच्छा कदापि न करे (हि) क्योंकि (एषां, विरहेण) इन से पृथक् रहने पर (उभे, कुले) स्त्री दोनों कुलों को (गर्ह्ये, कुर्यात) कलङ्कित कर देती है ॥

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ ११४ ॥

पदा०-(सदा, प्रहृष्टया) सर्वदा प्रसन्न चित्त (गृहकार्येषु, दक्षया) घर के कामों में चतुर (सुसंस्कृतोपस्करया) घर की सब वस्तुयें स्वच्छ और ठीक करके रखने वाली हो (च) और (व्यये, अमुक्तहस्तया, भाव्यं) व्यय करने में स्त्री सदा हाथ सकोड़ने वाली रहे अर्थात् स्त्री को सर्वदा परमितव्ययी होना चाहिये ॥

यस्मै दद्यात्पितात्वेनां भ्राताचानुमते पितुः ।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लंघयेत् ॥११५॥

पदा०-(एनां) इस कन्या को (पिता) पिता (च) अथवा (पितुः, अनुमते, भ्राता) पिता की अनुमति से भ्राता (यस्मै, दद्यात) जिस को देवे, कन्या को चाहिये कि (तं, जीवन्तं, शुश्रूषेत) उस अपने पति की जीवन पर्यन्त सेवा करे

(च) और (संस्थितं, न, लंघयेत्) पति के मरणान्तर उसका अपमान न करे अर्थात् कोई ऐसा कर्म न करे जिस से कुल कलङ्कित हो ॥

मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासां प्रजापतेः ।
प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम् ॥ ११६ ॥

पदा०—(आसां, विवाहेषु) इन स्त्रियों के विवाह में जो (स्वस्त्ययनं, प्रजापते, यज्ञः, मङ्गलार्थं, प्रयुज्यते) स्वस्त्ययन तथा प्राजापत्य होम किया जाता है वह कल्याण के निमित्त है (च) और (प्रदानं , स्वाम्यकारणं) कन्या दान स्वस्वामी पति के स्वामी होने का कारण है अर्थात् पति को स्वामित्व प्राप्त होता है ॥

अनृतावृतुकाले च मन्त्रसंस्कारकृत्पतिः ।
सुखस्य नित्यं दातेह परलोके च योषितः । ११७ ।

पदा०—(मन्त्रसंस्कारकृत्पतिः) मन्त्रसंस्कार=विवाह करने वाला पति (अनृतौ, ऋतुकाले, च, नित्यं, सुखस्य, दाता) ऋतु काल अथवा विना ऋतु काल के सदा ही सुख देने वाला है, पति की सेवा करने वाली (योषितः) स्त्री (इह) इस लोक (च) तथा (परलोके) परलोक में सुखी रहती है, इस लिये स्त्री को चाहिये कि :—

विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः ॥
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ॥११८॥

पदा०—(विशीलः) पति शील रहित (कामवृत्तः) कामी (वा) तथा (गुणैः, वा, परिवर्जितः) विद्यादि गुणों से रहित

भी हो परन्तु (साध्व्या, स्त्रिया) साध्वी=अच्छी स्त्री को चाहिये कि वह (देववत्, पतिः, सततं, उपचर्यः) सदा देवता के तुल्य पति की आराधना करे अर्थात् सर्वदा उसकी आज्ञापालन तथा सेवा में तत्पर रहे ॥

दानप्रभृति या तु स्याद्यावदायुः पतिव्रता ।
भर्तृलोकं न त्यजति यथैवारुन्धती तथा ॥११९॥

पदा०-(दानप्रभृति, या,तु, यावत्,आयुः, पतिव्रता, स्यात्) कन्यादान के समय से लेकर अपनी आयुपर्यन्त जा स्त्री पतिव्रता रहती है वह (यथा, अरुन्धती) अरुन्धती तारे के समान (भर्तृलोकं, तथा, एव, न, त्यजाति) सदा स्त्री धर्म में निश्चल रहती हुई भर्तृलोक को नहीं छोड़ती अर्थात् विधवा दशा में भी दुःख नहीं भोगती है ॥

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषिम् ।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥ १२० ॥

पदा०-(स्त्रीणां) स्त्रियों का (पृथक्) पति सेवा से अलग (नास्ति, यज्ञः, न, व्रतं, न, अपि, उपोषितं) न कोई यज्ञ, न व्रत और न कोई उपवास है (येन, पतिं, शुश्रूषते) केवल एक पति सेवा से ही (तेन, स्वर्गे, महीयते) स्वर्ग में पूजा हो जाती है अर्थात् सद्गति को प्राप्त होती है ॥

पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा ।
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किञ्चिदप्रियम् ॥१२१॥

पदा०-(पतिलोकं, अभीप्सन्ती) पतिलोक की इच्छा करने वाली (साध्वी, स्त्री) साध्वी स्त्री (जीवतः, वा, मृतस्य, वा)

जीवित वा मृत पति का (किञ्चित्, अपि, अप्रियं, न, आचरेत्) कोई अप्रिय आचरण न करे अर्थात् ऐसा कोई कर्म न करे जो जीवित पति को अप्रिय हो और मृत्यु पश्चात् भी व्यभिचारादि दोषों से सदा पृथक् रहे जिस से उसका पति कलङ्कित न हो, जैसाकि :—

कामं तु क्षपयेद्देहं शाकमूलफलैः शुभैः ।
न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥ १२२ ॥

पदा०—(पत्यौ, प्रेते) पति के मरणान्तर (शुभैः, शाकमूलफलैः, कामं, तु, क्षपयेत्, देहं) चाहे स्त्री पवित्र शाक, मूल, फलादि खाकर देह को कृश करदे (तु) परन्तु (परस्य,नामापि, न, गृह्णीयात्) दूसरे पुरुष का व्यभिचार की इच्छा से नाम भी न लेवे ॥

आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी ।
यो धर्म एकपत्नीनां कांक्षन्ती तमनुत्तमम् ॥१२३॥

पदा०—(यः, एकपत्नीनां, अनुत्तमं, धर्मः) स्त्रियों का जो पतिव्रता होना सर्वोत्तम धर्म है (तं) उस सर्वोत्तम धर्म को (काङ्क्षन्ती) इच्छा करती हुई स्त्री,पति के मरने पर (आमरणात्, क्षान्ता, नियता) क्षमा युक्त तथा नियमवाली होकर मरण पर्यन्त (ब्रह्मचारिणी, आसीत) ब्रह्मचारिणी रहे अर्थात् कभी भी मैथुन की इच्छा वाली न हो ॥

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् ।
दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसन्ततिम्॥१२४॥

पदा०—(कुमारब्रह्मचारिणां, विप्राणां, अनेकानि,सहस्राणि)

कुमारब्रह्मचारी ब्राह्मणों के कई हज़ार समुदाय (कुलसन्तति, अकृत्वा, दिवं, गतानि) कुल के निमित्त सन्तान उत्पन्न किये बिना ही स्वर्ग को गये हैं ॥

मृते भर्त्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥१२५॥

पदा०-(मृते, भर्त्तरि) पति के मरणानन्तर (अपुत्रापि, साध्वी, स्त्री) पुत्ररहित भी साध्वी स्त्री (ब्रह्मचर्ये, व्यवस्थिता) ब्रह्मचारिणी रहती हुई (यथा, ते, ब्रह्मचारिणः) पूर्वोक्त ब्रह्मचारियों के समान (स्वर्गं, गच्छति) स्वर्ग को प्राप्त होजाती है ॥

भाष्य-जिस प्रकार कुमारब्रह्मचारी ब्राह्मणों के कई हज़ार समुदाय बिना पुत्रोत्पादन किये स्वर्ग=सद्गति को प्राप्त हुए हैं इसी प्रकार साध्वी स्त्री पति के मरने पर ब्रह्मचर्य्य पूर्वक रहे तो उन ब्रह्मचारियों के समान अपुत्रा भी स्वर्ग को प्राप्त होती है ॥

अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्त्तारमतिवर्त्तते ।
सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते ॥१२६॥

पदा०-(तु) और (या, स्त्री) जो स्त्री (अपत्यलोभात्, भर्त्तारं, अतिवर्त्तते) सन्तान के लोभ से अन्य पति को ग्रहण करती है (सा, इह, निन्दां, अवाप्नोति) वह इस जगत् में निन्दित होती (च) तथा (पतिलोकात्, हीयते) पतिलोक से भी गिरजाती है अर्थात् दोनों लोकों से वञ्चित रहती है, या यों कहो कि उसके दोनों लोक बिगड़ जाते हैं ॥

नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्यन्यपरिग्रहे ।
न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्त्तोपदिश्यते॥१२७॥

पदा०-(इह) इस जगत् में (अन्यपरिग्रहे, च, अपि, अन्योत्पन्ना, प्रजा, नास्ति) दूसरे पुरुष से व्यभिचारादि द्वारा उत्पन्न हुई सन्तान शास्त्रानुकूल उसकी नहीं है और न दूसरी स्त्री में उत्पन्न करने वाले की है (च) और (न, क्वचित्) न कहीं (साध्वीनां) साध्वी स्त्रियों का (द्वितीयः, भर्त्ता) दूसरा विवाहित पति (उपदिश्यते) कहा है ॥

पतिं हित्वापकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते ।
निन्द्यैव सा भवेल्लोके परपूर्वेति चोच्यते ॥ १२८ ॥

पदा०-(या) जो स्त्री (स्वं, अपकृष्टं, पतिं, हित्वा) अपने निकृष्ट पति को छोड़कर (उत्कृष्टं, निषेवते) अन्य उत्कृष्ट=रूपवान्, धनवान् आदि गुणयुक्त पति का सेवन करती है (सा, लोके, निन्द्यैव, भवेत्) उसकी लोक में निन्दा होती है (च) और (परपूर्वा, इति, उच्यते) लोग " परपूर्वा "= दो पति की स्त्री है, इस निन्दित नाम से उसको पुकारते हैं ॥

व्यभिचारात्तु भर्त्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम् ।
शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥१२९॥

पदा०-(भर्त्तुः, व्यभिचारात्, स्त्री) परपुरुष के भोग से स्त्री (लोके, निन्द्यतां, प्राप्नोति) लोक में निन्दा को प्राप्त होती तथा (पापरोगैः, पीड्यते) अनेक कुष्ठादि पाप रोगों से पीड़ित(च)और (शृगालयोनिं, प्राप्नोति) मरने पर शृगाल=स्यार की योनि को प्राप्त होती है ॥

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ।
सा भर्तृलोकमवाप्नोति सद्भिःसाध्वीति चोच्यते ॥१३०॥

पदा०—(या) जो स्त्री (मनोवाग्देहसंयता) मन, वाणी तथा देह से (पतिं, नाभिचरति) अपने पति को दुःखित नहीं करती (सा) वह (भर्तृलोकं, अवाप्नोति) पतिलोक को प्राप्त होती (च) और (सद्भिः, साध्वी, इति, उच्यते) सज्जन पुरुष उसको साध्वी=भली कहते हैं ॥

अनेन नारीवृत्तेन मनोवाग्देहसंयता ।
इहाग्र्यां कीर्त्तिमाप्नोति पतिलोकं परत्र च ॥ १३१॥

पदा०—(अनेन, नारीवृत्तेन) पूर्वोक्त धर्म से (मनोवाग्देह-संयता) मन, वाणी तथा देह का संयम करने वाली स्त्री (इह, अग्र्यां, कीर्त्ति) यहां श्रेष्ठ कीर्ति (च) और (परत्र, पतिलोकं, आप्नोति) परलोक में पतिलोक को प्राप्त होती है ॥

एवं वृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम् ।
दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥ १३२ ॥

पदा०—(एवं, वृत्तां, सवर्णां, स्त्रीं) पूर्वोक्त उत्तम व्रत वाली सवर्णा स्त्री (पूर्वमारिणीं) अपने पति से पूर्व मरजावे तो (धर्मवित, द्विजातिः) धर्मज्ञ ब्राह्मण (अग्निहोत्रेण, यज्ञ-पात्रैः, च, दाहयेत) अग्निहोत्र और यज्ञपात्रों के सहित उसका अन्त्येष्टिसंस्कार करें ॥

भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीनन्त्यकर्मणि ।
पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥ १३३ ॥

पदा०-(पूर्वमारिण्यै,भार्यायै)पूर्व मृत स्त्री की (अन्त्यकर्मणि, अग्नीन्, दत्त्वा) अन्त्येष्टि में अग्नि देकर (पुनः, दारक्रियां, कुर्यात्) गृहस्थाश्रम के निमित्त पुनः विवाह करे तो (पुनः, आधानं, एव.च) अग्निहोत्र भी पुनः स्थापन करे ॥

भाष्य-पूर्वोक्त श्लोकों में पुरुषों के साथ ही स्त्रियों का भी धर्म वर्णन करते हुए यह भले प्रकार दर्शाया गया है कि स्त्री विधवा होकर ब्रह्मचर्य्यपूर्वक रहे परपुरुष का कदापि ध्यान न करे,अधिक क्या जो इस प्रकार का व्रत धारण करने वाली तथा पतिसेवा में सदा तत्पर रहने वाली स्त्रियां हैं उन्हीं के लिये स्वर्ग का विधान किया है, और परपुरुषसङ्ग=व्यभिचार की भले प्रकार निन्दा करते हुए यह वर्णन किया है कि व्यभिचारिणी स्त्रियों की लोक में निन्दा होती उनको कई प्रकार के पापरोग=कुष्ठ तथा उपदंशादि रोग होते जिनसे वह इस लोक में भी नरकगामिनी होती हैं, जैसाकि प्रत्यक्ष देखाजाता है और यदि कोई स्त्री पुरुष सन्तान के लोभ से उक्त पाप करते हैं तो अन्य से उत्पन्न हुई सन्तान स्त्री पुरुष दोनों में से एक की भी नहीं होती यह शास्त्रमर्यादा है,हां नियम-पूर्वक विधियुक्त नियोग से उत्पन्न हुई सन्तति दोनों की सन्तति होती है,और१३३ वें श्लोक में जो स्त्री के मरने पर पुनर्विवाह का विधान कियाहै उसका भाव यह हैकि यदि पुरुष अक्षतवीर्य्य हो तो पुनर्विवाह का अधिकारी है अर्थात् अक्षतवीर्य्य पुरुष पुनर्विवाह करना चाहे तो अपने गुण कर्मानुसार अक्षतयोनि स्त्री से विवाह कर सकता है परन्तु अग्निहोत्र भी पुनः स्थापन करना होगा ॥

अनेन विधिना नित्यं पञ्चयज्ञान्न हापयेत् ।
द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥१३४॥

पदा०—(अनेन, विधिना) इस पूर्वोक्त विधि से (कृतदारः) विवाह करने वाला द्विज (द्वितीयं, आयुषः, भागं) आयु का दूसरा भाग (गृहे, वसेत्) गृहस्थाश्रम में व्यतीत करे, और (नित्यं, पञ्चयज्ञान्, न, हापयेत्) नित्यकर्तव्य पञ्चमहायज्ञों का कदापि त्याग न करें ॥

भाष्य—पूर्वोक्त प्रकार से विवाह करने वाले द्विज का यह परमकर्तव्य है कि वह गृहस्थाश्रम में रहता हुआ नित्य नियम पूर्वक पञ्चमहायज्ञों को अवश्य करता रहे, क्योंकि गृहस्थ को सद्गति देने वाले यही पञ्चयज्ञ हैं ॥

इति मानवार्य्यभाष्ये

पञ्चमोऽध्यायः

समाप्तः

ओ३म्

अथ षष्ठोऽध्यायः

सं०—अब वानप्रस्थाश्रम का वर्णन करते हैं:—

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः ।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥१॥

पदा०—(स्नातकः, द्विजः) स्नातक द्विज (एवं, विधिवत्, गृहाश्रमे, स्थित्वा) पञ्चमाध्याय में कही विधि के अनुसार गृहस्थाश्रम को पूर्ण करके (यथावत्, विजितेन्द्रियः) शास्त्रानुसार जितेन्द्रियता से (नियतः, तु) नियमपूर्वक (वने, वसेत्) वन में वसे॥

भाष्य—स्नातकद्विज=ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदों का अध्ययन करके जिसका समावर्तनसंस्कार हुआ हो उसका यह कर्तव्य है कि वह पीछे विधान किये अनुसार गृहस्थाश्रम में रहकर पश्चात् वानप्रस्थाश्रम को धारण कर नियमपूर्वक जितेन्द्रियता से वन में निवास करे॥

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥

पदा०—(यदा, तु, गृहस्थः) जब गृहस्थ (वलीपलितं, आत्मनः) अपने देह की त्वचा को ढीली, शिर के केश श्वेत (च) और (अपत्यस्य, एव, अपत्यं, पश्येत्) पुत्र के पुत्र अर्थात् पौत्र को देखके (तदा, अरण्यं, समाश्रयेत्) तब वानप्रस्थाश्रम को धारण करके वन में वास करे ॥

सं०—अब वानप्रस्थ के वन जाने की विधि कथन करते हैं:—

सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा॥३॥

पदा०—(ग्राम्यं, आहारं, सर्वं, च, एव, परिच्छदं, सन्त्यज्य) ग्राम का भोजन तथा सब सामग्री त्याग (भार्यां, पुत्रेषु, निक्षिप्य) स्त्री को पुत्रों के अधीन छोड़ (वा) अथवा (सहैव, वनं, गच्छेत्) साथ लेकर वन को प्रस्थान करे॥

भाष्य—ग्राम का भोजन=दाल, चांवल, मिठाई तथा पक्वान्नादि और सब सामग्री=धन, मकान, गाय, घोड़ा तथा शय्या आदि को त्याग और स्त्री की इच्छानुसार उसको पुत्रों के समीप छोड़ अथवा साथ लेकर वन को गमन करे॥

अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः॥४॥

पदा०—(अग्निहोत्रं) अग्निहोत्र (च) और (गृह्यं, अग्निपरिच्छदं) गार्हपत्याग्नि के उपकरण यज्ञपात्रों को (समादाय) साथ लेकर (ग्रामात्, अरण्यं, निःसृत्य) ग्राम से बाहर निकल (नियतेन्द्रियः, निवसेत्) इन्द्रियों को स्वाधीन करता हुआ वन में निवास करे॥

मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा।
एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम्॥५॥

पदा०—(विविधैः, मेध्यैः, मुन्यन्नैः) नानाप्रकार के मुनियों के पवित्र अन्न (वा) अथवा (शाकमूलफलेन, एव) शाक, मूल

और फलों से ही (एतान्, एव, महायज्ञान्, विधिपूर्वकं, निर्वपेव) इन पञ्चमहायज्ञों को विधिपूर्वक नित्य करे ॥

वसीत चर्म चीरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा ।
जटाश्च बिभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च ॥६॥

पदा०-(चर्म,चीरं,वा,वसीत) मृगचर्म, वस्त्र, वृक्षों के वल्कल अथवा तृणों के वस्त्र धारण करे (सायं, प्रगे, स्नानाव) सायं प्रातः स्नान (च) और (जटाः, श्मश्रुलोमनखानि, च, नित्यं, विभृयाव) जटा, दाढ़ी, रोम और नख इनको सदा धारण करे ॥

यद्भक्ष्यं स्यात्ततोदद्याद्बलिं भिक्षां च शक्तितः ।
अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान् ॥७॥

पदा०-(यव, भक्ष्यं, स्याव) जो भोजन अपने खाने के निमित्त हो (ततः) उसी में से (बलिं) बलिवैश्वदेव (च) तथा (शक्तितः, भिक्षां, दद्याव) शक्ति के अनुसार भिक्षा देवे और (आश्रमागतान्) अपने आश्रम पर आये हुए अतिथियों का (अम्मूलफलभिक्षाभिः, अर्चयेव) जल, मूल, फल तथा भिक्षा से सत्कार करे, और :—

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥८॥

पदा०-(दान्तः, मैत्रः, समाहितः) सब से मित्रभाव रखता हुआ जितेन्द्रिय रहकर (स्वाध्याये, नित्ययुक्तः, स्याव) वेदाध्ययन में सदा तत्पर रहे (दाता, नित्यं, अनादाता) सदा दान करता रहे, लेवे नहीं,और (सर्वभूतानुकम्पकः) प्राणिमात्र पर दया करने वाला हो ॥

वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि ।
दर्शमस्कन्दयन्पर्व पौर्णमासं च योगतः ॥९॥

पदा०—(योगतः) ठीक समय पर (दर्श, पौर्णमासं, च) दर्श=अमावस्या और पूर्णिमा के (पर्व) पर्वों को (अस्कन्दयन्) न त्यागता हुआ (यथाविधि, वैतानिकं, अग्निहोत्रं, च, जुहुयात्) शास्त्रानुसार वैतानिक * अग्निहोत्र किया करे ॥

ऋक्षेष्ट्याग्रायणं चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत् ।
उत्तरायणं च क्रमशो दाक्षस्यायनमेव च ॥ १० ॥

पदा०—(एव) निश्चयकरके (ऋक्षेष्ट्याग्रायणं, चातुर्मास्यानि) नक्षत्रेष्टि, नवसस्येष्टि, चातुर्मास्येष्टि (उत्तरायणं, च, क्रमशः,दाक्षस्यायनं, च, आहरेत्) उत्तरायणेष्टि और दक्षिणायनेष्टि इन सब इष्टियों को क्रमपूर्वक वन में यथाप्राप्त पदार्थों से करे ॥

वासन्तशारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः ।
पुरोडाशांश्चरूंश्चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक् ॥ ११ ॥

पदा०—(स्वयं, आहृतैः, मेध्यैः, वासन्तशारदैः, मुन्यन्नैः) वसन्त ऋतु=चैत्र, वैशाख और शरदऋतु=क्वार, कार्त्तिक में उत्पन्न हुए मुनि अन्नों को स्वयं लाकर (पुरोडाशान्, चरून्, चैव) पुरोडाश और चरू बना (विधिवत्, पृथक्, निर्वपेत्) विधिपूर्वक पृथक् २ रख कर होम करे ॥

---

*गार्हपत्य और दाक्षिणाग्नि को मिलाने का नाम " वितान " और उसमें किये अग्निहोत्र का नाम " वैतानिक " अग्निहोत्र है ॥

देवताभ्यस्तु तद्धुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः ।
शेषमात्मनि युञ्जीत लवणं च स्वयं कृतम् ॥ १२ ॥

पदा०—(वन्यं, तत्, मेध्यतरं, हविः, देवताभ्यः, तु, हुत्वा) वन में उत्पन्न हुआ अतिपवित्र हविष्यान्न को देवताओं के निमित्त हवन करके (च) पुनः (शेषं, लवणं, स्वयंकृतं, आत्मनि, युञ्जीत) यज्ञ से बचे हुए अन्न में लवण मिलाकर आप भोजन करे ॥

स्थलजौदकशाकानि पुष्पमूलफलानि च ।
मेध्यवृक्षोद्भवान्यद्यात्स्नेहाँश्च फलसम्भवान् ॥१३॥

पदा०—(स्थलजौदकशाकानि) भूमि वा जल में उत्पन्न हुए शाक (च) तथा (मेध्यवृक्षोद्भवानि, पुष्पमूलफलानि) पवित्र वृक्षों से उत्पन्न हुए पुष्प, फल, मूल (च) और (फलसम्भवान्, स्नेहान्, अद्यात्) शुद्ध फलों से उत्पन्न हुए स्नेह=घृत, तैल, इन सब पदार्थों का वानप्रस्थ भोजन करे ॥

सं०—अब वानप्रस्थ के लिये अभक्ष्य पदार्थों का वर्णन करते हैं:—

वर्जयेन्मधुमांसं च भौमानि कवकानि च ।
भूस्तृणं शिग्रुकं चैव श्लेष्मातकफलानि च ॥१४॥

पदा०—(मधुमांसं, च, भौमानि, कवकानि च) मादकद्रव्य, मांस, छत्राक, अपवित्र भूमि के शाक (भूस्तृणं, शिग्रुकं, चैव) मालवा देश में प्रसिद्ध भूस्तृण नामक शाक, सेंहजना (च) तथा (श्लेष्मातकफलानि) श्लेष्मातक=लिसोड़ा आदि अभक्ष्य पदार्थों को (वर्जयेत्) वानप्रस्थ न खाय ॥

त्यजेदाश्वयुजे मासि मुन्यन्नं पूर्वसञ्चितम् ।
जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च ॥१५॥

पदा०-(पूर्वसञ्चितं, मुन्यन्नं, च, शाकमूलफलानि) पहले से सञ्चय किये हुए स्वयं उत्पन्न होने वाले मुनि अन्न तथा शाक, मूल, फल (च) और(जीर्णानि,वासांसि)पुराने वस्त्रों को वानप्रस्थ (आश्वयुजे, मासि, त्यजेत्) आश्विन=कार मास में त्याग देवे, क्योंकि वर्षाऋतु के अन्त में यह सब पदार्थ विकारी होजाते हैं॥

न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केनचित् ।
न ग्रामजातान्यार्त्तोऽपि मूलानि च फलानि च ॥१६॥

पदा०-(आर्त्तः, अपि) क्षुधा से पीड़ित हुआ भी (फालकृष्टं, केनचित्, उत्सृष्टं, अपि, न, अश्नीयात्) हल से जुते खेत में उत्पन्न हुआ अन्न किसी ने त्याग भी दिया हो तब भी उस को न खाय (च) और (ग्रामजातानि, मूलानि, फलानि, च) ग्राम में उत्पन्न हुए फल मूलों को भी भक्षण न करे ॥

अग्निपक्काशनो वा स्यात्कालपक्कभुगेव वा ।
अश्मकुट्टो भवेद्वापि दन्तोलूखलिकोऽपि वा ॥१७॥

पदा०-(अग्निपक्काशनः) वानप्रस्थ द्विज अग्नि से पका हुआ अन्न खावे (वा) अथवा (कालपक्कभुक्, एव, स्यात्) समय पर पके हुए फल (वा) वा (अश्मकुट्टः, अपि) पत्थर से पिसा हुआ (अपि, वा) अथवा (दन्तोलूखलिकः, भवेत्) उखली मूसल से कुटा हुआ वा दांतों से पीस कर खाय, जिससे उसके पेट में कोई विकार उत्पन्न न हो ॥

सद्यः प्रक्षालको वा स्यान्माससञ्चयिकोऽपि वा ।
षण्मासनिचयो वा स्यात्समानिचय एव वा ॥१८॥

पदा०-(सद्यः, प्रक्षालकः, वा, स्यात्) वानप्रस्थ तत्काल क्षुधानिवृत्ति योग्य (वा) वा (माससञ्चयिकः, अपि, वा, षण्मासनिचयः) एक मास अथवा छः मास (वा) अथवा (समानिचयः, एव, स्यात्) एक वर्ष तक का अन्न अपने समीप संचय करने वाला हो, अधिक नहीं ॥

नक्तं चान्नं समश्नीयाद्दिवा वाहृत्य शक्तितः ।
चतुर्थकालिको वा स्यात्स्याद्वाप्यष्टमकालिकः ॥१९॥

पदा०-(शक्तितः) अपनी शक्ति के अनुसार (नक्तं) रात को (दिवा) दिन में (चतुर्थकालिकः,वा, स्यात्) अथवा दिन के चौथे भाग में (अपि, वा) अथवा (अष्टमकालिकः,स्यात्) दिन के आठवें भाग में (अन्नं, आहृत्य, समश्नीयात्) अन्न लाकर एकवार ही भोजन करे ॥

चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्लकृष्णे च वर्त्तयेत् ।
पक्षान्तयोर्वाप्यश्नीयाद्यवागूं क्थितां सकृत् ॥ २० ॥

पदा०-(वा) अथवा (चान्द्रायणविधानैः, शुक्लकृष्णे, च, वर्त्तयेत्) चान्द्रायण के विधान से शुक्ल तथा कृष्णपक्ष में व्रत करे (वा) अथवा (पक्षान्तयोः) पक्षों के अन्त में अमावस्या और पौर्णमासी को (क्थितां, यवागूं, सकृत्, अश्नीयात्) यवागू=जौ की पकी हुई लप्सी का दिन में एक वार भोजन करे ॥

पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्त्तयेत्सदा ।
कालपक्कैः स्वयंशीर्णैर्वैखानसमते स्थितः ॥ २१ ॥

पदा०—(वैखानसमते, स्थितः) वैखानस ऋषि के मत में स्थित वानप्रस्थ (केवलैः, कालपक्कैः) समय पर पके हुए (अपि, वा) अथवा (स्वयंशीर्णैः, पुष्पमूलफलैः) स्वयं पक कर गिरे हुए पुष्प, मूल और फलों से (सदा, वर्त्तयेत्) वानप्रस्थाश्रम में रहने वाला सदा निर्वाह करे ॥

भूमौ विपरिवर्त्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम् ।
स्थानासनाभ्यां विहरेत्सवनेषूपयन्नपः ॥ २२ ॥

पदा०—(भूमौ,विपरिवर्त्तेत) वानप्रस्थ भूमि में शयनादि करे (वा) अथवा (प्रपदैः, दिनं, तिष्ठेत्) दिन भर खड़ा रहे (स्थानासनाभ्यां, विहरेत्) स्थान तथा आसन पर चले फिरे और (सवनेषु)प्रातः मध्याह्न तथा सायंकाल तीनों समय (अपः,उपयन्) जल से स्नान करे ॥

ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः ।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयँस्तपः ॥ २३ ॥

पदा०—(तु) और (ग्रीष्मे, पञ्चतपाः, स्यात्) ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि*तपे (वर्षासु, अभ्रावकाशिकः) वर्षा ऋतु में नग्न रहे (तु) तथा (हेमन्ते, आर्द्रवासाः) हेमन्त ऋतु में गीले वस्त्र धारण करे (तपः, वर्धयन्, क्रमशः) इस प्रकार क्रम से तप की वृद्धि करता हुआ द्विज वानप्रस्थाश्रम में निवास करे ॥

---

* चारो ओर अग्नि रक्खे और ऊपर से सूर्य्य, यह पञ्चाग्नि है ॥

उपस्पृशँस्त्रिषवणं पितॄन्देवाँश्च तर्पयेत् ।
तपश्चरंश्चोग्रतरं शोषयेद्देहमात्मनः ॥ २४ ॥

पदा०-(त्रिषवणं, उपस्पृशन्) त्रिकालस्नान करके (पितॄन्, देवान्, च, तर्पयेत्) देवों और पितरों का तर्पण=इनको तृप्त करे (च) और (उग्रतरं, तपः, चरन्) उग्रतर तप तपता हुआ (आत्मनः, देहं, शोषयेत्) अपने शरीर की स्थूलता को सुखा देवे ॥

अग्नीनात्मनि वैतानान्समारोप्य यथाविधि ।
अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः ॥ २५ ॥

पदा०-(वैतानान्, अग्नीन्, यथाविधि, आत्मनि, समारोप्य) शास्त्रविधि के अनुसार वैतान नामक अग्नियों को शरीर में आरोपण करके वानप्रस्थ (अनग्निः, अनिकेतः) घर तथा भौतिकाग्नि को त्यागकर (मूलफलाशनः, मुनिः, स्यात्) वन के फल, मूल भक्षण करता हुआ मौनधारण करके ईश्वर के ध्यान में स्थित रहे ॥

अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारीधराशयः ।
शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः ॥ २६ ॥

पदा०-(सुखार्थेषु, अप्रयत्नः) सुख के लिये प्रयत्न न करे (ब्रह्मचारी, धराशयः) ब्रह्मचर्य=स्त्रीसंभोग से पृथक् रहकर पृथिवी पर शयन करे (च) और (वृक्षमूलनिकेतनः, शरणेषु, अममः) वृक्षों की जड़ों में अपना निवास स्थान बनावे परन्तु उनमें भी ममता न करे जिससे त्यागने में क्लेश हो ॥

तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत् ।
गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥ २७ ॥

पदा०—(यात्रिकं) अपनी प्राणयात्रार्थ (तापसेषु, एव,विप्रेषु) तपस्वी ब्राह्मणों (अन्येषु, वनवासिषु) अन्य वनवासियों (च) और (गृहमेधिषु, द्विजेषु) गृहस्थ द्विजों से (भैक्षं, आहरेत्) भिक्षा मांगले ॥

ग्रामादाहृत्य वाश्नीयादष्टौ ग्रासान्वने वसन् ।
प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा ॥ २८ ॥

पदा०—(वा) अथवा (वने, वसन्, ग्रामात्, अष्टौ, ग्रासान्, आहृत्य) वानप्रस्थ वन में वसता हुआ ग्राम से भोजन के आठ ग्रास लाकर (पुटेन, शकलेन, एव, पाणिना, प्रतिगृह्य, अश्नीयात्) पत्ते, सकोरे वा हाथ पर रखकर भोजन करे ॥

एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् ।
विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥२९॥

पदा०—(विप्रः, वने, वसन्) वानप्रस्थ द्विज वन में वसता हुआ (एताः,अन्याः, च,दीक्षाः) इन पूर्वोक्त नियमों तथा अन्य दीक्षाओं (च)और(आत्मसंसिद्धये) आत्मा की सिद्धि के निमित्त (विविधाः, औपनिषदीः, श्रुतीः, सेवेत) अनेक प्रकार की उपनिषद्श्रुतियों का आत्मज्ञान के लिये नित्य अभ्यास करे, जिनको :—

ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव गृहस्थैरेव सेविताः ।
विद्यातपोविवृद्ध्यर्थं शरीरस्य च शुद्धये ॥३०॥

पदा०-(ऋषिभिः, ब्राह्मणैः,च. एव,गृहस्थैः) पूर्वज ऋषियों ब्राह्मणों और गृहस्थों ने (विद्यातपाविवृद्ध्यर्थं.शरीरस्य.च,शुद्धये) विद्या तथा तप की वृद्धि और शरीर की शुद्धि के लिये (सेविताः) सेवन किया है ॥

अपराजितां वास्थाय व्रजेद्दिशमजिह्मगः ।
आनिपाताच्छरीरस्य युक्तो वार्यनिलाशनः ॥३१॥

पदा०-(युक्तः, वार्यनिलाशनः) समाधि में स्थित जल,वायु भक्षण करता हुआ (आनिपातात्, शरीरस्य) मरणपर्यन्त (अजिह्मगः) सीधी गति से (अपराजितां, दिशं, वा, आस्थाय, व्रजेत्) कभी पराजित न होने वाली दिशा का आश्रय करके गमन करे ॥

आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वान्यतमया तनुम् ।
वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते ॥३२॥

पदा०-(आसां, महर्षिचर्याणां, अन्यतमया, तनुं, त्यक्त्वा) इन पूर्वोक्त महर्षियों के अनुष्ठानों में से कोई अनुष्ठान करके (विप्रः) ब्राह्मणशरीर को त्यागकर (वीतशोकभयः) शोक तथा भय से रहित हो (ब्रह्मलोके,महीयते) ब्रह्मलोक=मोक्ष को प्राप्त होता है,अर्थात् पूर्वोक्त नियम तथा धीरे २ तप की वृद्धि करता हुआ वानप्रस्थ सहनशील हुआ २ परमधाम मोक्ष को प्राप्त होता है ॥

सं०-अब संन्यासाश्रम का वर्णन करते हैं:-

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान्परिव्रजेत् ॥३३॥

पदा०-(एवं, आयुषः, तृतीयं, भागं, वनेषु, विहृत्य)उपरोक्त प्रकार से आयु के तृतीयभाग को वनों में विहार करता हुआ व्यतीत करे (च) पुनः (आयुषः, चतुर्थं, भागं) आयु के चौथे भाग में (सङ्गान्, त्यक्त्वा, परिव्रजेत्) सम्पूर्ण सांसारिक विषयों तथा सम्बन्धियों को त्यागकर संन्यासाश्रम धारण करे क्योंकिः-

आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः ।
भिक्षाबलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्धते ॥३४॥

पदा०-(जितेन्द्रियः) जितेन्द्रिय (हुतहोमः) हवन करने वाला (भिक्षाबलिपरिश्रान्तः) अतिथियों को भिक्षा तथा बलि-वैश्वदेवादि कर्म करने से थका हुआ (आश्रमात्, आश्रमं, गत्वा) क्रमपूर्वक तीन आश्रमों को पूर्ण करके अर्थात् ब्रह्मचर्य्य से गृहस्थ उससे वानप्रस्थ और वानप्रस्थ से (प्रव्रजन्) संन्यासाश्रम को धारण करने वाला(प्रेत्य,वर्धते) मरकर मोक्ष को प्राप्त होता है॥

सं०-अब संन्यास विधि का विधान करते हैं :—

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ।
अनपाकृत्य मोक्षन्तु सेवमानो व्रजत्यधः ॥३५॥

पदा०-(त्रीणि, ऋणानि, अपाकृत्य, मोक्षे, मनः,निवेशयेत्) तीन ऋणों को चुकाकर मोक्ष में मन लगावे (तु) परन्तु (अनपाकृत्य) ऋणों को विना चुकाये जो (मोक्षं, सेवमानः) मोक्ष की इच्छा करता है वह (अधः, व्रजति) नीचे गिर जाता है ॥

सं०-अब तीन ऋणों का वर्णन करते हैं :—

अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्राँश्चोत्पाद्य धर्मतः ।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥३६॥

पदा०-(विधिवत्, वेदान्, अधीत्य) साङ्गोपाङ्ग विधिपूर्वक वेदों को पढ़कर (च) और (धर्मतः, पुत्रान्, उत्पाद्य) धर्मपूर्वक सन्तानोत्पत्ति करके (च) तथा (शक्तितः) शक्ति के अनुसार (यज्ञैः, इष्ट्वा) यज्ञ करके (मोक्षे, मनः, निवेशयेत्) मोक्ष में मन लगावे ॥

भाष्य-विधिवत्=ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदों का अध्ययन करके "ऋषिऋण" अपने गुणकर्मानुसार सवर्णा स्त्री से विवाह कर उत्तम सन्तानोत्पत्ति करके "पितृऋण" और अग्निहोत्र तथा ज्योतिष्टोमादि यज्ञ करके "देवऋण" इन तीनों ऋणों से निवृत्त होकर मोक्ष में मन लगावे ॥

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान् ।
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥ ३७ ॥

पदा०-(द्विजः, वेदान्, अनधीत्य) जो द्विज सांगोपांग वेदों को विना पढ़े (तथा) तथा (सुतान्, अनुत्पाद्य) विना सन्तानोत्पत्ति किये (च) और (यज्ञैः, चैव, अनिष्ट्वा) यज्ञों के किये विना ही (मोक्षं, इच्छन्, अधः, व्रजति) मोक्ष की इच्छा करता है वह नीचे गिरता है ॥

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् ॥३८॥

पदा०-(सर्ववेदसदक्षिणां, प्राजापत्यां, इष्टिं, निरूप्य) अपना सर्वस्व धन जिसकी दक्षिणा में देदिया जाता है ऐसी प्रजा-

पति देवता के उद्देश्य वाली " प्राजापत्य " इष्टि करके और (आत्मनि, अग्नीन्, समारोप्य) अपने में अग्नियों को आरोपण करके (ब्राह्मणः, गृहात्, प्रव्रजेत्) ब्राह्मण वानप्रस्थ से संन्यास धारण करे ॥

यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् ।
तस्य तेजोमयालोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ ३९ ॥

पदा०-(यः, सर्वभूतेभ्यः, अभयं, दत्त्वा) जो सब प्राणियों को अभय दान देकर (गृहात्, अभयं, व्रजति) निर्भय हो संन्यासाश्रम में जाता है (तस्य, ब्रह्मवादिनः) उस ब्रह्मनिष्ठ संन्यासी को (तेजः, मयाः, लोकाः, भवन्ति) सत्त्वगुण प्रधान लोक प्राप्त होते हैं अर्थात् उसको रजोगुण, तमोगुण प्रधान दुःख प्राप्त नहीं होते ॥

यस्मादण्वपि भूतानां द्विजान्नोत्पद्यते भयम् ।
तस्यदेहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥४०॥

पदा०-(यस्मात्, द्विजात्, भूतानां, अण्वपि, भयं, नोत्पद्यते) जिस द्विज से प्राणियों को थोड़ा भी भय उत्पन्न नहीं होता (तस्य) उसको भी (देहात्, विमुक्तस्य) जन्मान्तर में (कुतश्चन, भयं, नास्ति) कहीं भय प्राप्त नहीं होता अर्थात् वह निर्भय होकर मोक्ष का आनन्द भोगता है ॥

अगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः ।
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ ४१ ॥

पदा०-(पवित्रोपचितः, मुनिः) जप, तप आदि कर्मों से

पवित्र हुआ मौन व्रतधारी द्विज (आगारात्, अभिनिष्क्रान्तः) घर से निकलते समय (समुपोढेषु, कामेषु, निरपेक्षः, परिव्रजेत्) दण्ड कमण्डलु आदि पदार्थ जिनसे विशेष प्रेम हो उनमें भी निरपेक्ष=उदासीन भाव करता हुआ संन्यास धारण करे ॥

एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायवान् ।
सिद्धिमेकस्य संपश्यन्न जहाति न हीयते ॥४२॥

पदा०—(एकस्य,सिद्धिं,संपश्यन्) एकाकी=सर्वसंगरहित को ही मोक्ष का आनन्द प्राप्त होता है ऐसा जानता हुआ संन्यासी(सिद्ध्यर्थं, असहायवान्, एकः, एव, नित्यं, चरेत्) मोक्ष सिद्धि के निमित्त सर्वदा सहायक रहित अकेला ही विचरे, ऐसा करने वाले को (न, जहाति, न, हीयते) संयोग, वियोग से होने वाले सुख, दुःख नहीं सताते अर्थात् वह एकरस होजाता है ॥

अनग्निरनिकेतः स्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ।
उपेक्षकोऽशंकुसुको मुनिर्भावसमाहितः ॥४३॥

पदा०—(भावसमाहितः, मुनिः) जितेन्द्रिय तथा मौनरहता हुआ संन्यासी (अनग्निः, अनिकेतः, उपेक्षकः, अशंकुसुकः, स्यात्) गार्हपत्यादि अग्नि, निज का घर और सम्पूर्ण पदार्थों में उदासीन भाव से रहकर केवल (अन्नार्थं, ग्रामं, आश्रयेत्) भिक्षा के निमित्त ही ग्राम में जावे ॥

सं०—अब मुक्तपुरुष का लक्षण कथन करते हैं :—

कपालं वृक्षमूलानि कुचैलमसहायता ।
समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥४४॥

पदा०-(कपालं, वृक्षमूलानि) भोजनार्थ मिट्टी का खपरा शयनार्थ वृक्ष के नीचे की भूमि (कुचैलं, असहायता) आच्छादनार्थ स्थूल वस्त्रों की कन्था, किसी से कुछ सहायता न चाहना (च) और (सर्वस्मिन्, एव, समता) सब में समदृष्टि होना (एतत्, मुक्तस्य, लक्षणं) यह मुक्तपुरुष के चिन्ह हैं ॥

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।
कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥४५॥

पदा०-(जीवितं, न, अभिनन्देत, न, अभिनन्देत, मरणं) न जीने में और नाही मरने में सुख माने (निर्देशं, भृतकः, यथा, कालं, एव, प्रतीक्षेत) जैसे सेवक स्वामी की आज्ञा पाने के निमित्त प्रतीक्षा करता है वैसे ही मृत्युकाल की प्रतीक्षा करता रहे॥

सं०-अब संन्यासी के नैत्यक कर्मों का विधान करते हैं:-

ग्रैष्म्यान्हैमन्तिकान्मासानष्टौ भिक्षुर्विचक्रमेत् ।
दयार्थं सर्वभूतानां वर्षास्वेकत्र संवसेत् ॥४६॥

पदा०-(भिक्षुः, ग्रैष्म्यान्, हैमन्तिकान्, अष्टौ, मासान्, विचक्रमेत्) संन्यासी मनुष्यों के धर्मोपदेशार्थ ग्रीष्म तथा हेमन्त ऋतु के आठ मास भ्रमण करे, और (सर्वभूतानां, दयार्थं) सब प्राणियों पर दयाभाव रखता हुआ (वर्षासु, एकत्र, संवसेत) वर्षाकाल के चातुर्मास में कहीं एक स्थान पर ही स्थिति रक्खे ॥

नासूर्ये हि व्रजेन्मार्गं नादृष्टां भूमिमाक्रमेत् ।
परिभूताभिरद्भिस्तु कार्यं कुर्वीत नित्यशः ॥४७॥

पदा०-(हि) निश्चयकरके (अमूर्य, मार्ग, न, व्रजेत) रात्रि में मार्ग न चले (अदृष्टां, भूमिं, न, आक्रमेत) भूमि को बिना देखे न चले (तु) और (परिभूताभिः, अद्भिः, नित्यशः, कार्यं, कुर्वीत) अपनी शरीर शुद्धि आदि सदा अधिक जल से क्रिया करे, और :—

सत्यां वाचमहिंसां च वदेदनपकारिणीम् ।
कल्कापेतामपरुषामनृशंसामपैशुनाम् ॥४८॥

पदा०-(सत्यां, अहिंसां, अनपकारिणीं) सत्य, हिंसारहित, दूसरे की हानि न करने वाला (च) और (कल्कापेतां,अपरुषां, अनृशंसां, अपैशुनां) कठोरता, क्रोध, निन्दा तथा चुग़ली से रहित (वाचं, वदेत) वचन बोले ॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् ॥४९॥

पदा०-(दृष्टिपूतं, पादं, न्यसेत) दृष्टि से शोधकर मार्ग में पैर रखे अर्थात देखकर चले (वस्त्रपूतं, जलं, पिबेत) वस्त्र से छानकर जल पीवे (सत्यपूतां, वाचं, वदेत) सत्य से पवित्र वाणी बोले और (मनः, पूतं, समाचरेत) मन से पवित्र आचरण करे अर्थात सदा सदाचार में प्रवृत्त रहे ॥

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ।
न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥५०॥

पदा०-(अतिवादान,तितिक्षेत) दूसरे के कहे हुए को सहन करे (कञ्चन, न, अवमन्येत) किसी का अपमान न करे (च)

और (इमं, देहं, आश्रित्य, केनचित्, वैरं, नच, कुर्वीत) मनुष्य देह को धारण करके किसी से वैर न करे ॥

क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ।
सप्तद्वारावकीर्णाञ्च न वाचमनृतां वदेत् ॥५१॥

पदा०—(क्रुध्यन्तं, प्रति, न, क्रुध्येत्) अपने साथ क्रोध करते हुए से क्रोध न करे (आक्रुष्टः, कुशलं, वदेत्) निन्दा करने वाले से आप अच्छा ही बोले (च) और (सप्तद्वारावकीर्णां, वाचं, अनृतां, न,वदेत्) शिर के सप्त छिद्रों में विस्तृत इस वाणी से असत्यभाषण न करे अर्थात् १ मुख का, २ नासिका के, २ कान के और २ आंखों के, इन सात छिद्रों में फैली हुई वाणी से अनृत न बोले किन्तु सदा शास्त्रीय भाषण करे ॥

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥५२॥

पदा०—(अध्यात्मरतिरासीनः) ब्रह्म ध्यान में स्थित (निरपेक्षः, निरामिषः) किसी की अपेक्षा न रखने वाला, विषयों की अभिलाषा से रहित (आत्मना, एव, सहायेन, सुखार्थी) अपने ही पुरुषार्थ से सुख चाहने वाला होकर (इह, विचरेत्) इस संसार में विचरे ॥

न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्रांगविद्यया ।
नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥५३॥

पदा०—(च) और (उत्पातनिमित्ताभ्यां, नक्षत्राङ्गविद्यया) भविष्यत् उत्पात=भूकम्पादि होने, ग्रहों की विद्या और (अनु-

शासनवादाभ्यां) उपदेश वा शास्त्रार्थ के बदले (भिक्षां, कर्हिचित्, न, लिप्सेत्) भिक्षा की इच्छा न करे ॥

न तापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः ।
आकीर्णं भिक्षुकैर्वान्यैरागारमुपसंव्रजेत् ॥५४॥

पदा०-(तापसैः, ब्राह्मणैः, वा, वयोभिः, अपि, वा. श्वभिः) तपस्वी=वानप्रस्थों वा अन्य ब्राह्मणों, पक्षियों, कुत्तों (वा) अथवा (अन्यैः, भिक्षुकैः, आकीर्णं. आगारं) अन्य भिक्षुकों से घिरे हुए घर में (न, उपसंव्रजेत्) संन्यासी भिक्षा को न जावे ॥

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान् ।
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥५५॥

पदा०-(क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः) केश, नख तथा दाढ़ी मूंछ मुड़ाये हुए (पात्री, दण्डी, कुसुम्भवान्) भिक्षापात्र, दण्ड, कमण्डलु और रङ्गे कपड़ों से युक्त (सर्वभूतान्यपीडयन्) किसी को पीड़ा न देता हुआ (नित्यं, नियतः, विचरेत्) सर्वदा नियम से विचरे ॥

अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्व्रणानिच ।
तेषामद्भिः स्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥५६॥

पदा०-(तस्य, अतैजसानि, च, निर्व्रणानि, पात्राणि, स्युः) संन्यासी के पात्र तैजस=सोना, चांदी, पीतल, कांसा आदि धातुओं के नहों किन्तु मिट्टी तोंबा, बांस तथा काष्ठ के छिद्रादि से रहित हों (तेषां, शौचं) जिनकी शुद्धि (अध्वरे, चमसानां, इव, अद्भिः, स्मृतं) यज्ञों में चमसों के समान केवल जल से ही होजाती है ॥

एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे ।
भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ॥ ५७ ॥

पदा०—(एककालं. भैक्षं, चरेत. विस्तरे, न. प्रसज्जेत) एक वार भिक्षा मांगे बहुत भिक्षा में आसक्त नहो (हि) क्योंकि (भैक्षे, प्रसक्तः, यतिः) अधिक भिक्षा में आसक्त हुआ संन्यासी (विषयेषु, अपि. सज्जति) अन्य विषयों में भी आसक्त होजाता है॥

सं०—अब संन्यासी के भिक्षा मांगने का समय विधान करते हैः—

विधूमे सन्नमुसले व्यंगारे भुक्तवज्जने ।
वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥ ५८ ॥

पदा०—(विधूमे, सन्नमुसले) रसोई का धूँआ निकल चुका हो, मूसल से कूटना आदि बन्द होगया हो (व्यङ्गारे. भुक्तवज्जने) अग्नि बुझादी हो, घर के सब भोजन कर चुके हों और (शराव-संपाते,वृत्ते)भोजन किये हुए मिट्टी के पात्र फेंक दिये हों,तब ऐसे गृह में (नित्यं, यतिः, भिक्षां, चरेत) संन्यासी नित्य भिक्षा मांगे॥

अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैव न हर्षयेत् ।
प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रसंगाद्विनिर्गतः ॥५९॥

पदा०—(अलाभे, विषादी, न, स्यात, लाभे, चैव, न, हर्षयेत) भिक्षा न मिलने पर दुःख तथा मिल जाने पर हर्ष न माने (प्राणयात्रिकमात्रः, स्यात) केवल जीवन निर्वाह मात्र का उपाय करे और (मात्रसंगात, विनिर्गतः) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषयों से रहित हो ॥

अभिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेतैव सर्वशः ।
अभिपूजितलाभैश्च यतिर्मुक्तोऽपि वध्यते ॥ ६० ॥

पदा०—(तु) और (अभिपूजितलाभान्, सर्वशः, जुगुप्सेत, एव) सन्मानपूर्वक प्राप्त स्वादिष्ट भिक्षादिकों को भी सब प्रकार निन्दित दृष्टि से ही देखे, क्योंकि (यतिः, अभिपूजितलाभैः, च, मुक्तः अपि, बध्यते) संन्यासी विरक्त हुआ भी ऐसी भिक्षा के लाभों से देने वाले में स्नेहादि होजाने के कारण पुनः बन्धन को प्राप्त होजाता है ॥

अल्पान्नाभ्यवहारेण रहः स्थानासनेन च ।
ह्रियमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्त्तयेत् ॥६१॥

पदा०—(अल्पान्नाभ्यवहारेण, च, रहःस्थानासनेन) थोड़ा भोजन और एकान्तस्थान में निवास करता हुआ (विषयैः, ह्रियमाणानि, इन्द्रियाणि) विषयों की ओर खिची हुई इन्द्रियों को (निवर्त्तयेत) रोके, क्योंकि :—

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥६२॥

पदा०—(इन्द्रियाणां, निरोधेन, रागद्वेषक्षयेण, च) इन्द्रियों के संयम और रागद्वेष के नाश (च) तथा (भूतानां, अहिंसया) प्राणियों की हिंसा न करने से (अमृतत्त्वाय, कल्पते) मोक्ष के योग्य होता है ॥

सं०—अब दोषदृष्टि से इन्द्रियों का निग्रह कथन करते हैं:—

अवेक्षेत गतीर्नृणां कर्मदोषसमुद्भवाः ।
निरये चैव पतनं यातनाश्च यमक्षये ॥६३॥

पदा०—(कर्मदोषसमुद्भवाः, नृणां, गतीः) मनुष्यों की

कर्म दोषों से उत्पन्न दशाओं (निरये, चैव, पतनं) नरक की प्राप्ति (च) और (यमक्षये, यातनाः) मरणानन्तर नानाप्रकार की पीड़ाओं को (अवेक्षेत) विचारे अर्थात् इनका सदा चिन्तन करे ॥

विप्रयोगं प्रियैश्चैव संयोगं च तथाऽप्रियैः ।
जरया चाभिभवनं व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥६४॥

पदा०–(प्रियैः, विप्रयोगं, चैव, अप्रियैः, तथा, संयोगं, च) प्यारों का वियोग तथा अप्रियों का संयोग (च) और (जरया, अभिभवनं) वृद्धावस्था के आक्रमण (च) तथा (व्याधिभिः, उपपीडनं) व्याधियों की पीड़ा को भी विचारे ॥

देहादुत्क्रमणं चास्मात्पुनर्गर्भे च सम्भवम् ।
योनिकोटिसहस्रेषु सृतीश्चास्यान्तरात्मनः ॥६५॥
अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् ।
धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम् ॥ ६६ ॥

पदा०–(अस्य, अन्तरात्मनः) इस जीव का (अस्मात्, देहात्, उत्क्रमणं, पुनः, गर्भे, च, सम्भवं) इस शरीर से पृथक् होना, पुनः गर्भ में आना (योनिकोटिसहस्रेषु, सृतीः) कोटिसहस्र योनियों में जाना–(च) और (अधर्मप्रभवं, शरीरिणां, चैव, दुःखयोगं) देहधारियों को अधर्म से दुःख के योग (च) तथा (धर्मार्थप्रभवं, अक्षयं, सुखयोगं) धर्म, अर्थ से उत्पन्न अक्षयसुख को विचारे ॥

सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः ।
देहेषु च समुत्पत्तिमुत्तमेष्वधमेषु च ॥ ६७ ॥

पदा०-(योगेन, परमात्मनः, सूक्ष्मतां) योगाभ्यास द्वारा परमात्मा की सूक्ष्मता का ध्यान करे (च) और (उत्तमेषु, अधमेषु, देहेषु, च) उत्तम तथा अधम योनियों में (समुत्पत्तिं, अन्ववेक्षेत) कर्मों के शुभाशुभ फलभोग के लिये उत्पत्ति का भी चिन्तन करे ॥

दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः ।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिंगं धर्मकारणम् ॥ ६८ ॥

पदा०-(यत्र, तत्र, आश्रमे, रतः) जिस किसी आश्रम में स्थित पुरुष (दूषितः, अपि) दूषित हुआ भी (सर्वेषु, भूतेषु, समः) सम्पूर्ण प्राणियों में समदृष्टि रक्खे और (न, लिङ्गं, धर्मकारणं) चिन्हों को धर्म का मूल न मानता हुआ (धर्मं, चरेत्) धर्माचरण में तत्पर रहे, क्योंकि दण्डादि चिन्ह धर्म का कारण नहीं हैं, जैसाकि :—

फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् ।
न नामग्रहणादेव तस्य वारिप्रसीदति ॥६९॥

पदा०-(यद्यपि, कतकवृक्षस्य, फलं, अम्बुप्रसादकं) यद्यपि निर्मली का फल जल को स्वच्छ करने वाला है तथापि (तस्य, नामग्रहणादेव, वारि, न, प्रसीदति) निर्मली के नाम लेने से ही जल शुद्ध नहीं होता ॥

संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रावहनि वा सदा ।
शरीरस्यात्यये चैव समीक्ष्य वसुधा चरेत् ॥७०॥

पदा०-(शरीरस्य, अत्यये, चैव) शरीर के पीड़ित होने पर

भी (जन्तूनां,संरक्षणार्थं) जीवों की रक्षा के निमित्त (रात्र्यहनि, वा, सदा) दिन अथवा रात्रि में सदा (वसुधां, समीक्ष्य, चरेत्) पृथिवी को देखकर चले ॥

भाष्य–इस श्लोक का भाव यह है कि छोटे २ जीवों की रक्षा के निमित्त अथवा सर्पादि से अपनी रक्षा करता हुआ सदा पृथिवी को देखकर चले ॥

अह्ना रात्र्या च याञ्जन्तून्हिनस्त्यज्ञानतो यतिः ।
तेषां स्नात्वा विशुद्ध्यर्थं प्राणायामान्षडाचरेत्॥७१॥

पदा०–(यतिः, अज्ञानतः, अह्ना, रात्र्या, च, यान्, जन्तून्, हिनस्ति) संन्यासी से जो जीव विना जाने दिन वा रात्रि में मरजाते हैं (तेषां, विशुद्ध्यर्थं)उस पाप निवृत्ति के अर्थ(स्नात्वा,षट्, प्राणायामान्, आचरेत्) प्रतिदिन स्नान करके छः प्राणायाम किया करे ॥

प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः ।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥ ७२ ॥

पदा०–(व्याहृतिप्रणवैः, युक्ताः) " भूः, भुवः, स्वः " इन व्याहृति और " ओ३म् " इस प्रणव से युक्त (विधिवत्कृताः, त्रयः, अपि, प्राणायामाः) विधिपूर्वक किये हुए तीन प्राणयाम करना भी (ब्राह्मणस्य, परमं, तपः, विज्ञेयं) ब्राह्मण का परम तप जानना चाहिये ॥

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाःप्राणस्य निग्रहात्॥७३॥

पदा०—(यथा) जैसे (ध्मायमानानां, मलाः, धातूनां) सुवर्णादि धातुओं के मैल अग्नि में तपाने से (दह्यन्ते) दग्ध होजाते हैं (तथा) इसी प्रकार (हि) निश्चयकरके (प्राणस्य, निग्रहात्) प्राणायाम करने से (इन्द्रियाणां, दोषाः, दह्यन्ते) इन्द्रियों के दोष नष्ट होजाते हैं ॥

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥७४॥

पदा०—(प्राणायामैः, दोषान्, धारणाभिः, किल्बिषं) प्राणायामों से रागादि दोषों को, धारणा से पाप को (प्रत्याहारेण, संसर्गान्) इन्द्रिय संयम से विषयों के संसर्ग को (च) और (ध्यानेन, अनीश्वरान्, गुणान्, दहेत्) ध्यान से काम, क्रोध, लोभ, मोहादि गुणों को भस्म करे ॥

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः ।
ध्यानयोगेन सम्पश्येद्गतिमस्यान्तरात्मनः ॥७५॥

पदा०—(अकृतात्मभिः, दुर्ज्ञेया) मूढ़ पुरुषों से न जानने योग्य (उच्चावचेषु, भूतेषु, अस्य, अन्तरात्मनः, गतिः) इस जीव की उत्तम, अधमयोनियों में प्राप्ति को (ध्यानयोगेन, सम्पश्येत्) ध्यानयोग से देखे=जाने ॥

सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्ननिबध्यते ।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥७६॥

पदा०—(सम्यग्दर्शनसम्पन्नः, कर्मभिः, न, निबध्यते) भले

प्रकार ब्रह्मज्ञान को प्राप्त पुरुष कर्मों से नहीं बंधता (तु) और (दर्शनेन, विहीनः, संसारं, प्रतिपद्यते) ब्रह्मज्ञान से रहित पुरुष बार २ संसार में आता है अर्थात् ब्रह्मपरायण हुआ २ पुरुष जन्म मरण को प्राप्त न होकर मुक्ति का आनन्द लेता और ब्रह्मज्ञान से रहित सांसारिक वासनाओं में लिप्त हुआ बार २ जन्ममरण में आकर अनेक प्रकार के दुःख भोगता है ॥

अहिंसयेन्द्रियासंगैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः ।
तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् ॥७७॥

पदा०-(अहिंसया, इन्द्रियासङ्गैः) हिंसा का त्याग करने वाले तथा इन्द्रियों को विषयों में न फंसाने वाले (वैदिकैः, एव, कर्मभिः) वैदिककर्मों के करने (च) और (उग्रैः, तपसः, चरणैः) उग्र तप करने से पुरुष (इह, तत्पदं, साधयन्ति) इस लोक में उस पद को प्राप्त होते हैं ॥

अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धिपूर्णं मूत्रपुरीषयोः॥७८॥
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ।
रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥७९॥

पदा०-(अस्थिस्थूणं, स्नायुयुतं) हड्डियों की स्थूणा=स्तम्भों से युक्त, स्नायुरूप रस्सी से बन्धा (मांसशोणितलेपनं) मांस तथा रक्त से लिथड़ा तथा (चर्मावनद्धं) चमड़े से मढ़ा हुआ (मूत्रपुरीषयोः, दुर्गन्धिपूर्णं) दुर्गन्धि तथा मलमूत्र से पूर्ण और (जराशोकसमाविष्टं) जरा=बुढ़ापा तथा शोक से घिरा हुआ (रोगायतनं,

आतुरं) रोग का घर, भूख, प्यास से पीड़ित (रजस्वलं, अनित्यं) रजस्वला के रक्त समान मलिन रजोगुण वाला यह अनित्य(भूतावासं) पञ्चमहाभूतों का घर जो शरीर है (इमं, सजेत्) इसको त्याग देवे अर्थात् ऐसा यत्न करे कि फिर शरीर न मिले. और यह उस परमपद को प्राप्त होने से ही होसक्ता है जो वैदिक कर्मों के अनुष्ठान द्वारा प्राप्त होता है ॥

नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा ।
तथात्यजन्निमं देहं कृच्छ्राद्ग्राहाद्विमुच्यते ॥८०॥

पदा०—(यथा, नदीकूलं, वृक्षः, वा, यथा, शकुनिः, वृक्षं) जैसे नदी के किनारे को वृक्ष और वृक्ष को पक्षी उदासीन भाव से छोड़ देता है (तथा) इसी प्रकार संन्यासी (इमं, देहं, त्यजन्) इस शरीर को छोड़दे तो (कृच्छ्रात्, ग्राहात्, विमुच्यते) महा कठिन दुःखरूप "संसाररूपी ग्राह" से छूट जाता है ॥

प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् ।
विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येति सनातनम्॥८१॥

पदा०—(स्वेषु, प्रियेषु, सुकृतं) अपने मित्रों में पुण्य (च) और (अप्रियेषु, दुष्कृतं, विसृज्य) शत्रुओं में दुष्कृत को त्याग कर (ध्यानयोगेन) ध्यान योग से (सनातनं, ब्रह्माभ्येति) सनातनब्रह्म=मोक्ष को प्राप्त होजाता है ॥

यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः ।
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥८२॥

पदा०—(यदा, सर्वभावेषु, भावेन, निःस्पृहः, भवति) जब

सब विषयों में दोषदृष्टि से इच्छा का त्याग होजाता है (तदा, प्रेत्य, च, इह, च) तब इस लोक तथा परलोक में (शाश्वतं, सुखं, अवाप्नोति) नित्य सुख को प्राप्त होता है, क्योंकि विषयों में इच्छा की प्रवृत्ति "दुःख" और निवृत्ति "सुख" है ॥

अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा संगान् शनैः शनैः ।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥८३॥

पदा०-(अनेन, विधिना, शनैः, शनैः) इस पूर्वोक्त विधि से धीरे २ (सर्वान्, संगान्, त्यक्त्वा) सम्पूर्ण ममता तथा विषयों को त्यागकर (सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तः) सम्पूर्ण द्वन्द्वों से रहित हो (ब्रह्मणि, एव, अवतिष्ठते) ब्रह्म में ही स्थित होता है ॥

भाष्य-पूर्वोक्त कथनानुसार स्त्री, पुत्र, पौत्रादि की ममता को धीरे २ छोड़कर तथा मानापमानादि द्वन्द्वों से रहित हो ब्रह्म में स्थित होजाता है, परन्तु इस संसाररूप ग्राह का त्याग अति कठिन होने से शास्त्र ने विधान किया है कि धीरे २ पुत्रादिकों में स्नेह घटाता हुआ परमात्मा में परमप्रीति करने वाला पुरुष उस परमपद को प्राप्त होता है ॥

ध्यानिकं सर्वमेवैतद्यदेतदभिशब्दितम् ।
नह्यनध्यात्मवित्कश्चित्क्रियाफलमुपाश्नुते ॥८४॥

पदा०-(यत्, एतत्, सर्वं, अभिशब्दितं) यह पूर्वोक्त सब प्रकार का त्याग (ध्यानिकं, एव) ध्यान से ही होता है (हि) क्योंकि (अनध्यात्मवित्, कश्चित्) इस प्रकार आत्मा का ध्यान न करने वाला तथा मन के संयम से रहित कोई पुरुष भी (क्रियाफलं, न, उपाश्नुते) उस क्रिया के फल को प्राप्त नहीं

होता अर्थात् परमात्मा का ध्यान करने ही से सांसारिक त्याग होसक्ता है अन्यथा नहीं ॥

सं०—अब संसार से छूटने के लिये वेदाभ्यास की आवश्यकता कथन करते हैं :—

अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च ।
आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत् ॥८५॥

पदा०—(अधियज्ञं) यज्ञ (आधिदैविकं) देवता (च) तथा (आध्यात्मिकं) परमात्मा के विषय में जो वेदवाक्य हैं (च) और (यत्, वेदान्ताभिहितं) जो वेदान्त=ब्रह्मज्ञान विषयक श्रुतियें हैं उनका (सततं, जपेत्) निरन्तर जप और विचार करे ॥

इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजानताम् ।
इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥८६॥

पदा०—(इदं, अज्ञानां, इदं, विजानतां) यह वेदाभ्यास ब्रह्म के जानने वाले ज्ञानी तथा न जानने वाले अज्ञानी दोनों के लिये हितकर है और (इदं, स्वर्गं, अन्विच्छतां) यह स्वर्ग चाहने वाले तथा (आनन्त्यं, इच्छतां, एव) मोक्ष की इच्छा वालों का भी (शरणं) आश्रय है अर्थात् वेद के अभ्यास द्वारा ही स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥

अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः ।
स विधूयेह पाप्मानं परंब्रह्माधिगच्छति ॥ ८७ ॥

पदा०—(यः, द्विजः) जो द्विज (अनेन, क्रमयोगेन) इस पूर्वोक्त क्रमानुसार (परिव्रजति) संन्यास धारण करता है (सः,

इह, पाप्मानं, विधूय) वह इस लोक में पापों का नाश करके (परंब्रह्माधिगच्छति) परंब्रह्म=मोक्ष को प्राप्त होता है ॥

एष धर्मोऽनुशिष्टो वो यतीनां नियतात्मनाम् ।
वेदसंन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत ॥८८॥

पदा०—हे महर्षि लोगो ! (एषः, वः) यह तुम्हारे प्रति (नियतात्मनां, यतीनां) जितेन्द्रिय तथा यतियों का (धर्मः, अनुशिष्टः) धर्म कहा, अब आगे (वेदसंन्यासिकानां, तु) वेद-संन्यासियों के (कर्मयोगं, निबोधत) कर्मयोग सुनो ॥

सं०—अब वेदसंन्यासी=ज्ञानीसंन्यासी "जिन्होंने संन्यस्त के चिन्ह धारण नहीं किये और न जिन्होंने गृहवासादि का त्याग किया है" उनका कर्मयोग कथन करते हैं :—

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥ ८९ ॥

पदा०—(ब्रह्मचारी, गृहस्थः, वानप्रस्थः, तथा, यतिः) ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी (एते, चत्वारः, पृथगाश्रमाः) यह चार पृथक् आश्रम (गृहस्थप्रभवाः) गृहस्थ से उत्पन्न होते हैं ॥

सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेविताः ।
यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम् ॥९०॥

पदा०—(एते, सर्वे, अपि) यह चारो ही आश्रम (क्रमशः, यथाशास्त्रं, निषेविताः) शास्त्रानुसार क्रम से सेवन किये हुए (यथोक्तकारिणं.तु, विप्रं) यथोक्तविधि अनुसार सेवन करने वाले विप्र को (परमां, गतिं, नयन्ति) परमगति=मोक्ष प्राप्त कराते हैं॥

सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः ।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान्बिभर्त्ति हि ॥९१॥

पदा०-(अपि, च) परन्तु (सर्वेषां, एतेषां) इन सब आश्रमों में (वेदस्मृतिविधानतः, गृहस्थः, श्रेष्ठः, उच्यते) वेद तथा स्मृतियों के विधान से गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ कहा है (हि) क्योंकि (सः) गृहस्थ (एतान्,त्रीन्,बिभर्त्ति) अन्य तीन आश्रमों का पालन करता है॥

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥९२॥

पदा०-(यथा, सर्वे, नदीनदाः, सागरे, संस्थितिं, यान्ति) जैसे सम्पूर्ण नदी तथा नद समुद्र में जाकर ठहरते हैं (तथा) इसी प्रकार (सर्वे, आश्रमिणः, एव) सब आश्रमी (गृहस्थे, संस्थितिं, यान्ति) गृहस्थ में आश्रय पाते हैं अर्थात् गृहस्थ से ही पालित होते हैं ॥

चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः ।
दशलक्षणकोधर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥९३॥

पदा०-(एतैः, चतुर्भिः, अपि, आश्रमिभिः, द्विजैः) इन चारो आश्रमी द्विजों को (दशलक्षणकः, धर्मः, नित्यं, प्रयत्नतः, सेवितव्यः) आगे कहे हुए दशलक्षण वाले धर्म का सेवन यत्नपूर्वक करना चाहिये ॥

सं०-अब धर्म के दश लक्षण कथन करते हैं:—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकंधर्मलक्षणम् ॥९४॥

पदा०-(धृतिः, क्षमाः, दमः, अस्तेयं) धैर्य, क्षमा, दम,

अस्तेय (शौचं, इन्द्रियनिग्रहः) शौच, इन्द्रियनिग्रह (धीः, विद्या, सत्यं,अक्रोधः) धी, विद्या, सत्य और अक्रोध (दशकं,धर्मलक्षणं) यह दश धर्म के लक्षण हैं ॥

भाष्य-(१) धैर्य=प्रत्येक काम विचारपूर्वक करना (२) क्षमा=सहनशील होना (३)दम=मन का रोकना(४)अस्तेय=चोरी न करना (५) शौच=बाहर भीतर से शुद्ध रहना (६) इन्द्रियनिग्रह=इन्द्रियों को विषयों से रोकना (७) धी=शास्त्र के अभ्यास से बुद्धि को बढ़ाना (८) विद्या=आत्मज्ञान बढ़ाना (९) सत्य=सत्य बोलना (१०) क्रोध न करना, यह धर्म के दश लक्षण हैं ॥

सं०-अब उक्त धर्म के लक्षणों को जानकर अनुष्ठान करने का फल कथन करते हैं:—

दश लक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते ।
अधीत्य चानुवर्त्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम् ॥९५॥

पदा०-(ये, विप्राः) जो द्विज पूर्वोक्त (धर्मस्य,दश,लक्षणानि, समधीयते) धर्म के दश लक्षणों को पढ़ते (च) और (अधीत्य, अनुवर्त्तन्ते) पढ़कर उनके अनुकूल आचरण करते हैं (ते,परमां, गतिं, यान्ति) वह मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥

दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः ।
वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः ॥९६॥

पदा०-(अनृणः, द्विजः) ऋषि, पितर तथा देव, इन तीन ऋणों से मुक्त हुआ द्विज (समाहितः) स्वस्थचित्त होकर (दशलक्षणकं, धर्मं, अनुतिष्ठन्) दश लक्षण वाले धर्म का अनुष्ठान

करता हुआ (विधिवत्, वेदान्तं, श्रुत्वा) विधिपूर्वक वेदान्त श्रवण करके (संन्यसेत्) संन्यास धारण करे ॥

संन्यस्य सर्वकर्माणि कर्मदोषानपानुदन् ।
नियतो वेदमभ्यस्य पुत्रैश्वर्ये सुखं वसेत् ॥ ९७ ॥

पदा०—(सर्वकर्माणि, संन्यस्य) गृहस्थ के सम्पूर्ण कर्मों को छोड़कर तथा (कर्मदोषान्, अपानुदन्) कर्मदोषों को नष्ट करके (नियतः, वेदं, अभ्यस्य) जितेन्द्रिय हो वेद का अभ्यास करता हुआ (पुत्रैश्वर्ये, सुखं, वसेत्) पुत्र के ऐश्वर्य में सुख से रहे अर्थात् अपने कमाने की चिन्ता छोड़कर पुत्र का उपार्जन किया हुआ भोगे ॥

संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्यसेत् ।
वेदसंन्यासतः शूद्रस्तस्माद्वेदं न संन्यसेत् ॥९८॥

पदा०—(संन्यसेत्, सर्वकर्माणि) संन्यासी अन्य सब कर्मों को त्यागदे परन्तु (एकं, वेदं, न, संन्यसेत्) एक वेदाध्ययनरूप कर्म को न त्यागे, क्योंकि (वेदसंन्यासतः, शूद्रः) वेद के छोड़ने से द्विज शूद्र होजाता है (तस्मात्, वेदं, न, संन्यसेत्) इसलिये वेदाध्ययन कदापि न त्यागे ॥

एवं सन्यस्य कर्माणि स्वकार्यपरमोऽस्पृहः ।
संन्यासेनापहत्यैनः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥९९॥

पदा०—(एवं, कर्माणि, संन्यस्य) पूर्वोक्त प्रकार कर्मों को छोड़कर (स्वकार्यपरमः) अपने आत्मसाक्षात्कार रूप कार्य्य में तत्पर हुआ तथा (अस्पृहः) कोई इच्छा न रखता हुआ (संन्यासेन,

एनः, अपहत्य) संन्यास से पापों को नष्ट करके द्विज (परमां, गतिं, प्राप्नोति) परमगति=मोक्ष को प्राप्त होता है ॥

एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः ।
पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य राज्ञां धर्मं निबोधत॥१००॥

पदा०—हे महर्षिलोगो ! (वः) तुम्हारे प्रति (एषः) यह (अक्षयफलः, प्रेत्य) परलोक में अक्षयफल देने वाले (ब्राह्मणस्य, चतुर्विधः, धर्मः) ब्राह्मण के चार प्रकार के धर्म (अभिहितः) कहे अब आगे (राज्ञां,धर्मं,निबोधत) राजाओं का धर्म सुनो ॥

इति मानवार्य्यभाष्ये
षष्ठोऽध्यायः
समाप्तः

ओ३म्

अथ सप्तमोऽध्यायः

सं०—अब राजधर्म का वर्णन करते हैं :—

राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः ।
सम्भवश्च यथा तस्य सिद्धिश्चपरमा यथा ॥ १ ॥

पदा०—(यथावृत्तः, नृपः, भवेत्) जैसे आचरणों वाला राजा होना चाहिये (यथा, परमा) उस प्रकार के राजधर्म (च) और (यथा, तस्य, सम्भवः) जैसे राजा की उत्पत्ति तथा उसकी प्रभुता की (सिद्धिः) सिद्धि होती है इन सब (राजधर्मान्) राजधर्मों को (प्रवक्ष्यामि) आगे कहूंगा ॥

सं०—अब राजा का कर्तव्य कथन करते हैं :—

ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि ।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम् ॥२॥

पदा०—(यथाविधि) विधिपूर्वक (ब्राह्मं, संस्कारं) वैदिक संस्कार से (प्राप्तेन, क्षत्रियेण) संस्कृत क्षत्रिय को (यथान्यायं) न्यायानुसार (अस्य, सर्वस्य, परिरक्षणं, कर्त्तव्यं) इस सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करनी चाहिये अर्थात् राजा का यह परमकर्तव्य है कि वह न्यायपूर्वक प्रजा की रक्षा करे ॥

**अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः ॥३॥**

पदा०-(हि) क्योंकि (अराजके, अस्मिन्, लोके) विना राजा के इस लोक में (सर्वतः, भयात्, विद्रुते) सब ओर से भय के कारण प्रजा चल विचल रहती है, इस कारण (सर्वस्य, अस्य, रक्षार्थं) सबकी रक्षा के लिये (प्रभुः, राजानं,असृजत्) परमात्मा ने राजा को उत्पन्न किया है॥

**इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः ॥४॥**

पदा०-(इन्द्रानिलयमार्काणां, अग्नेः, वरुणस्य,च) इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण (चन्द्रवित्तेशयोः) चन्द्र, कुबेर, इन आठ लोकपालों के (मात्राः, निर्हृत्य, शाश्वतीः, चैव) अंशों से राजा का शरीर बनता है अर्थात् उक्त आठो के सारभूत अंशों से राजा का शरीर बनता है, या यों कहो कि इन दिव्य पदार्थों के तेजादि उत्तम अंशों से युक्त राजा होता है॥

**यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः।
तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा ॥५॥**

पदा०-(यस्मात्) क्योंकि (सुरेन्द्राणां, मात्राभ्यः, नृपः, निर्मितः) सुरेन्द्रों=उक्त आठ लोकपालों के अंशों से राजा बना है (तस्मात्) इसलिये (एषः) यह राजा (तेजसा,सर्वभूतानि, अभिभवति) अपने तेज से सब प्राणियों को वशीभूत रखता है॥

सं०—अब यह कथन करते हैं कि उक्त आठो देवों का प्रभाव राजा में कैसे रहता है :—

तपत्यादित्यवच्चैषां चक्षूँषि च मनांसि च ।
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्याभिवीक्षितुम् ॥६॥

पदा०—(एषां, चक्षूँषि, च, मनांसि, च) राजा देखने वालों की आंखों और मनों को अपने तेज से (आदित्यवत्, तपति) आदित्य की न्याईं तपाता है (च) और (भुवि, एनं) पृथिवी में इस राजा के (कश्चित्, अपि, अभिवीक्षितुं, न, शक्नोति) सन्मुख देखने को कोई भी समर्थ नहीं ॥

सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट् ।
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः ॥७॥

पदा०—(सः, प्रभावतः) वह राजा प्रभाव से (अग्निः, वायुः, च, सः, अर्कः, सोमः, सः, धर्मराट्) अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, यम (सः, कुबेरः, सः, वरुणः, सः, महेन्द्रः, भवति) कुबेर, वरुण और वही इन्द्र है ॥

बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः ।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥८॥

पदा०—(मनुष्यः, इति, बालोऽपि, भूमिपः, न, अवमन्तव्यः) मनुष्य जानकर बालक राजा भी अपमान के योग्य नहीं (हि) क्योंकि (एषा, महती, देवता, नररूपेण, तिष्ठति) यह एक बड़ा देवता मनुष्यरूप से स्थित है ॥

एकमेव दहत्यग्निर्नरं दुरुपसर्पिणम् ।
कुलं दहति राजाग्निः सपशुद्रव्यसञ्चयम् ॥ ९ ॥

पदा०—(दुरुपसर्पिणं, अग्निः) अग्नि के साथ कुव्यवहार करने वाले (एकं, एव, नरं, दहति) उसी एक पुरुष को अग्नि जलाती है (च) और (राजाग्निः) राजाग्नि (सपशुद्रव्यसञ्चयं, कुलं, दहति) पशु, सञ्चितद्रव्य और कुलसहित भस्म करदेती है ॥

भाष्य—इस श्लोक का भाव यह है कि यदि कोई अग्नि के साथ कुव्यवहार करे अर्थात् उससे यथायोग्य न वर्ते तो वह उसी एक को दग्ध करती है परन्तु जो राजा के साथ कुचाल चलता है उस कुचाल चलने वाले के कुल को भी राजा नाश करदेता है अर्थात् उसके पशु, संचितधन और उसके परिवार का राजा नाशक होता है ॥

कार्यं सोऽवेक्ष्य शक्तिं च देशकालौ च तत्त्वतः ।
कुरुते धर्मसिद्ध्यर्थं विश्वरूपं पुनः पुनः ॥ १० ॥

पदा०—(सः) राजा (कार्यं) कार्य (शक्तिं) शक्ति (देशकालौ, च, तत्वतः, अवेक्ष्य) देश और काल को यथार्थतया विचारकर (धर्मसिद्ध्यर्थं) धर्मसिद्धि के लिये (पुनः, पुनः, विश्वरूपं, कुरुते) वार २ अनेक प्रकार का रूप धारण करता है ॥

भाष्य—राजा में यह अपूर्वता है कि वह देश कालादि के तत्व को देखकर धर्मसिद्धि के लिये कभी क्षमा, कभी कोप, कभी मित्रता और कभी शत्रुता आदि नाना प्रकार के रूप धारण करता है जो उसके लिये अवश्यकर्तव्य हैं अर्थात् राजा को नीतिज्ञ होना परम आवश्यक है ॥

यस्य प्रसादे पद्माश्रीर्विजयश्च पराक्रमे ।
मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि सः ॥११॥

पदा०-(यस्य) जिसकी (प्रसादे, पद्माश्रीः) प्रसन्नता में लक्ष्मी (पराक्रमे, च, विजयः) पराक्रम में विजय (च) और (क्रोधे, मृत्युः, वसति) क्रोध में मृत्यु वास करता है (सः) वह राजा (हि) निश्चयकरके (सर्वतेजमयः) सर्वतेजोमय है ॥

तं यस्तु द्वेष्टि सम्मोहात्स विनश्यत्यसंशयम् ।
तस्य ह्याशु विनाशाय राजा प्रकुरुते मनः ॥१२॥

पदा०-(यः, सम्मोहात्, तं, द्वेष्टि) जो अज्ञान से राजा के साथ द्वेष करता है (सः) वह (असंशयं) निःसन्देह (विनश्यति) नाश को प्राप्त होजाता है (हि) क्योंकि (तस्य, विनाशाय) उसके विनाश के लिये (राजा, आशु, मनः, प्रकुरुते) राजा शीघ्र चाहने लगता है अर्थात् उसके नाश की चेष्टा करता है ॥

तस्माद्धर्मं यमिष्टेषु स व्यवस्येन्नराधिपः ।
अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु तं धर्मं न विचालयेत् ॥१३॥

पदा०-(तस्मात्) इसलिये (सः, नराधिपः) राजा (इष्टेषु, यं, धर्मं) इष्टमित्रों में जिस धर्म (च) और (अनिष्टेषु, अपि, अनिष्टं, व्यवस्येत्) शत्रुओं में जिस अनिष्ट दण्डादि की व्यवस्था नियत करे (तं, धर्मं, न, विचालयेत्) वह धर्मव्यवस्था=क़ानून चल विचल न हो अर्थात् उस व्यवस्था को कदापि न तोड़े, क्योंकि :—

तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम् ।
ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः ॥ १४ ॥

पदा०-(तस्य, अर्थे) उस राजा के लिये (सर्वभूतानां, गोप्तारं) सब प्राणियों के रक्षक (आत्मजं, ब्रह्मतेजोमयं, धर्मं, दण्डं) आत्मा से उत्पन्न ब्रह्मतेजयुक्त दण्डधर्म को (ईश्वरः, पूर्वं, असृजत) ईश्वर ने प्रथम बनाया है ॥

तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च ॥१५॥

पदा०-(तस्य, भयात) उस दण्ड के भय से (सर्वाणि, स्थावराणि, चराणि, च, भूतानि) सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम (भोगाय, कल्पन्ते) भोग को प्राप्त होते (च) और (स्वधर्मात, न, चलन्ति) अपने धर्म से नहीं विचलते हैं ॥

भाष्य-परमात्मा ने सृष्टि की आदि में सब प्राणियों को धर्म में नियुक्त करने के लिये अथवा सब प्रजा की रक्षा के निमित्त ब्रह्मतेजरूप दण्डधर्म को राजा के अधीन कर उसको सबका शासक बनाया है जिसके भय से सब प्राणी अपने २ भोगों को धर्मानुकूल भोगते हुए स्वधर्म में प्रवृत्त रहते हैं,इसलिये राज्यनियम पालन करना मनुष्यमात्र का धर्म है ॥

तं देशकालौ शक्तिं च विद्यां चावेक्ष्य तत्त्वतः ।
यथार्हतः संप्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्त्तिषु ॥ १६ ॥

पदा०-(देशकालौ, शक्तिं, च, विद्यां, च) देश, काल, शक्ति तथा शास्त्र के अनुसार (तत्त्वतः, अवेक्ष्य) तत्व विचार

कर (अन्यायवर्त्तिषु, नरेषु) अन्याय में प्रवृत्त अपराधियों को (तं, यथार्हतः, संप्रणयेत्) राजा यथायोग्य दण्ड देवे ॥

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः ।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः ॥१७॥

पदा०-(सः, दण्डः, राजा) वह दण्ड ही राजा (पुरुषः) वही पुरुष (सः,नेता)वही नेता=नियम में रखने वाला(सः,शासिता)वही शासन करने वाला(च)और उसी को (चतुर्णां, आश्रमाणां, धर्मस्य) चारो आश्रमों के धर्म का (प्रतिभूः, स्मृतः) प्रतिनिधि कहा है ॥

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्त्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥१८॥

पदा०-(दण्डः, सर्वाः, प्रजाः, शास्ति) दण्ड सम्पूर्ण प्रजा का शासन करता (दण्डः, एव, अभिरक्षति) दण्ड ही रक्षा करता और (दण्डः,सुप्तेषु, जागर्त्ति) दण्ड ही सब के सोते हुए जागता है, इसलिये (दण्डं, धर्मं, बुधाः, विदुः) दण्ड को ही विद्वान् लोग धर्म जानते हैं ॥

समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः ।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः ॥१९॥

पदा०-(सः, समीक्ष्य, धृतः) वह दण्ड शास्त्रानुसार धारण किया हुआ (सम्यक्, प्रजाः, सर्वाः, रञ्जयति) सम्पूर्ण प्रजा को भलेप्रकार प्रसन्न रखता है (तु) और (असमीक्ष्य, प्रणीतः) विना विचारे प्रयोग किया हुआ (सर्वतः विनाशयति) सब ओर से नष्ट करदेता है, इसलिये राजा का परमकर्तव्य है कि भले प्रकार विचार कर दण्ड का प्रयोग करे॥

यदि न प्रणयेद्राजा दण्डं दण्ड्येष्वतन्द्रितः ।
शूले मत्स्यानिवापक्ष्यन्दुर्बलान्बलवत्तराः ॥२०॥

पदा०-(अतन्द्रितः, राजा, यदि) आलस्य रहित राजा यदि (दण्ड्येषु, दण्डं,न, प्रणयेत) अपराधियों को दण्ड न देवे तो (बलवत्तराः, दुर्बलान्) बलवान् निर्बलों को (शूले, मत्स्यान्, इव, अपक्ष्यन्) शूल पर मछली के समान पका डालें अर्थात् उनको अति पीड़ित कर अपना मनोरथ सिद्ध करें ॥

अद्यात्काकः पुरोडाशं श्वा च लिह्याद्धविस्तथा ।
स्वाम्यं च न स्यात्कस्मिंश्चित्प्रवर्त्तेताधरोत्तरम्॥२१॥

पदा०-(काकः, पुरोडाशं, अद्यात) कौवा पुरोडाश भक्षण कर जावे (च) और (श्वा, हविः, तथा, लिह्यात) इसी प्रकार कुत्ता हवि का भक्षण करले (च) तथा (कस्मिंश्चित, स्वाम्यं,न, स्यात)कोई किसी का स्वामी=मालिक न होसके और(अधरोत्तरं, प्रवर्त्तेत) नीच ऊंच तथा ऊंच नीचता में प्रवृत्त होजावें ॥

भाष्य-यदि राजदण्ड न रहे तो कौवा, कुत्ता पुरोडाश तथा हवि को भक्षण कर जावें अर्थात् अनधिकारी अधिकारियों के भाग पर अपना स्वत्व स्थिर करके उन्हें अपमानित तथा दुःखित करें, कोई किसी का स्वामी न हो अर्थात् जो बलवान् हो वही निर्बल के धन पर अपना अधिकार जमा लेवे और व्यवस्था ऐसी बिगड़जाय कि छोटे बड़े और बड़े छोटे होजावें, अतएव राजदण्ड ही सबका व्यवस्थापक होनेसे सब मर्यादा ठीक रखता है॥

सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः ।
दण्डस्य हि भयात्सर्वं जगद्भोगाय कल्पते ॥२२॥

पदा०—(सर्वः, लोकः, दण्डजितः) सम्पूर्ण लोक दण्ड से जीते हुए ही सन्मार्ग में स्थिर रहते हैं (हि) निश्चयकरके (शुचिः, नरः, दुर्लभः) दण्ड के भय के विना स्वयं सन्मार्ग में चलने वाले शुद्ध पुरुष दुर्लभ हैं (हि) इसकारण (दण्डस्य, भयात्) दण्ड के भय से ही (सर्वं, जगत्) सम्पूर्ण जगत् (भोगाय, कल्पते) उपभोग करता है ॥

देवदानवगन्धर्वारक्षांसि पतगोरगाः ।
तेऽपि भोगाय कल्पन्ते दण्डेनैव निपीडिताः ॥२३॥

पदा०—(देवदानवगन्धर्वाः) देव, दानव, गन्धर्व, (रक्षांसि, पतगोरगाः) राक्षस, पक्षी, सर्प, (ते, अपि) यह सब भी (दण्डेन, एव, निपीडिताः) दण्ड के भय से ही (भोगाय, कल्पन्ते) भोग पा सकते हैं ॥

दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन् सर्वसेतवः ।
सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात् ॥२४॥

पदा०—(दण्डस्य, विभ्रमात्) दण्ड के विभ्रम से अर्थात् दण्ड के न होने पर (सर्ववर्णाः, दुष्येयुः) सब वर्ण दूषित होजायँ (सर्वसेतवः, भिद्येरन्) सब शास्त्रों की मर्यादा तथा वर्ण आश्रमों के चार पुल टूट जायँ (च) और (सर्वलोकप्रकोपः, भवेत्) सम्पूर्ण लोकों में उपद्रव मच जाय, इसलिये दंण्ड का होना आवश्यक है क्योंकि, इन सब की यथावत् स्थिति दण्ड से ही होती है ॥

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा ।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति ॥२५॥

पदा०-(यत्र, श्यामः, लोहिताक्षः, पापहा, दण्डः, चरति) जिस देश में श्यामवर्ण वाला,रक्तनेत्र वाला तथा पाप का नाश करने वाला राजदण्ड विचरता है और (चेत्, नेता, साधु, पश्यति) यदि राजा भी भलेप्रकार प्रजा की रक्षा रखता हो तो (तत्र, प्रजाः,न,मुह्यन्ति) उस देश की प्रजा प्रमाद नहीं करती ॥

तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् ।
समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥२६॥

पदा०-(सत्यवादिनं) सत्यवादी (प्राज्ञं, समीक्ष्यकारिणं) पण्डित, विचारपूर्वक शास्त्रोक्त कर्म करने वाले(धर्मकामार्थकोविदं) धर्म, अर्थ, काम के जानने वाले (राजानं) राजा को (तस्य, संप्रणेतारं, आहुः) उस दण्ड के देने का अधिकारी कहा है, सर्वसाधारण को नहीं ॥

तं राजा प्रणयन्सम्यक्त्रिवर्गेणाभिवर्द्धते ।
कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते ॥२७॥

पदा०-(तं, राजा, सम्यक्, प्रणयन्) जो राजा दण्ड का न्यायानुकूल प्रयोग करता है वह (त्रिवर्गेण, अभिवर्द्धते) धर्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्ग द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है, और जो राजा (कामात्मा, विषमः,क्षुद्रः) कामी=विषय का अभिलाषी, उलटा चलने वाला तथा क्षुद्र प्रकृति वाला है वह (दण्डेन, एव, निहन्यते) उसी दण्ड से मारा जाता है ॥

दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः ।
धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव स बान्धवम् ॥२८॥

पदा०-(हि) निश्चयकरके (सुमहत्तेजः, दण्डः) बड़े तेज वाला दण्ड (अकृतात्मभिः, दुर्धरः) वैदिकसंस्कार रहित राजाओं से धारण नहीं किया जासक्ता किन्तु वह दण्ड(धर्मात्, विचलितं) राजधर्म से विचलित (सबान्धवं, नृपं, एव, हन्ति) राजा का सपरिवार नाश करदेता है ॥

ततो दुर्गं च राष्ट्रं च लोकं च सचराचरम् ।
अन्तरिक्षगतांश्चैव मुनीन्देवांश्च पीडयेत् ॥२९॥

पदा०-(ततः) राजा को नष्ट करके पुनः वह दण्ड (दुर्गं, च, राष्ट्रं, च, लोकं, च, सचराचरं) किला, राज्य, चराचर प्रजा (च) और (अन्तरिक्षगतान्, एव, मुनीन्, देवान्, च, पीडयेत्) अन्तरिक्ष में रहने वाले वायु आदि देवता तथा मुनियों को पीड़ित करता है अर्थात् हव्य कव्य न मिलने से देवताओं को कुपित और अधर्मपरायण होने से ऋषि मुनियों को दुःखित करता है ॥

सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना ।
न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च ॥३०॥

पदा०-(असहायेन) सहायहीन अर्थात् मन्त्री तथा सेनापतियों के सहाय से रहित(मूढेन) मूर्ख(लुब्धेन)लोभी (अकृतबुद्धिना) शास्त्रविरुद्ध बुद्धि वाला=निर्बुद्धि (च) और (विषयेषु, सक्तेन) विषयों में आसक्त राजा से (सः, न्यायतः, नेतुं, न, शक्यः) वह दण्ड न्यायपूर्वक नहीं चलसक्ता अर्थात् उक्त गुणों से हीन राजा राजधर्म के पालन करने में सर्वथा असमर्थ होता है॥

शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा ।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता ॥३१॥

पदा०—(शुचिना, सत्यसन्धेन) अर्थशौचादि से युक्त, सत्य-प्रतिज्ञ (यथाशास्त्रानुसारिणा) शास्त्र के अनुसार आचरण करने वाला (सुसहायेन, धीमता) अच्छे २ सहायकों से युक्त बुद्धि-मान् राजा (दण्डः, प्रणेतुं, शक्यते) न्यायानुकूल दण्ड का प्रयोग करसकता है अर्थात् उक्त गुणसम्पन्न राजा दण्ड देने के योग्य होता है ॥

स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद्भृशदण्डश्च शत्रुषु ।
सुहृत्स्वजिह्मः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः ॥३२॥

पदा०—(स्वराष्ट्रे, न्यायवृत्तः) अपने राज्य में न्याय करने वाला (शत्रुषु, भृशदण्डः) शत्रुओं को तीक्ष्ण दण्ड देने वाला (सुहृत्सु, स्निग्धेषु, अजिह्मः) प्रियमित्रों में कुटिलता रहित तथा (ब्राह्मणेषु, क्षमान्वितः, स्यात्) ब्राह्मणों पर क्षमा रखने वाला राजा होना चाहिये ॥

एवं वृत्तस्य नृपतेः शिलोञ्छेनापि जीवतः ।
विस्तीर्यते यशो लोके तैलबिन्दुरिवाम्भसि ॥३३॥

पदा०—(एवं, वृत्तस्य) उक्त प्रकार के वर्त्ताव से युक्त (शिलोञ्छेन, अपि, जीवतः, नृपतेः) शिलोञ्छ=शिला बीनकर भी निर्वाह करने वाले राजा का (यशः) यश (अम्भसि,तैलबिन्दुः, इव) जल में तैल की बून्द के समान (लोके, विस्तीर्यते) जगत् में फैल जाता है ॥

अतस्तु विपरीतस्य नृपतेरजितात्मनः ।
संक्षिप्यते यशो लोके घृतबिन्दुरिवाम्भसि ॥३४॥

पदा०-(तु) और (अतः, विपरीतस्य) इस पूर्वोक्त विधान से विपरीत आचरण करने वाले तथा (अजितात्मनः, नृपतेः) अजितेन्द्रिय राजा का (यशः) यश (अम्भसि, घृतविन्दुः, इव) जल में घृत की बून्द के समान(संक्षिप्यते) संकुचित होजाता है ॥

स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः ।
वर्णानामाश्रमाणाञ्च राजासृष्टोऽभिरक्षिता ॥३५॥

पदा०-(स्वे, स्वे, धर्मे, निविष्टानां) अपने २ धर्म में चलने वाले (सर्वेषां, अनुपूर्वशः) क्रमानुसार सब (वर्णानां, आश्रमाणां, च) वर्णों तथा आश्रमों का (अभिरक्षिता, राजा, सृष्टः) रक्षक ईश्वर ने राजा बनाया है ॥

तेन यद्यत्सभृत्येन कर्त्तव्यं रक्षता प्रजाः ।
तत्तद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥३६॥

पदा०-(प्रजाः, रक्षता) प्रजा की रक्षा करते हुए (सभृत्येन, तेन, यत्, यत्, कर्त्तव्यं) राजा को अमात्यादिकों के साथ जो २ करना चाहिये (तत्, तत्,वः,यथावत्,अनुपूर्वशः, अहं, प्रवक्ष्यामि) वह २ सब तुम्हारे प्रति क्रमपूर्वक आगे कहूँगा ॥

सं०-अब अधिकारियों सहित राजा की दिनचर्य्या कथन करते हैं:-

ब्राह्मणान्पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः ।
त्रैविद्यवृद्धान्विदुषस्तिष्ठेत्तेषां च शासने ॥३७॥

पदा०-(पार्थिवः, प्रातः, उत्थाय) राजा प्रातःकाल उठकर (त्रैविद्यवृद्धान्, विदुषः, ब्राह्मणान्, पर्युपासीत) ऋग्, यजु, साम तीनों वेदों तथा धर्मशास्त्र के ज्ञाता ब्राह्मणों के साथ

बैठे (च) और (तेषां, शासने, तिष्ठेत्) उनकी आज्ञा का सदा पालन करे ॥

वृद्धांश्च नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदःशुचीन् ।
वृद्धसेवी हि सततं रक्षोभिरपि पूज्यते ॥३८॥

पदा०—(वेदविदः, शुचीन्, वृद्धान्,विप्रान्) वेदज्ञ, पवित्र, आयु में वृद्ध ब्राह्मणों का (नित्यं, सेवेत) नित्य सेवन करे (हि) क्योंकि (सततं, वृद्धसेवी) वृद्धों की निरन्तर सेवा करने वाला राजा सदा (रक्षोभिः, अपि, पूज्यते) राक्षसों से भी पूजा जाता है अर्थात् उसका सब मान करते हैं ॥

तेभ्योऽधिगच्छेद्विनयं विनीतात्मापि नित्यशः ।
विनीतात्मा हि नृपतिर्नविनश्यति कर्हिचित् ॥३९॥

पदा०—(तेभ्यः, विनीतात्मा, अपि, नित्यशः, विनयं, अधिगच्छेत्) उन वृद्ध ब्राह्मणों से शिक्षित राजा भी निरन्तर शिक्षा ग्रहण करे (हि) क्योंकि (विनीतात्मा, नृपतिः, कर्हिचित्, न, विनश्यति) सुशिक्षित राजा कभी नाश को प्राप्त नहीं होता ॥

बहवोऽविनयान्नष्टा राजानः सपरिच्छदाः ।
वनस्था अपि राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे ॥४०॥

पदा०—(अविनयात्) विनय से रहित (सपरिच्छदाः, बहवः, राजानः, नष्टाः) ऐश्वर्य सम्पन्न बहुत राजा नष्ट होगये और (विनयात्) विनय से (वनस्थाः) ऐश्वर्यहीन वन में रहने वाले (अपि) भी (राज्यानि, प्रतिपेदिरे) राज्यों को प्राप्त हुए, इसलिये राजा को उचित है कि :—

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ।
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्त्तारम्भांश्च लोकतः ॥४१॥

पदा०—(त्रैविद्येभ्यः) तीनों वेदों के जानने वालों से (त्रयीं, विद्यां) तीनों विद्याओं को सीखे (च) और (शाश्वतीं, दण्डनीतिं) सनातन दण्डनीति विद्या (आन्वीक्षिकीं, आत्मविद्यां) तर्क विद्या तथा वेदान्त को पढ़े (च) और (वार्त्तारम्भान्,लोकतः)अन्य लोगों से व्यावहारिक विद्या सीखे ॥

इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् ।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥४२॥

पदा०—(इन्द्रियाणां, जये, दिवानिशं, योगं, समातिष्ठेत्) इन्द्रियों के जय का सर्वदा रात दिन उद्योग करे अर्थात् जितेन्द्रिय हो (हि) क्योंकि (जितेन्द्रियः) जितेन्द्रिय राजा ही (प्रजाः, वशे,स्थापयितुं, शक्नोति) प्रजा को वश में कर सक्ता है ॥

दशकामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च ।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ४३ ॥

पदा०—(कामसमुत्थानि, दश) काम से उत्पन्न दश (तथा) तथा (क्रोधजानि, च, अष्टौ) क्रोध से उत्पन्न आठ, इस प्रकार (व्यसनानि, दुरन्तानि) दुष्ट परिणाम वाले अठारह व्यसनों को जिनका अंत मिलना दुर्लभ है (प्रयत्नेन, विवर्जयेत्) प्रयत्न से त्याग देवे ॥

कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः ।
वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु ॥४४॥

पदा०-(हि) क्योंकि (कामजेषु, व्यसनेषु, प्रसक्तः, महीपतिः) काम से उत्पन्न हुए दश व्यसनों में आसक्त हुआ राजा (अर्थधर्माभ्यां, वियुज्यते) अर्थ तथा धर्म से हीन होजाता है (तु) और (क्रोधजेषु, आत्मना, एव) क्रोध से उत्पन्न हुए आठ व्यसनों में आसक्त हुआ अपने शरीर से ही नष्ट होजाता है॥

सं०-अब काम से उत्पन्न हुए दश व्यसनों का वर्णन करते हैं:-

मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियोमदः ।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥४५॥

पदा०-(मृगया, अक्षः, दिवास्वप्नः, परिवादः, स्त्रियः, मदः) शिकार खेलना, जुआ खेलना, दिन में सोना, दूसरे के दोषों को कहना, स्त्री सम्भोग, मद्य का सेवन (तौर्यत्रिकं, वृथाट्या, च) गाना, बजाना, नाचना और विना प्रयोजन घूमना (दशकः, गणः, कामजः) यह दश व्यसन काम से उत्पन्न होते हैं ॥

सं०-अब क्रोध से उत्पन्न हुए आठ व्यसनों का वर्णन करते हैं:-

पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् ।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥४६॥

पदा०-(पैशुन्यं, साहसं, द्रोहः, ईर्ष्या, असूया, अर्थदूषणम्) चुग़ली, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, निन्दा=किसी के गुणों में दोषारोपण करना, दूसरे का धन हरण अथवा पात्र को न देना (वाग्द-

ण्डजं, च, पारुष्यं) गाली देना तथा कठोर वचन बोलना (क्रोधजः, गणः, अष्टकः) यह आठ व्यसन क्रोध से उत्पन्न होते हैं ॥

द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ।
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥४७॥

पदा०—(यं, सर्वे, कवयः, एतयोः, द्वयोः, अपि, मूलं, विदुः) जिसको सम्पूर्ण विद्वान् पूर्वोक्त व्यसनों के दोनों समुदायों का कारण बताते हैं (तं, लोभं, यत्नेन, जयेत्) उस लोभ को यत्न से त्यागदे, क्योंकि (तज्जौ, एतौ, उभौ, गणौ) यह व्यसनों के दोनों समुदाय लोभ से ही उत्पन्न होते हैं ॥

पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम् ।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥ ४८ ॥

पदा०—(कामजे, गणे) काम से उत्पन्न हुए व्यसनों के समुदाय में (यथाक्रमं) क्रमपूर्वक (पानं, अक्षाः, स्त्रियः, चैव, मृगया) मद्यपानादि मादक द्रव्यों का सेवन, जुआ खेलना, स्त्री में अतिप्रसक्ति तथा शिकार खेलना (एतत्, चतुष्कं, कष्टतमं, विद्यात्) इन चारों को बहुत कष्ट देने वाला जाने ॥

दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे ।
क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा ॥४९॥

पदा० -(क्रोधजे, अपि, गणे) क्रोध से उत्पन्न हुए गण में (दण्डस्य, पातनं, वाक्पारुष्यं, चैव, अर्थदूषणे) दण्ड देना, कठोर वचन कहना और द्रव्य का हरण करना (एतत्, त्रिकं, सदा, कष्टं, विद्यात्) इस त्रिक को सदा कष्ट देने वाला जाने ॥

सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिणः ।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान् ॥ ५० ॥

पदा०-(आत्मवान्) आत्मज्ञानी पुरुष (सर्वत्र, एव, अनुषङ्गिणः) सब में लगे हुए इन (सप्तकस्य, अस्य, वर्गस्य) सात व्यसनों में से (पूर्वं, पूर्वं, गुरुतरं, व्यसनं, विद्यात्) पहिले २ व्यसन को उत्तरोत्तर के प्रति अत्यन्त कष्ट देने वाला जाने ॥

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनीमृतः ॥५१॥

पदा०-(व्यसनस्य, मृत्योः, च, व्यसनं, कष्टं, उच्यते) व्यसन तथा मृत्यु के मध्य में व्यसन अधिक कष्ट देने वाला है, क्योंकि (व्यसनी, अधः, अधः, व्रजति) व्यसनी राजा अवनति को प्राप्त होता (च) और (अव्यसनी, मृतः, स्वः, याति) निर्व्यसनी मरणानन्तर स्वर्ग=सद्गति को प्राप्त होता है ॥

भाष्य-इस श्लोक का भाव यह है कि व्यसन और मृत्यु दोनों नाश करने वाले हैं परन्तु इन दोनों में मृत्यु से व्यसन अधिक कष्टदायक है, क्योंकि व्यसनी प्रतिदिन अपनी अवनति देखता अर्थात् सदा ही दुःख भोगता है और व्यसनों से रहित पुरुष स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥

मौलाञ्छास्त्रविदः शूराँल्लब्धलक्षान् कुलोद्गतान् ।
सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥५२॥

पदा०-(मौलान्, शास्त्रविदः, शूरान्, लब्धलक्षान्, कुलो-

हृतान्,परीक्षितान्) राजा को उचित है कि परम्परा से अधिकारी, शास्त्रज्ञ, शूरवीर, निशाना लगाने में निपुण, कुलीन तथा परीक्षो-त्तीर्ण (सप्त, च, अष्टौ, वा, सचिवान्, प्रकुर्वीत) सात अथवा आठ मन्त्री रक्खे, क्योंकि :—

अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं महोदयम् ॥५३॥

पदा०—(सुकरं, अपि, कर्म, यत्) सुलभ काम भी जो (तत्, अपि, एकेन, दुष्करं) एक से पूर्ण होना कठिन है (तु) तो (विशेषतः, महोदयं, राज्यं, किं, असाहयेन) विशेषकर बड़े फल का देने वाला राजसम्बन्धी कार्य अकेला कैसे कर सकता है.इसलिये उसको कई कार्य्यकर्त्ताओं की आवश्यकता है॥

तैः सार्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं सन्धिविग्रहम् ।
स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च ॥५४॥

पदा०—(तैः, सार्द्धं) राजा उन पूर्वोक्त गुणयुक्त मन्त्रियों के साथ (सामान्यं, सन्धिविग्रहं) साधारण सन्धि, विग्रह आदि की सम्मति करता रहे. और (स्थानं) दण्ड, कोश, पुर, राष्ट्र, इस चतुर्विध स्थान (समुदयं) धनादि की उन्नति (च) और (गुप्तिं, लब्धप्रशमनानि, नित्यं, चिन्तयेत्) सब प्रजा का रक्षण तथा प्राप्त ऐश्वर्य के यथावत् व्यवहार का विचार नित्य किया करे ॥

तेषां स्वं स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक् पृथक् ।
समस्तानां च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः॥५५॥

पदा०—(तेषां, स्वं, स्वं, अभिप्रायं, पृथक्,पृथक्,समस्तानां,

च, उपलभ्य) उन मन्त्रियों के अलग २ और सबके मिले अभिप्राय को जानकर (कार्येषु, आत्मनः, हितं, विदध्यात्) सम्पूर्ण कार्यों में अपना हित विधान करे अर्थात् राजा उन सब मन्त्रियों की अलग २ सम्मति और मिली हुई सम्मति को ज्ञात करके सब कार्यों में अपना हित चिन्तन करे ॥

सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता ।
मन्त्रयेत्परमं मन्त्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम् ॥५६॥

पदा०-(तु) और (राजा) राजा (विपश्चिता, ब्राह्मणेन, सर्वेषां, विशिष्टेन) उन सब मन्त्रियों में अधिक धर्मात्मा तथा बुद्धिमान् ब्राह्मण के साथ (षाड्गुण्यसंयुतं) षट्गुण युक्त (परमं, मन्त्रं, मन्त्रयेत्) परममन्त्र=सम्मति करे अर्थात् उसके साथ विशेषरूप से सलाह करे ॥

नित्यं तस्मिन् समाश्वस्तः सर्वकार्याणि निक्षिपेत् ।
तेन सार्द्धं विनिश्चित्य ततः कर्मसमारभेत् ॥५७॥

पदा०-(तस्मिन्, नित्यं, समाश्वस्तः) उस ब्राह्मण मन्त्री पर सदा विश्वास रखता हुआ राजा (सर्वकार्याणि, निक्षिपेत्) सब कार्य उसके अधीन करदे और प्रत्येक कार्य को प्रथम (तेन, सार्द्धं, विनिश्चित्य) उसके साथ निश्चय करके (ततः,कर्म-समारभेत्) पुनः उस कार्य का आरम्भ करे ॥

अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन्प्रज्ञानवस्थितान् ।
सम्यगर्थसमाहर्तॄनमात्यान्सुपरीक्षितान् ॥५८॥

पदा०-(अन्यान्, शुचीन्, प्रज्ञान्, अवस्थितान्) अन्य भी

पवित्र, बुद्धिमान्, स्वस्थचित्त (सम्यगर्थसमाहर्त्तॄन्, सुपरीक्षितान्, अपि) भलेप्रकार धनोपार्जन के उपाय जानने वाले तथा सब प्रकार से परीक्षित पुरुषों को भी राजा (अमात्यान्, प्रकुर्वीत) मन्त्री बनावे ॥

निर्वर्तेतास्य यावद्भिरितिकर्त्तव्यता नृभिः ।
तावतोऽतन्द्रितान्दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान् ॥५९॥

पदा०-(अस्य) इस राजा का (इतिकर्त्तव्यता) राज्य सम्बन्धी कार्य (यावद्भिः, नृभिः, निर्वर्तेत) जितने पुरुषों से पूर्ण होसके (तावतः, अतन्द्रितान्, दक्षान्, विचक्षणान्,प्रकुर्वीत) उतने आलस्यरहित, चतुर तथा बुद्धिमानों को मन्त्री बनावे ॥

तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान्दक्षान्कुलोद्गतान् ।
शुचीनाकरकर्मान्ते भीरूनन्तर्निवेशने ॥६०॥

पदा०-(तेषां) उन मन्त्रियों में (शूरान्,दक्षान्,कुलोद्गतान्, शुचीन्) शूरवीर, चतुर, कुलीन तथा निर्लोभी मन्त्रियों को (अर्थे, नियुञ्जीत) खज़ाने सम्बन्धी कार्य पर नियुक्त करे (शुचीन्,आकरकर्मान्ते) अर्थशुचियों को रत्नों की कान खुदवाने में, और (भीरून्, अन्तर्निवेशने) डरपोकों को अन्तःपुर सम्बन्धी कार्यों पर नियत रक्खे अर्थात् महलों में आने जाने के काम पर नियुक्त करे ॥

दूतञ्चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ।
इंगिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥६१॥

पदा०-(च) और (सर्वशास्त्रविशारदं) सर्वशास्त्रों में

निपुण=बहुश्रुत (इङ्गिताकारचेष्टज्ञं) इशारा तथा चेष्टा से हृच जानने वाला (शुचिं, दक्षं, कुलोद्गतं) पवित्र, कार्य्यकुशल तथा कुलपरम्परा से अधिकार प्राप्तों को (दूतं,प्रकुर्वीत) दूत बनावे ॥

अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित् ।
वपुष्मान् वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते ॥६२॥

पदा०—(अनुरक्तः, शुचिः, दक्षः, स्मृतिमान्, देशकालवित्) राजा में भक्ति रखने वाला,सदाचारी,कार्यकुशल,स्मरणशक्तिवाला, देशकाल के व्यवहार को जानने वाला (वपुष्मान्, वीतभीः, वाग्मी) बलिष्ठ, निडर तथा समयानुकूल भाषण करने वाला (राज्ञः, दूतः, प्रशस्यते) राजा का दूत प्रशंसनीय होता है अर्थात् राजा को उक्त गुण सम्पन्न दूत रखना चाहिये ॥

सन्धिविग्रहकालज्ञान्समर्थानायतिक्षमान् ।
परैरहार्यान्शुद्धांश्चधर्मतः कामतोऽर्थतः ॥६३॥
समाहर्त्तुं प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविपश्चितः ।
कुलीनान्वृत्तिसम्पन्नान्निपुणान्कोशवृद्धये ॥६४॥

पदा०—(सन्धिविग्रहकालज्ञान्) सन्धि, विग्रह के समय को जानने वाले (समर्थान्, आयतिक्षमान्) समर्थ, कठिनता को झेलने वाले (परैः, अहार्यान्) शत्रुओं से न मिलने वाले (धर्मतः, कामतः, अर्थतः, शुद्धान्) धर्म, अर्थ तथा काम से शुद्ध (च)—और (सर्वशास्त्रविपश्चितः) सब शास्त्रों के ज्ञाता (कुलीनान्, वृत्तिसम्पन्नान्, निपुणान्) कुलीन, पुष्कल जीविका वाले तथा

चतुर पुरुषों को राजा (कोशवृद्धये,समाहर्त्तुं,मकुर्वीत) कोश की वृद्धि के लिये एकत्र करने का उद्योग करे और :—

आयव्ययस्य कुशलान्गणितज्ञानलोलुपान् ।
नियोजयेद्धर्मनिष्ठान्सम्यक्कार्यार्थचिन्तकान् ॥६५॥

प्रदा०—(आयव्ययस्य, कुशलान्) आय व्यय के व्यवहार में चतुर (गणितज्ञान्, अलोलुपान्) गणित के जानने वाले, निर्लोभ (धर्मनिष्ठान्) धर्म में श्रद्धालु तथा (सम्यक्, कार्यार्थचिन्तकान्, नियोजयेत्) कार्यों के तात्पर्य्य भलेप्रकार समझने वालों को नियुक्त करे ॥

कर्मणि चातिकुशलाँल्लिपिज्ञानायतिक्षमान् ।
सर्वविश्वासिनः सत्यान्सर्वकार्येषुनिश्चितान् ॥६६॥
अकृताशाँस्तथा भर्त्तुः कालज्ञाँश्च प्रसंगिनः ।
कार्यकामोपधाशुद्धान् बाह्याभ्यन्तरचारिणः ॥६७॥

पदा०—(कर्मणि, अतिकुशलान्) कार्य में अतिकुशल (लिपिज्ञान्, आयतिक्षमान्) अच्छा लिखना जानने वाले, कठिन समयों को सहने वाले—(सर्वविश्वासिनः, सत्यान्) सबके विश्वासपात्र, सत्यवादी (सर्वकार्येषु, निश्चितान्) सब कार्यों में स्थिर बुद्धि वाले—(च) और (अकृताशान्, भर्त्तुः) स्वामी पर आशा न रखने वाले=सन्तुष्ट (कालज्ञान्, प्रसङ्गिनः) काल और प्रसङ्ग को जानने वाले (कार्यकामोपधाशुद्धान्, बाह्याभ्यन्तरचारिणः) कार्य, काम तथा धरोहर में सच्चे और बाहर भीतर के भेदी लोगों को अन्तरङ्ग कार्यों के करने तथा गृह की रक्षा पर नियत करे ॥

अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनायिकी क्रिया ।
नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ ॥ ६८ ॥

पदा०—(दण्डः, अमात्ये, आयत्तः) दण्ड मन्त्री के अधीन (दण्डे, वैनायिकी, क्रिया) दण्ड के अधीन सुशिक्षा (नृपतौ, कोशराष्ट्रे) राजा के अधीन देश तथा ख़ज़ाना (च) और दूते, सन्धिविपर्ययौ) सन्धि, विग्रह दूत के अधीन होते हैं ॥

दूत एव हि सन्धत्ते भिनत्त्येव च संहतान् ।
दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन मानवाः ॥६९॥

पदा०—(हि) निश्चयकरके (दूतः, एव, सन्धत्ते) दूत ही मेल कराता (च) और (संहतान्, भिनत्ति, एव) दूत ही मिले हुओं को फोड़ता है, वस्तुतः (दूतः, तत्, कर्म, कुरुते) दूत वह कार्य करता है (येन, भिद्यन्ते, मानवाः) जिससे मनुष्यों में भेद होजाता है ॥

स विद्यादस्य कृत्येषु निगूढेगिंतचेष्टितैः ।
आकारमिंगितं चेष्टां भृत्येषु च चिकीर्षितम् ॥७०॥

पदा०—(सः) वह दूत (अस्य) राजा के (कृत्येषु) कार्यों में (निगूढेङ्गितचेष्टितैः) छिपे हुए इशारों और चेष्टाओं से (आकारं, इङ्गितं, चेष्टां) आकार, इङ्गित तथा चेष्टा को (च) और (भृत्येषु, चिकीर्षितं, विद्यात्) भृत्यवर्गों में कर्त्तव्यता को जाने ॥

बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम् ।
तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत् ॥ ७१ ॥

पदा०—(परराज, चिकीर्षितं, सर्वं, तत्त्वेन, बुद्ध्वा) शत्रु-

राजा की सब इच्छाओं को ठीक २ जानकर (तथा, प्रयत्नं, आतिष्ठेत्) वैसा प्रयत्न करे (यथा, आत्मानं, न, पीडयेत्) जिससे वह अपने को पीड़ा न देसके ॥

सं०—अब राजा के वासस्थान का वर्णन करते हैं :—

जांगलं सस्यसम्पन्नमार्यप्रायमनाविलम् ।
रम्यमानतसामन्तं स्वाजीव्यं देशमावसेत् ॥७२॥

पदा०—(जाङ्गलं, सस्यसम्पन्नं) जङ्गल में जहां थोड़ा २ घास तथा जल हो, धान्य बहुत उत्पन्न होता हो (आर्यप्रायं, अनाविलं)जहां शिष्ट आर्य पुरुष वास करते हों, सब प्रकार के रोगादि उपद्रवों से रहित (रम्यं, आनतसामन्तं) रमणीय और जहां राजभक्त अधिकतया निवास करते हों तथा (स्वाजीव्यं) जहां सरलता से जीवन निर्वाह होसके, ऐसे (देशं, आवसेत्) स्थान पर राजा अपना निवासस्थान बनावे ॥

धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा ।
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम् ॥७३॥

पदा०—(धन्वदुर्गं, महीदुर्गं, अब्दुर्गं, वा, वार्क्षं, एव) जहां धनुदुर्ग, महीदुर्ग, जलदुर्ग, वृक्षदुर्ग (नृदुर्गं, गिरिदुर्गं, वा, समाश्रित्य, पुरं, वसेत्) सेनादुर्ग अथवा पर्वतदुर्ग हो, ऐसे किसी दुर्ग का आश्रय करके राजा नगर वसावे अर्थात् ऐसा स्थान जो उक्त पर्वत आदि किसी दुर्ग से घिरा हो और जहां शत्रु कठिनता से आसके ऐसे स्थान में पुर वसाकर आप निवास करे ॥

सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत् ।
एषां हि बाहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते ॥७४॥

पदा०-"तु" शब्द यहां विशेष का बोधक है (सर्वेण, प्रयत्नेन, गिरिदुर्गं, समाश्रयेत्) सब प्रयत्नों से पर्वतदुर्ग का आश्रय करे (हि) क्योंकि (एषां) इन सब से (बाहुगुण्येन, गिरिदुर्गं, विशिष्यते) बहुत गुणों वाला होने के कारण पर्वतदुर्ग सब में श्रेष्ठ है ॥

त्रीण्याद्यान्याश्रितास्त्वेषां मृगगर्त्ताश्रयाप्सराः ।
त्रीण्युत्तराणि क्रमशः प्लवङ्गमनरामराः ॥७५॥

पदा०-(एषां) इन छः प्रकार के दुर्गों में से (आद्यानि, त्रीणि, क्रमशः, मृगगर्त्ताश्रयाप्सराः) धनुर्दुर्गादि पहले तीन क्रम से मृग, चूहा तथा मगरों से और (उत्तराणि, त्रीणि, प्लवङ्गमनरामराः) पिछले वृक्षदुर्गादि तीन वानर, मनुष्य तथा देवताओं से (आश्रिताः) आश्रित होते हैं ॥

यथा दुर्गाश्रितानेतान्नोपहिंसन्ति शत्रवः ।
तथारयो न हिंसन्ति नृपं दुर्गसमाश्रितम् ॥७६॥

पदा०-(यथा, दुर्गाश्रितान्, एतान्, शत्रवः, नोपहिंसन्ति) जैसे उक्त दुर्गों में रहने वालों को शत्रु दुःख नहीं दे सक्ते (तथा) इसी प्रकार (दुर्गसमाश्रितं, नृपं, अरयः, न, हिंसन्ति) दुर्ग में रहने वाले राजा पर भी शत्रु आक्रमण नहीं कर सक्ते ॥

एकः शतं योधयति प्रकारस्थो धनुर्धरः ।
शतं दशसहस्राणि तस्माद्दुर्गं विधीयते ॥७७॥

पदा०-(प्रकारस्थः, एकः, धनुर्धरः) दुर्ग में स्थित अकेला धनुर्धारी (शतं, योधयति) सौ योद्धाओं के साथ और (शतं,

दशसहस्राणि) किले के भीतर सौ धनुर्धारी दशहज़ार योद्धाओं के साथ युद्ध करसक्ते हैं (तस्मात्) इसलिये (दुर्गं, विधीयते) किला वनाने का विधान है अर्थात् राजा को किला अवश्य वनाना चाहिये ॥

भाष्य—इस श्लोक का भाव यह है कि उपरोक्त छः प्रकार के दुर्गों से छः प्रकार के प्राणी अपनी रक्षा करते हैं, जैसाकि उन छओं में प्रथम के तीन दुर्गों में क्रम से धनुदुर्ग में मृग, महीदुर्ग में चूहे तथा जल दुर्ग में मगर, मच्छ आदि और पीछे के तीन दुर्गों में से वृक्षदुर्ग में वानर, नृदुर्ग में साधारण मनुष्य तथा गिरिदुर्ग में पर्वतवासी देवता अपनी रक्षा करते हैं, इसी प्रकार राजा अपनी रक्षार्थ किसी दुर्ग का आश्रय लेकर रक्षापूर्वक निवास करे ॥

तत्स्यादायुधसम्पन्नं धनधान्येन वाहनैः ।
ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ॥७८॥

पदा०—(तत्) वह दुर्ग (आयुधसम्पन्नं, धनधान्येन, वाहनैः) खड्गादि आयुधों, धनधान्य, गाड़ी आदि वाहनों (ब्राह्मणैः, शिल्पिभिः, यन्त्रैः, यवसेन, उदकेन, च) ब्राह्मण मन्त्रियों, कलों के जानने वालों, यन्त्रों, चारा, जल और इन्धन से सदा समृद्ध होना चाहिये॥

तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्गृहमात्मनः ।
गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ॥ ७९ ॥

पदा०—(तस्य, मध्ये) उस दुर्ग के भीतर राजा (सुपर्याप्तं) अपनी आवश्यकतानुसार (गुप्तं, सर्वर्तुकं, शुभ्रं) सव प्रकार से

रक्षित, ऋतुओं के फल फूलों मे युक्त, स्वच्छ तथा (जलवृक्षसमन्वितं) जल और वृक्षों से घिरा हुआ (आत्मनः, गृहं, कारयेत) अपना घर बनावे ॥

तदध्यास्योद्वहेद्भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ।
कुले महति सम्भूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम् ॥८०॥

पदा०–(तत, अध्यास्य) उस गृह में रहता हुआ (सवर्णां, लक्षणान्वितां) शुभलक्षण सम्पन्न, अपने समान वर्ण वाली (महति, कुले, सम्भूतां) उच्चकुलोत्पन्न (हृद्यां) चित्त को प्रसन्न करने वाली (रूपगुणान्वितां, भार्यां, उद्वहेत) रूप तथा शुभगुणों से युक्त स्त्री के साथ विवाह करे ॥

पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम् ।
तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्युर्वैतानिकानि च ॥८१॥

पदा०–(च) और (पुरोहितं, कुर्वीत, एव, ऋत्विजं, च, वृणुयात) पुरोहित तथा ऋत्विज् का वरण करे (ते) वह पुरोहित तथा ऋत्विज् (अस्य) राजा के (गृह्याणि, कर्माणि) गृहकर्म, अग्निहोत्र तथा शान्तिपाठ आदि क्रिया करें (च) और (वैतानिकानि, कुर्युः) यज्ञों को करें ॥

यजेत राजा क्रतुभिर्विविधैराप्तदक्षिणैः ।
धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च ॥८२॥

पदा०–(राजा) राजा (आप्तदक्षिणैः, विविधैः, क्रतुभिः, यजेत) नाना प्रकार के बहुत दक्षिणा वाले अश्वमेधादि यज्ञ करे (च) और (विप्रेभ्यः) ब्राह्मणों को (भोगान्, धनानि, चैव) भोग तथा सुवर्ण, वस्त्र तथा धनादि (धर्मार्थं,दद्यात) धर्मार्थ देवे॥

सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम् ।
स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्तेत पितृवन्नृषु ॥८३॥

पदा०-(आप्तैः) राजा राज्य के प्रामाणिक मन्त्रियों द्वारा (सांवत्सरिकं, बलिं, राष्ट्रात्, आहारयेत्) सांवत्सरिकबलि=वार्षिक मालगुज़ारी मंगावे (च) और (लोके, आम्नायपरः, स्यात्) लोगों में वेदानुकूल व्यवहार करे तथा (नृषु, पितृवत्, वर्त्तेत) प्रजा में पिता के तुल्य वर्त्ते अर्थात् पिता के समान स्नेह करे ॥

अध्यक्षान्विविधान्कुर्यात्तत्र तत्र विपश्चितः ।
तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन्नृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥८४॥

पदा०-(तत्र, तत्र) अनेक कार्यों के निरीक्षणार्थ (विपश्चितः, विविधान्, अध्यक्षान्, कुर्यात्) बुद्धिमान् अनेक अध्यक्षों को नियत करे (ते) वह अध्यक्ष (अस्य) इस राजा के (सर्वाणि, कार्याणि, नृणां, कुर्वतां, अवेक्षेरन्) सब कार्यकर्त्ताओं के काम को देखें ॥

आवृत्तानां गुरुकुलाद्विप्राणां पूजको भवेत् ।
नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते ॥८५॥

पदा०-(गुरुकुलात्, आवृत्तानां, विप्राणां) ब्रह्मचर्य्यपूर्वक वेदाध्ययन करके गुरुकुल से आये हुए ब्राह्मणों का राजा (पूजकः, भवेत्) पूजन करने वाला हो (हि) क्योंकि (एषः) यह (नृपाणां) राजाओं की (ब्राह्मः, अक्षयः, निधिः, अभिधीयते) ब्रह्मनिधि अक्षय कथन की है ॥

न तं स्तेना न चामित्रा हरन्ति नच नश्यति ।
तस्माद्राज्ञा निधातव्यो ब्राह्मणेष्वक्षयो निधिः ॥८६॥

पदा०—(तं, स्तेनाः, नच, अमित्राः, हरन्ति) उस ब्रह्मनिधि को चोर नहीं चुरा सक्ते, न शत्रु नष्ट कर सकते (च) और (न, नश्यति) न वह कभी नाश होती है (तस्मात्) इसलिये (राज्ञा, ब्राह्मणेषु, अक्षयः, निधिः, निधातव्यः) राजा ब्राह्मणों में अक्षय निधि जमा करे ॥

भाष्य—उक्त श्लोकों का भाव यह है कि गुरुकुल में ब्रह्मचर्य्यपूर्वक साङ्गोपाङ्ग वेदों के अध्ययनानन्तर समावर्त्तन संस्कारयुक्त ब्राह्मण का राजा सदा दानादि द्वारा सत्कार करे, क्योंकि यह राजाओं की ब्रह्मनिधि अक्षयनिधि कहाती है जो देने से कभी नहीं घटती, ब्राह्मणों में दिये हुए दान का नाम "ब्राह्मनिधि" है ॥

पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्दधानतयैव च ।
अल्पं वा बहु वा प्रेत्य दानस्यावाप्यते फलम् ॥८७॥

पदा०—(पात्रस्य, विशेषेण) पात्र की विशेषता (च) और (श्रद्दधानतया, एव) श्रद्धा की अधिकता से (दानस्य, फलं) दान का फल (अल्पं, वा, बहु, वा) थोड़ा वा बहुत (प्रेत्य) जन्मान्तर में (हि) निश्चयकरके (अवाप्यते) प्राप्त होता है अर्थात् श्रद्धापूर्वक पात्र को दान देने का फल जन्मान्तर अथवा इसी जन्म में अवश्य मिलता है ॥

समोत्तमाधमैराजा त्वाहूतः पालयन्प्रजाः ।
न निवर्त्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥८८॥

पदा०—(प्रजाः, पालयन्) प्रजा का पालन तथा (क्षात्रं, धर्मं, अनुस्मरन्) क्षात्रधर्म का स्मरण करता हुआ (राजा)

राजा (समोत्तमाधमैः, तु, आहूतः) अपने बराबर, उत्तम अथवा अधम किसी शत्रु राजा से आह्वान होने पर (संग्रामात्, न, निवर्त्तेत) युद्धक्षेत्र से पीछे न हटे ॥

संग्रामेष्वनिवर्त्तित्वं प्रजानां चैव पालनम् ।
शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करं परम् ॥८९॥

पदा०-(संग्रामेषु, अनिवर्त्तित्वं) युद्धक्षेत्र में पीठ न दिखाना (प्रजानां, चैव, पालनं) प्रजा का पालन (च) और (ब्राह्मणानां, शुश्रूषा) ब्राह्मणों की सब प्रकार से सेवा करना, यह तीन कर्म (राज्ञां, परंश्रेयस्करं) राजा को परम कल्याण के देने वाले हैं ॥

आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः ।
युध्यमानाःपरं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः॥९०॥

पदा०-(आहवेषु) संग्राम में (मिथः, अन्योन्यं, जिघांसन्तः) परस्पर एक दूसरे को मारने की इच्छा से (परंशक्त्या,युध्यमानाः) परमशक्ति द्वारा युद्ध करते हुए (अपराङ्मुखाः, स्वर्गं, यान्ति) शत्रु को पीठ न दिखाने वाले स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥

न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्यमानो रणे रिपून् ।
न कर्णिभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः ॥९१॥

पदा०-(रणे) संग्राम में (युध्यमानः) युद्ध करता हुआ (कूटैः, आयुधैः) छिपे हुए शस्त्रों (न, कर्णिभिः, नापि, दिग्धैः, अग्निज्वलिततेजनैः) कर्णीबाणों=जो शरीर में प्रवेश करके निकलने कठिन हों, विष में बुझाये हुए आयुधों और जलते हुए शस्त्रों से (रिपून्, न, हन्यात्) शत्रुओं को न मारे ॥

नच हन्यात्स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम् ।
न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीतिवादिनम् ॥९२॥

पदा०-(च) और (न, स्थलारूढं, न, क्लीबं, न, कृताञ्जलिं) रथ से उतरे हुए भूमि पर स्थित को न मारे, न नपुंसक को, न हाथ जोड़े खड़े हुए को (न, मुक्तकेशं, न, आसीनं, न, तवास्मि, इतिवादिनं) न शिर के बाल खुले हुए को, न बैठे हुए को और नाही "मैं तुम्हारा हूँ" इस प्रकार कहते हुए को मारे ॥

न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम् ।
नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम् ॥९३॥

पदा०-(न, सुप्तं, न, विसन्नाहं, न, नग्नं, न, निरायुधं) सोते हुए को न मारे, न कवच उतारे हुए को, नङ्गे को, शस्त्ररहित को, (न, अयुध्यमानं, न, पश्यन्तं, न, परेण, समागतं) युद्ध न करने वाले को, युद्ध देखने वाले को और नाही मेल मिलाप करने वाले को मारे ॥

नायुधव्यसनप्राप्तं नार्त्तं नातिपरिक्षतम् ।
न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ९४ ॥

पदा०-(सतां, धर्मं, अनुस्मरन्) सत्पुरुषों के धर्म का स्मरण करता हुआ (न, आयुधव्यसनप्राप्तं) न शस्त्र टूटे हुए को (न, आर्त्तं) न दुःखित को (न, अतिपरिक्षतं) न अत्यन्त घाव लगे हुए को (न, भीतं, न, परावृत्तं) न डरपोक को और नाही युद्ध से भागने वाले को मारे, क्योंकिः—

यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः ।
भर्त्तुर्यद्दुष्कृतं किञ्चित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ ९५ ॥

पदा०—(यः, भीतः, तु, परावृत्तः) जो योद्धा डरकर भागा हुआ (संग्रामे, परैः, हन्यते) युद्ध में शत्रुओं से मारा जाता है वह (भर्त्तुः, यत्, किञ्चित्, दुष्कृतं) स्वामी के जो कुछ दुष्कृत=पाप हैं (तत्, सर्वं, प्रतिपद्यते) उन सब को प्राप्त होता है अर्थात् वह सब पाप उसको लगते हैं ॥

यच्चास्य सुकृतं किञ्चिदमुत्रार्थमुपार्जितम् ।
भर्त्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु ॥९६॥

पदा०—(तु) और (परावृत्तहतस्य, अस्य, यत्, किञ्चित्) पीछे हटकर मरे हुए का जो कुछ पुण्यकर्म है जो उसने (अमुत्रार्थं, उपार्जितं) परलोक के लिये सञ्चित किया है (तत्, सर्वं,भर्त्ता,आदत्ते) वह सब स्वामी को प्राप्त होता है ॥

रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून्स्त्रियः ।
सर्वद्रव्याणि कुप्यञ्च यो यज्जयति तस्य तत् ॥९७॥

पदा०—(रथाश्वं, हस्तिनं, छत्रं, धनं, धान्यं, पशून्, स्त्रियः) रथ, घोड़े, हाथी, छत्र, धन, धान्य, पशु, स्त्रियाँ (च) और (सर्वद्रव्याणि, कुप्यं) घृत, तैलादि सब पदार्थ (यः, यत्, जयति, तस्य, तत्) जो जिसको जीते वह उसीका है ॥

राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः ।
राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम् ॥९८॥

पदा०—(उद्धारं, राज्ञः दद्युः) सबसे उत्तम पदार्थ राजा को दे (इति, एषा, वैदिकीश्रुतिः) यह वैदिकीश्रुति=वेद ने विधान किया है (च) और (अपृथग्जितं) साथ मिलकर जीते हुए पदार्थों का विभाग करके (राज्ञा,सर्वयोधेभ्यः,दातव्यं) राजा सब योद्धाओं को दे देवे अर्थात् युद्ध की लूट में से उत्तम धन राजा को दे और मिलकर जीते हुए धन का राजा सब योद्धाओं में विभाग करदे ॥

एषोऽनुपस्कृतः प्रोक्तो योधधर्मः सनातनः ।
अस्माद्धर्मान्न च्यवेत क्षत्रियो घ्नन् रणे रिपून्॥९९॥

पदा०—(एषः, सनातनः अनुपस्कृतः, योधधर्मः, प्रोक्तः) यह सनातन धर्म अनिन्दित योद्धाओं का कहा (क्षत्रियः, रणे, रिपून्, घ्नन्) क्षत्रिय रण में शत्रुओं को मारता हुआ (अस्मात्, धर्मात्, न, च्यवेत) इस धर्म को कदापि न छोड़े ॥

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः ।
रक्षितं वर्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निक्षिपेत् ॥ १०० ॥

पदा०—(अलब्धं, चैव, लिप्सेत) अप्राप्त के लेने की इच्छा करे (लब्धं, प्रयत्नतः, रक्षेत्) प्राप्त की प्रयत्न से रक्षा करे (च) तथा (रक्षितं, वर्धयेत्, एव) रक्षित को बढ़ावे (च) और (वृद्धं, पात्रेषु, निक्षिपेत्) बढ़े हुए धन को योग्य पात्रों में देवे ॥

एतच्चतुर्विधं विद्यात्पुरुषार्थप्रयोजनम् ।
अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः ॥१०१॥

पदा०—(एतत्, चतुर्विधं, पुरुषार्थप्रयोजनं, विद्यात्) यह पूर्वोक्त चार प्रकार का पुरुषार्थप्रयोजन जानना चाहिये अर्थात् इनको मनुष्यजन्म के चार फलों का साधन जानें और (अस्य, अतन्द्रितः, नित्यं, अनुष्ठानं, सम्यक्, कुर्यात्) आलस्यरहित होकर इसका अनुष्ठान निरन्तर यत्न से करे ॥

अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया ।
रक्षितं वर्द्धयेद्वृद्ध्या वृद्धिं दानेन निक्षिपेत् ॥१०२॥

पदा०—(अलब्धं, दण्डेन, इच्छेत्) अप्राप्त को दण्ड से जीतने की इच्छा करे (लब्धं, अवेक्षया, रक्षेत्) प्राप्त की निरीक्षण द्वारा रक्षा करे (रक्षितं, वृद्ध्या, वर्द्धयेत्) रक्षित को व्यापार से बढ़ावे और (वृद्धिं, दानेन, निक्षिपेत्) बढ़े हुए को दान से व्यय करके परलोक के निमित्त जमा करे ॥

नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः ।
नित्यं संवृतसर्वार्थो नित्यं छिद्रानुसार्यरेः ॥१०३॥

पदा०—(नित्यं,उद्यतदण्डः,स्यात्)राजा सदा दण्ड को उद्यत रखे (नित्यं, विवृतपौरुषः) सदा शस्त्रादि के अभ्यास द्वारा प्रकट पौरुष रहे (नित्यं, संवृतसर्वार्थः) अपने सम्पूर्ण अर्थों को सदा गुप्त रखे, और (अरेः, नित्यं, छिद्रानुसारी) शत्रु के छिद्रों को सदा देखे ॥

नित्यमुद्यतदण्डस्य कृत्स्नमुद्विजते जगत् ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि दण्डेनैव प्रसाधयेत् ॥१०४॥

पदा०—(नित्यं,उद्यतदण्डस्य) सदा उद्यत दण्ड वाले राजा से (कृत्स्नं,जगत्, उद्विजते) सम्पूर्ण जगत् भयभीत होता है (तस्मात्) इसलिये (सर्वाणि, भूतानि) सम्पूर्ण जीवों को (दण्डेन, एव, प्रसाधयेत) दण्ड से ही स्वाधीन करे ॥

अमाययैव वर्तेत न कथंचन मायया ।
बुध्येतारिप्रयुक्तां च मायां नित्यं स्वसंवृतः ॥१०५॥

पदा०—(अमायया, एव, वर्तेत) छल कपट से रहित व्यवहार करे (न, कथंचन, मायया) किसी प्रकार का छल कपट न करे (च) और (नित्यं, स्वसंवृतः, अरिप्रयुक्तां, मायां, बुध्येत) अपनी रक्षा करता हुआ शत्रु के किये छल को सदा जानता रहे, और ऐसा यत्न करे कि :—

नास्य छिद्रं परो विद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य तु ।
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥१०६॥

पदा०—(परः,अस्य, छिद्रं, न, विद्यात्) शत्रु उसके छिद्रों=दोषों को न जाने (तु) परन्तु (परस्य, छिद्रं, विद्यात्) शत्रु के छिद्रों को आप जाने (कूर्मः, अङ्गानि, इव, गूहेत) कछुए की न्याईं अपने अङ्गों को गुप्त रखता हुआ (आत्मनः, विवरं, रक्षेत) अपने छिद्र की रक्षा करे अर्थात् अपने राज्यसम्बन्धी व्यवहारों को गुप्त रखता हुआ अपनी त्रुटि पर सदा दृष्टि रखे ॥

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलादपि निकृन्तति ॥१०७॥

पदा०—(न, विश्वसेदविश्वस्ते) अविश्वासी पर कदापि

विश्वास न करे (विश्वस्ते. नातिविश्वसेत) विश्वासी पर अति विश्वास न करे, क्योंकि (विश्वासात. भयं, उत्पन्नं) विश्वास से उत्पन्न हुआ भय (मूलात्, अपि. निकृन्तति) जड़ से ही काट देता है अर्थात प्राणों से वियुक्त कर देता है ॥

बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत् ।
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत् ॥१०८॥

पदा०-(बकवत, अर्थान्, चिन्तयेत) बगुला की न्याई अपने अर्थों=प्रयोजनों का चिन्तन करे (च) तथा (सिंहवत्, पराक्रमेत) सिंह की भांति पराक्रमी हो (वृकवत, अवलुम्पेत) वृक=भेड़िया के समान हनन करे (च) और (शशवत्, विनिष्पतेत्) शश=खरगोश की न्याई भाग जाय ॥

एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः ।
तानानयेद्वशं सर्वान्सामादिभिरुपक्रमैः ॥१०९॥

पदा०-(एवं) इस प्रकार (विजयमानस्य, ये, अस्य, परिपन्थिनः, स्युः) विजयकरने वाले राजा के जो विरोधी हों (तान्, सर्वान्) उन सब को (सामादिभिः,उपक्रमैः, वशं, आनयेत) साम, दामादि उपायों से वश में करे ॥

यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमैस्त्रिभिः ।
दण्डेनैव प्रसह्यैतांश्छनकैर्वशमानयेत् ॥११०॥

पदा०-(यदि) यदि (ते) वह विरोधी (प्रथमैः, त्रिभिः, उपायैः, न, तिष्ठेयुः) प्रथम के तीन उपायों=साम, दाम, भेद

से विरोध न छोड़ें तो (दण्डेन, एव, प्रसह्य, एतान्, शनकैः, वशं, आनयेत्) दण्ड से ही बल द्वारा इनको सहज उपाय से वश में लावे॥

सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पण्डिताः ।
सामदण्डौ प्रशंसन्ति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये ॥१११॥

पदा०-(पण्डिताः) पण्डित लोग (सामादीनां, चतुर्णां, उपायानां) सामादि चार उपायों में (नित्यं) सदा (राष्ट्राभिवृद्धये) राज्य की वृद्धि के लिये (सामदण्डौ, प्रशंसन्ति) साम और दण्ड की प्रशंसा करते हैं ॥

भाष्य-शत्रु को वश में करने के लिये साम, दाम, भेद दण्ड, यह चार उपाय हैं परन्तु इन चारो उपायों में से बुद्धिमान् लोग राज्य की वृद्धि के लिये साम और दण्ड की प्रशंसा करते हैं,क्योंकि शान्तिरूप उपाय में परिश्रम,धन का व्यय तथा सेना का नाश नहीं होता और दण्डरूप उपाय में पूर्वोक्त दोष होने पर भी कार्य्यसिद्धि की विशेषता है अर्थात् कार्य्यसिद्धि अवश्य होती है,इस कारण राज्य की वृद्धि के लिये यह दो उपाय ही श्रेष्ठ हैं ॥

यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति ।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ॥११२॥

पदा०-(यथा) जैसे (निर्दाता) खेती नराने वाला (धान्यं, रक्षति) धान्यों की रक्षा करता (च) और (कक्षं, उद्धरति) तृणों को उखाड़ डालता है (तथा) इसी प्रकार (नृपः) राजा (राष्ट्रं) राज्य की (रक्षेत्) रक्षा (च) और (परिपन्थिनः, हन्यात्) विरुद्ध चलने वालों का नाश करे ॥

मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ।
सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः ॥११३॥

पदा०-(यः) जो राजा (अनवेक्षया) शिष्ट और दुष्टों को न जानकर (मोहात्) अज्ञान से (स्वराष्ट्रं, कर्षयति) अपने राज्य को दुःख देता है (सः) वह (अचिरात्) शीघ्र ही (सबान्धवः) बान्धवों सहित (राज्यात्) राज्य (च) और (जीवितात्) जीवन से (भ्रश्यते) नष्ट भ्रष्ट होजाता है ॥

शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा ।
तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात् ॥११४॥

पदा०-(यथा) जैसे (शरीरकर्षणात्) शरीर के सूखने से (प्राणिनां, प्राणाः, क्षीयन्ते) प्राणियों के प्राण घटते हैं (तथा) इसी प्रकार (राष्ट्रकर्षणात्) राज्य को पीड़ा देने से (राज्ञां,अपि, प्राणाः, क्षीयन्ते) राजाओं के भी प्राण क्षय को प्राप्त होते हैं ॥

राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत् ।
सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते ॥११५॥

पदा०-(राष्ट्रस्य, संग्रहे) देश की रक्षा के संग्रह में (इदं, विधानं, नित्यं, आचरेत्) यह आगे कहा हुआ उपाय सदा करे (हि) क्योंकि (सुसंगृहीतराष्ट्रः,पार्थिवः) राज्य की भलेप्रकार रक्षा करने वाला राजा (सुखं, एधते) सुखपूर्वक बढ़ता है ॥

सं०-अब राज्यप्रबन्ध कथन करते हैं :—

द्वयोस्त्रयाणां पंचानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम् ।
तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम् ॥११६॥

पदा०–(द्वयोः, त्रयाणां, पंचानां) दो, तीन, पांच (तथा) तथा (ग्रामशतानां. मध्ये) सौ ग्रामों के बीच में (संग्रहं,अधिष्ठितं, गुल्मं, राष्ट्रस्य, कुर्यात) प्रबन्ध करने वाले पुरुषों का समूह स्थापन करे अर्थात् थाना=पुलिस. कलक्टरी आदि प्रजा के रक्षार्थ जगह २ स्थापन करे ॥

ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्दशग्रामपतिं तथा ।
विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च ॥ ११७ ॥
ग्रामदोषान्समुत्पन्नान्ग्रामिकः शनकैः स्वयम् ।
शंसेद्ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिनम्॥११८॥

पदा०–(ग्रामस्य, अधिपति, कुर्यात) ग्राम का एक अधिपति नियत करे (तथा, दशग्रामपतिं) इसी प्रकार दश ग्राम का (विंशतीशं, शतेशं, च, सहस्रपतिं, एव) बीस ग्राम का, सौ का तथा हज़ार का भी अधिपति नियत करे—(च) और (ग्रामिकः, समुत्पन्नान्, ग्रामदोषान्, स्वयं, शनकैः) ग्राम का अधिपति उत्पन्न हुए ग्राम के दोषों को धीरे से जानकर स्वयं शासन न करसके तो (ग्रामदशेशाय, शंसेत) गुप्तरूप से दश ग्राम के अधिपति को सूचित करे, यदि वह भी न करसके तो (दशेशः, विंशतीशिनम्) दशग्रामाधिपति बीस ग्राम वाले अधिपधि को सूचित करे, और :—

विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत् ।
शंसेद्ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम् ॥११९॥
यानिराजप्रदेयानि प्रत्यहं ग्रामवासिभिः ।
अन्नपानेन्धनादीनि ग्रामिकस्तान्यवाप्नुयात्॥१२०॥

पदा०—(त्रिंशतीशस्तु, तत्सर्वं, शतेशाय) बीस ग्राम का अधिपति वह सब वृत्त सौ ग्राम के मुखिया को (तु) और (शंसेद्, ग्रामशतेशः) सौ ग्राम वाला (सहस्रपतये, स्वयं, निवेदयत्) हज़ार ग्रामाधिपति को स्वयं जाकर निवेदन करे—और (ग्रामवासिभिः) ग्रामवासियों को (प्रत्यहं) प्रतिदिन (राजप्रदेयानि) राज से देने योग्य (यानि) जो (अन्नपानेन्धनादीनि) अन्न, पान तथा इन्धनादिक हैं (तानि) उनको (ग्रामिकः, अवाप्नुयात्) ग्राम का अधिपति ग्रहण करे अर्थात् प्रजा को देने योग्य उक्त प्रकार का सामान ग्राम के मुखिया के प्रबन्ध में रहे जो आवश्यकता होने पर तत्काल दे दे ॥

दशी कुलं तु भुञ्जीत त्रिंशी पञ्चकुलानि च ।
ग्रामं ग्रामशताध्यक्षः सहस्राधिपतिः पुरम् ॥१२१॥

पदा०—(तु) और (दशी, कुलं, भुञ्जीत) दश ग्रामों का अधिपति एक कुल भोगे (त्रिंशी, पञ्चकुलानि) बीस ग्राम का मुखिया पांच कुल (ग्रामशताध्यक्षः, ग्रामं) सौ ग्राम का अधिपति एक ग्राम (च) और (सहस्राधिपतिः, पुरम्) हज़ार ग्रामों का अधिपति एक नगर की आमदनी भोगे ॥

भाष्य—छः बैल का एक मध्यम हल होता है ऐसे दो हलों से जितनी भूमि जुत सके उसको "कुल" कहते हैं, दश ग्रामाधिपति के निर्वाहार्थ राजा एक कुल भूमि दे, इसीप्रकार बीस ग्रामाधिपति को पांच कुल, सौ ग्रामाधिपति को एक ग्राम और हज़ार ग्रामाधिपति को एक नगर उसकी आजीविकार्थ लगा दे॥

तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्याणि चैव हि ।
राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः ॥१२२॥

पदा०-(तेषां) उन अधिपतियों के (ग्राम्याणि, कार्याणि) ग्रामसम्बन्धी कार्य्य (चैव) और इसीप्रकार (पृथक्, कार्याणि) अन्य कामों को (हि) भी (राज्ञः, अन्यः, स्निग्धः, सचिवः) राजा का दूसरा प्रिय मन्त्री (अतन्द्रितः, पश्येत्) आलस्य-रहित होकर देखे, और राजा को चाहिये कि :—

नगरे नगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम् ।
उच्चैः स्थानं घोररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम् ॥१२३॥
स तानन्नुपरिक्रामेत्सर्वानेव सदा स्वयम् ।
तेषा वृत्तं परिणयेत्सम्यग्राष्ट्रेषु तच्चरैः ॥ १२४ ॥

पदा०-(नगरे, नगरे, चैकं, सर्वार्थचिन्तकं) प्रत्येक नगर में एक २ सब अर्थों=कार्यों का चिन्तन करने वाला प्रधान मन्त्री (कुर्यात्) नियत करे, जो (उच्चैः, स्थानं) बड़े कुल का (घोररूपं) सेना आदि से भय देने वाला (नक्षत्राणामिव, ग्रहं) और तारों में ग्रह जैसा तेजस्वी हो-(सः) वह नगराधिपति (सदा) सर्वदा (स्वयं) आप (तान्, सर्वान्) उन सब ग्रामाधिपतियों के (एव) ही (अनुक्रामेत्) ऊपर दौरा करे, और (तेषां, राष्ट्रेषु) उनकी सीमा के प्रदेशों में (वृत्तं) उनके चरित्र को (तत्, चरैः, सम्यक्, परिणयेत्) नियुक्त दूतों द्वारा भले प्रकार जाने ॥

राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः ।
भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः॥१२५॥

पदा०-(हि) क्योंकि (रक्षाधिकृताः) रक्षा के लिये नियत (राज्ञः, भृत्याः) राजा के नोकर (प्रायेण) प्रायः (परस्वादायिनः)

दूसरों के धन को हरण करने वाले तथा (शठाः, भवन्ति) वंचक होते हैं (तेभ्यः) उनसे राजा (इमाः, प्रजाः, रक्षेत्) इन प्रजाओं की रक्षा करे ॥

सं०—अब रिशवत लेने वाले अधिपति=हाकिम के लिये दण्ड कथन करते हैं:—

ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः ।
तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् ॥१२६॥

पदा०—(ये) जो (पापचेतसः, भृत्याः) पापबुद्धि वाले भृत्य=नोकर (कार्यिकेभ्यः) कार्यार्थियों=कामवालों से (अर्थं, गृह्णीयुः) द्रव्य ग्रहण करते अर्थात् रिशवत लेते हैं (तेषां) उनका राजा (सर्वस्वं, आदाय) सर्वस्व हरण करके (प्रवासनं, कुर्यात्) देश से बाहर निकाल दे ॥

राजकर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च ।
प्रत्यहं कल्पयेद्वृत्तिं स्थानकर्मानुरूपतः ॥१२७॥

पदा०—(राजकर्मसु) राजा के काम में (युक्तानां) नियुक्त (स्त्रीणां, प्रेष्यजनस्य, च) स्त्री और काम करने वाले पुरुषों की (स्थानकर्मानुरूपः) स्थान तथा कार्य के अनुसार (वृत्तिं) वृत्ति को (प्रत्यहं) सदा (कल्पयेत्) नियत किया करे, अर्थात् राजकार्य्य करने वालों के पद और वेतन में राजा सदा न्यूनाधिकता करे ॥

पणो देयोऽवकृष्टस्य षडुत्कृष्टस्य वेतनम् ।
षाण्मासिकस्तथाच्छादो धान्यद्रोणस्तु मासिकः ॥१२८॥

पदा०-(अवकृष्टस्य) निकृष्ट भृत्य को (वेतनं) वेतन=तनुख्वाह (पणः) एक पण (देयः) देवे (उत्कृष्टस्य) उत्कृष्ट=अच्छा काम करने वाले सेवक को (षट्) छः पण=छः गुना देवे (तथा) इसी प्रकार (षाण्मासिकः) छठे महीने (आच्छादः) एक जोड़ा वस्त्र और (मासिकः, धान्यद्रोणः) प्रत्येक महीने एक द्रोण धान्य देवे ॥

भाष्य-राजा अपने निज के सेवकों में से निकृष्ट सेवक को "अशीतिवराटकानां पणः"=अस्सी कौड़ी का एक पण प्रति दिन वेतन देवे और अच्छा काम करने वाले को उससे छगुणा अधिक दे, छठे महीना एक जोड़ा वस्त्र और महीने में एक द्रोण अन्न दे, द्रोण का परिमाण इस प्रकार है कि:—

अष्टमुष्टिर्भवेत्किंचित्किंचिदष्टौ च पुष्कलम् ।
पुष्कलानि तु चत्वारि आढकः परिकीर्तितः ॥

अर्थ-आठ मुट्ठियों का एक किञ्चित, आठ किञ्चित का एक पुष्कल, चार पुष्कलों का एक आढक और "चतुराढको भवेद्द्रोणः"=चार आढक का "एक द्रोण" होता है ॥

सं०-अब व्यापारियों से कर लेने का विधान करते हैं:—

क्रयविक्रयमध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम् ।
योगक्षेमं संप्रेक्ष्य वणिजो दापयेत्करान् ॥१२९॥

पदा०-(क्रयविक्रयं, अध्वानं) वेचना, मोल लेना, मार्ग के व्यय (भक्तं, सपरिव्ययं) भोजनादि का व्यय (च) और

(योगक्षेमं) उनके निर्वाह को (संप्रेक्ष्य) देखकर (वणिजः,करान्, दापयेत्) व्यापारियों से कर लेवे ॥

यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च कर्मणाम् ।
तथाऽवेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत्सततं करान् ॥१३०॥

पदा०–(राजा,कर्त्ता,च,कर्मणां) राजा और कामों के करने वाले दोनों को (यथा, फलेन, युज्येत) जिस प्रकार अच्छा फल रहे (तथा, अवेक्ष्य) उसी प्रकार देखकर (नृपः) राजा (राष्ट्रे) राज्य में (सततं, करान्, कल्पयेत्) सदा कर लगावे ॥

यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यं वार्य्योकोवत्सषट्पदाः ।
तथाल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः॥१३१॥

पदा०–(यथा)जैसे(वार्य्योकोवत्सषट्पदाः) जोंक, बछड़ा तथा भौंरा (अल्पाल्पं, आद्यं, अदन्ति) थोड़े २ अपने खाने के पदार्थ भक्षण करते हैं अर्थात् धीरे २ अपने २ खाद्य पदार्थ खींचते हैं (तथा) इसी प्रकार (राज्ञा) राजा भी (राष्ट्रात्) राज्य से (अल्पाल्पः) थोड़ा २ (आब्दिकः,करः) वार्षिक कर (ग्रहीतव्यः) ग्रहण करे अर्थात् व्यापारियों का मूलधन नाश करके उनको उजाड़ने की चेष्टा न करे ॥

सं०–अब अन्न तथा दूध घृतादि पर कर लेने का विधान करते हैं:–

पंचाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः ।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा॥१३२॥

पदा०–(राज्ञा) राजा (पशुहिरण्ययोः, पंचाशद्भागः) पशु तथा

सुवर्ण के लाभ का पचासवां भाग और (धान्यानां) अन्नों का (अष्टमः, षष्ठः, वा, द्वादशः, भागः, एव, आदेयः) आठवां, छठा वा बारहवां भाग ही राजा ग्रहण करे, अधिक नहीं ॥

आददीताथ षड्भागं द्रुमांसमधुसर्पिषाम् ।
गन्धौषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च ॥१३३॥

पदा०—(अथ) और (द्रुमांसमधुसर्पिषां) वृक्ष, मांस मधु, घृत (गन्धौषधिरसानां) गन्ध, औषधि, रस (च) और (पुष्पमूलफलस्य) पुष्प, मूल तथा फल, इनके लाभ में से राजा (षड्भागं, आददीत) छठा भाग ग्रहण करे ॥

पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदलस्य च ।
मृण्मयाना च भाण्डाना सर्वस्याश्ममयस्यच॥१३४॥

पदा०—(पत्रशाकतृणानां) पत्र, शाक तथा तृण (च) और (चर्मणां, वैदलस्य) चर्म, बांस (च) अथवा (मृण्मयानां) मिट्टी (च) और (सर्वस्य, अश्ममयस्य) सब प्रकार के पत्थर के बने हुए (भाण्डानां) पात्रों पर राजा लाभ में से छठा भाग लेवे ॥

सं०—अब ब्राह्मण से कर लेने का निषेध करते हैं :—

म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा श्रोत्रियात्करम् ।
नच क्षुधाऽस्य संसीदेच्छ्रोत्रियो विषये वसन्॥१३५

यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सीदति क्षुधा ।
तस्यापि तत्क्षुधा राष्ट्रमचिरेणैव सीदति ॥१३६॥

पदा०—राजा (म्रियमाणः, अपि) मरता हुआ भी (श्रोत्रि-

याव, करं, न, आददीत) श्रोत्रिय ब्राह्मण से कर ग्रहण न करे और (अस्य, विषये,वसन्,श्रोत्रियः) इसके राज्य में वास करता हुआ श्रोत्रिय (क्षुधा, न, संसीदेत्) क्षुधा से पीड़ित न हो—(तु) क्योंकि (यस्य, राज्ञः, विषये, श्रोत्रियः, क्षुधा, सीदति) जिस राजा के राज्य में वेदपाठी क्षुधा=भूख से पीड़ित होता है (तस्य) उस राजा का (तत्,राष्ट्रं,अपि) वह राज्य भी (अचिरेण, एव) शीघ्र ही (क्षुधा, सीदति) क्षुधा से दुःखित हुआ नाश होजाता है ॥

श्रुतवृत्ते विदित्वास्य वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत् ।
संरक्षेत्सर्वतश्चैनं पिता पुत्रमिवौरसम् ॥१३७॥
संरक्ष्यमाणो राज्ञाऽयं कुरुते धर्ममन्वहम् ।
तेनायुर्वर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ॥ १३८ ॥

पदा०—(अस्य) राजा उक्त वेदपाठी का (श्रुतवृत्ते) वेदाध्ययनपूर्वक कर्मानुष्ठान (विदित्वा) जानकर (धर्म्यां, वृत्तिं, प्रकल्पयेत्) धर्मयुक्त जीविका नियत कर देवे (च) और (सर्वतः, संरक्षेत्) सब प्रकार इसकी रक्षा करे (पिता, पुत्रं, इव, औरसं) जैसे पिता औरस पुत्र की रक्षा करता है—क्योंकि (राज्ञा, संरक्ष्यमाणः, अयं) राजा से रक्षा किया हुआ यह श्रोत्रिय (अन्वहं, धर्मं, कुरुते) नित्य धर्म करता है (तेन) उस पुण्य से (राज्ञः, आयुः) राजा की आयु (च) और (द्रविणं, राष्ट्रं, एव, वर्धते) धन तथा राज्य भी बढ़ता है ॥

सं०—अब राजा के लिये निकृष्ट पुरुषों से कर लेने का विधान करते हैं :—

यत्किंचिदपि वर्षस्य दापयेत्करसंज्ञितम् ।
व्यवहारेण जीवन्तं राजा राष्ट्रे पृथग्जनम् ॥१३९॥
कारुकाञ्छिल्पिनश्चैव शूद्रांश्चात्मोपजीविनः ।
एकैकं कारयेत्कर्म मासि मासि महीपतिः ॥१४०॥

पदा०—(राजा, राष्ट्रे) राजा अपने राज्य में (व्यवहारेण) शाक भाजी आदि के व्यापार द्वारा (जीवन्तं) जीविका करने वाले (पृथग्जनं) निकृष्ट पुरुषों से (अपि) भी (यत्किंचित्) थोड़ासा (वर्षस्य, करसंज्ञितं, दापयेत्) वर्ष के अन्त में कर लेवे—(च) और (कारुकान्, शिल्पिनः) लुहार बढ़ई आदि (च,एव) तथा (शूद्रान्) दास (च) और (आत्मोपजीविनः) मज़दूरी करने वाले कुली आदि, इनसे (मासि,मासि, एकैकं, कर्म,कारयेत्) प्रतिमास एक २ दिन कुछ न देकर=बेगार में काम करावे ॥

नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया ।
उच्छिन्दन् ह्यात्मनो मूलमात्मानं तांश्च पीडयेत् ।१४१।

पदा०—(आत्मनः, मूलं, न, उच्छिन्द्यात्) राजा अपना मूलछेदन न करे (च) तथा (अतितृष्णया, परेषां) अतितृष्णा से दूसरों का भी मूलछेदन न करे (हि) क्योंकि (आत्मनः, मूलं, उच्छिन्दन्) अपने मूल को छेदन करता हुआ (आत्मानं) अपने को(च)और (तान्) दूसरों को (पीडयेत्) पीड़ित करता है॥

भाष्य—यदि राजा प्रजा के स्नेहादि से अपना कर न लेवे तो राजा को हानि होने से उसका मूलोच्छेद होगा और यदि लालच में आकर बहुत कर लेवे तो प्रजा का मूलोच्छेद होना

सम्भव है, अतएव यह दोनों काम राजा न करे, क्योंकि कोश के क्षीण होने से आपभी क्लेश को प्राप्त न हो और अधिक कर लेकर प्रजा को भी दुःखित न करे ॥

तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्कार्यं वीक्ष्य महीपतिः ।
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति संमतः ॥१४२॥

पदा०—(महीपतिः) राजा (कार्यं, वीक्ष्य) कार्य्य को देख कर (तीक्ष्णः, च, मृदुः, एव, स्यात्) तीक्ष्ण तथा मृदु=कोमल भी होजाया करे (एव) निश्चयकरके (तीक्ष्णः, च, मृदुः, राजा) तीक्ष्ण तथा कोमल राजा (संमतः, भवति) सर्वसम्मत होता है अर्थात् ऐसे स्वभाव वाले राजा को सब चाहते हैं ॥

अमात्यमुख्यं धर्मज्ञं प्राज्ञं दान्तं कुलोद्गतम् ।
स्थापयेदासने तस्मिन् खिन्नः कार्येक्षणे नृणाम्॥१४३॥

पदा०—(नृणां, कार्येक्षणे, खिन्नः) यदि राजा स्वयं प्रजा के कार्य्य करने में खिन्न अर्थात् रोगादिवश हुआ अपने आप राजकार्य्य न करसके तो (तस्मिन्, आसने) उस न्यायासन पर (धर्मज्ञं, प्राज्ञं, दान्तं, कुलोद्गतं) धर्मात्मा, बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय तथा कुलीन (अमात्यमुख्यं) मुख्य मन्त्री को (स्थापयेत्) स्थापन करे ॥

एवं सर्वं विधायेदमितिकर्तव्यमात्मनः ।
युक्तश्चैवाप्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः ॥१४४॥

पदा०—(एवं) इसप्रकार (इदं, आत्मनः, सर्वं, इतिकर्तव्यं, विधाय) पीछे विधान किये हुए अपने सम्पूर्ण कर्तव्य को पूर्ण

करके (अप्रमत्तः) प्रमादरहित हो (युक्तः) राजप्रबन्ध में युक्त हुआ राजा (इमाः, प्रजाः, परिरक्षेत) इस प्रजा की सब ओर से रक्षा करे ॥

विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्राद् ह्रियन्ते दस्युभिःप्रजाः।
संपश्यतः सभृत्यस्य मृतः स न तु जीवति ॥१४५॥

पदा०—(सभृत्यस्य, संपश्यतः) भृत्यों सहित देखते हुए (यस्य, राज्ञः, राष्ट्रात्) जिस राजा के राज्य से (विक्रोशंत्यः, प्रजाः, दस्युभिः, ह्रियन्ते) चिल्लाती हुई प्रजा चोरों से हरण कीजाती है (सः) वह राजा (न, जीवति) जीवित नहीं (तु) किन्तु (मृतः) मरा हुआ है, क्योंकि :—

क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम् ।
निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥१४६॥

पदा०—(प्रजानां, पालनं, एव, क्षत्रियस्य, परः, धर्मः) प्रजाओं का पालन करना ही क्षत्रिय का परमधर्म है (हि) इसलिये (धर्मेण, युज्यते) अपने धर्म से युक्त हुए राजा को (निर्दिष्टफलभोक्ता) निर्देश किया हुआ फल भोग करना उचित है अर्थात् शास्त्र की आज्ञानुसार चलने वाला राजा ही धर्म के फल को भोगता है ॥

सं०—अब राजा के लिये धर्माचरण का विधान करते हैं:—

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः ।
हुताग्निर्ब्राह्मणांश्चार्च्य प्रविशेत्स शुभां सभाम्॥१४७॥
तत्र स्थितः प्रजाः सर्वा प्रतिनन्द्य विसर्जयेत् ।
विसृज्य च प्रजाःसर्वाःमन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः॥१४८॥

पदा०—(पश्चिमे, यामे, उत्थाय) पहरभर के तड़के ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर (कृतशौचः, समाहितः) शौच, मुखमार्जन तथा स्नानादि से निवृत्त हो (हुताग्निः) सन्ध्या अग्निहोत्र (च) और (ब्राह्मणान्, अर्च्य) ब्राह्मणों का पूजन करके (सः) वह राजा (शुभां, सभां, प्रविशेत) श्रेष्ठ सभा में प्रवेश करे,—और (तत्र, स्थितः) उस सभा में स्थित राजा (सर्वाः, प्रजाः, विसृज्य) सब प्रजाओं के चले जाने पर (मन्त्रिभिः, सह, मन्त्रयेत्) मन्त्रियों के साथ सम्मति करे अर्थात राजसम्बन्धी सन्धि विग्रहादि रूप मन्त्र को विचारे ॥

गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ।
अरण्ये निःशलाके वा मन्त्रयेदविभावितः ॥१४९॥

पदा०—(गिरिपृष्ठं) पर्वत के शिखर पर (वा) अथवा (प्रासादं) महल पर (समारुह्य) चढ़कर (रहोगतः) निर्जन स्थान में (अरण्ये) वन में (निःशलाके) निष्कंटक देश में (वा) अथवा (अविभावितः) जहां भेद लेने वाले न पहुंच सकें वहां (मन्त्रयेत) सलाह करे ॥

सं०—अब उक्त प्रकार विचार करने का फल कथन करते हैं:—

यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः ।
स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशहीनोऽपि पार्थिवः ।१५०।

पदा०—(यस्य, मन्त्रं) जिसके मन्त्र को (पृथग्जनाः, समागम्य, न, जानन्ति) मिलकर अन्य पुरुष नहीं जानते (सः, कोशहीनः, पार्थिवः, अपि) वह कोशहीन राजा भी (कृत्स्नां, पृथिवीं, भुंक्ते) सम्पूर्ण पृथिवी को भोगता है ॥

जडमूकान्धबधिरांस्तिर्यग्योनान्वयोतिगान् ।
स्त्रीम्लेच्छव्याधितव्यङ्गान्मन्त्रकालेऽपसारयेत् ॥१५१॥

पदा०-(जडमूकान्धबधिरान्)जड़=मूर्ख, मूक=जो बोल न सके, अन्धा, बहरा (तिर्यग्योनान्) तिर्यग्योनि तोता, मैना आदि पक्षी (वयोतिगान) वृद्ध (स्त्रीम्लेच्छव्याधितव्यंगान्) स्त्री, म्लेच्छ, रोगी तथा अङ्गहीन, इन सब को (मन्त्रकाले, अपसारयेत) मन्त्र समय वहां से हटादे ॥

भिन्दन्त्यवमता मन्त्रं तिर्यग्योनास्तथैव च ।
स्त्रियश्चैव विशेषेण तस्मात्तत्राहतो भवेत् ॥१५२॥

पदा०-(अवमता, मन्त्रं, भिन्दन्ति) उपरोक्त मूर्ख आदि अपमान को प्राप्त हुए मन्त्र भेद कर देते हैं (तथा) इसी प्रकार (तिर्यग्योनाः) शुक, सारिकादि पक्षी (च) और (तथा) तैसे ही (स्त्रियः) स्त्रियें (च) भी (विशेषेण) विशेषकर (मन्त्रं, भिन्दति) मन्त्र को प्रकाश करदेती हैं (तस्मात्) इसलिये (तत्र) वहां इनका अपमान न करके (आहतः,भवेत्) आदरपूर्वक हटादे॥

मध्यंदिनेऽर्धरात्रे वा विश्रान्तो विगतक्लमः ।
चिन्तयेद्धर्मकामार्थान्सार्धं तैरेक एव वा॥१५३॥

पदा०-(मध्यन्दिने,वा, अर्धरात्रे) दोपहर दिन वा अर्धरात्रि में (विश्रान्तो, विगतक्लमः) चित्त के खेद तथा शरीर के क्लेश से रहित हुआ (तैः) उन मन्त्रियों के (सार्धं) साथ (वा) अथवा (एकः, एव) अकेला ही (धर्मकामार्थान्) धर्म, काम तथा अर्थों का (चिन्तयेत्) चिन्तन करे ॥

परस्परविरुद्धानां तेषां च समुपार्जनम् ।
कन्यानां संप्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ॥१५४॥

पदा०-(परस्परविरुद्धानां) परस्परविरुद्ध=स्वरूप से भिन्न२ (तेषां) उन धर्मादिकों का (समुपार्जनं) सञ्चयकरना (च) और (कन्यानां, सम्प्रदानं) कन्याओं को विद्याद्वारा सुशिक्षित करके उनके दान विषयक सोचना (च) तथा (कुमाराणां, रक्षणं, च) कुमारों का शिक्षादि द्वारा रक्षण भी चिन्तन करे ॥

दूतसंप्रेषणं चैव कार्यशेषं तथैव च ।
अन्तःपुरप्रचारं च प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥१५५॥

पदा०-(दूतसंप्रेषणं) पर राज्य में दूतों का भेजना (च) और (कार्यशेषं) शेष कार्य्यों (तथा,एव) तैसेही (अन्तःपुरप्रचारं) अन्तःपुर में जो प्रचार होरहा है उसका (च) और (प्रणिधीनां, च, चेष्टितं) प्रतिनिधियों की चेष्टा को भी जाने अर्थात् उक्त सम्पूर्ण कार्यों का विचार करे ॥

भाष्य-दूत भेजकर दूसरे राजा के राज्य में प्रवेश करने का चिन्तन करे, आरम्भ किये हुए कार्य्यों की समाप्ति का यत्न सोचे, रनिवास की स्त्रियों की विषम चेष्टा का भी ध्यान रखे अर्थात् उनकी चेष्टा सखी तथा दासियों आदि के द्वारा ज्ञात करता रहे कि वहां कुछ अनिष्ट चिन्तन तो नहीं होरहा और अपने विरोधी राजाओं में नियुक्त दूतों की चेष्टा को दूसरे विश्वस्त दूतों द्वारा जानने की सदा चेष्टा करता रहे ॥

कृत्स्नं चाष्टविधं कर्म पञ्चवर्गं च तत्त्वतः ।
अनुरागापरागौ च प्रचारं मण्डलस्य च ॥१५६॥

पदा०—(च) और (कृत्स्नं, अष्टविधं, कर्म) सम्पूर्ण आठ प्रकार के कर्म (च) तथा (पञ्चवर्गं,तत्त्वतः) पञ्चवर्ग का तत्वपूर्वक विचार करे (च) और (अनुरागापरागौ) मन्त्री आदिकों के अनुराग, विराग को जाने (च) तथा (मण्डलस्य, प्रचारं) मण्डल के प्रचार को भी विचारे कि कौन लड़ना चाहता तथा कौन सन्धि करना चाहता है ॥

भाष्य—(१) व्यापार (२) पुलबांधना (३) किला बनवाना (४) इनको स्वच्छ रखने की चेष्टा करना(५)हाथी पकड़ना (६) सुवर्णादि की कानों को खुदवाना (७) जङ्गलों को आबाद कराना (८) वन कटवाना यह " **आठ कर्म** " और (१) कापटिक=छल कपट वा वेष बदलकर दूसरे के भाव को जानने वाले (२) उदासीन=उदासीनभाव धारण करके दूसरे के भेद को जानने वाले (३) वैदेह=नग्न रहकर अपने को महात्मा प्रकट करते हुए दूसरे का भेद लेने वाले (४) गृहपति=मठ में रहकर सब भेद जानने वाले और वह अन्य राजदूतों को आवश्यकता के समय भोजन भी कराने वाले (५) तापस=धूनियें लगाकर तप करते हुए लोगों की चेष्टा को जानने वाले अर्थात् बनावटी वेषधारी साधुओं के द्वारा विरोधियों तथा कुकर्मियों का भेद लेते रहना यह "**पांचवर्ग**" हैं, शेष सब स्पष्ट है ॥

मध्यमस्य प्रचारं च विजिगीषोश्च चेष्टितम् ।
उदासीन प्रचारं च शत्रोश्चैव प्रयत्नतः ॥१५७॥

पदा०—(मध्यमस्य, विजिगीषोः, च, प्रचारं) मध्यम तथा विजय की इच्छा करने वाले का प्रचार (च) और (उदासीन-प्रचारं, च, शत्रोः) उदासीन तथा शत्रुओं के प्रचार की (चेष्टितं, एव) चेष्टा को भी (प्रयत्नतः) प्रयत्न से राजा विचारता रहे ॥

भाष्य—विजय की इच्छा वाला और जिसको विजय करना चाहे उन दोनों के बीच सीमा पर रहने वाले राजा का नाम "मध्यम" जो बुद्धिमान् विजय करने में समर्थ हो उसको "विजिगीषु" मध्यम तथा विजिगीषु की सन्धि में अनुग्रह करने वाला तथा विरुद्ध होने पर दण्ड देने की सामर्थ्य रखने वाले का नाम "उदासीन" है, और चौथे शत्रुओं के प्रचार तथा चेष्टा को यत्नपूर्वक ध्यान में रखे ॥

एताः प्रकृतयो मूलं मण्डलस्यसमासतः ।
अष्टौ चान्याः समाख्याता द्वादशैव तु ताःस्मृताः॥१५८॥

पदा०—(एताः, प्रकृतयः) उक्त चारों प्रकृतियें (समासतः, मण्डलस्यं, मूलं) संक्षेप से मण्डल की मूल हैं (च) और (अष्टौ, अन्याः, समाख्याताः) आठ अन्य कही गई हैं (द्वादशैव, तु, ताः, स्मृताः) यह सब मिलकर बारह हैं ॥

अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदण्डाख्याः पञ्च चापराः ।
प्रत्येकं कथिता ह्येता संक्षेपेण द्विसप्ततिः ॥१५९॥

पदा०—(अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदण्डाख्याः) अमात्य, देश, दुर्ग, कोश, दण्ड यह (पंच, अपराः) पांच और भी हैं जो (प्रत्येकं, कथिताः) पूर्वोक्त बारह में प्रत्येक के साथ कथन की हैं इस

क्रम से ६० यह और पूर्वोक्त बारह को मिलाकर (हि) प्रसिद्ध (एताः, संक्षेपेण, द्विसप्ततिः) यह सब ७२ प्रकृतियें संक्षेप से जाननी चाहियें ॥

भाष्य—उक्त चारो मूलप्रकृति और आठ शाखा प्रकृति यह मिलकर बारह प्रकृति हुईं, इनमें एक २ के प्रति अमात्य, देश, दुर्ग, कोश, दण्ड भेद से पांच २ प्रकृति होती हैं, यह सब मिलकर साठ और बारह जोड़ने से सब बहत्तर प्रकृतियें हैं ॥

अनन्तरमरिं विद्यादरिसेविनमेव च ।
अरेरनन्तरं मित्रमुदासीनं तयोः परम् ॥ १६० ॥

पदा०—(अरिं, अरिसेविनं, अनन्तरं, एव) शत्रु और शत्रु के समीपी भी शत्रु ही होते हैं (अरेः, अनन्तरं, मित्रं) शत्रुके अनन्तर मित्र को (च) और (तयोः, परं, उदासीनं) इन दोनों के अनन्तर उदासीन को (विद्यात्) जाने ॥

भाष्य—शत्रु, शत्रु का मित्र, जो पहले शत्रु रहकर पीछे मित्र बना हो, और उदासीन, इन चारो पर उत्तोत्तर दृष्टि रखता हुआ सब की जांच करता रहे, औरः—

तान्सर्वानभिसंदध्यात्सामादिभिरुपक्रमैः ।
व्यस्तैश्चैव समस्तैश्च पौरुषेण नयेन च ॥१६१॥

पदा०—(तान्, सर्वान्, सामादिभिः) उन सब को साम-दामादि (समस्तैः, व्यस्तैः, चैव) सब अथवा एक २ उपाय से (च) और (पौरुषेण, नयेन, च) पुरुषार्थ तथा नीति से (अभिसन्दध्यात्) वश में करके मित्र बनावे ॥

सन्धिं च विग्रहञ्चैव यानमासनमेव च ।
द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणाँश्चिन्तयेत्सदा ॥१६२॥

पदा०—(सन्धिं, विग्रहं, चैव) सन्धि तथा विग्रह (यानमासनमेव, च) यान, आसन (द्वैधीभावं, च, संश्रयं) द्वैधीभाव और संश्रय (षड्गुणान्, सदा, चिन्तयेत्) इन छः गुणों का राजा नित्य चिन्तन करे ॥

भाष्य—(१) सन्धि=मेल (२) विग्रह=लड़ाई (३) यान=शत्रु पर चढ़ाई करना (४) आसन=शत्रु की प्रतीक्षा करना (५) द्वैधीभाव=अपने दो भाग करलेना (६) संश्रय=दूसरे का आश्रय करना, इन छः गुणों को राजा सर्वदा विचारे ॥

आसनं चैव यानं च सन्धिं विग्रहमेव च ।
कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैधं संश्रयमेव च ॥१६३॥

पदा०—(आसनं, चैव, यानं, च) आसन, यान (सन्धिं, विग्रहमेव, च) सन्धि, विग्रह (द्वैधं, संश्रय, एव, च) द्वैधीभाव और संश्रय इन छः गुणों का (कार्यं, वीक्ष्य, प्रयुञ्जीत) अवसर देखकर प्रयोग करे, अर्थात् जब जैसा उचित समझे वैसा करे ॥

सन्धिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव च ।
उभे यानासने चैव द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥१६४॥

पदा०—(तु) और (राजा, सन्धिं, द्विविधं, विद्यात्) राजा सन्धि दो प्रकार की जाने (विग्रहं, एव) विग्रह को भी दो प्रकार का जाने (उभे, एव, यानासने) यान, आसन भी दो २ प्रकार के जाने (च) तथा (द्विविधः, संश्रयः, स्मृतः) संश्रय भी दो प्रकार का कथन किया है ॥

समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च ।
तदा त्वायति संयुक्तः सन्धिर्ज्ञेयो द्विलक्षणः॥१६५॥

पदा०-(समानयानकर्मा) समानयानकर्मा (च) और (तथा, एव, विपरीतः) उसी प्रकार विपरीत=असमानयानकर्मा (सन्धिः, द्विलक्षणः) यह "सन्धि" के दो भेद (तदा, तु, आयति, संयुक्तः, ज्ञेयः) उसी समय अथवा भविष्यत् काल के निमित्त जाने ॥

भाष्य-तत्काल अथवा भविष्यत् के फल लाभ के लिये किसी दूसरे राजा से मिलकर अन्य राजा पर चढ़ाई करने का नाम "समानयानकर्मा" और हम इस पर चढ़ाई करेंगे, तुम उस पर करो, इस प्रकार आपस में मेल करके दो भिन्न २ राज्यों पर चढ़ाई करने के लिये जो मेल किया जाता है उसको "असमानयानकर्मा" सन्धि कहते हैं, इन दो को दो प्रकार की सन्धि जाने ॥

स्वयंकृतश्च कार्यार्थमकाले काल एव वा ।
मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः ॥१६६॥

पदा०-(कार्यार्थी) शत्रु के जीतने के निमित्त (अकाले, वा, काले, एव) समय अथवा असमय में (स्वयं, कृतः) स्वयं युद्ध करना और (मित्रस्य, चैव, अपकृते) मित्र के अपकार होने से उसकी रक्षा के निमित्त युद्ध करना, यह (द्विविधः, विग्रहः, स्मृतः) दो भेद "विग्रह" के कथन किये हैं ॥

भाष्य-शत्रु के जयरूप कार्य्य के लिये उचित काल अथवा

बेकाल में स्वयं युद्ध करना एक विग्रह और अपने मित्र के अपकार होने से उसकी रक्षा के निमित्त युद्ध करना दूसरा विग्रह, एवं दो प्रकार का विग्रह कथन किया है ॥

एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया ।
संहतस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते ॥१६७॥

पदा०-(यदृच्छया,प्राप्ते) दैवयोग से प्राप्त(आत्ययिके,कार्ये) आवश्यक कार्य में (एकाकिनः) अकेला (च) अथवा (मित्रेण, संहतस्य) मित्र को साथ लेकर शत्रु पर चढ़ाई करना (द्विविधं, यानं, उच्यते) यह दो प्रकार का "यान"=चढ़ाई करना कहाता है ॥

क्षीणस्य चैव क्रमशो दैवात्पूर्वकृतेन वा ।
मित्रस्य चानुपरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम्॥१६८॥

पदा०-(दैवात, पूर्वकृतेन, वा) दैवयोग वा पूर्वजन्म के दुष्कृत से (चैव) अथवा (क्रमशः, क्षीणस्य) क्रम से क्षीण हो कर चुपचाप बैठरहना पहला (च) और (मित्रस्य, अनुपरोधेन) मित्र के अनुरोध से बैठ रहना दूसरा (द्विविधं, आसनं, स्मृतं) यह दो भेद "आसन" के हैं ॥

बलस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये ।
द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः ॥१६९॥

पदा०-(कार्यार्थसिद्धये) कार्यसिद्धि के निमित्त (बलस्य, स्वामिनः, चैव, स्थितिः) कुछ सेना को एक स्थान पर स्थित करके कुछ सेना के साथ राजा दुर्ग में स्थित रहे (द्वैधं, द्विविधं)

यह दो प्रकार का द्वैध (षाड्गुण्यगुणवेदिभिः) षड्गुणज्ञ लोग (कीर्त्यते) कहते हैं ॥

अर्थसंपादनार्थं च पीड्यमानस्य शत्रुभिः ।
साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः॥१७०॥

पदा०—(शत्रुभिः, पीड्यमानस्य) शत्रुओं से पीडित हुए राजा को (अर्थसम्पादनार्थं) अपनी प्रयोजन सिद्धि के निमित्त किसी बलवान राजा की शरण लेना (च) और (व्यपदेशार्थं, साधुषु) व्यपदेश=आगामी पीड़ा निवारणार्थ साधु राजाओं की शरण लेना यह (द्विविधः, संश्रयः, स्मृतः) दो प्रकार का "संश्रय" कथन किया है ॥

सं०—अब राजा के लिये सन्धि, विग्रह के प्रयोग का समय कथन करते हैं:—

यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः ।
तदात्वे चाल्पिकां पीडां तदा सन्धिं समाश्रयेत्।१७१।

पदा०—(यदा,आयत्यां, आधिक्यं, आत्मनः, ध्रुवं, अवगच्छेत्) जब राजा भविष्यत्काल में निश्चयकरके अपना अधिक लाभ जाने, और (अल्पिकां, पीडां) वर्त्तमान में थोड़ा कष्ट देख पड़े (तदा) तब (तदात्वे) उसी समय (सन्धिं, समाश्रयेत्) "सन्धि" का आश्रय करे अर्थात् मेल करले ॥

यदा प्रकृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृतीर्भृशम् ।
अत्युच्छ्रितं तथात्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम्॥१७२॥

पदा०—(यदा, तु) और जब (सर्वाः, प्रकृतीः, भृशं, प्रकृष्टाः) अमात्यादि सब प्रकृति को अत्यन्त उन्नत=बढ़ी हुई

जाने (तथा) तथा (आत्मानं, अत्युच्छ्रितं, मन्येत) अपने को अत्यन्त बलिष्ठ देखे (तदा) तब (विग्रहं, कुर्वीत) "विग्रह" करे ॥

यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम् ।
परस्य विपरीतं च तदा यायाद्रिपुं प्रति ॥१७३॥

पदा०—(यदा) जब (स्वकं, बलं, हृष्टं, पुष्टं, भावेन, मन्येत) अपनी सेना को यथार्थतया हृष्ट, पुष्ट जाने (च) और (परस्य, विपरीतं) दूसरे की सेना को निर्बल जाने (तदा) तब (रिपुं, प्रति, यायात्) शत्रु के ऊपर चढ़ाई करे ॥

यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन बलेन च ।
तदासीत प्रयत्नेन शनकैः सान्त्वयन्नरीन् ॥१७४॥

पदा०—(यदा, तु) परन्तु जब (वाहनेन, बलेन, च, परिक्षीणः, स्यात्) वाहन तथा सेना से स्वयं क्षीण=निर्बल हो (तदा) तब (प्रयत्नेन, शनकैः, अरीन्, सान्त्वयन्) धीरे २ प्रयत्न से शत्रुओं को शान्त करता हुआ (आसीत) अपने स्थान पर स्थित रहे ॥

मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम् ।
तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत्कार्यमात्मनः॥१७५॥

पदा०—(यदा, राजा) जब युद्ध में राजा (अरिं, सर्वथा, बलवत्तरं, मन्येत) शत्रु को सब प्रकार बलवान् जाने (तदा) तब (बलं, द्विधा, कृत्वा) सेना को द्विधा=दो भागों में करके (आत्मनः, कार्यं, साधयेत्) अपना कार्य सिद्ध करे अर्थात्

कुछ सेना के साथ आप किले का आश्रय ले और कुछ सेना युद्ध के लिये रणभूमि में रखे, एवं दो प्रकार से अपना कार्य्य सिद्ध करे ॥

यदा परबलाना तु गमनीयतमो भवेत् ।
तदा तु संश्रयेत्क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम् ॥१७६॥

पदा०-(तु) और (यदा) जब (परबलानां,गमनीयतमः,भवेत्) शत्रु सेना के असह्य अनेक आक्रमण=बहुत चढ़ाई होने पर किले से भी न बचसके (तदा) तब (क्षिप्रं) शीघ्र ही (धार्मिकं, बलिनं, नृपं, संश्रयेत्) किसी धर्मात्मा बलवान् राजा का आश्रय=पनाह लेवे ॥

निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद्योऽरिबलस्य च ।
उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा ॥ १७७ ॥

पदा०-(यः) जो (प्रकृतीनां, अरिबलस्य, च, निग्रहं, कुर्यात्) प्रकृति=मन्त्री आदिकों का और अपने शत्रुओं के बल का निग्रह करे (तं) उसको (सर्वयत्नैः) सम्पूर्ण यत्नों से (यथा, गुरुं, नित्यं, उपसेवेत) गुरु के समान सेवन करे अर्थात् निर्बल राजा उसका गुरुवत् सत्कार करे ॥

यदि तत्रापि सम्पश्येद्दोषं संश्रयकारितम् ।
सुयुद्धमेव तत्रापि निर्विशङ्कः समाचरेत् ॥१७८॥

पदा०-(यदि, तत्रापि, संश्रयकारितं, दोषं, सम्पश्येत्) यदि उस आश्रय किये जाने में भी दोष देखे अर्थात् उसमें भी कुछ धोखा समझे तब (निर्विशङ्कः) निर्भयता से (तत्र, अपि) वहां भी (सुयुद्धं, एव, समाचरेत्) युद्ध ही करे ॥

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः ।
यथास्याभ्यधिका न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥१७९॥

पदा०—(नीतिज्ञः, पृथिवीपतिः) नीति के जानने वाला राजा (सर्वोपायैः, तथा, कुर्यात्) साम, दामादि सम्पूर्ण उपायों से ऐसा यत्न करे कि (यथा, अस्य) जिससे उसके (मित्रोदासीनशत्रवः, अभ्यधिकाः, न, स्युः) मित्र, उदासीन=निरपेक्ष और शत्रु अधिक न होवें ॥

आयतिं सर्वकार्याणां तदात्वं च विचारयेत् ।
अतीतानां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः ॥१८०॥

पदा०—(आयतिं, सर्वकार्याणां) सब कार्यों के भावी गुण दोष (तदात्वं, च) वर्त्तमान समय के कर्तव्य कर्म (च) और (अतीतानां, सर्वेषां, गुणदोषौ, च, तत्त्वतः, विचारयेत्) सब व्यतीत हुए कर्मों में गुण दोषों के तत्त्व को भी विचारे कि किस२ कर्म का क्या २ फल होगा ॥

सं०—अब विचारपूर्वक कार्य्य करने का फल कथन करते हैं:—

आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः ।
अतीते कार्यशेषज्ञः शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥१८१॥

पदा०—(आयत्यां, गुणदोषज्ञः) जो भावीकार्यों के गुणदोषों को जानने वाला (तदात्वे, क्षिप्रनिश्चयः) वर्त्तमान कार्य के गुणदोषों को शीघ्र जान लेने वाला और जो (अतीते,कार्यशेषज्ञः) व्यतीतकार्य के शेष कर्त्तव्य का जानने वाला है वह राजा (शत्रुभिः, न, अभिभूयते) शत्रुओं से नहीं दबता ॥

यथैनं नाभिसन्दध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ।
तथा सर्वं संविदध्यादेष सामासिको नयः ॥१८२॥

पदा०—(मित्रोदासीनशत्रवः) मित्र, उदासीन और शत्रु (यथा, एनं, न, अभिसन्दध्युः) जिसमें अपने को न दवाने पावें (तथा) वैसे ही (सर्वं, संविदध्यात) सव विधान करे (एषः, सामासिकः, नयः) यह संक्षेप से नीति है ॥

सं०—अव शत्रु पर चढ़ाई करने का प्रकार कथन करते हैं:—

यदा तु यानमातिष्ठेदरिराष्ट्रं प्रति प्रभुः ।
तदानेन विधानेन यायादरिपुरं शनैः ॥१८३॥

पदा०—(तु) और (यदा) जव (प्रभुः) राजा (अरिराष्ट्रं, प्रति) शत्रु के राज्य पर (यानं, आतिष्ठेत) चढ़ाई करे (तदा) तो (अनेन, विधानेन) इस आगे कहे विधान से (शनैः) धीरे २ (अरिपुरं, यायात) शत्रु के राज्य पर धावा करे ॥

मार्गशीर्षे शुभे मासि यायाद्यात्रां महीपतिः ।
फाल्गुनं वाथ चैत्रं वा मासौ प्रति यथावलम्॥१८४॥

पदा०—(महीपतिः) राजा (यथा, वलं) अपनी सेना तथा वल के अनुकूल (मार्गशीर्षे, शुभे,मासि) शुभ मार्गशीर्ष (वा,अथ) अथवा (फाल्गुनं, चैत्रं, वा, मासौ) फाल्गुन वा चैत्र मास में (प्रति) शत्रु के प्रति (यात्रां, यायात) यात्रा=चढ़ाई के निमित्त गमन करे ॥

अन्येष्वपि तु कालेषु यदा पश्येद्ध्रुवं जयम् ।
तदा यायाद्विगृह्यैव व्यसने चोत्थिते रिपोः॥१८५॥

पदा०—(अन्येषु, अपि, कालेषु) अन्य कालों में भी (यदा, ध्रुवं, जयं, पश्येत) जब निश्चय जय समझे (तदा) तब यात्रा करे (विगृह्य, एव) चाहे अपनी ओर से विग्रह करके (च) अथवा (रिपोः, व्यसने, उत्थिते) शत्रु की ओर से पीड़ा होने पर (यायात) चढ़ाई करे ॥

कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधि ।
उपगृह्यास्पदं चैव चारान्सम्यग्विधाय च॥१८६॥
संशोध्य त्रिविधं मार्गं षड्विधं च बलं स्वकम् ।
सांपरायिककल्पेन यायादरिपुरं शनैः ॥१८७॥

पदा०—(तु) और (मूले, विधानं, कृत्वा) अपने राज्य तथा दुर्ग की रक्षा करके (यात्रिकं, च, यथाविधि) विधि अनुकूल यात्रा सम्बन्धी (आस्पदं, चैव, उपगृह्य) डेरा, तम्बू आदि लेकर (च) और (चारान्, सम्यक्, विधाय) चार=दूतों को ठीक २ स्थान पर नियत करके (च) तथा (मार्गं, त्रिविधं, संशोध्य) जल, स्थल आकाश वा ऊँचे, नीचे, सम इन तीन प्रकार के मार्ग को शोधकर (च) और (स्वकं, षड्विधं, बलं) अपनी छः प्रकार की सेना * को लेकर (सांपरायिककल्पेन, शनैः, अरिपुरं, यायात) सङ्ग्रामकल्प की विधि अनुसार धीरे २ शत्रु के नगर को यात्रा करे ॥

शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत् ।
गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः ॥१८८॥

---

* हाथियों पर, घोड़ों पर, रथों पर, पैदल, कोश और नौकर चाकर ॥

पदा०-(गूढे, शत्रुसेविनि, मित्रे) गुप्तरूपेण शत्रु से मिला हुआ मित्र (च) और (गतप्रत्यागते, चैव) एकवार अधिकार से च्युत हुआ २ पुनः अधिकार को प्राप्त नौकर, इन दोनों मे राजा (युक्ततरः, भवेत) सावधान रहे (हि) क्योंकि (सः, रिपुः, कष्टतरः) वह दोनों शत्रु अधिक कष्ट देसक्ते हैं॥

दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा ।
वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुड़ेन वा॥१८९॥

पदा०-(दण्डव्यूहेन) दण्डव्यूह से (शकटेन, वा) शकटव्यूह (वराहमकराभ्यां, वा) वराहव्यूह, मकरव्यूह (सूच्या, वा, गरुड़ेन, वा) सूचीव्यूह अथवा गरुड़व्यूह से (तन्मार्गं, तु, यायात) उस मार्ग में गमन करे ॥

भाष्य-जिस सेना के सेनापति आदि अधिपति आगे पीछे, वीच में राजा, दायें वायें हाथी घोड़े और उनके आस पास पैदल, इस प्रकार सेना की लम्बी रचना "दण्डव्यूह" कहाती है, सो दण्डव्यूह, शकटव्यूह, वराहव्यूह, मकरव्यूह, सूचीव्यूह अथवा गरुड़ के समान आकृति वाले सेनाव्यूहों से राजा चढ़ाई करे ॥

यतश्च भयमाशङ्केत्ततो विस्तारयेद्बलम् ।
पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत् सदा स्वयम् ॥१९०॥

पदा०-(च) और (यतः, भयं, आशङ्केत) जिस ओर से भय की आशङ्का हो (ततः, बलं, विस्तारयेत) उस ओर सेन

स्थापित करे (च) और (स्वयं, सदा, पद्मेन, एव, व्यूहेन, निविशेत) आप सदा पद्मव्यूह=कमलाकार सेनाव्यूह में रहे ॥

सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत् ।
यतश्च भयमाशङ्केत् प्राचीं तां कल्पयेद्दिशम्॥१९१॥

पदा०—(सर्वदिक्षु, सेनापतिबलाध्यक्षौ, निवेशयेत) सेनापति और सेना के अध्यक्ष=मुख्य २ योद्धाओं को सब दिशाओं में नियत करे (च) और (यतः, भयं, आशङ्केत) जिस दिशा में भय की शङ्का हो (तां, प्राचीं, दिशं, कल्पयेत) उसको पहली=पूर्व दिशा कल्पना करे ॥

गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृतसंज्ञान्समन्ततः ।
स्थाने युद्धे च कुशलानभीरूनविकारिणः ॥१९२॥

पदा०—(आप्तान्) सम्पूर्ण युद्धविद्या में निपुण, कुलीन, अनेक उपाधियों से भूषित (स्थाने, युद्धे, कुशलान्, अभीरून्, अविकारिणः) स्थान और युद्ध में कुशल, निडर तथा सब रोगों से रहित (गुल्मान्, कृतसंज्ञान्, समन्ततः, स्थापयेत) गुल्मों*का नाम धरकर चारों ओर नियत करे अर्थात् सेना के स्तम्भ समान दृढ़ आप्त पुरुषों के भिन्न २ नाम धरकर सब ओर स्थापित करे ॥

संहतान्योधयेदल्पान्कामं विस्तारयेद्बहून् ।
सूच्या वज्रेण चैवैतान्व्यूहेन व्यूह्य योधयेत्॥१९३॥

पदा०—(अल्पान्, संहतान्, योधयेत) थोड़े योद्धा हों तो उनको एकत्रित करके युद्ध करावे, और (कामं, बहून्, विस्तारयेत)

* सेनासमूह का नाम गुल्म है ॥

बहुत सेना हो तो चारों ओर विस्तृत करके लड़ावे (च) तथा (एतान्) इन योद्धाओं को (सूच्या, वज्रेण, चैव, व्यूहेन, व्यूह्य, योधयेत्) पूर्वोक्त सूचीव्यूह वा वज्राकार व्यूह से रचना करके युद्ध करावे ॥

स्यन्दनाश्वैः समे युध्येदनूपे नौद्विपैस्तथा ।
वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले ॥१९४॥

पदा०—(समे, स्यन्दनाश्वैः) सम भूमि पर रथ तथा घोड़ों से (अनूपे, नौद्विपैः) जल में नौका वा हाथियों से (वृक्षगुल्मावृत्ते, चापैः) वृक्ष तथा लताओं से आच्छादित स्थान में धनुषों से, (तथा) और (स्थले, असिचर्मायुधैः) कण्टकादिकों से रहित स्थल में ढाल तलवार आदि शस्त्रों से (युध्येत) युद्ध करे ॥

कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालान् शूरसेनजान् ।
दीर्घांल्लघूंश्चैव नरानग्रानीकेषु योजयेत् ॥१९५॥

पदा०—(कुरुक्षेत्रान्, मत्स्यान्, पञ्चालान्, च, शूरसेनजान्) कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पाञ्चाल तथा शूरसेन देश निवासी (दीर्घान्, लघून्, चैव, नरान्) लम्बे तथा छोटे शरीर वालों को (अग्रानीकेषु, योजयेत्) सेना के आगे नियुक्त करे, क्योंकि यह रण में बड़े प्रवीण होते हैं, उक्त देशों का प्रसिद्धार्थ २ । १८ में स्पष्ट है ॥

प्रहर्षयेद्बलं व्यूह्य तांश्च सम्यक्परीक्षयेत् ।
चेष्टाश्चैव विजानीयादरीन् योधयतामपि ॥१९६॥

पदा०—(बलं, व्यूह्य, प्रहर्षयेत्) सेनाव्यूह की रचना करके उनको उत्साहित करे (च) और (तान्, सम्यक्, परी-

क्षयेत) उनकी भले प्रकार परीक्षा करे (च) तथा (अरीन्. योधयतां. अपि) शत्रुओं मे युद्ध करते हुए भी उनकी (चेष्टाः, चैव, विजानीयात) चेष्टाओं को जाने कि इनका युद्ध करने का प्रकार कैसा है ॥

उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत् ।
दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम् ॥१९७॥
भिन्द्याच्चैव तड़ागानि प्राकारपरिखास्तथा ।
समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा ॥१९८॥

पदा०—(अरिं, उपरुध्य, आसीत) शत्रु को घेर कर ठहर जावे (च) और (अस्य, राष्ट्रं, उपपीडयेत) राजा के देश को पीड़ा दे (च) तथा (अस्य) इसके (यवसान्न, उदकेन्धनं, सततं, दूषयेत) घास, अन्न, इन्धन और जल को दूषित=नष्ट करे (च) तथा (तड़ागानि, प्राकारपरिखाः, चैव, भिन्द्यात) तड़ाग=तालाब तथा दुर्ग की खाइयों को तोड़ डाले (एनं, चैव, समवस्कन्दयेत) और राजा को भलेप्रकार दबावे (तथा) तथा (रात्रौ, वित्रासयेत)रात्रि में चढ़ाई करके दुःख देवे ॥

उपजप्यानुपजपेद्बुध्येतैव च तत्कृतम्
युक्ते च दैवे युध्येत जयप्रेप्सुरपेतभीः ॥१९९॥

पदा०—(उपजप्यान्) शत्रु के मन्त्री आदि को (उपजपेत) तोड़कर उसके द्वारा भेद लेवे (तत्कृतं, च, बुध्येत, एव) और उनकी सब चेष्टाओं को जाने (दैवे, च, युक्ते) यदि दैव

सहायक हो तो (जयप्रेप्सुः) जय की इच्छा वाला राजा (अपेतभीः, युध्येत) निर्भय होकर युद्ध करे ॥

साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरथवा पृथक् ।
विजेतुं प्रयतेतारीन्न युद्धेन कदाचन ॥२००॥

पदा०—(साम्ना, दानेन, भेदेन, समस्तैः, अथवा, पृथक्) साम, दाम, भेद इन सब उपायों से अथवा पृथक् से (अरीन्, विजेतुं, प्रयतेत) शत्रु के जय करने का यत्न करे परन्तु (कदाचन, युद्धेन, न) युद्ध द्वारा कदापि न करे ॥

अनित्यो विजयो यस्माद्दृश्यते युध्यमानयोः ।
पराजयश्च संग्रामे तस्माद्युद्धं विवर्जयेत् ॥२०१॥

पदा०—(यस्मात्) क्योंकि (संग्रामे, युध्यमानयोः) सङ्ग्राम में युद्ध करने वालों के (विजयः, पराजयः, च) जय, पराजय (अनित्यः, दृश्यते) अनित्य देखे जाते हैं (तस्मात्) इस कारण (युद्धं, विवर्जयेत्) जहांतक होसके युद्ध न करे, किन्तु अन्य उपायों से काम ले ॥

त्रयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानामसम्भवे ।
तथा युध्येत सम्पन्नो विजयेत रिपून्यथा ॥२०२॥

पदा०—(त्रयाणां, पूर्वोक्तानां, उपायानां, अपि, असम्भवे) पूर्वोक्त तीनों उपायों से जय सम्भव न हो तो (सम्पन्नः) हस्ती, अश्वादि सेना से सम्पन्न राजा (यथा, रिपून्, विजयेत) जिस प्रकार शत्रुओं को विजय करसके (तथा, युध्येत) उसी प्रकार युद्ध करे ॥

जित्वा सम्पूजयेद्देवान्ब्राह्मणांश्चैव धार्मिकान् ।
प्रदद्यात्परिहारांश्च ख्यापयेदभयानि च ॥२०३॥

पदा०—(जित्वा) परराज्य को जीतकर (देवान्, चैव, धार्मिकान्, ब्राह्मणान्) वहां देवता तथा धार्मिक ब्राह्मणों की (सम्पूजयेत्) पूजा करे (च) और (परिहारान्, प्रदद्यात्) युद्ध के समय जिन दीन पुरुषों की हानि हुई हो उनके निर्वाहार्थ धन देवे (च) और (अभयानि, ख्यापयेत्) अभयदान का विज्ञापन देवे कि जिन पुरुषों ने अपने स्वामी की भक्ति से हमारा अपराध किया है उनको हमने क्षमा किया, अब निर्भय हो अपने २ कार्य करें ॥

सर्वेषां तु विदित्वैषां समासेन चिकीर्षितम् ।
स्थापयेत्तत्र तद्वंश्यं कुर्याच्च समयक्रियाम् ॥२०४॥

पदा०—(तु) और (एषां, सर्वेषां, समासेन, चिकीर्षितं, विदित्वा) शत्रु राजा तथा उसके अमात्यादिकों की चेष्टा=अभिप्राय को संक्षेप से जानकर (तत्, वंश्यं, तत्र, स्थापयेत्) उस राजा के वंश में उत्पन्न पुत्रादि को उसके राज्यसिंहासन पर स्थापित करे (च) और (समयक्रियां, कुर्यात्) "यह करो, यह न करो" इत्यादि प्रकार से शपथ=अहद स्वीकार करावे ॥

प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान् यथोदितान् ।
रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह ॥२०५॥

पदा०—(तेषां, यथोदितान्, धर्म्यान्) शत्रु देश निवासी मनुष्यों के यथोदित धर्मों=रिवाज़ों को (प्रमाणानि, च, कुर्वीत)

प्रमाण करे अर्थात् इनमें रद्द बदल न करे (च) और (प्रधानपुरुषैः, सह. एनं, रत्नैः, पूजयेत्) नूतन राजा के अमात्यादिकों सहित उसका रत्नों से पूजन करे अर्थात् दीवान तथा वजीरों के सहित उस गद्दी पर बैठाये हुए राजा का रत्नों से सत्कार करे अर्थात् उनको "खिल्लत" देवे ॥

आदानमप्रियकरं दानं च प्रियकारकम् ।
अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशस्यते ॥२०६॥

पदा०—(अभीप्सितानां, अर्थानां) यद्यपि अभिलषित पदार्थों का (आदानं, अप्रियकरं) बलात्कार से लेना अप्रिय (च) और (दानं, प्रियकारकं) देना प्रसन्नता करने वाला है तथापि (काले, युक्तं, प्रशस्यते) समय २ पर लेना तथा देना दोनों ही प्रशंसनीय हैं, इसलिये जय के पश्चात् शत्रु का सत्कार अवश्य करे ॥

सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैवमानुषे ।
तयोर्दैवमचिन्त्यं तु मानुषे विद्यते क्रिया ॥२०७॥

पदा०—(इदं, सर्वं, कर्म) यह सब कर्म (विधाने, दैवमानुषे, आयत्तं) दैव तथा मानुष कर्म की विधि के अधीन हैं (तु) परन्तु (तयोः, दैवं, अचिन्त्यं) इन दोनों में दैव अचिन्त्य है, इसलिये (मानुषे, क्रिया, विद्यते) मनुष्य के अधीन जितना अंश है उसमें वह कार्य करता है ॥

भाष्य—इस श्लोक का भाव यह है कि संसार में जितने कार्य किये जाते हैं वह सब दैव तथा मानुष कर्मविधि के अधीन होते हैं, सो दैव विधि तो चिन्ता में न आने से उसका विचार करना

व्यर्थ है, हां मनुष्य के अधीन कर्मों का जितना अंश है उसी के अनुसार वह कार्य्य करता हुआ सुख दुःख भोगता है ॥

सह वापि व्रजेद्युक्तः सन्धिं कृत्वा प्रयत्नतः ।
मित्रं हिरण्यं भूमिं वा संपश्यंस्त्रिविधं फलम् ॥२०८॥

पदा०—(अपि, वा) अथवा (युक्तः) सावधान हुआ राजा (सह, प्रयत्नतः, सन्धिं, कृत्वा) शत्रु राजा से यत्नपूर्वक सन्धि करके (मित्रं, हिरण्यं, वा, भूमिं) मित्रता, सुवर्ण, भूमि इन (त्रिविधं, फलं, सम्पश्यन्) तीनों को यात्रा का फल देखता हुआ (व्रजेत) वहां से गमन करे अर्थात् मित्रता, धन वा भूमि लेकर और उसके साथ प्रयत्न से सन्धि करके चला आवे ॥

पार्ष्णिग्राहं च संप्रेक्ष्य तथाक्रन्दं च मण्डले ।
मित्रादथाप्यमित्राद्वा यात्राफलमवाप्नुयात् ॥२०९॥

पदा०—(मण्डले) मण्डल में (पार्ष्णिग्राहं, च, तथा, आक्रंदं, संप्रेक्ष्य) पार्ष्णिग्राह तथा आक्रन्द को देखकर (मित्रात, वपि, अमित्रात) मित्र वा अमित्र से (यात्राफलं, अवाप्नुयात) यात्रा का फल ग्रहण करे ॥

भाष्य—जो दूसरे राज्य को विजय करते हुए अन्य राजा पीछे राज्य दबाता हुआ आवे उसको मण्डल में "पार्ष्णिग्राह" कहते हैं और जो उस आते हुए को रोके उसका नाम "आक्रन्द" है, इन दोनों को देखकर राजा मित्र वा अमित्र से यात्रा का फल ग्रहण करे, अर्थात् ऐसा न करे जिससे दोनों बिगड़जायं, ऐसा करने से राजा को दोष नहीं लगता ॥

हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते ।
यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायातिक्षमम् ॥२१०॥

पदा०—(पार्थिवः)राजा(हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या) सुवर्ण तथा भूमि को प्राप्त होकर राजा (तथा,न,एधते) वैसा नहीं बढ़ता (यथा)जैसा (कृशमपि,आयतिक्षमं,ध्रुवं,मित्रं,लब्ध्वा) वर्त्तमान में दुर्बल भी उत्तर काल में सहायता देने योग्य स्थित मित्र को पाकर बढ़ता है ॥

धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च ।
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते ॥२११॥

पदा०—(धर्मज्ञं, च, कृतज्ञं, च, तुष्टप्रकृतिं) धर्मज्ञ, कृतज्ञ, प्रसन्नचित्त (अनुरक्तं, स्थिरारम्भं, च) अनुरागी तथा स्थिर कार्य का प्रारम्भ करने वाला (लघुमित्रं, एव, प्रशस्यते) छोटा मित्र भी प्रशंसनीय होता है ॥

प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च ।
कृतज्ञं धृतिमन्तं च कष्टमाहुररिं बुधाः ॥२१२॥

पदा०—(प्राज्ञं, कुलीनं, शूरं, च, दक्षं, दातारं, एव, च) बुद्धिमान्, कुलीन, शूर, चतुर, दाता=दानी (कृतज्ञं,धृतिमन्तं,च) कृतज्ञ तथा धैर्यसम्पन्न (अरिं, बुधाः, कष्टं,आहुः) शत्रु को विद्वान् लोग कठिन कहते हैं अर्थात् ऐसे शत्रु से अधिक हानि की सम्भावना होती है ॥

आर्यता पुरुषज्ञानं शौर्यं करुणवेदिता ।
स्थौललक्ष्यं च सततमुदासीनगुणोदयः ॥२१३॥

पदा०-(आर्यता) श्रेष्ठता (पुरुषज्ञानं) पुरुषों की पहिचान (शौर्यं) शूरता (करुणवेदिता) कृपालुता (च) और (सततं, स्थौललक्ष्यं) निरन्तर मोटी २ बातों पर ऊपरी भाव रखना (उदासीनगुणोदयः) यह उदासीन गुणों की सामग्री है ॥

क्षेम्यां सस्यप्रदां नित्यं पशुवृद्धिकरीमपि ।
परित्यजेन्नृपो भूमिमात्मार्थमविचारयन् ॥२१४॥

पदा०-(क्षेम्यां, सस्यप्रदां) कल्याण करने वाली, सम्पूर्ण धान्यों को देने वाली तथा (नित्यं, पशुवृद्धिकरीं) निरन्तर पशुओं की वृद्धि करने वाली (भूमिं, अपि) भूमि को भी (नृपः) राजा (आत्मार्थं, अविचारयन्) अपनी रक्षार्थ बहुत विचार न करता हुआ (परित्यजेत्) छोड़ देवे,जैसाकि वर्णन किया है किः—

आपदर्थं धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥२१५॥

पदा०-(आपदर्थं, धनं, रक्षेत्) आपत्ति की निवृत्ति के लिये धन की रक्षा करे (धनैः, दारान्, रक्षेत्) धन से स्त्रियों की रक्षा करे और (दारैः, अपि, धनैः, अपि) स्त्री तथा धन से भी (आत्मानं, सततं, रक्षेत्) अपनी निरन्तर रक्षा करे ॥

सह सर्वाः समुत्पन्नाः प्रसमीक्ष्यापदोभृशम् ।
संयुक्तांश्च वियुक्तांश्च सर्वोपायान्सृजेद्बुधः ॥२१६॥

पदा०-(सर्वाः, आपदः, भृशं, सह, समुत्पन्नाः) बहुतसी आपत्तियें एक साथ आती हुईं (प्रसमीक्ष्य) देखकर उनके

निवारणार्थ (बुधः) बुद्धिमान् (सर्वोपायान, संयुक्तान्, वियुक्तान्, च, सृजेत्) सामादि सम्पूर्ण उपाय एक साथ वा पृथक्२ करे॥

उपेतारमुपेयश्च सर्वोपायांश्च कृत्स्नशः।
एतत्त्रयं समाश्रित्य प्रयतेतार्थसिद्धये ॥२१७॥

पदा०-(उपेतारं) उपाय करने वाले (उपेयं) उपाय के योग्य साध्य (च) और (कृत्स्नशः, सर्वोपायान्) सब प्रकार से सम्पूर्ण उपाय (एतत्, त्रयं, समाश्रित्य) इन तीनों का आश्रय करके राजा (अर्थसिद्धये, प्रयतेत) अर्थसिद्धि के निमित्त प्रयत्न करे ॥

सं०-अब राजा के लिये भोजन का विधान करते हैंः—

एवं सर्वमिदं राजा सह सम्मन्त्र्य मन्त्रिभिः।
व्यायम्याप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुमन्तःपुरंविशेत्॥२१८॥

पदा०-(राजा) राजा (एवं, इदं, सर्वं) उक्त प्रकार से सम्पूर्ण राजवृत्ति को (मन्त्रिभिः, सह,सम्मन्त्र्य) मन्त्रियों के साथ विचारकर (व्यायम्य, आप्लुत्य) स्नान तथा शास्त्रानुसार व्यायाम=वरज़िश करके (मध्याह्ने) मध्याह्न में (भोक्तुं,अन्तः-पुरं, विशेत्) भोजनार्थ अन्तःपुर में प्रवेश करे ॥

तत्रात्मभूतैः कालज्ञैरहार्यैः परिचारकैः।
सुपरीक्षितमन्नाद्यमद्यान्मन्त्रैर्विषापहैः॥२१९॥

पदा०-(तत्र) उस अन्तःपुर में (कालज्ञैः, अहार्यैः) भोजन काल के भेद जानने वाले, अपने को त्यागकर शत्रुपक्ष में न मिलने वाले=विश्वासी (आत्मभूतैः, परिचारकैः) तथा अपने

योग्य सेवकों द्वारा सिद्ध कराया हुआ (सुपरीक्षितं) भलेप्रकार परीक्षित (विषापहैः, मन्त्रैः) विष को दूर करने वाले मन्त्रों=गुप्त विचारों से शुद्ध करके (अन्नाद्यं, अद्यात्) अन्न का भोजन करे॥

विषघ्नैरगदैश्चास्य सर्वद्रव्याणि योजयेत् ।
विषघ्नानि च रत्नानि नियतो धारयेत्सदा ॥२२०॥

पदा०—(अस्य, सर्वद्रव्याणि) राजा के सब भोज्य पदार्थों में (विषघ्नैः, च, अगदैः, योजयेत्) विष को नाश करने वाली औषधियां डालें (च) और (विषघ्नानि, रत्नानि) विष को दूर करने वाले रत्नों को राजा (नियतः, सदा, धारयेत्) नियम से सदा धारण करे ॥

परीक्षिताः स्त्रियश्चैनं व्यजनोदकधूपनैः ।
वेषाभरणसंशुद्धाः स्पृशेयुः सुसमाहिताः ॥२२१॥

पदा०—(परीक्षिताः) भलेप्रकार परीक्षित (वेषाभरणसंशुद्धाः) वेष तथा आभूषणों से शुद्ध (सुसमाहिताः) समाहित चित्त हुईं (स्त्रियः) स्त्रियां (व्यजनोदकधूपनैः) चंवर, जल और धूपगन्ध से (एनं, स्पृशेयुः) राजा की सेवा करें ॥

एवं प्रयत्नं कुर्वीत यानशय्यासनाशने ।
स्नाने प्रसाधने चैव सर्वालङ्कारकेषु च ॥२२२॥

पदा०—(यानशय्यासनाशने) वाहन, शय्या, आसन, भोजन (स्नाने, प्रसाधने, चैव, सर्वालङ्कारकेषु, च) स्नान, अनुलेपन और

सब अलङ्कारों में भी (एवं, प्रयत्नं, कुर्वीत) राजा पूर्वोक्त प्रकार से यत्नपूर्वक परीक्षा करे ॥

भुक्तवान् विहरेच्चैव स्त्रीभिरन्तःपुरे सह ।
विहृत्य तु यथाकालं पुनः कार्याणि चिन्तयेत् ॥२२३॥

पदा०-(भुक्तवान्) भोजनानन्तर (अन्तःपुरे, स्त्रीभिः, सह, विहरेव, चैव) अन्तःपुर में स्त्रियों के साथ कुछ काल भ्रमण करे (विहृत्य, तु) टहलने के पश्चात् (पुनः) फिर (यथाकालं) समयानुसार (कार्याणि, चिन्तयेव) राजसम्बन्धी कार्य्यों को विचारे ॥

अलंकृतश्च सम्पश्येदायुधीयं पुनर्जनम् ।
वाहनानि च सर्वाणि शस्त्राण्याभरणानि च ॥२२४॥

पदा०-(पुनश्च) तदनन्तर (अलङ्कृतः) अलङ्कारयुक्त (आयुधीयं, जनं) आयुधधारी जनों (वाहनानि) वाहनों (सर्वाणि, च, शस्त्राणि, आभरणानि, च) सम्पूर्ण शस्त्रों तथा आभूषणों को (सम्पश्येत्) भलेप्रकार देखे ॥

सन्ध्यां चोपास्य शृणुयादन्तर्वेश्मनि शस्त्रभृत् ।
रहस्याख्यायिनां चैव प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥२२५॥
गत्वा कक्षान्तरं त्वन्यत्समनुज्ञाप्य तं जनम् ।
प्रविशेद्भोजनार्थं च स्त्रीवृत्तोऽन्तःपुरं पुनः ॥२२६॥

पदा०-(च)और इसके अनन्तर राजा(सन्ध्यां,उपास्य) सन्ध्योपासन करे, फिर (शस्त्रभृत) शस्त्र धारण किये हुए (अन्तर्वेश्मनि) महल के एकान्त स्थान में (रहस्याख्यायिनां, प्रणिधीनां, चैव, चेष्टितं, शृणुयात्) गुप्त समाचार कहने वाले दूतों तथा प्रति-

निधियों के समाचार और कामों को सुने-(तु) तदनन्तर (अन्यत्, कक्षान्तरं, गत्वा, तं, जनं,समनुज्ञाप्य) उनको यथावत् आज्ञा देकर दूसरे कमरे में उनका विसर्जन करके (स्त्रीवृत्तः) अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ (पुनः)पुनः(भोजनार्थं) भोजन के लिये (अन्तःपुरं, प्रविशेत्) अन्तःपुर में प्रवेश करे ॥

तत्र भुक्त्वा पुनः किञ्चित्तूर्यघोषैः प्रहर्षितः ।
संविशेत्तु यथाकालमुत्तिष्ठेच्च गतक्लमः ॥२२७॥

पदा०-(तत्र, भुक्त्वा) वहां भोजन करके (पुनः) फिर किञ्चित्, तूर्यघोषैः, प्रहर्षितः) कुछ गाना, बजाना सुन प्रसन्न हो (यथाकालं, तु, संविशेत्) ठीक समय पर शयन करे (च) और (गतक्लमः, उत्तिष्ठेत्) परिश्रम से रहित हो चारघड़ी के तड़के ब्राह्ममुहूर्त्त में उठे ॥

एतद्विधानमातिष्ठेदरोगः पृथिवीपतिः ।
अस्वस्थः सर्वमेतत्तु भृत्येषु विनियोजयेत् ॥२२८॥

पदा०-(अरोगः, पृथिवीपतिः) रोगरहित राजा (एतत्, विधानं, आतिष्ठेत्) पूर्वोक्त विधान किया हुआ सब आचरण यथाविधि करे (तु) और (अस्वस्थः) अस्वस्थदशा में (एतत्, सर्वं) इस सब राजकार्य्य को(भृत्येषु,विनियोजयेत्)भृत्यों में नियुक्त करदे अर्थात् धार्मिक मन्त्रियों से करावे ॥

इति मानवार्य्यभाष्ये

सप्तमोऽध्यायः

समाप्तः

ओ३म्

अथाष्टमोऽध्यायः

सं०—अब प्रजा के अभियोग आदि का वर्णन करते हैं:—

व्यवहारान् दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ।
मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत्सभाम् ॥१॥

पदा०—(तु) और (व्यवहारान्, दिदृक्षुः, पार्थिवः) नीति में कुशल राजा व्यवहारों के देखने की इच्छा से (ब्राह्मणैः, मन्त्रज्ञैः, मन्त्रिभिः, चैव, सह) ब्राह्मण और मन्त्रज्ञ=सम्मति के जानने में निपुण मन्त्रियों के साथ (विनीतः, सभां, प्रविशेत्) विनीत भाव से सभा में प्रवेश करे ॥

तत्रासीनः स्थितो वापि पाणिमुद्यम्य दक्षिणम् ।
विनीतवेषाभरणः पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥२॥

पदा०—(तत्र, आसीनः, वापि, स्थितः) सभा में बैठा अथवा खड़ा हुआ (विनीतवेषाभरणः) विनय से युक्त तथा वस्त्राभूषण धारण किये हुए राजा (दक्षिणं, पाणिं, उद्यम्य) दहिने हाथ को उठाकर (कार्यिणां, कार्याणि, पश्येत्) कार्यकर्त्ताओं के काम को देखे ॥

प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ।
अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक् ॥३॥

पदा०-(अष्टादशसु, मार्गेषु) आगे कहे हुए अठारह प्रकार के व्यवहारों में (पृथक्, पृथक्, निवद्धानि) पृथक् २ बन्धे हुए कार्यों को राजा (देशदृष्टैः, चैव, शास्त्रदृष्टैः) देशव्यवहार तथा शास्त्र द्वारा जाने हुए (हेतुभिः) हेतुओं से (प्रत्यहं) प्रतिदिन विचारे ॥

सं०-अब अठारह प्रकार के व्यवहारों का वर्णन करते हैं:-

तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः ।
सम्भूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च ॥ ४ ॥
वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः ।
क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः ॥५॥

पदा०-(तेषां, आद्यं, ऋणादानं) उन अठारह में १-ऋण लेकर न देना वा विना दिये मांगना (निक्षेपः) २-धरोहर (अस्वामिविक्रयः) ३-स्वामी न होकर किसी पदार्थ का वेचना (सम्भूय, च, समुत्थानं) ४-साझे का व्यापार (दत्तस्य, अनपकर्म, च) ५-दान दिये हुए को पुनः ले लेना-(वेतनस्य,आदानं, चैव) ६-नौकरी न देना (संविदः, च, व्यतिक्रमः) ७-प्रतिज्ञा के विरुद्ध चलना (क्रयविक्रयानुशयः) ८-खरीदने, वेचने का झगड़ा (स्वामिपालयोः, विवादः) ९-पशु के स्वामी तथा पशुपालक का विवाद, और :-

सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके ।
स्तेयञ्च साहसञ्चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च ॥ ६ ॥
स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च ।
पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥ ७ ॥

पदा०-(सीमाविवादधर्मः) १०-सरहद का झगड़ा (दण्डवाचिके, पारुष्ये, च) ११-कठोर बोलना १२-मारपीट करना (स्तेयं, च, साहसं, चैव) १३-चोरी १४-बलात्कार से धनादि का हरण करना (स्त्रीसंग्रहणं, एव, च) १५-परस्त्री का ग्रहण (स्त्रीपुंधर्मः) १६-स्त्री और पुरुष के धर्म की व्यवस्था (विभागः, च) १७-धन का विभाग (द्यूतं, आह्वयः, एव, च) १८-जुआ और जानवरों की लड़ाई में हार जीत का दाव लगाना (इह) इस संसार में (व्यवहारस्थितौ) व्यवहार प्रवृत्ति के (एतानि, अष्टादश, पदानि) यह अठारह स्थान हैं ॥

एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम् ।
धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ॥८॥

पदा०-(एषु, स्थानेषु) इन अठारह व्यवहारों में (भूयिष्ठं, विवादं, चरतां,नृणां) बहुत झगड़ने वाले पुरुषों का (धर्मं,शाश्वतं, आश्रित्य) सनातन मर्यादानुसार (कार्यविनिर्णयं, कुर्यात्) कार्य निर्णय करे ॥

यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम् ।
तदा नियुञ्ज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने ॥९॥

पदा०-(यदा, तु, नृपतिः) जब राजा (कार्यदर्शनं, स्वयं, न, कुर्यात्) स्वयं कार्य निरीक्षण न करसके (तदा) तो (कार्यदर्शने) कार्य निरीक्षण के लिये (विद्वांसं, ब्राह्मणं, नियुञ्ज्यात्) किसी विद्वान् ब्राह्मण को नियत करे, अर्थात् किसी रोगवशात् अथवा

किसी अन्य कारण से राजा स्वयं न्यायासन पर न बैठसके तो अपने किसी नीतिज्ञ मन्त्री को निज आसन पर बिठावे ॥

सोऽस्य कार्याणि सम्पश्येत्सभ्यैरेव त्रिभिर्वृतः ।
सभामेव प्रविश्याग्र्यामासीनः स्थित एव वा॥१०॥

पदा०-(सः) वह ब्राह्मण (त्रिभिः, सभ्यैः, एव, वृतः) तीन सभ्य पुरुषों के ही साथ (अग्र्यां, सभां, एव, प्रविश्य) मुख्य सभा में प्रवेश करके (आसीनः, वा, स्थितः, एव) बैठा अथवा खड़ा हुआ ही (अस्य, कार्याणि) राजा के देखने योग्य सब कार्यों को (सम्पश्येत्) भलेप्रकार देखे ॥

यस्मिन्देशे निषीदन्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः ।
राज्ञश्चाधिकृतो विद्वान् ब्रह्मणस्तां सभां विदुः॥११॥

पदा०-(यस्मिन्, देशे) जिस स्थान में (वेदविदः, त्रयः, विप्राः, निषीदन्ति) वेदों के ज्ञाता तीन सभ्य पुरुष बैठते हैं (च) और (राज्ञः, अधिकृतः, विद्वान्) राजा से अधिकार को प्राप्त एक विद्वान् नियत है (तां, ब्रह्मणः, सभां, विदुः) उस सभा को ब्रह्मा की सभा जानना चाहिये,क्योंकि वहां पूर्ण प्रकार से न्याय-व्यवस्था होती है ॥

धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते ।
शल्यं चास्य न कृन्तंति विद्धास्तत्र सभासदः॥१२॥

पदा०-(यत्र, सभां) जिस सभा में (अधर्मेण, धर्मः, तु, विद्धः, उपतिष्ठते) अधर्म से धर्म का हनन किया जाता है (च) और

जो सभासद् (अस्य, शल्यं, न, कृन्तन्ति) इस धर्म को क्लेश देने वाले शल्य=कांटे नहीं निकालते (तत्र, सभासदः, विद्धाः) वह सभासद् उन्हीं अधर्मरूप कांटों से बींधे जाते अर्थात् पाप के भागी होते हैं ॥

सभा वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम् ।
अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी ॥१३॥

पदा०—(वा, सभां, न, प्रवेष्टव्यं) या तो सभा में जावे नहीं (वा) अथवा जावे, तो (समञ्जसं, वक्तव्यं) सत्य बोले (अपि) क्योंकि सभा में बैठा हुआ (अब्रुवन, विब्रुवन, वा) कुछ न बोले तथा मिथ्या बोले तो (नरः, किल्बिषी, भवति) पुरुष पापी होता है ॥

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥१४॥

पदा०—(यत्र,प्रेक्षमाणानां) जिस सभा में सभ्यों के देखते हुए (यत्र,धर्मः,अधर्मेण) जहां धर्म अधर्म से (च) और (सत्यं, अनृतेन, हन्यते) सत्य झूंठ से हनन होता है (हि) निश्चयकरके (तत्र, सभासदः, हताः) वहां के सभासद् उस अधर्म से नष्ट होजाते हैं ॥

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतोऽवधीत् ॥१५॥

पदा०—(हतः, धर्मः, एव, हन्ति) नष्ट हुआ धर्म ही नाश करता और (रक्षितः, धर्मः, रक्षति) रक्षित धर्म रक्षा करता है

(तस्मात्) इसलिये (धर्मः, न, हन्तव्यः) धर्म का नाश नहीं करना चाहिये ताकि (हतः, धर्मः, नः, मा, अवधीत्) नष्ट हुआ धर्म हमारा नाश न करे ॥

वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् ।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥१६॥

पदा०—(हि) निश्चयकरके (भगवान्धर्मः, वृषः) भगवान् धर्म को वृष=यथेष्ट कामनाओं की वर्षा करने वाला कहते हैं (तस्य, यः, अलं, कुरुते) उसका जो नाश करता है (तं, देवाः) उसको विद्वान् लोग (वृषलं, विदुः) शूद्र कहते हैं (तस्मात्) इसलिये (धर्मं, न, लोपयेत्) धर्म का कदापि लोप न करे ॥

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥१७॥

पदा०—(एकः, धर्मः, एव, सुहृत्) एक धर्म ही मित्र है (यः, निधने, अपि, अनुयाति) जो मरने पर भी साथ जाता है (अन्यत्, सर्वं) और सब (हि) निश्चयकरके (शरीरेण, समं, नाशं, गच्छति) शरीर के साथ ही नाश होजाते हैं, अर्थात् स्त्री, पुत्र, धन, धान्यादि सब साथ छोड़ जाते हैं ॥

पादोऽधर्मस्य कर्त्तारं पादः साक्षिणमृच्छति ।
पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति ॥१८॥

पदा०—(अधर्मस्य, पादः) अधर्म का एक भाग (कर्त्तारं) अधर्म करने वाले को (पादः, साक्षिणं, ऋच्छति) दूसरा भाग

झूठी साक्षी देने वाले को प्राप्त होता (पादः. सर्वान्. सभासदः) तीसरा भाग सब सभासदों को और (पादः. राजानं, ऋच्छति) चौथा पाद राजा को लगता है ॥

राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः ।
एनो गच्छति कर्त्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते ॥१९॥

पदा०—(तु) और (यत्र) जिस सभा में (निन्दार्हः) असत्यवादी, पापकर्ता निन्दित पुरुष की (निन्द्यते) निन्दा की जाती है वहाँ (राजा. अनेनाः. भवति. सभासदः, मुच्यन्ते) राजा तथा सभासद निष्पाप होजाते हैं और (एनः. कर्त्तारं, गच्छति) उस अधर्म करने वाले को ही पाप लगते हैं ॥

जातिमात्रोपजीवी वा कामं स्याद्ब्राह्मणब्रुवः ।
धर्मप्रवक्ता नृपतेर्न तु शूद्रः कथञ्चन ॥ २० ॥

पदा०—(जातिमात्रोपजीवी) जातिमात्र से उपजीविका करने वाला (वा) अथवा (ब्राह्मणब्रुवः) अपने को ब्राह्मण कहने वाला (नृपतेः. धर्मप्रवक्ता) राजा के धर्म का विवेचनकर्त्ता (कामं.स्यात्) चाहे हो (तु) परन्तु (शूद्रः. कथञ्चन. न) शूद्र कदापि न हो ॥

भाष्य—इस श्लोक का भाव यह है कि एक ओर ब्राह्मण कुल में उत्पन्न विद्या से हीन ब्राह्मण और दूसरी ओर शूद्र कुलोत्पन्न विद्या से विहीन शूद्र हो तो इन दोनों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है, ब्राह्मण कुलोत्पन्न अनपढ़ भी राजा के धर्म का वक्ता चाहे हो परन्तु शूद्र कदापि न हो ॥

यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्मविवेचनम् ।
तस्य सीदति तद्राष्ट्रं पङ्के गौरिव पश्यतः ॥२१॥

पदा०-(यस्य, राज्ञः) जिस राजा के राज्य में (शूद्रः, धर्मविवेचनं, कुरुते) शूद्र धर्म का निर्णय करता है (तस्य) उस राजा के (पश्यतः) देखते हुए ही (तद्राष्ट्रं) वह राज्य (पङ्के, गौः, इव, सीदति) कींचड़ में गौ की न्याईं दुःख से पीड़ित होता है अर्थात् जैसे कींचड़ में फंसकर गौ दुःख पाती है इसीप्रकार शूद्र से शिक्षित हुई प्रजा महान् दुःख भोगती है ॥

यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तमद्विजम् ।
विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् ॥२२॥

पदा०-(यत्, राष्ट्रं) जिस राज्य में (शूद्रभूयिष्ठं, नास्तिकाक्रान्तं) शूद्र तथा नास्तिक अधिक हों और (अद्विजं) द्विज न हों (तत्,कृत्स्नं) वह सम्पूर्ण राज्य (दुर्भिक्षव्याधिपीडितं) दुर्भिक्ष तथा अनेक व्याधियों से पीड़ित हुआ (आशु, विनश्यति) शीघ्र नाश होजाता है ॥

धर्मासनमधिष्ठाय संवीताङ्गः समाहितः ।
प्रणम्य लोकपालेभ्यः कार्यदर्शनमारभेत् ॥२३॥

पदा०-(संवीताङ्गः, समाहितः) वस्त्राभूषणों से शरीराङ्गों को ढांप, सावधानचित्त होकर (धर्मासनं, अधिष्ठाय) धर्मासन पर बैठ (लोकपालेभ्यः,प्रणम्य) आठो लोकपालों को प्रणम्य=ध्यान में रखकर अर्थात् अपने आठो गुणों का आदर करता हुआ राजा

(कार्यदर्शनं, आरभेत) कार्यदर्शन=मुक़द्दमे आदि करना प्रारम्भ करे॥

अर्थानर्थावुभौ बुद्ध्वा धर्माधर्मौ च केवलौ।
वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम्॥२४॥

पदा०—(अर्थानर्थौ, उभौ) अर्थ, अनर्थ दोनों को (च) तथा (केवलौ, धर्माधर्मौ) केवल धर्म, अधर्म को (बुद्ध्वा) जानकर (वर्णक्रमेण) वर्णक्रम से अर्थात् प्रथम ब्राह्मण का, फिर क्षत्रिय का, इस क्रम से (कार्यिणां, सर्वाणि, कार्याणि, पश्येत्) कार्य वालों के सम्पूर्ण कार्यों को देखे॥

बाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गैर्भावमन्तर्गतं नृणाम्।
स्वरवर्णेङ्गिताकारैश्चक्षुषा चेष्टितेन च॥२५॥

पदा०—(नृणां, बाह्यैः, लिङ्गैः) मनुष्यों के बाह्यचिन्ह (स्वरवर्णेङ्गिताकारैः, चक्षुषा, चेष्टितेन, च) स्वर=आवाज़, वर्ण=शरीर का रङ्ग आदि बदलना, नीचे ऊपर देखना आदि, इङ्गित=इशारा, आकार=रोमांच तथा पसीना आदि आजाना, नेत्रविकार और चेष्टा इन (बाह्यैः, लिङ्गैः) बाह्यचिन्हों से (अन्तर्गतं, भावं, विभावयेत्) भीतरी अभिप्राय को जाने, क्योंकिः—

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः॥२६॥

पदा०—(आकारैः, इङ्गितैः, गत्या) आकार, इशारे, गति (चेष्टया, भाषितेन, च) चेष्टा, भाषण, (नेत्रवक्त्रविकारैः, च) नेत्र

और मुख के विकारों से (अन्तर्गतं, मनः, गृह्यते) आन्तरीय मन का भेद जाना जाता है ॥

सं०—अब राजा को असमर्थों के धनरक्षण का विधान करते हैं:-

बालदायादिकं रिक्थं तावद्राजानुपालयेत् ।
यावत्स स्यात्समावृत्तो यावच्चातीतशैशवः ॥२७॥

पदा०—(राजा) राजा (बालदायादिकं, रिक्थं) बालक सम्बन्धी दायभाग के द्रव्य का (तावत्, अनुपालयेत्) तब तक पालन करे (यावत्, सः) जबतक वह बालक (अतीतशैशवः, यावत्, च, समावृत्तः, स्यात्) बाल्यावस्था का उल्लङ्घन करके समावर्त्तन संस्कार युक्त न होजाय, अर्थात् राजा नाबालिग़ के हक़ का तब तक संरक्षण करे जब तक वह पढ़ लिखकर सम्पन्न=बालिग़ न होजाय ॥

वशापुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च ।
पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च ॥२८॥

पदा०—(वशापुत्रासु, च, निष्कुलासु, च) वन्ध्या, पुत्ररहित कुलहीन (पतिव्रतासु, च, विधवासु) पतिव्रता, विधवा (च) और (आतुरासु, स्त्रीषु) स्थिर रोगिणी स्त्रियों के द्रव्य का भी राजा (एवं, रक्षणं, स्यात्) बालक के द्रव्य समान ही रक्षण करे ॥

जीवन्तीनां तु तासां ये तद्धरेयुः स्वबान्धवाः ।
ताञ्छिष्याच्चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥२९॥

पदा०—(तु) और (जीवन्तीनां, तासां) उक्त स्त्रियों के

जीवित रहते हुए (ये, स्वबान्धवाः) जो उनके बन्धु आदि (तत्, हरेयुः) उनके धन का हरण करें तो (तान्) उनको (धार्मिकः, पृथिवीपतिः) धर्मात्मा राजा (चौरदण्डेन, शिष्यात्) चोर के दण्ड समान दण्ड देवे ॥

प्रणष्टस्वामिकं रिक्थं राजा त्र्यब्दं निधापयेत् ।
अर्वाक् त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत् ॥३०॥

पदा०-(प्रणष्टस्वामिकं) जिसका स्वामी न हो ऐसे "लावारिस" (रिक्थं) धन को (राजा) राजा (त्र्यब्दं, निधापयेत्) तीन वर्ष तक रक्षित रक्खे (अर्वाक्, त्र्यब्दात्, स्वामी, हरेत्) तीन वर्ष के भीतर यदि उसके स्वामी का पता लगजाय तो वह ले लेवे, परन्तु (परेण, नृपतिः, हरेत्) तीन वर्ष के उपरान्त उस धन का स्वामी राजा होजावे ॥

ममेदमिति यो ब्रूयात्सोऽनुयोज्यो यथाविधि ।
सम्वाद्य रूपसंख्यादीन् स्वामी तद्द्रव्यमर्हति ॥३१॥

पदा०-(यः) जो पुरुष (मम, इदं, इतिब्रूयात्) "यह धन मेरा है" ऐसा कहे (सः, यथाविधि) उससे राजा यथाविधि (रूपसंख्यादीन्, अनुयोज्यः, सम्वाद्य) धन का स्वरूप, परिमाण तथा गणना आदि पूछे उसके ठीक बताने पर (स्वामी, तत्, द्रव्यं, अर्हति) स्वामी को वह धन देदेवे ॥

अवेदयानो नष्टस्य देशं कालं च तत्त्वतः ।
वर्णं रूपं प्रमाणं च तत्समं दण्डमर्हति ॥ ३२ ॥

पदा०—(नष्टस्य) नष्ट हुए द्रव्य का (देशं,कालं, च, वर्णं, रूपं प्रमाणं, च) देश, काल, रूपरङ्ग और प्रमाण (तत्त्वतः, अवेदयानः) पूर्णतया न जानता हो तो उस स्वामी बनने वाले को (तत्, समं, दण्डं, अर्हति) उस धन के समान ही दण्ड देवे, अर्थात् उस धन के लिये झूंठ बोलने वाले को उसी धन के बराबर दण्ड दिया जाय जिस धन को उसने अपना बताया है ॥

आददीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगतान्नृपः ।
दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ३३ ॥

पदा०—(अथ) और (प्रणष्टाधिगतात्) नष्ट हुए धन की प्राप्ति में से (नृपः) राजा (सतां, धर्मं, अनुस्मरन्) सत्पुरुषों के धर्म का स्मरण करता हुआ (षड्भागं, दशमं, अपिवा, द्वादशं, आददीत) छटा, दशवां अथवा बारहवां भाग ग्रहण करे ॥

प्रणष्टाधिगतं द्रव्यं तिष्ठेद्युक्तैरधिष्ठितम् ।
यांस्तत्र चौरान् गृह्णीयात्तान् राजेभेन घातयेत्॥३४॥

पदा०—(प्रणष्टाधिगतं, द्रव्यं) दूसरों के नष्ट=गिरे हुए धन को (युक्तैः, अधिष्ठितं, तिष्ठेत्) राजपुरुषों की रक्षा=पहरे में रक्खे (यान्, तत्र, चोरान्, गृह्णीयात्) यदि उस धन को चोर चुराले जायं तो (राजा, तान्, इभेन, घातयेत्) राजा उनको हाथी से मरवा डाले ॥

ममायमिति यो ब्रूयान्निधिं सत्येन मानवः ।
तस्याददीत षड्भागं राजा द्वादशमेव वा॥३५॥

पदा०-(यः, मानवः) जो पुरुष (सत्येन, ब्रूयात) सचाई से कहे कि (अयं, निधिं, मम) यह धन मेरा है तो (राजा) राजा (तस्य) उस धन का (षड्भागं, वा, द्वादशं, एव, आददीत) छठा वा बारहवां भाग लेकर शेष उसको देदेवे ॥

अनृतं तु वदन्दण्ड्यः स्ववित्तस्यांशमष्टमम् ।
तस्यैव वा निधानस्य संख्यायाल्पीयसीं कलाम्॥३६।

पदा०-(तु)और जो(अनृतं,वदन्) अन्य के धन को असत्य से अपना बतावे तो (स्ववित्तस्य, अष्टमं, अंशं, दण्ड्यः) उसके धन का आठवां भाग उस असत्यवादी पुरुष पर दण्ड=जुरमाना करे (वा) अथवा (तस्य, एव, निधानस्य) उस निधि की ही (संख्याय, अल्पीयसीं, कलां) थोड़ी संख्या के बराबर दण्ड देवे॥

विद्वांस्तु ब्राह्मणोदृष्ट्वा पूर्वोपनिहितं निधिम् ।
अशेषतोऽप्याददीत सर्वस्याधिपतिर्हि सः॥३७॥

पदा०-(तु) और यदि (विद्वान्, ब्राह्मणः) विद्वान् ब्राह्मण (पूर्वोपनिहितं, निधिं, दृष्ट्वा) पूर्व रक्खी हुई निधि को पावे तो (अशेषतः, अपि, आददीत) सब ही लेलेवे (हि) क्योंकि (सः, सर्वस्य, अधिपतिः) वह सब का स्वामी है, अर्थात् उसमें से राजा कोई भाग न लेवे ॥

ब्राह्मणस्तु निधिं लब्ध्वा क्षिप्रं राज्ञे निवेदयेत् ।
तेन दत्तं तु भुञ्जीतस्तेनः स्यादनिवेदने ॥३८॥

पदा०-(तु) परन्तु (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (निधिं, लब्ध्वा)

निधि को पाकर (क्षिप्रं, राज्ये, निवेदयेत) तत्काल राजा को सूचना देदेवे (तु) पुनः (तेन, दत्तं, भुञ्जीत) राजा के देने पर उपभोग में लावे, क्योंकि (अनिवेदने, स्तेनः, स्यात) सूचना न देकर भोग करने से चोर समझा जावेगा ॥

यं तु पश्येन्निधिं राजा पुराणं निहितं क्षितौ ।
तस्माद्द्विजेभ्यो दत्त्वार्धमर्धं कोशे प्रवेशयेत्॥३९॥

पदा०—(तु) और (यं, क्षितौ, पुराणं, निहितं, निधिं) जो भूमि में पुरानी रक्खी हुई निधि को (राजा, पश्येत) राजा स्वयं पावे तो (तस्मात, अर्धं, द्विजेभ्यः, दत्त्वा) उसमें से अर्धभाग ब्राह्मणों को देवे और (अर्धं, कोशे, प्रवेशयेत) अर्धभाग अपने कोश में जमा करे ॥

निधीनां तु पुराणानां धातूनामेव च क्षितौ ।
अर्धभाग्रक्षणाद्राजा भूमेरधिपतिर्हि सः ॥४०॥

पदा०—(तु) और (पुराणानां, निधीनां) पुरानी निधि ब्राह्मण से भिन्न को पाई हुई (च) तथा (धातूनां, एव, क्षितौ) सुवर्णादि के उत्पत्ति स्थानों का (राजा) राजा (अर्द्धभाक्) आधे का भागी होता है (हि क्योंकि(भूमेः,रक्षणात,सः,अधिपतिः) वह भूमि का रक्षक होने से उसका स्वामी है ॥

दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरैर्हृतं धनम् ।
राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्नोति किल्बिषम्॥४१॥

पदा०—(चौरैः, हृतं, धनं) चोरों से हरण किया हुआ धन

पाकर (राजा) राजा सम्पूर्ण धन (सर्ववर्णेभ्यः, दातव्यं) जिस वर्ण वाले मनुष्य का हो उसको दे देवे, क्योंकि (तद, उपयुञ्जानः, राजा) उस धन को उपभोग में लाने वाला राजा (चौरस्य, किल्बिषं, आप्नोति) चोर के पाप का भागी होता है ॥

जातिजानपदान्धर्मान् श्रेणीधर्मांश्च धर्मवित् ।
समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥४२॥

पदा०-(धर्मवित) धर्मज्ञ राजा (जातिजानपदान्, धर्मान्, च, श्रेणीधर्मान्) जातिधर्म, देशधर्म, श्रेणीधर्म (च) और (कुलधर्मान्; समीक्ष्य) कुलधर्मों को विचारकर (स्वधर्म,प्रतिपादयेत) अपने राजधर्म का पालन करे, यहां " धर्म " शब्द पूर्व मर्यादा का वाचक है अर्थात उक्त मर्यादानुसार वर्तता हुआ वैदिकधर्मानुकूल ही आचरण करे ॥

स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे सन्तोऽपि मानवाः ।
प्रिया भवन्ति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः ।४३।

पदा०-(दूरे, सन्तः, अपि) दूर देश में स्थित हुआ भी (स्वानि, कर्माणि, कुर्वाणाः) अपने सामाजिक कर्म करने वाले (स्वे, स्वे, कर्मणि, अवस्थिताः) तथा अपने २ कर्मों में स्थित (मानवाः) मनुष्य (लोकस्य, प्रियाः, भवन्ति) लोक के प्रिय होते हैं ॥

भाष्य-इस श्लोक का तात्पर्य्य यह है कि दूर देश में रहता हुआ भी अपनी जाति, देश तथा कुल के धर्मों और अपने वेदानुकूल कर्मों को करता हुआ पुरुष अपनी समाज का प्रिय

होता है, इसलिये पुरुष को उचित है कि जहां रहे वहां ही अपने धर्म कर्मों को यथानस्थित करता रहे उनका कदापि त्याग न करे,ऐसा नियमपालन करने वाला पुरुष इस लोक तथा परलोक में पूज्य होता है ॥

नोत्पादयेत्स्वयं कार्य्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः ।
न च प्रापितमन्येन ग्रसेदर्थं कथञ्चन ॥ ४४ ॥

पदा०—(राजा) राजा और (अस्य. पुरुषः) राजपुरुष (स्वयं, कार्यं, न, उत्पादयेत्) स्वयं ऋणादि का विवाद उत्पन्न न करावें (च) तथा (अन्येन) अन्य से (प्रापितं, अर्थं) प्राप्त धन को (कथञ्चन, न, च, ग्रसेत्) कभी ग्रहण न करें, अर्थात् राजा तथा राजा के कार्य्यकर्त्ता स्वयं कोई झगड़ा खड़ा न करावें, और यदि कोई पुरुष अपना कोई विवाद पेश करे तो राजा और राजकीय पुरुष उसकी उपेक्षा न करें और न किसी से कुछ धन=रिशवत लेकर उसके मुक़द्दमे को खारिज करें ॥

यथा नयत्यसृक्पातैर्मृगस्य मृगयुः पदम् ।
नयेत्तथानुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम् ॥४५॥

पदा०—(यथा, मृगयुः) जिसप्रकार व्याघ्र (असृक्पातैः, मृगस्य, पदं, नयति) मृग के रुधिरपात से उसके स्थान को खोजता है (तथा, नृपतिः) उसी प्रकार राजा (अनुमानेन, धर्मस्य, पदं, नयेत्) अनुमान से धर्म का स्थान प्राप्त करे, अर्थात् राजा पूर्ण परिश्रम द्वारा अभियोग=मुक़द्दमे की सच्चाई का अनुसन्धान करे और ठीक २ असलियत पर पहुंचे ॥

सत्यमर्थं च सम्पश्येदात्मानमथ साक्षिणः ।
देशं रूपं च कालं च व्यवहारविधौ स्थितः ॥४६॥

पदा०–(व्यवहारविधौ, स्थितः) व्यवहारविधि में स्थित राजा वा राजपुरुष (सत्यं, अर्थं, च, आत्मानं, साक्षिणः) सत्य, अर्थ तथा अपनी आत्मा की साक्षी (अथ) और (देशं, कालं, च, रूपं, सम्पश्येत) देश, काल तथा रूप को देखें, अर्थात् अभियोग का निरीक्षण करते हुए राजा तथा राजपुरुष सत्य, अर्थ, साक्षी, देश, काल तथा रूप को विचारकर न्यायपूर्वक वर्तें ॥

सद्भिराचरितं यत्स्याद्धार्मिकैश्च द्विजातिभिः ।
तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत् ॥ ४७ ॥

पदा०–(यत, सद्भिः, धार्मिकैः, द्विजातिभिः) जो धार्मिक सत्पुरुष द्विजातियों ने (आचरितं, स्यात) आचरण किया हो (च) और (देशकुलजातीनां, अविरुद्धं) देश, कुल तथा जाति के विरुद्ध न हो (तत,प्रकल्पयेत) वैसा व्यवहार का निर्णय करे॥

सं०–अब ऋणी से साहूकार का धन दिलाने विषयक कथन करते हैं :—

अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थमुत्तमर्णेन चोदितः ।
दापयेद्धनिकस्यार्थमधमर्णाद्विभावितम् ॥ ४८ ॥

पदा०–(अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थं) अधमर्ण=ऋणी से धन की सिद्धि के लिये अर्थात् धन लेने के लिये (उत्तमर्णेन) उत्तमर्ण= साहूकार से (चोदितः) प्रेरित हुआ अर्थात् साहूकार के कहने

से राजा (अधमर्णात्) ऋणी से (विभावितं) निश्चित=ठीक (अर्थं) धन (धनिकस्य) धनिक का (दापयेत्) दिलावे ॥

यैर्यैरुपायैरर्थं स्वं प्राप्नुयादुत्तमर्णिकः ।
तैस्तैरुपायैः संगृह्य दापयेदधमर्णिकम् ॥ ४९ ॥
धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च ।
प्रयुक्तं साधयेदर्थं पंचमेन बलेन च ॥ ५० ॥

पदा०-(उत्तमर्णिकः) धनी=साहूकार (यैः, यैः, उपायैः) जिन २ उपायों से (स्वं, अर्थं, प्राप्नुयात्) अपने धन को प्राप्त होवे अर्थात् जिस प्रकार उसका रुपया वसूल होसके (तैः, तैः, उपायैः, संगृह्य) उन २ उपायों से ऋण संग्रह करके (अधमर्णिकं, दापयेत्) ऋणी से दिलावे,-राजा (धर्मेण) धर्मपूर्वक (व्यवहारेण) व्यवहार से (छलेन) छल से (आचरितेन) सेवककर्म से (च) अथवा (पंचमेन, बलेन) पाचवें बल=बलात्कार से (प्रयुक्तं, अर्थं,साधयेत्)यथार्थ धन का साधन करे अर्थात् ऋण अदा करावे॥

भाष्य-किसी का किसी पर ऋण हो और वह उस को न देवे तो साहूकार के फरयाद करने पर राजा ऋणी से उसका धन दिलाने का उपाय करे अर्थात् साहूकार जिन२उपायों से अपना ऋण लेने की चेष्टा करे उन्हीं उपायों से उसका धन दिलावे, विशेषकर (१) धर्मपूर्वक=धर्मानुकूल समझाकर (२) व्यवहार=व्यवहार का प्रकार बताकर (३) किसी छल द्वारा ऋणी से धन मंगाकर साहूकार को दिला देना (४) आचरित=सेवक कर्म कराके अर्थात् ऋणी को साहूकार के

यहां नौकर कराके उसका ऋण पूरा करावे (५) बल=ऋणी को राजदरबार में बुलाकर ताड़नादि करके उससे धन दिलावे, अथवा :—

य: स्वयं साधयेदर्थमुत्तमर्णोऽधमर्णिकात् ।
न स राज्ञाऽभियोक्तव्यः स्वकं संसाधयन्धनम् ॥५१॥

पदा०—(यः) जो (उत्तमर्णः) धनी (अधमर्णिकात्) ऋणी से (अर्थं, स्वयं, साधयेत्) अपने धन को स्वयं लेने की चेष्टा करे अर्थात् अपने आप वसूल करे तो (स्वकं, धनं, संसाधयन्) अपने धन को वसूल करते समय (राज्ञा) राजा को (सः) उस साहूकार पर (अभियोक्तव्यः, न) अभियोग नहीं चलाना चाहिये अर्थात् जब वह ठीक २ अपना धन वसूल कर रहा हो तो राजा उस पर मुक़द्दमा क़ायम न करे ॥

अर्थेऽपव्ययमानं तु करणेन विभावितम् ।
दापयेद्धनिकस्यार्थं दण्डलेशं च शक्तितः ॥५२॥

पदा०—(अर्थे, अपव्ययमानं) ऋण होते हुए ऋणी इनकार करदे (तु) और (करणेन, धनिकस्य, विभावितं) साक्षी आदि से साहूकार का ऋण निश्चय होजाय तो राजा (अर्थं) साहूकार का ऋणी से धन दिलावे और उसको(शक्तितः,दण्डलेशं,दापयेत्) यथाशक्ति थोड़ा दण्ड भी देवे ॥

अपह्नवेऽधमर्णस्य देहीत्युक्तस्य संसदि ।
अभियोक्ता दिशेद्देश्यं करणं वान्यदुद्दिशेत्॥५३॥

पदा०—(संसदि) सभा में न्यायाधीश ऋणी से कहे कि (देही, इति) इसका धन दे (उक्तस्य) इस प्रकार कहने पर (अधमर्णस्य, अपह्नवे) जब ऋणी कहे कि मैं कुछ नहीं जानता तब (अभियोक्ता) न्यायाधीश मुद्दई को (देश्यं, दिशेत) उस देश के साक्षी=गवाह (वा) अथवा (अन्यत्, करणं, उद्दिशेत) अन्य साधन=और कोई प्रमाण जिससे उसका ऋण देना सिद्ध हो प्रस्तुत करने की आज्ञा देवे ॥

अदेश्यं यश्च दिशति निर्दिश्यापह्नुते च यः ।
यश्चाधरोत्तरानर्थान् विगीतान्नावबुध्यते ॥ ५४ ॥
अपदिश्यापदेश्यं च पुनर्यस्त्वपधावति ।
सम्यक् प्रणिहितं चार्थं पृष्टः सन्नाभिनन्दति ॥५५॥
असंभाष्ये साक्षिभिश्च देशे संभाषते मिथः ।
निरुच्यमानं प्रश्नं च नेच्छेद्यश्चापि निष्पतेत॥५६॥
ब्रूहीत्युक्तश्च न ब्रूयादुक्तं च न विभावयेत् ।
नच पूर्वापरं विद्यात्तस्मादर्थात्स हीयते ॥५७॥

पदा०—(यः) जो साहूकार (अदेश्यं, दिशति) झूठे साक्षी अथवा अन्य झूठे साधन पेश करता है (यः) जो (निर्दिश्य, अपह्नुते) कहकर लौटता है (च) और (यः) जो (अधरोत्तरान्, अर्थान्, विगीतान्, न, अवबुध्यते) पूर्वापर कहे हुए का ध्यान नहीं रखता—(च) और (यः) जो (अपदेश्यं, अपादिश्य, अपधावति) बात को कहकर उलट जाता है (पुनः) फिर (पृष्टः) पूछने पर (सम्यक्, प्रणिहितं, अर्थं, न, अभिनन्दति) भलेप्रकार

प्रतिज्ञात अर्थ को समाधान नहीं करता अर्थात् अपने कहे हुए तात्पर्य्य को राजा के पूछने पर फिर इनकार कर देता है,– (यः) जो (असंभाष्ये, देशे) न बोलने योग्य स्थान में (साक्षिभिः, सह, मिथः) गवाहों के साथ बात चीत करता है (यः) जो (निरुच्यमानं, प्रश्नं, न, इच्छेत्) पूछे हुए प्रश्न को अच्छा न समझे (च) और (यः) जो (निष्पतेत) अपने पक्ष से गिर जाय—(यः) जो (ब्रूहि) कहो (इति) इस प्रकार (उक्तः) पूछा हुआ (न, ब्रूयात्) कुछ न बोले (च) और (उक्तं, न, विभावयेत्) अपने कथन को दृढ़तापूर्वक न कहे (च) और (यः) जो (पूर्वापरं, न, विद्यात्) बात को पूर्वापर न जाने (सः) वह मुद्दई (तस्मात्, अर्थात्, हीयते) अपने धन को हार जाता है ॥

साक्षिणः सन्ति मेत्युक्त्वा दिशेत्युक्तो दिशेन्न यः।
धर्मस्थः कारणैरेतैर्हीनं तमपि निर्दिशेत् ॥५८॥

पदा०–(मे, साक्षिणः, सन्ति) मेरे गवाह उपस्थित हैं (इति, उक्त्वा) यह कहकर (दिशेति, उक्तः) न्यायाधीश के बुलाने पर (यः, न, दिशेत) जो उपस्थित न करे तो (धर्मस्थः) न्यायाधीश (एतैः, कारणैः, तं, अपि) ऐसे कारणों से साहूकार को भी(हीनं, निर्दिशेत) हारा हुआ कहदे ॥

अभियोक्ता न चेद्ब्रूयाद्वध्यो दण्ड्यश्च धर्मतः।
नचेत्त्रिपक्षाद्ब्रूयाद्धर्मंप्रति पराजितः ॥५९॥

पदा०–(चेत्) यदि (अभियोक्ता) मुद्दई (न, ब्रूयात्) कुछ न बोले तो (धर्मतः) क़ानून के अनुसार (वध्यः,च,दण्ड्यः)

बन्ध तथा जुर्माने के योग्य हो, और (चेत्) यदि मुदाइलह (त्रिपक्षात्,न,ब्रूयात्) डेढ़मास तक न बोले तो (धर्मप्रति,पराजितः) क़ानून के अनुसार हारा समझा जावे ॥

भाष्य—जो अभियोक्ता=मुद्दई राजदर्बार में नालिश करके फिर उसकी पैरवी न करे अर्थात् यथावस्थित सबूत न पहुंचावे तो उस अभियोग=मुक़द्दमे के अनुसार बन्ध वा जुर्माने के योग्य समझाजाय, अर्थात् बड़ा अभियोग हो तो क़ैद और छोटा अभियोग हो तो जुर्माने का दण्ड दियाजाय,और यदि उस पर प्रत्यभियोक्ता=मुदाइलह डेढ़मास के भीतर झूठे अभियोग से हुई हानि का राजदर्बार में निवेदन न करे तो धर्म के अनुसार हारा समझा जावे ॥

यो यावन्निह्नुवीतार्थं मिथ्या यावति वा वदेत् ।
तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्द्विगुणं दमम्॥६०॥

पदा०—(यः) जो मुदाइलह असल धन में से (यावत्, अर्थं, निह्नुवीत) जितने धन को न दे (वा) अथवा मुद्दई असल धन से (यावति, वदेत्) जितना बढ़ा कर दावा करे तो (अधर्मज्ञौ) अधर्मपरायण (तौ) उन दोनों को(नृपेण) राजा(तद्द्विगुणं) उस धन से दूना (दमं, दाप्यौ) दण्ड देवे अर्थात् घटाने वाले से उस घटाये हुए धन का दूना और बढ़ाने वाले से उस बढ़ाये हुए धन का दूना राजा दण्ड ले ॥

पृष्टोऽपव्ययमानस्तु कृतावस्थो धनैषिणा ।
त्र्यवरैः साक्षिभिर्भाव्यो नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥६१॥

पदा०—(नृपब्राह्मणसन्निधौ) राजा तथा ब्राह्मण के सन्मुख

(धनैषिणा) धन की इच्छा वाले मुद्दई द्वारा (कृतावस्थः) राजा से बुलाया हुआ मुद्दाइलह(पृष्टः) पूछे जाने पर(अपव्ययमानः)इनकार करे तो (त्र्यवरैः,साक्षिभिः, भाव्यः) तीन गवाहों से उसका निर्णय करना चाहिये ॥

यादृशा धनिभिः कार्या व्यवहारेषु साक्षिणः ।
तादृशान्संप्रवक्ष्यामि यथा वाच्यमृतं च तैः ॥६२॥

पदा०-(धनिभिः,व्यवहारेषु) धनिक को व्यवहारों=मुकद्दमों में (यादृशाः,साक्षिणः,कार्याः) जैसे गवाह पेश करने चाहियें (च) और (तैः, तादृशान्, यथा, ऋतं, वाच्यं) उन गवाहों को जिस प्रकार यथावत् सत्य बोलना चाहिये वह सब (संप्रवक्ष्यामि) आगे कहता हूं ॥

सं०-अब गवाहों का वर्णन करते हैं :—

गृहिणः पुत्रिणो मौलाः क्षत्रविट्शूद्रयोनयः ।
अर्थ्युक्ताः साक्ष्यमर्हन्ति न ये केचिदनापदि॥६३॥

पदा०-(गृहिणः,पुत्रिणः,मौलाः) गृहस्थी=कुटुम्बी,पुत्रवाले, उसी देश के रहने वाले (क्षत्रविट्शूद्रयोनयः) क्षत्रिय, वैश्य,तथा शूद्र वर्णवाले (अर्थ्युक्ताः) मुद्दई के बताये हुए (साक्ष्यं, अर्हन्ति) गवाही के योग्य होते हैं (ये, केचित्,न)हर कोई नहीं(अनापदि) जब कि वह किसी आपत्ति में ग्रसित न हों ॥

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः ।
सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत् ॥६४॥

पदा०-(सर्वेषु, वर्णेषु, आप्ताः) सब वर्णों में यथार्थ कहने वाले और जो (सर्वधर्मविदः) सम्पूर्ण धर्मों के जानने वाले तथा (अलुब्धाः) लोभी नहों, उन्हें (कार्येषु, साक्षिणः, कार्याः) सब कामों में साक्षि करना चाहिये (विपरीतान्, तु, वर्जयेत्) इनसे विपरीतों को नहीं ॥

नार्थसम्बन्धिनो नाप्ता न सहाया न वैरिणः ।
न इष्टदोषाःकर्त्तव्या न व्याध्यार्त्ता न दूषिताः॥६५॥

पदा०-(अर्थसम्बन्धिनः) धन से सम्बन्ध रखने वाले(नाप्ताः) असत्यवादी (सहायाः) भृत्यादि सहायक (वैरिणः) जिनके दोष प्रकट हों (व्याध्यार्त्ताः) रोगी (दूषिताः) और महापातकादि से दूषितों को (न, कर्त्तव्याः) गवाह न बनावे ॥

न साक्षी नृपतिः कार्यो न कारुककुशीलवौ ।
न श्रोत्रियो न लिङ्गस्थो न संगेभ्यो विनिर्गतः॥६६॥

पदा०-(नृपतिः) राजा (कारुककुशीलवौ) कारीगर=लुहार, वढ़ई, नट (श्रोत्रियः) वेदपाठी (लिङ्गस्थः) ब्रह्मचारी (संगेभ्यः, विनिर्गतः) और सङ्गों से रहित=संन्यासी को भी (साक्षी, न, कार्यः) गवाह न बनावे ॥

नाध्यधीनो न वक्तव्यो न दस्युर्न विकर्मकृत् ।
न वृद्धो न शिशुर्नैको नान्त्यो न विकलेन्द्रियः॥६७॥

पदा०-(अध्यधीनः, वक्तव्यः, दस्युः, विकर्मकृत) परतन्त्र, निन्दित, दस्यु, वेदविरुद्ध आचरण करने वाला (वृद्धः, शिशुः,

एकः, अन्त्यः, विकलेन्द्रियः) वृद्ध, बालक, एकाकी, चाण्डाल और जिसकी इन्द्रियें स्वस्थ न हों, (न) इनको साक्षी न बनावे ॥

नार्तो न मत्तो नोन्मत्तो न क्षुत्तृष्णोपपीडितः ।
न श्रमार्त्तो न कामार्त्तो न क्रुद्धो नापि तस्करः ॥६८॥

पदा०-(आर्त्तः, मत्तः, उन्मत्तः, क्षुत्तृष्णोपपीडितः) दुःखी मादक द्रव्यों का सेवन करने वाला, पागल तथा भूखप्यास से पीड़ित (श्रमार्त्तः, कामार्त्तः, क्रुद्धः, तस्करः) थका हुआ, काम से पीड़ित, क्रोधी और चोर को (अपि,न) भी गवाह न बनावे ॥

स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः ।
शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥६९॥

पदा०-(स्त्रीणां, साक्ष्यं, स्त्रियः) स्त्रियों की साक्षी स्त्रियें हों (द्विजानां, सदृशाः, द्विजाः, कुर्युः) द्विजों का साक्षी=गवाही उनके सदृश द्विज करें (शूद्राणां, सन्तः, शूद्राः) शूद्रों की साक्षी सज्जन शूद्र दें (च) और (अन्त्यानां, अन्त्ययोनयः) अन्त्यज= चाण्डालों की गवाही चाण्डाल दें ॥

अनुभावी तु यः कश्चित्कुर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम् ।
अन्तर्वेश्मन्यरण्ये वा शरीरस्यापि चात्यये ॥७०॥

पदा०-(अन्तर्वेश्मनि) घर के भीतर (वा) अथवा (अरण्ये) वन में (शरीरस्य, अत्यये) शरीर के नाश होने पर अर्थात् कोई किसी को मारदे तो (यः) जो (कश्चित्, अपि, अनुभावी) कोई भी अनुभव करने वाला हो वही (विवादिनां, साक्ष्यं, कुर्यात्) विवाद करने वालों का साक्षी किया जासक्ता है ॥

स्त्रियाप्यसंभवे कार्यं बालेन स्थविरेण वा ।
शिष्येण बन्धुना वापि दासेन भृतकेन वा ॥७१॥

पदा०—(असंभवे) अन्य साक्षी न मिलने पर (स्त्रिया.बालेन, वा, स्थविरेण) स्त्री. बालक अथवा वृद्ध से (वा) अथवा (शिष्येण, बन्धुना. दासेन, भृतकेन. अपि. कार्यं) शिष्य, बन्धु. दास और भृत्य से भी साक्षी करावें. अर्थात् घर अथवा जङ्गल आदि किसी गुप्त स्थान में कोई किसी को मारदे और ऊपर लिखे साक्षी न मिलसकें तो स्त्री बालक आदि जो हो उसी के साक्षी से अभियोग का निर्णय करे ॥

बालवृद्धातुराणां च साक्ष्येषु वदतां मृषा ।
जानीयादस्थिरां वाचमुत्सिक्तमनसां तथा ॥७२॥

पदा०—(बालवृद्धातुराणां) बाल, वृद्ध, आतुर (तथा) और (उत्सिक्तमनसां) चञ्चल चित्त वाले (साक्ष्येषु) गवाहों में (मृषा, वदतां) झूठ बोलते हुए की (वाचं,अस्थिरां, जानीयात्) वाणी को स्थिर न जाने, या यों कहो कि झूठ बोलते हुए इनकी वाणी को मुख तथा नेत्रादि चिन्हों से जान ले ॥

साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसंग्रहणेषु च ।
वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ॥७३॥

पदा०—(च) और (साहसेषु, सर्वेषु) सम्पूर्ण साहसों=घर का जला देना तथा डांका आदि में (स्तेयसंग्रहणेषु, च) चोरी तथा परस्त्रीगमन में (वाग्दण्डयोः, च, पारुष्ये) गाली और

मारपीट में (साक्षिणः, न, परीक्षेत) साक्षियों की परीक्षा न करे, अर्थात् पीछे जिसप्रकार के साक्षी कह आये हैं यहां वही हों यह नियम नहीं ॥

बहुत्वं परिगृह्णीयात्साक्षिद्वैधे नराधिपः ।
समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान् ॥७४॥

पदा०-(साक्षिद्वैधे) परस्परविरुद्ध साक्षियों में (बहुत्वं, नराधिपः, परिगृह्णीयात्) जिस बात को बहुत कहें उसको राजा ग्रहण करे (तु) और (समेषु, साक्षिषु, गुणोत्कृष्टान्) जहां विरुद्ध कहने वाले संख्या में समान हों वहां अधिक गुण वालों का मान करे (गुणिद्वैधे) यदि गुण वाले विरुद्ध कहें तो वहां (द्विजोत्तमान्) ब्राह्मणों का प्रमाण करे ॥

समक्षदर्शनात्साक्ष्यंश्रवणाच्चैव सिध्यति ।
तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥७५॥

पदा०-(समक्षदर्शनात्, च, श्रवणात्, एव, साक्ष्यं, सिध्यति) सामने देखने तथा सुनने से भी गवाही सिद्ध होती है (तत्र) उस में (सत्यं, ब्रुवन्, साक्षी) सत्य बोलने वाला साक्षी=गवाह (धर्मार्थाभ्यां, न,हीयते) धर्म और अर्थ से कभी च्युत नहीं होता॥

साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्यसंसदि ।
अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ॥७६॥
यत्रानिबद्धोऽपीक्षेत शृणुयाद्वापि किंचन ।
पृष्टस्तत्रापि तद्ब्रूयाद्यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥७७॥

पदा०-(आर्यसंसदि)आर्यों की सभा में(दृष्टं,श्रुतात्,अन्यत्) देखे सुने से विपरीत कहने वाला (साक्षी) गवाह (अवाङ्,नरकं, अभ्येति) अधोमुख दुर्गति को प्राप्त होता है (च) और (प्रेत्य) मरकर भी (स्वर्गात्, हीयते) सद्गति को प्राप्त नहीं होता,—इसलिये (अनिबद्धः, अपि) मुकद्दमे में न बुलाया हुआ गवाह भी (यत्र, यत्, ईक्षेत) जहां जो देखे (वा) अथवा (शृणुयात्)सुने (तत्रापि) वहां (पृष्टः)पूछने पर (यथादृष्टं,यथाश्रुतं) जैसा देखा अथवा सुना हो (तद्ब्रूयात्) वैसाही कहे॥

एकोऽलुब्धस्तु साक्षी स्याद्बह्व्यःशुच्योऽपि न स्त्रियः।
स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्तु दोषैश्चान्येऽपि ये वृताः॥७८॥

पदा०-(तु) और (अलुब्धः, एकः,साक्षी) लोभादि से रहित एक ही गवाह (स्यात्) ठीक है परन्तु (स्त्रियः, बह्व्यः, शुच्यः, अपि, न) स्त्रियां बहुत और पवित्र होने पर भी पर्याप्त नहीं, क्योंकि (स्त्रीबुद्धेः, अस्थिरत्वात्) स्त्री की बुद्धि स्थिर नहीं होती (च) और (ये) जो (दोषैः, वृताः) दोषों से युक्त हैं वह (अन्ये,अपि) अन्य लोग भी साक्षी के योग्य नहीं॥

स्वभावेनैव यद्ब्रूयुस्तद्ग्राह्यं व्यावहारिकम्।
अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम्॥७९॥

पदा०-(स्वभावेन, एव) साक्षीस्वभाव=भयादि से रहित सत्यवक्ता भी (यद्, ब्रूयुः) जो कहे (व्यावहारिकं, तद्, ग्राह्यं)वह व्यवहार के निर्णयार्थ ग्रहण करने योग्य है (यत्, अतः, अन्यत्) जो इससे विपरीत=लोभी तथा असत्यवक्ता (विब्रूयुः) कहें तो (तत्) वह (धर्मार्थं,अपार्थकं) व्यवहारानिर्णय के लिये निरर्थक है॥

सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ ।
प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिना तेन सान्त्वयन्॥८०॥

पदा०—(सभान्तः, प्राप्तान्, साक्षिणः) सभा के बीच प्राप्त हुए साक्षियों से (अर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ) मुद्दई मुद्दाइलह के सन्मुख (प्राड्विवाकः) वकील (सान्त्वयन्, तेन, विधिना) धैर्य देकर इस प्रकार (अनुयुंजीत) पूछे कि :—

यद्द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिन् चेष्टितं मिथः ।
तद्ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता ॥८१॥

पदा०—(अस्मिन्, कार्ये) इस अभियोग में (अनयोः, द्वयोः) मुद्दई, मुद्दाइलह दोनों का (मिथः, चेष्टितं, यत्, वेत्थ) परस्पर व्यवहार जो तुम जानते हो (तत्, सर्वं) वह सब (सत्येन) सत्य २ (ब्रूत) कहो (हि) क्योंकि (अत्र, कार्ये) इस अभियोग में (युष्माकं, साक्षिता) आपकी गवाही है ॥

सं०—अब गवाही में सत्य बोलने वाले के लिये फल कथन करते हैं :—

सत्यंसाक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान् ।
इह चानुत्तमां कीर्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता ॥८२॥

पदा०—(साक्ष्ये, सत्यं ब्रुवन्) साक्षी में सत्य बोलता हुआ (साक्षी) गवाह (इह, अनुत्तमां, कीर्तिं) इस जन्म में उत्तम कीर्ति (च) और मरकर (पुष्कलान्, लोकान्, आप्नोति) अनेक उत्तम अवस्थाओं को प्राप्त होता है, क्योंकि (एषा) यह सत्य रूप वाणी (ब्रह्मपूजिता) ब्रह्म=वेद से पूजित है ॥

सं०—अब झूठ गवाह के लिये पाप कथन करते हैं :—

साक्ष्येऽनृतं वदन् पाशैर्बध्यते वारुणैर्भृशम् ।
विवशः शतमाजातीस्तस्मात्साक्ष्यं वदेदृतम् ॥८२॥

पदा०—(साक्ष्ये, अनृतं, वदन्) साक्ष्य=गवाही में झूठ बोलने वाला पुरुष (वारुणैः भृशं, पाशैः, बध्यते) वरुण के अति कठिन पाशों में बंधकर (विवशः) परतन्त्र हुआ (शतं, आजातीः) सौजन्म पर्य्यन्त अतिदारुण दुःख भोगता है (तस्मात्) इसलिये (साक्ष्यं ऋतं, वदेत्) साक्ष्य को सत्य कहे अर्थात् गवाही में सदा सत्य भाषण करे ॥

सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते ।
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः॥ ८४ ॥

पदा०—(हि) क्योंकि (सत्येन, साक्षी, पूयते) सत्यभाषण करने से गवाह पवित्र होता और (सत्येन, धर्मः, वर्धते) सत्य से धर्म बढ़ता है (तस्मात्) इसलिये (सर्ववर्णेषु, साक्षिभिः) सब वर्णों के साक्षियों को (सत्यं, वक्तव्यं) सत्य ही बोलना चाहिये ॥

आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथाऽऽत्मनः ।
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥८५॥

पदा०—(हि) निश्चयकरके (आत्मा,एव,आत्मनः,साक्षी)आत्मा ही आत्मा का साक्षी है (तथा) और (आत्मनः, गतिः, आत्मा) आत्मा की गति आत्मा है, इसलिये (नृणां) मनुष्यों के (उत्तमं, साक्षिणं) उत्तम साक्षी (स्वं, आत्मानं) अपनी आत्मा का (मा, अवमंस्थाः) अपमान नहीं करना चाहिये ॥

भाष्य-शुभ और अशुभ कर्मों में अपना आपही अपना साक्षी होता है अर्थात् भले बुरे कर्मों की प्रवृत्ति को अपना आप भलेप्रकार जानता है और आपही अपनी शरण है, जिसका तात्पर्य्य यह है कि पुरुष शुभ कर्मों द्वारा अपने को सुखी बनाता और दुष्कर्मों द्वारा अपने आपका नाशक होता है, इसलिये पुरुष को उचित है कि झूठी गवाही देकर अपने आत्मा का तिरस्कार न करे अर्थात् उसको घोर दुःख में न डाले, जैसाकि उपरोक्त ८१ वें श्लोक में वर्णन कर आये हैं कि झूठी गवाही देने वाला परतन्त्र होकर सौ जन्मपर्य्यन्त महान् दुःख भोगता है ॥

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः ।
तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ॥८६॥

पदा०—(पापकृतः) पाप करने वाले (इति) इसप्रकार (मन्यन्ते) मानते हैं कि (नः) हमको (कश्चित्) कोई (न, पश्यति) नहीं देखता (तु) परन्तु (वै) निश्चयकरके (तान्) उन पापियों को (देवाः) देवता और (स्वस्य, एव) अपना ही (अन्तरपूरुषः, प्रपश्यन्ति) अन्तरात्मा देखता है ॥

सं०—अब पापकर्म के देखने वाले देवताओं का कथन करते हैं:—

द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिलाः ।
रात्रिसंध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥८७॥

पदा०—(द्यौः, भूमिः, आपः) आकाश, भूमि, जल (हृदयं) हृदय (चन्द्रार्काग्नियमानिलाः) चन्द्र, सूर्य्य, अग्नि, यम, वायु

(रात्रिसन्ध्ये, च, धर्मः) रात्रि, दोनों सन्धि वेला और धर्म, यह सब देवता (सर्वदेहिनां, वृत्तज्ञाः) सम्पूर्ण प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को जानते हैं अर्थात् इन सब जड़ पदार्थों का अधिष्ठात्री देव परमात्मा सब का साक्षी है, जो बाहर भीतर प्रविष्ट हुआ शुभाशुभ कर्मों को देखता है, इसलिये गवाह कदापि असत्यभाषण न करे, और नाही कभी किसी को अन्य अशुभ कर्म में प्रवृत्त होना चाहिये ॥

देवब्राह्मणसान्निध्ये साक्ष्यं पृच्छेदृतं द्विजान् ।
उदङ्मुखान्प्राङ्मुखान्वा पूर्वाह्णे वै शुचिः शुचीन् ॥८८॥

पदा०—(देवब्राह्मणसान्निध्ये) देवता तथा ब्राह्मण के समीप (उदङ्मुखान्, वा, प्राङ्मुखान्) उत्तर अथवा पूर्व को मुख कराके (शुचीन्, द्विजान्) पवित्र द्विजातियों से (शुचिः) आप स्वस्थ चित्त हुआ वकील (पूर्वाह्णे) पूर्वाह्णे में (ऋतं, साक्ष्यं, पृच्छेत्) सत्य २ गवाही पूछे ॥

ब्रूहीति ब्राह्मणं पृच्छेत्सत्यं ब्रूहीति पार्थिवम् ।
गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥८९॥

पदा०—(ब्रूहि) "कहो" (इति) इस प्रकार (ब्राह्मणं) ब्राह्मण से (सत्यं, ब्रूहि, इति, पार्थिवं) "सत्य कहो" इस प्रकार क्षत्रिय से (गोबीजकाञ्चनैः, वैश्यं) "गाय, बीज तथा सुवर्ण के चुराने का तुम को पातक होगा यदि असत्य बोलोगे तो" इस प्रकार वैश्य से (तु) और (सर्वैः, पातकैः, शूद्रं) "सब पातक तुमको लगेंगे यदि असत्य बोलोगे " इस प्रकार कहकर शूद्र से (पृच्छेत्) पूछे ॥

ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोका ये च स्त्रीबालघातिनः ।
मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य ते ते स्युर्ब्रुवतो मृषा ॥९०॥

पदा०-(ये, लोकाः) जो अवस्था=दुर्गति (ब्रह्मघ्नः) ब्रह्महत्या करने वाले (स्त्रीबालघातिनः) स्त्री तथा बालक को मारने वाले (मित्रद्रुहः,कृतघ्नस्य) मित्रद्रोही और कृतघ्न की होती है (तेते, मृषा, ब्रुवतः, स्युः) वही दुर्दशा झूठ बोलने वाले की होती है अर्थात् झूठ बोलने वाला भी ब्रह्महत्या आदि के समान ही पाप का भागी होता है ॥

जन्मप्रभृति यत्किंचित्पुण्यं भद्र त्वया कृतम् ।
तत्ते सर्वं शुनो गच्छेद्यदि ब्रूयास्त्वमन्यथा ॥९१॥

पदा०-(भद्र) हे भद्र ! (यदि, त्वं, अन्यथा, ब्रूयाः) यदि तू इस विषय में अन्यथा कहे तो (त्वया) तैने (जन्मप्रभृति, यत्किंचित्, पुण्यं, कृतं) आयु भर जो कुछ पुण्य किया है (तत्, सर्वं, ते, शुनः, गच्छेत्) वह सब तेरा पुण्य कुत्ते पावें अर्थात् निष्फल जाय ॥

एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे ।
नित्यं स्थितस्ते हृद्येषः पुण्यपापेक्षिता मुनिः ॥९२॥

पदा०-(कल्याण) हे सुकर्म करने वाले ! (यत्, त्वं) जो तू (अहं, एकः, अस्मि) "मैं अकेला ही हूं" (इति) इसप्रकार (आत्मानं, मन्यसे) अपने को मानता है तो (ते) तेरे (हृदि) हृदय में (नित्यं) निरन्तर (पुण्यपापेक्षिता) पाप पुण्यों का देखने वाला (एषः, मुनिः) एक परमात्मा (स्थितः) स्थित है,

अर्थात यदि तू ऐसा माने कि मेरे पापकर्मों का देखने वाला मुझ से भिन्न कोई अन्य पुरुष नहीं तो याद रख वह सर्वव्यापक परमात्मा निरन्तर तेरे हृदय में स्थित हुआ पाप पुण्य को देखता है, इसलिये तुझे सत्यभाषण करना चाहिये ॥

यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः ।
तेन चेदविवादस्ते मा गंगां मा कुरून् गमः॥९३॥

पदा०—(यमः, वैवस्वतः, देवः) नियामक तथा दण्ड का देने वाला परमात्मा (यः) जो (एषः) यह (ते, हृदि, स्थितः) तेरे हृदय में स्थित है (चेत) यदि (तेन, सह) उसके साथ (ते) तुझे (अविवादः) विवाद नहीं है अर्थात सर्वव्यापक तथा शुभाशुभ कर्मों का फल देने वाला यदि तू परमात्मा को मानता है तो किये हुए पाप के प्रायश्चित्तार्थ (गङ्गां, वा, कुरून्, मा, गमः) गङ्गा अथवा कुरुदेशों को मत जा अर्थात गङ्गा में न्हाने तथा इधर उधर तीर्थों में घूमने से तेरे पाप कदापि नहीं छूटसक्ते॥

नग्नो मुण्डः कपालेन भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः ।
अन्धः शत्रुकुलं गच्छेद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥९४॥

पदा०—(यः) जो (साक्ष्यं, अनृतं, वदेत) साक्ष्य को अनृत कहे अर्थात जो झूठी गवाही देवे वह (नग्नः, मुण्डः, कपालेन) कपड़े से नङ्गा, सिर मुड़ा=स्त्री पुत्रादि ऐश्वर्य्य से हीन, कपाल हाथ में लिये (भिक्षार्थी) भीख मांगता हुआ (क्षुत्पिपासितः) क्षुधा पिपासा से पीडित, और (अन्ध, शत्रुकुलं, गच्छेत) अन्धा होकर शत्रुकुल में गमन करता अर्थात दुःखयोनि को प्राप्त होता है ॥

अवाक्शिरास्तमस्यन्धे किल्विषी नरकं व्रजेत ।
यःप्रश्नं वितथं ब्रूयात्पृष्टः सन् धर्मनिश्चये ॥ ९५ ॥

पदा०-(यः) जो (धर्मनिश्चये) धर्मनिर्णय के लिये (पृष्टः, सन्) पूछा हुआ (वितथं, प्रश्नं, ब्रूयात) झूठ प्रश्न कहे अर्थात् अनृत भाषण करे वह (किल्विषी) पापी (अवाक्शिराः, अन्धेतमसि, नरकं, व्रजेत) अधोमुख किये महा अन्धकाररूप नरक को प्राप्त होता है ॥

अन्धो मत्स्यानिवाश्नाति स नरः कण्टकैः सह ।
यो भाषतेऽर्थवैकल्यमप्रत्यक्षं सभा गतः ॥ ९६ ॥

पदा०-(यः) जो (सभां, गतः) सभा को प्राप्त हुआ अर्थात् सभा में जाकर (अर्थवैकल्यं, अप्रत्यक्षं, भाषते) धन के लोभ से विना देखी बात को कहता है (सः, नरः) वह मनुष्य (अन्धः) अन्धा होकर (कण्टकैः, सह)काटों सहित (मत्स्यान्, इव, अश्नाति) मछली सी खाता है ॥

यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशंकते ।
तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः॥९७॥

पदा०-(हि) निश्चयकरके (यस्य, वदतः) जिसके बोलते हुए (विद्वान्, क्षेत्रज्ञः) सुशिक्षित जीवात्मा (न, अभिशंकते) शङ्का नहीं करता अर्थात् जिसके कथन में पुरुष को संशय उत्पन्न नहीं होता (तस्मात) उससे अधिक (लोके) लोक में (देवाः) विद्वान् लोग (अन्यं, पुरुषं) अन्य पुरुष को (श्रेयांसं, न,

विदुः) श्रेष्ठ नहीं जानते अर्थात् स्पष्टवक्ता का लोक में मान होता है ॥

यावतो बान्धवान् यस्मिन् हन्ति साक्ष्येऽनृतं वदन् ।
तावतः संख्यया तस्मिन् शृणु सौम्यानुपूर्वशः ॥९८॥

पदा०-(सौम्य) हे श्रेष्ठ गुणसम्पन्न साक्षिन् ! (यस्मिन्, साक्ष्ये) जिस साक्ष्य=गवाही में (अनृतं, वदन्) झूठ बोलने वाला (यावतः, बान्धवान्, हन्ति) जितने बान्धवों का हनन करता है अर्थात् जितने बन्धुओं के मारने का फल पाता है (तस्मिन्) उस में (संख्यया, अनुपूर्वशः, शृणु) उनकी संख्या क्रमशः सुन ॥

सं०-अब झूठ बोलने वाले साक्षी के लिये फल कथन करते हैं:-

पंच पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥९९॥

पदा०-(पश्वनृते) पशुविषयक झूठ बोलने में (पंच, हन्ति) पांच बान्धवों के हनन का फल पाता है (गवानृते) गोविषयक झूठ बोलने में (दश, हन्ति) दश के हनन का (अश्वानृते) अश्व विषयक झूठ बोलने में (शतं,हन्ति) सौ के हनन का,और(पुरुषानृते, सहस्रं) पुरुषविषयक झूठ बोलने में हज़ार बान्धवों के हनन का पातक लगता है ॥

हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मास्म भूम्यनृतं वदीः ॥१००॥

पदा०-(हिरण्यार्थे, अनृतं, वदन्) सुवर्ण के लिये झूठ बोलने वाला (जातान्, च, अजातान्, हन्ति) उत्पन्न हुए तथा होने

वाले पुत्रादि बान्धवों के हनन का फल पाता है (भूम्यनृते) भूमि के लिये झूठ बोलने वाला (सर्वं, हन्ति) अपना सर्वस्व नाश करता है, इसलिये (भूम्यनृतं) भूमि के लिये झूठ (मास्म, वदीः) मत बोल ॥

अप्सु भूमिवदित्याहुः स्त्रीणां भोगे च मैथुने ।
अब्जेषु चैव रत्नेषु सर्वेष्वश्ममयेषु च ॥१०१॥

पदा०–(अप्सु) कुआं, तालाब आदि जलाशय विषयक (च) और (स्त्रीणां,भोगे, मैथुने) स्त्रियों के मैथुन भोग में (च) तथा (अब्जेषु, एव,रत्नेषु)जलोत्पन्न रत्नों के विषय में(च)और(अश्ममयेषु, सर्वेषु) हीरा आदि सम्पूर्ण पत्थरों के विषय में झूठ बोलने का (भूमिवत्, इति, आहुः) भूमि के समान पातक लगता है, इसलिये :—

एतान्दोषानवेक्ष्य त्वं सर्वाननृतभाषणे ।
यथाश्रुतं यथादृष्टं सर्वमेवाञ्जसा वद ॥१०२॥

पदा०–(त्वं) तू (अनृतभाषणे) झूठ बोलने में (एतान्,सर्वान्, दोषान्, अवेक्ष्य) इन पूर्वोक्त सब दोषों को देखकर (यथाश्रुतं, यथादृष्टं) जैसा सुना वा देखा हो (सर्वं, एव, अञ्जसा, वद) वैसा ही सब शीघ्र कहदे ॥

गोरक्षकान्वाणिजिकांस्तथा कारुकुशीलवान् ।
प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ॥१०३॥

पदा०–(गोरक्षकान्, वाणिजिकान्, तथा, कारुकुशीलवान्) गौपालन करने वाले, वैश्य, लुहार तथा बढ़ई का काम करने

वाले (प्रैष्यान्, वार्धुषिकान्, चैव, विप्रान्) रसोई आदि दास कर्म करने वाले और व्याज से जीवन निर्वाह करने वाले ब्राह्मणों को भी राजा (शूद्रवत्, आचरेत्) शूद्र के समान समझे ॥

त्रिपक्षादब्रुवन्साक्ष्यमृणादिषु नरोऽगदः ।
तदृणं प्राप्नुयात्सर्वं दशबन्धं च सर्वतः ॥१०४॥

पदा०—(अगदः, नरः) नीरोग पुरुष (त्रिपक्षात्) तीन पक्ष=डेढ़मास तक (ऋणादिषु, साक्ष्यं, अब्रुवन्) गवाही न देवे तो (तत्, सर्वं, ऋणं, प्राप्नुयात्) वह साहूकार का सम्पूर्ण ऋण देवे (च) और (सर्वतः, दशबन्धं) उस सबका दशवां भाग राजा को दण्ड देवे ॥

यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाक्यस्य साक्षिणः ।
रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमृणं दाप्यो दमं च सः॥१०५॥

पदा०—(यस्य, उक्तवाक्यस्य, साक्षिणः) जिस गवाही को देकर गये हुए साक्षी के (सप्ताहात्) सात दिन भीतर (रोगः, अग्निः, ज्ञातिमरणं, च, दृश्येत) रोग, अग्नि और पुत्रादि का मरण होजाय तो (सः) वह (ऋणं, दमं, दाप्यः) ऋणदाता को ऋण और राजा को दण्ड देवे, क्योंकि दैवीआपत्ति आना उस की झूठी गवाही देने का प्रमाण है ॥

असाक्षिकेषु त्वर्थेषु मिथो विवदमानयोः ।
अविन्दंस्तत्त्वतः सत्यं शपथेनापि लम्भयेत्॥१०६॥

पदा०—(तु) और (असाक्षिकेषु, अर्थेषु) गवाह रहित मुकद्दमों में (मिथः, विवदमानयोः) परस्पर झगड़ने वालों के

(तत्त्वतः, सत्यं, अविन्दन्) यथार्थ सत्य को न जानने पर राजा (शपथेन, अपि, लम्भयेत्) शपथ=हलफ़ से भी निर्णय करे ॥

न वृथा शपथं कुर्यात्स्वल्पेऽप्यर्थे नरो बुधः ।
वृथा हि शपथं कुर्वन् प्रेत्य चेह च नश्यति ॥१०७॥

पदा०—(बुधः, नरः) बुद्धिमान् पुरुष (स्वल्पे, अर्थे, अपि) थोड़े अर्थ में भी (वृथा, शपथं, न, कुर्यात्) मिथ्या शपथ न करे (हि) क्योंकि (वृथा, शपथं, कुर्वन्) झूठी शपथ करने वाला (प्रेत्य, च, इह, च, नश्यति) इसलोक तथा परलोक में नाश को प्राप्त होता है ॥

सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः ।
गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥१०८॥

पदा०—(विप्रं,सत्येन) ब्राह्मण को सत्य की (क्षत्रियं,वाहनायुधैः) क्षत्रिय को वाहन तथा आयुधों की (वैश्यं, गोबीजकाञ्चनैः) वैश्य को गाय, बैल, बीज तथा सुवर्ण की (तु) और (शूद्रं,सर्वैः, पातकैः) शूद्र को सम्पूर्ण पातकों की (शापयेत्) शपथ करावे ॥

यस्मिन्यस्मिन्विवादे तु कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत् ।
तत्तत्कार्यं निवर्तेत कृतं चाप्यकृतं भवेत् ॥१०९॥

पदा०—(यस्मिन्,यस्मिन्,विवादे) जिस २ विवाद=मुक़द्दमे में गवाहों ने (कौटसाक्ष्यं, कृतं, भवेत्) झूठी गवाही दी हो (तत्, तत्,कार्यं, निवर्तेत) उस २ कार्य=मुक़द्दमे को फिर से दोहरावे (च) और (कृतं, अपि, अकृतं, भवेत्) जो दण्डादि नियत कर दिया हो उसको नहीं किया हुआ समझे अर्थात् उस पर पुनः विचार करे ॥

लोभान्मोहाद्भयान्मैत्र्यात्कामात्क्रोधात्तथैव च ।
अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते॥११०॥

पदा०-(लोभात्, मोहात्, भयात्, मैत्र्यात्, कामात्) लोभ, मोह, भय, मित्रता, काम (तथा, एव, च, क्रोधात्, अज्ञानात्) तथा क्रोध,अज्ञान (च) और (बालभावात्) लड़कपन से (साक्ष्यं) गवाही दीहुई (वितथं, उच्यते) झूठी कही जाती है, अर्थात् इन अवस्थाओं में दी हुई गवाही का विश्वास न करे ॥

एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ।
तस्य दण्डविशेषांस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥१११॥

पदा०-(यः) जो (एषां, अन्यतमे, स्थाने, साक्ष्यं, अनृतं, वदेत्) इन पूर्वोक्त लोभादिकों में से किसी कारण से भी मुक़द्दमे में जो झूठी गवाही दे (तस्य) उसको आगे (अनुपूर्वशः) क्रमानुसार (दण्डविशेषान्, तु, प्रवक्ष्यामि) दण्डविशेष कथन करता हूं ॥

सं०-अब लोभादि वश गवाही देने वाले के लिये दण्ड का विधान करते हैं :-

लोभात्सहस्रं दण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वं तु साहसम् ।
भयाद् द्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्र्यात्पूर्वं चतुर्गुणम् ।११२।

पदा०-(लोभात्, सहस्रं) लोभ से झूठी गवाही देने वाले पर "हज़ारपण=१५॥=)" (मोहात्, पूर्वं, तु, साहसं) मोह से कहने वाले पर "प्रथमसाहस=३॥=)" (दण्ड्यः) दण्ड=जुरमाना करे (तु) और (भयात्, द्वौ, मध्यमौ, दण्डौ) भय से

ऋणं दातुमशक्तो यः कर्त्तुमिच्छेत् पुनः क्रियाम् ।
स दत्त्वा निर्जितां वृद्धिं करणं परिवर्त्तयेत् ॥१४२॥

पदा०—(यः, ऋणं, दातुं, अशक्तः) जो ऋण चुकाने में असमर्थ हो और (पुनः) फिर से (क्रियां, कर्त्तुं, इच्छेत्) हिसाब करना चाहे तो (सः) वह (निर्जितां, वृद्धिं, दत्त्वा) चढ़ा हुआ सूद देकर (करणं, परिवर्त्तयेत्) दूसरा करण=कार्य्य पत्र=तमस्सुक बदल देवे ॥

अदर्शयित्वा तत्रैव हिरण्यं परिवर्त्तयेत् ।
यावती सम्भवेद् वृद्धिस्तावतीं दातुमर्हति ॥१४३॥

पदा०—यदि (अदर्शयित्वा) सूद भी न देसके तो (हिरण्यं) सूद के धन को (तत्रैव, परिवर्त्तयेत्) मूलधन के कार्यपत्र=तमस्सुक पर ही जोड़ देवे, पुनः (यावती, वृद्धिः, सम्भवेत्) जितनी संख्या ब्याज सहित मूलधन की होवे (तावतीं) उतनी (दातुं, अर्हति) देने योग्य है ॥

चक्रवृद्धिं समारूढो देशकालव्यवस्थितः ।
अतिक्रामन्देशकालौ न तत्फलमाप्नुयात् ॥१४४॥

पदा०—(चक्रवृद्धिं, समारूढः) गाड़ी आदि द्वारा देश देशान्तर जाने से जो लाभ हो उसको महाजन (देशकाल-व्यवस्थितः) देशकाल के ठीक होने पर पावे और (अतिक्रामन्, देशकालौ) देशकाल के उलङ्घन होजाने पर (तत्, फलं) उस फल को (न, आप्नुयात्) प्राप्त न होवे, अर्थात् जिस देश

शूद्र इन तीनो वर्णों को (दण्डयित्वा, प्रवासयेत) दण्ड देकर देश से बाहर निकाल दे (तु) और (ब्राह्मणं, विवासयेत) ब्राह्मण को बिना दण्ड दिये ही देश से निकाल दे ॥

उपस्थमुदरंजिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम् ।
चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च ॥११६॥
अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः ।
सारापराधौ चालोक्य दण्डं दण्ड्येषु पातयेत् ॥११७॥

पदा०—(उपस्थं, उदरं, जिह्वा, हस्तौ, पादौ, चं, पञ्चमं) उपस्थेन्द्रिय उदर, जिह्वा, हाथ तथा पांचवें पैर (च) और (चक्षुः, नासा, च, कर्णौ, च, धनं, देहः, तथा, एव, च) चक्षु, नासिका, कान, धन तथा शरीर, यह दश दण्ड के स्थान क्षत्रियादि तीनों वर्णों को कथन किये हैं—इन सब के (अनुबन्धं, देशकालौ, च, तत्त्वतः, परिज्ञाय) प्रकरण तथा देश, काल को यथार्थतया जानकर (च) और (सारापराधौ) अपराधी के अपराध तथा बल को (आलोक्य) जांचकर (दण्ड्येषु, दण्डं, पातयेत) राजा दण्ड योग्यों को दण्ड देवे, अधर्म से नहीं, क्योंकि :—

अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्त्तिनाशनम् ।
अस्वर्ग्यश्च परत्रापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥११८॥

पदा०—(अधर्मदण्डनं) अधर्म से दिया हुआ दण्ड (लोके, यशोघ्नं, कीर्त्तिनाशनं) संसार में यश तथा कीर्त्ति का नाशक होता (च) और (परत्र, अपि) परलोक में भी (अस्वर्ग्यं) स्वर्ग का

बाधक होता है (तस्मात्) इसलिये (तत्, परिवर्जयेत्) अधर्म से कदापि किसी को दण्ड न दे ॥

अदण्ड्यान्दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन् ।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥११९॥

पदा०—(अदण्ड्यान्, दण्डयन्) अदण्डनीयों को दण्ड देने वाला (च) और (दण्ड्यान्, अपि, अदण्डयन्, एव) दण्ड योग्यों को छोड़ देने वाला (राजा) राजा (महत्, अयशः, आप्नोति) बड़े अपयश को पाता (च) तथा (नरकं, गच्छति) नरक को प्राप्त होता है ॥

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम् ।
तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतःपरम् ॥१२०॥
वधेनापि यदा त्वेतान्निग्रहीतुं न शक्नुयात् ।
तदैषु सर्वमप्येतत्प्रयुञ्जीत चतुष्टयम् ॥१२१॥

पदा०—(प्रथमं, वाग्दण्डं) अपराधी को प्रथम वाणी का दण्ड दे अर्थात् बुरा भला कहे (तदनन्तरं, धिग्दण्डं) तदनन्तर धिक् दण्ड (तृतीयं, धनदण्डं) तीसरी वार धन का दण्ड (तु) और (अतः,परं,वधदण्डं,कुर्यात्) पुनः चौथी वार वधदण्ड=देह का दण्ड देवे-(तु) और (यदा, एतान्) जब इन अपराधियों को (वधेन, अपि) वध से भी राजा (निग्रहीतुं, न, शक्नुयात्) वश न करसके (तदा) तब (एषु) इन पर (सर्वं, अपि, एतत्, चतुष्टयं, प्रयुञ्जीत) वाग्दण्डादि चारो दण्डों का प्रयोग करे ॥

लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि ।
ताम्ररूप्यसुवर्णानां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥१२२॥

पदा०—(ताम्ररूप्यसुवर्णानां) तांबा, चांदी तथा सुवर्णादिकों की (याः, संज्ञाः, भुवि, प्रथिताः) जो पणादि संज्ञा संसार में प्रसिद्ध हैं (ताः) उनका इस प्रकरण में उपयोग होने से (अशेषतः, प्रवक्ष्यामि) सम्पूर्णतया आगे कथन करूंगा ॥

सं०—अब "पण" आदि का परिमाण कथन करते हैं :—

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।
प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥ १२२ ॥

पदा०—(जालान्तरगते, भानौ) मकान के रोशन्दानों द्वारा निकलती हुई सूर्य्य की किरणों में (यत्, सूक्ष्मं, रजः, दृश्यते) जो सूक्ष्मरज=बारीक ज़र्रे दीखते हैं (तत्, प्रमाणानां, प्रथमं) इस माप के परिमाणों में पहिला परिमाण बुद्धिमान् (त्रसरेणुं, प्रचक्षते) "त्रसरेणु" कहते हैं ॥

त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिक्षैका परिमाणतः ।
ता राजसर्षपस्तिस्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः ॥१२३॥

पदा०—(अष्टौ, त्रसरेणवः) आठ त्रसरेणु के (परिमाणतः) परिमाण के बराबर (एका, लिक्षा) एक "लिक्षा" (विज्ञेया) जाननी चाहिये (ताः, तिस्रः, राजसर्षपः) उन तीन लिक्षाओं के बाराबर एक "राजसर्षप=राई" (ते, त्रयः) तीन राई के बराबर (गौरसर्षपः) एक "गौरसरसों" जाननी चाहिये ॥

सर्षपाः षड्यवो मध्यस्त्रियवं त्वेककृष्णलम् ।
पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥ १२४ ॥

पदा०—(तु) और (षट्सर्षपाः) छः सरसों का (मध्यः, यवः) एक "मध्यम जौ" (त्रियवं, एककृष्णलं) तीन मध्यम जौ का एक

"कृष्णल=रत्ती"(पञ्चकृष्णलकः,माषः)पांचकृष्णल का एक"माषा" (तु) और (ते, षोडश) सोलह माषों का (सुवर्णः) एक "सुवर्ण=मोहर" होता है ॥

पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश ।
द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः ॥ १२५ ॥

पदा०-(चत्वारः, सुवर्णाः, पलं) चार सवर्ण का एक" पल " (दश, पलानि, धरणं) दश पलों का एक" धरण" यह सुवर्ण की तोल जानों, और चांदी की तोल इस प्रकार है कि (समधृते, द्वे, कृष्णले) दो वरावर कृष्णल=रत्ती का (रौप्यमाषकः, विज्ञेयः) एक " रौप्यमाषक=चांदी का माषा " जानना चाहिये ॥

ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतः ।
कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः॥१२६॥

पदा०-(ते, षोडश) उन सोलह रौप्यमाषों का (राजतः, धरणं, चैव, पुराणः, स्यात्) एक " रौप्यधरण " अथवा एक " रौप्यपुराण=चांदी का पुराण" होता है (तु) और (ताम्रिकः, कार्षिकः) तांवे के कर्षभर को (कार्षापणः, पणः) "कार्षापण" अथवा " पण=पैसा " (विज्ञेयः) जानना चाहिये ॥

धरणानि दशज्ञेयः शतमानस्तु राजतः ।
चतुःसौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः॥१२७॥

पदा०-(तु) और (दश, धरणानि) दश धरण का (शतमानः, राजतः) एक " रौप्यशतमान=चांदी का शतमान " (ज्ञेयः)

जानना चाहिये (तु) तथा (प्रमाणतः, चतुःसौवर्णिकः) चार सुवर्णों के परिमाण के बराबर (निष्कः, विज्ञेयः) एक "निष्क" जानना चाहिये ॥

पणानां द्वे शते सार्धे प्रथमः साहसः स्मृतः ।
मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रं त्वेव चोत्तमः ॥१२८॥

पदा०—(पणानां, सार्धे, द्वे, शते) ढाईसौ पणों का (प्रथमः, साहसः, स्मृतः) एक "प्रथमसाहस" कहा है (तु) और (मध्यमः, पञ्च) पांच सौ पणों का एक "मध्यमसाहस" (च) तथा (सहस्रं, एव, उत्तमः,विज्ञेयः) हज़ार पणों का एक "उत्तमसाहस" जानना चाहिये, जिसकी गणना ११०।१११ श्लोकों में कर आये हैं ॥

सं०—अब व्याज=सूद लेने का कथन करते हैं:—

द्विकं शतं वा गृह्णीयात्सतां धर्ममनुस्मरन् ।
द्विकं शतं हि गृह्णानो न भवत्यर्थकिल्बिषी ॥१२९॥

पदा०—(सतां, धर्म,अनुस्मरन) सत्पुरुषों के धर्म का स्मरण करता हुआ (द्विकं, शतं, वा, गृह्णीयात) सैकड़े पर प्रतिमास दो रुपये सूद लेवे (हि) क्योंकि (द्विकं, शतं, गृह्णानः) दो रुपया सैकड़ा सूद लेने से (अर्थकिल्बिषी, न, भवति) पुरुष पापी नहीं होता है ॥

द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पञ्चकं च शतं समम् ।
मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ॥१३०॥

पदा०—(वर्णानां, अनुपूर्वशः) ब्राह्मणादि चारो वर्णों से

क्रमपूर्वक (द्विकं, त्रिकं, चतुष्कं, च, पञ्चकं, च) दो, तीन, चार तथा पांच रुपये (शतं, समं, मासस्य, वृद्धिं, गृह्णीयात्) सैकड़ा सूद प्रतिमास ग्रहण करे ॥

सं०-अब पदार्थ के गिरवी रखने पर सूद का वर्णन करते हैं:-

न त्वेवाधौ सोपकारे कौसीदीं वृद्धिमाप्नुयात् ।
न चाधेः कालसंरोधान्निसर्गोऽस्ति न विक्रयः॥१३१॥

पदा०-(सोपकारे, आधौ) भूमि, गौ, धन आदि भोगयुक्त पदार्थों की आधि=गिरवी में (कौसीदीं, वृद्धिं, ननु, आप्नुयात्) पूर्वोक्त ब्याज की वृद्धि को प्राप्त न करे(च)और(आधेः,कालसंरोधात्) गिरवी रक्खे हुए बहुत दिन होजाने अर्थात् नियत अवधि के व्यतीत होजाने पर भी (निसर्गः, विक्रयः, नास्ति) धनी उस गिरवी रक्खे हुए पदार्थ को स्वतन्त्रता से न बेचसकता और नाही अन्य को देसकता है ॥

न भोक्तव्यो बलादाधिर्भुञ्जानो वृद्धिमुत्सृजेत् ।
मूल्येन तोषयेच्चैनमाधिस्तेनोऽन्यथा भवेत् ॥१३२॥

पदा०-(आधिः, बलात्, न, भोक्तव्यः) साहूकार बलात्कार से गिरवी रखी हुई वस्तु को उपभोग में न लावे (भुञ्जानः, वृद्धिं, उत्सृजेत्) यदि भोगकरे तो ब्याज छोड़दे (च) अथवा (एनं, मूल्येन, तोषयेत्) गिरवी रखने वाले को उस पदार्थ का मूल्य देकर सन्तुष्ट करे (अन्यथा) अन्यथा (आधिस्तेनः,भवेत्) गिरवी का चुराने वाला होगा ॥

आधिश्चोपनिधिश्चोभौ न कालात्ययमर्हतः ।
अवहार्यौ भवेतां तौ दीर्घकालमवस्थितौ ॥१३३॥

पदा०-(आधिः, च, उपनिधिः, च) गिरवी रक्खा हुआ पदार्थ और अमानत पूर्वक उपभोग के लिये दिया हुआ पदार्थ (उभौ, कालात्ययं, न, अर्हतः) इन दोनों का नियतकाल व्यतीत होजाने पर भी देने वाले का स्वत्त्व नष्ट नहीं होता, और (तौ, दीर्घकालं, अवस्थितौ) दोनों अवस्थाओं में बहुतकाल तक रखे हुए पदार्थ को भी (अनहार्यौ, भवेतां) स्वामी जब चाहे तब ले सकता है ॥

संप्रीत्या भुज्यमानानि न नश्यन्ति कदाचन ।
धेनुरुष्ट्रो वहन्नश्वो यश्च दम्यः प्रयुज्यते ॥१३४॥

पदा०-(धेनुः, उष्ट्रः,वहन्, अश्वः) गाय, ऊंट, गाढ़ी,घोड़ा (च) और (यः, दम्यः, प्रयुज्यते) जो दमन करने वाले बैलादि गिरवी रखे हुए (संप्रीत्या, भुज्यमानानि) प्रीतिपूर्वक काम में लाये जायं तो (कदाचन, न, नश्यन्ति) कभी नष्ट नहीं होते अर्थात् इन पर से स्वामी का स्वामित्त्व नहीं जाता ॥

यत्किंचिद्दशवर्षाणि सन्निधौ प्रेक्षते धनी ।
भुज्यमानं परैस्तूष्णीं न स तल्लब्धुमर्हति ॥१३५॥

पदा०-(यत्,किञ्चित्)जिस किसी पदार्थ को (दशवर्षाणि) दश वर्ष तक (परैः, भुज्यमानं) अन्य लोग भोगते रहें, और (धनी) उस पदार्थ का स्वामी (सन्निधौ, तूष्णीं, प्रेक्षते) समीप में चुपचाप देखता रहे तो फिर (सः) वह (तत्, लब्धुं, न, अर्हति) उस धन के लेने को समर्थ नहीं अर्थात् वह फिर उस पदार्थ को नहीं पासक्ता ॥

अजडश्चेदपोगण्डो विषये चास्य भुज्यते ।
भग्नं तद्व्यवहारेण भोक्ता तद्द्रव्यमर्हति ॥१३६॥

पदा०-(चेत्) यदि (सः) उस पदार्थ का स्वामी (अजडः, अपौगण्डः) पागल नहो तथा न बालक हो (च) और (अस्य, विषये, भुज्यते) उसी के सन्मुख उस पदार्थ का अन्य पुरुष उपभोग करता रहे तो (तत्, व्यवहारेण, भग्नं) उस धन पर अदालत से उसका अधिकार नहीं रहता, प्रत्युत (भोक्ता, तत्, द्रव्यं, अर्हति) भोग करने वाला ही उस पदार्थ को प्राप्त होने योग्य है ॥

आधिः सीमा बालधनं निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः ।
राजस्वं श्रोत्रियस्वं च न भोगेन प्रणश्यति॥१३७॥

पदा०-(आधिः, सीमा, बालधनं, निक्षेपः, उपनिधिः, स्त्रियः) गिरवी, ग्रामादि की सीमा, बालक का धन, धरोहर, प्रीतिपूर्वक भोगार्थ दिया हुआ धन, स्त्री (राजस्वं, श्रोत्रियस्वं, च) राजा का धन और श्रोत्रिय ब्राह्मण का धन (भोगेन, न, प्रणश्यति) यह उपभोग से नष्ट नहीं होते अर्थात् इनको दशवर्ष तक भोगने से भी भोक्ता नहीं पासक्ता ॥

यः स्वामिनाननुज्ञातमाधिं भुङ्क्तेऽविचक्षणः ।
तेनार्धवृद्धिर्मोक्तव्या तस्य भोगस्य निष्कृतिः ॥१३८॥

पदा०-(यः,अविचक्षणः) जो निर्बुद्धि (स्वामिना,अननुज्ञातं) स्वामी की आज्ञा के विना (आधिं, भुङ्क्ते) गिरवी रक्खी हुई वस्तु को भोगता है तो (तस्य, भोगस्य, निष्कृतिः) उस भोग के बदले में (तेन, अर्द्धवृद्धिः, मोक्तव्या) उसे आधा व्याज छोड़ देना चाहिये ॥

कुसीदवृद्धिर्द्वैगुण्यं नात्येति सकृदाहृता ।
धान्ये सदे लवे वाह्ये नातिक्रामति पंचताम्॥१३९॥

पदा०-(कुसीदवृद्धिः, सकृत, आहृता) ऋण का सूद एक बार लेने पर मूल धन से (द्वैगुण्यं, न, अत्येति) द्विगुण से अधिक नहीं होता और (धान्ये, सदे, लवे, वाह्ये) अन्न, वृक्ष के मूल, फल, ऊन तथा बैल आदि वाहनों में (पञ्चतां, न, अतिक्रामति) ब्याज की वृद्धि मूलधन से पचगुनी से अधिक नहीं होती है ॥

कृतानुसारादधिका व्यतिरिक्ता न सिध्यति।
कुसीदपथमाहुस्तं पंचकं शतमर्हति ॥ १४० ॥

पदा०-(कृतानुसारात) शास्त्रविधि के अनुसार ठहराये हुए ब्याज से (व्यतिरिक्ता) अतिरिक्त (अधिका, न, सिध्यति) अधिक ब्याज नहीं लेसक्ता और (तं, कुसीदपथं, आहुः) उसी को ब्याज लेने का मार्ग=मर्यादा कहा है, अधिक से अधिक (पञ्चकं, शतं, अर्हति) पांच रुपये सैकड़ा प्रतिमास लेसक्ता है॥

नातिसांवत्सरीं वृद्धिं न चादृष्टां पुनर्हरेत्।
चक्रवृद्धिःकालवृद्धिःकारिता कायिका च या॥१४१॥

पदा०-(अतिसांवत्सरीं, पुनः, न, हरेत) जो मासिक, द्विमासिक अथवा त्रिमासिक सूद ठहरा हो उसको एक वर्ष तक समय २ पर ग्रहण करले, वर्ष व्यतीत होने पर ठहरे हुए काल नियम से ग्रहण न करे (च) और (या) जो (अदृष्टां, वृद्धिं) शास्त्र विरुद्ध ब्याज (चक्रवृद्धिः, कालवृद्धिः) सूद पर सूद, प्रत्येक मास सूदवृद्धि (कारिता, कायिका, च) सूद की अधिकता के कारण ऋणी पर दबाव से ऋण बढ़ाकर उस पर सूद तथा शरीर से कोई काम सूद में न करावे ॥

ऋणं दातुमशक्तो यः कर्त्तुमिच्छेत् पुनः क्रियाम् ।
स दत्त्वा निर्जितां वृद्धिं करणं परिवर्त्तयेत् ॥१४२॥

पदा०—(यः, ऋणं, दातुं, अशक्तः) जो ऋण चुकाने में असमर्थ हो और (पुनः) फिर से (क्रियां, कर्त्तुं, इच्छेत्) हिसाब करना चाहे तो (सः) वह (निर्जितां, वृद्धिं, दत्त्वा) चढ़ा हुआ सूद देकर (करणं, परिवर्त्तयेत्) दूसरा करण=कार्य्य पत्र=तमस्सुक बदल देवे ॥

अदर्शयित्वा तत्रैव हिरण्यं परिवर्त्तयेत् ।
यावती सम्भवेद् वृद्धिस्तावतीं दातुमर्हति ॥१४३॥

पदा०—यदि (अदर्शयित्वा) सूद भी न दे सके तो (हिरण्यं) सूद के धन को (तत्रैव, परिवर्त्तयेत्) मूलधन के कार्यपत्र=तमस्सुक पर ही जोड़ देवे, पुनः (यावती, वृद्धिः, सम्भवेत्) जितनी संख्या ब्याज सहित मूलधन की होवे (तावतीं) उतनी (दातुं, अर्हति) देने योग्य है ॥

चक्रवृद्धिं समारूढो देशकालव्यवस्थितः ।
अतिक्रामन्देशकालौ न तत्फलमाप्नुयात् ॥१४४॥

पदा०—(चक्रवृद्धिं, समारूढः) गाड़ी आदि द्वारा देश देशान्तर जाने से जो लाभ हो उसको महाजन (देशकाल-व्यवस्थितः) देशकाल के ठीक होने पर पावे और (अतिक्रामन्, देशकालौ) देशकाल के उलङ्घन होजाने पर (तत्, फलं) उस फल को (न, आप्नुयात्) प्राप्त न होवे, अर्थात् जिस देश

अथवा काल की प्रतिज्ञा अधमर्ण ने की है यदि वह उनको प्राप्त हो तो उससे प्रतिज्ञात धन महाजन लेसकता है, दैववशात् पूर्ण न होने पर नहीं लेसकता ॥

समुद्रयानकुशला देशकालार्थदर्शिनः ।
स्थापयन्ति तु यां वृद्धिं सा तत्राधिगमं प्रति॥१४५॥

पदा०—(देशकालार्थदर्शिनः) देशकाल तथा अर्थ के तत्त्व को जानने वाले (तु) और (समुद्रयानकुशलाः) समुद्र पथ के यान में निपुण महाजन (यां, वृद्धिं) जिस वृद्धि=व्याज को (स्थापयन्ति) नियत करते हैं (सा) वही नियत वृद्धि (तत्र, अधिगमं प्रति) उस लेने देने के विषय में प्रामाणिक है ॥

यो यस्य प्रतिभूस्तिष्ठेद्दर्शनायेह मानवः ।
अदर्शयन् स तं तस्य प्रयच्छेत्स्वधनादृणम्॥१४६॥

पदा०—(इह) इस व्यवहार में (यः, मानवः) जो पुरुष (यस्य) जिसके (दर्शनाय) उपस्थित=पेश करने के लिये (प्रतिभूः, तिष्ठेत्) जामिन होवे (सः) वह (तं) उस अधमर्ण को (अदर्शयन्) उपस्थित न करसके तो (स्वधनात्) अपने धन से (तस्य, ऋणं, प्रयच्छेत्) उसके ऋण को चुकावे ॥

प्रातिभाव्यं वृथादानमाक्षिकं सौरिकं च यत् ।
दण्डशुल्कावशेषञ्च न पुत्रो दातुमर्हति॥१४७॥

पदा०—(प्रातिभाव्यं) जामिन होने का रुपया (वृथादानं, आक्षिकं, सौरिकं) वृथादान, जुवे का, मद्य का (च) और (दण्डशु-

लकावशेषं) दण्ड तथा शुल्क=महसूल का शेष=कुछ बचा हुआ (यत्) जो रुपया हो उसको (पुत्रः, दातुं, न, अर्हति) पिता के मरने पर पिता के बदले पुत्र को नहीं देना चाहिये ॥

दर्शनप्रातिभाव्ये तु विधिः स्यात्पूर्वचोदितः ।
दानप्रतिभुवि प्रेते दायादानपि दापयेत् ॥१४८॥

पदा०–(तु) और (पूर्वचोदितः, विधिः) पूर्वोक्त विधि (दर्शनप्रातिभाव्ये, स्यात्) सामने उपस्थित कर देने की ही ज़मानत में हो, अर्थात् पिता ने यदि ऋणी को अदालत में उपस्थित करने की ज़मानत दी हो और उपस्थिति के नियत समय से प्रथम ही पिता मरजावे तो पुत्र उस ऋणी को उपस्थित करने का भागी नहीं होता, परन्तु (दानप्रतिभुवि, प्रेते) धन देने की ज़मानत करके पिता के मरजाने पर (दायादान्, अपि, दापयेत्) उसके दायभाग को प्राप्त पुत्रादिकों से ही राजा ऋण दिलावे ॥

अदातरि पुनर्दाता विज्ञातप्रकृतावृणम् ।
पश्चात्प्रतिभुवि प्रेते परीप्सेत् केन हेतुना ॥१४९॥

पदा०–(ऋणं, अदातरि) जिसने धन देने की ज़मानत न की हो केवल अधमर्ण=ऋणी को अदालत में उपस्थित कर देना ही स्वीकार किया हो और ज़ामिन की इस प्रतिज्ञा को (विज्ञातप्रकृतौ) अधमर्ण जानता हुआ (प्रतिभुवि, प्रेते, पश्चात्) ज़ामिन के मरणान्तर (पुनः) फिर (दाता) अधमर्ण

(केन, हेतुना, परीप्सेत) किस हेतु द्वारा ज़ामिन के पुत्रादिकों से ऋण चुकवाने की चेष्टा करे ? अर्थात् नहीं करसक्ता ॥

निरादिष्टधनश्चेत्तु प्रतिभूः स्यादलंधनः ।
स्वधनादेव तद्दद्यान्निरादिष्ट इति स्थितिः ॥१५०॥

पदा०—(तु) और (चेत्) यदि (प्रतिभूः) ज़ामिन को (निरादिष्टधनः, अलंधनः, स्यात्) अधमर्ण=धन लेनेवाला ऋण का रुपया सौंप गया है इसलिये ज़ामिन के समीप रुपया हो परन्तु लेनेवाले ने उत्तमर्ण=देने वाले को धन देने की आज्ञा न दी हो तो (निरादिष्टः) अधमर्ण से आज्ञा न पाया हुआ ज़ामिन (तत्, स्वधनात्, एव, दद्यात्) उस ऋण को अपने धन से ही चुकावे (इति, स्थितिः) यह शास्त्रमर्यादा है ॥

मत्तोन्मत्तार्त्ताध्यधीनैर्बालेन स्थविरेण वा ।
असम्बद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिध्यति ॥१५१॥

पदा०—(मत्तोन्मत्तार्ताध्यधीनैः, बालेन, स्थविरेण, वा) मादकद्रव्य से मत्त, उन्मत्त=पागल, व्याधि से पीड़ित, परतन्त्र, बालक, वृद्ध (असम्बद्धकृतः, चैव) पूर्वापर के विचार से रहित इन पुरुषों से किया हुआ (व्यवहारः, न, सिध्यति) व्यवहार प्रामाणिक नहीं माना जाता है ॥

सत्या न भाषा भवति यद्यपि स्यात्प्रतिष्ठिता ।
बहिश्चेद्भाष्यते धर्मान्नियताद्व्यावहारिकात् ॥१५२॥

पदा०—(चेत्) यदि (नियतात्, व्यावहारिकात्) शास्त्रोक्त व्यवहार तथा (धर्मात्, बहिः, भाष्यते) धर्म से विरुद्ध "अर्ज़ी वा इक़रारनामा" (यद्यपि, प्रतिष्ठिता, स्यात्) चाहे वह परस्पर

के अविरोध से ही लिखा गया हो (सता, भाषा, न, भवति) तब भी वह प्रामाणिक नहीं होता है ॥

योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम् ।
यत्र वाप्युपधिं पश्येत्तत्सर्वं विनिवर्त्तयेत् ॥१५३॥

पदा०—(योगाधमनविक्रीतं) छल से किये हुए गिरवी, विक्रय तथा (योगदानप्रतिग्रहं) छलपूर्वक लेना, देना (अपिवा) अथवा (उपधिं, यत्र, पश्येत) जिस व्यवहार में कपट ज्ञात हो (तत, सर्वं, विनिवर्त्तयेत) ऐसे दोष युक्त सम्पूर्ण व्यवहारों को राजा लौटा देवे ॥

ग्रहीता यदि नष्टः स्यात्कुटुम्बार्थे कृतो व्ययः ।
दातव्यं बान्धवैस्तत्स्यात्प्रविभक्तैरपि स्वतः॥१५४॥

पदा०—(कुटुम्बार्थे, व्ययः, कृतः) कुटुम्ब के लिये ऋण लेकर व्यय=खर्च करने वाला (ग्रहीता, यदि, नष्टः) ऋणी यदि मरजावे तो (प्रविभक्तैः, अपि, बान्धवैः) पृथक् २ हुए बान्धवों से भी (तत, स्वतः, दातव्यं, स्यात) वह ऋण स्वयं देने योग्य है अर्थात उस ऋण को सब मिलकर अपने २ धनों से चुकावें ॥

कुटुम्बार्थेऽध्यधीनोऽपि व्यवहारं यमाचरेत् ।
स्वदेशे वा विदेशे वा तं ज्यायान्न विचालयेत्॥१५५॥

पदा०—(कुटुम्बार्थे, अध्यधीनः, अपि) कुटुम्ब के निमित्त परतन्त्र पुत्रादि भी (स्वदेशे, वा, विदेशे, वा) अपने देश वा

विदेश में (यं, व्यवहारं, आचरेत्) जिस व्यवहार का आचरण करें (तं, न्यायान्, न, विचालयेत्) उसको उसका बड़ा=अधिष्ठाता विचलित न करे, अर्थात् मान लेवे ॥

बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तं बलाद्यच्चापि लेखितम्।
सर्वान्बलकृतानर्थानकृतान्मनुरब्रवीत् ॥१५६॥

पदा०—(बलात्, दत्तं, बलात्, भुक्तं) बलात्कार=ज़बरदस्ती से दिया हो अथवा बलात्कार से भोगा हो (च) और (यत्, अपि, लेखितं) जो कुछ बलात्कार से लिखाया हो (बलकृतान्, सर्वान्, अर्थान्) बलात्कार से कराये हुए सब कार्यों को (अकृतान्, मनुः, अब्रवीत्) नहीं किये के समान ही मनु ने कहा है ॥

त्रयः परार्थे क्लिश्यन्ति साक्षिणः प्रतिभूः कुलम्।
चत्वारस्तूपचीयन्ते विप्र आढ्यो वणिङ्नृपः॥१५७॥

पदा०—(साक्षिणः, प्रतिभूः, कुलं) गवाह, ज़ामिन और अपना कुल (त्रयः, परार्थे, क्लिश्यन्ति) यह तीनों दूसरे के निमित्त व्यवहार में क्लेश को प्राप्त होते हैं(तु)और(विप्रः,आढ्यः, वणिक्, नृपः) ब्राह्मण, धनी, वैश्य और राजा (चत्वारः) यह चार (उपचीयन्ते) बढ़ते हैं अर्थात् इन चारों को धनादि द्वारा लाभ होता है ॥

अनादेयं नाददीत परिक्षीणोऽपि पार्थिवः।
न चादेयं समृद्धोऽपि सूक्ष्ममप्यर्थमुत्सृजेत् ॥१५८॥

पदा०—(परिक्षीणः, अपि, पार्थिवः) धनादि ऐश्वर्य से क्षीण भी राजा (अनादेयं, नाददीत) न लेने योग्य धन तथा

अन्य पदार्थ को अन्याय से न लेवे (च) और (समृद्धः, अपि) अतिधनी भी राजा (आदेयं, सूक्ष्मं, अपि, अर्थं) लेने योग्य थोड़े से भी धन को (न, उत्सृजेत्) न छोड़े, क्योंकि :—

अनादेयस्य चादानादादेयस्य च वर्जनात् ।
दौर्बल्यं ख्याप्यते राज्ञः स प्रेत्येह च नश्यति॥१५९॥

पदा०—(अनादेयस्य, च, आदानात्) अयोग्य धन के लेने (च) और (आदेयस्य, वर्जनात्) लेनेयोग्य धन के छोड़ने से (राज्ञः, दौर्बल्यं, ख्याप्यते) राजा की निर्बलता प्रसिद्ध हो जाती (च) तथा (सः, इह, प्रेत्य, नश्यति) वह इस लोक और परलोक में नाश को प्राप्त होता है ॥

स्वादानाद्वर्णसंसर्गात्त्वबलानां च रक्षणात् ।
बलं संजायते राज्ञः स प्रेत्येह च वर्द्धते ॥१६०॥

पदा०—(स्वादानात्) न्यायानुकूल धन ग्रहण करने (वर्णसंसर्गात्) चारों वर्णों को नियम में ठीक २ रखनें (च) और (अबलानां, रक्षणात्) निर्बलों की रक्षा करने से (राज्ञः) राजा (बलं, संजायते) बल को प्राप्त होता तथा (सः) वह (इह, प्रेत्य, च, वर्द्धते) इस लोक और परलोक में वृद्धि को प्राप्त होता है ॥

तस्माद्यम इव स्वामी स्वयं हित्वा प्रियाप्रिये ।
वर्त्तेत याम्यया वृत्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥१६१॥

पदा०—(तस्मात्) इस लिये (स्वामी) राजा (यमः, इव) यमराज के समान (जितेन्द्रियः, जितक्रोधः) जितेन्द्रिय हो क्रोध को जीतकर (प्रियाप्रिये, स्वयं, हित्वा) अपने प्रिय तथा अप्रिय के विचार को त्याग के (याम्यया, वृत्त्या, वर्त्तेत) सब प्रजा

में यमवृत्ति=काल के समान वर्त्ते, अर्थात् किसी का पक्षपात न करे और नाही किसी से डरे ॥

यस्त्वधर्मेण कार्याणि मोहात्कुर्यान्नराधिपः ।
अचिरात्तं दुरात्मानं वशे कुर्वन्ति शत्रवः ॥१६२॥

पदा०—(यः, नराधिपः) जो राजा (मोहात्, अधर्मेण, कार्याणि, कुर्यात्) मोह के कारण अधर्म से कार्य करता है (तं, दुरात्मानं) उस दुष्टात्मा राजा को (अचिरात्, शत्रवः, वशे, कुर्वन्ति) शत्रु शीघ्र ही वश में कर लेते हैं ॥

कामक्रोधौ तु संयम्य योऽर्थान् धर्मेण पश्यति ।
प्रजास्तमनुवर्त्तन्ते समुद्रमिव सिन्धवः ॥१६३॥

पदा०—(तु) और (यः) जो राजा (कामक्रोधौ, संयम्य) काम, क्रोध को रोककर (अर्थान्, धर्मेण, पश्यति) कार्यों को धर्म पूर्वक देखता है (तं) उस राजा को (प्रजाः)प्रजा (अनुवर्त्तन्ते) इस प्रकार प्राप्त होती है (सिन्धवः, समुद्रं, इव) जैसे नदियां समुद्र को प्राप्त होतीं हैं ॥

यः साधयन्तं छन्देन वेदयेद्धनिकं नृपे ।
स राज्ञा तच्चतुर्भागं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥१६४॥

पदा०—(यः)जो ऋणी=देनदार(छन्देन,साधयन्तं,धनिकं,नृपे, वेदयेत्) स्वेच्छापूर्वक अपना रुपया नियत समय पर साधते= वसूल करने वाले धनिक की भी सूचना=शिकायत राजा से करे तो (सः) उस देनदार से (राज्ञा, तत्, चतुर्भागं) राजा मूल धन का चतुर्थांश दण्ड (च) और (तस्य, तत्, धनं, दाप्यः) उस उत्तमर्ण=धनिक का सब धन दिलावे ॥

कर्मणापि समं कुर्याद्धनिकायाधमर्णिकः ।
समोऽवकृष्टजातिस्तु दद्याच्छ्रेयांस्तु तच्छनैः ॥१६५॥

पदा०-(समः, अवकृष्टजातिः, तु) उत्तमर्ण की समान तथा अधम जाति वाला (अधमर्णिकः) अधमर्ण (धनिकाय) धनी के लिये (कर्मणा, अपि) शरीर से काम करके भी (समं,कुर्यात्) ऋण चुका देवे (तु) परन्तु (तत्, श्रेयान्, शनैः, दद्यात्) उत्तमर्ण से उच्च जातिवाला अधमर्ण धीरे२ धन देकर ऋण चुकावे ॥

अनेन विधिना राजा मिथो विवदतां नृणाम् ।
साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्याणि समतां नयेत् ॥१६६॥

पदा०-(राजा) राजा (मिथः, विवदतां, नृणां) परस्पर झगड़ने वाले मनुष्यों के (कार्याणि) मुकद्दमों को (साक्षिप्रत्ययसिद्धानि) विश्वास युक्त गवाही तथा लेखादिकों से (अनेन, विधिना) इस पूर्वोक्त विधि द्वारा (समतां, नयेत्) बराबर करे अर्थात् न्यायानुकूल ठीक २ परिणाम निकाले ॥

सं०-अब धरोहर रखने योग्य पुरुष का वर्णन करते हैं:—

कुलजे वृत्तसम्पन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि ।
महापक्षे धनिन्यार्ये निक्षेपं निक्षिपेद्बुधः ॥१६७॥

पदा०-(कुलजे) कुलीन (वृत्तसम्पन्ने, धर्मज्ञे, सत्यवादिनि) सदाचारी, धर्मात्मा, सत्यवादी (महापक्षे, धनिनि, आर्ये) बड़े कुटुम्ब वाले, धनी तथा आर्य=श्रेष्ठ पुरुष के समीप (बुधः, निक्षेपं, निक्षिपेत्) विचारशील धरोहर रक्खे ॥

यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य मानवः ।
स तथैव ग्रहीतव्यो यथादायस्तथा ग्रहः ॥१६८॥

पदा०-(यः, मानवः) जो मनुष्य (यथा) जिसप्रकार (यं, अर्थं) जिस धन को (यस्य, हस्ते, निक्षिपेत्) जिसके हाथ में देवे (सः, तथा, एव, ग्रहीतव्यः) वह उसी प्रकार उस द्रव्य को ग्रहण करे, क्योंकि (यथा, दायः, तथा, ग्रहः) जैसा देना तैसा लेना होता है ॥

यो निक्षेपं याच्यमानो निक्षेप्तुर्न प्रयच्छति ।
स याच्यः प्राड्विवाकेन तन्निक्षेप्तुरसन्निधौ ॥१६९॥

पदा०-(यः, निक्षेप्तुः, निक्षेपं, याच्यमानः) जो धरोहर रखने वाले की धरोहर को मांगने पर (न, प्रयच्छति) न देवे तो (तत्, निक्षेप्तुः, असन्निधौ) उस रखने वाले के पीछे (सः, प्राड्विवाकेन, याच्यः) उस धरोहर न देने वाले धनिक से प्राड्विवाक=वकील धरोहर मांगे ॥

साक्ष्यभावे प्रणिधिभिर्वयोरूपसमन्वितैः ।
अपदेशैश्च संन्यस्य हिरण्यं तस्य तत्त्वतः ॥१७०॥

पदा०-(साक्ष्यभावे) यदि धरोहर रखने वाले का कोई साक्षी न हो तो (वयोरूपसमन्वितैः, प्रणिधिभिः, अपदेशैः, च) अवस्था और रूप से भले प्रतीत होने वाले तथा अनेक बहाने जानने वाले दूतों द्वारा (तस्य) उस धरोहर धारी के समीप (तत्त्वतः, हिरण्यं, संन्यस्य) निक्षेप की रीति अनुसार और धन रखवा कर वकील पुनः मांगे ॥

स यदि प्रतिपद्येत यथान्यस्तं यथाकृतम् ।
न तत्र विद्यते किञ्चिद्यत्परैरभियुज्यते ॥ १७१ ॥

पदा०–(यदि) यदि (सः) वह वकील (यथा, न्यस्तं, यथा, कृतं, प्रतिपद्येत) ज्यों की त्यों अपनी रखाई हुई धरोहर पालेवे तो जानना चाहिये कि (यत्, परैः, अभियुज्यते) अन्य मनुष्यों ने जो धरोहर न देने का अभियोग चलाया है (तत्र, किञ्चित्, न, विद्यते) उनका उस पर कुछ नहीं चाहिये ॥

तेषां न दद्याद्यदितु तद्धिरण्यं यथाविधि ।
उभौ निगृह्यदाप्यः स्यादिति धर्मस्य धारणा ॥१७२॥

पदा०–(यदि; तु) और यदि (तेषां) उन दूतों का (तत्, हिरण्यं) वह धन (यथाविधि, न, दद्यात्) ज्यों का त्यों न देवे तो (निगृह्य, उभौ, दाप्यः, स्यात्) उस निक्षेपधारी को पकड़कर दोनों धरोहर दिलावे अर्थात् पहिला अभियोग भी ठीक माने तथा दण्ड देवे(इति, धर्मस्य, धारणा)यह धर्ममर्यादा है ॥

निक्षेपोपनिधी नित्यं न देयौ प्रत्यनन्तरे ।
नश्यतो विनिपातेतावनिपातेत्वनाशिनौ ॥१७३॥

पदा०–(निक्षेपोपनिधी) धरोहर तथा उपभोगार्थ दिया हुआ धन (प्रत्यनन्तरं नित्यं,न,देयौ) मरणान्तर उसके वारिसों को धनी न दे, क्योंकि (विनिपाते, नश्यतः) यदि धरोहर वा मंगनी देने वाला अपने सम्बन्धियों से विना कहे ही मर जावे तो निक्षेप तथा उपनिधि भी नष्ट होजाते हैं (तु) और (अनिपाते, तौ, अनाशिनौ) उसके जीते रहने पर वह दोनों भी नाश नहीं होतीं ॥

स्वयमेव तु यो दद्यान्मृतस्य प्रत्यनन्तरे ।
न स राज्ञा नियोक्तव्यो न निक्षेप्तुश्च बन्धुभिः ॥१७४॥

पदा०—(तु) और (यः) जो पुरुष (मृतस्य, प्रत्यनन्तरे) मरे हुए के सम्बन्धियों को (स्वयं, एव, दद्यात्) स्वयं ही धरोहर तथा उपनिधि देदे तो (सः) उसके लिये (राज्ञा, निक्षेप्तुः, च, बन्धुभिः) राजा तथा धरोहर धरने वाले के बन्धु आदिकों को (न, नियोक्तव्यः) कुछ रोकटोक नहीं करनी चाहिये ॥

अच्छलेनैव चान्विच्छेत्तमर्थं प्रीतिपूर्वकम् ।
विचार्य तस्य वा वृत्तं साम्नैव परिसाधयेत् ॥१७५॥

पदा०—निक्षेपक का पुत्र (तं, अर्थं) उस धरोहर तथा उपनिधि के धन को (प्रीतिपूर्वकं, अच्छलेन, एव, अन्विच्छेत्) प्रीतिपूर्वक छल, कपट से रहित होकर लेने की इच्छा करे (च) और (तस्य, वृत्तं, वा, विचार्य) उसके आचार को भले प्रकार विचार कर (साम्ना, एव, परिसाधयेत्) शान्तिपूर्वक ही अपना कार्य साधे ॥

निक्षेपेष्वेषु सर्वेषु विधिः स्यात्परिसाधने ।
समुद्रे नाप्नुयात्किञ्चिद्यदि तस्मान्न संहरेत् ॥१७६॥

पदा०—(एषु, सर्वेषु, निक्षेपेषु) इन सब धरोहरों के (विधिः, परिसाधने, स्यात्) वसूल करने में यह पूर्वोक्त विधि करे और (समुद्रे) मुद्रा=मुहर आदि किसी चिन्ह सहित धरोहर रखने पर (यदि, तस्मात्, न, संहरेत्) यदि उस मुहर का हरण न करे तो (किञ्चित्, न, आप्नुयात्) थोड़ी शङ्का करना भी ठीक नहीं ॥

चौरैर्हृतं जलेनोढमग्निना दग्धमेव वा ।
न दद्याद्यदि तस्मात्स न संहरति किञ्चन ॥१७७॥

पदा०—(यदि, सः) यदि उस धरोहरधारक ने (तस्मात्, न, किञ्चन, संहरति) उस धरोहर में से कुछ भी न लिया हो और उसको (चौरैः, हृतं) चौर चुरा लेवें (जलेन, ऊढं) जल से बह जावे (वा) अथवा (दग्धं, एव) अग्नि लगने से जल जावे तो (न,दद्यात्) उसके बदले में धरोहरधारक कुछ न देवे ॥

निक्षेपस्यापहर्त्तारमनिक्षेप्तारमेव च ।
सर्वैरुपायैरन्विच्छेच्छपथैश्चैव वैदिकैः ॥ १७८ ॥

पदा०—(निक्षेपस्य, अपहर्त्तारं) धरोहर के हरण करने वाले (च) और (अनिक्षेप्तारं, एव) धरोहर विना रक्खे यों ही मांगने वाले का राजा (सर्वैः, उपायैः) सामादि सम्पूर्ण उपायों (च) तथा (वैदिकैः, शपथैः, एव) वैदिक शपथों से (अन्विच्छेत्) निश्चय करे ॥

यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते ।
तावुभौ चौरवच्छास्यौ दाप्यौ वा तत्समं दमम्॥१७९॥

पदा०—(यः, निक्षेपं, न, अर्पयति) जो धरोहर नहीं देता (च) और (यः, अनिक्षिप्य, याचते) जो विना रक्खे मांगता है (तौ, उभौ) वह दोनों (चौरवत्, शास्यौ) चौर के समान दण्ड योग्य हैं (वा) अथवा (तत्, समं, दमं, दाप्यौ) उस धन के बराबर जुर्माना देने योग्य हैं ॥

निक्षेपस्यापहर्त्तारं तत्समं दापयेद्दमम् ।
तथोपनिधिहर्त्तारमविशेषेण पार्थिवः ॥ १८० ॥

पदा०—(पार्थिवः) राजा (निक्षेपस्य, हर्त्तारं) धरोहर के हरण करने वाले से (तत्, समं, दमं, दापयेत्) उस धन के समान दण्ड दिलावे (तथा) उसी प्रकार (उपनिधिहर्त्तारं, अविशेषेण) उपनिधि=प्रीति से उपभोगार्थ दिया हुआ धन वा गिरवी रखे हुए धन को हरण करने वाले से भी उस धन के समान ही दण्ड देवे ॥

उपधाभिश्च यः कश्चित्परद्रव्यं हरेन्नरः ।
ससहायः स हन्तव्यः प्रकाशं विविधैर्वधैः ॥१८१॥

पदा०—(यः, कश्चित, नरः) जो कोई मनुष्य (उपधाभिः, परद्रव्यं, हरेत) छल, कपट से दूसरे के धन का हरण करे तो (सः) उसको राजा (प्रकाशं, विविधैः, वधैः) सबके समक्ष में अनेक प्रकार के कष्टों वाला (ससहायः, हन्तव्यः) सहायकों सहित दण्ड देवे ॥

निक्षेपो यः कृतो येन यावांश्च कुलसन्निधौ ।
तावानेव स विज्ञेयो विब्रुवन्दण्डमर्हति ॥ १८२ ॥

पदा०—(यः, येन, यावान्) जो जिस ने जितना (कुलसन्निधौ, निक्षेपः, कृतः) साक्षियों के समक्ष में धरोहर रखा हो (तावान्, एव, सः, विज्ञेयः) वह उसको उतना ही अपना जाने (विब्रुवन्, दण्डं, अर्हति) अन्यथा कहने वाला दण्ड के योग्य होता है ॥

मिथो दायः कृतो येन गृहीतो मिथ एव वा।
मिथ एव प्रदातव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः ॥१८३॥

पदा०-(येन) जिसने (मिथः, दायः, कृतः) आपस में अकेले धरोहर रक्खी हो (वा) और (मिथः, एव, गृहीतः) आपस में ही अकेले लेने वाले ने ली हो तो पुनः (मिथः, एव, प्रदातव्यः) आपस में ही देनी चाहिये, क्योंकि (यथा, दायः, तथा, ग्रहः) जैसा देना तैसा लेना होता है॥

निक्षिप्तस्य धनस्यैवं प्रीत्योपनिहितस्य च।
राजा विनिर्णयं कुर्यादक्षिण्वन्न्यासधारिणम्॥१८४॥

पदा०-(निक्षिप्तस्य) धरोहर रक्खे हुए (च) तथा (प्रीत्या, उपनिहितस्य) प्रीतिपूर्वक सौंपे हुए (धनस्य) धन का (राजा) राजा (न्यासधारिणं, अक्षिण्वन्) धरोहरधारी को पीड़ा न देता हुआ (एवं, विनिर्णयं, कुर्यात्) इसका पूर्वोक्त प्रकार से निर्णय करे॥

सं०-अब अन्य की वस्तु बेचने का व्यवहार वर्णन करते हैं:-

विक्रीणीते परस्य स्वं योऽस्वामी स्वाम्यसम्मतः।
न तं नयेत साक्ष्यं तु स्तेनमस्तेनमानिनम्॥१८५॥

पदा०-(स्वाम्यसम्मतः) स्वामी की आज्ञा के बिना (यः, अस्वामी) जो स्वामी बनकर (परस्य, स्वं, विक्रीणीते) दूसरे के पदार्थ को बेचता है (अस्तेनमानिनं, तं, स्तेनं) अपने को चोर न मानने वाले उस चोर को (साक्ष्यं, न, नयेत) साक्षी न बनावे॥

अवहार्यो भवेच्चैव सान्वयः षट्शतं दमम्।
निरन्वयोऽनपसरः प्राप्तः स्याच्चौरकिल्विषम् ॥१८६॥

पदा०-(च) और जो वेचने वाला (सान्वयः, भवेत)
स्वामी के कुल का हो तो (षट्, शतं, दमं, अर्हार्य्यः)
छः सौ पण दण्ड देने योग्य है और यदि (निरन्वयः, अनपसरः,
प्राप्तः) वंश का न हो तथा वेचने के लिये प्रतिनिधि भी
न बनाया गया हो तो (चौरकिल्विषं, स्यात) चौर के
समान दण्ड पाने योग्य है ॥

अस्वामिनी कृतो यस्तु दायो विक्रय एव वा ।
अकृतः स तु विज्ञेयो व्यवहारे यथा स्थितिः॥१८७॥

पदा०-(अस्वामिना) विना स्वामी (यः, तु, दायः,विक्रयः,
एव, वा, कृतः, तु) जो किसी को दिया लिया अथवा वेचा हो
तो (सः) वह (व्यवहारे, यथा, स्थितिः) व्यवहार में जैसी
मर्यादा हो उसके अनुसार (अकृतः, विज्ञेयः) नहीं किया हुआ
ही जाना जावेगा अर्थात् व्यवहार की मर्यादानुसार दिया अथवा
वेचा हुआ नहीं समझना चाहिये ॥

सम्भोगो दृश्यते यत्र न दृश्येतागमः क्वचित् ।
आगमः कारणं तत्र न सम्भोग इति स्थितिः॥१८८॥

पदा०-(यत्र, सम्भोगः, दृश्यते) जिस वस्तु में उपभोग
दीखता हो और (आगमः, न, क्वचित, दृश्यते) आने का
प्रमाण कहीं से भी ज्ञात न होता हो तो (तत्र,आगमः, कारणं)
उसमें आगम कारण होता है (न, सम्भोगः) सम्भोग नहीं
(इति, स्थितिः) ऐसी शास्त्रमर्यादा है ॥

विक्रयाद्यो धनं किञ्चिद् गृह्णीयात्कुलसन्निधौ ।
क्रयेण स विशुद्धं हि न्यायतो लभते धनम्॥१८९॥

पदा०—(यः) जो पुरुष (कुलसन्निधौ) बहुत मनुष्यों के समक्ष में (किञ्चित्, धनं) किसी पदार्थ को (विक्रियात्, गृह्णीयात्) बाज़ार से मोल लेलेवे तो (सः) वह (हि) निश्चयपूर्वक (क्रयेण, विशुद्धं) मोल लेना सिद्ध करके (न्यायतः, धनं, लभते) राजा के न्यायानुकूल उस धन को पाता है ॥

अथ मूलमनाहार्यं प्रकाशक्रयशोधितः ।
अदण्ड्यो मुच्यते राज्ञा नाष्टिको लभते धनम् ॥१९०॥

पदा०—(अथ) और (प्रकाशक्रयशोधितः) प्रत्यक्ष मोल लेने वाला शुद्ध पुरुष (मूलं, अनाहार्यं) मूल धन को नहीं पचा सक्ता तथा (राज्ञा, अदण्ड्यः, मुच्यते) राजा से भी दण्ड पाने योग्य नहीं होता, परन्तु (नाष्टिकः, धनं, लभते) नष्ट धन का स्वामी उस धन को मोल लेने वाले से अवश्य पाता है ॥

सं०—अब सर्वसाधारण के लिये बेचने का प्रकार कथन करते हैं:—

नान्यदन्येन संसृष्टरूपं विक्रयमर्हति ।
न चासारं नच न्यूनं न दूरेण तिरोहितम् ॥१९१॥

पदा०—(अन्येन, संसृष्टरूपं, अन्यत्) दूसरी वस्तु से मिली हुई अन्य किसी वस्तु को (असारं) तत्त्व रहित अर्थात् सड़ी हुई को (न्यूनं) किसी पदार्थ को नियत परिमाण से कम तोल कर (च) और (दूरेण, तिरोहितं) दूर से छिपे हुए पदार्थ को (नच, विक्रयं, अर्हति) नहीं बेचना चाहिये ॥

सं०—अब ऋत्विगादिकों को दक्षिणा का विधान करते हैं:—

ऋत्विग्यदि वृतो यज्ञे स्वकर्म परिहापयेत् ।
तस्य कर्मानुरूपेण देयोंऽशः सहकर्तृभिः ॥१९२॥

पदा०—(यज्ञे, वृत्तः, ऋत्विक्) यज्ञ कर्म में वरण=स्वीकार किया हुआ ऋत्विक् (यदि, स्वकर्म, परिहापयेत्) यदि रोगादि वशात् अपना कर्म कुछ करके छोड़दे तो (तस्य, कर्मानुरूपेण) उसके काम के बराबर (कर्तृभिः, सह, अंशः, देयः) अन्य कार्य कर्त्ताओं के साथ ही उसको भाग देना चाहिये ॥

दक्षिणासु च दत्तासु स्वकर्म परिहापयन् ।
कृत्स्नमेव लभेतांशमन्येनैव च कारयेत् ॥ १९३ ॥

पदा०—(च) और (दक्षिणासु, दत्तासु) माध्यंदिन वा सवन आदि में कुछ दक्षिणा देने के उपरान्त (स्वकर्म, परिहापयन्) रोगादि के कारण अपने कार्य को समाप्त न करता हुआ (कृत्स्नं, एव, अंशं, लभेत) सम्पूर्ण दक्षिणा पावे (च) और (अन्येन, एव, कारयेत) उस कार्य को अन्य से पूर्ण करा देवे ॥

यस्मिन्कर्मणि यास्तु स्युरुक्ताः प्रत्यंगदक्षिणः ।
स एव ता आददीत भजेरन्सर्व एव वा ॥ १९४ ॥

पदा०—(यस्मिन्, कर्मणि) जिस कर्म में (याः, तु, प्रत्यङ्गदक्षिणाः) जो अङ्ग २ के प्रति दक्षिणा (उक्ताः, स्युः) कही हों (ताः, सः, एव, आददीत) उनको वही स्वीकृत प्रधान ऋत्विक् ग्रहण करले (वा) अथवा (सर्वे, एव, भजेरन्) सब विभाग करके ग्रहण करलें ॥

रथं हरेत चाध्वर्युर्ब्रह्माधाने च वाजिनम् ।
होता वापि हरेदश्वमुद्गाता चाप्यनः क्रये ॥१९५॥

पदा०—(आधाने) यज्ञ में (अध्वर्युः) अध्वर्यु (रथं) रथ को (च) और (ब्रह्मा, वाजिनं) ब्रह्मा घोड़े को (अपि, वा)

तथा (होता, अर्धं, अपि) होता भी घोड़े की दक्षिणा को (हरेत्) ग्रहण करे (अपि, च) और (अनः, क्रये, उद्गाता, हरेत्) उद्गाता सोमक्रय धारण करने के लिये गाड़ी को ग्रहण करे॥

सर्वेषामर्धिनो मुख्यास्तदर्धेनार्धिनोऽपरे ।
तृतीयिनस्तृतीयांशाश्चतुर्थांशाश्चपादिनः ॥ १९६ ॥

पदा०—(सर्वेषां, मुख्याः) सम्पूर्ण याज्ञिकों के मध्य में मुख्य चार ऋत्विक् (अर्धिनः) दक्षिणा का आधा भाग लेवें (अपरे) दूसरे चार (तत्, अर्धेन, अर्धिनः) उस आधे भाग में से आधा भाग (तृतीयिनः, तृतीयांशाः) तीसरे चार तिहाई दक्षिणा को (च) और (पादिनः, चतुर्थांशाः) चौथे चार दक्षिणा के चतुर्थ भाग को ग्रहण करें, एवं सोलह ऋत्विक् होते हैं॥

सम्भूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिरिह मानवैः ।
अनेन विधियोगेन कर्त्तव्यांशप्रकल्पना ॥१९७॥

पदा०—(इह) इस यज्ञ कर्म में (सम्भूय, स्वानि, कर्माणि कुर्वद्भिः, मानवैः) मिलकर अपने २ कार्य्य करने वाले मनुष्यों को (अनेन, विधियोगेन) पूर्वोक्त विधि के अनुसार (अंशप्रकल्पना, कर्त्तव्या) अपने २ भागों २ का बांट करना चाहिये॥

सं०—अब दान किये हुए धन का पुनः दान करना निषेध करते हैं:—

धर्मार्थं येन दत्तंस्यात्कस्मैचिद्याचतेधनम् ।
पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्नदेयं तस्य तद्भवेत् ॥१९८॥

पदा०-(येन) जिसने (कस्मैचित्, याचते) किसी मांगने वाले के लिये (धर्मार्थं, धनं, दत्तं, स्यात्) धर्मार्थ धन दे दिया हो तो (पश्चात्, तत्र, तथा, नच, स्यात्) पुनः उस दान किये हुए धन को दुबारा दान नहीं करसक्ता, क्योंकि (तत, देयं, तस्य, न, भवेत्) वह दिया हुआ धन उसका नहीं है ॥

यदि संसाधयेत्तत्तु दर्पाल्लोभेन वा पुनः ।
राज्ञा दाप्यः सुवर्णस्यात्तस्यास्तेयस्यनिष्कृतिः ॥१९९॥

पदा०-(यदि, तु) और यदि (पुनः, दर्पात्, लोभेन, वा) देने के पश्चात् अहङ्कार अथवा लोभ से (तत्, संसाधयेत्) उस धन को लेलेवे तो (राज्ञा) राजा (तस्य, स्तेयस्य, निष्कृतिः) उस चौरीरूप अपराध के बदले (सुवर्णं, दाप्यः, स्यात्) सुवर्ण का दण्ड देवे ॥

दत्तस्यैषोदिता धर्म्या यथावदनपक्रिया ।
अतऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वेतनस्यानपक्रियाम् ॥२००॥

पदा०-(एषा, दत्तस्य) इस दिये हुए धन के (अनपक्रिया) फिर उपयोग न करने का (यथावत्, धर्म्या, उदिता) ठीक २ धर्मानुकूल निर्णय करके (अतः, ऊर्ध्वं) इससे आगे (वेतनस्य, अनपक्रियां) वेतन न देने का निर्णय (प्रवक्ष्यामि) कहता हूं ॥

सं०-अब वेतन विषयक विधान करते हैं:—

भृतो नार्त्तो न कुर्याद्यो दर्पात्कर्म यथोदितम् ।
स दण्ड्यः कृष्णलान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम् ॥२०१॥

पदा०-(यः, न, आर्त्तः, भृतः) जो नीरोग नोकर (दर्पात्) अहङ्कार से (यथोदितं, कर्म, न, कुर्यात्) स्वामी से कहे हुए काम

को न करे तो (सः, अष्टौ, कृष्णलानि, दण्ड्यः) वह आठ कृष्णल दण्ड पाने योग्य है (च) और (अस्य, वेतनं, न, देयं) इसका वेतन नहीं देना चाहिये ॥

आर्त्तस्तु कुर्यात्स्वस्थः सन्यथा भाषितमादितः ।
स दीर्घस्यापि कालस्य तल्लभेतैव वेतनम् ॥२०२॥

पदा०—(तु) और (आर्त्तः) रोगी नौकर (स्वस्थः,सन्) नीरोग होजाने पर (यथा, भाषितं, आदितः, कुर्यात्) स्वामी की आज्ञानुसार पूर्णतया कार्य करता रहे तो (सः) वह नौकर (दीर्घस्य, अपि, कालस्य) रुग्णावस्था में व्यतीत हुए बहुत काल के भी (तत्, वेतनं, लभेत, एव) उस वेतन को अवश्य पाने योग्य है ॥

यथोक्तमार्त्तः स्वस्थो वा यस्तत्कर्म न कारयेत् ।
न तस्य वेतनं देयमल्पोनस्यापि कर्मणः ॥२०३॥

पदा०—(यः, आर्त्तः) जो रोगी भृत्य (यथोक्तं, तत्, कर्म) ठहरे हुए काम को ठीक २ (न, कारयेत्) दूसरे से न कराये (वा) अथवा (स्वस्थः) नीरोग हुआ स्वयं भी न करे तो (अल्पोनस्य, अपि, कर्मणः) चाहे थोड़ा ही कार्य शेष रहा हो तो भी स्वामी को (तस्य, वेतनं, न, देयं) उसका वेतन नहीं देना चाहिये ॥

एष धर्मोऽखिलेनोक्तो वेतनादानकर्मणः ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धर्मं समयभेदिनाम् ॥२०४॥

पदा०—(वेतनादानकर्मणः) वेतन देने के विषय में (एषः, धर्मः) यह धर्म (अखिलेन, उक्तः) सम्पूर्णतया कहागया (अतः,

ऊर्ध्वं) अब इससे आगे (समयभेदिनां, धर्मं) प्रतिज्ञा भङ्ग करने वालों के धर्म को (प्रवक्ष्यामि) कहता हूं ॥

सं०—अब प्रतिज्ञा भङ्ग करने वालों के धर्म का वर्णन करते हैं :—

यो ग्रामदेशसंघानां कृत्वा सत्येन संविदम् ।
विसंवदेन्नरो लोभात्तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥ २०५ ॥

पदा०—(यः, नरः) जो मनुष्य (ग्रामदेशसंघानां) ग्राम वा देश के समूहों की (सत्येन, संविदं, कृत्वा) सत्य से प्रतिज्ञा=ठेका अथवा पट्टा करके (लोभात्, विसंवदेत्) लोभ से छोड़दे तो (तं, राष्ट्रात्, विप्रवासयेत्) उसको राजा अपने राज्य से निकाल देवे ॥

निगृह्य दापयेच्चैनं समयव्यभिचारिणम् ।
चतुःसुवर्णान् षण्णिष्कांश्छतमानं च राजतम्॥२०६॥

पदा०—(च) और (समयव्यभिचारिणं, एनं) व्यवस्था नष्ट करने वाले पूर्वोक्त मनुष्य को (निगृह्य) पकड़वाकर राजा (चतुःसुवर्णान्, षण्निष्कान्) चारसुवर्ण, छःनिष्क (च) और(शतमानं,राजतं, दापयेत्)एक चांदी का शतमान दण्ड देवे॥

एतद्दण्डविधिं कुर्याद्धार्मिकः पृथिवीपतिः ।
ग्रामजातिसमूहेषु समयव्यभिचारिणम् ॥२०७॥

पदा०—(धार्मिकः, पृथिवीपतिः) धर्मात्मा राजा (ग्रामजातिसमूहेषु) ग्राम, जाति वा समूहों में (समयव्यभिचारिणं) प्रतिज्ञा भङ्ग करने वालों को (एनं, दण्डविधिं, कुर्यात्) इस पूर्वोक्त दण्ड का विधान करे ॥

क्रीत्वा विक्रीय वा किञ्चिद्यस्येहानुशयो भवेत् ।
सोऽन्तर्दशाहात्तद्द्रव्यं दद्याच्चैवाददीत च ॥२०८॥

पदा०-(किञ्चित्) किसी द्रव्य को (क्रीत्वा, वा, विक्रीय) खरीदकर अथवा बेचकर (यस्य,इह,अनुशय, भवेत्) जिस मनुष्य का इस विषय में पश्चात्ताप अर्थात् नापसन्द हो तो (सः) वह (तत्, द्रव्यं) उस द्रव्य को (अन्तर्दशाहात्) दश दिन के बीच में ही (दद्यात्) लौटादे (चैव) और वह (आददीत, च) ग्रहण कर लेवे ॥

परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नापि दापयेत् ।
आददानो ददच्चैव राजा दण्ड्यः शतानिषट्॥२०९॥

पदा०-(तु) और (दशाहस्य) दश दिन के (परेण) व्यतीत होजाने पर (न, दद्यात्, न, अपि, दापयेत्) न देवे और नाही दिलावे, तो (आददानः, ददत्, चैव) लेने और देने वाले दोनों (राज्ञा, शतानिषट्, दण्ड्यः) राजा से छः सौ पण दण्ड लेने योग्य हैं ॥

सं०-अब दोषवती कन्या को छिपाकर देने में दण्ड विधान करते हैं:—

नोन्मत्ताया न कुष्ठिन्या नच या स्पृष्टमैथुना ।
पूर्वं दोषानभिख्याप्य प्रदाता दण्डमर्हति ॥२१०॥

पदा०-(उन्मत्तायाः) पागल (कुष्ठिन्याः) कुष्ठ रोग वाली (च) और (या) जिसका (स्पृष्टमैथुना) कन्यात्व नष्ट होचुका हो ऐसी कन्या के (पूर्वं, दोषान्) पहिले दोषों को

(अनभिख्याप्य) कथन न करके (प्रदाता) देने वाला पुरुष (दण्डं, अर्हति) दण्ड का भागी होता है ॥

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति ।
तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान् ॥२११॥

पदा०—(यः, तु) और जो (दोषवतीं, कन्यां) दोषयुक्त कन्या के दोष को (अनाख्याय, प्रयच्छति) विना कहे वर को दान देता है (तस्य) उसके ऊपर (नृपः, स्वयं) राजा स्वयं (षण्णवतिं, पणान्, दण्डं, कुर्यात्) छयानवे पणों का दण्ड करे॥

अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद् द्वेषेण मानवः ।
स शतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयन् ॥२१२॥

पदा०—(तु) और (यः, मानवः) जो पुरुष (कन्यां) कन्या को (द्वेषेण) द्वेष से (अकन्या, इति, ब्रुयात्) यह कहे कि इसका कन्यात्व नष्ट होचुका है तो (सः, तस्याः, दोषं, अदर्शयन्) वह उस कन्या के दोष को सिद्ध न कर सकने पर (शतं,दण्डं,प्राप्नुयात्) सौ पण दण्ड पाने योग्य है क्योंकि:—

पाणिग्रहणिका मंत्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः ।
नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः ॥२१३॥

पदा०—(पाणिग्रहणिकाः, मंत्राः,) पाणिग्रहण सम्बन्धी मन्त्रों का (कन्यासु, एव, प्रतिष्ठिताः) कन्या के विषय में ही उपयोग है (नृणां, क्वचित्) मनुष्यों में कहीं भी (अकन्यासु, न) अकन्या के विषय में नहीं कहेगये (हि) क्योंकि विवाह से पूर्व

(ताः) दूषित कन्याओं की (लुप्तधर्मक्रियाः) धर्मक्रिया लुप्त होजाती है ॥

सं०—अब प्रसङ्गसङ्गति से विवाह का लक्षण कथन करते हैं:—

पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दार लक्षणम् ।
तेषां निष्ठातु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे ॥२१४॥

पदा०—(पाणिग्रहणिकाः, मन्त्राः,) पाणिग्रहण के मन्त्र (नियतं, दारलक्षणं) ठीक २ विवाह का लक्षण हैं (तु) और (तेषां, निष्ठा) उनकी समाप्ति (विद्वद्भिः) विद्वान् लोगों को (सप्तमे, पदे, विज्ञेया) सप्तपदी के सातवें पद पर जाननी चाहिये॥

यस्मिन्यस्मिन्कृते कार्ये यस्येहानुशयो भवेत् ।
तमनेन विधानेन धर्म्ये पथि निवेशयेत् ॥ २१५ ॥

पदा०—(यस्मिन्, यस्मिन्, कार्ये, कृते) जिस २ कार्य के करने पश्चात् (यस्य, इह, अनुशयः, भवेत्) जिसको उस २ कार्य में पश्चात्ताप हो (तं) उसको राजा (अनेन, विधानेन) इस पूर्वोक्त विधान से (धर्म्ये, पथि, निवेशयेत्) धर्म मार्ग में नियुक्त करे ॥

पशुषु स्वामिनांचैव पालानां च व्यतिक्रमे ।
विवादं संप्रवक्ष्यामि यथावद्धर्मतत्त्वतः ॥ २१६ ॥

पदा०—(पशुषु) पशुओं के विषय में (स्वामिनां, पालानां, चैव) पशुस्वामी और पशुपालकों का (व्यतिक्रमे) झगड़ा होने पर उनके (विवादं) विवाद को (यथावत्, धर्मतत्त्वतः) यथार्थ धर्मानुकूल (संप्रवक्ष्यामि) कहता हूं ॥

सं०-अब पशुस्वामी तथा पशुपालक का व्यवहार वर्णन करते हैं:-

दिवा वक्तव्यता पाले रात्रौ स्वामिनि तद्गृहे ।
योगक्षेमेऽन्यथा चेत्तु पालो वक्तव्यतामियात् ॥२१७॥

पदा०-(दिवा, योगक्षेमे) दिन में पशुओं के योगक्षेम=निर्वाह का (पाले, वक्तव्यता) पशुपालक जुम्मेवार है और (रात्रौ, तत्र, गृहे) रात्रि समय उसके घर पर होने से (स्वामिनि) स्वामी जुम्मेवार होता है (चेव, तु, अन्यथा,) तथा अन्य किसी समय पशुओं का व्यत्यय=गड़बड़ होने पर (पालः, वक्तव्यतां, इयात) पशुपालक ही जुम्मेवार होता है ॥

गोपः क्षीरभृत्तो यस्तु स दुह्याद्दशतो वराम् ।
गोस्वाम्यनुमते भृत्यः सा स्यात्पालेऽभृते भृतिः ॥२१८॥

पदा०-(तु) और (यः, क्षीरभृतः, गोपः) जो गोपाल दूध लेकर ही नौकरी करता हो (सः, भृत्यः) वह भृत्य (गोस्वाम्यनुमते) स्वामी की आज्ञानुसार (दशतः, वरां, दुह्यात) दश गौओं में से एक श्रेष्ठ गौ का दूध दोहन किया करे, क्योंकि (सा, अभृते, पाले, भृतिः, स्यात) वही अवैतनिक भृत्य का वेतन है अर्थात् उसी एक गौ के दोहन से दश गौओं का पालन करे ॥

नष्टं विनष्टं कृमिभिः श्वहतं विषमे मृतम् ।
हीनं पुरुषकारेण प्रदद्यात्पाल एव तु ॥२१९॥

पदा०-(नष्टं) खोये हुए (कृमिभिः, विनष्टं) कीड़ों से नष्ट हुए (श्वहतं) कुत्तों से मारे हुए (विषमे, मृतं) ऊंचे, नीचे में पैर पड़ने से मरे हुए (तु) और (पुरुषकारेण, हीनं)

पुरुषार्थ द्वारा सेवा न होने से नष्ट हुए पशु को (पालः, प्रत्, मद्द्यात्) पशुपालक ही देवे अर्थात् वही जुम्मेवार है ॥

विघुष्य तु हृतं चौरैर्न पालो दातुमर्हति ।
यदि देशे च काले च स्वामिनः स्वस्य शंसति ॥२२०॥

पदा०-(यदि) यदि (चौरैः, विघुष्य, हृतं) चोरों ने बलात्कार से पशु छीन लिया हो (तु) और पशुपालक (देशे, काले, च) देशकालानुसार पशुहरण का सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्यों का त्यों (स्वस्य, स्वामिनः, शंसति) अपने स्वामी से कहदे तो (पालः, दातुं, न, अर्हति) पशुपालक पशु देने योग्य नहीं अर्थात् ऐसी दशा में वह जुम्मेवार नहीं होता ॥

कर्णौ चर्म च बालांश्च बस्तिं स्नायुं च रोचनाम् ।
पशुषु स्वामिनां दद्यान्मृतेष्वंगानि दर्शयेत् ॥२२१॥

पदा०-(च) और (पशुषु, मृतेषु) पशु के स्वयं मरजाने पर पशुपालक (कर्णौ,चर्म,च, बालान्, बस्ति, स्नायुं, च, रोचनां) कान, चमड़ा, बाल, बस्ती=चर्बी, स्नायु=नसें और गोरोचन (स्वामिनां, दद्यात्) स्वामी को लाकर देवे (च) तथा (अङ्गानि, दर्शयेत्) सींग, खुरादि अङ्गों को भी दिखा देवें ॥

अजाविके तु संरुद्धे वृकैः पालेत्वनायति ।
यां प्रसह्य वृकोहन्यात् पाले तत्किल्बिषंभवेत् ॥२२२॥

पदा०-(अजाविके, वृकैः, संरुद्धे) भेड़, बकरी भेड़ियों से घेरे जाने पर (पाले, तु, अनायति) यदि चरवाहा न छुड़ावे (तु) और ऐसी दशा में (यां, प्रसह्य, वृकः, हन्यात्) जिसको

भेड़िया मार डाले तो (तत्, किल्बिषं) उसका पाप (पाले, भवेत्) चरवाहे को लगता है ॥

तासां चेदवरुद्धानां चरन्तीनां मिथो वने ।
यामुत्प्लुत्य वृको हन्यान्नपालस्तत्र किल्बिषी ॥२२३॥

पदा०—(चेत्) यदि (वने, अवरुद्धानां) चरवाहे से वन में रक्षापूर्वक रोकी हुई तथा (मिथः, चरन्तीनां, तासां) परस्पर चरती हुई भेड़, बकरियों में से (वृकः, यां, उत्प्लुत्य, हन्यात्) जिसको भेड़िया अचानक छाल मारकर मार डाले तो (तत्र, पालः, किल्बिषी, न) ऐसी अवस्था में चरवाहा उसके पाप का भागी नहीं होता ॥

सं०—अब खेती के प्रबन्ध विषयक कथन करते हैं :—

धनुः शतं परीहारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः ।
शम्यापातास्त्रयो वापि त्रिगुणो नगरस्य तु ॥२२४॥

पदा०—(ग्रामस्य, समन्ततः) ग्राम के समीप चारो ओर (धनुः, शतं) सौ धनुष=चारसौ हाथ (अपि, वा) अथवा (शम्यापाताः, त्रयः) तीन वार लाठी घुमाकर फेंकने से जितनी दूर तक पहुंचे, उतनी भूमि राजा (परिहारः, स्यात्) त्यागदे अर्थात् उसमें अन्नादि न बोवे (तु) और (नगरस्य, त्रिगुणः) नगर के चारो ओर ग्राम की भूमि से तिगुनी छोड़े ॥

तत्रापरिवृत्तं धान्यं विहिंस्युः पशवो यदि ।
न तत्र प्रणयेद्दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणाम् ॥२२५॥

पदा०—(यदि) यदि (तत्र) वहां छुटी हुई भूमि के समीप (अपरिवृत्तं, धान्यं) बाड़ से न घिरे हुए अन्न को (पशवः,

विहिंस्युः) पशु नष्ट करदें तो (नृपतिः) राजा (तत्र, पशुरक्षिणां) वहां में पशुरक्षकों को (दण्डं, न, प्रणयेत) दण्ड न देवे ॥

वृत्तिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो न विलोकयेत् ।
छिद्रं च वारयेत्सर्वं श्वसूकरमुखानुगम् ॥ २२६ ॥

पदा०—(तत्र; वृत्तिं, प्रकुर्वीत) उस क्षेत्र के बचाने को इतनी ऊंची बाड़ करे (यां, उष्ट्रः, न, विलोकयेत) जिसको ऊंट न देख सके (च) और (श्वसूकरमुखानुगं) कुत्ते तथा सुअरों के मुख जाने वाले (सर्वं, छिद्रं, वारयेत) सम्पूर्ण छिद्रों को बन्द करदे अर्थात इतने बड़े २ छिद्र भी न रहने दे जिनमें सूअर आदि मुख डाल अन्न को खासकें ॥

पथि क्षेत्रे परिवृत्ते ग्रामान्तीयेऽथवा पुनः ।
स पालः शतदण्डार्हो विपालान् वारयेत्पशून् ॥२२७॥

पदा०—(पथि, अथवा, ग्रामान्तीये) मार्ग अथवा ग्राम के समीप (परिवृत्ते, क्षेत्रे) बाड़ से घिरे हुए क्षेत्र को (पुनः) फिर भी पशु उजाड़ें तो (सः, पालः, शतदण्डार्हः) वह चरवाहा सौ पण दण्ड के योग्य है और (विपालान्, पशून, वारयेत) पालक रहित पशुओं को क्षेत्र का रखवाला स्वयं हटादे ॥

क्षेत्रेष्वन्येषु तु पशुः सपादं पणमर्हति ।
सर्वत्र तु सदो देयः क्षेत्रिकस्येति धारणा ॥ २२८ ॥

पदा०—(तु) और (अन्येषु, क्षेत्रेषु, पशुः) यदि मार्गादि की समीपता से भिन्न अन्य स्थलों के खेतों को पशु खाजायं तो (सपादं, दण्डं, अर्हति) पशुपालक सवा पण दण्ड के योग्य है

(तु) और (सर्वत्र, क्षेत्रिकस्य, सदः, देयः) अन्य सम्पूर्ण जितनी हानि किसान की हुई हो उतनी पशुपालक से राजा दिलावे (इति, धारणा) यह मर्यादा है ॥

अनिर्दशाहां गां सूतां वृषान्देवपशूँस्तथा ।
सपालान्वा विपालान्वा न दण्ड्यान्मनुरब्रवीत्॥२२९॥

पदा०—(अनिर्दशाहां, गां, सूतां) दश दिन के भीतर की वियाई हुई गौ (तथा) तथा (वृषान्, देवपशून्) दिव्यपशु जो सब के हित के लिये छोड़े गये हों वह (सपालान्, वा, विपालान्, वा) चरवाहे के साथ अथवा विना चरवाहे के खेत खाजावें तो (न, दण्ड्यान्, मनुः, अब्रवीत्) मनु ने इनको दण्ड नहीं कहा है ॥

क्षेत्रियस्यात्यये दण्डो भागाद्दशगुणो भवेत् ।
ततोऽर्धदण्डोभृत्यानामज्ञानात्क्षेत्रियस्य तु ॥२३०॥

पदा०—(क्षेत्रियस्य, अत्यये) यदि खेत वाले के अपने पशु खेत चरें तो उसको (भागात्, दशगुणः, दण्डः, भवेत्) राजभाग से दश गुनादण्ड हो (तु) और (क्षेत्रियस्य, अज्ञानात्, भृत्यानां) किसान की अज्ञानता से नौकरों की रक्षा में पशु खेत नष्ट करें तो (ततः, अर्धदण्डः) उससे आधा दण्ड हो॥

एतद्विधानमातिष्ठेद्धार्मिकः पृथिवीपतिः ।
स्वामिनां च पशूनां च पालानां च व्यतिक्रमे॥२३१॥

पदा०—(धार्मिकः, पृथिवीपतिः) धर्मात्मा राजा (स्वामिनां, पशूनां) स्वामी, पशु (च) और (पालानां, च, व्यतिक्रमे)

पशुपालकों के व्यतिक्रम=विवाद में (एतव, विधानं, आतिष्ठेत) यह पूर्वोक्त विधान करे ॥

सं०—अब सीमा के विवाद विषयक वर्णन करते हैं :—

सीमां प्रति समुत्पन्नेविवादे ग्रामयोर्द्वयोः ।
ज्येष्ठे मासि नयेत्सीमां सुप्रकाशेषु सेतुषु ॥२३२॥

पदा०—(सीमां, प्रति) सीमा विषयक (द्वयोः, ग्रामयोः, विवादे, समुत्पन्ने) दो ग्रामों में झगड़ा होने पर (ज्येष्ठे, मासि) ज्येष्ठ मास में जब (सेतुषु, सुप्रकाशेषु) तृणादि के शुष्क होने से सीमा के चिन्ह प्रकट हों तब राजा (सीमां, नयेत) सीमा का निर्णय करे ॥

सीमावृक्षांश्च कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकान् ।
शाल्मलीन्सालतालांश्च क्षीरिणश्चैव पादपान् ॥२३३॥

पदा०—(न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकान्) बड़, पीपल, ढाक (शाल्मलीन, सालतालान्) सेमर, साल, ताल=ताड़ (च) और (क्षीरिणः, चैव, पादपान्) दूध वाले वृक्षों को (सीमावृक्षान्, कुर्वीत) सीमावृक्ष बनावे अर्थात राजा सीमा के चिन्ह पर इन वृक्षों को स्थापित करे ॥

गुल्मान्वेणूंश्च विविधाञ्छमीवल्लीस्थलानि च ।
शरान्कुब्जकगुल्मांश्च तथा सीमा न नश्यति ॥२३४॥

पदा०—(च) और (गुल्मान्, विविधान्, वेणून्) गुल्म=शाखाहीन वृक्ष, अनेकप्रकार के वेणु=कांटे वाले वृक्ष (शमीवल्ली-

स्थलानि, च) शमी=जंड, वल्ली=बेल, मिट्टी के ऊंचे टीले (च) और (शरान्, कुब्जकगुल्मान्) सरकण्डे तथा कुबड़े गुल्म वाले वृक्षों को सीमा पर लगाने से (तथा, सीमा, न, नश्यति) फिर सीमा नष्ट नहीं होती है ॥

तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च ।
सीमासन्धिषु कार्य्याणि देवतायतनानि च ॥२३५॥

पदा०—(तडागानि, उदपानानि) तालाब, कूप (वाप्यः, प्रस्रवणानि, च) वापी, झरने (च) और (देवतायतनानि) धर्मशाला आदि स्थान (सीमासन्धिषु, कार्य्याणि) सीमा के मेल=जोड़ पर राजा बनवावे जिससे लोगों को आराम हो और वह सब सीमा के साक्षी भी रहें ॥

उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिंगानि कारयेत् ।
सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम् ॥२३६॥

पदा०—(लोके) लोक में (नित्यं) नित्य राजा (नृणां, सीमाज्ञाने, विपर्य्ययं, वीक्ष्य) मनुष्यों को सीमाज्ञान में भ्रम देखकर (अन्यानि, च) अन्य भी आगे कहे हुए (उपच्छन्नानि, सीमालिङ्गानि) गुप्त सीमाचिन्ह (कारयेत) स्थापित करावे ॥

सं०—अब सीमा के गुप्त चिन्हों का वर्णन करते हैं :—

अश्मनोऽस्थीनि गोबालांस्तुषान्भस्मकपालिकाः ।
करीषमिष्टकांगांश्छर्करांबालुकास्तथा ॥ २३७ ॥

यानि चैवं प्रकाराणि कालाद्भूमिर्न भक्षयेत् ।
तानि सन्धिषु सीमायामप्रकाशानि कारयेत् ॥२३८॥

पदा०—(अश्मनः) पत्थर (अस्थीनि) हड्डियें (गोवालान्) गौ के वाल (तुषान्) तुष=धान की भुसी आदि (भस्मकपालिकाः) भस्म, खपड़ा (करीषं, इष्टकाङ्गारान्) शुष्क गोवर, पक्की ईंटों के कङ्कड़ (शर्कराः, वालुकाः, तथा) शर्करा=पत्थर की छोटी २ कङ्कड़ियां तथा रेत-(च) और (यानि, एवं, प्रकाराणि) जो इस प्रकार की वस्तुयें हों (कालात् भूमिः, न, भक्षयेत्) जिन्हें भूमि शीघ्र न गलासके (तानि) उन वस्तुओं को राजा (सीमायां, सन्धिषु, अप्रकाशानि, कारयेत्) सीमा की सन्धियों में गुप्त रीति से रखवा देवे ॥

एतैर्लिंगैर्नयेत्सीमां राजा विवदमानयोः ।
पूर्वभुक्त्या च सततमुदकस्यागमेन च ॥ २३९ ॥

पदा०—(राजा) राजा (एतैः, लिङ्गैः) इन पूर्वोक्त चिन्हों (च) और (पूर्वभुक्त्या) पूर्वभोग से (च) तथा (सततं, उदकस्य, आगमेन) निरन्तर जल के प्रवाह से (विवदमानयोः, सीमां, नयेत्) झगड़ने वालों की सीमा का निर्णय करे ॥

यदि संशय एव स्याल्लिंगानामपि दर्शने ।
साक्षिप्रत्यय एव स्यात्सीमावादविनिर्णयः ॥२४०॥

पदा०—(यदि, लिङ्गानां, अपि, दर्शने) यदि चिन्हों के दीखने पर भी (संशयः, एव, स्यात्) सन्देह ही होवे तो

(साक्षिप्रत्ययः, एव) गवाहों के विश्वास पर ही (सीमावादविनिर्णयः, स्यात्) सीमा विषयक विवाद का निर्णय करे ॥

ग्रामीयककुलानां च समक्षं सीम्नि साक्षिणः ।
प्रष्टव्याः सीमलिंगानि तयोश्चैव विवादिनोः ॥२४१॥

पदा०-(ग्रामीयककुलानां) ग्राम निवासियों (च) तथा (तयोः, चैव, विवादिनोः) झगड़ने वाले वादी=मुद्दई, प्रतिवादी=मुद्दाइलहों के (समक्षं) सामने (सीम्नि) सीमा विषय में (साक्षिणः) गवाहों से राजा को (सीमलिङ्गानि) सीमा के चिन्ह (प्रष्टव्याः) पूछने चाहियें ॥

ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीम्निनिश्चयम् ।
निबध्नीयात्तथा सीमां सर्वांस्तांश्चैव नामतः ॥२४२॥

पदा०-(तु) तदनन्तर (ते, समस्ताः, पृष्टाः) वह सम्पूर्ण पूछे हुए गवाह (सीम्निनिश्चयं) सीमा विषयक अपना निश्चय (यथा, ब्रूयात) जैसा कहें (तथा) उसी प्रकार राजा (सीमां, निबध्नीयात) सीमा को बांधे (च) और (एव) निश्चयकरके (तान्, सर्वान्, नामतः) उन सबके नाम लिखले ॥

सं०-अब साक्षियों से शपथ लेने की रीति कथन करते हैंः-

शिरोभिस्ते गृहीत्वोर्वीं स्रग्विणो रक्तवाससः ।
सुकृतैः शापिताः स्वैःस्वैर्नयेयुस्ते समञ्जसम् ॥२४३॥

पदा०-(ते) वह सीमा सम्बन्धी साक्षी (स्रग्विणः, रक्तवाससः) पुष्प माला तथा रक्तवस्त्र धारण किये हुए (शिरोभिः, उर्वीं,

गृहीत्वा) शिर पर मिट्टी के ढेले को रखकर (स्वैः, स्वैः, सुकृतैः) अपने २ पुण्यों से (शापिताः) शपथ उठाये हुए (ते, समञ्जसं, नयेयुः) सब ठीक २ निर्णय करें अर्थात् वह सब यह कहें कि हमारा सब सुकृत निष्फल हो जो हम असत्य भाषण करें ॥

यथोक्तेन नयन्तस्ते पूयन्ते सत्यसाक्षिणः ।
विपरीतं नयन्तस्तु दाप्याः स्युर्द्विशतं दमम् ॥२४४॥

पदा०—(ते,सत्यसाक्षिणः)वह सत्य साक्षी देने वाले(यथोक्तेन, नयन्तः,पूयन्ते)शास्त्रोक्त विधि के अनुसार चलते हुए पवित्र होते हैं (तु) और (विपरीतं, नयन्तः) इससे विपरीत चलने वाले (द्विशतं, दमं, दाप्याः, स्युः) दो सौ पण दण्ड देने के योग्य होते हैं ॥

साक्ष्यभावेतु चत्वारो ग्रामाः सामन्तवासिनः ।
सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रयता राजसन्निधौ ॥ २४५ ॥

पदा०—(तु) और (साक्ष्यभावे) गवाहों के न होने पर (सामन्तवासिनः) आस पास के रहने वाले (चत्वारः, ग्रामाः) चार ग्रामों के ज़िम्मेदार (राजसन्निधौ) राजा के समीप (प्रयताः) धर्मानुकूल (सीमाविनिर्णयं, कुर्युः,) सीमा का निर्णय करें ॥

सामन्तानामभावेतु मौलानां सीम्नि साक्षिणाम् ।
इमानप्यनुयुञ्जीत पुरुषान्वनगोचरान् ॥ २४६ ॥

पदा०—(सीम्नि) सीमा के निर्णयार्थ (सामन्तानां, मौलानां) आस पास सदा से रहने वाले (साक्षिणां, अभावे) साक्षियों के न मिलने पर (इमान्, वनगोचरान्) इन वनवासी (पुरुषान्, अपि) पुरुषों को भी (अनुयुञ्जीत) साक्षी बना लेवे ॥

व्याधांश्छाकुनिकान्गोपान् कैवर्त्तान्मूलखानकान् ।
व्यालग्राहानुञ्छवृत्तीनन्यांश्च वनचारिणः ॥२४७॥

पदा०-(व्याधान्, शाकुनिकान्) व्याध, शाकुनिक=चिड़ीमार (गोपान्, कैवर्त्तान्, मूलखानकान्) गोपालक, मछली पकड़ने वाले, जड़ों को खोदने वाले (व्यालग्राहान्, उञ्छवृत्तीन्) सांप पकड़ने वाले, शिला बीनने वाले (च) और (अन्यान्, वनचारिणः) अन्य वनचारियों से भी पूछकर राजा सीमा का निर्णय करे ॥

ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः सीमासन्धिषु लक्षणम् ।
तत्तथा स्थापयेद्राजा धर्मेण ग्रामयोर्द्वयोः ॥ २४८ ॥

पदा०-(ते, पृष्टाः, तु) वह पूछे हुए व्याध आदि (सीमा, सन्धिषु, लक्षणं) सीमा की सन्धि में चिन्हों को (यथा, ब्रुयुः) जैसा कहें (तत्, राजा, धर्मेण) उस सीमा के चिन्ह को राजा धर्मपूर्वक (द्वयोः, ग्रामयोः) दोनों ग्रामों की सीमा पर (तथा, स्थापयेत्) वैसा ही स्थापित करे ॥

क्षेत्रकूपतडागानामारामस्य गृहस्य च ।
सामन्तप्रत्ययो ज्ञेयः सीमासेतुविनिर्णयः ॥२४९॥

पदा०-(क्षेत्रकूपतडागानां) क्षेत्र, कूप, तालाब (आरामस्य, गृहस्य, च) बाग और घरों की (सीमासेतुविनिर्णयः) सीमा-परिमाण का निर्णय (सामन्तप्रत्ययः, ज्ञेयः) पड़ोसियों के विश्वास पर जानना चाहिये अर्थात् समीप वासियों के कथनानुसार निर्णय करे ॥

सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयुः सेतौ विवदतां नृणाम् ।
सर्वे पृथक्पृथग्दण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम् ॥२५०॥

पदा०-(विवदतां, नृणां, सेतौ) झगड़ा करने वाले मनुष्यों के सीमा निर्णय में (चेत्, सामन्ताः) यदि पड़ोसी लोग (मृषा, ब्रूयुः)मिथ्या बोलें तो(सर्वे)वह सब (राज्ञा) राजा से(पृथक्, पृथक्) पृथक्२ (मध्यमसाहसं,दण्ड्याः) मध्यम साहस दण्ड पाने योग्य हैं॥

गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् ।
शतानि पञ्च दण्ड्यःस्यादज्ञानाद्द्विशतोदमः ॥२५१॥

पदा०-(गृहं, तडागं, आरामं, वा, क्षेत्रं) जो घर, तालाब, बाग अथवा खेत को (भीषया, हरन्) भय देकर छीन ले वह (पञ्चशतानि, दण्ड्यः) पांचसौ पण दण्ड के योग्य है और (अज्ञानात्, द्विशतः, दमः, स्यात्) अज्ञान से हरण करने वाला दो सौ पण दण्ड के योग्य होता है ॥

सीमायामविषह्यायां स्वयं राजैव धर्मवित् ।
प्रदिशेद्भूमिमेतेषामुपकारादिति स्थितिः ॥ २५२ ॥

पदा०-(सीमायां, अविषह्यायां) सीमा का कोई पर्याप्त प्रमाण न मिलने पर (धर्मवित्, राजा, स्वयं, एव) धर्मज्ञ राजा स्वयं ही (उपकारात्) उपकार से (एतेषां, भूमिं, प्रदिशेत्) उन विवादियों की भूमि बांटदे (इति, स्थितिः) यह धर्ममर्यादा है॥

एषोऽखिलेनाभिहितो धर्मः सीमाविनिर्णये ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वाक्पारुष्यविनिर्णयम् ॥२५३॥

पदा०-(सीमाविनिर्णये) सीमानिर्णय विषयक (एषः,

धर्मः, अभिलेन, अभिहितः) यह सम्पूर्ण धर्म कहा (अतः, ऊर्ध्वं) अब इससे आगे (वाक्पारुष्यविनिर्णयं) वाणी की कठोरता=गाली का निर्णय (प्रवक्ष्यामि) कहता हूं॥

सं०—अब गाली प्रदान करने वाले के लिये दण्ड कथन करते हैं:—

शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति।
वैश्योऽप्यर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति॥२५४॥

पदा०—(ब्राह्मणं, आक्रुश्य) ब्राह्मण को अपशब्द बोलने वाला (क्षत्रियः) क्षत्रिय (शतं, दण्डं, अर्हति) सौ "पण" दण्ड पाने योग्य है (वैश्यः, अपि, अर्धशतं, वा, द्वे) वैश्य भी डेढसौ अथवा दो सौ "पण" (तु) और (शूद्रः) शूद्र (वधं, अर्हति) देहदण्ड पाने योग्य है॥

भाष्य—क्षत्रिय ब्राह्मण को गाली दे तो उस पर सौ पण, वैश्य गाली दे तो उस पर ड़ेढ़सौ वा दो सौ पण जुर्माना किया जाय और यदि शूद्र ब्राह्मण को गाली दे तो उसको बेतों का दण्ड कियाजाय वा कारागार में भेजा जाय, और:—

पंचाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने।
वैश्ये स्यादर्धपंचाशच्छूद्रे द्वादशको दमः॥२५५॥

पदा०—(ब्राह्मणः, क्षत्रियस्य, अभिशंसने) यदि ब्राह्मण क्षत्रिय को अपशब्द बोले तो (पंचाशत्) पचास पण (दण्ड्यः) दण्ड पावे (वैश्ये) वैश्य को गाली दे तो (अर्धपंचाशत्) पच्चीस (शूद्रे) शूद्र को गाली दे तो (द्वादशकः, दमः, स्यात्) बारह पण दण्ड का भागी हो॥

समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे ।
वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ॥ २५६ ॥

पदा०—(द्विजातीनां, समवर्णे) द्विजातियों को अपने समान वर्ण में (व्यतिक्रमे) अपशब्द कहने पर (द्वादश:, एव) बारह ही पण दण्ड दे (अवचनीयेषु, वादेषु) न कहने योग्य गाली देने में (तदेव) वही दण्ड (द्विगुणं, भवेत) दूना होता है अर्थात् माता, बहिन की गाली देने में उसका दूना चोवीस पण दण्ड दे॥

श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च ।
वितथेन ब्रुवन्दर्पाद्दाप्यः स्याद्द्विशतं दमम् ॥२५७॥

पदा०—(श्रुतं, देशं, च, जातिं) विद्याभ्यास, देश तथा जाति (एव, च) वैसे ही (शारीरं, कर्म) शारीरक कर्मों को (दर्पात्) अहंकार से (वितथेन, ब्रुवन्) झूठ बताने वाला (द्विशतं, दमं, दाप्य:, स्यात्) दो सौ पण दण्ड पाने योग्य है ॥

काणं वाप्यथवा खंजमन्यं वापि तथाविधम् ।
तथ्येनापि ब्रुवन् दाप्यो दण्डं कार्षापणावरम् ॥२५८॥

पदा०—(काणं, अथवा, खंजं, वा, तथाविधं) काणा तथा लंगड़ा अथवा इसी प्रकार का कोई (अन्यं, अपि) अन्य भी अङ्गहीन हो तो (तथ्येन, अपि) उसको सत्य भी (ब्रुवन्) पुकारने वाला अर्थात् उसी दोष से बुलाने वाला (कार्षापणावरं, दण्डं, दाप्य:) एक "कार्षापण" तक दण्ड पाने योग्य है ॥

मातरं पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुम् ।
आक्षारयञ्छतं दाप्यः पन्थानं चाददद्गुरोः ॥२५९॥

पदा०-(मातरं, पितरं, जायां, भ्रातरं, तनयं, गुरुं) माता, पिता, स्त्री, भाई, पुत्र और गुरु को (आक्षारयत्) अपशब्द बोलने वाला (च) तथा (गुरोः, पन्थानं, अददत्) गुरु को मार्ग न छोड़ने वाला (शतं, दाप्यः) सौ पण दण्ड के योग्य है ॥

ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो विजानता ।
ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेव मध्यमः ॥२६०॥

पदा०-(तु) और (ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां) ब्राह्मण क्षत्रिय के परस्पर कठोर भाषण करने में (विजानता) धर्म का जानने वाला राजा (दण्डः, कार्यः) दण्ड करे, यदि ब्राह्मण का अपराध हो तो (ब्राह्मणे, पूर्वः, साहसः) ब्राह्मण को "प्रथम साहस" (तु) और (एव) निश्चयकरके क्षत्रिय का अपराध हो तो (क्षत्रिये, मध्यमः) क्षत्रिय को "मध्यम साहस" दण्ड दे ॥

एष दण्डविधिः प्रोक्तो वाक्पारुष्यस्य तत्त्वतः ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दण्डपारुष्यनिर्णयम् ॥ २६१ ॥

पदा०-(एषः) यह (वाक्पारुष्यस्य) वाणी की कठोरता विषयक (दण्डविधिः, तत्त्वतः, प्रोक्तः) दण्डविधि यथार्थतया कही (अतः, ऊर्ध्वं) इससे आगे (दण्डपारुष्यनिर्णयं) मारपीट विषयक निर्णय (प्रवक्ष्यामि) कहता हूं ॥

सं०-अब मार पीट विषयक दण्ड विधान करते हैं:—

येनकेनाचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः ।
छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ॥ २६२ ॥

पदा०-(चेत) यदि (अन्त्यजः) अन्त्यज लोग (येनेकेनचित, अंगेन) जिस किसी अंग से (श्रेष्ठं, हिंस्यात) द्विजातियों को मारें तो (अस्य) उनका (तत,तत, एव) वह वह ही अंग (छेत्तव्यं) कटवाना चाहिये (तत्,मनोः,अनुशासनं) यह मनु की आज्ञा है॥

पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति ।
पादेन प्रहरन्कोपात्पादच्छेदनमर्हति ॥ २६३ ॥

पदा०-(पाणिं, वा, दण्डं, उद्यम्य) हाथ वा लाठी को उठाकर मारे तो (पाणिच्छेदनं, अर्हति) उसका हाथ कटवाना चाहिये (कोपात, पादेन प्रहरन्) क्रोधवशात पैर से मारे तो (पादच्छेदनं,अर्हति) उसके पैर कटवाने का दण्ड देना योग्य है॥

सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः ।
कट्यांकृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं वास्यावकर्तयेत् ॥२६४॥

पदा०-(उत्कृष्टस्य, सहासनं, अभिप्रेप्सु, अपकृष्टजः) उच्च पुरुष के साथ बैठने की इच्छा वाले नीच को (कट्यां) कमर को (कृताङ्कः, निर्वास्यः) दाग देकर निकाल दे (वा) अथवा (अस्य) उसके (स्फिचं) चूतड़ को (अवकर्तयेत) कुछ कटवादे, जिस से चिन्ह बना रहे और मृत्यु को प्राप्त न हो ॥

अवनिष्ठीवतो दर्पाद् द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः ।
अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम् ॥ २६५ ॥

पदा०-(दर्पात) अहंकार से नीच पुरुष श्रेष्ठों के ऊपर (अवनिष्ठीवतः) थूके तो (नृपः) राजा (द्वौ, ओष्ठौ) उसके दोनों ओष्ठों को (अवमूत्रयतः) मूत्र डाले तो (मेढ्रं) लिंग को

और (अवशर्धयतः) अपानवायु निकाले तो (गुदं) गुदा को (छेदयेत्) छेदन करावे ॥

केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेदविचारयन् ।
पादयोर्दाढिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च ॥२६६॥

पदा०—(केशेषु) बाल (च) तथा (पादयोः, दाढिकायां, ग्रीवायां च वृषणेषु) पाद, डाढ़ी, ग्रीवा=गर्दन और अण्डकोश (गृह्णतः) पकड़ने वाले के राजा (अविचारयन्) विना विचारे (हस्तौ, छेदयेत्) दोनों हाथों को कटवादे अर्थात् अभिमान द्वारा मारडालने के विचार से कोई किसी के उक्त अंगों का स्पर्श करे तो राजा तत्काल उसके दोनों हाथ कटवाने का दण्ड दे ॥

त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः ।
मांसभेत्ता तु षण्निष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः ॥२६७॥

पदा०—(त्वग्भेदकः) त्वचा को भेदन करने वाले (च) तथा (लोहिस्य, दर्शकाः) रक्त निकालने वाले को (शतं, दण्ड्यः) सौ पण दण्ड दे (मांसभेत्ता) मांस के भेदन करने वाले को (षण्निष्कान्) "छः निष्क" दण्ड दे (तु) और (अस्थिभेदकः) हड्डी तोड़ने वाले को (प्रवास्य) देश से वाहर निकाल देना चाहिये ॥

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथा यथा ।
तथा तथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा ॥२६८॥

पदा०—(सर्वेषां, वनस्पतीनां, यथायथा, उपभोगं) सम्पूर्ण वनस्पतियों का जैसा २ उपभोग करे अर्थात् उनको तोड़े (तथा

तथा) वैसा २ ही (हिंसायां) उनकी हानि होने पर (दमः, कार्यः) उसको दण्ड देना चाहिये (इति, धारणा) यह मर्यादा है ॥

मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रहृते सति ।
यथायथा महद्दुःखं दण्डं कुर्यात्तथातथा ॥ २६९ ॥

पदा०—(मनुष्याणां, च, पशूनां) मनुष्यों तथा पशुओं को (दुःखाय, प्रहृते, सति) दुःख देने के लिये प्रहार करने पर (यथा यथा) जैसा २ (महद्दुखं) अधिक दुःख हो (तथा, तथा) वैसा२ ही (दण्डं, कुर्यात्) दण्ड भी अधिक दे ॥

अंगावपीडनायां च व्रणशोणितयोस्तथा ।
समुत्थानव्ययं दाप्यः सर्वदण्डमथापि वा । ॥२७०॥

पदा०—(अंगावपीडनायां)हस्तपादादि अंगों में पीड़ा पहुंचाने वाला (तथा) वैसे ही (व्रणशोणितयोः, च) घाव और रक्त की पीड़ा देने वाला (समुत्थानव्ययं, दाप्यः) स्वस्थ होने में उठा हुआ सम्पूर्ण व्यय दे (वा) अथवा (सर्वदण्डं, अथ, अपि) अपराधी पूर्ण दण्ड पावे ॥

द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।
स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञो दद्याच्च तत्समम् ॥२७१॥

पदा०—(यः) जो (यस्य) जिसके (द्रव्याणि) द्रव्यों को (ज्ञानतः) जानकर (वा) अथवा (अज्ञानतः, अपि) अज्ञान से भी (हिंस्यात्) बिगाड़े=नाश करे तो (सः) वह (तस्य) पदार्थों के स्वामी को (तुष्टिं, उत्पादयेत्) प्रसन्न करे (च) और (राज्ञः) राजा को (तत्, समं) हानि के बराबर(दद्यात्) दण्ड दे ॥

चर्मचार्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्टमयेषु च ।
मूल्यात्पंचगुणो दण्डः पुष्पमूलफलेषु च ॥२७२॥

पदा०—(चर्मचार्मिकभाण्डेषु) चर्म तथा चर्म के बने बर्तन (च) और (काष्ठलोष्टमयेषु) मिट्टी तथा लकड़ी के बने पात्र (च) और (पुष्पमूलफलेषु) पुष्प, मूल तथा फलों के नष्ट कर देने पर अपराधी (मूल्यात्, पंचगुणः, दण्डः) मूल्य से पचगुना दण्ड दे ॥

यानस्य चैव यातुश्च यानस्वामिन एव च ।
दशातिवर्तनान्याहुः शेष दण्डो विधीयते ॥२७३॥

पदा०—(यानस्य, चैव, यातुः, यानस्वामिनः, एव) सारथी=सवारी चलाने वाले तथा सवारी के स्वामी के भी (दश, अतिवर्तनानि) निम्नलिखित दश अपराध छोड़ना (आहुः) कहा है (च) और (शेषे, दण्डः, विधीयते) शेष अपराधों में दण्ड का विधान है ॥

छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक्प्रतिमुखागते ।
अक्षभंगे च यानस्य चक्रभंगे तथैव च ॥ २७४ ॥
छेदने चैव यन्त्राणां योक्त्ररश्म्योस्तथैव च ।
आक्रन्दे चाप्यपैहीति न दण्डं मनुरब्रवीत् ॥२७५॥

पदा०—(छिन्ननास्ये, भग्नयुगे, तिर्यक्प्रतिमुखागते) नाथ तथा जुए के टूटने, विषममार्ग के कारण रथ उलट जाय वा सन्मुख कोई रुकावट आजाय (यानस्य, अक्षभंगे) रथ का धुरा टूटने (तथैव) इसीप्रकार (चक्रभंगे) पहिये के टूटने—(च) और

(यन्त्राणां, एव, छेदने) चमड़े तथा सूत्र के बन्धनादि यन्त्रों के टूटने (तथैव) इसीप्रकार (योक्त्ररश्म्योः) रासें वा लगाम के टूटजाने पर (अपेहि) "हटजाओ" "बचो" (इति) इसप्रकार (आक्रन्दे) चिल्लाने पर किसी की हानि होजाय तो (दण्डं, न) उसके लिये दण्ड नहीं (मनुः, अब्रवीत) यह मनु का अनुशासन है॥

भाष्य—(१) बैल की नाथ टूटजाय (२) जुआ टूटजाय (३) विषम मार्ग के कारण रथ उलटजाय (४) सामने से कोई रुकावट आजाय (५) धुरी टूटजाय (६) पहिया टूटजाय (७) रथ के बन्धन टूटजायं (८) रासें भग्न होजायं (९) लगाम टूटजाय (१०) बचो २ कहते हुए दैवयोग से किसी की हानि होजाय तो इन अवस्थाओं में सारथी तथा रथ का स्वामी दण्ड योग्य नहीं है॥

यत्रापवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु ।
तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसायां द्विशतं दमम्॥२७६॥

पदा०—(यत्र) जहां (प्राजकस्य) सारथी की (वैगुण्यात्) विगुणता=मूर्खता से (युग्यं) रथ (अपवर्तते) इधर उधर चलता अथवा लौट जाता है (तत्र) उसमें (हिंसायां) हानि होने पर (स्वामी) रथ का स्वामी (द्विशतं, दमं, दण्ड्यः, भवेत्) दो सौ पण दण्ड के योग्य होता है, और :—

प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति ।
युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दण्ड्याः शतंशतम्॥२७७॥

पदा०—(चेत्) यदि (प्राजकः) सारथी (आप्तः, भवेत्) कुशल हो तो वह (प्राजकः) सारथी (दण्डं, अर्हति) दण्ड योग्य होता है (प्राजके, अनाप्ते) सारथी के कुशल न होने पर

(युग्यस्थाः, सर्वे) रथ पर बैठने वाले सब (शतं, शतं, दण्ड्याः) सौ २ पण दण्ड देने के अधिकारी होते हैं ॥

भाष्य—सारथी के कुशल होने पर यदि कोई हानि होजाय तो वह दण्डनीय है और सारथी के होशियार न होने पर रथ से कोई अनिष्ट होजाय तो सब सवारियें दण्डनीय हैं, और वह इसलिये कि उन्होंने ऐसे मूर्ख को सारथी क्यों नियत किया जो इस योग्य न था ॥

स चेत्तु पथि संरुद्धः पशुभिर्वारथेन वा ।
प्रमापयेत्प्राणभृतस्तत्र दण्डोऽविचारितः ॥२७८॥

पदा०—(चेत्) यदि (सः) वह सारथी (पशुभिः, वा, रथेन, वा) पशुओं वा अन्य रथ से (संरुद्धः, पथि) घिरे हुए मार्ग में रथ चलावे, और (तत्र) वहां (प्राणभृतः, प्रमापयेत्) प्राणियों का वध होजाय तो वह (अविचारितः, दण्डः) विना विचारे दण्डनीय है अर्थात् उसको राजा अवश्य दण्ड दे ॥

सं०—अब सारथी के लिये दण्ड कथन करते हैं :—

मनुष्यमारणे क्षिप्रं चौरवत्किल्बिषं भवेत् ।
प्राणभृत्सु महत्स्वर्धं गोगजोष्ट्रहयादिषु ॥ २७९ ॥

पदा०—(मनुष्यमारणे) मनुष्य के मरने में (किल्बिषं) पाप का (चौरवत्, क्षिप्रं, भवेत्) चौर के समान "उत्तम साहस" दण्ड होता है और (गोगजोष्ट्रहयादिषु) गौ, हाथी, ऊंट तथा घोड़ा आदि (महत्सु) बड़े पशुओं के (प्राणभृत्सु) मरने में (अर्धं) पांच सौ "पण" दण्ड का विधान है ॥

क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसाया द्विशतो दमः।
पंचाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु ॥ २८० ॥

पदा०-(तु) और (क्षुद्रकाणां, पशूनां, हिंसायां) छोटे २ पशुओं की हिंसा होने पर (द्विशतः, दमः) दो सौ पण दण्ड दियाजाय (तु) तथा (शुभेषु, मृगपक्षिषु) उत्तम मृग तथा पक्षियों के मरने पर (पंचाशत्, दण्डः, भवेत्) पचास पण दण्ड होता है ॥

गर्दभाजाविकानां तु दण्डः स्यात्पंचमाषिकः।
माषकस्तु भवेद्दण्डः श्वसूकरनिपातने ॥ २८१ ॥

पदा०-(तु) और (गर्दभाजाविकानां) गधा, बकरी तथा भेड़ के मरजाने पर (पंचमाषिकः, स्यात्) पांच "माष" दण्ड हो (श्वसूकरनिपातने) कुत्ता तथा सूकर=सुअर के मरजाने पर (माषकः, दण्डः, भवेत्) एक "माष" दण्ड हो ॥

भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेष्यो भ्राता च सोदरः।
प्राप्तापराधास्ताड्याः स्यूरज्ज्वा वेणुदलेन वा ॥२८२॥

पदा०-(भार्या, पुत्रः, दासः, प्रेष्यः, च, भ्राता, सोदरः) स्त्री, पुत्र, दास, भृत्य और छोटा सहोदर भाई (प्राप्तापराधाः) अपराध करने पर (रज्ज्वा) रस्सी (वा) अथवा (वेणुदलेन) बांस की छड़ी से (ताड्याः, स्युः) ताड़न करने योग्य हैं ॥

पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमांगे कथंचन।
अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥२८३॥

पदा०-(तु) परन्तु इनको (शरीरस्य, पृष्ठतः) शरीर के

पीठ की ओर मारे (उत्तमाङ्गे, न, कथंचन) उत्तमाङ्ग=सिर में कदापि न मारे (तु) और (अतः) इससे (अन्यथा) विपरीत (प्रहरन्) प्रहार करने वाला (चौर, किल्विषं) चौर के दण्ड को (प्राप्तः, स्यात्) प्राप्त होता है ॥

एषोऽखिलेनाभिहितो दण्डपारुष्यनिर्णयः ।
स्तेन स्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं दण्डविनिर्णये ॥२८४॥

पदा०—(एषः) यह (अखिलेन) सम्पूर्ण रूप से (दण्डपारुष्य-निर्णयः, अभिहितः) पारुष्य=मारपीट के दण्ड का निर्णय कहा (अतः) अब (स्तेनस्य) चौर के (दण्डविनिर्णये) दण्डनिर्णय की (विधिं) विधि को (प्रवक्ष्यामि) कहता हूं ॥

सं०—अब चौर के लिये दण्ड कथन करते हैं :—

परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां निग्रहे नृपः ।
स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वर्धते ॥२८५॥

पदा०—(नृपः) राजा (स्तेनानां, निग्रहे) चौरों के ताड़न में (परमं, यत्नं, आतिष्ठेत्) बड़ा यत्न करे, क्योंकि (स्तेनानां, निग्रहात्) चौरों के निग्रह से (अस्य) राजा का (यशः) यश (च) और (राष्ट्रं) राज्य (वर्धते) बढ़ता है ॥

अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सततं नृपः ।
सत्रं हि वर्धते तस्य सदैवाभय दक्षिणम् ॥ २८६ ॥

पदा०—(यः, नृपः) जो राजा (अभयस्य, दाता) अभय का देने वाला है (सः) वह (सततं, पूज्यः) सदा पूज्य है (हि) क्योंकि (तस्य) उसका (सत्रं) राज्यरूप यज्ञ (अभय, दक्षिणं, सदैव, हि, वर्धते) अभयरूप दक्षिणा से सदा ही बढ़ता है ॥

सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षतः ।
अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः ॥ २८७ ॥

पदा०-(रक्षतः, राज्ञः) रक्षा करने वाले राजा को (सर्वतः, धर्मषड्भागः, भवति) सब के धर्म का छठा भाग प्राप्त होता है और (अरक्षतः) रक्षा न करने वाले (अस्य, अपि) इस राजा को भी (अधर्मात्, षड्भागः, भवति) सब के अधर्म में से छटाभाग मिलता है ॥

यदधीते यद्यजते यद्ददाति यदर्चति ।
तस्य षड्भागभाग्राजा सम्यग्भवतिरक्षणात् ॥२८८॥

पदा०-(यत्) जो (अधीते) अध्ययन करता (यत्) जो (यजते) यज्ञ करता (यत्) जो (ददाति) दान देता (यत्) जो (अर्चति) गुरुजनों का सत्कार करता है (तस्य) उस पुण्य का (षड्भागभाक्) छठाभाग (सम्यक्, रक्षणात्) भलेप्रकार रक्षा करने से (राजा, भवति) राजा को प्राप्त होता है ॥

रक्षन्धर्मेण भूतानि राजा वध्यांश्च घातयन् ।
यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः ॥ २८९ ॥

पदा०-(भूतानि, धर्मेण, रक्षन्) सब प्राणियों की धर्म से रक्षा करता हुआ (च) और (वध्यान्, घातयन्) वध्य=दण्ड योग्यों को दण्ड देता हुआ राजा मानो (सहस्रशतदक्षिणैः) लक्षमुद्रा दक्षिणायुक्त (अहः, अहः, यज्ञैः, यजते) प्रतिदिन यज्ञों से यजन करता अर्थात् बहुदक्षिणा वाला यज्ञ करता है ॥

योऽरक्षन्बलिमादत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः ।
प्रतिभागं च दण्डं च स सद्यो नरकं व्रजेत् ॥२९०॥

पदा०—(यः) जो (अरक्षन्) रक्षा न करता हुआ (पार्थिवः) राजा (बलिं, करं, शुल्कं, च) अन्न का छटाभाग, कर तथा चुंगी आदि (च) और (दण्डं, प्रतिभागं) दण्ड के भाग को (आदत्ते) ग्रहण करता है (सः) वह राजा (सद्यः, नरकं, व्रजेत्) शीघ्र ही नरक=दुर्गति को प्राप्त होता है ॥

अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहारिणम् ।
तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् ॥ २९१ ॥

पदा०—(अरक्षितारं, बलिषड्भागहारिणं) रक्षा न करते हुए अन्न के छठे भाग को ग्रहण करने वाले (तं, राजानं) उस राजा को (सर्वलोकस्य) सब लोगों का (समग्रमलहारकं, आहुः) सम्पूर्ण मल=पाप अपने सिर पर लेने वाला कहते हैं अर्थात् वह राजा सब के पापों का भागी होता है ॥

अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुम्पकम् ।
अरक्षितारमत्तारं नृपं विद्यादधोगतिम् ॥ २९२ ॥

पदा०—(अनपेक्षितमर्यादं) शास्त्रमर्यादा उल्लङ्घन करने वाले (नास्तिकं) नास्तिक (विप्रलुम्पकं) अनुचित धन ग्रहण करने वाले (अरक्षितारं) रक्षा न करने वाले (अत्तारं) कर आदि भक्षण करने वाले (नृपं) राजा को (अधोगतिं, विद्यात्) अधोगति को प्राप्त हुआ जाने ॥

अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात्प्रयत्नतः ।
निरोधनेन बन्धेन विविधेन वधेन च ॥ २९३ ॥

पदा०—(अधार्मिकं) पापी पुरुष का (निरोधेन) कारागार में रखने से (बन्धेन) बेड़ी आदि डालकर (च) तथा (विविधेन, वधेन) विविध प्रकार का दण्ड देकर (त्रिभिः, न्यायैः) इन तीन उपायों से (प्रयत्नतः, निगृह्णीयात्) यत्नपूर्वक निग्रह करे, अर्थात् राजा को उचित है कि उक्त तीन उपायों से पापी पुरुष का पाप छुड़ावे ॥

निग्रहेण हि पापानां साधूनां संग्रहेण च ।
द्विजातय इवेज्याभिः पूयन्ते सततं नृपाः ॥२९४॥

पदा०—(हि) निश्चयकरके (पापानां, निग्रहेण) पापियों को दण्ड देने (च) और (साधूनां, संग्रहेण) श्रेष्ठ पुरुषों पर अनुग्रह करने से (नृपाः) राजा (सततं, पूयन्ते) निरन्तर=सदा पवित्र होते हैं (इज्याभिः, इव, द्विजातयः) जैसे यज्ञ करने से द्विज पवित्र होते हैं ॥

क्षन्तव्यं प्रभुणा नित्यं क्षिपतां कार्यिणां नृणाम् ।
बालवृद्धातुराणां च कुर्वता हितमात्मनः ॥ २९५ ॥

पदा०—(आत्मनः, हितं, कुर्वता) अपना हित चाहने वाला (प्रभुणा) राजा (क्षिपतां) अनुचित वचन कहते हुए (कार्यिणां, नृणां) कार्यार्थी पुरुषों (च) और (बालवृद्धातुराणां) बाल, वृद्ध तथा आतुरों को (नित्यं) सदा (क्षन्तव्यं) क्षमा करे ॥

भाष्य—प्रजा के लोग किसी दुःख विशेष से राजा पर आक्षेप करते हुए कुछ भला बुरा कहें अथवा बाल, वृद्ध तथा आतुर राजा पर आक्षेप करें तो राजा उनकी दुःखनिवृत्ति के यत्न सोचता हुआ सदा क्षमा करे, क्योंकि:—

यः क्षिप्तोमर्षयत्यार्त्तैस्तेन स्वर्गे महीयते ।
यस्त्वैश्वर्यान्न क्षमते नरकं तेन गच्छति ॥ २९६ ॥

पदा०—(यः) जो राजा (आर्त्तैः) दुःखी पुरुषों से किये (क्षिप्तः) कठोर आक्षेप (मर्षयति) सहन करता है वह (स्वर्गे, महीयते) स्वर्ग में पूजा जाता है (तु) और (यः) जो (ऐश्वर्यात्) ऐश्वर्य्य के मद से (न, क्षमते) क्षमा नहीं करता (तेन, नरकं, गच्छति) उस आचरण से वह दुर्गति को प्राप्त होता है ॥

राजास्तेनेनगन्तव्यो मुक्तकेशेन धावता ।
आचक्षाणेन तत्स्तेयमेवं कर्मास्मि शाधिमाम् ॥२९७॥
स्कन्धेनादायमुसलं लगुडं वापि खादिरम् ।
शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव वा ॥२९८॥

पदा०—(स्तेनेन) चोरी करने वाला (मुक्तकेशन) सिर के बाल खोले (धावता) दौड़ता हुआ (राजा, गन्तव्यः) राजा के समीप जाकर (तत्, स्तेयं) उस चोरी को (आचक्षाणेन) कहते हुए (एवं) इस प्रकार कहे कि (कर्मास्मि) मैं इस कर्म का करने वाला हूं (शाधि, मां) मुझे दण्ड दो—और (स्कन्धेन) कन्धे पर (खादिरं) खैर की लकड़ी का (मुसलं, वा, लगुडं) मूसल अथवा दण्ड=लाठी (अपि) वा (उभयतः, तीक्ष्णां, शक्तिं) दोनों ओर धारवाली बरछी (वा) अथवा (आयसं, दण्डं) लोहे के लठ को लिये हुए राजा से कहे कि इससे मुझको दण्ड दो, मैं अमुक पाप का करने वाला हूं, इस प्रकार कथन करने पर:—

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते ।
अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम् ॥२९९

पदा०—(शासनात्, वा, विमोक्षात्) दण्ड देने अथवा छोड़ देने से (स्तेनः) चोर (स्तेयात्, विमुच्यते) चोरी के अपराध से छूटजाता है (तु) और (राजा) राजा (तं) उसको (अशासित्वा) दण्ड न दे तो वह (स्तेनस्य) चोर के (किल्विषं, आप्नोति) पाप को प्राप्त होता है ॥

अन्नादे भ्रूणहामार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी ।
गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्विषम् ॥३००

पदा०—(भ्रूणहा) भ्रूणहत्या=गर्भपात करने वाले का पाप उसके (अन्नादे) अन्न खाने वाले को (अपचारिणी, भार्या) व्यभिचारिणी स्त्री का पाप (पत्यौ) पति को (शिष्यः) शिष्य का (गुरौ) गुरु को (च) और (याज्यः) यज्ञ करने वाले का पाप कराने वाले को (मार्ष्टि) लगता है, अर्थात् जिसप्रकार इनका पाप विदित होजाने पर क्षमा करने से पति आदि को लगता है इसी प्रकार विना दण्ड दिये छोड़ देने से (स्तेनः, किल्विषं, राजनि) चोर का पाप राजा को लगता है ॥

राजनिर्धूतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥३०१॥

पदा०—(पापानि, कृत्वा) पाप करके (राजनिर्धूतदण्डाः) राजा से उचित दण्ड पाकर (मानवाः) मनुष्य (निर्मलाः, स्वर्गं, आयान्ति) पवित्र हुए स्वर्ग को प्राप्त होते हैं (यथा) जैसे (सन्तः) सत्पुरुष (सुकृतिनः) पुण्य करके सद्गति लाभ करते हैं ॥

यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेद्भिन्द्याच्च यः प्रपाम् ।
स दण्डं प्राप्नुयान्माषं तच्च तस्मिन्समाहरेत् ॥३०२॥

पदा०-(यः) जो (कूपात्) कूप पर से (रज्जुं) रस्सी (तु) तथा (घटं) घट को (हरेत्) चुरावे (च) और (यः) जो (प्रपां, भिन्द्यात्) प्याऊ को तोड़दे (सः) वह (माषं, दण्डं) एक "माष" के दण्ड को (प्राप्नुयात्) प्राप्त हो (च) और (तत्) वही (तस्मिन्) उन सब को (समाहरेत्) समर्पण करे अर्थात् उस रज्जु तथा घट को वहीं कुए पर रखवावे और प्याऊ को भी वहीं बनवावे ॥

धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः ।
शेषेऽप्येकादशगुणं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥३०३॥

पदा०-(दशभ्यः, कुम्भेभ्यः, अभ्यधिकं, धान्यं, हरतः) दश कुम्भों * से अधिक अन्न का चुराने वाला (वधः) अधिक दण्ड के योग्य है (शेषे) दश तक चुराने पर (अपि) भी (एकादशगुणं) ग्यारह गुना अधिक (तस्य) धन के स्वामी को (तद्धनं) वही अन्न (दाप्यः) दिवावे ॥

तथा धरिममेयानां शतादभ्यधिके वधः ।
सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससाम् ॥ ३०४ ॥

पदा०-(तथा) इसीप्रकार (धीरममेयानां) तराजू वा कांटे में तोलने योग्य (सुवर्णरजतादीनां) सुवर्ण तथा चांदी आदि (च) और (उत्तमानां, वाससां) उत्तम वस्त्र चुराने पर भी (शतात्, अभ्यधिके, वधः) सौ से अधिक पर पूर्वोक्त दण्ड जानो, अर्थात् जैसे धान्य की चोरी में पूर्वोक्त दण्ड विधान किया है इसी प्रकार उक्त चोरी में भी वही दण्ड जानना चाहिये, और :—

* बीस द्रोण का एक "कुम्भ" होता है ।

पंचाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदनमिष्यते ।
शेषेत्वेकादशगुणं मूल्याद्दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ ३०५ ॥

पदा०—(पंचाशतः, अभ्यधिके) पचास " पल " से अधिक चुराने में (हस्तच्छेदनं, इष्यते) हाथ काटने के दण्ड को प्राप्त हो (तु) और (शेषे) पचास तक चुराने में (मूल्यात्, एकादशगुणं, दण्डं, प्रकल्पयेत्) मूल्य से ग्यारहगुना अधिक दण्ड पावे ॥

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः ।
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति ॥ ३०६ ॥

पदा०—(पुरुषाणां, कुलीनानां) बड़े कुल के पुरुषों (च) और (विशेषतः, नारीणां) विशेषकर स्त्रियों के (मुख्यानां, रत्नानां) उत्तम २ रत्नों की (हरेण) चोरी करने में (वधं, अर्हति) वध के योग्य होता है ॥

महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च ।
कालमासाद्य कार्यं च दण्डं राजा प्रकल्पयेत्॥३०७॥

पदा०—(महापशूनां) हाथी, घोड़े आदि बड़े पशुओं (शस्त्राणां, च, औषधस्य) शस्त्र और घृतादि औषधियों के (हरणे) चुराने में (कालं, च, कार्यं, आसाद्य) काल तथा कार्य को देखकर (राजा, दण्डं, प्रकल्पयेत्) राजा दण्ड नियत करे ॥

गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छुरिकायाश्च भेदने ।
पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्धपादिकः ॥३०८॥

पदा०—(ब्राह्मणसंस्थासु, गोषु) ब्राह्मणों के समीप स्थित गौएं चुराने (च) तथा (छुरिकायाः, भेदने) छुरी से भेदन करने (च, एव) और इसी प्रकार (पशूनां, हरणे) अन्य

पशुओं के चुराने में राजा (सद्यः) तत्काल ही (अर्धपादिकः, कार्यः) अर्धपाद के छेदन=काटने का दण्ड दे ॥

सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्यगुडस्य च ।
दध्नःक्षीरस्यतक्रस्य पानीयस्यतृणस्य च ॥३०९॥
वेणुवैदलभाण्डानां लवणानां तथैव च ।
मृण्मयानां च हरणे मृदोभस्मन एव च ॥ ३१० ॥
मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च ।
मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यत्पशुसंभवम् ॥ ३११ ॥
अन्येषां चैवमादीनां मद्यानामोदनस्य च ।
पक्कान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्याद्द्विगुणो दमः॥३१२॥

पदा०—(सूत्रकार्पासकिण्वानां) सूत, कपास, मदिरा का बीज=जिससे मदिरा बनती है वह पदार्थ (गोमयस्य, गुडस्य) गोबर, गुड़ (दध्नः, क्षीरस्य, तक्रस्य) दधि, दूध, मठा (पानीयस्य, च, तृणस्य) पानी तथा तृण—(वेणुवैदलभाण्डानां) मोटे बांस के बने हुए पात्र (तथा, एव, च) और ऐसे ही (लवणानां) लवण=नमक (च) तथा (मृण्मयानां) मिट्टी के पात्र (मृदः, च, भस्मन, एव) मिट्टी और राख भी—(मत्स्यानां, पक्षिणां) मछली, पक्षी (तैलस्य, च, घृतस्य) तैल तथा घृत (मांसस्य, मधुनः) मांस, मधु (च) और (यत्) जो (अन्यत्, पशुसंभवं) अन्य कुछ पशुओं से उत्पन्न होता है, जैसे चर्म आदि—(च) और (अन्येषां, एवमादीनां) इसी प्रकार अन्य पदार्थ भी जो व्यवहार में आते हैं (मद्यानां, च, ओदनस्य) मद्य तथा पके हुए चावल (च) और (पक्कान्नानां, सर्वेषां) सम्पूर्ण पकान्नों की (हरणे) चोरी में (तत्, मूल्यात्) उस पदार्थ के मूल्य से (द्विगुणः, दमः) दूना दण्ड होना चाहिये ॥

पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च ।
अन्येष्वपरिपूतेषु दण्डः स्यात्पञ्चकृष्णलः ॥३१३॥

पदा०—(पुष्पेषु, हरिते, धान्ये) पुष्प, हरित अन्न (गुल्मवल्लीनगेषु) गुल्म, बेल तथा वृक्ष (च) और (अन्येषु,अपरिपूतेषु) अन्य फलफूल जो अभी परिपक्व होकर खाने योग्य नहीं हुए "उन की चोरी करने वाले को" (पंचकृष्णलः, दण्डः, स्यात्) पांच "कृष्णल" दण्ड हो ॥

परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च ।
निरन्वये शतं दण्डः सान्वयेऽर्धशतंदमः ॥ ३१४ ॥

पदा०—(परिपूतेषु, धान्येषु, च, शाकमूलफलेषु) परिपक्व शोधित अन्न और शाक, मूल तथा फलों के चुराने में (निरन्वये, शतं, दण्डः) अपने वंश का न हो तो सौपण दण्ड हो, और (सान्वये, अर्धशतं, दमः) अपना सम्बन्धी हो तो पचास पण दण्ड देना चाहिये ॥

स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म यत्कृतम् ।
निरन्वयं भवेत्स्तेयं हृत्वाऽपव्ययते च यत् ॥ ३१५ ॥

पदा०—(यत्) जो (कर्म) काम (प्रसभं) बलपूर्वक (अन्वयवत्) कुटुम्बियों के समान सन्मुख (कृतं) कियाजाय वह (साहसं, स्यात्) साहस है (निरन्वयं, भवेत्, स्तेयं) सम्बन्धियों से भिन्न दूसरों के समान करे वह चोरी कहाती है (च) और जो (हृत्वा, अपव्ययते) चुराकर मुकरजाय वह भी चोरी है ॥

भाष्य–इस श्लोक का भाव यह है कि जो अन्नादि पदार्थों को स्वामी के सन्मुख बलपूर्वक कुटुम्बियों के समान हरण कर लेवे वह "साहस" तथा स्वामी के पीछे दूसरे गैर आदमियों के समान लेवे वह "चोरी" और जो लेकर मुकरजाय वह भी "चोरी" ही है ॥

यस्त्वेतान्युपक्लृप्तानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः ।
तमाद्यं दण्डयेद्राजा यश्चाग्निं चोरयेद्गृहात् ॥३१६॥

पदा०–(यः) जो (नरः) पुरुष (उपक्लृप्तानि, एतानि, द्रव्याणि) नित्य वर्त्तने योग्य इन पदार्थों को (स्तेनयेत) चुरावे (च) और (यः) जो (गृहात) घर से (अग्निं) अग्नि को (चोरयेत) चुरावे (तं) उसको राजा (आद्यं, दण्डयेत) पहला "साहस" दण्ड दे अर्थात उपरोक्त डाकू के समान ही वह दण्ड का अधिकारी है ॥

येनयेन यथांगेन स्तेनो नृषु विचेष्टते ।
तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥ ३१७ ॥

पदा०–(येन, येन, अङ्गेन) जिस २ अङ्ग से (यथा) जिसप्रकार (स्तेनः) चोर (नृषु, विचेष्टते) मनुष्यों में चेष्टा करता अर्थात चोरी करता है (पार्थिवः) राजा (तस्य) उसका (प्रत्यादेशाय) आगे को पाप निवृत्ति के लिये (तत, तत्, एव, हरेत) वही २ अंग कटवादे ॥

पिताऽऽचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः ।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥३१८॥

पदा०-(पिता, आचार्यः, सुहृद, माता, भार्या, पुत्रः, पुरोहितः) पिता, आचार्य्य, सुहृद्, माता, स्त्री, पुत्र और पुरोहित, इनमें से (यः) जो (स्वधर्मे, न, तिष्ठति) स्वधर्म में स्थित न रहे वह (राज्ञः) राजा को (अदण्ड्यः, नाम) दण्ड के अयोग्य (न,अस्ति) नहीं है अर्थात् यह भी दण्ड योग्य हैं ॥

कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः ।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा ॥३१९॥

पदा०-(यत्र) जिस अपराध में (अन्यः, प्राकृतः, जनः) और साधारण लोग (कार्षापणं) कार्षापण (दण्ड्यः, भवेत) दण्ड के योग्य हों (तत्र) उसी अपराध में " क्षमा करने वाले " राजा को (सहस्रं, दण्ड्यः, भवेत) " सहस्रपण " दण्ड हो (इति, धारणा) यह मर्यादा है ॥

सं०-अब चोरी करनेमें चारो वर्णों के लिये पाप कथन करते हैं :—

अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्विषम् ।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य च॥३२०॥
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत् ।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः ॥३२१॥

पदा०-(शूद्रस्य, स्तेये) शूद्र को चोरी करने में (अष्टापाद्यं) अठगुणा (किल्विषं, भवति) पाप होता है (एव) निश्चयकरके (वैश्यस्य, षोडश) वैश्य को सोलहगुणा (च) तथा (क्षत्रियस्य, द्वात्रिंशत्) क्षत्रिय को बत्तीसगुणा (तु) और (ब्राह्मणस्य, चतुःषष्टिः) ब्राह्मण को चौसठगुणा (वापि) अथवा (पूर्णं,

शतं, भवेत्) पूरा सौगुणा पाप हो (वा) वा (चतुःषष्टिः) चौसठ का (द्विगुणा) दूना=एकसौअट्ठाईस गुणा होता है (हि) क्योंकि (सः) वह (तत्, दोषगुणवित्) उसके गुण दोष का जानने वाला है ॥

योऽदत्तादायिनो हस्ताल्लिप्सेत ब्राह्मणो धनम् ।
याजनाध्यापनेनापि यथा स्तेनस्तथैव सः ॥३२२॥

पदा०—(यः) जो (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (याजनाध्यापनेन, अपि) यज्ञ कराने तथा पढ़ाने द्वारा भी (अदत्तादायिनः, हस्तात्, धनं, लिप्सेत) चोर के हाथ से धन लेने की इच्छा करे तो (यथा, स्तेनः) जैसा चोर है (तथा, एव, सः) वैसा ही वह है, अर्थात् वह ब्राह्मण भी चोर के समान ही दण्डनीय है ॥

द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके ।
आददानः परक्षेत्रान्न दण्डं दातुमर्हति ॥ ३२३ ॥

पदा०—(क्षीणवृत्तिः, अध्वगः, द्विजः) धन से हीन=जिसके पास खाने पीने को कुछ न हो, ऐसा मार्ग में जाता हुआ द्विज (परक्षेत्रात्) दूसरे के खेत से (द्वे, इक्षू) दो गन्ने (च) और (द्वे, मूलके) दो मूली (आददानः) ग्रहण करने वाला (दण्डं, दातुं, न, अर्हति) दण्ड देने योग्य नहीं है, अर्थात् भूख से पीड़ित द्विज किसी के खेत में से थोड़ासा अन्न लेकर खाले तो वह दण्डनीय नहीं ॥

असंधितानां संधाता संधितानां च मोक्षकः ।
दासाश्वरथहर्ता च प्राप्तः स्याच्चोरकिल्बिषम् ॥ ३२४ ॥

पदा०—(असंधितानां, संधाता) दूसरे के खुले पशुओं का

बांधने वाला (च) तथा (संधितानां, मोक्षकः) बन्धे हुओं को खोल देने वाला (च) और (दास, अश्व, रथ, हर्ता) सेवक, घोड़ा तथा रथादि का हरण करने वाला (चोरकिल्बिषं, प्राप्तः, स्यात्) चोर के पाप=दण्ड को प्राप्त हो ॥

अनेन विधिना राजा कुर्वाणः स्तेननिग्रहम् ।
यशोऽस्मिन्प्राप्नुयाल्लोके प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥३२५॥

पदा०—(अनेन, विधिना, स्तेननिग्रहं, कुर्वाणः, राजा) इस विधि से चोरों का निग्रह करने वाला राजा (अस्मिन्,लोके,यशः, प्राप्नुयात्) इस लोक में यश को प्राप्त होता (च) और (प्रेत्य) परलोक में (अनुत्तमं, सुखं) अनुत्तम सुख लाभ करता है ॥

सं०—अब बलात्कार से धन हरण करने में दण्ड कथन करते हैं:—

ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम् ।
नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम् ॥ ३२६ ॥

पदा०—(ऐन्द्रं, स्थानं, अभिप्रेप्सु) इन्द्र के स्थान की इच्छा करने वाला अर्थात् मोक्ष का अभिलाषी (च) और (अक्षयं, अव्ययं, यशः) नाश न होने वाले अविनाशी यश का चाहने वाला राजा (साहसिकं, नरं) साहस करने वाले नर की (क्षणं, अपि) क्षणभर भी (न, उपेक्षेत) उपेक्षा न करे अर्थात् उसको तत्काल ही दण्ड दे ॥

वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसतः ।
साहसस्य नरः कर्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः ॥३२७॥

पदा०—(वाग्दुष्टात्, तस्करात्, च, दण्डेन, हिंसतः, एव) गाली गलौज बकने वाले, चोर और दण्ड से हिंसा=मारने वाले

सें भी (साहसस्य, कर्त्ता, नरः) साहस=ज़बरदस्ती करने वाला मनुष्य (पापकृत्तमः, विज्ञेयः) अधिक पापी जानना चाहिये ॥

साहसे वर्त्तमानं तु यो मर्षयति पार्थिवः ।
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति ॥३२८॥

पदा०—(यः) जो (पार्थिवः) राजा (साहसे, वर्त्तमानं, मर्षयति) साहस में स्थित को सहन करता अर्थात् साहस करने वाले को क्षमा करता है (सः) वह (आशु, विनाशं, व्रजति) शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होता (च) और (विद्वेषं, अधिगच्छति) लोगों में द्वेष को प्राप्त होता है अर्थात् ऐसे राजा से सब प्रजा द्वेष करती है ॥

न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात् ।
समुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वभूतभयावहान् ॥३२९॥

पदा०—(मित्रकारणात्) मित्र के कारण (वा) अथवा (विपुलात्, धनागमात्) अधिक धन की प्राप्ति होने पर भी राजा (सर्वभूतभयावहान्) सब प्राणियों को भय देने वाले (साहसिकान्) साहसी लोगों को (न, समुत्सृजेत्) न छोड़े, अर्थात् उनको भी अवश्य दण्ड दे ॥

सं०—अब द्विजातियों के लिये युद्ध की आज्ञा कथन करते हैं:—

शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते ।
द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते ॥३३०॥
आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे ।
स्त्री विप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन्धर्मेण न दुष्यति ॥३३१॥

पदा०-(यत्र) जहां (द्विजातीनां) ब्राह्मणादि तीनों (वर्णानां) वर्णों का (धर्मः, उपरुध्यते) धर्म रोकाजाता हो अर्थात् उनके धर्मपालन में विघ्न होता हो (च) और (काल-कारिते, विप्लवे) कालवशात् बलवे होते हों, वहां (द्विजातिभिः, शस्त्रं, ग्राह्यं) द्विजातियों को शस्त्र ग्रहण करने चाहियें अर्थात् युद्ध के लिये कटिबद्ध हों—(च) और (आत्मनः, परित्राणे) अपनी रक्षा के लिये (च) तथा (दक्षिणानां, संगरे) दक्षिणा के छीनने पर (स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ,च) स्त्री तथा ब्राह्मणों की विपत्ति में अर्थात् उनकी रक्षा के लिये (धर्मेण) धर्म से (घ्नन्) शत्रुओं का हनन करने वाला (न,दुष्यति) पाप का भागी नहीं होता ॥

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥३३२॥

पदा०-(गुरुं, वा, बालवृद्धौ) गुरु वा बालक, वृद्ध (वा) अथवा (बहुश्रुतं, ब्राह्मणं) बहुश्रुत ब्राह्मण, इनमें जो (आतता-यिनं, आयान्तं) आततायि=जो शस्त्र लेकर मारने आवे वह (अविचारयन्, एव, हन्यात्) विना विचारे ही हनन के योग्य है अर्थात् राजा उसको तत्काल ही मार दे ॥

सं०-अब आततायी का लक्षण कथन करते हैं :—

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ।
क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते ह्याततायिनः ॥३३३॥

पदा०-(अग्निदः, गरदः) अग्नि लगाने वाला, विष देने वाला (शस्त्रपाणिः, धनापहः) हाथ में शस्त्र लिये हुए मारने को उद्यत, धन छीनने वाला (च) और (एव) इसीप्रकार

(क्षेत्रदारहरः) क्षेत्र=भूमि तथा स्त्री का हरण करने वाला (हि) निश्चयकरके (षडेते, आततायिनः) यह छः "आततायी" हैं ॥

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति ॥३३४॥

पदा०–(प्रकाशं, वा, अप्रकाशं) लोगों के सन्मुख वा एकान्त में (आततायिवधे) आततायी के मारने में (हन्तुः) मारने वाले को (कश्चन, दोषः, न, भवति) कोई दोष नहीं होता, क्योंकि (तं, मन्युः) वह क्रोध (मन्युं, ऋच्छति) उस क्रोध को प्राप्त होता है अर्थात् उसके क्रोध को दण्डदाता का क्रोध मारता है ॥

सं०–अब परस्त्रीगामी के लिये दण्ड कथन करते हैं :—

परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नॄन्महीपतिः ।
उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ॥३३५॥

पदा०–(परदाराभिमर्शेषु, प्रवृत्तान, न्हन) परस्त्रीसंभोग में प्रवृत्त पुरुषों को (उद्वेजनकरैः, दण्डैः) भयानक दण्ड देकर तथा (छिन्नयित्वा) अंगभंग करके अर्थात् नाक कान आदि कटवाकर (प्रवासयेत्) देश से बाहर निकाल दे ॥

तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः ।
येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते ॥३३६॥

पदा०–(हि) क्योंकि (तत्समुत्थः) व्यभिचार से ही (लोकस्य) लोक में (वर्णसंकरः, जायते) वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं (येन) जिससे (मूलहरः, अधर्मः) मूल को नाश करने वाला अधर्म (सर्वनाशाय, कल्पते) सर्वनाश के लिये कल्पना कियाजाता है, अर्थात् परस्त्री गमनरूप पाप सबका नाशक होता है ॥

परस्य पत्न्या पुरुषः संभाषां योजयन् रहः ।
पूर्वमाक्षारितो दोषैः प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम् ॥ ३३७ ॥

पदा०-(पूर्वं, दोषैः, आक्षारितः, पुरुषः) पहिले दोषों से धिक्कारा हुआ पुरुष (परस्य, पत्न्या) परस्त्री के साथ (रहः) एकान्त में (संभाषां, योजयन्) बात चीत करे तो (पूर्वसाहसं, प्राप्नुयात) "प्रथमसाहस" दण्ड का भागी होता है ॥

यस्त्वनाक्षारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात् ।
न दोषं प्राप्नुयात्किंचिन्न हि तस्य व्यतिक्रमः॥ ३३८ ॥

पदा०-(तु) और (यः) जो (पूर्वं, अनाक्षारितः) पहिले से बदनाम नहीं है वह (कारणात, अभिभाषेत) किसी कारण से परस्त्री के साथ बातचीत करे तो (किंचिन, दोषं, न, प्राप्नुयात) कुछ दोष को प्राप्त नहीं होता (हि) क्योंकि (तस्य) उसका (व्यतिक्रमः, न) कोई अपराध नहीं है ॥

परस्त्रीयं योऽभिवदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेऽपि वा ।
नदीनां वापि संभेदे स संग्रहणमाप्नुयात् ॥ ३३९ ॥

पदा०-(यः) जो पुरुष (तीर्थे, अरण्ये, वा, वने) तीर्थ, जंगल वा वन में (वा) अथवा (नदीनां, संभेदे, अपि) नदियों के संगम में भी (परस्त्रीयं, अभिवदेत) दूसरे की स्त्री से संभाषण करे (सः) वह (संग्रहणं, प्राप्नुयात) परस्त्रीहरणरूप दोष को प्राप्त हो, अर्थात वह उसी दण्ड का भागी होता है जिस दण्ड का भागी परस्त्रीहरण करने वाला होता है ॥

उपचारक्रियाकेलिः स्पर्शो भूषणवाससाम् ।
सह खट्वासनं चैव सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥ ३५० ॥

पदा०-(उपचारक्रिया, केलिः) माला तथा चन्दनादि गन्ध का क्षेपन करना (च) और (एव) इसी प्रकार परिहास आदि करना (भूषणवाससां, स्पर्शः) भूषण तथा वस्त्रों का स्पर्श करना (खट्वासनं,सह) शय्या और आसन पर साथ बैठना (सर्वं) इन सब का भी (संग्रहणं, स्मृतं) परस्त्रीहरण के समान ही अपराध कहा है, और :—

स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तया ।
परस्परस्यानुमते सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥ ३५१ ॥

पदा०-(यः) जो (स्त्रियं, अदेशे, स्पृशेत्) परस्त्री को गुप्त स्थान में स्पर्श करे (वा) अथवा पुरुष (तया, स्पृष्टः, मर्षयेत्) उस स्त्री के स्पर्श को क्षमा करे अर्थात् सहारले तो (परस्परस्यानुमते) आपस की प्रसन्नता में भी (सर्वं, संग्रहणं, स्मृतं) यह सब परस्त्रीहरण के समान ही अपराध कहा है ॥

भाष्य-इस श्लोक का भाव यह है कि जो पुरुष एकान्त स्थान में किसी स्त्री के गुप्त अंगों का स्पर्श करे अथवा स्त्री किसी परपुरुष के गुप्त अंगों को छुए, और वह दोनों सहारलें तो ऐसी अवस्था में परस्पर प्रसन्नता होने पर भी परस्त्रीहरण का अपराध होता है ॥

कामाभिपातिनीया तु नरं स्वयमुपव्रजेत् ।
राज्ञादास्येनियोज्यासा कृत्वा तद्दोषघोषणम् ॥३५२॥

पदा०-(तु) और जो स्त्री (कामाभिपातिनीया) कामातुर

हुई (स्वयं, नरं, उपव्रजेत्) स्वयं परपुरुष के समीप जावे तो (राज्ञा) राजा (तत, दोष, घोषणं, कृत्वा) उसके दोष की मनादी कराके (सा) उसको (दास्ये, नियोज्या) दासियों में नियुक्त करे अर्थात् नौकर रखले ॥

भिक्षुका बन्दिनश्चैव दीक्षिताः कारवस्तथा ।
संभाषणं सह स्त्रीभिः कुर्युरप्रतिवारिताः ॥ ३४३ ॥

पदा०—(भिक्षुकः, बन्दिनः, दीक्षिताः, तथा, कारवः, चैव) भिखारी, वंशावली कहने वाले, दीक्षा प्राप्त किये हुए पण्डित और रसोइया आदि घर का काम करने वाले (स्त्रीभिः, सह) स्त्रियों के साथ (अप्रतिवारिताः) निवारण न करने पर (संभाषणं, कुर्युः) संभाषण करसकते हैं ॥

न संभाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत् ।
निषिद्धो भाषमाणस्तु सुवर्णं दण्डमर्हति ॥३४४॥

पदा०—(प्रतिषिद्धः) निषेध करने पर (परस्त्रीभिः) दूसरे की स्त्री के साथ (संभाषां, न,समाचरेत्) संभाषण न करे, और (निषिद्धः, भाषमाणः, तु) निषेध करने पर बातचीत करे तो (सुवर्णं, दण्डं, अर्हति) एक " सुवर्ण " दण्ड पाने योग्य है, जो सोलह माशे का होता है ॥

नैषचारणदारेषु विधिर्नात्मोपजीविषु ।
सज्जयन्ति हि ते नारीर्निगूढाश्चारयन्ति च ॥३४५॥

पदा०—(एषः, विधिः) यह पूर्वोक्त विधि (आत्मोपजीविषु) स्त्रियों से आजीविका करने वाले (चारणदारेषु) नट वा गाने बजाने वालों की स्त्रियों में (न) नहीं अर्थात् इनसे संभाषण

करसकता है (हि) क्योंकि (ते) वह चारणादि (निगूढाः) छिपे हुए (नारीः, सज्जयन्ति) स्त्रियों को मिलाते (च) और (चारयन्ति) इधर उधर घुमाते हैं ॥

किंचिदेव तु दाप्यः स्यात्संभाषां ताभिराचरन् ।
प्रैष्यासु चैकभक्तासु रहः प्रव्रजितासु च ॥ ३४६ ॥

पदा०-(तु) परन्तु (ताभिः) उक्त स्त्रियों के साथ (च) और (प्रैष्यासु) दासी (एकभक्तासु) पतिव्रता (च) तथा (प्रव्रजितासु) विरक्ताओं से (रहः) एकान्त में (संभाषां, आचरन्) संभाषण करने वाले को (किंचित, एव) कुछेक (दाप्यः, स्यात) दण्ड हो, अर्थात इनको कुदृष्टि से देखने वाले के लिये कुछ दण्ड अवश्य मिलना चाहिये ॥

योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति ।
सकामां दूषयंस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयान्नरः ॥ ३४७ ॥

पदा०-(यः) जो हीनजाति (नरः) पुरुष (अकामां, कन्यां, दूषयेत) इच्छा न करने वाली कन्या को दूषित करे (सः) वह (सद्यः) तत्काल ही (वधं, अर्हति) वध योग्य है, और (सकामां, दूषयन्) कन्या की इच्छा से दूषित करने वाला (तुल्यः) सजातीय (न, वधं, प्राप्नुयात) वध के योग्य नहीं अर्थात उसको कोई अन्य दण्ड मिलना चाहिये ॥

अभिषह्य तु यः कन्यां कुर्याद्दर्पेण मानवः ।
तस्याशु कर्त्ये अंगुल्यौ दण्डं चार्हति षट्शतम् ॥ ३४८ ॥

पदा०-(तु) और (यः) जो (मानवः) मनुष्य (दर्पेण) अहंकार द्वारा (अभिषह्य) बलात्कार से (कन्यां, कुर्यात)

कन्या को भ्रष्ट करे (तस्य) उसकी (अंगुल्यौ, कर्त्यै, आशु) दो अंगुली शीघ्र काटी जावें (च) और (षट्शतं, दण्डं, अर्हति) छःसौ पण दण्ड के योग्य है ॥

सकामां दूषयंस्तुल्यो नांगुलिच्छेदमाप्नुयात् ।
द्विशतं तु दमं दाप्यः प्रसंगविनिवृत्तये ॥ ३४९ ॥

पदा०—(तु) परन्तु (तुल्यः) सजातीय पुरुष (सकामां) इच्छा करने योग्य कन्या को (दूषयन्) दूषित करे तो (अंगुलिच्छेदं, न, आप्नुयात्) अंगुली काटने के दण्ड को प्राप्त न हो अर्थात् उसको अंगुली काटने का दण्ड न दियाजाय किन्तु (प्रसङ्गविनिवृत्तये) प्रसङ्गनिवृत्ति के लिये (द्विशतं, दमं, दाप्यः) दोसौ "पण" दण्ड योग्य है ॥

सं०—अब कन्या वा स्त्री के दूषित करने में दण्ड कथन करते हैं:—

कन्यैव कन्यां या कुर्यात्तस्याः स्याद्द्विशतो दमः ।
शुल्कं च द्विगुणं दद्याच्छिफाश्चैवाप्नुयाद्दश ॥३५०॥

पदा०—(या) जो (कन्यां, एव) कन्या ही (कन्यां) कन्या को "अंगुली आदि से" (कुर्यात्) भ्रष्ट करे तो (तस्याः) उसको (द्विशतः, दमः, स्यात्) दो सौ "पण" दण्ड हो (च) और कन्या का पिता (शुल्कं, द्विगुणं, दद्यात्) दूना धन दण्ड देवे (च) तथा (दश, शिफाः, आप्नुयात्) दश बेत के दण्ड को प्राप्त हो ॥

या तु कन्यां प्रकुर्यात्स्त्री सा सद्यो मौण्ड्यमर्हति ।
अंगुल्योरेव वा छेदं खरेणोद्वहनं तथा ॥ ३५१ ॥

पदा०—(तु) और (या) जो स्त्री (कन्यां, प्रकुर्यात्)

कन्या को अंगुली आदि से भ्रष्ट करे (सा) वह (सद्यः, मौण्ड्यं, अर्हति) तत्काल ही सिर मुड़वाने योग्य है अर्थात् उसका उसी समय सिर मुड़वा दियाजाय (वा) अथवा (अंगुल्योः, एव, छेदं) अंगुलियों के ही काटने का दण्ड हो (तथा) और (खरेण, उद्वहनं) गधे पर चढ़ाकर घुमाई जाय ॥

सं०—अब व्यभिचारिणी स्त्री के लिये दण्ड कथन करते हैं:—

भर्त्तारं लङ्घयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता ।
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ॥३५२॥

पदा०—(तु) और (या, स्त्री) जो स्त्री (ज्ञातिगुणदर्पिता) पिता आदि बान्धव, रूप तथा धन के अभिमान से (भर्त्तारं, लंघयेत्) अपने भर्त्ता का अपमान अथवा परपुरुष से सम्बन्ध करे (तां) उसको राजा (बहुसंस्थिते, संस्थाने) अनेक आदमियों के बीच में (श्वभिः, खादयेत्) कुत्तों से खवावे=फड़वावे ॥

सं०—अब व्यभिचारी पुरुष के लिये दण्ड कथन करते हैं:—

पुमांसं दाहयेत्पापंशयने तप्त आयसे ।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत् ॥३५३॥

पदा०—(पापं, पुमांसं) व्यभिचारी पापी पुरुष को (तप्त, (आयसे, शयने) तपे हुए लोहे की चारपाई पर सुलाकर (दाहयेत्) जलावे (च) और सब लोग उस पर (अभ्यादध्युः, काष्ठानि) लकड़ियां रखें ताकि (तत्र, पापकृत्, दह्येत) उसी शय्या पर व्यभिचाररूप पाप करने वाला जल जाय ॥

संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः ।
व्रात्यया सह संवासे चाण्डाल्या तावदेव तु ॥३५४॥

पदा०-(दुष्टस्य) दुष्ट पुरुष को (संवत्सराभिशस्तस्य) व्यभिचार=परस्त्रीगमन करते २ एक वर्ष व्यतीत होजाय तो उसके लिये (द्विगुणः, दमः) पीछे कहे दण्ड से दूना दण्ड हो (तु) और (व्रात्यया) संस्कारानर्ह तथा (चाण्डाल्या, सह) चण्डाली के साथ (संवासे) सहवास होने पर (तावत्, एव) उतना ही दण्ड होना चाहिये ॥

शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन् ।
अगुप्तमंगसर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते ॥ ३५५ ॥

पदा०-(गुप्तं, वा, अगुप्तं) रक्षित अथवा अरक्षित (द्वैजातं, वर्णं) द्विजाति वर्ण की स्त्री को (शूद्रः, आवसन्) शूद्र भोगे तो (अगुप्तं) अरक्षिता के भोग में (अङ्ग, सर्वस्वैः) कोई एक अंगछेदन तथा सम्पूर्ण धनहरण का दण्ड दिया जाय और (गुप्तं) रक्षिता को भोगने में (सर्वेण, हीयते) सब शरीर तथा धनादि से हीन करदे अर्थात् उसको सर्वस्व नाश का दण्ड दिया जाय ॥

वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्संवत्सरनिरोधतः ।
सहस्रं क्षत्रियो दण्ड्यो मौण्ड्यं मूत्रेण चार्हति॥३५६॥

पदा०-(वैश्यः) यदि वैश्य (संवत्सरनिरोधतः) एक वर्ष पर्य्यन्त परस्त्री से व्यभिचाररूप पाप करता रहे तो (सर्वस्वः, दण्डः, स्यात्) सर्वस्वहरण रूप दण्ड हो, यदि (क्षत्रियः, सहस्रं, दण्ड्यः) क्षत्रिय ऐसा करे तो उसको एकसहस्र "पण" दण्ड हो (च) और (मूत्रेण, मौण्ड्यं, अर्हति) मूत्र से उसका सिर मुड़ाया जाय ॥

ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु गच्छेतां वैश्यपार्थिवौ ।
वैश्यं पंचशतं कुर्यात् क्षत्रियं तु सहस्रिणम् ॥३५७॥

पदा०-(तु) यदि (अगुप्तां, ब्राह्मणीं) अरक्षिता ब्राह्मणी के साथ (वैश्यपार्थिवौ, गच्छेतां) वैश्य तथा क्षत्रिय गमन करें तो राजा (वैश्यं) वैश्य को (पंचशतं) पांचसौ (तु) और (क्षत्रियं) क्षत्रिय को (सहस्रिणं, कुर्यात्) हज़ार "पण" दण्ड देवे ॥

उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह ।
विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना॥३५८॥

पदा०-(तु) और यदि (तौ, उभौ, एव) उक्त दोनों ही अर्थात् वैश्य तथा क्षत्रिय (गुप्तया, ब्राह्मण्या, सह) रक्षिता ब्राह्मणी के साथ (विप्लुतौ) गमन करें तो (शूद्रवत्, दण्ड्यौ) शूद्र के समान दण्ड योग्य हैं (वा) अथवा (कटाग्निना, दग्धव्यौ) चटाई की अग्नि से दग्ध करदेवे अर्थात् उनको चटाई में लपेट कर जलादे ॥

सहस्रं ब्राह्मणो दण्ड्यो गुप्तां विप्रां बलाद्व्रजन् ।
शतानि पंच दण्ड्यः स्यादिच्छन्त्या सह संगतः॥३५९॥

पदा०-(गुप्तां. विप्रां) यदि रक्षिता ब्राह्मणी से (ब्राह्मणः, बलात्, व्रजन्) ब्राह्मण बलात्कार मैथुन करे तो (सहस्रं, दण्ड्यः) हज़ार "पण" दण्ड होना चाहिये, और (इच्छन्त्या, सह, संगतः) इच्छा करती हुई के साथ संग करे तो (पंचशतानि, दण्ड्यः, स्यात्) पांचसौ "पण" दण्ड हो ॥

वैश्यश्चेत् क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो व्रजेत् ।
यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुभौ दण्डमर्हतः ॥३६०॥

पदा०-(चेत्) यदि (गुप्तां, क्षत्रियां) रक्षिता क्षत्रिया से (वैश्यः) वैश्य गमन करे (वा) अथवा (वैश्यां, क्षत्रियः, व्रजेत्) वैश्या से क्षत्रिय गमन करे तो (यः) जो ऊपर (अगुप्तायां, ब्राह्मण्यां) अरक्षिता ब्राह्मणी से गमन करने में दण्ड कहा है (तौ, उभौ, दण्ड, अर्हतः) वही दण्ड उन दोनों को हो ॥

सहस्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन् ।
शूद्रायां क्षत्रियविशोः साहस्रो वै भवेद्दमः ॥३६१॥

पदा०-(तु) और (ते, गुप्ते) उन रक्षिता क्षत्रिया तथा वैश्या से (ब्राह्मणः, व्रजन्) ब्राह्मण गमन करे तो (सहस्रं,दण्डं, दाप्यः) सहस्र पण दण्ड पावे, और (शूद्रायां) रक्षिता शूद्रा से (क्षत्रियविशोः) क्षत्रिय तथा वैश्य गमन करे तो (वै) निश्चय करके (साहस्रः, दमः, भवेत्) हज़ार "पण" दण्ड होता है ॥

क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये पंचशतं दमः ।
मूत्रेण मौण्ड्यमिच्छेत्तु क्षत्रियो दण्डमेव वा ॥३६२॥

पदा०-(अगुप्तायां, क्षत्रियायां) अरक्षिता क्षत्रिया से (वैश्ये) वैश्य के गमन करने पर (पंचशतं, दमः) पांचसौ "पण" दण्ड होना चाहिये (तु) और (क्षत्रियः) क्षत्रिय गमन करे तो (दण्डं, एव) पांचसौ पण ही दण्ड दे (वा) अथवा (इच्छेत्) चाहे तो (मूत्रेण, मौण्ड्यं) मूत्र से मुण्डन करावे, अर्थात् धन न देसके तो मूत्र से मुण्डन कियाजाय ॥

अगुप्ते क्षत्रिया वैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन् ।
शतानिपञ्च दण्ड्यःस्यात्सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम् ॥३६३॥

पदा०—(अगुप्ते) अरक्षिता (क्षत्रियावैश्ये) क्षत्रिया, वैश्या (वा) अथवा (शूद्रां) शूद्रा से (ब्राह्मणः, व्रजन्) ब्राह्मण गमन करे तो (पञ्चशतानि) पांचसौ पण दण्ड (तु) और (अन्त्यजस्त्रियं) अन्त्यजा स्त्री के साथ गमन करे तो (सहस्रं, दण्ड्यः, स्यात्) एक हज़ार पण दण्ड हो ॥

सं०—अब धर्मरक्षक राजा को फल कथन करते हैं :—

यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक् ।
न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक् ॥३६४॥

पदा०—(यस्य, पुरे) जिस राजा के राज्य में (स्तेनः) चोर (अन्यस्त्रीगः) परस्त्रीगामी (दुष्टवाक्) गाली देने वाला (साहसिकदण्डघ्नौ) साहसिक तथा डांका डालने वाला और मारपीट करने वाला पुरुष (नास्ति) नहीं है (सः, राजा) वह राजा (शक्रलोकभाक्) स्वर्गलोक का भागी होता है ॥

एतेषां निग्रहो राज्ञः पञ्चानां विषये स्वके ।
साम्राज्यकृत्सजात्येषु लोके चैव यशस्करः ॥३६५॥

पदा०—(स्वके, विषये) अपने राज्य में (एतेषां, पञ्चानां, निग्रहः) इन पूर्वोक्त चोर आदि पांचो का निग्रह (राज्ञः) राजा को (सजात्येषु, साम्राज्यकृत) सजातीय राजाओं के मध्य में साम्राज्य=चक्रवर्ती करने वाला (च) और (लोके) जगत में (एव) निश्चयकरके (यशस्करः) यश देने वाला है ॥

सं०–अब योग्य यजमान तथा ऋत्विक् के त्याग करने में दण्ड कथन करते हैं:—

ऋत्विजं यस्त्यजेद्याज्यो याज्यं चर्त्विक्त्यजेद्यदि।
शक्तं कर्मण्यदुष्टञ्च तयोर्दण्डः शतं शतम् ॥३८८॥

पदा०–(यः, याज्यः) जो यजमान (कर्मणि, शक्तं, च, अदुष्टं) यज्ञकर्म में समर्थ तथा साधु (ऋत्विजं, त्यजेत्) ऋत्विक् को छोड़दे (च) और (यदि, ऋत्विक्, याज्यं, त्यजेत्) यदि ऋत्विक्=यज्ञ करानेवाला उक्त गुणसम्पन्न यजमान को त्यागदे अर्थात् यज्ञ पूर्ण न करावे तो (तयोः) उन दोनों को राजा (शतं, शतं, दण्डः) सौ सौ पण दण्ड देवे ॥

न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति।
त्यजन्नपतितानेतान् राज्ञा दण्ड्यः शतानिषट् ॥३८९॥

पदा०–(माता, पिता, स्त्री, पुत्रः) माता, पिता, स्त्री और पुत्र इनका (त्यागं, न, अर्हति) त्याग योग्य नहीं और जो (एतान्, अपतितान्, त्यजन्) इन विना पतित हुओं का त्याग करे तो वह (राज्ञा) राजा से (षट्शतानि, दण्ड्यः) छः सौ पण दण्ड के योग्य है ॥

आश्रमेषु द्विजातीनां कार्ये विवदतां मिथः।
न विब्रूयान्नृपो धर्मं चिकीर्षन्हितमात्मनः ॥३९०॥

पदा०–(आश्रमेषु, द्विजातीनां) अपने २ आश्रमों में स्थित द्विजाति (कार्ये, मिथः, विवदतां) धर्मसम्बन्धी कार्यों में विवाद=शास्त्रार्थ करते हों तो (नृपः) राजा (आत्मनः, हितं, धर्मं, चिकीर्षन्) अपने हितकारी धर्म को चाहता हुआ (न, ब्रूयात्) न बोले अर्थात् किसी का पक्षपात न करे ॥

यथार्हमेतानभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ।
सान्त्वेन प्रशमय्यादौ स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥३६९॥

पदा०-(पार्थिवः) राजा (एतान्, यथार्हं, अभ्यर्च्य) इन आश्रमियों का यथायोग्य सत्कार करके (ब्राह्मणैः,सह) ब्राह्मणों के साथ (आदौ, सान्त्वेन, प्रशमय्य) प्रथम शान्ति से समझाकर पुनः (स्वधर्मं, प्रतिपादयेत्) अपना धर्म प्रतिपादन करे ॥

सं०-अब उत्सवादिकों के समय योग्यों को भोजन न कराने में दण्ड कथन करते हैं :—

प्रतिवेश्यानुवेश्यौ च कल्याणे विंशतिद्विजे ।
अर्हावभोजयन्विप्रो दण्डमर्हति माषकम् ॥ ३७० ॥

पदा०-(विंशतिद्विजे, कल्याणे) बीस ब्राह्मणों को जहां निमन्त्रण दिया हो ऐसे उत्सव में (अर्हौ, प्रातिवेश्यानुवेश्यौ, अभोजयन्) अपने इष्टमित्रों तथा पड़ोसियों को भोजन न कराने वाला (विप्रः) ब्राह्मण (-माषकं, दण्डं, अर्हति) एक रौप्य माषक दण्ड के योग्य है॥

श्रोत्रियः श्रोत्रियं साधुं भूतिकृत्येष्वभोजयन् ।
तदन्नं द्विगुणं दाप्यो हिरण्यं चैव माषकम् ॥३७१॥

पदा०-(भूतिकृत्येषु) विवाहादि उत्सवों में (साधुं,श्रोत्रियं) सज्जन वेदपाठी को (अभोजयन्, श्रोत्रियः) भोजन न कराने वाला श्रोत्रिय (तत्, अन्नं, द्विगुणं) उस अन्न से दूना अन्न (च) और (हिरण्यं, एव, माषकं, दाप्यः) एक हिरण्यमाषक=सुवर्ण का " मापा " दण्ड देवे ॥

सं०—अब कर लेने का वर्णन करते हैं :—

अन्धो जडः पीठसर्पी सप्तत्यास्थविरश्च यः ।
श्रोत्रियेषूपकुर्वंश्च न दाप्याः केनचित्करम् ॥३७२॥

पदा०—(यः) जो (अन्धः, जडः, पीठसर्पी) अन्धा, बधिर, पंगु=लंगड़ा (सप्तत्या, स्थविरः) सत्तर वर्ष का वृद्ध (च) तथा जो (श्रोत्रियेषु, उपकुर्वन्) विद्वानों का उपकार करने वाला हो, इनमें से (केनचित्करं, न, दाप्याः) किसी से भी राजा कर न दिलावे ॥

श्रोत्रियं व्याधितार्त्तौ च बालवृद्धावकिञ्चनम् ।
महाकुलीनमार्य्यंश्च राजा सम्पूजयेत्सदा ॥३७३॥

पदा०—(श्रोत्रियं, व्याधितार्त्तौ) वेदपाठी, रोगी, आर्त्त=दुःखित (बालवृद्धौ, अकिञ्चनं) बालक, वृद्ध, दरिद्र (महाकुलीनं, आर्यं, च) बड़े कुल में उत्पन्न तथा आर्य=श्रेष्ठपुरुषों का (राजा) राजा (सदा, सम्पूजयेत्) सदा सन्मान करे ॥

सं०—अब धोबी तथा जुलाहे का धर्म कथन करते हैं :—

शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे नेनिज्यान्नेजकः शनैः ।
नच वासांसिवासोभिर्निर्हरेन्न च वासयेत् ॥३७४॥

पदा०—(नेजकः) धोबी (श्लक्ष्णे, शाल्मलीफलके) सेमर की चिकनी पटिया पर (शनैः, नेनिज्यात्) धीरे २ वस्त्रों को धोवे (च) और (वासोभिः, वासांसि, न, निर्हरेत्) परस्पर एक दूसरे के कपड़ों को न मिलावे, न बदले (च) तथा (न, वासयेत्) स्वयं धारण न करे नाही बहुत काल तक अपने घर रक्खे ॥

तन्तुवायो दशपलं दद्यादेकपलाधिकम् ।
अतोऽन्यथा वर्त्तमानो दाप्यो द्वादशकं दमम् ॥३७५॥

पदा०—(तन्तुवायः)जुलाहा (दशपलं) दशपल सूत लेके वस्त्र बनाकर माड़ी आदि लगा के (एकपलाधिकं,दद्यात) ग्यारह पल तोल कर देवे (अतः, अन्यथा, वर्त्तमानः) इससे विपरीत वर्त्ते तो राजा (द्वादशकं, दमं, दाप्यः) बारह पण दण्ड देवे ॥

सं०—अब शुल्क=कर लेने का नियम विधान करते हैं :—

शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्यविचक्षणाः ।
कुर्युरर्घं यथा पण्यं ततो विंशं नृपो हरेत् ॥३७६॥

पदा०—(शुल्कस्थानेषु, कुशलाः) चुङ्गी आदि के विषय में कुशल तथा (सर्वपण्यविचक्षणाः) सब प्रकार के लेन देन में जो चतुर हों उन सौदागरों पर (यथा, पण्यं) प्रत्येक वस्तु के लाभ के अनुसार (अर्घं, कुर्युः) चुङ्गी नियत करें और (ततः, नृपः, विंशं, हरेत) उस लाभ में से राजा बीसवां भाग ले ॥

राज्ञः प्रख्यातभांडानि प्रतिषिद्धानि यानि च ।
तानि निर्हरतो लोभात्सर्वहारं हरेन्नृपः ॥३७७॥

पदा०—(राज्ञः, प्रख्यातभाण्डानि) राजा के जो प्रसिद्ध निजविक्रेय द्रव्य (च) तथा (यानि, प्रतिषिद्धानि) जो राजा के बेचने से निषेध किये हुए द्रव्य हैं (तानि) उनको (लोभात, निर्हरतः) लोभ से अन्य जगह लेजाकर बेचने वाले का (नृपः) राजा (सर्वहारं, हरेत) सर्वस्व हरण करले ॥

शुल्कस्थानं परिहरन्नकाले क्रयविक्रयी ।
मिथ्यावादी च संख्याने दाप्योऽष्टगुणमत्ययम् ॥३७८॥

पदा०—(शुल्कस्थानं, परिहरन्) चुङ्गी के स्थान से हटकर अन्य स्थान मे माल लेजाने वाला (अकाले, क्रयविक्रयी)

वेसमय वेचने मोललेने वाला (च) और (संख्याने, मिथ्यावादी) शुल्क की न्यूनता के निमित्त अधिक वस्तु को न्यून बताकर मिथ्या बोलने वाला, इनको राजा (अत्ययं, अष्टगुणं, दाप्यः) नियत राजकर से अथवा जितने के लिये झूठ बोला हो उससे आठगुना अधिक दण्ड देवे ॥

सं०-अब क्रय विक्रयका भाउ तथा नियत तौलकी परीक्षा कथन करते हैं :—

आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयावुभौ ।
विचार्य सर्वपण्यानां कारयेत्क्रयविक्रयौ ॥ ३७९ ॥

पदा०-(आगमं, निर्गमं, स्थानं) आने जाने का व्यय स्थान तथा (वृद्धिक्षयौ, उभौ) वृद्धि=लाभ, क्षय=हानि इन दोनों को (विचार्य्य) विचार करे (सर्वपण्यानां) सब विक्रेय पदार्थों का (क्रयविक्रयौ, कारयेत्) क्रय तथा विक्रय करावे ॥

पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे पक्षे पक्षेऽथवा गते ।
कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घसंस्थापने नृपः ॥ ३८० ॥

पदा०-(पञ्चरात्रे, पञ्चरात्रे) पांच २ दिन (अथवा) अथवा (पक्षे, पक्षे, गते) पन्द्रह २ दिन के पश्चात् (नृपः) राजा (एषां) इन विक्रेय द्रव्यों को (अर्घसंस्थापनं) भाउ नियत करने के लिये (प्रत्यक्षं, कुर्वीत) प्रत्यक्ष करावे ॥

तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम् ।
षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत् ॥ ३८१ ॥

पदा०-(तुलामानं, च, प्रतीमानं, सर्वं) तौल तथा नापों का सब परिमाण (सुलक्षितं, स्यात्) राजचिन्हों से अङ्कित होवे

(च) और (षट्सु, षट्सु, मासेषु) छः २ मास के अनन्तर (पुनः, एव, परीक्षयेत्) पुनः २ परीक्षा कराता रहे ॥

सं०—अब पुल तथा नौका पर उतरने का कर कथन करते हैंः—

पणं यानं तरे दाप्यं पौरुषोऽर्धपणं तरे ।
पादं पशुश्च योषिच्च पादार्द्धं रिक्तकः पुमान् ॥३८२॥

पदा०—(तरे) नौका आदि द्वारा नदी उतरने पर (यानं, पणं) बोझ रहित गाड़ी का महसूल एकपण (पौरुषः, तरे, अर्द्धपणं) एक पुरुष अपने लेजाने योग्य भार के सहित पार उतरने पर आधापण (पशुः, च, योषित्, पादं) गौ आदि पशु तथा स्त्री के पार उतरने पर चौथाई पण (च) और (रिक्तकः, पुमान्) भार रहित मनुष्य उतरे तो (पादार्द्धं, दाप्यं) पण का आठवां भाग महसूल देवे ॥

भाण्डपूर्णानि यानानि तार्यं दाप्यानि सारतः ।
रिक्तभाण्डानि यत्किञ्चित्पुमांसश्चापरिच्छदाः॥३८३

पदा०—(भाण्डपूर्णानि, यानानि) माल से भरी हुई गाड़ियों की (तार्यं) उतराई का महसूल (सारतः, दाप्यानि) बोझ के अनुसार दे (च) और (रिक्तभाण्डानि) चर्मादि के खाली पात्रों का तथा (अपरिच्छदाः, पुमांसः) दरिद्र पुरुषों की उतराई का महसूल (यत्किञ्चित्) थोड़ा ही लेवे ॥

दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरोभवेत् ।
नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम् ॥३८४॥

पदा०—(दीर्घाध्वनि) लम्बी उतराई में (यथादेशं, यथादेशं, यथाकालं, तरः, भवेत्) जो देशकालानुसार महसूल होवे

(तत, नदीतीरेषु, विद्यात) उसको नदी के किनारे ही जाने (समुद्रे, लक्षणं, नास्ति) समुद्र में यह लक्षण नहीं है अर्थात् वहां विशेष महसूल जानना चाहिये ॥

गर्भिणी तु द्विमासादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः ।
ब्राह्मणा लिंगिनश्चैव न दाप्यास्तारिकं तरे ॥३८५॥

पदा०-(तु) और (द्विमासादिः,गर्भिणी) दो मास से ऊपर की गर्भवती स्त्री (तथा) तथा (प्रव्रजितः, मुनिः, ब्राह्मणाः) संन्यासी, वानप्रस्थ, ब्राह्मण (च) और (लिङ्गिनः, एव) ब्रह्मचारी, यह (तरे,तारिकं,न,दाप्याः) उतराई का कर न दें ॥

यन्नावि किंचिद्दाशानां विशीर्येतापराधतः ।
तद्दाशैरेवदातव्यं समागम्य स्वतोंशतः ॥ ३८६ ॥

पदा०-(नावि) नाव पर बैठे हुओं का (यत, किञ्चित) जो कुछ (दाशानां, अपराधतः) मल्लाहों के अपराध से (विशीर्येत) गिर जाय अथवा नाश हो जाय तो (तत) उस हानि को (स्वतः, अंशतः) अपने भाग से (दाशैः, एव, समागम्य, दातव्यं) सब मल्लाह ही मिलकर देवें ॥

एष नौयायिनामुक्तो व्यवहारस्य निर्णयः ।
दाशापराधतस्तोये दैविके नास्ति निग्रहः ॥३८७॥

पदा०-(एषः) यह (नौयायिनां) नौका पर जाने वालों के (व्यवहारस्य) व्यवहार का तथा (दाशापराधतः, तोये) जल में मल्लाहों के अपराध से हुई हानि का (निर्णयः) निर्णय (उक्तः) कहा, परन्तु (दैविके, निग्रहः, नास्ति) दैवी तूफ़ान आदि से हानि होने पर मल्लाहों को दण्ड नहीं है ॥

वाणिज्यं कारयेद्वैश्यं कुसीदं कृषिमेव च ।
पशूनां रक्षणं चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम् ॥३८८॥

पदा०-राजा (वाणिज्यं) व्यापार (कुसीदं) व्याज आदि का व्यवहार (कृषिं, एव) खेती का कार्य (च) तथा (पशूनां, रक्षणं) पशुओं की रक्षा (वैश्यं) वैश्य से (चैव) और (द्विजन्मनां,दास्यं,शूद्रं) द्विजातियों की सेवा शूद्र से (कारयेत) करावे ॥

क्षत्रियञ्चैव वैश्यञ्च ब्राह्मणोवृत्तिकर्शितौ ।
बिभृयादानृशंस्येन स्वानि कर्माणि कारयन् ॥३८९॥

पदा०-(क्षत्रियं, चैव) क्षत्रिय (च) और (वैश्यं) वैश्य (वृत्तिकर्शितौ) आजीविका के अभाव से पीड़ित हों तो (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (आनृशंस्येन) दयापूर्वक (स्वानि, कर्माणि, कारयन्) उनके अपने २ कार्य कराता हुआ (बिभृयात) पालन करे ॥

दास्यन्तु कारयंल्लोभाद्ब्राह्मणः संस्कृतान्द्विजान् ।
अनिच्छतः प्राभवत्याद्राज्ञा दण्ड्यः शतानिषट् ॥३९०॥

पदा०-(तु) और यदि (ब्राह्मणः, प्राभवत्यात) ब्राह्मण प्रभुता अथवा (लोभात) लोभ से (संस्कृतान्, द्विजान्,अनिच्छतः) संस्कारयुक्त द्विजों की बिना इच्छा उनसे (दास्यं, कारयन्) दासकर्म करावे तो (राज्ञा, शतानिषट्, दण्ड्यः) राजा से छः सौपण दण्ड पाने योग्य है ॥

शूद्रन्तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा ।
दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयम्भुवा ॥३९१॥

पदा०-(तु) और (क्रीतं, अक्रीतं, वा, शूद्रं) मोल लिये हुए अथवा बिना मोल लिये हुए शूद्र से तो (दास्यं,एव,कारयेत) -

दास कर्म ही करावे (हि) क्योंकि (स्वयम्भुवा) परमात्मा ने (ब्राह्मणस्य, दास्याय, एव) ब्राह्मणादि की सेवा के लिये ही (असौ, सृष्टः) यह शूद्र उत्पन्न किया है ॥

न स्वामिना निसृष्टोऽपि शूद्रो दास्याद्विमुच्यते ।
निसर्गजं हि तत्तस्य कस्तस्मात्तदपोहति ॥ ३९२ ॥

पदा०-(स्वामिना, निसृष्टः, अपि, शूद्रः) स्वामी से त्यागा हुआ भी शूद्र (दास्यात्, न, विमुच्यते) दासपन से नहीं छूटता (हि) क्योंकि (तत्, तस्य, निसर्गजं) वह दासकर्म उसका स्वाभाविक है (तस्मात्) इसलिये (तत्, कः, अपोहति) उस कर्म को उससे कोई नहीं छुड़ा सकता ॥

ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहजः क्रीतदत्त्रिमौ ।
पैत्रिकोदण्डदासश्च सप्तैते दासयोनयः ॥ ३९३ ॥

पदा०-(ध्वजाहृतः) १-युद्ध में जीता हुआ (भक्तदासः) २-भोजन देकर रक्खा हुआ (गृहजः) ३-दासीपुत्र (क्रीतदत्त्रिमौ) ४-मोल लिया हुआ, ५-सेवा के लिये दिया हुआ (पैत्रिकः) ६-जो बड़ों से चला आता हो (च) और (दण्डदासः) ७-दण्ड उतारने के लिये जिसने दासभाव=सेवा करना स्वीकार किया हो (एते, सप्त, दासयोनयः) यह सात प्रकार के दास जानने चाहियें ॥

भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः ।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥३९४॥

पदा०-(भार्या) स्त्री (पुत्रः) पुत्र (दासः) दास यह (त्रयः, एव, अधनाः, स्मृताः) तीन ही निर्धन कहे हैं, क्योंकि

(यत्, ते, समधिगच्छन्ति) जो धन पूर्वोक्त तीनों कमाते हैं (तत्, धनं) वह धन (तस्य) उसका है (यस्य) जिसके (ते) वह हैं ॥

विस्रब्धं ब्राह्मणः शूद्राद्द्रव्योपादानमाचरेत् ।
न हि तस्यास्ति किंचित्स्वं भर्तृहार्यधनो हि सः ॥३९५॥

पदा०—(ब्राह्मणः) ब्राह्मण आवश्यकता होने पर (विस्रब्धं) निःसन्देह (शूद्रात्, द्रव्योपादानं, आचरेत्) शूद्र से धन ग्रहण करले (हि) क्योंकि (तस्य) उस का (किञ्चित्, स्वं, नास्ति) कुछ भी अपना नहीं होता, किन्तु (हि) निश्चय करके (सः, भर्तृहार्यधनः) वह शूद्र=दास से कमाया हुआ धन स्वामी के ग्रहण करने योग्य है ॥

वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत् ।
तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत् ॥३९६॥

पदा०—(वैश्यशूद्रौ) वैश्य तथा शूद्र से (प्रयत्नेन) यत्न पूर्वक राजा (स्वानि, कर्माणि, कारयेत्) अपने २ कर्म करावे (हि) क्योंकि (स्वकर्मभ्यः, च्युतौ, तौ) अपने २ कर्मों से च्युत हुए वह (इदं, जगत्, क्षोभयेतां) इस सम्पूर्ण जगत् को दुःखित करदेते हैं ॥

अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च ।
आयव्ययौ च नियतावाकरान्कोशमेव च ॥३९७॥

पदा०—राजा (कर्मान्तान्, वाहनानि, च) आरम्भ किये हुए कामों तथा गाड़ी घोड़ा आदि वाहनों (नियतौ, आयव्ययौ) नियत आमदनी तथा व्यय (च, एव) और निश्चय करके

(आकारान्, कोशं) सुवर्णादि की कानों तथा खज़ानों को (अहनि, अहनि, अवेक्षेत) प्रतिदिन देखे=जांचे ॥

एवं सर्वानिमान् राजा व्यवहारान्समापयन् ।
व्यपोह्य किल्बिषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम्॥३९८॥

पदा०-(राजा) राजा (एवं) पूर्वोक्तप्रकार से (सर्वान्, इमान्, व्यवहारान्, समापयन्) इन ऋणादानादि सम्पूर्ण व्यवहारों को ठीक २ निर्णय द्वारा समाप्त करता हुआ (सर्वं, किल्बिषं, व्यपोह्य) सम्पूर्ण पापों का नाश करके (परमां, गतिं, प्राप्नोति) परमगति=मोक्ष को प्राप्त होता है ॥

इति मानवार्य्यभाष्ये
अष्टमोऽध्यायः
समाप्तः

ओ३म्

अथ नवमोऽध्यायः

सं०–अब स्त्री पुरुषों के संयोग तथा वियोग में सनातन धर्म कथन करते हुए प्रथम स्त्री का परतंत्र रहना वर्णन करते हैं :–

पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्म्ये वर्त्मनि तिष्ठतोः ।
संयोगे विप्रयोगे च धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥१॥

पदा०–(धर्म्ये, वर्त्मनि, तिष्ठतोः) धर्ममार्ग में स्थित (पुरुषस्य, स्त्रियाः, चैव) स्त्री पुरुषों के (संयोगे, च, विप्रयोगे) साथ रहने तथा पृथक् रहने के (शाश्वतान्, धर्मान्, वक्ष्यामि) सनातन धर्मों को कहता हूं ॥

अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैःस्वैर्दिवानिशम् ।
विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे ॥२॥

पदा०–(स्वैः, पुरुषैः, स्त्रियः) स्वामी अपनी स्त्रियों को (दिवानिशं) रातदिन (अस्वतन्त्राः,कार्याः) स्वतन्त्रता रहित= स्वाधीन करें (च) और (विषयेषु, सज्जन्त्यः) विषयों में आसक्त होती हुई स्त्रियों को (आत्मनः, वशे, संस्थाप्याः) अपने वशीभूत रखें ॥

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥३॥

पदा०–(कौमारे, पिता, रक्षति) बाल्यावस्था में पिता रक्षा

करता (यौवने, भर्त्ता, रक्षति) युवावस्था में पति रक्षा करता और (स्थविरे, पुत्राः, रक्षन्ति) वृद्धावस्था में पुत्र रक्षा करते हैं, अतएव किसी अवस्था में भी (स्त्री, स्वातन्त्र्यं, न, अर्हति) स्त्री स्वतन्त्रता के योग्य नहीं ॥

कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन्पतिः ।
मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता ॥ ४ ॥

पदा०—(काले, अदाता) विवाहकाल में कन्यादान न करने वाला (पिता,वाच्यः) पिता निन्दनीय (अनुपयन्, पतिः, वाच्यः) ऋतुकाल में अपनी स्त्री से गमन न करने वाला पति निन्दनीय (तु) और (मृते, भर्त्तरि) पति के मरजाने पर (मातुः, अरक्षिता) माता की रक्षा न करने वाला (पुत्रः, वाच्यः) पुत्र निन्दनीय होता है ॥

सूक्ष्मेभ्योपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः ।
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥ ५ ॥

पदा०—(सूक्ष्मेभ्यः, अपि, प्रसङ्गेभ्यः) थोड़े कुसङ्ग से भी (स्त्रियः, विशेषतः, रक्ष्याः) स्त्रियों की विशेष रक्षा करनी चाहिये (हि) क्योंकि (अरक्षिताः) अरक्षित स्त्रियां (द्वयोः,कुलयोः) दोनों कुलों को (शोकं, आवहेयुः) शोक देने वाली होती हैं ॥

इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो धर्ममुत्तमम् ।
यतन्ते रक्षितुं भार्यां भर्तारो दुर्बला अपि ॥ ६ ॥

पदा०—(सर्ववर्णानां) सब वर्णों के (इमं, उत्तमं, धर्मं) इस पूर्वोक्त सर्वोत्तम धर्म को (पश्यन्तः) देखते हुए (दुर्बलाः, अपि, भर्तारः) दुर्बल पति भी (भार्यां, रक्षितुं) अपनी स्त्री की रक्षा का (हि) निश्चयकरके (यतन्ते) यत्न करते हैं ॥

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च ।
स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति ॥ ७ ॥

पदा०-(हि) क्योंकि (प्रयत्नेन, जायां, रक्षन्, एव) यत्न पूर्वक स्त्री की रक्षा करनेवाला पुरुष ही (स्वां, प्रसूतिं) अपनी सन्तान (चरित्रं) आचरण (कुलं,आत्मानं,च) कुल तथा आत्मा (च) और (स्वं, धर्मं) अपने धर्म की (रक्षति) रक्षा करता है ॥

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते ।
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥८॥

पदा०-(पतिः, भार्यां, संप्रविश्य) पति ही स्त्री में प्रवेश करके (गर्भः, भूत्वा) गर्भरूप होकर (इह, जायते) इस संसार में उत्पन्न होता है (हि) निश्चयकरके (तत्, जायायाः, जायात्वं) यही जाया=स्त्री का जायत्व=स्त्रीपन है (यत्, अस्यां) जो कि इसमें (पुनः, जायते) पुनः जन्मता है ॥

यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम् ।
तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥ ९ ॥

पदा०-(हि) निश्चयकरके (स्त्री) स्त्री (यादृशं, भजते) जिस प्रकार के पुरुष को सेवन करती (तथाविधं, सुतं, सूते) उसी प्रकार का पुत्र जनती है (तस्मात्) इसलिये (प्रजाविशुद्ध्यर्थं) प्रजा की शुद्धि के निमित्त (प्रयत्नतः, स्त्रियं, रक्षेत्) प्रयत्न से स्त्री की रक्षा करनी चाहिये ॥

न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम् ।
एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम् ॥ १० ॥

पदा०-(कश्चित्) कोई पुरुष (प्रसह्य) बलात्कार से

(योषितः, परिरक्षितुं) स्त्रियों की रक्षा (न, शक्तः) नहीं कर सक्ता (तु) किन्तु (एतैः, उपाययोगैः) इन आगे कहे उपायों से (ताः,परिरक्षितुं,शक्याः) उनकी रक्षा करने में समर्थ होता है ॥

अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् ।
शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य चेक्षणे ॥ ११ ॥

पदा०-(एनां) इन स्त्रियों को मनुष्य (अर्थस्य, संग्रहे) धन के संग्रह अर्थात् आमदनी को रक्षापूर्वक रखने (व्यये, चैव) नियमपूर्वक व्यय करने (शौचे, धर्मे, च) पवित्रता तथा पतिसेवा-रूप धर्म (च) तथा (अन्नपक्त्यां) भोजन बनाने (च) और (पारिणाह्यस्य,ईक्षणे) गृहसामग्री के देखने भालने में (नियोजयेत्) नियुक्त करे ॥

अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः ।
आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः ॥१२॥

पदा०-(आप्तकारिभिः, पुरुषैः) आज्ञापूर्वक यथार्थ कार्य करने वाले सेवक,पुरुषों से (गृहे, रुद्धाः) घर के परदे में रोकी हुई भी स्त्रियें (अरक्षिताः) अरक्षित हैं (याः, तु) किन्तु जो (आत्मानं, आत्मना, रक्षेयुः) अपनी रक्षा स्वयं करती हैं (ताः, सुरक्षिताः) वही सुरक्षित रहती हैं ॥

सं०-अब स्त्रियों के छः दोषों का वर्णन करते हैं :—

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीणां दूषणानि षट् ॥१३॥

पदा०-(पानं) १-मद्यपान (दुर्जनसंसर्गः) २-दुष्टों का सङ्ग (पत्या, च, विरहः) ३-पति से पृथक् रहना (अटनं)

४–व्यर्थ भ्रमण (स्वप्नः) ५–कुसमय शयन करना (च) और (अन्यगेहवासः) ६–दूसरे के घर में वास करना, यह (नारीणां) स्त्रियों के (षट्दूषणानि) छः दूषण हैं ॥

एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा ।
प्रेत्येह च सुखोदर्कान्प्रजाधर्मान्निबोधत ॥ १४ ॥

पदा०–(स्त्रीपुंसयोः) स्त्री पुरुषों को (नित्यं, शुभा) सदा सुख देने वाली (एषा,लोकयात्रा,उदिता) यह लोक मर्यादा कही, अब (प्रेत्य, इह, च) इस लोक तथा परलोक में (सुखोदर्कान्, प्रजाधर्मान्) सुख देनेवाली सुसन्तान के धर्मों को (निबोधत)सुनो॥

सं०–अब स्त्रियों की प्रशंसा वर्णन करते हुए सुसन्तान का धर्म कथन करते हैं :—

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्तिकश्चन ॥१५॥

पदा०–(महाभागाः) यह स्त्रियें बड़ी भाग्यवती (प्रजनार्थं) सन्तानोत्पत्ति का कारण (पूजार्हाः, गृहदीप्तयः) सत्कार के योग्य तथा घर की शोभा हैं (च) और (गेहेषु, स्त्रियः, श्रियः) घरों में स्त्री तथा श्रीमें (कश्चन, विशेषः, नास्ति) कोई विशेषता नहीं अर्थात् दोनों समान हैं ॥

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥१६॥

पदा०–(अपत्यस्य, उत्पादनं) सन्तान का उत्पन्न करना (जातस्य, परिपालनं) उत्पन्न हुए का पालन करना और (प्रत्यहं,

लोकयात्रायाः) प्रतिदिन अतिथि तथा मित्रों के भोजनादि लोकाचार का (प्रत्यक्षं) प्रत्यक्ष (स्त्री, निबन्धनं) आधार स्त्री ही है ॥

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह ॥१७॥

पदा०-(अपत्यं) सन्तान (धर्मकार्याणि) अग्निहोत्रादि धर्म कार्य (शुश्रूषा) सेवा (उत्तमा, रतिः) श्रेष्ठ प्रीति (तथा) और (पितॄणां, आत्मनः, च, स्वर्गः) वृद्धों का तथा अपना सुख, यह सब (हि) निश्चयकरके (दाराधीनः) स्त्री के ही अधीन है ॥

पुत्रं प्रत्युदितं सद्भिः पूर्वजैश्च महर्षिभिः ।
विश्वजन्यमिमं पुण्यमुपन्यासं निबोधत ॥ १८ ॥

पदा०-(सद्भिः, पूर्वजैः, च, महर्षिभिः) पूर्वज शिष्ट महर्षियों से (पुत्रं, प्रति, उदितं) पुत्र के विषय में कहे हुए (पुण्यं, विश्वजन्यं) पवित्र, सर्वहितकारी (इमं, उपन्यासं) इस वक्ष्यमाण विचार को (निबोधत) सुनें ॥

भर्त्तुः पुत्रं विजानन्ति श्रुतिद्वैधं तु भर्त्तरि ।
आहुरुत्पादकं केचिदपरे क्षेत्रिणं विदुः ॥ १९ ॥

पदा०-(भर्त्तुः, पुत्रं, विजानन्ति) पति का ही पुत्र होता है ऐसा लोग जानते हैं (तु) परन्तु (भर्त्तरि, श्रुतिद्वैधं) भर्त्ता=पति के विषय में दो प्रकार का मत है (केचित्, उत्पादकं, आहुः) कोई उत्पन्न करने वाले देवर आदि को पुत्रवाला कहते हैं और (अपरे, क्षेत्रिणं, विदुः) कोई दूसरे क्षेत्र के स्वामी=नियत पति को पुत्र वाला जानते हैं ॥

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान् ।
क्षेत्रबीजसमायोगात्सम्भवः सर्वदेहिनाम् ॥ २० ॥

पदा०—(क्षेत्रभूता, नारी, स्मृता) क्षेत्र=खेतरूप स्त्री कहाती और (वीजभूतः, पुमान्, स्मृतः) वीजरूप पुरुष कहाता है, इसलिये (क्षेत्रवीजसमायोगात्) खेत और वीज के मिलने से (सर्वदेहिनां, सम्भवः) सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति होती है ॥

विशिष्टं कुत्रचिद्वीजं स्त्रीयोनिस्त्वेव कुत्रचित् ।
उभयन्तु समं यत्र सा प्रसूतिः प्रशस्यते ॥ २१ ॥

पदा०—(कुत्रचित्, वीजं, विशिष्टं) कहीं वीज प्रधान और (कुत्रचित्, स्त्रीयोनिः, एव) कहीं स्त्रीयोनि=खेत प्रधान होता है (यत्र, तु) परन्तु जहां (उभयं, समं) दोनों समान हों (सा, प्रसूतिः, प्रशस्यते) वही सन्तान प्रशंसनीय होती है ॥

वीजस्य चैव योन्याश्च वीजमुत्कृष्टमुच्यते ।
सर्वभूतप्रसूतिर्हि वीजलक्षणलक्षिता ॥ २२ ॥

पदा०—(वीजस्य, चैव, योन्याः, च) वीज तथा खेत इन दोनों में (वीजं, उत्कृष्टं, उच्यते) वीज प्रधान है (हि) क्योंकि (सर्वभूतप्रसूतिः) सम्पूर्णभूतों की उत्पत्ति (वीजलक्षणलक्षिता) वीज ही के लक्षण से जानी जाती है ॥

यादृशंतूप्यते वीजं क्षेत्रे कालोपपादिते ।
तादृग्रोहति तत्तस्मिन्वीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः ॥ २३ ॥

पदा०—(तु) और (कालोपपादिते) उचित समय पर ठीक बनाये हुए (क्षेत्रे) खेत में (यादृशं, वीजं, उप्यते) जैसा वीज बोया जाता है (तत्, वीजं, तस्मिन्) वह वीज उस खेत में (स्वैः, गुणैः, व्यञ्जितं) अपने गुणों से संयुक्त हुआ (तादृक्, रोहति) वैसा ही उत्पन्न होता है ॥

इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते ।
नच योनिगुणान्कांश्चिद्वीजं पुष्यति पुष्टिषु ॥२४॥

पदा०-(हि) निश्चयकरके (इयं, भूमिः) यह भूमि (भूतानां) सम्पूर्ण प्राणियों की (शाश्वती) सनातन (योनिः, उच्यते) योनि=उत्पत्तिस्थान कही जाती है, परन्तु (वीजं) वीज (योनिगुणान्, कांश्चित्) भूमि के किन्हीं गुणों को (पुष्टिषु, नच, पुष्यति) शरीर की पुष्टि में पुष्ट नहीं करता किन्तु अपने ही गुणों को बढ़ाता है ॥

भूमावप्येककेदारे कालोप्तानि कृषीवलैः ।
नानारूपाणि जायन्ते वीजानीह स्वभावतः ॥२५॥

पदा०-(भूमौ, अपि, एककेदारे) एक प्रकार की भूमि के खेत में भी (कृषीवलैः, कालोप्तानि, वीजानि) किसानों से उचित समय पर बोये हुए यव, धान्यादि अनेक वीज (इह, स्वभावतः) इस संसार में स्वभाव से ही (नानारूपाणि, जायन्ते) नाना रूपों में उत्पन्न होते हैं, अर्थात् एक भूमि होने से एकरूप नहीं होता किन्तु वीजोंके ही अनुकूल भिन्न२ वृक्षादि जैसाकि-

व्रीहयः शालयो मुद्गास्तिला माषास्तथा यवाः ।
यथा वीजं प्ररोहन्ति लशुनानीक्षवस्तथा ॥ २६ ॥

पदा०-(व्रीहयः) साटी (शालयः) धान (मुद्गाः, तिलाः) मूंग, तिल (माषाः, तथा, यवाः) उड़द तथा जौ (लशुनानि, इक्षवः) लहसन और गन्ने, इन सब का (यथा, वीजं) जैसा वीज बोया जाता है (तथा, प्ररोहन्ति) वैसे ही उत्पन्न होते हैं ॥

अन्यदुप्तं जातमन्यादित्येतन्नोपपद्यते ।
उप्यते यद्धि यद्बीजं तत्तदेव प्ररोहति ॥ २७ ॥

पदा०-(अन्यत्, उप्तं) बोया कुछ हो और (अन्यत्, जातं) उत्पन्न कुछ हो (इति, एतत्, न, उपपद्यते) इस प्रकार कदापि नहीं होता (हि) क्योंकि (यत् , यत्, बीजं, उप्यते) जो २ बीज बोया जाता है (तत्, तत्, एव, प्ररोहति) वही २ उत्पन्न होता है, इसलिये :—

तत्प्राज्ञेन विनीतेन ज्ञानविज्ञानवेदिना ।
आयुष्कामेन वप्तव्यं न जातु परयोषिति ॥ २८ ॥

पदा०-(प्राज्ञेन, विनीतेन) बुद्धिमान्, शिक्षित (ज्ञानविज्ञानवेदिना) ज्ञान विज्ञान के ज्ञाता तथा (आयुष्कामेन) दीर्घायु की इच्छा वाले पुरुष (तत्) उस बीज को (परयोषिति) पर स्त्रियों में (जातु) कदापि (न, वप्तव्यं) न बोवें अर्थात् अपनी स्त्री के बिना अन्य स्त्री का सङ्ग कभी न करें ॥

एतावानेव पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेति ह ।
विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृताङ्गना ॥२९॥

पदा०-(यत्) जिसकारण (जाया, आत्मा, प्रजा) स्त्री, पति, तथा सन्तान (इति एतावान्, एव, पुरुषः, ह) यह तीनों मिलकर एक पुरुष कहाता है (तथाच) जैसा कि (विप्राः,प्राहुः) विद्वान् लोग कहते हैं कि (एतत्, यः, भर्ता) यह जो पति है (सा) वही (अङ्गना, स्मृता) स्त्री कहाती है ॥

भाष्य-इसी भाव को "शतपथ" में इस प्रकार लिखा है कि:—

अर्द्धो ह वा एष आत्मनस्तस्माद्यज्जायां न विन्दते नैतावत्प्रजायते असर्वो हि तावद्भवति, अथ यदैव जायां विन्दतेऽथप्रजायते तर्हि सर्वो भवति ॥

अर्थ—यह स्त्री इस पुरुष का अर्द्धभाग है, क्योंकि जबतक इसको जाया=स्त्री नहीं मिलती तबतक यह उत्पन्न नहीं होता तथा असम्पूर्ण रहता है, जाया के मिलने पर ही उत्पन्न होता तथा सम्पूर्ण होता है, इसीलिये उक्त श्लोक के उत्तरार्द्ध में विद्वानों का कथन है कि जो भर्त्ता वही स्त्री है अर्थात् दोनों में कुछ भेद नहीं ॥

न निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्त्तुर्भार्या विमुच्यते ।
एवं धर्मं विजानीमः प्राक्प्रजापतिनिर्मितम् ॥३०॥

पदा०—(निष्क्रयविसर्गाभ्यां) बेचने वा त्यागने से (भार्या) स्त्री (भर्त्तुः, न, विमुच्यते) पति से नहीं छूट सक्ती (एवं) इस प्रकार (प्राक्प्रजापतिनिर्मितं) प्रजापति का रचा हुआ सानतन (धर्मं, विजानीमः) धर्म हम जानते हैं ॥

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते ।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत् ॥३१॥

पदा०—(अंशः, सकृत्, निपतति) धनादि का विभाग एकवार ही किया जाता (सकृत्, कन्या, प्रदीयते) एकही वार कन्यादान होता और (सकृत्, आह, ददानि, इति) एकही वार वचन दिया जाता (सतां, एतानि, त्रीणि, सकृत्) सज्जनों की यह तीन बातें एकही वार होती हैं ॥

यथा गोऽश्वोष्ट्रदासीषु महिष्यजाविकासु च ।
नोत्पादकः प्रजाभागी तथैवान्यांगनास्वपि ॥३२॥

पदा०—(यथा) जैसे (गोऽश्वोष्ट्रदासीषु) गाय, घोड़ा, ऊंट, दासी (च) और (महिष्यजाविकासु) भैंस, बकरी, भेड़ों में (उत्पादकः, प्रजाभागी, न) उत्पन्न करने वाला उस सन्तान का भागी नहीं होता (तथा, एव) वैसे ही (अन्याङ्गनासु, अपि) परस्त्रियों में भी जानना चाहिये ॥

सं०—अब प्रकारान्तर से परस्त्रीगमन का निषेध करते हैं :—

येऽक्षेत्रिणो बीजवन्तः परक्षेत्रप्रवापिणः ।
ते वै सस्यस्य जातस्य न लभन्ते फलं क्वचित् ॥३३॥

पदा०—(ये, बीजवन्तः, अक्षेत्रिणः) जो बीजसम्पन्न खेत के अस्वामी (परक्षेत्रप्रवापिणः) दूसरे के खेत में अपने बीज को बोने वाले हैं (ते) वह अस्वामी (जातस्य, सस्यस्य, फलं) उत्पन्न हुए अन्नरूप फल को (वै) निश्चयकरके (क्वचित्, न, लभन्ते) कहीं भी नहीं पाते ॥

यदन्यगोषु वृषभो वत्सानां जनयेच्छतम् ।
गोमिनामेव ते वत्सा मोघं स्कन्दितमार्षभम् ॥३४॥

पदा०—(यत्) जो (अन्यगोषु) अन्य की गौओं में (वृषभः) किसी का बैल (वत्सानां, शतं, जनयेत्) चाहे सौ बछड़े उत्पन्न करे तो भी (ते, वत्साः) वह बछड़े (गोमिनां, एव) गोस्वामी के ही होते हैं और (आर्षभं, स्कन्दितं, मोघं) बैल का वीर्य निष्फल जाता है ॥

तथैवाऽक्षेत्रिणो बीजं परक्षेत्रप्रवापिणः ।
कुर्वन्ति क्षेत्रिणामर्थं न बीजी लभते फलम् ॥३५॥

पदा०—(तथा, एव) पूर्वोक्त दृष्टान्त के अनुसार (बीजं, परक्षेत्रप्रवापिणः) अन्य के खेत में बीज बोने वाला (अक्षेत्रिणः)

खेत का अस्वामी (क्षेत्रिणां, अर्थं, कुर्वन्ति) खेत के स्वामी का ही प्रयोजन सिद्ध करता और (वीजी) वीज बोने वाला (फलं, न, लभते) किसी फल का भागी नहीं होता है ॥

फलं त्वनाभिसन्धाय क्षेत्रिणां वीजिनां तथा ।
प्रत्यक्षं क्षेत्रिणामर्थो वीजाद्योनिर्गरीयसी ॥ ३६ ॥

पदा०-(क्षेत्रिणां, तथा, वीजिनां) खेत वाले और वीज वाले, इन दोनों का जहां (फलं, तु, अनभिसन्धाय) फल बांटने का कुछ नियम न हुआ हो वहां (प्रत्यक्षं, क्षेत्रिणां, अर्थः) प्रत्यक्ष में खेत वाले का ही प्रयोजन सिद्ध होता है, इसलिये (वीजात्) वीज से (योनिः, गरीयसी) योनि=खेत वलवान है ॥

क्रियाभ्युपगमात्त्वेतद्वीजार्थं यत्प्रदीयते ।
तस्येह भागिनौ दृष्टौ वीजी क्षेत्रिक एव च ॥३७॥

पदा०-(तु) परन्तु (यत्) जो (क्रियाभ्युपगमात्) बांटने का नियम करके (वीजार्थं) वीज बोने के लिये (एतत्, प्रदीयते) खेत देता है तो (तस्य) उस फल के (भागिनौ) भागी (इह) इस जगत् में (वीजी, च, क्षेत्रिकः, एव) वीज बोने वाला और खेतस्वामी दोनों ही (दृष्टौ) देखे जाते हैं ॥

ओघवाताहृतं वीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति ।
क्षेत्रिकस्यैव तद्वीजं न वप्ता लभते फलम् ॥३८॥

पदा०-(ओघवाताहृतं, वीजं) ओघ=जल के प्रवाह से वहकर अथवा वायुवेग से उड़कर जो वीज (यस्य, क्षेत्रे, प्ररोहति) जिसके खेत में उत्पन्न होजाता है (तत्, वीजं) उस वीज का फल (क्षेत्रिकस्य, एव) खेत वाले का ही होता है (वप्ता) वोने वाला (फलं, न, लभते) उसके फल को नहीं पाता ॥

एष धर्मो गवाश्वस्य दास्युष्ट्राजाविकस्य च ।
विहंगमहिषीणां च विज्ञेयः प्रसवं प्रति ॥ ३९ ॥

पदा०-(एषः) यह पूर्वोक्त कहा हुआ (धर्मः) धर्म(गवाश्वस्य) गाय, घोड़ा (दास्युष्ट्राजाविकस्य, च) दासी, ऊंट, बकरी, भेड़ (विहङ्गमहिषीणां, च) पक्षी और भैंस की (प्रसवं,प्रति,विज्ञेयः) सन्तति के विषय में जानना चाहिये ॥

एतद्वः सारफल्गुत्वं बीजयोन्योः प्रकीर्त्तितम् ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्ममापदि ॥ ४० ॥

पदा०-हे महर्षि लोगो ! (एतत्) यह (बीजयोन्योः) बीज तथा योनि का (सारफल्गुत्वं) सार और असारपन (वः) तुम्हारे प्रति (प्रकीर्त्तितं) कहा (अतः, परं) अब इस से आगे (योषितां, आपदि, धर्मं) स्त्रियों के आपत्काल का धर्म (प्रवक्ष्यामि) कहता हूं ॥

सं०-अब स्त्री के आपद्धर्म=नियोग का वर्णन करते हैं :—

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा ।
यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता ॥ ४१ ॥

पदा०-(ज्येष्ठस्य, भ्रातुः) ज्येष्ठ भ्राता की (या, भार्या) जो स्त्री है (सा, अनुजस्य) वह छोटे भाई की (गुरुपत्नी) गुरुपत्नी समान (तु) और (यवीयसः, या, भार्या) छोटे भाई की जो स्त्री है (सा) वह (ज्येष्ठस्य) बड़े भाई की (स्नुषा, स्मृता) पुत्रवधू के समान कही है ॥

ज्येष्ठो यवीयसो भार्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम् ।
पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥ ४२ ॥

पदा०-(ज्येष्ठः) बड़ा भाई (यवीयसः, भार्यां) छोटे भाई की स्त्री से (वा) अथवा (यवीयान्) छोटा भाई (अग्रजस्त्रियं) बड़े भाई की स्त्री के साथ (अनापदि) विना आपत्काल के (नियुक्तौ, अपि, गत्वा) नियोग विधि से भी गमन करे तो दोनों (पतितौ, भवतः) पतित होजाते हैं, किन्तुः—

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया ।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये ॥ ४३ ॥

पदा०-(सन्तानस्य, परिक्षये) सन्तान के अभाव में (प्रजेप्सिता) सन्तान की इच्छा से (सम्यक्, नियुक्तया, स्त्रिया) स्त्री भलेप्रकारनियोग विधि द्वारा (देवरात्, वा, सपिण्डात्, वा) देवर अथवा अन्य कुटुम्बी से (अधिगन्तव्या) यथेष्ट सन्तान उत्पन्न करावे ॥

विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि ।
एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथञ्चन ॥ ४४ ॥

पदा०-(तु) और (विधवायां, नियुक्तः) विधवा के साथ नियोग करने वाला (घृताक्तः) शरीर पर घृत लगाकर तथा (वाग्यतः) मौन धारण करके (निशि) रात्रि में गमन करके (एकं, पुत्रं, उत्पादयेत्) एक पुत्र उत्पन्न करे (द्वितीयं, कथञ्चन, न) दूसरा कभी नहीं ॥

द्वितीयमेके प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः ।
अनिर्वृत्तं नियोगार्थं पश्यन्तो धर्मतस्तयोः ॥४५॥

पदा०-(तयोः) उन स्त्री पुरुषों के (नियोगार्थं) नियोग के तात्पर्य पुत्रोत्पत्ति को (अनिर्वृत्तं, पश्यन्तः) न हुआ

देखकर (तद्विदः, एके) नियोग विधि के जानने वाले कोई एक आचार्य (स्त्रीषु) स्त्रियों में (द्वितीयं, प्रजनं) द्वितीय वार पुत्र उत्पन्न करना (धर्मतः, मन्यन्ते) धर्म मानते हैं ॥

विधवायां नियोगार्थे निर्वृत्ते तु यथाविधि ।
गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्त्तेयातां परस्परम् ॥ ४६ ॥

पदा०—(तु) और (विधवायां, नियोगार्थे) विधवा स्त्री में नियोग का प्रयोजन=गर्भधारण (यथाविधि, निर्वृत्ते) विधिपूर्वक सिद्ध होजाने पर (परस्परं) परस्पर (गुरुवत, च, स्नुषावत, च) गुरुपत्नी तथा पुत्रवधू के समान (वर्त्तेयातां) वर्त्तें ॥

नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्त्तेयातां तु कामतः ।
तावुभौ पतितौ स्यातां स्नुषागगुरुतल्पगौ ॥ ४७ ॥

पदा०—(विधिं, हित्वा) नियोग विधि को त्यागकर (यौ, नियुक्तौ) जो बड़े और छोटे भाई एक दूसरे की स्त्री में नियुक्त हुए (कामतः, तु, वर्त्तेयातां) काम से गमन करें तो (तौ, उभौ) वह दोनों (स्नुषागगुरुतल्पगौ) पुत्रवधू और गुरुपत्नी के साथ गमन करने वाले के समान (पतितौ,स्यातां) पतित होजाते हैं ॥

नान्यस्मिन्विधवानारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः ।
अन्यस्मिन् हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युः सनातनम्॥४८

पदा०—(द्विजातिभिः) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को अपने २ वर्ण की (विधवानारी) विधवा स्त्रियों का (अन्यस्मिन्) दूसरे वर्ण में (न, नियोक्तव्या) नियोग न करना चाहिये (हि) क्योंकि (अन्यस्मिन्, नियुञ्जानाः) अन्यवर्ण में नियुक्त हुई स्त्रियें (सनातनं, धर्मं, हन्युः) सनातन धर्म का नाश करती हैं ॥

सं०—अब वाग्दान के पश्चात् पति मरजाने पर उस स्त्री के विवाह का विधान करते हैं :—

यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः ।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥४९॥

पदा०—(यस्याः, कन्यायाः) जिस कन्या का (वाचा, सत्ये, कृते) सत्य वाग्दान=कन्यादान का सङ्कल्प=सगाई करने के पश्चात् (पतिः,म्रियेत) पति मरजाय तो (तां) उस कन्या को (अनेन, विधानेन) इस आगे कहे विधान से (निजः, देवरः) अपना देवर (विन्देत) प्राप्त करे अर्थात् जिसको वाग्दान दिया हो उसका छोटा भाई उस कन्या से विवाह कर सकता है ॥

यथा विध्यधिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम् ।
मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ ॥५०॥

पदा०—(शुक्लवस्त्रां,शुचिव्रतां) श्वेत वस्त्र धारण की हुई मन, वाणी तथा काय से पवित्र (एनां) उस कन्या के समीप (यथाविधि, अधिगम्य) विधिपूर्वक जाकर (आप्रसवात्) सन्तानोत्पत्ति पर्यन्त (ऋतौ, ऋतौ) प्रत्येक ऋतुकाल में (सकृत्, सकृत्) एक २ वार (मिथः, भजेत) गर्भाधान करे ॥

न दत्त्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः ।
दत्त्वा पुनः प्रयच्छन्हि प्राप्नोति पुरुषानृतम् ॥५१॥

पदा०—(विचक्षणः) बुद्धिमान् पुरुष (कस्यचित्, कन्यां, दत्त्वा) किसी को कन्या का दान करके (पुनः, न, दद्यात्) फिर दूसरे को न देवे (हि) क्योंकि (दत्त्वा, पुनः, प्रयच्छन्)

देकर फिर देने वाला पुरुष (पुरुषानृतं, माप्नोति) मनुष्य विषयक झूठ को प्राप्त होता अर्थात् पुरुष विषयक चोरी के दण्ड का भागी होता है ॥

सं०—अब विगर्हित कन्या का त्याग कथन करते हैं:—

विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम् ।
व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मना चोपपादिताम् ॥५२॥

पदा०—(विधिवत्, प्रतिगृह्यापि) विधिपूर्वक ग्रहण की हुई भी (विगर्हितां) निन्दित (व्याधितां) रोगिणी (विप्रदुष्टां) असन्त दुष्टा (वा) अथवा (छद्मना,च, उपपादितां) जो छल से दीगई हो, ऐसी (कन्यां) कन्या को पुरुष (त्यजेत्) त्याग देवे ॥

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्यायोपपादयेत् ।
तस्य तद्वितथं कुर्यात्कन्यादातुर्दुरात्मनः ॥५३॥

पदा०—(तु) और (यः) जो (दोषवतीं, कन्यां) दोष युक्त कन्या को (अनाख्यांय, उपपादयेत्) उसका दोष विना प्रकट किये विवाह दे तो (तस्य) उस (कन्यादातुः, दुरात्मनः) कन्यादान करने वाले दुष्टात्मा के (तत्) कन्यादान को (वितथं, कुर्यात्) निष्फल करदे अर्थात् उसे त्यागदे ॥

सं०—अब पति के परदेश जाने पर स्त्री का धर्म कथन करते हैं:—

विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः ।
अवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि ॥५४॥

पदा०—(कार्यवान्नरः) कार्यवाला पुरुष (भार्यायाः) पत्नी के (वृत्तिं,विधाय) भोजनाच्छादान का प्रबन्ध करके (प्रवसेत्) परदेश में जावे (हि) क्योंकि (अवृत्तिकर्षिता) भोजनाच्छा-

दानादि से पीड़ित (स्थितिमती, अपि, स्त्री) स्थिरबुद्धि= शीलवती स्त्री भी (प्रदुष्येत) दूषित होजाती है ॥

विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता ।
प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ॥५५॥

पदा०-(वृत्तिं, विधाय, प्रोषिते) भोजन वस्त्रादि का प्रबन्ध करके पति के देशान्तर जाने पर स्त्री (नियमं,आस्थिता) नियम में स्थित हुई (जीवेत) जीवननिर्वाह करे (तु) और (अविधाय, एव, प्रोषिते) विना प्रबन्ध किये पति परदेश चलाजाय तो स्त्री (अगर्हितैः, शिल्पैः, जीवेत) अनिन्दित दस्तकारी आदि से निर्वाह करे ॥

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः ।
विद्यार्थं षड्यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान्॥५६॥

पदा०-(धर्मकार्यार्थं) धर्मकार्य्य के निमित्त (प्रोषितः, नरः) परदेश गये हुए पति की (अष्टौ, समाः) आठ वर्ष पर्यन्त (विद्यार्थं, वा, यशः, अर्थं) विद्योपार्जन अथवा यश प्राप्त करने के निमित्त गया हो तो (षट्) छःवर्ष (तु) और (कामार्थं) काम के लिये गया हो तो (त्रीन्, वत्सरान्) तीन वर्ष पर्यन्त स्त्री (प्रतीक्ष्यः) प्रतीक्षा करे ॥

संवत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्तीं योषितं पतिः ।
ऊर्ध्वं संवत्सरात्त्वेनां दायं हृत्वा न संवसेत् ॥५७॥

पदा०-(पतिः) स्वामी(द्विषन्तीं,योषितं) द्वेष करने वाली स्त्री की (संवत्सरं,प्रतीक्षेत) एकवर्ष पर्यन्त प्रतीक्षा करे, पुनः (ऊर्ध्वं, संवत्सरात) एकवर्ष व्यतीत होजाने पर (एनां, दायं, हृत्वा) उसके भूषणादि छीनले और (न,संवसेत) उसके साथ न रहे ॥

अतिक्रामेत्प्रमत्तं या मत्तं रोगार्त्तमेव वा ।
सा त्रीन् मासान् परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा॥५८॥

पदा०-(या) जो स्त्री (प्रमत्तं, मत्तं) प्रमादी, उन्मत्त (वा) अथवा (रोगार्त्तं, एव) रोगी पति को (अतिक्रामेत्) सेवा न करे वा आज्ञा उल्लंघन करे तो (सा) वह स्त्री (विभूषण-परिच्छदा) वस्त्राभूषणों से रहित (त्रीन्, मासान्, परित्याज्या) तीनें मास पर्यन्त छोड़ने योग्य है अर्थात् तीन मास के पश्चात् व्यवहार ठीक होजाने पर पुनः स्त्री को ग्रहण करले ॥

उन्मत्तं पतितं क्लीबमबीजं पापरोगिणम् ।
न त्यागोऽस्ति द्विषन्त्याश्च न च दायापवर्तनम्॥५९॥

पदा०-(उन्मत्तं, पतितं) उन्मत्त, पतित (क्लीबं, अबीजं) नपुंसक, बीज रहित और (पापरोगिणं) कुष्ठ आदि रोग वाले पति से (द्विषन्त्याः) द्वेष करने वाली स्त्री का (त्यागः, नास्ति) परित्याग नहीं है (च) और (नच, दायापवर्तनं) न उसका धनादि छीनना उचित है ॥

मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत् ।
व्याधिता वाधिवेत्तव्या हिंस्रार्थघ्नी च सर्वदा ॥६०॥

पदा०-(च) और (या) जो स्त्री (मद्यपा, असाधुवृत्ता) मद्य पीने वाली, बुरे चाल चलन वाली (प्रतिकूला, च) पति के विरुद्ध चलने वाली (व्याधिता) रोगिणी (हिंस्रा) हत्यारी (च) और (सर्वदा) सदा (अर्थघ्नी) धन नष्ट करने वाली (भवेत्) हो, तो उसके रहते हुए भी पुरुष को (वाधिवेत्तव्या) द्वितीय विवाह करलेना चाहिये ॥

सं०—अब एक स्त्री की उपस्थिति में पुरुष के लिये द्वितीय विवाह का विधान करते हैं:—

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा ।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥ ८१ ॥

पदा०—(वन्ध्या) बांझ स्त्री की (अष्टमे, अब्दे) आठ वर्ष पर्यन्त (मृतप्रजा) जिसकी प्रजा=सन्तान जीवित न रहती हो उसकी (दशमे) दश वर्ष पर्यन्त (तु) तथा (स्त्रीजननी, एकादशे) जिसके कन्या ही उत्पन्न होती हों उसकी ग्यारह वर्ष तक प्रतीक्षा करने के पश्चात् (तु) और जो (अप्रियवादिनी) अप्रिय भाषण करने वाली हो उसको (सद्यः) तत्काल ही त्यागकर पुरुष (अधिवेद्या) द्वितीय विवाह करलेवे ॥

या रोगिणी स्यात्तु हिता सम्पन्ना चैव शीलतः ।
सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित् ॥८२॥

पदा०—(तु) और (या, रोगिणी, स्यात्) जो सदा रोगी रहे परन्तु (हिता) पति के अनुकूल हितकारिणी (चैव) तथा (शीलतः,सम्पन्ना) शीलवाली हो तो (सा,अनुज्ञाप्या) उससे आज्ञा लेकर (अधिवेत्तव्या) द्वितीय विवाह करे (च) और (कर्हिचित्, न, अवमान्या) कभी भी उसका अपमान करना उचित नहीं ॥

अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रुषिता गृहात् ।
सा सद्यः सन्निरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ ॥८३॥

पदा०—(तु) और (या, नारी, अधिविन्ना) जो पहली स्त्री दूसरी स्त्री के आने से (रुषिता) क्रोधित हुई (गृहात्, निर्गच्छेत्) घर से निकल जावे तो (सा) उसको (सद्यः,

सन्निरोद्धव्या) शीघ्र यत्न से रोके (वा) अथवा (कुलसन्निधौ, त्याज्या) उसको माता पिता के कुल में छोड़ दे ॥

प्रतिषिद्धापि चेद्या तु मद्यमभ्युदयेष्वपि ।
प्रेक्षासमाजं गच्छेद्वा सा दण्ड्या कृष्णलानिषट् ॥६४॥

पदा०—(अपि, तु) और (या) जो स्त्री (अभ्युदयेषु) शुभ उत्सवों में (प्रतिषिद्धा, अपि) निषेध करने पर भी (चेत्) यदि (मद्यं) मद्य पीवे (वा) अथवा (प्रेक्षासमाजं, गच्छेत्) नाच तमाशे में जावे (सा) वह (षट्कृष्णलानि) छः "कृष्णल" (दण्ड्या) दण्ड के योग्य है ॥

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च ।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥ ६५ ॥

पदा०—(उत्कृष्टाय, अभिरूपाय) जो कुल आचारादि से उच्च, सुन्दर (च) तथा (सदृशाय) गुणों में तुल्य हो (तस्मै, वराय) उस वर के लिये (अप्राप्तां, अपि) कुछ न्यून आयु वाली भी (तां, कन्यां) उस कन्या को (यथाविधि) विधिपूर्वक (दद्यात्) दे देवे ॥

काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ ६६ ॥

पदा०—(ऋतुमती, अपि, कन्या) ऋतुवाली कन्या भी (कामं) चाहे (आमरणात्, एव) मरणपर्यन्त अविवाहिता ही (गृहे, तिष्ठेत्) घर में बैठी रहे (तु) परन्तु (एनां) इस कन्या को (गुणहीनाय) गुणहीन के लिये (कर्हिचित्) कभी भी (नच, प्रयच्छेत्) न देवे ॥

सं०—अब विवाह करने में कन्या की स्वतन्त्रता कथन करते हैं:—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्य्यृतुमती सती ।

ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥९०॥

पदा०-(ऋतुमती, सती) रजस्वला होने पर (कुमारी) कन्या (त्रीणि, वर्षाणि) तीन वर्ष तक (उदीक्षेत) प्रतीक्षा करे (तु) पुनः (एतस्मात्, कालात्, ऊर्ध्वं) इस अवधि के व्यतीत होने पश्चात् (सदृशं, पतिं, विन्देत) अपने समान गुण वाले पति को विवाह लेवे, अर्थात् ऋतुकाल से तीन वर्ष पर्यन्त तो पिता माता की प्रतीक्षा करे "कि वही मेरा विवाह करें" उनके न करने पर स्वयं अपने सदृश पति के साथ विवाह करले॥

अदीयमाना भर्त्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम् ।
नैनः किञ्चिदवाप्नोति न च यं साधिगच्छति ॥९८॥

पदा०-(यदि) यदि तीन वर्ष तक (अदीयमाना) न विवाही हुई कन्या (स्वयं, भर्त्तारं, अधिगच्छेत्) स्वयं ही अपने सदृश पति के साथ विवाह करले, तो उस कन्या को (किञ्चित्, एनः) कुछ भी पाप (न, अवाप्नोति) नहीं होता (च) और (यं, सा) जिस पति को वह कन्या (अधिगच्छति) प्राप्त होती है वह भी पाप का भागी (न) नहीं होता ॥

अलङ्कारं नाददीत पित्र्यं कन्या स्वयम्वरा ।
मातृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्याद्यदि तं हरेत् ॥९९॥

पदा०-(स्वयम्वरा, कन्या) स्वयं विवाह करने वाली कन्या (पित्र्यं) पिता (मातृकं) माता (वा) अथवा (भ्रातृदत्तं, अलङ्कारं) भ्राता के दिये हुए आभूषणों को (न, आददीत) ग्रहण न करे (यदि, तं, हरेत्) यदि उसको लेलेवे तो (स्तेना, स्यात्) कन्या चोर हो ॥

देवदत्तां पतिर्भार्यां विन्दते नेच्छयात्मनः ।
तां साध्वीं बिभृयान्नित्यं देवानां प्रियमाचरन् ॥७०॥

पदा०-(पतिः) स्वामी (देवदत्तां, भार्यां) देव=परमात्मा के अनुग्रह से दीहुई स्त्री को (विन्दते) पाता है (आत्मनः,इच्छया, न) अपनी इच्छा से नहीं, इसलिये पुरुष (देवानां) देवता= विद्वानों का (प्रियं, आचरन्) प्रियाचरण=सत्कार करता हुआ (नित्यं) सदा (तां,साध्वीं) उस देवी का (बिभृयात्) पालन करे ॥

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थं च मानवाः ।
तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः॥७१॥

पदा०-(प्रजनार्थं) परमात्मा ने गर्भधारण करने के लिये (स्त्रियः) स्त्रियां (च) और (सन्तानार्थं) गर्भाधान करने के लिये (मानवाः) पुरुष (सृष्टाः) उत्पन्न किये हैं (तस्मात्) इसलिये (पत्न्या, सह) पत्नी के साथ पुरुष का (श्रुतौ) वेद में (साधारणः, धर्मः) समानधर्म (उदितः) कहा है, अर्थात् पुरुष के विना स्त्री और स्त्री के विना पुरुष सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होने से दोनों का समान धर्म है ॥

आददीत न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरं ददन् ।
शुल्कं हि गृह्णन्कुरुते छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥ ७२ ॥

पदा०-(शूद्रः, अपि) शूद्र भी (दुहितरं, ददन्) कन्या देता हुआ (शुल्कं, न, आददीत) शुल्क=मोल न ले (हि) क्योंकि (शुल्कं, गृह्णन्) कन्या का मोल लेने वाला (छन्नं, दुहितृविक्रयं) छिपा हुआ कन्या का विक्रय (कुरुते) करता है ॥

एतत्तु न परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः ।
यदन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनरन्यस्य दीयते ॥ ७३ ॥

पदा०-(यत्) जो (अन्यस्य, प्रतिज्ञाय) और को कन्या देने की प्रतिज्ञा करके (पुनः) फिर (अन्यस्य, दीयते) अन्य को देता है (एतत्) यह निकृष्ट कर्म (परे) पूर्वज शिष्ट लोगों ने (जातु) कभी भी (न, चक्रुः) नहीं किया (तु) और (न, अपरे) नाही आजकल के (साधवः) शिष्टपुरुष करते हैं ॥

नानुशुश्रुम जात्वेतत्पूर्वेष्वपि हि जन्मसु ।
शुल्कसंज्ञेन मूल्येन छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥७४॥

पदा०-(हि) निश्चयकरके (पूर्वेषु, अपि, जन्मसु) पूर्व जन्मों में भी हमने (जातु) कभी (एतत्) यह (शुल्कसंज्ञेन, मूल्येन) शुल्कसंज्ञक मूल्य से (छन्नं, दुहितृविक्रयं) छिपकर कन्या का वेचना (न, अनुशुश्रुम) नहीं सुना ॥

अन्योन्यस्याव्यभीचारो भवेदामरणान्तिकः ।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥७५॥

पदा०-(आमरणान्तिकः) मरणपर्यन्त पति पत्नी का (अन्योन्यस्य, अव्यभीचारः, भवेत्) परस्पर व्यभिचार न हो (एषः) यह (स्त्रीपुंसयोः) स्त्री पुरुषों का (समासेन) संक्षेप से (परः, धर्मः, ज्ञेयः) श्रेष्ठ धर्म जानना चाहिये ॥

तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ ।
यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्ताावितरेतरम् ॥७६॥

पदा०-(तु) और (यथा) जिसप्रकार (तौ) वह दोनों (स्त्रीपुंसौ) स्त्री पुरुष (इतरेतरं) परस्पर (कृतक्रियौ) कर्म करते हुए (वियुक्तौ, न, अभिचरेतां) विरुद्ध आचरण वाले न हों (तथा) उस प्रकार का (नित्यं, यतेयातां) सदा यत्न करें ॥

एष स्त्रीपुंसयोरुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः ।
आपद्यपत्यप्राप्तिश्च दायभागं निबोधत ॥७७॥

पदा०—हे ऋषिलोगो ! (वः) तुम्हारे प्रति (एषः) यह (स्त्रीपुंसयोः) पति पत्नी का (रतिसंहितः) प्रीतियुक्त (धर्मः) धर्म (च) और (आपदि, अपत्यप्राप्तिः) सन्तान के अभाव में नियोगादि से सन्तान उत्पन्न करने का उपाय का धर्म (उक्तः) कहा, अब (दायभागं) दायभाग को (निबोधत) सुनो ॥

सं०—अब दायभाग का वर्णन करते हैं :—

ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः समम् ।
भजेरन्पैतृकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतोः ॥७८॥

पदा०—(पितुः, च, मातुः, च) पिता तथा माता के (ऊर्ध्वं) मरने पर (भ्रातरः) सब भाई (समेत्य) मिलकर (पैतृकं, रिक्थं) पिता के धन को (समं, भजेरन्) बराबर २ बांट लेवें (हि) क्योंकि (जीवतोः) माता, पिता के जीते हुए (ते, अनीशाः) वह भाई स्वामी नहीं होते हैं, अथवा :—

ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः ।
शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा ॥७९॥

पदा०—(पित्र्यं, अशेषतः, धनं) पिता के सम्पूर्ण धन को (ज्येष्ठः, एव, गृह्णीयात) बड़ा भाई ही ग्रहण करले (तु) और (शेषाः) शेष छोटे भाई (तं) उस बड़े भाई को (तथा, एव) वैसा ही जानते हुए (उपजीवेयुः) जीवन निर्वाह करें (यथा, पितरं) जैसा पिता के समक्ष में पिता से व्यवहार रखते थे ॥

ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः ।
पितॄणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति ॥८०॥

पदा०-(ज्येष्ठेन, जातमात्रेण) ज्येष्ठ पुत्र के होने मात्र से (मानवः) मनुष्य (पुत्री) पुत्र वाला कहलाता (च) और (पितॄणां, अनृणः, एव, भवति) पितृऋण से छूट जाता है (तस्मात्) इस कारण (सः) वह बड़ा भाई (सर्वं, अर्हति) सम्पूर्ण धन ग्रहण करने योग्य है ॥

यस्मिन्नृणं सन्नयति येन चानन्त्यमश्नुते ।
स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः ॥८१॥

पदा०-(येन) जिसके उत्पन्न होने से (ऋणं, सन्नयति) पितृऋण निवृत्त होता (च) तथा (येन) जिसके होने से (आनन्त्यं, अश्नुते) मोक्ष प्राप्त होता है (सः,एव) वही (धर्मजः,पुत्रः) धर्म से उत्पन्न हुआ पुत्र है और (इतरान्) अन्यों को (कामजान्, विदुः) कामज=काम से उत्पन्न हुआ जानना चाहिये ॥

पितेव पालयेत्पुत्रान् ज्येष्ठो भ्रातॄन् यवीयसः ।
पुत्रवच्चापि वर्त्तेरन् ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥८२॥

पदा०-(ज्येष्ठः) ज्येष्ठ भ्राता (यवीयसः, भ्रातॄन्) छोटे भाइयों का (पुत्रान्, पिता, इव) पिता से पुत्रों के समान (पालयेत्) पालन करे (अपि, च) और छोटे भाई (ज्येष्ठे, भ्रातरि) ज्येष्ठ भ्राता में (धर्मतः) धर्म से (पुत्रवत्, वर्त्तेरन्) अपने को पुत्र मानते हुए पिता के समान वर्त्तें ॥

ज्येष्ठः कुलं वर्द्धयति विनाशयति वा पुनः ।
ज्येष्ठः पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः ॥८३॥

पदा०-(ज्येष्ठः) ज्येष्ठ पुत्र ही (कुलं, वर्द्धयति) कुल को बढ़ाता (विनाशयति) नष्ट करता (वा) और (पुनः) फिर

(ज्येष्ठः) ज्येष्ठ ही (लोके, पूज्यतमः) लोक में सत्कार पाता तथा (ज्येष्ठः) ज्येष्ठ ही (सद्भिः) सज्जनों से (अगर्हितः) निन्दा के अयोग्य होता है ॥

यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मातेव स पितेव सः ।
अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात्स सम्पूज्यस्तु बन्धुवत् ॥८४॥

पदा०-(यः, ज्येष्ठः) जो ज्येष्ठ पुत्र (ज्येष्ठवृत्तिः, स्यात्) पिता के समान पालनादि करने वाला हो (सः, माता, इव, सः, पिता, इव) वह माता पिता के समान पूज्य है (तु) और (यः, अज्येष्ठवृत्तिः) जो ज्येष्ठता का स्वभाव वाला न हो (सः, तु) वह तो (बन्धुवत्, सम्पूज्यः) बन्धु के समान सत्कार योग्य है पितावत् नहीं ॥

एवं सह वसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्यया ।
पृथग्विवर्धते धर्मस्तस्माद्धर्म्या पृथक् क्रिया ॥८५॥

पदा०-(वा) अथवा (एवं) पूर्वोक्त प्रकार से विना बांटे सब भाई (सह, वसेयुः) साथ निवास करें (वा) वा (धर्मकाम्यया) धर्म की कामना से विभाग करके (पृथक्) अलग २ रहें, क्योंकि (पृथक्, धर्मः, विवर्द्धते) अलग रहने से धर्म बढ़ता है (तस्मात्) इसलिये (पृथक्, क्रिया) अलग रहना (धर्म्या) धर्मानुकूल है ॥

ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरम् ।
ततोऽर्द्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयन्तु यवीयसः ॥८६॥

पदा०-(ज्येष्ठस्य) बड़े भाई को (सर्वद्रव्यात्) पिता के संपूर्ण धन में से (यत्, वरं) जो उत्तम धन हो उसका (विंशः,

उद्धारः) * बीसवां भाग (मध्यमस्य) बिचले भाई को (ततः, अर्द्धं) उससे आधा (तु) और (यवीयसः) छोटे को (तुरीयं) चौथा भाग (स्यात्) होना चाहिये, और जो शेष रहे उसको सब भाई वक्ष्यमाण श्लोक-९१-के अनुसार बांट लेवें ॥

ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च संहरेतां यथोदितम् ।
येऽन्ये ज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां तेषां स्यान्मध्यमं धनम् ॥८७

पदा०-(ज्येष्ठः, चैव, कनिष्ठः) ज्येष्ठ और कनिष्ठ भाई (यथा, उदितं) जिस प्रकार पूर्व विधान किया है उसी प्रकार (संहरेतां) भाग लेवें (च) और (ये) जो (ज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां) ज्येष्ठ कनिष्ठों से (अन्ये) अतिरिक्त बिचले हैं (तेषां) उनको (मध्यमं, धनं, स्यात्) मध्यम भाग होना चाहिये ॥

सर्वेषां धनजातानामाददीताग्र्यमग्रजः ।
यच्च सातिशयं किञ्चिद्दशतश्चाप्नुयाद्वरम् ॥ ८८ ॥

पदा०-(सर्वेषां, धनजातानां) सम्पूर्ण धन में जो (अग्र्यं) मुख्य धन हो (च) तथा (यत्) जो (किञ्चित्) कुछ (सातिशयं) उत्तम वस्तु हो उसको (अग्रजः, आददीत) ज्येष्ठ भाई ग्रहण करे (च) और (दशतः, वरं) दश पशुओं में जो श्रेष्ठ हो उसको भी बड़ा भाई ही (आप्नुयात्) पावे ॥

उद्धारो न दशस्वस्ति सम्पन्नानां स्वकर्मसु ।
यत्किञ्चिदेव देयं तु ज्यायसे मानवर्द्धनम् ॥ ८९ ॥

---

* जो सम्पूर्ण धन में से निकालकर भाग के अतिरिक्त दिया जाय उसको "उद्धार" कहते हैं ।

पदा०-(उद्धारः) उद्धार भाग (स्वकर्मसु,सम्पन्नानां) अपने २ कर्मों में समृद्ध भ्राताओं को (दशसु) दश पशु आदिकों में ही (नास्ति) नहीं है (तु) किन्तु (ज्यायसे) ज्येष्ठ के लिये (यत्,किञ्चित्,एव,देयं) जो कुछ दिया जाय वही (मानवर्द्धनम्) सन्मानार्थ है ॥

एवं समुद्धृतोद्धारे समानंशान् प्रकल्पयेत् ।
उद्धारेऽनुद्धृते त्वेषामियं स्यादंशकल्पना ॥९०॥

पदा०-(एवं, समुद्धृतः, उद्धारे) पूर्वोक्त प्रकार से उद्धार भाग निकालकर शेष धन में (समान, अंशान्, प्रकल्पयेत्) बराबर भाग करें (तु) और (अनुद्धृते, उद्धारे) उद्धार न किया हो तो (एषां) उनकी (अंशकल्पना) विभाग कल्पना (इयं, स्यात्) आगे कहे हुए प्रकार से करें ॥

एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठः पुत्रोऽध्यर्धं ततोऽनुजः ।
अंशमंशं यवीयांस इति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ९१ ॥

पदा०-(ज्येष्ठः, पुत्रः) ज्येष्ठपुत्र (एकाधिकं) एक भाग अधिक अर्थात् दो भाग (ततः, अनुजः) उससे छोटा (अध्यर्द्धं, हरेत्) डेढ़ भाग लेवे (यवीयांसः) शेष छोटे भाई (अंशं, अंशं) एक २ भाग लेवें (इति, धर्मः, व्यवस्थितः) यह धर्मव्यवस्था है ॥

स्वेभ्योंऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक् ।
स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं पतिताः स्युरदित्सवः ॥९२॥

पदा०-(तु) और(भ्रातरः)सहोदर भ्राता (स्वेभ्यः,अंशेभ्यः)

अपने२ भागों में से (पृथक्) अलग २ (स्वात्, स्वात्, अंशात्, चतुर्भागं) अपना२ चतुर्थांश (कन्याभ्यः, प्रदद्युः) कन्या=बहिनों को देवें (अदित्सवः) और यदि वह देना न चाहें तो (पतिताः, स्युः) पतित हों ॥

अजाविकं सैकशफं न जातु विषमं भजेत् ।
अजाविकन्तु विषमं ज्येष्ठस्यैव विधीयते ॥ ९३ ॥

पदा०—(अजाविकं) भेड़ बकरी तथा (सैकशफं) एक खुर वाले घोड़ा आदि पशुओं की विषम=विभाग करने के अयोग्य संख्या हो तो (जातु, न, भजेत्) कदापि विभाग न करें (तु) क्योंकि (विषमं, अजाविकं) विषम संख्या वाले भेड़, बकरी आदि पशु (ज्येष्ठस्य, एव, विधीयते) ज्येष्ठभ्राता के ही होते हैं ॥

यवीयाज्ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेदिति ।
समस्तत्र विभागः स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥९४॥

पदा०—(यवीयान्) यदि छोटा भाई नियोगविधि से (ज्येष्ठभार्यायां) ज्येष्ठ भाई की स्त्री में (पुत्रं, उत्पादयेत्, इति) पुत्र उत्पन्न करे तो (तत्र) वहां (समः, विभागः, स्यात्) बराबर भाग हो (इति, धर्मः, व्यवस्थितः) यह धर्म व्यवस्था है ॥

उपसर्जनं प्रधानस्य धर्मतो नोपपद्यते ।
पिता प्रधानं प्रजने तस्माद्धर्मेण तं भजेत् ॥ ९५ ॥

पदा०—(प्रधानस्य, उपसर्जनं) प्रधान की अप्रधानता

(धर्मतः) धर्म से (न, उपपद्यते) सिद्ध नहीं होती और (प्रजने) सन्तानोत्पत्ति में (पिता, प्रधानं) पिता प्रधान है (तस्मात्) इसलिये (तं) उसको (धर्मेण, भजेत्) धर्मानुसार सम भाग देवें, क्योंकि वह नियोग विधि से उत्पन्न हुआ पुत्र अपने भ्रातृव्य=चाचा के समान ही भाग का अधिकारी है और ज्येष्ठ भाई का गौणपुत्र होने से उद्धारादि अधिक भाग का स्वामी नहीं होसकता ॥

जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं स्वब्रह्मण्यास्वपिस्मृतम् ।
यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता ॥९६॥

पदा०-(सुब्रह्मण्यासु, अपि) सुब्रह्मण्यादि मन्त्रों में भी (जन्मज्येष्ठेन,आह्वानं) जन्म से ज्येष्ठ को बुलाना (स्मृतं) कहा है (च) और (गर्भेषु) गर्भ में (यमयोः,चैव) जोड़िया=दो पुत्र साथ२ उत्पन्न हों तो उन दोनों पुत्रों में से (जन्मतः) प्रथम जन्मने वाले को (ज्येष्ठता, स्मृता) ज्येष्ठता कही है ॥

अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् ।
यदपत्यं भवेदस्यां तन्ममस्यात्स्वधाकरम् ॥ ९७ ॥

पदा०-(अपुत्रः) विना पुत्र वाला (अनेन, विधिना) इस विधि से (सुतां) कन्या को (पुत्रिकां) पुत्रिका (कुर्वीत) करे कि विवाह के समय जामाता से कहे कि (अस्यां) इस कन्या में प्रथम (यत्, अपत्यं) जो पुत्र (भवेत्) हो (तत्) वह (स्वधाकरं,मम,स्यात्) भोजनादि द्वारा मेरी सेवा करने वाला होवे॥

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा ।
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥९८॥

पदा०-(यथा, आत्मा) जैसा अपना आत्मा (तथा) वैसाही (पुत्रः) पुत्र होता (एव) और (पुत्रेण, समाहिता) पुत्र के समान ही कन्या होती है, तो फिर (तस्यां, आत्मनि, तिष्ठन्त्यां) उस आत्मारूप कन्या के होते हुए (अन्यः) दूसरा पिता के (धनं) धन को (कथं, हरेत) कैसे लेसक्ता है ॥

मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः ।
दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनम् ॥९९॥

पदा०-(तु) और (मातुः, यौतकं) माता का अपना निज का जोड़ा हुआ (यत, स्यात) जो धन हो (सः) वह सब (कुमारीभागः, एव) कन्या का ही भाग है (च) और (अपुत्रस्य) पुत्रहीन नाना का (अखिलं, धनं) सम्पूर्ण धन (दौहित्रः, एव, हरेत) दौहित्र ही लेवे ॥

दौहित्रोह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्यपितुर्हरेत् ।
स एव दद्याद्द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहायच ॥१००॥

पदा०-(हि) निश्चयकरके (दौहित्रः) दुहित्र ही (अपुत्रस्य, पितुः) पुत्रहीन पिता के (अखिलं, रिक्थं) समस्त धन को (हरेत) लेवे (च) और (सः, एव) वह ही (पित्रे) पिता तथा (मातामहाय) नाना को (द्वौ, पिण्डौ, दद्यात) दो पिण्ड देवे, यहां पिण्ड से तात्पर्य्य भोजनादि देना है, जैसाकि आठवें अध्याय में "पिण्ड" शब्द के अर्थ स्पष्टतया ग्रास के किये हैं ॥

पौत्रदौहित्रयोर्लोके न विशेषोऽस्ति धर्मतः ।
तयोर्हि मातापितरौ सम्भूतौ तस्य देहतः ॥१०१॥

पदा०-(लोके) लोक में (पौत्रदौहित्रयोः) पौत्र=नाती और दौहित्र=धेवते में (धर्मतः) धर्मदृष्टि से कुछ भी (विशेषः, नास्ति) विशेषता नहीं है (हि) क्योंकि (तयोः, मातापितरौ) उन दोनों के माता पिता (तस्य,देहतः) उसी की देह से (सम्भूतौ) उत्पन्न हुए हैं ॥

पुत्रिकायां कृतायान्तु यदि पुत्रोऽनुजायते ।
समस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठतानास्ति हि स्त्रियाः॥

पदा०-(तु) और (पुत्रिकायां, कृतायां) पुत्रिका करने पर (यदि) यदि (पुत्रः, अनुजायते) अपना पुत्र उत्पन्न होजाय तो (तत्र) वहां पुत्र तथा दौहित्र का (समः,विभागः) बराबर विभाग (स्यात्) हो (हि) क्योंकि (स्त्रियाः) स्त्री की (ज्येष्ठता) ज्येष्ठता (नास्ति) नहीं है ॥

अपुत्रायां मृतायां तु पुत्रिकायां कथञ्चन ।
धनं तत्पुत्रिकाभर्त्ता हरेतैवाविचारयन् ॥१०३॥

पदा०-(तु) और (कथञ्चन) कदाचित् (पुत्रिकायां) पुत्रिका (अपुत्रायां, मृतायां) पुत्रोत्पन्न हुए विना ही मरजावे तो (तत्, पुत्रिकाभर्त्ता) उस " पुत्रिका " का पति ही उसके पिता का (धनं) सम्पूर्ण धन (अविचारयन्) विना विचारे (एव) ही (हरेत्) ग्रहण करे, यह निश्चित सिद्धान्त है ॥

अकृता वा कृता वापि यं विन्देत्सदृशात्सुतम् ।
पौत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिण्डं हरेद्धनम् ॥१०४॥

पदा०-(कृता, अपि, वा, अकृता) पुत्रिका का विधान

किया हो अथवा न किया हो तब भी (सदृशात्) अपने समान जामाता से (यं, सुतं,विन्देत्) जिस पुत्र को प्राप्त करे (तेन) उसी पुत्र से (मातामहः) नाना (पौत्री) पौत्र वाला कहावेगा और वही (पिण्डं, दद्यात्) उसकी सेवा आदि में तत्पर रहता हुआ (धनं, हरेत्) उसके धन का भागी होगा ॥

पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते ।
अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम् ॥१०५॥

पदा०—(पुत्रेण, लोकान्, जयति) पुत्र के होने से लोकों को जीतता (पौत्रेण, आनन्त्यं, अश्नुते) पौत्र के होने से चिरकाल पर्यन्त सुख में निवास करता (अथ) और (पुत्रस्य, पौत्रेण) पुत्र के पौत्र अर्थात् प्रपौत्र के होने से (ब्रध्नस्य, विष्टपं, आप्नोति) आदित्य लोक को प्राप्त होता है, अर्थात् ऐश्वर्यादि से आदित्य के समान प्रकाशित होता है॥

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात् त्रायते पितरं सुतः ।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥१०६॥

पदा०—(यस्मात्) जिस कारण (सुतः) पुत्र (पुन्नाम्नः) पुन्नाम (नरकात्) नरक=दुःख से (पितरं, त्रायते) पिता को बचाता है (तस्मात्) इसलिये (स्वयम्भुवा) ब्रह्मा ने (स्वयं, एव) आप ही (पुत्रः, इति, प्रोक्तः) "पुत्र" ऐसा कहा है, अर्थात् दुःख से बचाने वाले का नाम "पुत्र" है ॥

पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते ।
दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं सन्तारयति पौत्रवत् ॥१०७॥

पदा०-(लोके) लोक में (पौत्रदौहित्रयोः) पौत्र और दौहित्र में (विशेषः, न, उपपद्यते) कुछ विशेषता नहीं है (हि) क्योंकि (दौहित्रः, अपि) दौहित्र भी (एनं) इस मातामह को (पौत्रवत) पौत्र के समान ही (अमुत्र) परलोक (सन्तारयति) पहुंचाता है, अर्थात् मृत्यु पर्य्यन्त उसकी सेवा करता है ॥

मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिकासुतः ।
द्वितीयन्तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तत्पितुः पितुः ॥१०८॥

पदा०-(पुत्रिकासुतः) पुत्रिका का पुत्र (प्रथमतः, पिण्डं, मातुः) प्रथम माता की सेवा (द्वितीयं) दूसरे (तस्याः, पितुः) माता के पिता की (तृतीयं) तीसरे (तत, पितुः, पितुः) माता के पिता के पिता की सेवा करे, अर्थात् इन तीनों का अन्नादि से सत्कार करे, यहां " पिण्ड " शब्द के अर्थ सत्कार के हैं ॥

उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु दत्त्रिमः ।
स हरेतैव तद्रिक्थं सम्प्राप्तोऽप्यन्यगोत्रतः ॥ १०९ ॥

पदा०-(तु) और (यस्य) जिसका (सर्वैः, गुणैः, उपपन्नः) सम्पूर्ण गुणों से सम्पन्न (दत्त्रिमः, पुत्रः) दत्तक पुत्र चाहे (अन्यगोत्रतः, अपि, सम्प्राप्तः) अपने से भिन्न गोत्र से भी प्राप्त हुआ हो (सः, एव) वही (तत, रिक्थं) उसके धन को (हरेत) लेवे ॥

गोत्ररिक्थे जनयितुर्नहरेद्दत्त्रिमः क्वचित् ।
गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा ॥११०॥

पदा०-(दत्रिमः) दत्तक पुत्र (कचित्) कहीं भी (जनयितुः) उत्पादक पिता के (गोत्ररिक्थे) गोत्र तथा धन को (न, हरेत्) ग्रहण न करे, और (पिण्डः) भोजनादि देना (गोत्ररिक्थानुगः) गोत्र तथा धन के पीछे है इसलिये (ददतः) दिये हुए पुत्र का (स्वधा) भोजनादि उस जनक पिता से (व्यपैति) छूट जाता है ॥

अनियुक्तासुतश्चैव पुत्रिण्याप्तश्च देवरात् ।
उभौ तौ नार्हतो भागं जारजातककामजौ ॥१११॥

पदा०-(अनियुक्तासुतः) विना नियोगविधि से उत्पन्न हुआ पुत्र (चैव) तथा (पुत्रिण्या) पुत्रवती को (देवरात्, आप्तः) देवर से प्राप्त पुत्र (उभौ, तौ) वह दोनों (जारजातक-कामजौ) जार तथा काम से उत्पन्न होने के कारण (भागं, न, अर्हतः) भाग पाने योग्य नहीं हैं ॥

नियुक्तायामपि पुमान्नार्यां जातोऽविधानतः ।
नैवार्हः पैतृकं रिक्थं पतितोत्पादितो हि सः ॥११२॥

पदा०-(नियुक्तायां, अपि, नार्यां) नियोग करने वाली स्त्री में भी (अविधानतः) शास्त्रविधि के विना (जातः, पुमान्) उत्पन्न हुआ पुत्र (पैतृकं, रिक्थं) पिता के धन को (नैव, अर्हः) पाने योग्य नहीं (हि) क्योंकि (सः, पतितो-त्पादितः) वह पतित से उत्पन्न हुआ है ॥

हरेत्तत्र नियुक्तायां जातः पुत्रो यथौरसः ।
क्षेत्रिकस्य तु तद्बीजं धर्मतः प्रसवश्च सः ॥११३॥

पदा०-(तत्र, नियुक्तायां) उस नियुक्ता स्त्री में विधिपूर्वक (जातः,पुत्रः) उत्पन्न हुआ पुत्र वैसे ही पिता का धन (हरेत्)

लेवे (यथा, औरसः) जैसे औरस=असली पुत्र लेता है (तु) और (तत्, क्षेत्रिकस्य, वीजं) वह नियोग से उत्पन्न हुआ पुत्र क्षेत्र वाले का ही बीज है, क्योंकि (सः, च)वह (धर्मतः,प्रसवः) धर्म से उत्पन्न हुआ है ॥

धनं यो बिभृयाद्भ्रातुर्मृतस्य स्त्रियमेव च ।
सोऽपत्यं भ्रातुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैव तद्धनम् ॥११४॥

पदा०-(यः) जो (मृतस्य, भ्रातुः) मरे हुए भाई की (स्त्रियं, एव, च, धनं) स्त्री और धन को (विभृयात्) धारण करे (सः) वह नियोग विधि से (भ्रातुः, अपत्यं) भाई का पुत्र (उत्पाद्य) उत्पन्न करके (तस्य, एव) उसको ही (तत्, धनं, दद्यात्) वह रक्षित किया हुआ भाई का धन देवे ॥

याऽनियुक्ताऽन्यतः पुत्रं देवराद्वाप्यवाप्नुयात् ।
तं कामजमरिक्थीयं वृथोत्पन्नं प्रचक्षते ॥११५॥

पदा०-(या, अनियुक्ता) जो स्त्री विना नियोग (देवरात्) देवर से (अपिवा) अथवा (अन्यतः) दूसरे से (पुत्रं, अवाप्नुयात्) पुत्र को प्राप्त हो (तं, कामजं) उस कामज तथा (वृथोत्पन्नं) निष्फल उत्पन्न हुए पुत्र को (अरिक्थीयं) धन का अभागी (प्रचक्षते) कहा है ॥

सं०-अब दायभाग के भागी बारह पुत्रों के नाम गिनाते हैं:-

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ।
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बान्धवाश्चषट् ॥११६॥

पदा०-(औरसः, क्षेत्रजः, चैव) औरस, क्षेत्रज (दत्तः, कृत्रिमः, एवच) दत्तक, कृत्रिम (गूढोत्पन्नः) गूढोत्पन्न (च)

और (अपविद्धः) अपविद्ध, यह (षट्, बान्धवाः) छः बान्धव (दायादाः) धन के भागी हैं ॥

कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा ।
स्वयंदत्तश्च शौद्रश्च षडदायादबान्धवाः ॥११७॥

पदा०-(कानीनः) कानीन (सहोढः, च) सहोढ (क्रीतः) क्रीत (तथा) तथा (पौनर्भवः) पौनर्भव (स्वयंदत्तः, च) स्वयंदत्त (च) और (शौद्रः) शौद्र यह (षट्) छः (अदायाद बान्धवाः) अदायाद बान्धव हैं अर्थात् दायभाग के भागी नहीं ॥ किन्तु केवल बान्धव हैं ॥

यादृशं फलमाप्नोति कुप्लवैः सन्तरञ्जलम् ।
तादृशं फलमाप्नोति कुपुत्रैः सन्तरंस्तमः ॥११८॥

पदा०-(कुप्लवैः) टूटी फूटी नावों से (जलं, सन्तरन्) जल को तरता हुआ पुरुष (यादृशं, फलं, आप्नोति) जैसे फल को पाता है (तादृशं, फलं) वैसे ही फल को (कुपुत्रैः) कुपुत्रों से (तमः) दुःख को (सन्तरन्) तरने वाला पुरुष (आप्नोति) प्राप्त होता है, अर्थात् सुख नहीं पाता ॥

यद्येकरिक्थिनौ स्यातामौरसक्षेत्रजौ सुतौ ।
यस्य यत्पैतृकं रिक्थं स तद्गृह्णीत नेतरः ॥११९॥

पदा०-(यदि) यदि (औरसक्षेत्रजौ, सुतौ) अपुत्र के क्षेत्र में नियोगविधि से एक क्षेत्रज पुत्र हो पुनः दूसरा औरस = असली पुत्र भी उत्पन्न होजाय तो यह दोनों (एकरिक्थिनौ, स्यातां) एक धन के भागी होने पर जो (यस्य) जिसके (पैतृकं) पिता का (यत्, रिक्थं) धन हो (सः) वह (तत्) उस धन को (गृह्णीत)ग्रहण करे (इतरः,न) अन्य, अन्य के धन को न लेवे ॥

एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः ।
शेषाणामानृशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनम् ॥१२०॥

पदा०—(एकः, औरसः, पुत्रः, एव) एक औरस पुत्र ही (पित्र्यस्य, वसुनः) पिता के धन का (प्रभुः) स्वामी होता है (तु) और (शेषाणां, आनृशंस्यार्थं) शेष पुत्रों को दया से (प्रजीवनं, दद्यात्) जीवन निर्वाह मात्र देवे ॥

षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात्पैतृकाद्धनात् ।
औरसो विभजन्दायं पित्र्यं पञ्चममेव वा ॥१२१॥

पदा०—(वा) अथवा (औरसः) औरसपुत्र (पित्र्यं, दायं, विभजन्) पिता के दाय का विभाग करता हुआ (पञ्चमं, एव, षष्ठं, तु) पांचवां अथवा छठा (अंशं) भाग (क्षेत्रजस्य) क्षेत्रज का (पैतृकात्, धनात्) पितृधन में से (प्रदद्यात्) देवे ॥

औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भागिनौ ।
दशापरे तु क्रमशो गोत्ररिक्थांशभागिनः ॥१२२॥

पदा०—(औरसक्षेत्रजौ, पुत्रौ) औरस और क्षेत्रज पुत्र (पितृरिक्थस्य, भागिनौ) पितृधन के भागी हैं (तु) और (अपरे, दश, क्रमशः) अन्य दश पुत्र क्रम से (गोत्ररिक्थांशभागिनः) गोत्र धन के भागी हों ॥

सं०—अब पूर्वोक्त द्वादश पुत्रों का क्रमशः वर्णन करते हुए प्रथम १—"औरस" पुत्र का वर्णन करते हैं :—

स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्धि यम् ।
तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम् ॥ १२३ ॥

पदा०-(संस्कृतायां, स्वक्षेत्रे) अपनी विवाहिता स्त्री में (स्वयं, हि) अपने आप ही पति (यं, उत्पादयेत) जिसको उत्पन्न करे (तं, प्रथमकल्पितं) उसको प्रथम कहा हुआ (औरसं, विजानीयात) "औरस" पुत्र जाने ॥

सं०-अब २-"क्षेत्रज" पुत्र का वर्णन करते हैं :—

यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वा ।
स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः ॥१२४॥

पदा०-(यः) जो (प्रमीतस्य) मरे हुए (क्लीबस्य) नपुंसक (वा) अथवा (व्याधितस्य) व्याधि से युक्त पति की स्त्री में (नियुक्तायां) नियोग विधि के अनुसार (स्वधर्मेण) अपने धर्म से (तल्पजः) जो उत्पन्न हो (सः, पुत्रः) वह पुत्र (क्षेत्रजः, स्मृतः) "क्षेत्रज" कहाता है ॥

सं०-अब ३-"दत्रिम=दत्तक" पुत्र का वर्णन करते हैं:-

माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि ।
सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः ॥१२५॥

पदा०-(माता, वा, पिता) माता वा पिता (सदृशं, प्रीति-संयुक्तं) सजातीय प्रीतियुक्त (यम,पुत्रं) जिस पुत्र को (आपदि) आपत्काल में (अद्भिः) जल से संकल्प करके (दद्यातां) देदेवें(सः) उसको (दत्रिमः, सुतः, ज्ञेयः) "दत्तक" पुत्र जानना चाहिये ॥

सं०-अब ४-"कृत्रिम" पुत्रका वर्णन करते हैं :—

सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम् ।
पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स विज्ञेयश्च कृत्रिमः ॥ १२६ ॥

पदा०-(सदृशं) समानजातीय (गुणदोषविचक्षणं) गुण

दोषों के जानने में निपुण (तु) और (पुत्रगुणैः,युक्तं) पुत्र के गुणों से युक्त (यं) जिसको (पुत्रं) पुत्र (प्रकुर्यात्) बना लिया हो (सः,च) वह पुत्र (कृत्रिमः, विज्ञेयः) "कृत्रिम=गुणबन्धु" जानना चाहिये ॥

सं०—अब ५—"गूढोत्पन्न" पुत्र का वर्णन करते हैं :—

उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायेत कस्य सः ।
स गृहे गूढ उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तल्पजः ॥१२७॥

पदा०—(यस्य, गृहे, उत्पद्यते) जिसके घर में उत्पन्न हो (च) और (न, ज्ञायेत) यह न जाना जाय कि (सः, कस्य) वह किसका है (सः,गृहे) वह घर में (गूढः,उत्पन्नः) "गूढोत्पन्न"=छिपे ढंग से उत्पन्न हुआ (तस्य) उसी का पुत्र है (यस्य,तल्पजः) जिसकी स्त्री से उत्पन्न हुआ है ॥

सं०—अब ६—"अपविद्ध" पुत्र का वर्णन करते हैं :—

मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा ।
यं पुत्रं परिगृह्णीयादपविद्धः स उच्यते ॥ १२८ ॥

पदा०—(मातापितृभ्यां) माता पिता दोनों से (वा) अथवा (तयोः, अन्यतरेण) उन दोनों में किसी एक से (उत्सृष्टं) छोड़े हुए (यं, पुत्रं) जिस पुत्र को कोई अन्य मनुष्य (परिगृह्णीयात्) ग्रहण करले तो (सः) वह (अपविद्धः) "अपविद्ध" पुत्र (उच्यते) कहाता है ॥

सं०—अब ७—"कानीन" पुत्र का वर्णन करते हैं :—

पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः ।
तं कानीनं वदेन्नाम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम् ॥१२९॥

पदा०—(पितृवेश्मनि) पिता के घर में (कन्या) कन्या

(यं, पुत्रं, तु) जिस पुत्र को (रहः, जनयेत्) विना प्रकट किये उत्पन्न करे तो (तं, कन्यासमुद्भवं) वह कन्योत्पन्न पुत्र (वोढुः) उस कन्या के पति का (कानीन, नाम्ना) "कानीन" नाम से (वदेत्) कहाजाता है ॥

सं०—अब ८—"सहोढ" पुत्र का वर्णन करते हैं :—

या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताज्ञातापि वा सती ।
वोढुः स गर्भो भवति सहोढ इति चोच्यते ॥१३०॥

पदा०—(या, ज्ञाता) जो ज्ञात (अपिवा) अथवा (अज्ञाता, सती) अज्ञात हुई (गर्भिणी) गर्भवती कन्या जिसके साथ (संस्क्रियते) विवाही जाती है (सः, गर्भः) वह गर्भ (वोढुः, भवति) उस पति का ही होता है (च) और उससे उत्पन्न हुए पुत्र को (सहोढः, इति, उच्यते) "सहोढ" कहते हैं ॥

सं०—अब ९—"क्रीतक" पुत्र का वर्णन करते हैं :—

क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रोर्यमन्तिकात् ।
सः क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा ॥१३१॥

पदा०—(यः) जो (मातापित्रोः, अन्तिकात्) माता पिता से (अपत्यार्थं) अपना पुत्र बनाने के लिये (यं) जिसको (क्रीणीयात्) मोल लेले, और वह चाहे (सदृशः, अपिवा, असदृशः) समानजाती अथवा असमान जाति वाला हो (सः, तस्य) वह उसका (क्रीतकः, सुतः) "क्रीतक" पुत्र कहाता है ॥

सं०—अब १०—"पौनर्भव" पुत्र का वर्णन करते हैं :—

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वेच्छया ।
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥ १३२ ॥

पदा०-(या, पत्या, परित्यक्ता) जो पति की त्यागी हुई (वा) अथवा (विधवा) विधवा स्त्री (स्वेच्छया) अपनी इच्छा से (पुनः, भूत्वा) पुनर्विवाह करके (उत्पादयेत्) पुत्र उत्पन्न करे तो (सः) वह पुत्र (पौनर्भवः,उच्यते) "पौनर्भव" कहाता है॥

सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा ।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥ १३३ ॥

पदा०-(चेत्) यदि (सा) वह स्त्री (अक्षतयोनिः) अक्षतयोनि (स्यात्) हो (वा) अथवा (गतप्रत्यागता, अपि) जो पति के घर जाकर आगई हो (सा) वह (पौनर्भवेन, भर्त्रा) पौनर्भव पति से (पुनः,संस्कारं,अर्हति) पुनः संस्कार के योग्य है॥

सं०-अब ११-" स्वयंदत्त " पुत्र का वर्णन करते हैं :-

मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात् ।
आत्मानं स्पर्शयेद्यस्मै स्वयंदत्तस्तु स स्मृतः ॥१३४॥

पदा०-(मातापितृविहीनः) माता पिता से हीन (वा) अथवा (अकारणात्, त्यक्तः) विना अपराध घर से निकाला हुआ (यः) जो पुत्र (आत्मानं, यस्मै, स्पर्शयेत्) अपने को जिसे समर्पण करे (सः, तु) वह (स्वयंदत्तः, स्मृतः) "स्वयंदत्त" पुत्र कहाता है ॥

सं०-अब १२-"पारशव, वा शौद्र" पुत्र का वर्णन करते हैं :-

यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम् ।
स पारयन्नेव शवस्तस्मात्पारशवः स्मृतः ॥१३५॥

पदा०-(यं, सुतं) जिस पुत्र को (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (शूद्रायां) शूद्रा स्त्री में (कामात्, तु, उत्पादयेत्) काम से

उत्पन्न करे (सः) वह (पारयन्,एव) जीता हुआ ही (शवः) मृतक के समान है (तस्मात्) इसलिये (पारशवः,स्मृतः) वह "पारशव, वा शौद्र" कहाता है, यह क्रमशः बारह पुत्रों के लक्षण समाप्त हुए॥

सं०-अब क्षेत्रजादि पुत्रों को "औरस" पुत्र का प्रतिनिधि कथन करते हैं :—

दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतो भवेत् ।
सोऽनुज्ञातो हरेदंशमिति धर्मो व्यवस्थितः ॥१३६॥

पदा०-(दास्यां) दासी में (वा) अथवा (दासदास्यां) दास की दासी में (यः, शूद्रस्य, सुतः, भवेत्) जो शूद्र का पुत्र होवे तो (सः, अनुज्ञातः) वह पिता की आज्ञा से (अंशं, हरेत्) भाग लेवे (इति, धर्मः,व्यवस्थितः) यह धर्ममर्यादा है॥

क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादश यथोदितान् ।
पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ॥१३७॥

पदा०-(एतान्, यथोदितान्, क्षेत्रजादीन्, एकादश,सुतान्) इन पूर्वोक्त क्षेत्रजादि ग्यारह पुत्रों को (क्रियालोपात्) वृद्धावस्था में पिता माता की सेवा आदि क्रिया का लोप न हो, इस कारण (मनीषिणः) बुद्धिमानों ने (पुत्रप्रतिनिधीन्, आहुः) औरस पुत्र का प्रतिनिधि कहा है,वास्तव में यह क्षेत्रजादि ग्यारह "औरस" से नीच कक्षा के ही हैं॥

य एतेऽभिहिताः पुत्राः प्रसंगादन्यबीजजाः ।
यस्य ते बीजतो जातास्तस्य ते नेतरस्य तु ॥१३८॥

पदा०-(प्रसङ्गात्) प्रसङ्गवश(ये,एते)जो यह (अन्यबीजजाः) अन्यबीज से उत्पन्न हुए (पुत्राः, अभिहिताः) पुत्र कहे हैं (ते)

वह (यस्य, बीजतः) जिसके बीज से (जाताः) उत्पन्न हुए हों (तस्य,ते) उसके ही वह हैं (तु) और (इतरस्य,न) अन्य के नहीं ॥

भ्रातॄणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान् भवेत् ।
सर्वांस्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत ॥१३९॥

पदा०—(एकजातानां, भ्रातॄणां) सहोदर भाइयों में (चेत) यदि (एकः) एक भाई भी (पुत्रवान्, भवेत) पुत्रवान हो तो (तेन, पुत्रेण) उस पुत्र से (तान्, सर्वान्) उन सब सहोदर भाइयों को (मनुः) मुझ मनु ने (पुत्रिणः) पुत्रवान् (अब्रवीत) कहा है, अर्थात् अन्य भाइयों को नियोग अथवा पुनर्विवाहादि नहीं करना चाहिए ॥

सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् ।
सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीमनुः ॥१४०॥

पदा०—(चेत) यदि (एकपत्नीनां, सर्वासां) एक पति वाली सम्पूर्ण स्त्रियों के मध्य (एका, पुत्रिणी, भवेत) एक स्त्री पुत्रवती हो तो (तेन, पुत्रेण) उस पुत्र से (ताः, सर्वाः) उन सब को (पुत्रवतीः) पुत्रवती (मनुः,प्राह) मुझ मनु ने कहा है ॥

सं०—अब पूर्वोक्त बारह पुत्रों के दायभाग का वर्णन करते हैं:—

श्रेयसः श्रेयसोऽलाभे पापीयान् रिक्थमर्हति ।
बहवश्चेत्तु सदृशाः सर्वे रिक्थस्य भागिनः ॥१४१॥

पदा०—(श्रेयसः, श्रेयसः, अलाभे) औरसादि श्रेष्ठ २ पुत्रों के अभाव में (पापीयान्, रिक्थं, अर्हति) दूसरे २ नीच पुत्र-धन पाने योग्य हैं (तु) और (चेत) यदि (बहवः, सदृशाः) बहुत से समान हों (सर्वे, रिक्थस्य, भागिनः) तो सब धन के भागी होवें ॥

न भ्रातरो न पितरः पुत्रा रिक्थहराः पितुः।
पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थं भ्रातर एव च ॥ १४२ ॥

पदा०-(न, भ्रातरः) न सहोदर भाई (न, पितरः) न पिता, धन को लेने वाले हैं किन्तु (पुत्राः, पितुः, रिक्थहराः) पुत्र ही पितृधन के भागी हैं (च) और (अपुत्रस्य) पुत्रहीन का (रिक्थं) धन (पिता, भ्रातरः, एव) पिता तथा भाई ही (हरेत्) लेवें ॥

असुतास्तु पितुः पत्न्यः सामानांशाः प्रकीर्त्तिताः।
पितामह्यश्च ताःसर्वा मातृकल्पाः प्रकीर्त्तिताः॥१४३॥

पदा०-(तु) और (पितुः) अपने पिता की (असुताः, पत्न्यः) पुत्ररहिता अन्य स्त्रियां (च) और (पितामह्यः) पिता की माता=दादी यह सब (सामानांशाः, प्रकीर्त्तिताः) समान अंश की भागिनी हैं तथा (ताः, सर्वाः) वह सब (मातृकल्पाः) माता के समान पूज्य (प्रकीर्त्तिताः) कथन की हैं ॥

अनन्तरः सपिण्डाद्यस्तस्य तस्य धनं भवेत्।
अत ऊर्ध्वं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा॥१४४॥

पदा०-(यः) अपुत्र के मरने पर जो२ (सपिण्डात्, तस्य, अनन्तरः) सपिण्डों में से उसका समीपी हो (तस्य, धनं, भवेत्) उसको धन मिले (अतः, ऊर्ध्वं) इसके आगे (सकुल्यः) समान कुल वाले (वा) अथवा (आचार्यः, शिष्यः, एव) आचार्य वा शिष्य धन के भागी (स्यात्) हों ॥

सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मणा रिक्थभागिनः।
त्रैविद्याः शुचयो दान्तास्तथा धर्मो न हीयते॥१४५॥

पदा०-(तु) और (सर्वेषां, अपि, अभावे) पूर्वोक्त सम्पूर्ण अधिकारियों के अभाव में (त्रैविद्याः, शुचयः, दान्ताः) तीनों वेदों के ज्ञाता, बाहर भीतर से शुद्ध, जितेन्द्रिय (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण (रिक्थभागिनः) धन के भागी होते हैं (तथा, धर्मः, न, हीयते) इसप्रकार धर्म की हानि नहीं होती ॥

अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः ।
इतरेषां तु वर्णानां सर्वाभावे हरेन्नृपः ॥ १४६ ॥

पदा०-(ब्राह्मणद्रव्यं) ब्राह्मण का धन (राज्ञा, अहार्यं) राजा कभी न लेवे (इति, नित्यं, स्थितिः) यह शास्त्र की नित्य मर्यादा है, अर्थात् लावारिस ब्राह्मण का धन ब्राह्मणों को ही देदे (तु) और (इतरेषां,वर्णानां) अन्य वर्णों का धन (सर्वाभावे) किसी दायभागी के न रहने पर (नृपः, हरेत्) राजा लेवे ॥

संस्थितस्यानपत्यस्य सगोत्रात्पुत्रमाहरेत् ।
तत्र यद्रिक्थजातं स्यात्तत्तस्मिन्प्रतिपादयेत् ॥१४७॥

पदा०-(अनपत्यस्य, संस्थितस्य) सन्तानहीन ब्राह्मण के मरने पर उसकी स्त्री को (सगोत्रात्, पुत्रं, आहरेत्) राजा समान गोत्र वाले से पुत्र दिलाकर (तत्र, यत्, रिक्थजातं, स्यात्) उस ब्राह्मण का जो कुछ धन हो (तत्, तस्मिन्, प्रतिपादयेत्) वह सब उस पुत्र को देदेवे ॥

सं०-अब स्त्रीधन का विभाग कथन करते हैं :—

द्वौ तु यौ विवदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धने ।
तयोर्यद्यस्य पित्र्यं स्यात्तत्स गृह्णीत नेतरः ॥१४८॥

पदा०-(द्वाभ्यां) दो पतियों से एक स्त्री में (जातौ, यौ, द्वौ)

उत्पन्न हुए जो दो पुत्र (स्त्रियाः,धने,विवदेयातां) वह यदि स्त्री के धन पर विवाद करें तो (तयोः), उन दोनों में (यत्,यस्य,पित्र्यं) जो जिसके पिता का धन (स्यात्) हो (सः, तत्, गृह्णीत) वह उसको ग्रहण करे (न, इतरः) अन्य के धन को अन्य न लेवे ॥

जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः ।
भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः ॥१४९॥

पदा०-(जनन्यां, संस्थितायां) माता के मरजाने पर (सर्वे, सहोदराः) सब सहोदर भाई (तु) तथा (सनाभयः, भगिन्यः, च) सगी बहिनें (मातृकं, रिक्थं) माता के धन को (समं, भजेरन्) समान बांट लेवें ॥

यास्तासां स्युर्दुहितरस्तासामपि यथार्हतः ।
मातामह्या धनात्किञ्चित्प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् ॥१५०॥

पदा०-(याः तासां, दुहितरः, स्युः) जो उन बहिनों की अविवाहिता कन्यायें हों (तासां,अपि) उन को भी (मातामह्याः, धनात्) मातामही के धन में से (यथार्हतः) यथायोग्य (किञ्चित्) थोड़ासा धन (प्रीतिपूर्वकं, प्रदेयं) प्रीतिपूर्वक देना चाहिये ॥

सं०-अब छः प्रकार का स्त्रीधन कथन करते हैं :—

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि ।
भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥१५१॥

पदा०-(अध्यग्नि) १-विवाहादि में अग्नि के पास दिया हुआ (अध्यावाहनिकं) २-गौने में बुलाकर दिया हुआ (च) और (प्रीतिकर्मणि, दत्तं) ३-प्रीति के कार्य तथा समयान्तर में पति का दिया हुआ तथा (भ्रातृमातृपितृप्राप्तं) ४-भाई,

५–माता, और ६–पिता से प्राप्त यह (षड्विधं) छः प्रकार का (स्त्रीधनं, स्मृतं) स्त्रीधन कहाता है ॥

अन्वाधेयं च यद्दत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत् ।
पत्यौ जीवति वृत्तायाः प्रजायास्तद्धनं भवेत् ॥१५२॥

पदा०–(अन्वाधेयं, यत्) विवाह के उपरान्त पति के घर जो धन मिला (च) तथा (पत्या, प्रीतेन, चैव) पति ने प्रीति से (यत्, दत्तं) जो धन दिया हो (वृत्तायाः) मरी हुई स्त्री का (तत्, धनं) वह सम्पूर्ण धन (पत्यौ,जीवति) पति के जीते हुए भी (प्रजायाः, भवेत्) सन्तान का ही होता है ॥

ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषु यद्वसु ।
अप्रजायामतीतायां भर्त्तुरेव तदिष्यते ॥१५३॥

पदा०–(ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषु) ब्राह्म, दैव, आर्ष, गान्धर्व, प्राजापत्य इन पांच विवाहों में (यत्, वसु) जो छः प्रकार का स्त्रीधन कहा (तत्) वह धन (अप्रजायां, अतीतायां) सन्तान रहित स्त्री के मरजाने पर (भर्त्तुः, एव, इष्यते) पति का ही होता है ॥

यत्त्वस्याः स्याद्धनं दत्तं विवाहेष्वासुरादिषु ।
अप्रजायामतीतायां मातापित्रोस्तदिष्यते ॥१५४॥

पदा०–(आसुरादिषु, विवाहेषु) आसुरादि तीन विवाहों में (यत्, धनं) जो धन (अस्याः, दत्तं, स्यात्) स्त्री को दिया हो (अप्रजायां, अतीतायां) सन्तान रहित स्त्री के मरजाने पर (तत्) वह धन (मातापित्रोः, इष्यते) माता पिता का है ॥

स्त्रियां तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं कथञ्चन ।
ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदपत्यस्य वा भवेत् ॥१५५॥

पदा०–(तु) और (स्त्रियां, यत्, वित्तं) स्त्री को जो धन (पित्रा) पिता ने (कथञ्चन) किसी प्रकार (दत्तं, भवेत्) दिया हो (तत्) वह धन (ब्राह्मणी, कन्या, हरेत्) उसकी ब्राह्मणी कन्या लेवे (वा) अथवा (तत्, अपत्यस्य, भवेत्) उसकी सन्तान का होवे ॥

न निर्हारं स्त्रियः कुर्युः कुटुम्बाद्बहुमध्यगात् ।
स्वकादपि च वित्ताद्धि स्वस्य भर्त्तुरनाज्ञया ॥१५६॥

पदा०–(बहुमध्यगात्, कुटुम्बात्) बहुत कुटुम्ब के धन में से (स्त्रियः) स्त्रियें (निर्हारं, न, कुर्युः) आभूषणादि के लिये धनसञ्चय न करें (च) और (हि) निश्चय करके (स्वकात्, अपि, वित्तात्) अपने धन से भी (स्वस्य, भर्त्तुः, अनाज्ञया) पति की बिना आज्ञा अलङ्कारादि न बनवावें ॥

पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलङ्कारो धृतो भवेत् ।
न तं भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते ॥१५७॥

पदा०–(पत्यौ,जीवति) पति के जीते हुए (यः, अलङ्कारः) जो आभूषण (स्त्रीभिः) स्त्रियों ने (धृतः,भवेत्) धारण किये हुए हों (तं) उन को (दायादाः,न,भजेरन्) दायाद न बांटें क्योंकि (भजमानाः) उसके बांटने से (ते,पतन्ति) वह पतित होजाते हैं ॥

अनंशौ क्लीबपतितौ जात्यन्धबधिरौ तथा ।
उन्मत्तजडमूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रियाः ॥१५८॥

पदा०–(क्लीबपतितौ) नपुंसक, पतित (जात्यन्धबधिरौ, तथा) जन्मान्ध तथा बधिर (उन्मत्तजडमूकाः) उन्मत्त, जड़, मूक

(च)और (ये,केचित) जो कोई (निरन्द्रियाः) इन्द्रिय से रहित हों वह सब(अनंशौ,च)भाग पाने के अयोग्य हैं अर्थात इनको भाग नहीं देना चाहिये, केवल इनका पालन मात्र करना योग्य है ॥

सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्या मनीषिणा ।
ग्रासाच्छादनमत्यन्तं पतितो ह्यददद्भवेत् ॥१५९॥

पदा०-(अपितु) और (सर्वेषां) पूर्वोक्त नपुंसकादि सब को आयुः पर्य्यन्त (ग्रासाच्छादनं, अत्यन्तं) यथेष्ट भोजन वस्त्र (शक्त्या) शक्ति के अनुसार (मनीषिणा, दातुं, न्याय्यं) शास्त्रज्ञ धनस्वामी से देना चाहिये (हि) क्योंकि (अददत, पतितः, भवेत) न देता हुआ पुरुष पतित होता है ॥

यद्यर्थिता तु दारैः स्यात्क्लीबादीनां कथञ्चन ।
तेषामुत्पन्नतन्तूनामपत्यं दायमर्हति ॥१६०॥

पदा०-"क्लीवादीनां" इस पद में "अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि" समास से नपुंसक को छोड़कर (यदि) यदि अन्य पतितादिकों को (कथञ्चन) किसी प्रकार (दारैः,अर्थिता,स्यात)स्त्री की अभिलाषा हो (तु) तथा (उत्पन्नतन्तूनां,तेषां,अपत्यं) उन में जो सन्तान वाले होजायं तो उनकी सन्तान (दायं, अर्हति) धन की भागी है ॥

यत्किंचित्पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठोऽधिगच्छति ।
भागो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालिनः ॥१६१॥

पदा०-(पितरि, प्रेते) पिता के मरने पर (यत, किञ्चित, धनं) जो कुछ धन (ज्येष्ठः, अधिगच्छति) बड़ा भाई विशेष पाता है (तत्र) उस धन में से भी (यदि) यदि (यवीयसां, विद्यानुपालिनः) छोटे भाई विद्या अभ्यास करने वाले हों तो (भागः) भाग पाने योग्य हैं ॥

अविद्यानां तु सर्वेषामीहातश्चेद्धनं भवेत् ।
समस्तत्र विभागः स्यादपित्र्य इति धारणा ॥१६२॥

पदा०—(तु) और (सर्वेषां, अविद्यानां) सब अविद्वान् भ्राताओं का (चेत्) यदि (ईहातः,धनं, भवेत्) कृषि, वाणिज्यादि चेष्टा से कमाया हुआ धन हो तो (अपित्र्ये) पिता के धन को छोड़कर (तत्र) उसमें (समः, विभागः, स्यात्) बराबर विभाग करें (इति, धारणा) यह शास्त्र की व्यवस्था है ॥

सं०—अब विभाग न करने योग्य धन का वर्णन करते हैं:—

विद्याधनं तु यद्यस्य तत्तस्यैव धनं भवेत् ।
मैत्र्यमौद्वाहिकं चैव माधुपर्किकमेव च ॥ १६३ ॥

पदा०—(विद्याधनं) विद्या से प्राप्त धन (मैत्र्यम्) मैत्री से प्राप्त (औद्वाहिकं, चैव) विवाह में प्राप्त (च) और (माधुपर्किकं, एव) मधुपर्क के समय में मिला हुआ (यत्,यस्य) जो धन जिसका हो (तत्,तु) वह सब (तस्य,एव,भवेत्) उस प्राप्तकर्ता का ही होता है॥

भ्रातॄणां यस्तु नेहेत धनं शक्तः स्वकर्मणा ।
सनिर्भाज्यःस्वकादंशात्किंचिद्दत्त्वोपजीवनम्॥१६४॥

पदा०—(तु) और (यः) जो भाई (स्वकर्मणा, शक्तः) अपने पुरुषार्थ से समर्थ हुआ (भ्रातॄणां, धनं, न, ईहेत) अन्य भाइयों के धन की इच्छा न करे (सः, स्वकात्, अंशात्) उसको अपने भाग में से (किञ्चित्) कुछ (उपजीवनं, दत्त्वा) निर्वाह योग्य धन देकर सब भाई (निर्भाज्यः) पृथक् करदें ॥

सं०—अब स्वयं कमाये हुए धन का विभाग कथन करते हैं:—

अनुपघ्नन्पितृद्रव्यं श्रमेण यदुपार्जितम् ।
स्वयमीहितलब्धं तन्नकामो दातुमर्हति ॥ १६५ ॥

पदा०-(पितृद्रव्यं, अनुपघ्नन्) पिता के धन को नष्ट न करते हुए (श्रमेण, यत्, उपार्जितं) अपने परिश्रम से जो धन एकत्रित किया अथवा (स्वयं, ईहितलब्धं) अपनी चेष्टा से जो धन कमाया है (तत्) उस को (अकामः) अपनी इच्छा विना अन्य भ्राताओं को (दातुं,न, अर्हति) नहीं देना चाहिये अर्थात् उस धन को अन्य भ्राता नहीं बांट सकते ॥

पैतृकं तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाप्नुयात् ।
न तत्पुत्रैर्भजेत्सार्द्धमकामः स्वयमर्जितम् ॥१६६॥

पदा०-(तु) और (पिता) पिता (पैतृकं, द्रव्यं,अनवाप्तं) अपने पिता का द्रव्य न पाता हुआ अपने ही परिश्रम से (यत्, आप्नुयात्) जो धन प्राप्त करे (तत्, स्वयं, अर्जितं) उस स्वयं कमाये हुए धन को (अकामः) अपनी विना इच्छा (पुत्रैः, सार्द्धं, न, भजेत्) पुत्रों के साथ न बांटे, अर्थात् पितामह=दादा का द्रव्य समझ कर पुत्र उस द्रव्य का विभाग नहीं करासक्के, किन्तु दादा के द्रव्य को नाती बांट सकते हैं ॥

विभक्ताः सह जीवन्तो विभजेरन् पुनर्यदि ।
समस्तत्र विभागः स्याज्ज्यैष्ठ्यं तत्र न विद्यते ॥१६७॥

पदा०-(विभक्ताः) पृथक् होने के पश्चात् (सह,जीवन्तः) एकत्र रहकर जीवन निर्वाह करते हुए धन कमावें और (पुनः, यदि) फिर यदि (विभजेरन्) विभाग करें तो (तत्र) उस धन में (समः, विभागः, स्यात्) बराबर विभाग होवे (तत्र) तथा वहां (ज्यैष्ठ्यं, न, विद्यते) बड़े भाई की ज्येष्ठता नहीं है अर्थात् पूर्वोक्त उद्धार आदि नहीं निकलता ॥

येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा हीयेतांशप्रदानतः ।
म्रियेतान्यतरो वापि तस्य भागो न लुप्यते ॥१६८॥

पदा०—(येषां, ज्येष्ठः, वा, कनिष्ठः) जिन भाइयों के मध्य में बड़ा अथवा छोटा भाई (अंशप्रदानतः) विभाग काल में (हीयेत) संन्यास तथा विदेश गमनादि के कारण अपने अंश से छूट जावे (अपिवा) अथवा (अन्यतरः, म्रियेत) कोई मरजावे तो (तस्य, भागः, न, लुप्यते) उसका भाग नष्ट नहीं होता है ॥

सोदर्या विभजेरंस्तं समेत्य सहिताः समम् ।
भ्रातरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च सनाभयः ॥१६९॥

पदा०—(सोदर्याः) सहोदर भाई (सनाभयः, भगिन्यः) तथा सहोदर बहिनें (च) और (येच, भ्रातरः, संसृष्टाः) जो मिले हुए भाई हों वह सब (सहिताः, समेत्य) हित के साथ मिलकर (तं) उस धन को (समं, विभजेरन्) बराबर २ बांट लेवें ॥

यो ज्येष्ठो विनिकुर्वीत लोभाद्भ्रातॄन्यवीयसः ।
सोऽज्येष्ठः स्यादभागश्च नियन्तव्यश्च राजभिः ॥१७०

पदा०—(यः, ज्येष्ठः) जो ज्येष्ठ भाई (लोभात्) लोभ से (यवीयसः, भ्रातॄन्) छोटे भाइयों की (विनिकुर्वीत) ठगई करे (सः) वह (अज्येष्ठः) ज्येष्ठता (च) तथा (अभागः) भाग से हीन (च) और (राजभिः, नियन्तव्यः, स्यात्) राजाओं से दण्ड पाने योग्य होता है ॥

सर्व एव विकर्मस्था नार्हन्ति भ्रातरो धनम् ।
न चादत्त्वा कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम् ॥१७१

पदा०—(विकर्मस्थाः) शास्त्रविरुद्ध कर्म करने वाले (सब, एव, भ्रातरः) सब ही भाई (धनं, न, अर्हन्ति) धन पाने योग्य नहीं (च) और (कनिष्ठेभ्यः, अदत्त्वा) छोटे भाइयों को धन न देकर (ज्येष्ठः) बड़ा भाई (यौतकं, न, कुर्वीत) कोरवा तथा अपने आधीन सम्पूर्ण धन को न करे ॥

भ्रातॄणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत्सह ।
न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात्कथञ्चन ॥ १७२ ॥

पदा०—(यदि) यदि (अविभक्तानां, भ्रातॄणां) पृथक् न हुए भाइयों का (उत्थानं, सह, भवेत्) रहन सहन एक साथ होता होवे तो पिता (कथञ्चन) किसी प्रकार भी विभाग काल में (पुत्रभागं) पुत्रों के भाग को (विषमं, न, दद्यात्) विषम=न्यूनाधिक न करे, अर्थात् सब को बराबर बांट देवे ॥

ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेव हरेद्धनम् ।
संसृष्टास्तेन वा ये स्युर्विभजेत स तैः सह ॥१७३॥

पदा०—(विभागात्, ऊर्ध्वं) पुत्रों का विभाग कर देने के पश्चात् (जातः, तु) उत्पन्न हुआ पुत्र (पित्र्यं,एव, धनं,हरेत्) पिता का ही भाग लेवे (वा) अथवा (ये) जो भाई (तेन) पिता के साथ (संसृष्टाः,स्युः) मिले हुए हों (तैः, सह) उनके साथ (सः) वह सब धन मिलाकर (विभजेत) बराबर विभाग करले ॥

अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात् ।
मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धनम् ॥१७४॥

पदा०—(अनपत्यस्य, पुत्रस्य) सन्तान हीन पुत्र के (दायं) धन को (माता) माता (अवाप्नुयात्) प्राप्त होती है (च)

और (मातरि, अपि,वृत्तायां) माता के भी मरजाने पर (पितुः, माता) पिता की माता (धनं, हरेत) धन लेवे ॥

ऋणे धने च सर्वस्मिन्प्रविभक्ते यथाविधि ।
पश्चाद्दृश्येत यत्किञ्चित्तत्सर्वं समतां नयेत् ॥१७५॥

पदा०-(ऋणे, धने, च) ऋण और धन (सर्वस्मिन्) सब में (यथाविधि, प्रविभक्ते) शास्त्रानुसार विभाग होजाने के (पश्चात) पश्चात (यत,किञ्चित,दृश्येत) जो कुछ दीखे (तत,सर्वं, समतां, नयेत) उस सब को भी बराबर बांट लेवें ॥

वस्त्रं पत्रमलङ्कारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः ।
योगक्षेमं प्रचारं च न विभाज्यं प्रचक्षते ॥१७६॥

पदा०-(वस्त्रं) वस्त्र (पत्रं) गाड़ी घोड़ा आदि वाहन (अलङ्कारं) आभूषण (कृतान्नं) पकान्न (उदकं) कूप तड़ागादि (स्त्रियः) दासी (योगक्षेमं) निर्वाह की अत्यन्तोपयोगी वस्तु (च) और (प्रचारं) छत्र, चांवर जूते तथा प्रवेश के मार्ग को बुद्धिमानों ने (विभाज्यं,न,प्रचक्षते) बांटने योग्य नहीं कहा ॥

अयमुक्तो विभागो वः पुत्राणां च क्रियाविधिः ।
क्रमशः क्षेत्रजादीनां द्यूतधर्मं निबोधत ॥१७७॥

पदा०-हे महर्षिलोगो ! (वः) तुम्हारे प्रति (अयं) यह (क्षेत्रजादीनां,पुत्राणां) क्षेत्रजादि पुत्रों का (क्रमशः) क्रम पूर्वक (विभागः,क्रियाविधिः,च) विभाग और क्रिया का विधान(उक्तः), कहा, अब आगे(द्यूतधर्मं)द्यूतधर्म=जुए की व्यवस्था(निबोधत) सुनो॥

सं०-अब " द्यूतधर्म " का वर्णन करते हैं:—

द्यूतं समाह्वयञ्चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत् ।
राज्यान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ॥१७८॥

पदा०-(द्यूतं, समाह्वयं, चैव) द्यूत और १८० में वर्णित समाह्वय को (राजा) राजा (राष्ट्रात्,निवारयेत) अपने राज्य में न होने देवे, क्योंकि(एतौ,द्वौ,दोषौ) यह दोनों दोष (पृथिवीक्षितां) राजाओं के (राज्यान्तकरणौ) राज्य का नाश करने वाले हैं ॥

प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद्देवनसमाह्वयौ ।
तयोर्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत् ॥१७९॥

पदा०-(यत, एतत) जो यह (देवनसमाह्वयौ) द्यूत और समाह्वय (प्रकाशं, तास्कर्यं) प्रकट चोरी हैं (तयोः, प्रतीघाते) इन दोनों के दूर करने में (नृपतिः) राजा (नित्यं) सदा (यत्नवान्, भवेत) यत्न करता रहे ॥

अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ।
प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः॥१८०॥

पदा०-(यत, अप्राणिभिः, क्रियते) जो कौड़ी, फांसा आदि वेजान वस्तुओं द्वारा हार जीत के अभिप्राय से किया जाता है (तत) वह (लोके) संसार में (द्यूतं, उच्यते) " जुआं " कहाता है (तु) और (यः) जो (प्राणिभिः, क्रियते) मेंढ़ा,मुर्ग़ा आदि प्राणियों द्वारा हारजीत के अभिप्राय से कियाजाता है (सः, समाह्वयः, विज्ञेयः) वह लोक में " समाह्वय " जानना चाहिये ॥

द्यूतं समाह्वयञ्चैव यः कुर्यात्कारयेत वा ।
तान्सर्वान्घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः ॥१८१॥

पदा०-(द्यूतं, समाह्वयं, चैव) द्यूत तथा समाह्वय को (यः, कुर्यात, वा, कारयेत) जो करे अथवा करावे उसको (च),

तथा जो (द्विजलिङ्गिनः, शूद्रान्) यज्ञोपवीतादि द्विज चिह्न धारण करने वाले शूद्र हों (तान्,सर्वान्) उन सब को (राजा) राजा (घातयेत्) दुःसह दण्ड देवे ॥

कितवान्कुशीलवान्क्रूरान्पाषण्डस्थांश्च मानवान् ।
विकर्मस्थान् शौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत्पुरात्॥१८२॥

पदा०–(कितवान्, कुशीलवान्, क्रूरान्) जुआरी, धूर्त, क्रूरता करने वाले (पाषण्डस्थान्, च) पाखण्डी (विकर्मस्थान्) वेद विरुद्ध कर्म करने वाले (च) और (शौण्डिकान्,मानवान्) शराबी मनुष्यों को राजा (क्षिप्रं) शीघ्र (पुरात्, निर्वासयेत्) अपने नगर से निकाल देवे, क्योंकि :—

एते राष्ट्रे वर्त्तमाना राज्ञः प्रच्छन्नतस्कराः ।
विकर्मक्रियया नित्यं बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः॥१८३॥

पदा०–(राज्ञः, राष्ट्रे) राजा के राज्य में (एते, प्रच्छन्नतस्कराः) यह पूर्वोक्त छिपे चोर (वर्त्तमानाः) रहते हुए अपने (विक्रमक्रियया) छलकपटादि कुकर्मों से (भद्रिकाः, प्रजाः) भली प्रजा को (नित्यं, बान्धन्ते) सदा पीड़ित करते रहते हैं ॥

द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत् ।
तस्माद्द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्॥१८४॥

पदा०–(एतत्, द्यूतं) यह जुआ (पुरा, कल्पे) पहले कल्प में (महत्, वैरकरं, दृष्टं) बड़ा वैर बढ़ाने वाला देखा गया है (तस्मात्) इसलिये (बुद्धिमान्) बुद्धिमान् (हास्यार्थं, अपि) हंसी में भी (द्यूतं, न, सेवेत) जुआ न खेले ॥

प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा तन्निषेवेत यो नरः ।
तस्य दण्डविकल्पः स्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा ॥ १८५ ॥

पदा०-(यः, नरः) जो पुरुष (प्रच्छन्नं, वा, प्रकाशं) छिपकर अथवा प्रकट होकर (तत्,निषेवेत) जुआ खेले (तस्य) तो उस पुरुष के (दण्डविकल्पः) दण्ड का विकल्प (नृपतेः, यथेष्टं) राजा की जैसी इच्छा हो (तथा, स्यात्) वैसा करे ॥

क्षत्रविट्शूद्रयोनिस्तु दण्डं दातुमशक्नुवन् ।
आनृण्यं कर्मणा गच्छेद्विप्रो दद्याच्छनैः शनैः॥१८६॥

पदा०-(क्षत्रविट्शूद्रयोनिः) क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र निर्धनता के कारण (दण्डं, दातुं, अशक्नुवन्) दण्ड देने को असमर्थ होवें तो (कर्मणा, आनृण्यं, गच्छेत्) नौकरी आदि कर्म करके दण्ड के ऋण को चुकादेवें (तु) परन्तु (विप्रः) ब्राह्मण (शनैः,शनैः, दद्यात्) धीरे२ देदेवे, अर्थात् ब्राह्मण से राजा नौकरी न करावे ॥

स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां दरिद्राणां च रोगिणाम् ।
शिफाविदलरज्ज्वाद्यैर्विदध्यान्नृपतिर्दमम् ॥१८७॥

पदा०-(स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां) स्त्री, बालक, उन्मत्त, वृद्ध (दरिद्राणां, च, रोगिणां) दरिद्र और रोगी का (शिफाविदल-रज्ज्वाद्यैः) बेंत, बांस की छड़ी अथवा रस्सी आदि से (नृपतिः) राजा (दमं,विदध्यात्) दमन करे किन्तु अति कठोर दण्ड न देवे ॥

ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्यिणाम् ।
धनोष्मणा पच्यमानास्तान्निःस्वान्कारयेन्नृपः॥१८८॥

पदा०-(ये) जो पुरुष (कार्येषु, नियुक्ताः) राजकार्यों में नियुक्त (धनोष्मणा, पच्यमानाः) धन की गरमी से मतवाले

हुए (कार्थिणां, कार्याणि) मुक़द्दमे वालों के कार्यों को (हन्युः) बिगाड़ें (तान्) उनको (नृपः) राजा (निःस्वान्, कारयेत्) धन रहित करादेवे, अर्थात् उनका सर्वस्व हरण करले ॥

कूटशासनकर्तॄंश्च प्रकृतीनां च दूषकान् ।
स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च हन्याद्द्विट्सेविनस्तथा ॥१८९॥

पदा०—(कूटशासनकर्तॄन्) जालसाज़ी से राजा की मोहर करके वा अन्य किसी छल से राजकार्य करने वालों (च) तथा (प्रकृतीनां, च, दूषकान्) मन्त्री आदि कर्मचारियों में भेद करने वालों (च) और (स्त्रीबालब्राह्मणघ्नान्) स्त्री, बालक, ब्राह्मण को मारने वालों (तथा) तथा (द्विट्सेविनः) राजा के शत्रुओं की सेवा करने वालों को राजा (हन्यात्) घोर दण्ड देवे ॥

तीरितं चानुशिष्टं च यत्र क्वचन यद्भवेत् ।
कृतं तद्धर्मतो विद्यान्न तद्भूयो निवर्त्तयेत् ॥१९०॥

पदा०—(यत्र, क्वचन) जहां कहीं ऋणादानादि व्यवहार के मुक़द्दमे का (यत्, तीरितं) जो न्यायानुकूल निर्णय (च) तथा (अनुशिष्टं, च, भवेत्) दण्डादि तक ठीक होगया हो तो (तत्, धर्मतः, कृतं, विद्यात्) उसको धर्म से किया हुआ जाने (तत्) उसको राजा (भूयः) फिर से (न, निवर्त्तयेत्) न लौटावे ॥

तीरितं चानुशिष्टं च यो मन्येत विकर्मणा ।
द्विगुणं दण्डमास्थाय तत्कार्यं पुनरुद्धरेत् ॥ १९१ ॥

पदा०—(च) और (यः) जो (तीरितं, अनुशिष्टं, च) ऋणादानादि व्यहार का मुक़द्दमा निर्णीत होगया हो और दण्ड भी निश्चित होचुका हो परन्तु राजा (विकर्मणा, मन्येत)

अन्याय से हुआ माने तो राजकर्मचारी पर (द्विगुणं, दण्डं, आस्थाय) द्विगुना दण्ड लगाकर (तत्, कार्यं) उस कार्य को (पुनः, उद्धरेत्) फिर से करे ॥

अमात्याः प्राड्विवाको वा यत्कुर्युः कार्यमन्यथा ।
तत्स्वयं नृपतिः कुर्यात्तान्सहस्रं च दण्डयेत् ॥१९२॥

पदा०—(अमात्याः, वा, प्राड्विवाकः) मन्त्री अथवा वकील (यत्, कार्यं) जिस मुकद्दमे को (अन्यथा, कुर्युः) अन्यथा करें (तत्, नृपतिः, स्वयं, कुर्यात्) उस को राजा आप करे (च) और (तान्, सहस्रं, दण्डयेत्) उन अन्यथा करने वालों को "सहस्रपण" दण्ड देवे ॥

सं०—अब चार महापातकियों का वर्णन करते हैं :—

ब्रह्महा च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ।
एते सर्वे पृथक्ज्ञेया महापातकिनो नराः ॥ १९३ ॥

पदा०—(ब्रह्महा) ब्राह्मण का मारने वाला (सुरापः, च) मद्य पीने वाला (स्तेयी, च, गुरुतल्पगः) चोर गुरुपत्नी के साथ व्यभिचार करने वाला (एते, सर्वे, पृथक्) इन सब में प्रत्येक को (महापातकिनः, नराः, ज्ञेयाः) महापातकी मनुष्य जानना चाहिये ॥

चतुर्णामपि चैतेषां प्रायश्चित्तमकुर्वताम् ।
शारीरं धनसंयुक्तं दण्डं धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥ १९४ ॥

पदा०—(प्रायश्चित्तं, अकुर्वतां) प्रायश्चित्त न करने वाले (एतेषां, चतुर्णां, अपि) इन पूर्वोक्त चारो महापातकियों को राजा (धर्म्यं) धर्मानुसार (धनसंयुक्तं) धन सहित (शारीरं, दण्डं, प्रकल्पयेत्) शरीर सम्बन्धी दण्ड देवे ॥

गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः ।
स्तेये च श्वपदं कार्यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान् ॥१९५॥

पदा०—(गुरुतल्पे, भगः) गुरुपत्नी से व्यभिचार करने वाले पुरुष के ललाट पर भग के आकार का चिन्ह (सुरापाने) मद्य पीने वाले के (सुराध्वजः) सुरा के पात्र का चिन्ह (च) और (स्तेये) चोरी करने वाले के शिर पर (श्वपदं, कार्यं) कुत्ते के पैर का चिन्ह तप्त लोहे से करना चाहिये तथा (ब्रह्महणि) ब्रह्महत्या करने वाले (पुमान, अशिराः, कार्यः) पुरुष का शिर काट लेना चाहिये ॥

असंभोज्या ह्यसंयाज्या असंपाठ्याविवाहिनः ।
चरेयुः पृथिवीं दीनाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ १९६ ॥

पदा०—(हि) निश्चयकरके यह पूर्वोक्त चारो महापातकी (असंभोज्याः) पंक्ति में भोजन कराने अयोग्य (असंयाज्याः) यज्ञ कराने अयोग्य (असंपाठ्याः) पढ़ाने अयोग्य (अविवाहिनः, दीनाः) विवाह सम्बन्ध के अयोग्य, दुःखी और (सर्वधर्मबहिष्कृताः) सम्पूर्ण धर्मकर्मों से बाहर निकले हुए (पृथिवीं, चरेयुः) पृथिवी पर विचरें ॥

ज्ञातिसम्बन्धिभिस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः ।
निर्दया निर्नमस्कारास्तन्मनोरनुशासनम् ॥ १९७ ॥

पदा०—(एते, कृतलक्षणाः) यह पूर्वोक्त चिन्हों वाले चारो महापातकी (ज्ञातिसम्बन्धिभिः, त्यक्तव्याः) जाति बिरादरी से त्याग देने योग्य हैं और (निर्दयाः, निर्नमस्काराः) न इन पर दया तथा नाही इनको नमस्कार करना चाहिये (तत्, मनोः, अनुशासनं) इस प्रकार मनु की आज्ञा है ॥

प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः सर्ववर्णा यथोदितम् ।
नाङ्क्या राज्ञा ललाटे स्युर्दाप्यास्तूत्तमसाहसम् ॥१९८

पदा०-(तु) और (यथोदितं) शास्त्रोक्त (प्रायश्चित्तं, कुर्वाणाः) प्रायश्चित्त किये हुए (सर्ववर्णाः) यह सब वर्ण (राज्ञा) राजा से (ललाटे) ललाट पर (न, अङ्क्याः) चिन्ह लगाने योग्य नहीं (तु) किन्तु (उत्तमसाहसं, दाप्याः) "उत्तमसाहस" दण्ड के योग्य हैं ॥

आगःसु ब्राह्मणस्यैव कार्यो मध्यमसाहसः ।
विवास्यो वा भवेद्राष्ट्रात्सद्रव्यः सपरिच्छदः ॥१९९॥

पदा०-(आगःसु) इन अपराधों में (ब्राह्मणस्य, एव) ब्राह्मण को ही (मध्यमसाहसः, कार्यः) "मध्यमसाहस" दण्ड करना चाहिये (वा) अथवा (सद्रव्यः,सपरिच्छदः) धन धान्यादि सहित (राष्ट्रात,विवास्यः,भवेत्) राज्य से निकाल देना चाहिये ॥

इतरे कृतवन्तस्तु पापान्येतान्यकामतः ।
सर्वस्वहारमर्हन्ति कामतस्तु प्रवासनम् ॥ २०० ॥

पदा०-(तु) यदि (इतरे) ब्राह्मण से अन्य क्षत्रियादि ने (एतानि, पापानि) इन पापों को (अकामतः, कृतवन्तः) अनिच्छा से किया हो तो (सर्वस्वहारं, अर्हन्ति) सर्वस्व हरण के योग्य (तु) और यदि (कामतः) इच्छा से करें तो (प्रवासनं) राज्य से निकाल देने योग्य हैं ॥

नाददीत नृपः साधुर्महापातकिनो धनम् ।
आददानस्तु तल्लोभात्तेन दोषेण लिप्यते ॥ २०१ ॥

पदा०-(साधुः,नृपः) धार्मिक राजा (महापातकिनः, धनं) महापातकियों के धन को (न,आददीत) ग्रहण न करे (तु,क्योंकि (तत्, लोभात्) उस धन को लोभ से (आददानः) ग्रहण करने वाला (तेन,दोषेण) उस दोष से (लिप्यते) लिप्त होजाता है, और:-

अप्सु प्रवेश्य तं दण्डं वरुणायोपपादयेत् ।
श्रुतवृत्तोपपन्ने वा ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् ॥ २०२ ॥

पदा०-उन महापातकियों से लिये हुए (तं, दण्डं) उस दण्डधन को राजा (अप्सु, प्रवेश्य) जल में घुलवा कर (वरुणाय, उपपादयेत्) वरुण यज्ञ में लगा दे (वा) अथवा (श्रुतवृत्तोपपन्ने) वेद तथा सदाचार सम्पन्न (ब्राह्मणे) ब्राह्मण के लिये (प्रतिपादयेत्) देदेवे ॥

ईशो दण्डस्य वरुणो राज्ञां दण्डधरो हि सः ।
ईशः सर्वस्य जगतो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥२०३॥

पदा०-(दण्डस्य,ईशः,वरुणः) दण्ड का स्वामी वरुण है (हि) क्योंकि (सः) वह वरुण=प्रभु (राज्ञां,दण्डधरः) राजाओं को भी दण्ड देने वाला है और (वेदपारगः,ब्राह्मणः) सम्पूर्ण वेदों का ज्ञाता ब्राह्मण (सर्वस्य, जगतः) सब जगत् का (ईशः) स्वामी है, इसलिये यह दोनों दण्डधन के अधिकारी हैं ॥

यत्र वर्जयते राजा पापकृद्भ्यो धनागमम् ।
तत्र कालेन जायन्ते मानवा दीर्घजीविनः ॥२०४॥
निष्पद्यन्ते च सस्यानि यथोप्तानि विशां पृथक् ।
बालाश्च न प्रमीयन्ते विकृतं नच जायते ॥२०५॥

पदा०-(यत्र) जिस देश में (राजा) राजा (पापकृद्भ्यः, धनागमं,वर्जयते) महापातकियों का धन ग्रहण नहीं करता(तत्र) वहां (मानवाः) मनुष्य (कालेन) काल से (दीर्घजीविनः,जायन्ते) दीर्घआयु वाले होते हैं-(च) और (विशां) प्रजाओं के (सस्यानि) धान्यादि (यथोप्तानि,पृथक्) यथेष्ट बोये हुए पृथक् २ (निष्पद्यन्ते) उत्पन्न होते हैं (बालाः) बालक (न,प्रमीयन्ते) नहीं मरते (च)तथा (विकृतं) कोई विकार (नच, जायते) उत्पन्न नहीं होता है ॥

ब्राह्मणान्बाधमानं तु कामादवरवर्णजम् ।
हन्याच्चित्रैर्वधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृपः ॥२०६॥

पदा०-(तु) और (ब्राह्मणान्) ब्राह्मणों को (कामात्) इच्छा से (बाधमानं) दुःख देने वाले (अवरवर्णजं) नीच वर्णों को (नृपः) राजा (उद्वेजनकरैः) भय देनें वाले (चित्रैः) अनेक प्रकार के (वधोपायैः) वधोपायों से(हन्यात्)दमन करे॥

यावानवध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य मोक्षणे ।
अधर्मो नृपतेर्दृष्टो धर्मस्तु विनियच्छतः ॥२०७॥

पदा०-(अवध्यस्य,वधे) वध न करने योग्य के वध करने में (नृपतेः, यावात्) राजा को जितना (अधर्मः,दृष्टः) अधर्म देखा गया है (तावान्) उतना ही अधर्म (वध्यस्य, मोक्षणे) मारने योग्य के छोड़ने में भी राजा को होता (तु) और (विनियच्छतः) शास्त्रानुकूल दण्ड देने में (धर्मः) धर्म होता है ॥

उदितोऽयं विस्तरशो मिथो विवदमानयोः ।
अष्टादशसु मार्गेषु व्यवहारस्य निर्णयः ॥२०८॥

पदा०-हे महर्षिलोगो ! तुम्हारे प्रति (अयं) यह (अष्टादशसु)

ऋणादान आदि अठारह प्रकार के (मार्गेषु) मार्गों में (मिथः) परस्पर (विवदमानयोः) विवाद विषयक वादी प्रतिवादी के (व्यवहारस्य) व्यवहार का (निर्णयः) निर्णय (विस्तरशः, उदितः) विस्तार पूर्वक कहा ॥

एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यक्कुर्वन्महीपतिः ।
देशानलब्धांल्लिप्सेत लब्धांश्च परिपालयेत् ॥२०९॥

पदा०-(एवं) इस पूर्वोक्त प्रकार से (धर्म्याणि, कार्याणि) धर्मानुकूल कार्यों को (सम्यक्, कुर्वन्) भले प्रकार करता हुआ (महीपतिः) राजा (अलब्धान्, देशान्, लिप्सेत) अप्राप्त देशों को लेने की इच्छा (च) और (लब्धान्) प्राप्त देशों का (परिपालयेत्) सम्यक् परिपालन करे ॥

सम्यङ्निविष्टदेशस्तु कृतदुर्गश्च शास्त्रतः ।
कण्टकोद्धरणे नित्यमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥२१०॥

पदा०-(तु) और (सम्यक्, निविष्टदेशः) भली भांति वसे हुए देश में (शास्त्रतः) शास्त्रानुसार सप्तमाध्याय में वर्णित रीति के अनुकूल (कृतदुर्गः) किला वनाकर (कण्टकोद्धरणे) चोर, डाकू आदि कण्टकों के हटाने में राजा (नित्यं) सदा (उत्तमं, यत्नं) उत्तम यत्न (आतिष्ठेत्) करता रहे ॥

रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् ।
नरेन्द्रास्त्रिदिवं यान्ति प्रजापालनतत्पराः ॥२[illegible]॥

पदा०-(प्रजापालनतत्पराः) प्रजापालन में त[illegible]
वृत्तानां,रक्षणात्) सदाचारियों की रक्षा (च) औ[illegible]
शोधनात्) चोर, डाकू आदि कण्टकों का [illegible]
(नरेन्द्राः) राजा (त्रिदिवं,यान्ति) स्वर्ग लोक [illegible]

अशासंस्तस्करान्यस्तु बलिं गृह्णाति पार्थिवः ।
तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते ॥२१२॥

पदा०-(तु) और (यः, पार्थिवः) जो राजा (तस्करान्) चोर, डाकुओं को (अशासन्) दण्ड न करके (बलिं, गृह्णाति) अपनी मालगुज़ारी लेता है (तस्य, राष्ट्रं, प्रक्षुभ्यते) उसकी प्रजा दुःखित होकर विगड़ जाती है (च) और वह भी (स्वर्गात्, परिहीयते) स्वर्ग से हीन होजाता है, और:—

निर्भयन्तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम् ।
तस्य तद्वर्धते नित्यं सिच्यमान इव द्रुमः ॥२१३॥

पदा०-(यस्य) जिस राजा का (बाहुबलाश्रितं,राष्ट्रं) भुजा बल से आश्रय किया हुआ राज्य (निर्भयं,तु,भवेत्) निडर होता है (तस्य, तत्) उस राजा का वह राज्य (सिच्यमानः, द्रुमः, इव) सींचे हुए वृक्ष की न्याईं (नित्यं, वर्धते) सदा बढ़ता है ॥

सं०-अब प्रकट तथा अप्रकट ठगों का वर्णन करते हैं :—

द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारकान् ।
प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः॥२१४॥

पदा०-(चारचक्षुः, महीपतिः) चार=गुप्तदूत रूपी चक्षुओं वाला राजा (परद्रव्यापहारकान्) परद्रव्य हरण करने वाले (प्रकाशान्, अप्रकाशान्, च) प्रकट तथा अप्रकट (द्विविधान्) दो प्रकार के (तस्करान्) चोरों को (विद्यात्)सम्यक् जाने॥

प्रकाशवञ्चकास्तेषां नानापण्योपजीविनः ।
प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः ॥२१५॥

पदा०-(तेषां) उन चोरों के मध्य में (नानापण्योपजीविनः) नानाप्रकार की वस्तुओं को वेचकर जीने वाले (प्रकाशवञ्चकाः)

खुले ठग (तु) और (ये,स्तेनाटविकादयः) जो चोर तथा जङ्गल आदि के लुटेरे हैं (एते,प्रच्छन्नवञ्चकाः) यह छुपे हुए ठग हैं॥

उत्कोचकाश्चोपधिकावञ्चकाः कितवास्तथा।
मंगलादेशवृत्ताश्च भद्राश्चेक्षणिकैः सह ॥२१६॥
असम्यक्कारिणश्चैव महामात्राश्चिकित्सकाः।
शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणाः पण्ययोषितः ॥२१७॥
एवमादीन्विजानीयात्प्रकाशांल्लोककण्टकान्।
निगूढचारिणश्चान्याननार्यानार्यलिंगिनः ॥२१८॥

पदा०—(उत्कोचकाः) रिशवती (उपधिकाः) भय देकर धन लेने वाले (वञ्चकाः) ठग (तथा, कितवाः) तथा जुआरी (मङ्गलादेशवृत्ताः) तुम्हारा भला होगा इत्यादि प्रकार प्रलोभन देने (च) और (ईक्षणिकैः, सह) हाथों की रेखा देखकर फलादि कहने वालों के साथ (भद्राः) कल्याण का लोभ दिखाकर ठगने वाले—(असम्यक्कारिणः) अनुचित शिक्षा देने वाले (महामात्राः, चैव, चिकित्सकाः) हाथियों को सिखा कर आजीविका करने वाले तथा वैद्य (शिल्पोपचारयुक्ताः) चित्रलेखन आदि तथा इनको उत्साह दिलाकर आजीविका करने वाले (निपुणाः) चालाक (पण्ययोषितः) वेश्या आदि से दूसरों को वश में करने वाले—(एवमादीन्) इत्यादि (प्रकाशान्, लोककण्टकान्) प्रत्यक्ष ठगों को (च) और (निगूढचारिणः) छिपे हुए (अन्यान्) दूसरे (आर्यलिङ्गिनः, अनार्यान्) आर्यों का वेष धारण करने वाले अनार्य=नीचों को राजा भलेप्रकार (विजानीयात्) जाने, अर्थात् सदा उन पर दृष्टि रक्खे॥

तान्विदित्वा सुचरितैर्गूढैस्तत्कर्मकारिभिः ।
चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्साद्य वशमानयेत् ॥२१९॥

पदा०-(तत्कर्मकारिभिः) पूर्वोक्त कर्म करने वाले (सुचरितैः) सदाचारी (अनेकसंस्थानैः) तथा अनेक स्थानों में विचरने वाले (गूढैः, चारैः) गुप्तचरों द्वारा (तान्, विदित्वा) उन उक्त ठगों को जानकर (प्रोत्साद्य, वशं, आनयेत्) दण्ड देके वश में करे ॥

तेषां दोषानभिख्याप्य स्वे स्वे कर्मणि तत्त्वतः ।
कुर्वीत शासनं राजा सम्यक्सारापराधतः ॥२२०॥

पदा०-(तेषां) उन प्रकट तथा अप्रकट तस्करों के (स्वे, स्वे, कर्मणि) उन २ चौर्यादि कर्मरूप (दोषान्) दोषों को (तत्त्वतः,अभिख्याप्य) प्रजा में ठीक २ प्रसिद्ध करके (सारापराधतः) उनके धन शरीरादि सामर्थ्य और अपराध के अनुसार (राजा) राजा (सम्यक्, शासनं, कुर्वीत) सम्यक् दण्ड करे ॥

नहि दण्डादृते शक्यः कर्तुं पापविनिग्रहः ।
स्तेनानां पापबुद्धीनां निभृतं चरतां क्षितौ ॥२२१॥

पदा०-(क्षितौ, निभृतं, चरतां) पृथिवी पर छिपे वेष में विचरने वाले (पापबुद्धीनां, स्तेनानां) पापाचरणबुद्धि चोरों के (पापविनिग्रहः) पापों का छुड़ाना राजा (दण्डात्, ऋते) दण्ड के विना (नहि, कर्तुं, शक्यः) नहीं करसक्ता ॥

सभाप्रपापूपशालावेशमद्यान्नविक्रयाः ।
चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाः समाजाः प्रेक्षणानि च ॥२२२॥
जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारुकावेशनानि च ।

शून्यानि चाप्यगाराणि वनान्युपवनानि च ॥२२३॥
एवं विधान्नृपो देशान्गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः ।
तस्करप्रतिषेधार्थं चारैश्चाप्यनुचारयेत् ॥ २२४ ॥

पदा०—(सभाप्रपापूपशालावेशमद्यान्नविक्रयाः) सभा, प्याऊ, हलवाई की दूकान, वेश्या का घर, मदिरा तथा अन्न वेचने का स्थान (चतुष्पथाः, चैत्यवृक्षाः) चौराह, बड़े तथा प्रसिद्ध वृक्ष (समाजाः, प्रेक्षणानि, च) मनुष्यसमूह तथा तमाशा और मेला आदि देखने के स्थान—(जीर्णोद्यानानि) पुरानी वाटिकायें (अरण्यानि, कारुकावेशनानि, च) वन, कारीगरों के घर (शून्यानि, अगाराणि) सूने पड़े हुए टूटे फूटे खंडर (अपिच) अथवा (वनानि, उपवनानि, च) वाग़, वग़ीचे—(एवं, विधान्, देशान्) इस प्रकार के स्थानों को (नृपः) राजा (गुल्मैः) बहुत से सैनिक मनुष्यों (स्थावरजङ्गमैः) स्थिर सिपाहियों की चौकी तथा घूमने वाले चौकी पहरों (अपिच) और (चारैः) गुप्तचरों से (तस्करप्रतिषेधार्थं) चोरों के निवारणार्थ (अनुचारयेत्) अनुचरित करें अर्थात् ऐसे २ स्थानों पर रक्षार्थ सिपाहियों को प्रत्येक समय नियुक्त रक्खे क्योंकि तस्कर प्रायः ऐसे स्थानों में आक्रमण करते हैं ॥

तत्सहायैरनुगतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः ।
विद्यादुत्सादयेच्चैव निपुणैः पूर्वतस्करैः ॥ २२५ ॥

पदा०—(तत्सहायैः, अनुगतैः) उन चोरों की सहायता करने वाले, उनके पीछे चलने वाले (नानाकर्मप्रवेदिभिः) नाना कर्मों को जानने वाले (निपुणैः) निपुण (पूर्वतस्करैः) प्राचीन चोरों द्वारा उन तस्करों को (विद्यात्) जाने (च, एव) तथा (उत्सादयेत्) उनको निर्मूल करे और:—

भक्ष्यभोज्योपदेशैश्च ब्राह्मणानाञ्च दर्शनैः।
शौर्यकर्मापदेशैश्च कुर्युस्तेषां समागमम् ॥ २२६ ॥

पदा०—(तेषां) वह गुप्तचर, उन तस्करों को (भक्ष्यभोज्योपदेशैः) खाने पीने के वहाने (च) तथा (ब्राह्मणानां, दर्शनैः) ब्राह्मणों का दर्शन कराने (च) और (शौर्यकर्मापदेशैः) शूरवीरता के काम करने के वहाने से (समागमं, कुर्युः) राजपुरुषों के सामने लाके पकड़वा देवें ॥

ये तत्र नोपसर्पेयुर्मूलप्रणिहिताश्च ये।
तान्प्रसह्य नृपो हन्यात्समित्रज्ञातिवान्धवान्॥२२७॥

पदा०—(ये) जो तस्कर (तत्र) वहां पर पकड़े जाने की शङ्का से (न, उपसर्पेयुः) न जावें (च) और (ये) जो (मूलप्रणिहिताः) गुप्त राजदूतों के साथ सावधानी से रहते हुए अपने को वचाते रहें (तान्, नृपः) उनको राजा (प्रसह्य) बलात्कार से पकड़वाकर (समित्रज्ञातिवान्धवान्) मित्र, जाति भाइयों सहित (हन्यात्) कठोर दण्ड देवे ॥

न होढेन विना चौरं घातयेद्धार्मिको नृपः।
सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन् ॥२२८॥

पदा०—(धार्मिकः, नृपः) धर्मात्मा राजा (होढेन, विना) परद्रव्यहरण आदि निश्चय होने के विना (चौरं, न, घातयेत्) चोर का वध न करे और (सोपकरणं, सहोढं) चोरी किया हुआ द्रव्य तथा सेंध लगाने के शस्त्र सहित हो अर्थात् चोरी पूर्णतया जब निश्चित होजाय तो (अविचारयन्, घातयेत्) विना विचारे घोर दण्ड देवे; और :—

सं०—अब चोरों के सहायकों को दण्ड विधान करते हैं:—

ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः ।
भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वांस्तानपि घातयेत् ॥२२९॥

पदा०—(ग्रामेषु, अपि) ग्रामों में भी (येच, केचित्) जो कोई (चौराणां) चोरों को (भक्तदायकाः) भोजनादि से सहायता देने वाले (च) तथा (भाण्डावकाशदाः,एव) चोरी की वस्तु और चोरों को अपने घर में छिपाने वाले हों राजा (तान्, सर्वान्, अपि) उन सब को भी (घातयेत्) घोर दण्ड देवे ॥

राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्सामन्तांश्चैव चोदितान् ।
अभ्याघातेषु मध्यस्थान् शिष्याच्चौरानिव द्रुतम् ॥२३०॥

पदा०—(राष्ट्रेषु) राज्य में (रक्षाधिकृतान्) रक्षा के निमित्त नियुक्त हुए (च) तथा (सामन्तान्, चोदितान्) राज्य की सीमा पर राजा से आज्ञा पाये हुए रक्षार्थ स्थित मनुष्यों में जो कोई (अभ्याघातेषु) चोरी के मुकद्दमों को छिपाने में (मध्यस्थान्) मध्यस्थ हों उनको भी राजा (द्रुतं) शीघ्र (चौरान्, इव, शिष्यात्) चोरों के न्याई दण्ड देवे ॥

यश्चापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवनः ।
दण्डेनैव तमप्योषेत्स्वकाद्धर्माद्धि विच्युतम् ॥२३१॥

पदा०—(यः, धर्मजीवनः) जो धर्म से जीविका करने वाला (अपि) भी (धर्मसमयात्) धर्ममर्यादा से (प्रच्युतः) भ्रष्ट होवे तो (स्वकात्, धर्मात्) अपने धर्म से (विच्युतं, हि) गिरने के कारण (तं, अपि) उसको भी राजा (दण्डेन, एव) दण्ड से ही (ओषेत्) ठीक करे ॥

ग्रामघाते हिताभंगे पथि योषाभिमर्शने ।
शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः ॥२३२॥

पदा०—चोर, डाकू, आदि से (ग्रामघाते) ग्राम के लुट जाने (हिताभङ्गे) पुलों के टूट जाने (पथि) मार्ग के चोरों की खोज में (योषाभिमर्शने) तथा स्त्री के साथ बलात्कार में जो आसपास के रहने वाले (शक्तितः) यथाशक्ति सहायतार्थ (न, अभिधावन्तः) दौड़ धूप नहीं करते उन को राजा (सपरिच्छदाः, निर्वास्याः) माल असबाब सहित ग्राम से निकालदे ॥

राज्ञः कोषापहर्तॄंश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् ।
घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान् ॥२३३॥

पदा०—(राज्ञः, कोषापहर्तॄन्) राजा के खज़ाने को चुराने वालों (च) और (प्रतिकूलेषु, च, स्थितान्) राजा के विरुद्ध रहते हुए (अरीणां, च, उपजापकान्) राजद्रोहियों से मिलने वालों को राजा (विविधैः, दण्डैः) नाना प्रकार के दण्ड देकर (घातयेत्) अधिक कष्ट दे ॥

सन्धिं छित्त्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ।
तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत् ॥२३४॥

पदा०—(तु) और (ये, तस्कराः) जो चोर (रात्रौ, सन्धिं, छित्त्वा) रात्रि में सेंध लगाकर (चौर्यं, कुर्वन्ति) चोरी करते हैं (नृपः) राजा (तेषां, हस्तौ, छित्त्वा) उन के हाथ कटवाकर उन्हें (तीक्ष्णे, शूले, निवेशयेत्) तेज़ सूली पर चढ़वादेवे ॥

अंगुलीर्ग्रन्थिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे ।
द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति ॥२३५॥

पदा०—(ग्रन्थिभेदस्य) गांठकाटने वाला (प्रथमे, ग्रहे) पहिली वार चोरी करे तो (अंगुलीः) हाथ की अंगुलियें (द्वितीये) तथा दूसरी बार गांठ काटे तो (हस्तचरणौ) हाथ पैर (छेदयेत) कटवा देवे और (तृतीये) तीसरी वार में (वधं, अर्हति) वध के योग्य होता है ॥

अग्निदान्भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान् ।
सन्निधातॄंश्च मोषस्य हन्याच्चौरमिवेश्वरः ॥२३६॥

पदा०—(अग्निदान्) उन चोरों के लिये अग्नि देने (भक्तदान्) भोजन देने (तथा) तथा (शस्त्रावकाशदान्) उन के हथियार रखने वालों (च) और (मोषस्य, सन्निधातॄन्) चोरी का धन छिपाने वालों को (ईश्वरः) राजा (चौरं, इव) चोर के समान ही (हन्यात) दण्ड देवे ॥

तड़ागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा ।
यद्वापि प्रतिसंस्कुर्याद्दाप्यस्तूत्तमसाहसम् ॥२३७॥

पदा०—(तड़ागभेदकं) जो तालाव वा नदी के पुल आदि को तोड़े उस पुरुष को राजा (अप्सु) जल में डुबाकर (वा) अथवा (शुद्धवधेन, हन्यात) शस्त्रादि से घोर दण्ड देवे (अपितु) और (यद्वा) यदि वह (प्रतिसंस्कुर्यात) फिर से बनवा देवे तो (उत्तमसाहसं, दाप्यः) "उत्तमसाहस" दण्ड दे ॥

कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान् ।
हस्त्यश्वरथहर्तॄंश्च हन्यादेवाविचारयन् ॥२३८॥

पदा०—(कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान्) राजा के गोदाम, शस्त्रगृह=हथियारों के मकान अथवा यज्ञमन्दिर के तोड़ने

वालों (च) और (हस्त्यश्वरथहर्तॄन्) हाथी, घोड़ा तथा रथ चुराने वालों को राजा (अविचारयन्, एव, हन्यात्) विना विचारे ही हनन करे अर्थात् अवश्य दण्ड देवे ॥

यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तड़ागस्योदकं हरेत् ।
आगमं वाप्यपां भिन्द्यात्स दाप्यः पूर्वसाहसम्॥२३९॥

पदा०—(तु) और (यः) जो (पूर्वनिविष्टस्य, तड़ागस्य) पूर्व बनाये हुए तालाब के (उदकं, हरेत्) जल को चुरा लेवे (अपां) अथवा (अपां, आगमं, भिन्द्यात्) जल के स्रोत वा आगमन को तोड़दे वा रोकदे तो (सः) वह (पूर्वसाहसं, दाप्यः) "प्रथमसाहस" दण्ड के योग्य है ॥

सं०—अब राजमार्गों के अशुद्ध करने में दण्ड विधान करते हैं;—

समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि ।
स द्वौ कार्षापणौ दद्यादमेध्यं चाशु शोधयेत्॥२४०॥

पदा०—(यः, तु) जो कोई (अनापदि) आपत्ति के विना (राजमार्गे) सरकारी सड़क पर (अमेध्यं,समुत्सृजेत्) मैला आदि अपवित्र वस्तु डाले (सः) वह राजा को (द्वौ, कार्षापणौ) "दो कार्षापण" (दद्यात्) दण्ड देवे (च) और (अमेध्यं, आशु, शोधयेत्) उस मैले को शीघ्र उठवा कर शुद्ध करादे परन्तु :—

आपद्गतोऽथवा वृद्धो गर्भिणी बाल एव वा ।
परिभाषणमर्हन्ति तच्च शोध्यमिति स्थितिः ॥२४१॥

पदा०—(आपद्गतः) किसी आपत्ति से पीड़ित (अथवा) अथवा (वृद्धः) वृद्ध पुरुष (गर्भिणी) गर्भवती स्त्री (वा) वा (बालः, एव) बालक यह सब (परिभाषण, अर्हन्ति) भला बुरा कह कर

धमकाने योग्य (च) तथा (तत्) उस मैले को (शोध्यं) उठवाकर शुद्ध कराने योग्य हैं, दण्ड पाने योग्य नहीं (इति, स्थितिः) यह शास्त्र मर्यादा है ॥

सं०—अब अनपढ़ वैद्यों को दण्ड विधान करते हैं:—

चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्याप्रचरतां दमः ।
अमानुषेषु प्रथमो मानुषेषु तु मध्यमः ॥२४२॥

पदा०—(मिथ्याप्रचरतां) बेपढ़े उलटी चिकित्सा करने वाले (सर्वेषां, चिकित्सकानां) सम्पूर्ण वैद्यों को (अमानुषेषु) घोड़ा आदि पशुओं की चिकित्सा करने पर (प्रथमः) प्रथमसाहस (तु) और (मानुषेषु) मनुष्यों की चिकित्सा करने पर (मध्यमः) मध्यमसाहस (दमः) दण्ड देना चाहिये ॥

सं०—अब पुल, पताका आदि के तोड़ने तथा अदूषित पदार्थों के दूषित करने में दण्ड विधान करते हैं :—

संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ।
प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च ॥२४३॥

पदा०—(संक्रमध्वजयष्टीनां) काष्ठ वा शिला के पुल, पताका (च) और (प्रतिमानां, भेदकः) किसी मूर्त्ति को तोड़ने वाला (तत्, सर्वं) उन सब को फिर से (प्रतिकुर्यात्, च) बनवा दे (च) तथा (पञ्चशतानि) पांचसौपण (दद्यात्) दण्ड देवे ॥

अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा ।
मणीनामपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः ॥ २४४ ॥

पदा०—(अदूषितानां, द्रव्याणां) अदूषित द्रव्यों को (दूषणे,

तथा, भेदने) दूषित करने तथा तोड़ने (च) और (मणीनां, अपवेधे) मणियों के छिद्र बिगाड़ने में (प्रथमसाहसः, दण्डः) "प्रथमसाहस" दण्ड देना चाहिये ॥

समैर्हि-विषमं यस्तु चरेद्वै मूल्यतोऽपि वा ।
समाप्नुयाद्दमं पूर्वं नरो मध्यममेव वा ॥ २८५ ॥

पदा०-(तु) और (यः) जो पुरुष (समैः) बराबर की वस्तुओं (अपिवा) अथवा (मूल्यतः) बराबर मूल्य से (विषमं, चरेत्) घटिया बढ़िया मूल्यवाली वस्तुओं में मूल्य घटा बढ़ाकर देने लेने का व्यवहार करे तो वह (नरः) पुरुष (वै, हि) निश्चय करके (पूर्वं) प्रथमसाहस (वा) अथवा (मध्यमं, एव) "मध्यमसाहस" (दमं, समाप्नुयात्) दण्ड पावे ॥

बन्धनानि च सर्वाणि राजा मार्गे निवेशयेत् ।
दुःखिता यत्र दृश्येरन्विकृताः पापकारिणः ॥२८६॥

पदा०-(राजा) राजा (सर्वाणि, बन्धनानि) सम्पूर्ण बन्धनगृह=जेलखानों को (मार्गे, निवेशयेत्) मार्ग में बनवावे (यत्र) जहां (दुःखिताः) दुःखित (च) तथा (विकृताः,पापकारिणः) विकृत पाप करने वाले, सब को (दृश्येरन्) दृष्टिगोचर होवें ॥

प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च पूरकम् ।
द्वाराणां चैव भङ्क्तारं क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥२८७॥

पदा०-(प्राकारस्य) नगर तथा किला आदि के परकोटों के (भेत्तारं) तोड़ने वालों (परिखाणां, च, पूरकं) खाइयों के भरने वालों (च) और (द्वाराणां, एव, भङ्क्तारं) द्वारों के

तोड़ने वालों को राजा (क्षिप्रं, एव, प्रवासयेत) शीघ्र ही देश से निकाल दे ॥

अभिचारेषु सर्वेषु कर्त्तव्यो द्विशतो दमः ।
मूलकर्मणि चानाप्तेः कृत्यासु विविधासु च ॥२४८॥

पदा०-(सर्वेषु, अभिचारेषु) सम्पूर्ण मारण आदि प्रयोग करने पर (मूलकर्मणि) मोहनादि से वश करने पर (च) और (कृत्यासु, विविधासु) अनेक प्रकार की औषधियों द्वारा उच्चाटन आदि करने पर (अनाप्तेः) फल की प्राप्ति न होने पर भी (द्विशतः, दमः, कर्त्तव्यः) "दोसौपण" दण्ड करना चाहिये ॥

अबीजविक्रयी चैव बीजोत्कृष्टं तथैव च ।
मर्यादाभेदकश्चैव विकृतं प्राप्नुयाद्वधम् ॥ २४९ ॥

पदा०-(अबीजविक्रयी) उपजने के अयोग्य बीज बेचने वाला (तथा, एव, च) तथा (बीजोत्कृष्टं, चैव) अच्छे बीज को बुरे के साथ मिलाकर बेचने वाला (च) और (मर्यादाभेदकः) ग्राम आदि की सीमा को तोड़ने वाला (विकृतं, वधं, प्राप्नुयात) घोर वध को प्राप्त हो ॥

सर्वकण्टकपापिष्ठं हेमकारं तु पार्थिवः ।
प्रवर्त्तमानमन्याये छेदयेल्लवशः क्षुरैः ॥ २५० ॥

पदा०-(पार्थिवः) राजा (सर्वकण्टकपापिष्ठं) सम्पूर्ण कण्टकों में अत्यन्त पापी (अन्याये, प्रवर्त्तमानं) अन्याय में प्रवृत्त हुए (हेमकारं) सुनार को अपराध के करने पर (क्षुरैः, लवशः, छेदयेत) छुरियों से दुःख देवे ॥

सीताद्रव्यापहरणे शस्त्राणामौषधस्य च ।
कालमासाद्य कार्यञ्च राजा दण्डं प्रकल्पयेत् ॥२५१॥

पदा०-(सीताद्रव्यापहरणे) हल, कुदाल आदि द्रव्य के चुराने पर (च) और (शस्त्राणां, औषधस्य) शस्त्र तथा दवाई के चुराने पर (राजा) राजा (कालं, कार्यं, च, आसाद्य) समय तथा अपराध को विचार कर (दण्डं, प्रकल्पयेत) दण्ड नियत करे॥

सं०-अब राज्य के सप्तअङ्गों का वर्णन करते हैं :—

स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा ।
सप्तप्रकृतयो ह्येताः सप्तांगं राज्यमुच्यते ॥२५२॥

पदा०-(स्वाम्यमात्यौ) १-राजा, २-मन्त्री (पुरं, राष्ट्रं) ३-नगर जिसमें क़िला बनाकर राजा निवास करे, ४-राज्य (कोशदण्डौ) ५-खज़ाना, ६-दण्ड (तथा, सुहृत) तथा ७-मित्र (एताः) यह राज्य की (सप्तप्रकृतयः) सात प्रकृति हैं (हि) क्योंकि विद्वानों ने (राज्यं) राज्य को (सप्ताङ्गं, उच्यते) सात अङ्ग वाला कहा है ॥

सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्यासां यथाक्रमम् ।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं जानीयाद्व्यसनं महत् ॥२५३॥

पदा०-(तु) और (राज्यस्य) राज्य की (आसां, सप्तानां, प्रकृतीनां) इन सात प्रकृतियों में (यथाक्रमं) क्रम से (पूर्वं, पूर्वं, गुरुतरं, महत) पहली २ को बड़ाभारी (व्यसनं, जानीयात) व्यसन जानो, अर्थात् मित्र से दण्ड, दण्ड से कोश, कोश से राष्ट्र, राष्ट्र सेपुर, पुरसे मन्त्री और मन्त्री से राजा का व्यसन गुरुतर=बड़ाभारी है क्योंकि राजा ही सब की रक्षा का कारण है ॥

सप्तांगस्येह राज्यस्य विष्टब्धस्य त्रिदण्डवत् ।
अन्योन्यगुणवैशेष्यान्न किंचिदतिरिच्यते ॥२५४॥

पदा०-(विष्टब्धस्य, त्रिदण्डवत्) जैसे विष्टब्ध के परस्पर मिले हुए तीन दण्ड एक दूसरे के सहारे ठहरे रहते हैं वैसे ही (इह, सप्ताङ्गस्य, राज्यस्य) यह सप्ताङ्गराज्य सात प्रकृतियों में एक दूसरे के सहारे ठहरा है और इन सातो अङ्गों में (अन्योन्यगुणवैशेष्यात्) एक दूसरा अपने २ गुण की विशेषता से (किञ्चित्, न, अतिरिच्यते) कुछ भी अधिक नहीं है, यद्यपि पूर्व श्लोक में उत्तरोत्तर के प्रति पूर्व २ अङ्ग को विशेष कहा था, परन्तु इस श्लोक में अधिकता का निषेध इसलिये किया है कि पूर्व पूर्व के अङ्ग इस भूल में भी न रहें कि उत्तरोत्तर के अङ्ग हमारा कुछ कर नहीं सक्ते ॥

तेषु तेषु तु कृत्येषु तत्तदंगं विशिष्यते ।
येन यत्साध्यते कार्यं तत्तस्मिन् श्रेष्ठमुच्यते॥२५५॥

पदा०-(तु) और (तेषु, तेषु, कृत्येषु) उन २ कार्यों के करने में (तत्तत्,अङ्गं,विशिष्यते) वह २ अङ्ग प्रधानता को प्राप्त होता है (येन, यत्, कार्यं, साध्यते) जिससे जो कार्य सिद्ध किया जाय (तत्) वह अङ्ग (तस्मिन्, श्रेष्ठं, उच्यते) उस कार्य में श्रेष्ठ कहाता है ॥

चारेणोत्साहयोगेन क्रिययैव च कर्मणाम् ।
स्वशक्तिं परशक्तिं च नित्यं विद्यान्महीपतिः॥२५६॥

पदा०-(महीपतिः) राजा (चारेण) सप्तमाध्याय में कहे गुप्तचरों से (उत्साहयोगेन) सेना में उत्साह उत्पन्न करने से

(च) और (कर्मणां, क्रियया, एव) राज्यसम्बन्धि सम्पूर्ण कर्मों की क्रिया से (स्वशक्ति, परशक्ति, च) अपनी शक्ति तथा अपने शत्रु की शक्ति को (नित्यं) सदा (विद्यात्) जानता रहे ॥

पीडानि च सर्वाणि व्यसनानि तथैव च ।
आरभेत ततः कार्यं सञ्चिन्त्य गुरुलाघवम् ॥२५७॥

पदा०—(पीडानि, सर्वाणि) होने वाले सम्पूर्ण दुःखों (च) और (तथा,एव) उसी प्रकार (व्यसनानि) सब व्यसनों (च) तथा (गुरुलाघवं) अधिकता वा न्यूनताको (सञ्चिन्त्य) भलेप्रकार विचार कर (ततः) पश्चात् राजा (कार्यं, आरभेत) कार्य प्रारम्भ करे ॥

आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः ।
कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते ॥२५८॥

पदा०—(कर्माणि) राज्य वृद्धि के कामों को राजा (श्रान्तः, श्रान्तः) धीरे २ (पुनः, पुनः) वार २ (आरभेत, एव) आरम्भ करता ही रहे (हि) क्योंकि (कर्माणि, आरभमाणं) कार्यों के प्रारम्भ करने वाले (पुरुषं) पुरुष को ही (श्रीः, निषेवते) लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥

सं०—अब राजा को युगरूप से वर्णन करते हैं :—

कृतं त्रेतायुगञ्चैव द्वापरं कलिरेव च ।
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥२५९॥

पदा०—(कृतं) सतयुग (त्रेतायुगं) त्रेतायुग (द्वापरं) द्वापरयुग (च) और (कलिः, एव) कलियुग यह (सर्वाणि) सब युग (राज्ञः, वृत्तानि) राजा की चेष्टा विशेष हैं (हि) क्योंकि (राजा) राजा भी (युगं, उच्यते) युग कहाता है ॥

कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद्द्वापरं युगम् ।
कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥२६०॥

पदा०—(सः) वह राजा (प्रसुप्तः, भवति) जब निरुद्यम होता है तब (कलिः) कलियुग, (जाग्रत्) जब जागता हुआ भी कर्म न करे तो (द्वापरं, युगं) द्वापरयुग (कर्मसु, अभ्युद्यतः) जब कर्मों में तत्पर होता है तब (त्रेता) त्रेतायुग (तु) और जब (विचरन्) शास्त्रानुसार कर्मों का अनुष्ठान करता हुआ विचरता है तब (कृतं, युगं) सतयुग होता है ॥

सं०—अब इन्द्रादि आठ देवताओं के समान राजा को कर्म करने का विधान करते हैं :—

इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च ।
चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजो वृत्तं नृपश्चरेत् ॥२६१॥

पदा०—(इन्द्रस्य, अर्कस्य, वायोः, च) इन्द्र, सूर्य, वायु (यमस्य, वरुणस्य, च) यम, वरुण (चन्द्रस्य, अग्नेः) चन्द्र, अग्नि (च) और (पृथिव्याः) पृथिवी के (तेजः, वृत्तं) सामर्थ्यरूप कर्म को (नृपः, चरेत्) राजा करे ॥

वार्षिकांश्चतुरो मासान् यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति ।
तथाभिवर्षेत्स्वं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन् ॥ २६२ ॥

पदा०—(वार्षिकान्, चतुरः, मासान्) वर्षा ऋतु के चार मास में (यथा, इन्द्रः, अभिप्रवर्षति) जैसे इन्द्र=वायुविशेष वर्षा करता है (तथा) उसी प्रकार (इन्द्रव्रतं, चरन्) इन्द्र के काम को करता हुआ राजा (स्वं, राष्ट्रं) स्वदेश में (कामैः, अभिवर्षेत्) प्रजा के इच्छित पदार्थों को वर्षावे ॥

अष्टौ मासान् यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः।
तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत् ॥ २६३ ॥

पदा०—(अष्टौ, मासान्) आठ मास (यथा, आदित्यः) जैसे सूर्य (रश्मिभिः) किरणों से (तोयं, हरति) जल खींचता है (तथा) उसी प्रकार राजा (राष्ट्रात्, नित्यं) राज्य से सदा (करं, हरेत्) कर=लगान लेवे (तत्, हि, अर्कव्रतं) वही निश्चित सूर्य व्रत है ॥

प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः।
तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥२६४॥

पदा०—(यथा) जिस प्रकार (सर्वभूतानि, प्रविश्य) सब प्राणियों में प्रविष्ट होकर (मारुतः, चरति) वायु विचरता है (तथा) उसी प्रकार राजा को (चारैः) गुप्तचरों द्वारा राज्य में (प्रवेष्टव्यं) प्रवेश करना चाहिये अर्थात् प्रजा के आभ्यन्तर भाव को जानले (हि) निश्चयकरके (एतत्, व्रतं, मारुतं) यह काम वायु का है ॥

यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति।
तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥२६५॥

पदा०—(यथा) जैसे (यमः) मृत्यु वा परमात्मा (प्राप्ते, काले) प्राप्त काल=मरण काल होने पर (प्रियद्वेष्यौ, नियच्छति) शत्रु, मित्र सब को समान दण्ड देता है (तथा) वैसे ही (राज्ञा) राजा से अपराध काल में (प्रजाः) प्रजा (नियन्तव्याः) दण्ड पाने योग्य है (हि) निश्चकरके (तत्, यमव्रतं) वह यमराज का काम है ॥

वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एवाभिदृश्यते ।
तथा पापान्निगृह्णीयाद्व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥२६६॥

पदा०-(यथा) जैसे (वरुणेन, पाशैः) वरुण के फांसों से प्राणी (बद्धः, एव, अभिदृश्यते) बंधे हुए दीखते हैं (तथा) उसी प्रकार राजा (पापान्, निगृह्णीयात्) पापियों का शासन करे (हि) निश्चयकरके (एतत्, वारुणं, व्रतं) यह वरुण का व्रत है॥

परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः ।
तथा प्रकृतयो यस्मिन्स चान्द्रव्रतिको नृपः ॥२६७॥

पदा०-(यथा) जैसे (परिपूर्णं, चन्द्रं) पूर्ण चन्द्रमा को (दृष्ट्वा) देखकर (मानवाः) मनुष्य (हृष्यन्ति) हर्षित होते हैं (तथा) उसी प्रकार (प्रकृतयः) मन्त्री आदि (यस्मिन्) जिस राजा के दर्शन से प्रसन्न हों (सः, नृपः) वह राजा (चान्द्रव्रतिकः) चन्द्रव्रत करने वाला होता है ॥

प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु ।
दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्नेयं व्रतं स्मृतम् ॥२६८॥

पदा०-राजा (पापकर्मसु) पाप कर्म करने वालों में (नित्यं) सदा (प्रतापयुक्तः, तेजस्वी) प्रतापी तथा तेजस्वी (च) और (दुष्टसामन्तहिंस्रः) दुष्ट माण्डलिक राजाओं को दण्ड देने वाला (स्यात्) हो (तत्, आग्नेयं, व्रतं, स्मृतं) वह अग्नि का व्रत कहाता है ॥

यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम् ।
तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ॥२६९॥

पदा०-(यथा) जैसे (सर्वाणि, भूतानि) सम्पूर्ण प्राणियों को (धरा, समं, धारयते) पृथिवी समरूप से धारण करती है (तथा) उसी प्रकार (सर्वाणि, भूतानि) सब प्राणियों को (बिभ्रतः) बराबर पालन करने वाला राजा हो (पार्थिवं, व्रतं) यह पृथिवी का व्रत है ॥

एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमतन्द्रितः ।
स्तेनान्राजा निगृह्णीयात्स्वराष्ट्रे पर एव च ॥२७०॥

पदा०-(एतैः, उपायैः, अन्यैः, च) इन पूर्वोक्त उपायों तथा अन्य उपायों से (नित्यं, अतन्द्रितः) सदा आलस्य रहित (राजा) राजा (स्वराष्ट्रे) अपने राज्य में (च) और जो (परे, एव) दूसरे के राज्य में भाग गये हों, उन सब (स्तेनान्) चोरों को (निगृह्णीयात्) वशीभूत करे ॥

सं०-अब राजा से ब्राह्मणों का मान कथन करते हैं :—

परामप्यापदं प्राप्तो ब्राह्मणान्न प्रकोपयेत् ।
ते ह्येनं कुपिता हन्युः सद्यः सबलवाहनम् ॥२७१॥

पदा०-(परां, आपदं, अपि, प्राप्तः) अधिक आपत्ति को प्राप्त हुआ भी राजा (ब्राह्मणान्, न, प्रकोपयेत्) ब्राह्मणों को क्रोधित न करे (हि) क्योंकि (ते, कुपिताः) वह क्रोधित हुए (सबलवाहनं) सेना तथा वाहन सहित (एनं) राजा को (सद्यः, हन्युः) शीघ्र नष्ट कर देते हैं, अर्थात् विद्या और विद्वानों का तिरस्कार निःसन्देह, राजा तथा राज्य सामग्री को नष्ट कर देता है ॥

क्षत्रियस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति सर्वशः ।
ब्रह्मैव सन्नियन्तृस्यात्क्षत्रं हि ब्रह्मसम्भवम् ॥२७२॥

पदा०-(ब्राह्मणान्, प्रति) ब्राह्मणों के लिये (सर्वशः, अतिप्रवृद्धस्य) सब प्रकार पीडा देने में प्रवृत्त हुए (क्षत्रियस्य) क्षत्रियों को (ब्रह्मैव) ब्राह्मण ही (सन्नियन्तृ, स्यात्) सम्यक् प्रकार नियम में रक्खें (हि) क्योंकि (क्षत्रं, ब्रह्मसम्भवं) क्षत्रियों की, ब्राह्मण द्वारा ही संस्कार रूप से उत्पत्ति है ॥

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनोलोहमुत्थितम् ।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥२७३॥

पदा०-(अद्भ्यः, अग्निः) जल से अग्नि (ब्रह्मतः, क्षत्रं) ब्राह्मण से क्षत्रिय और (अश्मनः, लोहम्) पत्थर से लोहा, (उत्थितं) उत्पन्न हुआ है (तेषां) उनका (तेजः) तेज (सर्वत्रगं) सब स्थानों में प्राप्त हुआ २ भी (स्वासु, योनिषु) पुनः अपने उत्पन्न करने वालों में ही (शाम्यति) शान्त होजाता है ॥

नाब्रह्म क्षत्रमृध्नोति नाक्षत्रं ब्रह्म वर्द्धते ।
ब्रह्म क्षत्रं च सम्पृक्तमिह चामुत्र वर्द्धते ॥२७४॥

पदा०-(अब्रह्म, क्षत्रं, न, ऋध्नोति) बिना ब्राह्मण के क्षत्रिय नहीं बढ़ता (अक्षत्रं, ब्रह्म, न, वर्द्धते) तथा बिना क्षत्रिय के ब्राह्मण नहीं बढ़ता (च) और (सम्पृक्तं) मिले हुए (ब्रह्म, क्षत्रं) ब्राह्मण, क्षत्रिय (इह, अमुत्र, च) इस लोक तथा परलोक दोनों लोकों में (वर्द्धते) वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥

दत्त्वा धनं तु विप्रेभ्यः सर्वं दण्डमुत्थितम् ।
पुत्रे राज्यं समासृज्य कुर्वीत प्रायणं रणे ॥२७५॥

पदा०—(दण्डं, उत्थितं) दण्ड से प्राप्त (सर्वं, धनं) सम्पूर्ण धन को राजा (विप्रेभ्यः, दत्त्वा) ब्राह्मणों के लिये देकर(तु) और (पुत्रे, राज्यं, समासृज्य)-पुत्र को राज्य समर्पण करके (रणे, प्रायणं, कुर्वीत) रण में प्राण त्याग करे ॥

एवं चरन्सदा युक्तो राजधर्मेषु पार्थिवः ।
हितेषु चैव लोकस्य सर्वान् भृत्यान्नियोजयेत्॥२७६॥

पदा०—(एवं, चरन्) इस पूर्वोक्त प्रकार आचरण करता हुआ (राजधर्मेषु) राजधर्मों में (सदा, युक्तः) सदा तत्पर (पार्थिवः) राजा (लोकस्य, हितेषु, चैव) सब लोगों के हित के लिये (सर्वान्, भृत्यान्) सम्पूर्ण राजभृत्यों को (नियोजयेत्) नियुक्त करे ॥

एषोऽखिलः कर्मविधिरुक्तो राज्ञः सनातनः ।
इमं कर्मविधिं विद्यात्क्रमशो वैश्यशूद्रयोः ॥२७७॥

पदा०—हे महर्षिलोगो ! तुम्हारे प्रति (राज्ञः) राजा की (एषः, अखिलः) यह सम्पूर्ण (सनातनः, कर्मविधिः, उक्तः) सनातन कर्मों की विधि कही, अब आगे (क्रमशः) क्रमानुसार (वैश्यशूद्रयोः) वैश्य शूद्रों की (इमं, कर्मविधिं, विद्यात्) यह कर्मविधि जानो ॥

सं०—अब वैश्यधर्म का वर्णन करते हैं ॥

वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दारपरिग्रहम् ।
वार्तायां नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैव रक्षणे ॥२७८॥

पदा०-(कृतसंस्कारः, वैश्यः) यज्ञोपवीतादि संस्कार युक्त वैश्य (दारपरिग्रहं, कृत्वा) गृहस्थी हो के (वार्तायां) व्यापार (तु) तथा (पशूनां, रक्षणे, चैव) पशुओं के रक्षण में (नित्यं, युक्तः, स्यात्) सदा तत्पर रहे ॥

प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून्।
ब्राह्मणाय च राज्ञे च सर्वाः परिददे प्रजाः २७९॥

पदा०-(हि) क्योंकि (प्रजापतिः) परमात्मा ने (पशून्, सृष्ट्वा) पशु उत्पन्न करके (वैश्याय, परिददे) वैश्य के लिये दिये (च) और (ब्राह्मणाय, राज्ञे, च) ब्राह्मण तथा राजा को (सर्वाः, प्रजाः) सम्पूर्ण प्रजा रक्षा के निमित्त (परिददे) दी है ॥

न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षेयं पशूनिति ।
वैश्ये चेच्छति नान्येन रक्षितव्याः कथञ्चन ॥२८०॥

पदा०-(पशून्, न, रक्षेयं) मैं पशुओं की रक्षा न करूं (इति) ऐसी (वैश्यस्य, कामः, नच, स्यात्) वैश्य की इच्छा न होनी चाहिये (च) और (वैश्ये, इच्छति) वैश्य के चाहते हुए (अन्येन, कथञ्चन, न, रक्षितव्याः) दूसरे को पशुपालन वृत्ति कभी नहीं करनी चाहिये ॥

मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तान्तवस्य च ।
गन्धानां च रसानां च विद्यादर्घबलाबलम् ॥२८१॥

पदा०-(मणिमुक्ताप्रवालानां) मणि,मोती,मूंगा (लोहानां, तान्तवस्य, च) लोहा आदि धातुओं तथा वस्त्रों (च) और

(गन्धानां, रसानां, च) कपूरादि गन्ध तथा लवणादि रसों के (अर्घबलाबलं, विद्यात्) मूल्य में घटी बढ़ी का भाव वैश्य जाने ॥

बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्रदोषगुणस्य च ।
मानयोगं च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः॥२८२॥

पदा०—(बीजानां, उप्तिवित्) वैश्य सब: बीजों के बोने की विधि जानने वाला (स्यात्) हो (च) और (क्षेत्रदोषगुणस्य) खेत के गुण दोषों (च) तथा (सर्वशः, मानयोगं, तुलायोगान्, च) सम्पूर्ण नाप तौल के प्रमाण को भी सम्यक् प्रकार (जानीयात्) जानता रहे ॥

सारासारं च भाण्डानां देशानां च गुणागुणान् ।
लाभालाभं च पण्यानां पशूनां परिवर्द्धनम् ॥२८३॥

पदा०—(च) और वैश्य (भाण्डानां, सारासारं) विक्रेय पदार्थों के तत्त्व तथा अतत्त्व को (देशानां, गुणागुणान्) अन्य देशों के सस्ते महंगे आदि गुण अवगुणों को (च) और (पण्यानां, लाभालाभं) विक्री के लाभ हानिरूप वृत्तान्त को (च) तथा (पशूनां, परिवर्द्धनं) पशुओं की वृद्धि को भले प्रकार जाने॥

भृत्यानां च भृतिं विद्याद्भाषाश्च विविधा नृणाम् ।
द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च ॥२८४॥

पदा०—(भृत्यानां, च, भृतिं) नौकरों की नौकरी (नृणां) देशान्तर निवासी मनुष्यों की (विविधाः, भाषाः) अनेक भाषा (द्रव्याणां, स्थानयोगान्) माल के रखने की विधि (च) और (क्रयविक्रयं, एव, च) बेचने खरीदने के ढंग को (विद्यात्) वैश्य भले प्रकार जाने ॥

धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ।
दद्याच्च सर्वभूतानामन्नमेव प्रयत्नतः ॥२८५॥

पदा०-(च) और (धर्मेण) वैश्यधर्म से (द्रव्यवृद्धौ) द्रव्य के बढ़ाने में (उत्तमं, यत्नं, आतिष्ठेत्) उत्तम यत्न करे (च) तथा (सर्वभूतानां, अन्नं, एव) सम्पूर्ण प्राणियों को अन्न (प्रयत्नतः, दद्यात्) प्रयत्न पूर्वक देवे ॥

सं०-अब शूद्रधर्म का वर्णन करते हैं :—

विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम् ।
शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैःश्रेयसः परः ॥२८६॥

पदा०-(वेदविदुषां, विप्राणां) वेदज्ञ ब्राह्मणों (तु) तथा (यशस्विनां, गृहस्थानां) यशस्वी गृहस्थियों की (शुश्रूषा, एव) सेवा करना ही (शूद्रस्य) शूद्र का (परः, नैःश्रेयसः, धर्मः) परम सुखदायी धर्म है ॥

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः ।
ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते ॥२८७॥

पदा०-(शुचिः) तन मन से पवित्र (उत्कृष्टशुश्रूषुः) परिश्रम से सेवा करने (मृदुवाक्, अनहङ्कृतः) तथा मधुर बोलने वाला, अहङ्कार से रहित शूद्र (नित्यं) सदा (ब्राह्मणाद्याश्रयः) ब्राह्मणादि द्विजों की सेवा करता हुआ (उत्कृष्टां, जातिं, अश्नुते) उच्च जाति को प्राप्त होजाता है ॥

एषोऽनापदि वर्णानामुक्तः कर्मविधिः शुभः ।
आपद्यपि हि यस्तेषां क्रमशस्तन्निबोधत॥२८८॥

पदा०—हे महर्षिलोगो ! तुम्हारे प्रति (एषः) यह (वर्णानां) वर्णों की (अनापदि) आपत्ति रहित समय के योग्य (शुभः, कर्मविधिः) शुभ कर्मविधि (उक्तः) कही, अब आगे "दशमाध्याय" में (यः) जो (तेषां) ब्राह्मणादि वर्णों का (आपदि) आपत्ति काल का धर्म है (तं, अपि) उसको भी (क्रमशः) क्रम से (हि) निश्चयपूर्वक (निबोधत) सुनो ॥

इति मानवार्य्यभाष्ये
नवमोऽध्यायः
समाप्तः ॥

ओ३म्

अथ दशमोऽध्यायः

सं०—अब ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण को वेद पढ़ाने का अधिकार वर्णन करते हुए वर्णों के आपद्धर्म का विधान करते हैं:—

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः ।
प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ॥ १ ॥

पदा०—(स्वकर्मस्थाः, द्विजातयः) अपने २ कर्म में स्थित द्विजाति (त्रयः, वर्णाः) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनो वर्ण (अधीयीरन्) वेदवेदाङ्ग पढ़ें (तु) और (एषां, ब्राह्मणः) इनको वेदज्ञ ब्राह्मण (प्रब्रूयात्) पढ़ावे (इतरौ, न) क्षत्रिय, वैश्य नहीं पढ़ावें (इति, निश्चयः) यह शास्त्र का सिद्धान्त है ॥

सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद्वृत्त्युपायान्यथाविधि ।
प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत् ॥२॥

पदा०—(ब्राह्मणः) ब्राह्मण (यथाविधि) शास्त्रोक्त विधि के अनुसार (सर्वेषां, वृत्त्युपायान्) सब के जीवन का उपाय (विद्यात्) जाने (च) और (इतरेभ्यः, प्रब्रूयात्) अन्य वर्णों को उसका उपदेश करे (च) तथा (स्वयं, एव) आप भी (तथा, भवेत्) वैसे ही आचरण वाला (भवेत्) होवे ॥

वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात् ।
संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः ॥३॥

पदा०—(वैशेष्यात्) गुणों की अधिकता (प्रकृति-

श्रैष्ठ्यात्) स्वाभाविक श्रेष्ठता (च) और (नियमस्य,धारणात्) नियम के धारण करने (च) तथा (संस्कारस्य, विशेषात्) संस्कार की विशेषता से (वर्णानां) अन्य वर्णों का (ब्राह्मणः, प्रभुः) ब्राह्मण स्वामी है ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयोवर्णा द्विजातयः ।
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ॥४॥

पदा०—(ब्राह्मणः) ब्राह्मण (क्षत्रियः) क्षत्रिय (वैश्यः) वैश्य (त्रयः, वर्णाः) यह तीनो वर्ण (द्विजातयः) द्विजाति हैं (तु) तथा (चतुर्थः, शूद्रः) चौथा शूद्र (एकजातिः) एक जाति है (तु) और (पञ्चमः) पांचवां वर्ण (नास्ति) नहीं है ॥

सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु ।
आनुलोम्येन सम्भूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते ॥५॥

पदा०—(सर्ववर्णेषु) ब्राह्मणादि चारो वर्णों में (तुल्यासु) समान वर्ण की (अक्षतयोनिषु,पत्नीषु)अक्षतयोनि पत्नियों से (आनुलोम्येन, सम्भूताः) क्रमपूर्वक जो सन्तान उत्पन्न हों (ते) उन सब को (ते,एव,जात्याः,ज्ञेयाः) उनकी ही जाती से जानना चाहिये

सं०—अब अपने से एक वर्ण हीन स्त्री में उत्पन्न हुई सन्तान की विधि कथन करते हैं:—

स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान् सुतान् ।
सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् ॥६॥

पदा०—(अनन्तरजातासु, स्त्रीषु) अपने से नीचवर्ण की स्त्रियों में (द्विजैः) द्विजों से (उत्पादितान्) उत्पन्न हुए (मातृदोषविगर्हितान्) माता के दोष से निन्दित (तान्,सुतान्) उन पुत्रों को (सदृशान्, एव, आहुः) पिता के समान पतित कहा है ॥

अनन्तरासु जातानां विधिरेष सनातनः ।
द्व्येकान्तरासु जातानां धर्म्यं विद्यादिमं विधिम्॥७॥

पदा०—हे महर्षिलोगो ! (अनन्तरासु, जातानां) अपने से एक वर्ण हीन स्त्रियों में उत्पन्न सन्तान की (एषः,सनातनः) यह सनातन (विधिः) विधि कही, अब (द्व्येकान्तरासु, जातानां) दो वर्ण हीन स्त्रियों में अर्थात् जैसे ब्राह्मण से वैश्य स्त्री में उत्पन्न हुई सन्तान की (इमं,धर्म्यं,विधिं) यह वक्ष्यमाण धर्मविधि (विद्यात्) जानो ॥

सं०—अब अपने से दो वर्ण हीन स्त्री में उत्पन्न सन्तान की विधि वर्णन करते हैं :—

ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते ।
निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते ॥८॥

पदा०—(ब्राह्मणात्) ब्राह्मण से (वैश्यकन्यायां) वैश्य की कन्या में जो उत्पन्न हो (अम्बष्ठः, नाम, जायते) उसका "अम्बष्ठ" नाम होता है, और (यः) जो (शूद्रकन्यायां) शूद्रा कन्या में ब्राह्मण से उत्पन्न हो वह (निषादः) " निषाद " अथवा (पारशवः) "पारशव" (उच्यते) कहाता है ॥

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान् ।
क्षत्रशूद्रवपुर्जन्तुरुग्रोनाम प्रजायते ॥९॥

पदा०—(क्षत्रियात्) क्षत्रिय से (शूद्रकन्यायां) शूद्रा कन्या में (क्रूराचारविहारवान्) क्रूर आचार विहार वाला, तथा (क्षत्रशूद्रवपुः) क्षत्रिय शूद्र शरीर युक्त (जन्तुः) प्राणी (उग्रः, नाम, प्रजायते) "उग्र" नामक उत्पन्न होता है ॥

विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयोर्द्वयोः ।
वैश्यस्य वर्णे चैकस्मिन्षडेतेऽपसदाः स्मृताः ॥१०॥

पदा०—(विप्रस्य) ब्राह्मण के (त्रिषु, वर्णेषु) क्षत्रियादि तीन वर्णों में (नृपतेः) क्षत्रिय के (द्वयोः, वर्णयोः) वैश्य, शूद्र दो वर्णों में (च) और (वैश्यस्य) वैश्य के (एकस्मिन्, वर्णे) एक वर्ण शूद्रा में उत्पन्न हुए (एते, षट्) यह छः सन्तान (अपसदाः) "अपसद=नीच" (स्मृताः) कहे गये हैं ॥

सं०—अब विपरीत उत्पन्न सन्तान की विधि कहते हैं:—

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः ।
वैश्यान्मागधवैदेहौ राजाविप्राङ्गनासुतौ ॥११॥

पदा०—(क्षत्रियात्) क्षत्रिय से (विप्रकन्यायां) ब्राह्मण की कन्या में उत्पन्न हुआ (जातितः) जाति से (सूतः, भवति) "सूत" होता है और (वैश्यात्) वैश्य से उत्पन्न हुए (राजाविप्राङ्गनासुतौ) क्षत्रिया तथा ब्राह्मणी के पुत्र (मागधवैदेहौ) "मागध" तथा "वैदेह" नाम वाले होते हैं, अर्थात् क्षत्रिया का "मागध" और ब्राह्मणी का "वैदेह" कहाता है ॥

शूद्रादायोगवः क्षत्ता चाण्डालश्चाधमो नृणाम् ।
वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः ॥ १२ ॥

पदा०—(शूद्रात्) शूद्र से (वैश्यराजन्यविप्रासु) वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मणी कन्या में क्रम से (आयोगवः) "आयोगव" वैश्य कन्या में (क्षत्ता) "क्षत्ता" क्षत्रिया में (च) और (नृणां, अधमः) मनुष्यों में नीच (चाण्डालः) "चाण्डाल" ब्राह्मणी में, इस प्रकार "श्लोक ८ से १२ तक कहे हुए" (वर्णसंकराः, जायन्ते) वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं ॥

एकान्तरे त्वानुलोम्यादम्बष्ठोग्रौ यथा स्मृतौ ।
क्षत्तृवैदेहकौ तद्वत्प्रातिलोम्येऽपि जन्मनि ॥ १३ ॥

पदा०-(यथा) जिस प्रकार (एकान्तरे, तु) एक के अन्तर वाले वर्ण में (आनुलोम्यात्) अनुलोम से (अम्बष्ठोग्रौ) "अम्बष्ठ" और "उग्र" पूर्व (स्मृतौ) कहे (तत्, वत्) उसी प्रकार (प्रातिलोम्ये, जन्मनि) प्रतिलोम की उत्पत्ति में (अपि) भी (क्षत्तृवैदेहकौ) "क्षत्ता" तथा "वैदेह" कथन किये हैं ॥

पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजाः क्रमेणोक्ता द्विजन्मनाम् ।
ताननन्तरनाम्नस्तु मातृदोषात्प्रचक्षते ॥ १४ ॥

पदा०-(ये, पुत्राः) जो पुत्र (द्विजन्मनां) द्विजातियों के (क्रमेण) क्रमसे (अनन्तरस्त्रीजाः,उक्ताः) एक वर्ण हीन स्त्री से उत्पन्न हुए कहे हैं (तान्) उनको (मातृदोषात्,तु) माता के दोष से (अनन्तरनाम्नः, प्रचक्षते) "अनन्तर" नाम वाला कहते हैं ॥

सं०-अब वर्णसंकर कन्याओं से उत्पन्न सन्तान का वर्णन करते हैं:-

ब्राह्मणादुग्रकन्यायामावृतो नाम जायते ।
आभीरोऽम्बष्ठकन्यायामायोगव्यां तु धिग्वणः ॥१५॥

पदा०-(ब्राह्मणात्) ब्राह्मण से (उग्रकन्यायां) उग्रकन्या में (आवृत्तः, नाम) "आवृत्त" नामक (अम्बष्ठकन्यायां) अम्बष्ठ कन्या में (आभीरः) "आभीर" नामक (तु) और (आयोगव्यां) आयोगवी कन्या में (धिग्वणः) "धिग्वण" नामक सन्तान (जायते) उत्पन्न होती है ॥

आयोगवश्च क्षत्ता च चाण्डालश्चाधमो नृणाम् ।
प्रातिलोम्येन जायन्ते शूद्रादपसदास्त्रयः ॥ १६ ॥

पदा०-(आयोगवः,च) आयोगव (क्षत्ता,च) क्षत्ता (च) और (नृणां,अधमः) मनुष्यों में अधम (चाण्डालः) चाण्डाल (त्रयः)

यह तीनो (प्रातिलोम्येन) प्रतिलोम द्वारा (शूद्रात्) उत्पन्न हुए शूद्र से भी (अपसदाः, जायन्ते) अतिनिकृष्ट होते हैं ॥

वैश्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रियात्सूत एव तु ।
प्रतीपमेते जायन्ते परेऽप्यपसदास्त्रयः ॥ १७ ॥

पदा०-(वैश्यात्) वैश्य से, क्षत्रिया और ब्राह्मणी में क्रम से उत्पन्न (मागधवैदेहौ) "मागध" तथा "वैदेह" (तु) और (क्षत्रियात्) क्षत्रिय से, ब्राह्मणी में उत्पन्न (सूतः) "सूत" (एते) यह (त्रयः,एव) तीनो भी (प्रतीपं, जायन्ते) प्रतिलोम से उत्पन्न हुए (परे,अपि, अपसदाः) पूर्वोक्त अपसदो से भी अतिनिकृष्ट हैं ॥

जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुक्कसः ।
शूद्राज्जातो निषाद्यां तु स वै कुक्कुटकः स्मृतः॥१८॥

पदा०-(निषादात्) निषाद से (शूद्रायां) शूद्रा स्त्री में (जातः) उत्पन्न हुआ (जात्या) जाति से (पुक्कसः) "पुक्कस" (भवति) होता है (तु) और (शूद्रात्) शूद्र से (निषाद्यां) निषाद स्त्री में (जातः) जो उत्पन्न हो (सः) वह (वै) निश्चयकरके (कुक्कुटकः, स्मृतः) " कुक्कुटक " कहाता है ॥

क्षत्तुर्जातस्तथोग्रायां श्वपाक इति कीर्त्यते ।
वैदेहकेन त्वम्बष्ठ्यामुत्पन्नो वेण उच्यते ॥ १९ ॥

पदा०-(तथा) और (क्षत्तुः) क्षत्ता से (उग्रायां,जातः) उग्रा कन्या में उत्पन्न हुआ (श्वपाकः) "श्वपाक" (इति, कीर्त्यते) कहाता (तु) तथा (वैदेहकेन) वैदेहक से (अम्बष्ठ्यां) अम्बष्ठी में (उत्पन्नः) उत्पन्न हुआ पुत्र (वेणः) "वेण" (उच्यते) कहाता है ॥

द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान् ।
तान्सावित्रीपरिभ्रष्टान्व्रात्यानिति विनिर्दिशेत् ॥२०॥

पदा०-(द्विजातयः) द्विज (सवर्णासु) समान वर्ण वाली स्त्रियों में (अव्रतान्,यान्) संस्कार रहित जिन पुत्रों को (जनयन्ति) उत्पन्न करते हैं (सावित्रीपरिभ्रष्टान्,तान्) उपनयन तथा वेदारम्भ से हीन उनको (व्रात्यान्) "व्रात्य" (इति,विनिर्दिशेत्) इस प्रकार कहना चाहिये ॥

व्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकंटकः ।
आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च ॥२१॥

पदा०-(व्रात्यात्, विप्रात्) व्रात्य ब्राह्मण से ब्राह्मणी में (पापात्मा) पापी (भूर्जकंटकः) " भूर्जकंटक " (जायते) उत्पन्न होता है (च) और उसी को देशभेद से (आवन्त्यवाटधानौ) " आवन्त्य, वाटधान " (पुष्पधः) " पुष्पध " (च) और (शैखः, एव) " शैख " भी कहते हैं, अर्थात् देशभेद से " भूर्जकंटक " के पांच नाम होजाते हैं ॥

झल्लो मल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छिविरेव च ।
नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च ॥ २२ ॥

पदा०-(व्रात्यात्,राजन्यात्) व्रात्यक्षत्रिय से क्षत्रिया में(झल्लः, मल्लः,च) १-झल्ल, २-मल्ल, (निच्छिविः, एव, च) ३-निच्छिवि (नटः,च, करणः, चैव) ४-नट, ५-करण (खसः) ६-खस (च, एव) और (द्रविडः) ७-द्रविड, यह सात नामवाले उत्पन्न होते हैं ॥

वैश्यात्तु जायते व्रात्यात्सुधन्वाचार्य एव च ।
कारुषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च ॥ २३ ॥

पदा०-(तु) और (व्रात्यात्, वैश्यात्) व्रात्यवैश्य से वैश्य वर्ण की स्त्री में (सुधन्वाचार्यः, एव, च) १-सुधन्वाचार्य

(कारुषः, च) २—कारुष (विजन्मा, च) ३—विजन्मा (मैत्रः) ४—मैत्र (च) और (सात्वतः, एव) ५—सात्वत, नामक उत्पन्न होते हैं ॥

व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च ।
स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः ॥२४॥

पदा०—(वर्णानां, व्यभिचारेण) वर्णों के व्यभिचार से (च) और (अवेद्यावेदनेन) अपने समान गोत्र में विवाह करने से (च) तथा (स्वकर्मणां, त्यागेन) अपने कर्मों के त्याग से (वर्णसंकराः) वर्णसंकर (जायन्ते) उत्पन्न होते हैं ॥

संकीर्णयोनयो ये तु प्रतिलोमाऽनुलोमजाः ।
अन्योन्यव्यतिषक्ताश्च तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥२५॥

पदा०—(तु) और (ये) जो (सङ्कीर्णयोनयः) अन्यान्य के व्यभिचार से वर्णसंकर योनि (प्रतिलोमाऽनुलोमजाः) प्रतिलोम तथा अनुलोम के द्वारा (अन्योन्यव्यतिषक्ताः) परस्पर के सम्बन्ध से उत्पन्न होती हैं (तान्) उनको (अशेषतः) आद्योपान्त अब आगे (प्रवक्ष्यामि) कहता हूं :—

सं०—अब सम्पूर्ण वर्णसंकर योनियों का वर्णन करते हैं:—

सूतो वैदेहकश्चैव चण्डालश्च नराधमः ।
मागधः क्षत्तृजातिश्च तथाऽऽयोगव एव च ॥२६॥

पदा०—(सूतः, वैदेहकः, चैव) १—सूत, २—वैदेहक (नराधमः, चण्डालः) मनुष्यों में नीच ३—चण्डाल (च) और (मागधः,क्षत्तृजातिः) ४—मागध, ५—क्षत्ता(तथा) तथा (आयोगवः, च) ६—आयोगव, यह छः (एव) निश्चित सङ्कीर्ण योनि हैं ॥

एते पट् सदृशान्वर्णाञ्जनयन्ति स्वयोनिषु ।
मातृजात्यां प्रसूयन्ते प्रवरासु च योनिषु ॥२७॥

पदा०—(एते, पट्) यह छः सूत आदि (स्वयोनिषु) अपने समान वर्ण की योनियों में (सदृशान्, वर्णान्) अपने समान वर्ण वाली ही सन्तान (जनयन्ति) उत्पन्न करते हैं (च) और (प्रवरासु, योनिषु) अपने से श्रेष्ठ योनियों में जो सन्तान उत्पन्न करें वह (मातृजात्यां, प्रसूयन्ते) माता की जाति में ही उत्पन्न समझी जाती है अर्थात् उस सन्तान की वर्णव्यवस्था माता के समान होती है पिता के समान नहीं ॥

यथा त्रयाणां वर्णानां द्वयोरात्मास्य जायते ।
आनन्तर्य्यात्स्वयोन्यां तु तथा बाह्येष्वपि क्रमात् ॥२८॥

पदा०—(यथा) जैसे (त्रयाणां, वर्णानां) तीनों वर्णों में से (द्वयोः) दो वर्णों के संयोग द्वारा (अस्य, आत्मा) इस पुरुष का आत्मा (जायते) उत्पन्न होता है (तु) और (आनन्तर्यात्, स्वयोन्यां) मध्य में व्यवधान न होने से अपनी योनि में ही गिना जाता है (तथा) उसी प्रकार (क्रमात्) क्रम से (बाह्येषु, अपि) इन बाह्य वर्णसङ्करों में भी जानना चाहिये ॥

सं०—अब वर्णसङ्करों से उत्पन्न अन्य सन्तति का वर्णन करते हैं:—

ते चापि बाह्यान्सुबहूंस्ततोऽप्यधिकदूषितान् ।
परस्परस्य दारेषु जनयन्ति विगर्हितान् ॥२९॥

पदा०—(च) और (ते, अपि) वह पूर्वोक्त आयोगवादि (ततः, अपि) उससे भी (अधिकदूषितान्) अत्यन्त दूषित

(विगर्हितान्) निन्दित (वाह्यान्) सत्कर्मों से वहिर्मुख (सुवहून्) वहुत से पुत्रों को (परस्परस्य) आपस की (दारेषु) स्त्रियों में (जनयन्ति) उत्पन्न करते हैं ॥

यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां बाह्यं जन्तुं प्रसूयते ।
तथा बाह्यतरं बाह्यश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते ॥३०॥

पदा०—(यथा, एव) जिस प्रकार (शूद्रः) शूद्र (ब्राह्मण्यां) ब्राह्मणी में (वाह्यं) सम्पूर्ण शुभकर्मों से हीन चण्डालरूप (जन्तुं) सन्तति को (प्रसूयते) उत्पन्न करता है (तथा) उसी प्रकार (वाह्यः) वह अधम चाण्डाल आदि (चातुर्वर्ण्ये) चारो वर्णों में (वाह्यतरं) उन से अत्यन्त नीचों को (प्रसूयते) उत्पन्न करते हैं॥

प्रतिकूलं वर्त्तमाना बाह्या बाह्यतरान्पुनः ।
हीनाहीनान्प्रसूयन्ते वर्णान्पञ्चदशैव तु ॥ ३१ ॥

पदा०—(तु) और (प्रतिकूलं, वर्त्तमानाः) वेदविरुद्ध आचरण करने वाले (वाह्याः, हीनाः) अधम चण्डालादि तीन (पुनः) फिर (वाह्यतरान्, हीनान्) अतिनिकृष्ट नीच (पञ्चदश, एव, वर्णान्) पन्द्रह वर्णों को (प्रसूयन्ते) उत्पन्न करते हैं, अर्थात चार वर्णों की स्त्रियों में तीन अधमों के तीन तीन, ऐसे वारह निकृष्ट सन्तान और उनके तीन पिता अधम,एवं पन्द्रह अधम उत्पन्न होते हैं॥

प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दासजीवनम् ।
सैरिन्ध्रं वागुरावृत्तिं सूते दस्युरयोगवे ॥३२॥

पदा०—(प्रसाधनोपचारज्ञं) वालों को कंघी आदि से

साफ करना, चरणों का धोना, स्नानादि कराना तथा अङ्गों का दबाना आदि जानने वाले (अदासं) दास से भिन्न (दासजीवनं) सेवा द्वारा जीविका करने तथा (वागुरावृत्तिं) जाल में मृगादि को फांसकर उपजीवन करने वाले (सैरिन्ध्रं) "सैरिन्ध्र" को (दस्युः) दस्यु (अयोगवे) "अयोगवी" स्त्री में (सूते) उत्पन्न करता है ॥

मैत्रेयकं तु वैदेहो माधूकं संप्रसूयते ।
नॄन्प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टाताडोऽरुणोदये ॥३३॥

पदा०-(तु) और (वैदेहः) वैदेह * आयोगव की कन्या में (माधूकं) मधुरभाषी (मैत्रेयकं) मैत्रेयक को (संप्रसूयते) उत्पन्न करता है (यः) जो (अरुणोदये, घण्टाताडः) प्रातःकाल घण्टा बजाकर (अस्रजं) निरन्तर (नॄन्) राजा आदिकों की (प्रशंसति) स्तुति करता है ॥

निषादो मार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविनम् ।
कैवर्त्तमिति यं प्राहुरार्यावर्त्तनिवासिनः ॥३४॥

पदा०-(निषादः) निषाद † आयोगवी कन्या में (दासं) दास नामक (नौकर्मजीविनं) नौका चलाने आदि कर्म से जीविका करने वाले (मार्गवं) "मार्गव" को (सूते) उत्पन्न करता है (यं) जिसको (आर्यावर्त्तनिवासिनः) आर्यावर्त्त देश निवासी (कैवर्त्त, इति, प्राहुः,) "कैवर्त्त" नाम से कहते हैं ॥

---

* वैश्य से ब्राह्मणी में उत्पन्न हुए का नाम "वैदेह" है ॥
† ब्राह्मण से शूद्रा में उत्पन्न हुआ "निषाद" कहाता है ॥

मृतवस्त्रभृत्सु नारीषु गर्हितान्नाशनासु च ।
भवन्त्यायोगवीष्वेते जातिहीनाः पृथक्त्रयः ॥३५॥

पदा०-(जातिहीनाः) जाति से हीन (एते, त्रयः) सैरिन्ध्र, मैत्रेय और मार्गव यह तीनो (मृतवस्त्रभृत्सु) मृतक के वस्त्र धारण करने वाली (च) तथा (गर्हितान्नाशनासु) उच्छिष्ट अन्न को भक्षण करने वाली (आयोगवीषु, नारीषु) आयोगव स्त्रियों में (पृथक्, भवन्ति) अलग २ होते हैं अर्थात् उक्त तीनों मनुष्यों के भेद से यह तीन उत्पन्न होते हैं ॥

कारावरो निषादात्तु चर्मकारः प्रसूयते ।
वैदेहिकादन्ध्रमेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ ॥३६॥

पदा०-(तु) और (निषादात्) निषाद से वैदेही में (कारावरः, चर्मकारः) कारावर नामक चमार (प्रसूयते) उत्पन्न होता है (वैदेहिकात्) वैदेहिक से कारावर निषाद की स्त्री में (बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ) ग्राम से बाहर रहने वाले (अन्ध्रमेदौ) अन्ध्र और मेद नामक उत्पन्न होते हैं ॥

चण्डालात्पाण्डुसोपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान् ।
आहिण्डिको निषादेन वैदेह्यामेव जायते ॥ ३७ ॥

पदा०-(चण्डालात्) चण्डाल से वैदेही में (त्वक्सार-व्यवहारवान्) बासों के व्यवहार से जीविका करने वाला (पाण्डुसोपाकः) पाण्डुसोपाक (जायते) उत्पन्न होता और (वैदेह्यां, एव) वैदेही में ही (निषादेन) निषाद से (आहिंडिकः) आहिंडक * उत्पन्न होता है ॥

* बंधनस्थान=जेलखाने के बाहर जो पहरा देते हैं उनको "आहिं-डक" कहते हैं ॥

चण्डालेन तु सोपाको मूलव्यसनवृत्तिमान् ।
पुक्कस्यां जायते पापः सदा सज्जनगर्हितः ॥ ३८ ॥

पदा०—(तु) और (चण्डालेन) चण्डाल से (पुक्कस्यां) पुक्कसी में (मूलव्यसनवृत्तिमान्) राजा की आज्ञा से अपराधियों को फांसी पर चढ़ाने की वृत्ति वाला (पापः) पापात्मा (सदा) निरन्तर (सज्जनगर्हितः) सज्जनों से निन्दित (सोपाकः) " सोपाक " (जायते) उत्पन्न होता है ॥

निषादस्त्री तु चण्डालात्पुत्रमन्त्यावसायिनम् ।
श्मशानगोचरं सूते बाह्यानामपि गर्हितम् ॥ ३९ ॥

पदा०—(तु) और (निषादस्त्री) निषाद की स्त्री (चण्डालात) चण्डाल से (श्मशानगोचरं) श्मशान में बसने वाले (बाह्यानां, अपि, गर्हितं) अधमों में भी निन्दित (अन्त्यावसायिनं) अन्त्यावसायि (पुत्रं) पुत्र को (सूते) उत्पन्न करती है ॥

संकरे जातयस्त्वेताः पितृमातृप्रदर्शिताः ।
प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः॥४०॥

पदा०—(संकरे) वर्णसंकरों में (पितृमातृप्रदर्शिताः) पिता वा माता के भेद से दिखाई हुईं (एताः, जातयः) यह जातियां (प्रच्छन्नाः, वा, प्रकाशाः, वा) छिपी वा प्रकट हुईं (स्वकर्मभिः) अपने २ कर्मों से (वेदितव्याः) जाननी चाहियें ॥

सं०—अब यज्ञोपवीत के अधिकारियों का वर्णन करते हैं:—

सजातिजानन्तरजाः षट्सुता द्विजधर्मिणः ।
शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः ॥४१॥

पदा०-(सजातिजानन्तरजाः) द्विजातियों के समान जाति वाले तथा अनन्तर वर्णों की स्त्रियों में उत्पन्न हुए (षट्सुताः) छः पुत्र (द्विजधर्मिणः) द्विजधर्म=यज्ञोपवीतादि संस्कार योग्य हैं (तु) और (शूद्राणां) शूद्रों के (सर्वे) सम्पूर्ण (सधर्माणः) सजातीय सूत आदि (अपध्वंसजाः) यज्ञोपवीत के अयोग्य (स्मृताः) कथन किये हैं ॥

भाष्य-द्विजातियों के समान जाति वाले तीन पुत्र अर्थात् ब्राह्मण ब्राह्मणी से, क्षत्रिय क्षत्रिया से, वैश्य, वैश्या से इस क्रम से तीन और आनुलोम्य से तीन अर्थात् ब्राह्मण से क्षत्रिया तथा वैश्या में और क्षत्रिय से वैश्या में, यह तीन, इस प्रकार यह छ पुत्र द्विजधर्मी हैं और सूतादि सब प्रतिलोमज शूद्रों के समान कथन किये गये हैं ॥

तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे ।
उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विहजन्मतः ॥ ४२ ॥

पदा०-(तु) और (ते) वह पूर्वोक्त छः पुत्र (तपोबीजप्रभावैः) तप और वीर्य्य के प्रभाव से (मनुष्येषु) मनुष्य में (इह, जन्मतः) इस जन्म में (उत्कर्ष, च, अपकर्ष) उच्चता और नीचता को (युगे, युगे) युग २ में (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं, जैसे तप प्रभाव से विश्वामित्र और वीर्य्यप्रभाव से ऋष्यशृंग उच्च पद को प्राप्त हुए हैं॥

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥ ४३ ॥

पदा०-(तु) निश्चयकरके (इमाः) यह (क्षत्रियजातयः) क्षत्रियजातियें (क्रियालोपात्) अपने कर्मों के त्याग से (च)

और (ब्राह्मणादर्शनेन) यज्ञ, अध्यापन तथा प्रायश्चित्तादि के निमित्त ब्राह्मणों के न मिलने से (लोके) लोक में (शनकैः) धीरे २ (वृषलत्वं) शूद्रता को (गताः) प्राप्त होगई, जैसाकि :—

पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः ।
पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ॥४४॥

पदा०—(पौण्ड्रकाः) पौण्ड्रक (औड्रद्रविडाः) औड्र, द्रविड़ (काम्बोजाः) काम्बोज (यवनाः) यवन (शकाः) शक (पारदाः) पारद (पह्लवाः) पह्लव (चीनाः) चीनी (किराताः) किरात (दरदाः) दरद (च) और (खशाः) खश, यह जातियें शूद्रत्व को प्राप्त होगईं और कितने ही म्लेच्छ होगये जिनसे ब्राह्मणों का सम्बन्ध न रहा ॥

मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः ।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥४५॥

पदा०—(लोके) संसार में (मुखबाहूरुपज्जानां) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन वर्णों से (याः) जो (बहिः, जातयः) पृथक् जाति हैं अर्थात् कर्मों के लुप्त होजाने से जो अधम जातियें हैं (ते, सर्वे) वह सब (म्लेच्छवाचः) म्लेच्छ भाषा (च) अथवा (आर्यवाचः) आर्य्यभाषा बोलने वाली होने पर भी (दस्यवः) दस्यु (स्मृताः) कही गई हैं ॥

ये द्विजानामपसदा ये चापध्वंसजाः स्मृताः ।
ते निन्दितैर्वर्त्तयेयुर्द्विजानामेव कर्मभिः ॥ ४६ ॥

पदा०—(ये) जो (द्विजानां) पूर्व द्विजों के अनुलोम से

(अपसदाः) अपसद (च) और प्रतिलोम से (अपध्वंसजाः) अपध्वंसज (स्मृताः) कहे हैं (ते) वह (द्विजानां, एव) द्विजों के ही (निन्दितैः) निन्दित (कर्मभिः) कर्मों से (वर्त्तयेयुः) आजीवन करें ॥

सं०—अब द्विजों से भिन्न जातियों के कर्म कथन करते हैं:—

सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सनम् ।
वैदेहकानां स्त्रीकार्यं मागधानां वणिक्पथः ॥४७॥

पदा०—(सूतानां, अश्वसारथ्यं) सूतों का कर्म घोड़ों का सारथि होना (अम्बष्ठानां, चिकित्सनं) अम्बष्ठों का चिकित्सा करना (वैदेहकानां, स्त्रीकार्यं) वैदेहों का अन्तःपुर सम्बन्धि काम और (मागधानां, वणिक्पथः) मागधों का कर्म व्यापार करना है॥

मत्स्यघातो निषादानां त्वष्टिस्त्वायोगवस्य च ।
मेदान्ध्रचुञ्चुमद्गूनामारण्यपशुहिंसनम् ॥ ४८

पदा०—(निषादानां, मत्स्यघातः) निषादों का कर्म मच्छ मारना (आयोगवस्य, त्वष्टिः) आयोगव का कर्म लकड़ी तोड़ना, छीलना आदि (मेदांध्रचुंचुमद्गूनां) मेद, अन्ध्र, चुंचु तथा मद्गु इनका कर्म=पेशा (आरण्यपशुहिंसनं) जंगली पशुओं को मारना है॥

क्षत्तुग्रपुकसानां तु बिलौकोवधबन्धनम् ।
धिग्वणानां चर्मकार्यं वेणानां भाण्डवादनम् ॥४९॥

पदा०—(क्षत्तुग्रपुकसानां) क्षत्ता, उग्र, पुक्कस इनका कर्म (बिलौकोवधबन्धनं) बिल में रहने वाले जानवरों को मारना तथा बांधना (धिग्वणानां) धिग्वणों का कर्म (चर्मकार्यं) चमड़े

का काम करना (तु) और (वेणानां, भाण्डवादनं) वेणों का काम बाजा बजाना है ॥

चैत्यद्रुमश्मशानेषु शैलेषूपवनेषु च ।
वसेयुरेते विज्ञाना वर्त्तयन्तः स्वकर्मभिः ॥५०॥

पदा०–(स्वकर्मभिः) अपने २ कर्मों से (वर्त्तयन्तः) उपजीविका करते हुए (विज्ञानाः, एते) उपरोक्त यह सब (चैत्यद्रुमश्मशानेषु) बड़े २ वृक्षों के नीचे वा श्मशान में (शैलेषु) पर्वतों में (च) और (उपवनेषु) बागों में (वसेयुः) निवास करें ॥

सं०–अब चण्डाल और श्वपचों का लक्षण कथन करते हैं:–

चण्डालश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः ।
अपपात्राश्च कर्त्तव्या धनमेषां श्वगर्दभम् ॥५१॥
वासांसि मृतचैलानि भिन्नभाण्डेषु भोजनम् ।
कार्ष्णायसमलंकारः परिव्रज्या च नित्यशः॥५२॥

पदा०–(चण्डालश्वपचानां, तु) चण्डाल और श्वपचों का निवास (ग्रामात्, बहिः,प्रतिश्रयः) ग्राम से बाहर हो (च) और यह (अपपात्राः, कर्त्तव्याः) निषिद्धपात्र वाले हों (एषां) इनका (धनं) धन (श्वगर्दभं) कुत्ता और गधा है (वासांसि,मृतचैलानि) इनके कपड़े मुरदे के वस्त्र वा पुराने चिथड़े हों (भिन्नभाण्डेषु, भोजनं) फूटे बरतनों में भोजन करें (अलंकारः, कार्ष्णायसं) इनके आभूषण लोहे के (च) और (नित्यशः, परिव्रज्या) नित्य भ्रमण करना इनका कर्म होता है ॥

न तैः समयमन्विच्छेत्पुरुषो धर्ममाचरन् ।
व्यवहारो मिथस्तेषां विवाहः सदृशैः सह ॥५३॥

पदा०—(धर्म,आचरन्) धर्म का आचरण करता हुआ(पुरुषः) पुरुष (तैः) इनके साथ (समयं,न,अन्विच्छेत्) सम्भाषण न करे (तेषां) उनका (व्यवहारः) व्यवहार तथा (विवाहः) विवाह (मिथः, सदृशैः,सह) आपस में बराबर वालों के साथ होता है ॥

अन्नमेषां पराधीनं देयं स्याद्भिन्नभाजने ।
रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च ॥५४॥

पदा०—(एषां) इनको (भिन्नभाजने) खपरे आदि में रख कर (पराधीनं, अन्नं, देयं, स्यात्) पराधीन अन्न देना होता है (ते) वह (ग्रामेषु, नगरेषु, च) ग्राम और नगर में (रात्रौ) रात्रि के समय (न, विचरेयुः) न फिरें ॥

दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिन्हिता राजशासनैः ।
अबान्धवं शवं चैव निर्हरेयुरिति स्थितिः ॥५५॥

पदा०—(राजशासनैः) वह राजा की आज्ञा से ग्राम तथा नगर में (चिन्हिताः) चिन्हों को धारण करके (कार्यार्थं,दिवा, चरेयुः) कार्यार्थ दिन में विचरें (च) और (अबान्धवं, शवं, निर्हरेयुः) जिसके कोई बन्धु न हो ऐसे मृतक को श्मशान में लेजावें (इति, स्थितिः) यह इनके लिये शास्त्र की आज्ञा है ॥

वध्यांश्च हन्युः सततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया ।
वध्यवासांसि गृह्णीयुः शय्याश्चाभरणानि च ॥५६॥

पदा०-(यथाशास्त्रं) शास्त्रानुसार (नृपाज्ञया) राजा की आज्ञा से (वध्यान्,सततं,हन्युः)फांसी के योग्य पुरुषों को निरन्तर फांसी देवें (च) और (वध्यवासांसि) उस मरे हुए के वस्त्र (शय्याः,च, आभरणानि) शय्या तथा आभरणों को (गृह्णीयुः) ग्रहण करें ॥

सं०-अब वर्णसङ्करों की परीक्षा कथन करते हैं:—

वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् ।
आर्यरूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत्॥५७॥

पदा०-(वर्णापेतं) वर्ण से पतित (अविज्ञातं) न जाने हुए (कलुषयोनिजं) नीच योनि से उत्पन्न (आर्यरूपं, इव) श्रेष्ठों के समान रूप वाले (अनार्यं) अनार्य (नरं) पुरुष को (स्वैः, कर्मभिः, विभावयेत्) उसके कर्मों से निश्चय करे ॥

अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता ।
पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥५८॥

पदा०-(इह, लोके) इस लोक में (कलुषयोनिजं) संकर जाति में उत्पन्न हुए (पुरुषं) पुरुष को (अनार्यता) असभ्यता (निष्ठुरता) कठोरता (क्रूरता) क्रूरता (निष्क्रियात्मता) कर्मानुष्ठान से रहित होना, यह लक्षण (व्यंजयन्ति) प्रकट करते हैं ॥

पित्र्यं वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेव वा ।
न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां नियच्छति ॥५९॥

पदा०-(दुर्योनिः) वर्णसङ्कर से उत्पन्न हुआ पुरुष (पित्र्यं, शीलं) पिता के शील (वा) वा (मातुः) माता का

स्वभाव (वा) अथवा (उभयं, एव) दोनों के ही स्वभाव को (भजते) सेवन करता है (कथंचन) किसी प्रकार भी (स्वां, प्रकृतिं) अपनी प्रकृति को (न, निगच्छति) छिपा नहीं सक्ता॥

कुले मुख्येऽपि जातस्य यस्य स्याद्योनिसंकरः ।
संश्रयत्येव तच्छीलं नरोऽल्पमपि वा वहु ॥६०॥

पदा०—(मुख्ये, कुले, अपि, जातस्य) प्रधान कुल में उत्पन्न होने पर भी (यस्य) जिसका (योनिसंकरः, स्यात्) संकरवर्ण हो (नरः) वह मनुष्य (अल्पं, अपि,वा, बहु) थोड़ा अथवा बहुत (तच्छीलं) उसके स्वभाव को (संश्रयति,एव) आश्रय करता ही है अर्थात् अपने उत्पन्न करने वाले के स्वभाव को यत्किञ्चित् अवश्य प्राप्त होता है ॥

यत्र त्वेते परिध्वंसा जायन्ते वर्णदूषकाः ।
राष्ट्रिकैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति ॥६१॥

पदा०—(तु) और (यत्र) जिस राज्य में (एते, वर्णदूषकाः) यह वर्णसंकर (परिध्वंसात्,जायन्ते) अधिकता से उत्पन्न होते हैं (तत्,राष्ट्रं) वह राज्य (राष्ट्रिकैः, सह) राजनिवासियों सहित (क्षिप्रं, एव, विनश्यति) शीघ्र ही नाश को प्राप्त होजाता है ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽनुपस्कृतः ।
स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम् ॥६२॥

पदा०—(ब्राह्मणार्थे, गवार्थे) ब्राह्मण, गाय (स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ, च) स्त्री और बालक इनकी रक्षा के निमित्त

(अनुपस्कृतः) दुष्ट प्रयोजन से रहित होकर (बाह्यानां, देहत्यागः) प्रतिलोमजों को देहत्याग (सिद्धिकारणं) उच्चता का हेतु होता है॥

सं०—अब संक्षेप से चारो वर्णों का धर्म कथन करते हैं:—

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥६३॥

पदा०—(अहिंसा) हिंसा न करना (सत्यं) सत्यभाषण (अस्तेयं) दूसरे का धन स्वामी की विना आज्ञा हरण न करना (शौचं) पवित्र रहना (इन्द्रियनिग्रहः) इन्द्रियों का निग्रह करना (एतं) यह (सामासिकं) संक्षेप से (चातुर्वर्ण्ये, धर्मं) चारो वर्णों का धर्म (मनुः, अब्रवीत्) मुझ मनु ने कथन किया है ॥

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥६४॥

पदा०—(शूद्रः, ब्राह्मणतां, एति) शूद्र ब्राह्मणता को प्राप्त होता (च) तथा (ब्राह्मणः, शूद्रतां, एति) ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त होजाता है (क्षत्रियात्,जातं,एवं,तु) क्षत्रिय से उत्पन्न हुआ भी इसीप्रकार होता (च) और (तथा, वैश्यात्,एव, विद्यात्) ऐसे ही वैश्य से उत्पन्न हुआ भी अन्य वर्ण को प्राप्त होता जानना चाहिये॥

अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यदृच्छया ।
ब्राह्मण्यामप्यनार्यात्तु श्रेयस्त्वं क्वेति चेद्भवेत् ॥६५॥

पदा०—(यदृच्छया) जो सन्तान इच्छापूर्वक (ब्राह्मणात्) ब्राह्मण से (अनार्यायां) शूद्रा में (तु) और जो (अनार्यात्) शूद्र से (ब्राह्मण्यां) ब्राह्मणी में (समुत्पन्नः) उत्पन्न हो तो

इन दोनों के मध्य (श्रेयस्त्वं, क) अच्छापन किसमें है ? (इति, चेत्) यदि यह संशय (भवेत्) होतो, उत्तर यह है कि :—

जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद्गुणैः।
जातोऽप्यनार्यादार्यायामनार्य इति निश्चयः ॥६६॥

पदा०—(अनार्यायां, नार्यां) अनार्या स्त्री में (आर्यात्, जातः) आर्य्य पुरुष से उत्पन्न हुआ (गुणैः) गुणों से (आर्यः, भवेत्) आर्य्य होसक्ता है, और (आर्यायां) ब्राह्मणी में (अनार्यात्) शूद्र से (जातः, अपि) उत्पन्न हुआ भी (अनार्यः) शूद्र होना सम्भव है (इति, निश्चयः) यह निश्चय है॥

तावुभावप्यसंस्कार्याविति धर्मो व्यवस्थितः।
वैगुण्याज्जन्मनः पूर्व उत्तरः प्रतिलोमतः ॥६७॥

पदा०—(पूर्वः) पहला (जन्मतः, वैगुण्यात्) शूद्रा से उत्पन्न होने रूप जाति की विगुणता से (उत्तरः) दूसरा (प्रतिलोमतः) प्रतिलोम से उत्पन्न होने के कारण (तौ, उभौ, अपि) यह दोनों ही (असंस्कार्यौ) उपनयन के अयोग्य हैं (इति, धर्मः, व्यवस्थितः) यह धर्मव्यवस्था है॥

सुबीजं चैव सुक्षेत्रे जातं संपद्यते यथा।
तथाऽर्याज्जात आर्यायां सर्वं संस्कारमर्हति ॥६८॥

पदा०—(यथा) जैसे (सुक्षेत्रे,जातं,सुबीजं,संपद्यते) उत्तम क्षेत्र में बोया हुआ अच्छा बीज समृद्धि को प्राप्त होता है (तथा) इसी प्रकार (आर्यायां) आर्या स्त्री में (आर्यात्,जातः) आर्य्य से उत्पन्न हुआ (सर्वं, संस्कारं, अर्हति) उपनयनादि सम्पूर्ण संस्कारों के योग्य होता है॥

सं०—अब उक्त विषय में अन्य मत कथन करते हैं:—

बीजमेके प्रशंसन्ति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः ।
बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रेयं तु व्यवस्थितिः ॥६९॥

पदा०—(एके, बीजं) कोई एक बीज को (अन्ये) दूसरे (मनीषिणः,क्षेत्रं)मननशील पुरुष क्षेत्र को (तथैव)इसीप्रकार(अन्ये) अन्य कोई (बीजक्षेत्रे) बीज तथा क्षेत्र दोनों को (प्रशंसन्ति) प्रशंसनीय कहते हैं (तत्र) वहां (इयं,व्यवस्थितिः) यह व्यवस्था जाननी चाहिये कि:—

अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टमन्तरेव विनश्यति ।
अबीजकमपि क्षेत्रं केवलं स्थण्डिलं भवेत् ॥७०॥

पदा०—(अक्षेत्रे, उत्सृष्टं, बीजं) ऊषर भूमि में बोया हुआ बीज (अन्तः, एव, विनश्यति) भीतर ही नाश को प्राप्त होजाता है, और (अबीजकं, क्षेत्रं, अपि) बीजरहित अच्छा खेत भी (केवलं, स्थण्डिलं, भवेत) केवल स्थण्डिल=चौंतरा ही होता है, इसलिये एक दूसरे की अपेक्षा दोनों ही मुख्य हैं ॥

अनार्यमार्यकर्माणमार्यं चानार्यकर्मिणम् ।
संप्रधार्याब्रवीद्धाता न समौ नासमाविति ॥ ७१ ॥

पदा०—(आर्यकर्माणं) द्विजों के कर्म करने वाले (अनार्यं) शूद्रों को (च) और (अनार्यकर्मिणं) शूद्रों के कर्म करने वाले (आर्यं) द्विजों को (धाता) ब्रह्मा ने (संप्रधार्य) विचारकर (इति, अब्रवीत) यह कहा कि(न, समौ)न यह दोनों सम हैं और (न,असमौ) न असम हैं, अर्थात केवल कर्ममात्र से कोई व्यवस्था

नहीं दीजासक्ती किन्तु गुण, कर्मादि सबों पर दृष्टि डाल कर शूद्र तथा द्विज की व्यवस्था देनी चाहिये, यह आशय है ॥

सं०—अब ब्राह्मण का कर्तव्य कथन करते हैं :—

ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ये स्वकर्मण्यवस्थिताः ।
ते सम्यगुपजीवेयुः षट् कर्माणि यथाक्रमम् ॥७२॥

पदा०—(ब्रह्मयोनिस्थाः) ब्रह्मज्ञान में तत्पर हुए (स्वकर्मणि, अवस्थिताः) अपने कर्मों में स्थित (ये, ब्राह्मणाः) जो ब्राह्मण हैं (ते) वह (षट्, कर्माणि) छः कर्मों को (यथाक्रमं) क्रमानुसार करते हुए (सम्यक्, उपजीवेयुः) भलेप्रकार उपजीविका करें॥

सं०—अब ब्राह्मण के कर्म कथन करते हैं :—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव षट् कर्माण्यग्रजन्मनः ॥ ७३ ॥

पदा०—(अध्यापनं) साङ्गोपाङ्ग वेदों का पढ़ाना (अध्ययनं) पढ़ना (यजनं) यज्ञ करना (याजनं) यज्ञ कराना (तथा) तथा (दानं) दान देना (च) और (प्रतिग्रहः) दान लेना, यह (षट्) छः (अग्रजन्मनः) ब्राह्मण के (कर्माणि) कर्म हैं ॥

षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका ।
याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ॥७४॥

पदा०—(तु) और (षण्णां, कर्मणां) उक्त छः कर्मों के मध्य (अस्य) ब्राह्मण के (याजनाध्यापने) यज्ञ कराना, पढ़ाना (च) और (विशुद्धात्, प्रतिग्रहः) द्विजों से दान लेना (त्रीणि, कर्माणि) यह तीन कर्म (जीविका) उपजीविकार्थ हैं ॥

त्रयो धर्मा निवर्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति ।
अध्यापनं याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः ॥७५॥

पदा०—(ब्राह्मणात्, क्षत्रियं, प्रति) ब्राह्मण की अपेक्षा क्षत्रिय के प्रति (अध्यापनं) पढ़ाना (याजनं) यज्ञ कराना (च) और (तृतीयः, प्रतिग्रहः) तीसरा दान लेना (एते, त्रयः, धर्माः) यह तीन धर्म (निवर्तन्ते) छूट जाते हैं,अर्थात् क्षत्रिय इनको न करे॥

वैश्यं प्रति तथैवैते निवर्तेरन्निति स्थितिः ।
न तौ प्रति हि तान्धर्मान्मनुराह प्रजापतिः ॥७६॥

पदा०—(तथैव) इसी प्रकार (वैश्यं, प्रति) वैश्य के लिये भी (एते) पूर्वोक्त तीनो धर्म (निवर्तेरन्) छूट जाते हैं अर्थात् वैश्य इनको न करे (इति) यह (स्थितिः) शास्त्रमर्यादा है (हि) क्योंकि (तौ, प्रति) क्षत्रिय तथा वैश्य के लिये (तान्, धर्मान्) उन धर्मों को (प्रजापतिः, मनुः, न, आह) प्रजापति मनु ने नहीं कहा, और :—

शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृषिर्विशः ।
आजीवनार्थं धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः ॥७७॥

पदा०—(क्षत्रस्य) क्षत्रियों का (शस्त्रास्त्रभृत्त्वं) शस्त्र, अस्त्र धारण करना (विशः) वैश्य का (वणिक्, पशुकृषिः) व्यापार, गाय बैल आदि पशुओं का रखना और खेती करना, यह कर्म दोनों की (आजीवनार्थं) उपजीविकार्थ कहे हैं (तु) और (दानं, अध्ययनं, यजिः) दान देना, पढ़ना तथा यज्ञ करना, यह दोनों के समान (धर्मः) धर्म हैं ॥

वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम् ।
वार्ता कर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥७८॥

पदा०—(ब्राह्मणस्य, वेदाभ्यासः) ब्राह्मण का वेद पढ़ना (च) तथा (क्षत्रियस्य, रक्षणं) क्षत्रिय का रक्षा करना, और (वैश्यस्य) वैश्य का (वार्ता, कर्म, एव) वाणिज्य कर्म करना ही (स्वकर्मसु) अपने २ कर्मों में (विशिष्टानि) श्रेष्ठ है ॥

सं०—अब आपत्काल का वर्णन करते हैं :—

अजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा ।
जीवेत्क्षत्रियधर्मेण स ह्यस्य प्रत्यनन्तरः ॥७९॥

पदा०—(तु) और (यथोक्तेन) शास्त्र में वर्णन किये अनुसार (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (स्वेन, कर्मणा, अजीवन्) अपने कर्म से आजीवन करता हुआ "आपत्काल में" (क्षत्रिय-धर्मेण, जीवेत) क्षत्रिय के धर्म से भी उपजीविका करे (हि) क्योंकि (सः) वह (अस्य) इसके (प्रत्यनन्तरः) समीप है ॥

उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत् ।
कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम्॥८०॥

पदा०—(चेत) यदि (उभाभ्यां) ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों की उपजीविकाओं से (अपि) भी (अजीवन्, स्यात) पूर्ण जीविका न हो तो (कथं, इति, भवेत) इसका कैसे जीवन निर्वाह हो ? (कृषिगोरक्षं) कृषि तथा गोओं की रक्षारूप (वैश्यस्य) वैश्य की (जीविकां) आजीविका को (आस्थाय) आश्रय करके (जीवेत) जीविका करे ॥

वैश्यवृत्त्यापि जीवंस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा ।
हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् ॥८१॥

पदा०—(वैश्यवृत्त्या, अपि) वैश्यवृत्ति से भी (जीवन्) आजीविका करता हुआ (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (वा) अथवा (क्षत्रियः, अपि) क्षत्रिय भी (हिंसाप्रायां) हिंसा वाली (पराधीनां) पराधीन (कृषिं) खेती को (यत्नेन, वर्जयेत) यत्न से छोड़ देवे अर्थात् पशु पालनादि वैश्य के अन्य कर्मों से उपजीविका करे ॥

कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता ।
भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम् ॥८२॥

पदा०—(कृषिं, साध्विति, मन्यन्ते) "कृषि श्रेष्ठ है" ऐसा कोई एक मानते हैं, परन्तु (सा, वृत्तिः) वह खेती की आजीविका (सद्विगर्हिता) साधु पुरुषों से निन्दित है, क्योंकि (अयोमुखं) लोहे के मुख वाला (काष्ठं) हल तथा कुदालादि (भूमिं) भूमि (च) और (भूमिशयान्, एव) भूमि में रहने वाले जीवों का भी (हन्ति) नाश करते हैं ॥

जीवेदेतेन राजन्यः सर्वेणाप्यनयं गतः ।
न त्वेव ज्यायसीं वृत्तिमभिमन्येत कर्हिचित् ॥८३॥

पदा०—(अनयं, गतः, राजन्यः) विपत्ति को प्राप्त हुआ क्षत्रिय (अपि) भी (एतेन, सर्वेण, जीवेत) इन सब विधियों से उपजीविका करे, "जैसाकि ब्राह्मण के लिये विधान कर आये

हैं अर्थात् वैश्यवृत्ति से निर्वाह करले" परन्तु (ज्यायसीं, वृत्तिं) ब्राह्मण वृत्ति की (कर्हिचित्) कदापि (न, अभिमन्येत) इच्छा न करे ॥

यो लोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः ।
तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥८४॥

पदा०-(यः) जो (जात्या, अधमः) निकृष्ट जाति से उत्पन्न हुआ (लोभात्) लोभवशात् (उत्कृष्टकर्मभिः, जीवेत्) उच्च वर्ण की वृत्ति करे (तं, राजा) उसको राजा (निर्धनं, कृत्वा) निर्धन करके (क्षिप्रं, एव) शीघ्र ही (प्रवासयेत्) देश से निकाल देवे ॥

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः ।
परधर्मेण जीवन् हि सद्यः पतति जातितः ॥८५॥

पदा०-(स्वधर्मः, विगुणः, वरं) अपना धर्म=काम विगुण=चाहे छोटा ही हो वह भी श्रेष्ठ है (पारक्यः) दूसरे का काम (स्वनुष्ठितः) भलेप्रकार अनुष्ठान किया हुआ भी (न) श्रेष्ठ नहीं (हि) क्योंकि (परधर्मेण, जीवन्) दूसरे के काम=पेशे से आजीविका करता हुआ पुरुष (सद्यः,जातितः, पतति) शीघ्र ही अपनी जाति से पतित होजाता है ॥

वैश्योऽजीवन्स्वधर्मेण शूद्रवृत्त्यापि वर्तयेत् ।
अनाचरन्नकार्याणि निवर्त्तेत च शक्तिमान् ॥८६॥

पदा०-(वैश्यः) वैश्य (स्वधर्मेण, अजीवन्) अपनी वृत्ति से आजीविका न करता हुआ (शूद्रवृत्त्या, अपि,वर्तयेत्)

शूद्र की वृत्ति से भी जीविका करले, परन्तु (अकार्याणि, अनाचरन्) निषिद्ध कर्मों का आचरण न करे (च) और यदि (शक्तिमान्) समर्थ हो तो (निवर्त्तेत) सर्वथा ही शूद्र की वृत्ति से बचकर अपने ही किसी कर्म से उपजीविका करले परन्तु ब्राह्मण तथा क्षत्रिय की वृत्ति का आचरण न करे ॥

अशक्नुवंस्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्त्तुं द्विजन्मनाम् ।
पुत्रदारात्ययं प्राप्तो जीवेत्कारुककर्मभिः ॥ ८७ ॥

पदा०-(द्विजन्मनां, शुश्रूषां, कर्त्तुं, अशक्नुवन्, शूद्रः) द्विजों की सेवा करने में असमर्थ हुआ शूद्र (पुत्रदारात्ययं, प्राप्तः) पुत्र, कलत्र सहित अन्न के कष्ट को प्राप्त (कारुक, कर्मभिः, जीवेत्) कारुक कर्म से उपजीविका करे ॥

सं०-अब "कारुक" कर्म का वर्णन करते हैं:—

यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यन्ते द्विजातयः ।
तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च ॥ ८८ ॥

पदा०-(यैः, प्रचरितैः, कर्मभिः, द्विजातयः, शुश्रूष्यन्ते) जिन प्रचलित कर्मों से द्विजों की सेवा करते हैं (तानि) उनको (च) और (विविधानि, शिल्पानि) नाना प्रकार के शिल्पादिकों को भी (कारुक, कर्माणि) "कारुक" कर्म कहते हैं अर्थात् चित्र लेखनादि वा लकड़ी का कोई काम करके उपजीविका करे ॥

प्रतिग्रहाद्याजनाद्वा तथैवाध्यापनादपि ।
प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य विप्रस्य गर्हितः ॥ ८९ ॥

याजनाध्यापने नित्यं क्रियेते संस्कृतात्मनाम् ।
प्रतिग्रहस्तु क्रियते शूद्रादप्यन्त्यजन्मनः ॥९०॥

पदा०-(प्रतिग्रहात्, याजनात्, वा, तथैव, अध्यापनात्, अपि) प्रतिग्रह से, यज्ञ कराने से अथवा इसी प्रकार अध्यापन से भी निकृष्ट (प्रतिग्रहः) दान लेना (विप्रस्य) ब्राह्मण को (गर्हितः) निन्दित और (प्रेत्य, गर्ह्यतरः) परलोक में अत्यन्त दुःखदायक है, क्योंकि (याजनाध्यापने) यज्ञ कराना तथा वेद पढ़ाना तो (नित्यं,संस्कृतात्मनां,क्रियते) नित्य उपनयनादि संस्कार वाले द्विजों के ही होता है, परन्तु (प्रतिग्रहः, तु) दान तो (अन्त्यजन्मनः, शूद्रात्, अपि, क्रियेते) अन्त्य जन्म वाले=नीच जाति शूद्र से भी किया जाता है, इसलिये जबतक याजनाध्यापन से निर्वाह हो जबतक निन्दित दान न ले ॥

जपहोमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम् ।
प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्यागेन तपसैव च ॥ ९१ ॥

पदा०-(याजनाध्यापनैः) ब्राह्मण का निन्दित याजन तथा पढ़ाने से (कृतं, एनः) किया हुआ पाप (जपहोमैः) जप तथा होमों से (अपैति) नाश होता है (तु) और (प्रतिग्रहनिमित्तं) दान से उत्पन्न हुआ पाप (त्यागेन) त्याग (च) और (तपसा, एव) तप से ही निवृत्त होता है ॥

शिलोञ्छमप्याददीत विप्रोऽजीवन्यतस्ततः ।
प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयांस्ततोऽप्युञ्छः प्रशस्यते ॥९२॥

पदा०-(अजीवन्) अपनी वृत्ति से जीविका न करसकने वाला (विप्रः) ब्राह्मण (यतः, ततः) जहां तहां से (शिलोञ्छं,

अपि, आददीत) शिला बीनने को भी ग्रहण करे, क्योंकि (प्रतिग्रहात्, शिलः) निन्दित दान से शिला बीनना (श्रेयान्) श्रेष्ठ है (ततः, अपि) शिला बीनने से भी (उञ्छः) एक २ दाणे का बीनना (प्रशस्यते) प्रशंसित मानागया है, अर्थात् उञ्छ के होते हुए निन्दित प्रतिग्रह न ले ॥

सीदद्भिः कुप्यमिच्छद्भिर्धनं वा पृथिवीपतिः ।
याच्यः स्यात्स्नातकैर्विप्रैरदित्संस्त्यागमर्हति ॥ ९३ ॥

पदा०-(सीदद्भिः) अति पीड़ित (कुप्यं, धनं, इच्छद्भिः) कुप्य धन=अन्न वस्त्रादि चाहते हुए (स्नातकैः, विप्रैः) स्नातक ब्राह्मण (पृथिवीपतिः) राजा से (धनं, याच्यः) धन की याचना वाले (स्यात्) हों अर्थात् राजा से मांगें (अदित्सन्) न देता हुआ राजा (त्यागं, अर्हति) त्यागने योग्य होता है अर्थात् जो राजा देना नहीं चाहता उससे मांगना योग्य नहीं ॥

अकृतं च कृतात् क्षेत्राद्गौरजाविकमेव च ।
हिरण्यं धान्यमन्नं च पूर्वं पूर्वमदोषवत् ॥९४॥

पदा०-(कृतात्, क्षेत्रात्) बोये हुए क्षेत्र से (अकृतं) विना बोया खेत (गौः, अजा, अविकं, हिरण्यं) गाय, बकरी, भेड़, सोना (धान्यं) धान्य (च) और (अन्नं) अन्न, इन सब के दान में (पूर्वं,पूर्वं,अदोषवत्) पहला २ विना दोष वाला होता है॥

सप्तवित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः ।
प्रयोग कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥ ९५ ॥

पदा०-(दायः) वंश परम्परा से चले आये हुए धन का दायभाग (लाभः) किसी प्रकार से धन का लाभ होना (क्रयः) किसी पदार्थ को वेचना (जयः) संग्राम में जय करना (प्रयोगः) व्याज वा खेती आदि से बढ़ना (कर्मयोगः) नौकरी करना (च) और (सत्प्रतिग्रहः) सज्जन पुरुषों से दान लेना (धर्म्या, वित्तागमाः, सप्त, एव) धर्म से प्राप्त इन सात प्रकार के धनों का आगम धर्मानुकूल ही है ॥

विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्षं विपणिः कृषिः ।
धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः ॥ ९६ ॥

पदा०-(विद्या) यथार्थ ज्ञान (शिल्पं) कारीगरी (भृतिः) नौकरी (सेवा) सेवा (गोरक्षं) पशुपालन (विपणिः) व्यापार (कृषिः) खेती (धृतिः) धैर्य=सन्तोष (भैक्ष्यं) भिक्षा (च) और (कुसीदं) व्याज (दश, जीवनहेतवः) यह दश जीवन के हेतु हैं अर्थात् आपत्ति काल में इन दशों से जीवननिर्वाह करे ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिं नैव प्रयोजयेत् ।
कामं तु खलु धर्मार्थं दद्यात्पापीयसेऽल्पिकाम् ॥९७॥

पदा०-(तु) और (ब्राह्मणः, वा, क्षत्रियः, अपि) ब्राह्मण वा क्षत्रिय भी (वृद्धिं, नैव, प्रयोजयेत्) व्याज से धन बढ़ाने को न दे (खलु) परन्तु (धर्मार्थं) धर्म निर्वाहार्थ (पापीयसे) नीच को भी (अल्पिकां, कामं, दद्यात्) चाहे तो थोड़ा धन देदे अर्थात् आपत्काल में थोड़ा धन देकर थोड़ी वृद्धि लेलेवे ॥

सं०—अथ राजा का आपद्धर्म कथन करते हैं:—

चतुर्थमाददानोऽपि क्षत्रियो भागमापदि ।
प्रजा रक्षन्परं शक्त्या किल्बिषात्प्रतिमुच्यते ॥९८॥

पदा०—(आपदि) आपत्तिकाल में (चतुर्थं, भागं, आददानः, अपि) धन का चतुर्थ भाग ग्रहण करता हुआ भी (क्षत्रियः) क्षत्रिय (शक्त्या, परं, प्रजाः, रक्षन्) शक्ति से अधिक प्रजा की रक्षा करता हुआ (किल्बिषात्, प्रतिमुच्यते) पाप से छूट जाता है॥

स्वधर्मो विजयस्तस्य नाहवे स्यात्पराङ्मुखः ।
शस्त्रेण वैश्यान् रक्षित्वा धर्म्यमाहारयेद्बलिम् ॥९९॥

पदा०—(तस्य, विजयः, स्वधर्मः) शत्रु का जय करना राजा का स्वधर्म है (आहवे, पराङ्मुखः, न, स्यात्) संग्राम में पराङ्मुख न हो अर्थात् पीठ न दिखावे (शस्त्रेण, वैश्यान्, रक्षित्वा) शस्त्र से वैश्यों की रक्षा करके (धर्म्यं, बलिं, आहारयेत्) उनसे धर्मानुकूल भाग लेवे ॥

सं०—अब राजा का कर लेना कथन करते हैं:—

धान्येऽष्टमं विशां शुल्कं विंशं कार्षापणावरम् ।
कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा ॥१००॥

पदा०—(विशां, धान्ये, अष्टमं) वैश्यों के धान्यलाभ में राजा आठवां भाग ग्रहण करे (कार्षापणावरं, विंशं, शुल्कं) सुवर्णादि के लाभ में से बीसवां भाग कर लेवे (शूद्राः, कारवः, शिल्पिनः, तथा) शूद्र, कारीगर तथा बढ़ई यह (कर्मोपकरणाः) काम कराने योग्य ही होते हैं, इनसे राजा विपत्ति में भी कर न ले॥

भाष्य–पीछे ९८ वें श्लोक में जो चतुर्थभाग कर लेना कथन किया है वह राजा का आपद्धर्म है और यों बारहवां भाग लेना पीछे वर्णन किया गया है, इसी प्रकार इस श्लोक में भी जानना चाहिये, सुवर्णादि का कर भी पीछे ५० वां भाग कहा था, यहां विपत्ति के कारण बीसवां भाग विधान किया है॥

शूद्रस्तु वृत्तिमाकांक्षन् क्षत्रमाराधयेद्यदि।
धनिनं वाप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत्॥१०१॥

पदा०–(शूद्रः, यदि, वृत्तिं, आकांक्षन्) शूद्र यदि जीविका चाहे तो (क्षत्रं, आराधयेत्) क्षत्रिय की सेवा करे (वा) अथवा (शूद्रः) शूद्र (धनिनं, वैश्यं, उपाराध्य) धनी वैश्य की सेवा करके (जिजीविषेत्) अपना निर्वाह करे॥

स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानाराधयेत्तु सः।
जातब्राह्मणशब्दस्य सा ह्यस्य कृतकृत्यता॥१०२॥

पदा०–(तु) और (स्वर्गार्थं, वा, उभयार्थं) स्वर्ग=सद्गति अथवा अपनी वृत्ति की इच्छा वाला (सः) शूद्र (विप्रान्, आराधयेत्) ब्राह्मणों की सेवा करे (हि) क्योंकि (जातब्राह्मणशब्दस्य) "ब्राह्मण का सेवक" इस शब्द के कहने ही से (अस्य) इसकी (सा) वह (कृतकृत्यता) सफलता है, क्योंकिः—

विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते।
यदतोऽन्यद्धि कुरुते तद्भवत्यस्य निष्फलम्॥१०३॥

पदा०–(विप्रसेवा, एव) ब्राह्मण की सेवा ही (शूद्रस्य) शूद्र को (विशिष्टं, कर्म, कीर्त्यते) "अन्य कर्मों से" श्रेष्ठ कर्म

कहा है (हि) इसलिये (अतः, अन्यत्) इससे भिन्न (यत्, कुरुते) जो कुछ करता है (तत्) वह (अस्य) इसका (निष्फलं, भवति) निष्फल होता है ॥

प्रकल्प्या तस्य तैर्वृत्तिः स्वकुटुम्बाद्यथार्हतः ।
शक्तिं चावेक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परिग्रहम्॥१०४॥

पदा०—(तैः) उन द्विजों को (तस्य) उस शूद्र की (शक्तिं) सामर्थ्य (दाक्ष्यं) उसका उत्साह (च) और (भृत्यानां, परिग्रहं) नौकरों के परिश्रम को (अवेक्ष्य) देख कर (स्वकुटुम्बात्) अपने घर के अनुसार (यथार्हतः) यथा योग्य (वृत्तिः) आजीविका (प्रकल्प्या) कल्पना करनी चाहिये अर्थात् उस शूद्र के पोष्यवर्ग का व्यय देखकर द्विज उसकी जीविका नियत करें जिसमें उसको और उसके कुटुम्ब को कष्ट न हो ॥

उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च ।
पुलाकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिच्छदाः॥१०५॥

पदा०—(उच्छिष्टं, अन्नं) भोजन से बचा हुआ अन्न (जीर्णानि, वसनानि) पुराने वस्त्र (धान्यानां, पुलाकाः) अन्नों का छांटन (च) और (जीर्णाः, परिच्छदाः) पुराने बरतन आदि (एव) निश्चयकरके उस शूद्र को (दातव्यो) देने चाहियें ॥

न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति ।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम्॥१०६॥

पदा०—(शूद्रे, किंचित्, पातकं, न) सेवक शूद्र को द्विजों के घर का उच्छिष्ट अन्नादि लेने में कोई पातक नहीं (च) और

(न, संस्कारं, अर्हति) न किसी संस्कार योग्य है, क्योंकि (न, अस्य, धर्मे, अधिकारः, अस्ति) न तो द्विजों के धर्म में इसको अधिकार है और (न, धर्मात्प्रतिषेधनम्) न अपने धर्म से इसको निषेध है, अर्थात् द्विजों के धर्म यज्ञादिकों में इसको अधिकार नहीं और भोजन आदि बनाने तथा अन्य सेवा करने का शूद्र को सर्वत्र विधान है ॥

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः ।
मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥१०७॥

पदा०-(धर्मेप्सवः) धर्म के जिज्ञासु (तु) तथा (धर्मज्ञाः) धर्म के जानने वाले शूद्र (मन्त्रवर्ज्यं) मन्त्रों को छोड़कर (सतां, वृत्तं, अनुष्ठिताः) सत्पुरुषों का आचरण करते हुए (न, दुष्यन्ति) दूषित नहीं होते (तु) किन्तु (प्रशंसां, प्राप्नुवन्ति) प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥

भाष्य-शूद्र को मन्त्रोच्चारण में पाप है, यदि शूद्र धर्म करना चाहे और धर्मपथ को जानता भी हो तो विना वेद मन्त्रों के उच्चारण किये हुए यज्ञ, होमादिक करसक्ता है उनमें उसको अमन्त्रक होम का कोई दोष नहीं, किन्तु धर्म में श्रद्धालु होने के कारण उसकी प्रसंशा होती है, इसलिये शूद्र को धर्म करने का सर्वथा अधिकार है ॥

यथा यथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः ।
तथा तथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः ॥१०८॥

पदा०-(हि) निश्चयकरके शूद्र (यथा, यथा) जैसे २ (अनसूयकः, सद्वृत्तं, आतिष्ठति) अभिमान छोड़कर उत्तम

आचरण करता है (तथा, तथा) तैसे २ ही (अनिन्दितः) निन्दारहित होकर (इमं) इस लोक (च) और (अमुं, लोकं) परलोक में उत्कृष्टता को (प्राप्नोति) प्राप्त होता है ॥

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः ।
शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ॥१०९॥

पदा०-(शक्तेन, शूद्रेण, अपि) समर्थ शूद्र को भी (धनसंचयः, न, कार्यः) धनसंचय नहीं करना चाहिये (हि) क्योंकि (शूद्रः धनं, आसाद्य) शूद्र धन को पाकर (ब्राह्मणान्, एव, बाधते) ब्राह्मणों को ही पीड़ा देता है ॥

एते चतुर्णां वर्णानामापद्धर्माः प्रकीर्त्तिताः ।
यान्सम्यगनुतिष्ठन्तो व्रजन्ति परमां गतिम् ॥११०॥

पदा०-(एते, चतुर्णां, वर्णानां) यह चारो वर्णों के (आपद्धर्माः, प्रकीर्त्तिताः) आपत्काल के धर्म कहे (यान्) जिन धर्मों का (सम्यक्, अनुतिष्ठन्तः) भलेप्रकार आचरण करते हुए पुरुष (परमां, गतिं, व्रजन्ति) मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥

एष धर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्त्तितः ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ॥१११॥

पदा०-(एषः) यह (चातुर्वर्ण्यस्य) चारो वर्णों की (कृत्स्नः) सम्पूर्ण (धर्मविधिः, कीर्त्तितः) धर्मविधि कही, (अतः, परं) अब इससे आगे (शुभं) शुभ (प्रायश्चित्तविधिं) प्रायश्चित्त विधि को (प्रवक्ष्यामि) कहता हूं ॥

इति मानवार्य्यभाष्ये
दशमोध्यायः
समाप्तः

ओ३म्

अथ एकादशोऽध्यायः

सं०—अब प्रायश्चित्तविधि का विधान करते हैं:—

सान्तानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम् ।
गुर्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वाध्यायार्थ्युपतापिनौ ॥ १ ॥
नवैतान्स्नातकान्विद्याद्ब्राह्मणान्धर्मभिक्षुकान् ।
निःस्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्याविशेषतः ॥ २ ॥

पदा०—(सान्तानिकं) सन्तानार्थ विवाह की इच्छा वाला (यक्ष्यमाणं) ज्योतिष्टोमादि यज्ञ करने के प्रयोजन वाला (अध्वगं) मार्ग चलने वाला (सर्ववेदसं) जिसने सर्वस्व दक्षिणा वाला यज्ञ किया हो (गुर्वर्थं, पितृमात्रर्थं) गुरु तथा माता पिता के लिये धन का अर्थी (स्वाध्यायार्थी) वेद पढ़ने की इच्छा वाला विद्यार्थी (उपतापिनः) रोगी—(एतान्, नव) इन नौ (स्नातकान् ब्राह्मणान्) स्नातक ब्राह्मणों को (धर्मभिक्षुकान्) धर्म का भिक्षुक (विद्याद) जाने (एतेभ्यः, निःस्वेभ्यः) इन सब निर्धन स्नातकों के निमित्त (विद्याविशेषतः) विद्या की विशेषता के कारण (दानं, देयं) दान देना चाहिये ॥

एतेभ्यो हि द्विजाग्र्येभ्यो देयमन्नं सदक्षिणम् ।
इतरेभ्यो बहिर्वेदि कृतान्नं देयमुच्यते ॥ ३ ॥

पदा०-(हि) निश्चयकरके (एतेभ्यः) इन (द्विजाग्र्येभ्यः) द्विज श्रेष्ठों को (सदक्षिणं, अन्नं, देयं) दक्षिणा के साथ अन्न देना चाहिये (इतरेभ्यः) औरों को (बहिर्वेदि) वेदि के बाहर (कृतान्नं) पका हुआ अन्न (देयं, उच्यते) देना कहा है ॥

सर्वरत्नानि राजा तु यथार्हं प्रतिपादयेत् ।
ब्राह्मणान् वेदविदुषो यज्ञार्थं चैव दक्षिणम् ॥ ४ ॥

पदा०-(तु) और (राजा) राजा (वेदविदुषः, ब्राह्मणान्) वेद के जानने वाले ब्राह्मणों को (यज्ञार्थं) यज्ञ के लिये (यथार्हं) यथायोग्य (सर्वरत्नानि) सम्पूर्ण रत्न (दक्षिणां) दक्षिणा में (प्रतिपादयेत) देवे ॥

धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् ।
वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥ ५ ॥

पदा०-(तु) निश्चयकरके (यथाशक्ति) यथाशक्ति (वेदवित्सु, विविक्तेषु, विप्रेषु) वेद के जानने वाले विरक्त ब्राह्मणों को (धनानि, प्रतिपादयेत) धन देवे, इससे पुरुष (प्रेत्य) मरकर (स्वर्गं, समश्नुते) स्वर्ग को प्राप्त होता है अर्थात् वेदवित् ब्राह्मण को दिया हुआ दान परलोक में सुख का हेतु होता है ॥

यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये ।
अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति ॥ ६ ॥

पदा०-(यस्य) जिसके यहां (त्रैवार्षिकं) तीन वर्ष तक (भृत्यवृत्तये) कुटुम्ब पालन के योग्य (वा) अथवा (अपि, अधिकं)

इससे भी अधिक (भक्तं, पर्याप्त, विद्येत) भोजन सामग्री पर्याप्त हो तो (सः) वह (सोमं, पातुं, अर्हति) सोमयज्ञ करने योग्य है ॥

अतः स्वल्पीयसि द्रव्ये यः सोमं पिबति द्विजः ।
स पीतसोमपूर्वोऽपि न तस्याप्नोति तत्फलम् ॥७॥

पदा०-(अतः, स्वल्पीयसि, द्रव्ये) इससे न्यून द्रव्य होने में (यः) जो (द्विजः) द्विज (सोमं, पिबति) सोमयज्ञ करता है (सः) वह (पीतसोमपूर्वः) प्रथम किये हुए सोमयज्ञ के (अपि) भी (तत्फलं) उस फल को (न, आप्नोति) प्राप्त नहीं होता ॥

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि ।
मध्वापातो विषास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः ॥ ८ ॥

पदा०-(शक्तः) जो शक्तिसम्पन्न पुरुष (स्वजने,दुःखजीविनि) अपने स्वजन=माता पिता तथा अन्य कुटुम्बियों के दुःखी होते हुए अर्थात् भूखे मरने पर (परजने, दाता) परजन=दूसरों को देता है (सः) वह (मध्वापातः) मधु को त्यागकर (विषास्वादः) विष को भक्षण करने वाला (धर्मप्रतिरूपकः) धर्म का विरोधी है॥

भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ।
तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च ॥ ९ ॥

पदा०-(यत्) जो (भृत्यानां, उपरोधेन) पुत्र, स्त्री आदि पालन योग्यों को पीड़ा देकर (और्ध्वदेहिकं, करोति) परलोक के लिये दानादि करते हैं उनका (तत्) वह दान (जीवतः, च, मृतस्य) इस लोक तथा परलोक में (असुखोदर्कं, भवति) दुःख रूप फल देने वाला होता है ॥

वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या शिशुः सुतः ।
अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्त्तव्या मनुरब्रवीत् ॥ १० ॥

पदा०—(वृद्धौ, च, मातापितरौ) वृद्ध माता, पिता (साध्वी, भार्या) पतिव्रता स्त्री (शिशुः, सुतः) बालक पुत्र (अकार्यशतं, कृत्वा, अपि) सौ अकाज करके भी (भर्त्तव्याः) इनका भरण पोषण करना चाहिये (मनुः, अब्रवीत्) यह मनु ने कहा है ॥

यज्ञश्चेत्प्रतिरुद्धः स्यादेकेनांगेन यज्वनः ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण धार्मिके सति राजनि ॥ ११ ॥
यो वैश्यः स्याद्बहुपशुर्हीनक्रतुरसोमपः ।
कुटुम्बात्तस्य तद्द्रव्यमाहरेद्यज्ञसिद्धये ॥ १२ ॥

पदा०—(धार्मिके, राजनि, सति) धार्मिक राजा के होते हुए (यज्वनः) यज्ञ करने वाले क्षत्रियादि और (विशेषेण, ब्राह्मणस्य) विशेषकर ब्राह्मण का (यज्ञः) यज्ञ (चेत्) यदि (एकेन, अंगेन) एक अंग से (प्रतिरुद्धः, स्यात्) रुका हुआ हो तो—(यः) जो (वैश्यः) वैश्य (बहुपशुः) गाय बैल आदि बहुत पशुओं वाला (हीनक्रतुः) यज्ञ न करने वाला (असोमपः) सोमयज्ञरहित (स्यात्) हो (तस्य) उसके (कुटुम्बात्) कुटुम्ब से (यज्ञसिद्धये) यज्ञसिद्धि के लिये (तत्) वह (द्रव्यं, आहरेत्) द्रव्य ले आवे जिससे यज्ञ पूर्ण होजाय ॥

आहरेत्त्रीणि वा द्वे वा कामं शूद्रस्य वेश्मनः ।
न हि शूद्रस्य यज्ञेषु कश्चिदस्ति परिग्रहः ॥ १३ ॥

पदा०-(द्वे, वा, त्रीणि, वा) दो अथवा तीन अङ्गों की हीनता में (कामं, शूद्रस्य, वेश्मनः, आहरेत्) उसकी इच्छानुसार शूद्र के घर से भी द्रव्य ग्रहण करले (हि) क्योंकि (शूद्रस्य) शूद्र का (यज्ञेषु) यज्ञों में (कश्चित्, परिग्रहः) कोई व्यय (न, अस्ति) नहीं है ॥

योऽनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः ।
तयोरपि कुटुम्बाभ्यामाहरेदविचारयन् ॥ १४ ॥

पदा०-(यः) जो (अनाहिताग्निः) अग्निहोत्री नहीं है (च) और (शतगुः) सौ गौ वाला है, तथा (अयज्वा) जो यज्ञ न करता हो और (सहस्रगुः) हज़ार गौ वाला है (तयोः, अपि, कुटुम्बाभ्यां) उन दोनों के कुटुम्बों से भी (अविचारयन्, हरेत्) विना विचारे द्रव्य ले आवे, "परन्तु यह व्यवस्था जिसके यज्ञ में दो वा तीन अंग अपूर्ण हों उसके लिये है" ॥

आदाननित्याचादातुराहरेदप्रयच्छतः ।
तथा यशोऽस्य प्रथते धर्मश्चैव प्रवर्धते ॥ १५ ॥

पदा०-(आदाननित्यात्) जिसके यहां दानादि का धन नित्य आता (च) और (आदातुः) दान नहीं करता है (अप्रच्छतः, आहरेत्) उस न देते हुए से भी "यज्ञार्थ" धन ले आवे (तथा) ऐसा करने से (अस्य) इसका (यशः, प्रथते) यश फैलता (च) और (धर्मः, प्रवर्धते) धर्म बढ़ता है ॥

तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनश्नता ।
अश्वस्तनविधानेन हर्त्तव्यं हीनकर्मणः ॥ १६ ॥

पदा०-(तथैव) तैसे ही (षट्, भक्तानि) तीन दिन के भूखे को छः बार (अनश्नता) भोजन न मिला हो तो (सप्तमे, भक्ते) सातवें समय के भोजन में (हीनकर्मणः) निकृष्टकर्म करने वाले से भी (अश्वस्तनविधानेन) एक दिन के निर्वाह योग्य धन (हर्तव्यं) लेलेना चाहिये, अर्थात् एक दिन के लिये बिना आज्ञा लेलेने में भी दोष नहीं ॥

खलात्क्षेत्रादगाराद्वा यतो वाप्युपलभ्यते ।

आख्यातव्यं तु तत्तस्मै पृच्छते यदि पृच्छति ॥१७॥

पदा०-(खलात्, क्षेत्रात्, आगारात्, वा) खलियान, खेत वा घर से (वा) अथवा (यतः, उपलभ्यते) जहां से मिलजावे वहीं से "पूर्वोक्त अवस्था में" अन्न लेलेवे (तु) और (यदि) यदि धन का स्वामी (तत्) उस धन को (तस्मै) उससे (पृच्छति) पूछे तो (पृच्छते) पूछने पर (आख्यातव्यं) कहदेना चाहिये "कि तीन दिन भूखे रहने के कारण लिया है, इस प्रकार सत्यभाषण करने से पुरुष दोष का भागी नहीं होता ॥

ब्राह्मणस्वं न हर्तव्यं क्षत्रियेण कदाचन ।

दस्युनिष्क्रिययोस्तु स्वमजीवन्हर्तुमर्हति ॥१८॥

पदा०-(क्षत्रियेण) क्षत्रिय को "उक्त दशा में भी" (ब्राह्मणस्वं) ब्राह्मण का धन (कदाचन) कदापि (न, हर्तव्यं) हरण नहीं करना चाहिये (अजीवन्) क्षुधा से पीड़ित क्षत्रिय को (तु) तो (दस्युनिष्क्रिययोः) निष्क्रिय=चोर और दस्यु का (स्वं) धन (हर्तुं, अर्हति) हरण करने योग्य है ॥

योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः संप्रयच्छति।
स कृत्वा प्लवमात्मानं संतारयति तावुभौ ॥१९॥

पदा०—(यः) जो (असाधुभ्यः, अर्थं, आदाय) असाधु=दुर्जनों से धन लेकर (साधुभ्यः) साधु=सज्जनों को (संप्रयच्छति) देता है (सः) वह (आत्मानं) अपने आपको (प्लवं, कृत्वा) नौका बनाकर (तौ, उभौ) उन दोनों को (संतारयति) तारता है॥

यद्धनं यज्ञशीलानां देवस्वं तद्विदुर्बुधाः।
अयज्वनां तु यद्वित्तमासुरस्वं तदुच्यते ॥२०॥

पदा०—(यज्ञशीलानां, यत्, धनं) सदैव यज्ञ करने वालों का जो धन है (तत्) उसको (बुधाः) पण्डित लोग (देवस्वं) "देवधन" (विदुः) कहते हैं (तु) और (अयज्वनां, यत्, वित्तं) यज्ञ न करने वालों का जो धन है (तत्) वह (आसुरस्वं) "आसुरधन" (उच्यते) कहा जाता है ॥

न तस्मिन्धारयेद्दण्डं धार्मिकः पृथिवीपतिः।
क्षत्रियस्य हि बालिश्याद्ब्राह्मणः सीदति क्षुधा॥२१॥

पदा०—(धार्मिकः, पृथिवीपतिः) धार्मिक राजा (तस्मिन्) उस तीन दिन के भूखे ब्राह्मण को (दण्डं, न, धारयेत्) दण्ड न देवे (हि) क्योंकि (क्षत्रियस्य, बालिश्यात्) राजा ही की मूर्खता से (ब्राह्मणः, क्षुधा, सीदति) ब्राह्मण क्षुधा से पीड़ित होता है ॥

तस्य भृत्यजनं ज्ञात्वा स्वकुटुम्बान्महीपतिः।
श्रुतशीले च विज्ञाय वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत् ॥२२॥

पदा०—(महीपतिः) राजा (तस्य) उस ब्राह्मण के (भृत्यजनं) पुत्रादि पोष्यवर्ग (च) तथा (श्रुतशीले) विद्या और शील को (विज्ञाय) जानकर (स्वकुटुम्बात्) अपने यहां से (धर्म्यां,वृत्तिं, प्रकल्पयेत्) धर्मानुकूल जीविका नियत करे ॥

कल्पयित्वाऽस्य वृत्तिं च रक्षेदेनं समन्ततः ।
राजा हि धर्मषड्भागं तस्मात्प्राप्नोति रक्षितात् ॥२३॥

पदा०—(राजा) राजा (अस्य) इस ब्राह्मण की (वृत्तिं) जीविका को (कल्पयित्वा) नियत करके (एनं) इसकी (समन्ततः, रक्षेत्) सब ओर से रक्षा करे (हि) क्योंकि (रक्षितात्, तस्मात्) उसकी रक्षा करने से (धर्मषड्भागं) धर्म के छठे भाग को (प्राप्नोति) प्राप्त होता है, अर्थात् ब्राह्मण की रक्षा करने से उसके किये हुए सुकृत का छठाभाग राजा को प्राप्त होता है ॥

न यज्ञार्थं धनं शूद्राद्विप्रो भिक्षेत कर्हिचित् ।
यजमानो हि भिक्षित्वा चण्डालः प्रेत्य जायते ॥२४॥

पदा०—(यज्ञार्थं) यज्ञ के लिये (विप्रः) ब्राह्मण (शूद्रात्, धनं, कर्हिचित्, न, भिक्षेत) शूद्र से धन कदापि न मांगे (हि) क्योंकि उससे (भिक्षित्वा) भिक्षा मांगकर (यजमानः) यज्ञ करने वाला यजमान (प्रेत्य) मरकर (चण्डालः, जायते) चण्डाल होता है ॥

यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति ।
स याति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः ॥२५॥

पदा०-(यः) जो (विप्रः) ब्राह्मण (यज्ञार्थं, अर्थं, भिक्षित्वा) यज्ञ के अर्थ धन माँगकर (सर्वं, न, प्रयच्छति) सब नहीं लगाता (सः) वह (शतं,समाः) सौ वर्ष तक (भासतां) कुक्कुट की योनि (वा) अथवा (काकतां) कौवे की योनि को (याति) प्राप्त होता है ॥

देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा लोभेनोपहिनस्ति यः ।
स पापात्मा परेलोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ॥२६॥

पदा०-(यः) जो पुरुष (देवस्वं, वा, ब्राह्मणस्वं) देवधन-अथवा ब्राह्मण के धन को (लोभेन) लोभ से (उपहिनस्ति) हरण करता है (सः) वह (पापात्मा) पापी (परेलोके) परलोक में (गृध्रोच्छिष्टेन,जीवति) गिद्ध के उच्छिष्ट से जीता है ॥

आपत्कल्पेन यो धर्मं कुरुतेऽनापदि द्विजः ।
स आप्नोति फलं तस्य परत्रेति विचारितम् ॥२७॥

पदा०-(यः, द्विजः) जो द्विज (आपत्कल्पेन, धर्मं) आपत्काल के धर्म को (अनापदि, कुरुते) अनापत्काल में करता है (सः) वह (तस्य) उस धर्म के (फलं) फल को (परत्र) परलोक में (न, आप्नोति) प्राप्त नहीं होता (इति) यह (विचारितं) मनु का विचार है ॥

विश्वैश्च देवैः साध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः ।
आपत्सु मरणाद्भीतैर्विधेः प्रतिनिधिः कृतः ॥२८॥

पदा०-(विश्वैः, देवैः, साध्यैः, ब्राह्मणैः, च, महर्षिभिः) सब देवों, साध्यों, ब्राह्मणों और महर्षियों ने (आपत्सु) आपत्काल में (मरणात्, भीतैः) मरण से भयभीत होकर (विधेः) विधि का (प्रतिनिधिः) प्रतिनिधि आपद्धर्म (कृतः) नियत किया है ॥

प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते ।
न साम्परायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यतेफलम् ॥ २९ ॥

पदा०—(यः) जो (प्रथमकल्पस्य) मुख्य कर्म के अनुष्ठान करने की (प्रभुः) शक्ति वाला होकर (अनुकल्पेन, वर्तते) आपत्काल की विधि से वर्तता=अनुष्ठान करता है (तस्य) उस (दुर्मतेः) दुर्बुद्धि को (साम्परायिकं, फलं, न, विद्यते) पारलौकिक फल नहीं मिलता, अतएव ऐसा कदापि न करे ॥

न ब्राह्मणो वेदयेत किञ्चिद्राजनि धर्मवित् ।
स्ववीर्येणैव ताञ्छिष्यान्मानवानपकारिणः ॥३०॥

पदा०—(धर्मवित, ब्राह्मणः) धर्म का जानने वाला ब्राह्मण (किञ्चित, राजनि, न, वेदयेत) अपनी थोड़ी हुई हानि को राजा से न कहे किन्तु (तान्) उन (अपकारिणः, मानवान्) अपकारी मनुष्यों को (स्ववीर्येण, एव) अपने पुरुषार्थ से ही (शिष्यात) शिक्षा देवे ॥

स्ववीर्याद्राजवीर्याच्च स्ववीर्यं बलवत्तरम् ।
तस्मात्स्वेनैव वीर्येण निगृह्णीयादरीन्द्विजः ॥३१॥

पदा०—(स्ववीर्यात, च, राजवीर्यात) अपना सामर्थ्य और राजा के सामर्थ्य से (स्ववीर्यं, बलवत्तरं) अपना सामर्थ्य अधिक बलवान् है (तस्मात) इस कारण (द्विजः) ब्राह्मण (स्वेन,एव) अपने ही (वीर्येण) वीर्य्य से (अरीन्) शत्रुओं को (निगृह्णीयात) निग्रह करे अर्थात दण्ड देवे ॥

सं०—अब ब्राह्मण की स्वशक्ति कथन करते हैं:—

श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्यादित्यविचारयन् ।
वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन्द्विजः ॥३२॥

पदा०—(द्विजः) ब्राह्मण (अविचारयन्) विना विचारे शीघ्र ही (अथर्वांगिरसीः) अंगिरा के अथर्ववेद की (श्रुतीः) श्रुतियों का (कुर्यात्) प्रयोग करे (वै) निश्चयकरके (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण का (वाक्शस्त्रं) वाणी ही शस्त्र है (तेन) उसी से (द्विजः) ब्राह्मण (अरीन्) शत्रुओं का (हन्यात्) निवारण करे " अर्थात् वेदवेत्ता ब्राह्मण अपनी वक्तृत्व शक्ति द्वारा ही दुष्टों को अपने वश में लावे, अन्य कोई चेष्टा न करे ॥

सं०—अब चारो वर्णों को आपत्ति से पार होने का उपाय कथन करते हैं :—

क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः ।
धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः ॥३३॥

पदा०—(क्षत्रियः, आत्मानः, आपदं) क्षत्रिय अपनी आपत्ति को (बाहुवीर्येण) बाहुबल से (वैश्यशूद्रौ) वैश्य तथा शूद्र (धनेन) धन से (तु) और (द्विजोत्तमः) ब्राह्मण (जपहोमैः) जप तथा हवन द्वारा अपनी आपत्ति से (तरेत्) पार उतरे ॥

विधाता शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ।
तस्मै नाकुशलं ब्रूयान्न शुष्कां गिरमीरयेत् ॥३४॥

पदा०—(विधाता) विहित कर्मों का अनुष्ठान करने वाला

(शासिता) पुत्र शिष्यादिकों का शासक (वक्ता) उपदेश करने वाला (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (मैत्रः, उच्यते) सबका मित्र कहाता है (तस्मै) उससे (अकुशलं) कोई अपशब्द न बोले और (न) न (शुष्कां, गिरं, ईरयेत) कठोरभाषण करे ॥

सं०—अब यज्ञ के अयोग्य होताओं का वर्णन करते हैं :—

न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः ।
होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्त्तो नासंस्कृतस्तथा ॥३५॥

पदा०—(वै) निश्चयकरके (कन्या, युवतिः, अल्पविद्यः, बालिशः, आर्त्तः, असंस्कृतः) कन्या, युवास्त्री, थोड़ा पढ़ा हुआ, मूर्ख, रोगी और संस्कारशून्य, यह (अग्निहोत्रस्य, होता) अग्निहोत्र के होता=आहुति देने वाले (न, स्यात) न हों ॥

नरके हि पतन्त्येते जुह्वतः स च यस्य तत् ।
तस्माद्वैतानकुशलो होता स्याद्वेदपारगः ॥ ३६ ॥

पदा०—(जुह्वतः) होम करते हुए (एते) यह पूर्वोक्त सब (च) और (यस्य) जिसका यज्ञ होवे (सः) वह यजमान (हि) निश्चयकरके (नरके, पतन्ति) नरक में गिरते हैं अर्थात दुःख भोगते हैं (तस्मात) इस कारण (वैतानकुशलः) श्रौत, स्मार्त्त कर्मों में कुशल (वेदपारगः) सम्पूर्ण वेद का जानने वाला (होता, स्यात) होता होना चाहिये ॥

प्राजापत्यमदत्त्वाश्वमग्न्याधेयस्य दक्षिणाम् ।
अनाहिताग्निर्भवति ब्राह्मणो विभवे सति ॥३८॥

पदा०—(ब्राह्मणः) ब्राह्मण (विभवे, सति) धन होते हुए (अग्न्याधेयस्य) अग्नि के आधान की (दक्षिणां) दक्षिणा और (प्राजापत्यं) प्रजापति देवता के निमित्त (अश्वं, अदत्त्वा) अश्व न देवे, तो (अनाहिताग्निः,भवति) वह अनाहिताग्नि होजाता है अर्थात् उसको यज्ञ का फल प्राप्त नहीं होता ॥

सं०—अब निर्धन के लिये यज्ञ का निषेध करते हैं:—

पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ।
न त्वल्पदक्षिणैर्यज्ञैर्यजन्तेह कथंचन ॥३९॥

पदा०—(जितेन्द्रियः, श्रद्दधानः) जितेन्द्रिय तथा श्रद्धा वाला पुरुष (अन्यानि, पुण्यानि, कुर्वीत) अन्य पुण्यकर्मों को करे (तु) परन्तु (इह) इस लोक में (अल्पदक्षिणैः) थोड़ी दक्षिणा वाले (यज्ञैः) यज्ञों से (कथंचन) कदापि (न, यजन्त) यजन न करे, क्योंकि:—

इन्द्रियाणि यशः स्वर्गमायुः कीर्तिं प्रजाः पशून् ।
हन्त्यल्पदक्षिणो यज्ञस्तस्मान्नाल्पधनो यजेत् ॥४०॥

पदा०—(अल्पः, दक्षिणः, यज्ञः) थोड़ी दक्षिणा वाला यज्ञ (इन्द्रियाणि, यशः, स्वर्गं, आयुः, कीर्तिं, प्रजाः, पशून्) इन्द्रिय, यश, सुख, आयु, कीर्ति, सन्तान और पशुओं को (हन्ति) नाश करता है (तस्मात्) इस कारण (अल्पधनः, न, यजेत) थोड़े धन वाला यज्ञ न करे ॥

सं०—अब अग्निहोत्र न करने वाले के लिये पाप कथन करते हैं:—

अग्निहोत्र्यपविध्याग्नीन्ब्राह्मणः कामकारतः ।
चान्द्रायणं चरेन्मासं वीरहत्यासमं हि तत् ॥४१॥

पदा०-(अग्निहोत्री, ब्राह्मणः) अग्निहोत्र करने वाला ब्राह्मण (कामकारतः, अग्नीन्) अपनी इच्छा से अग्नि में (अपविध्य) सायंप्रातः हवन न करे तो (मासं) एक महीने पर्यन्त (चान्द्रायणं, चरेत्) चान्द्रायण व्रत करे (हि) क्योंकि (तत्) वह (वीरहत्यासमं) पुत्रहत्या के समान पाप है, अतएव अग्निहोत्र का कदापि त्याग न करे ॥

सं०-अब शूद्र के धन से अग्निहोत्र करने का निषेध करते हैं:-

ये शूद्रादधिगम्यार्थमग्निहोत्रमुपासते ।
ऋत्विजस्ते हि शूद्राणां ब्रह्मवादिषु गर्हिताः ॥४२॥

पदा०-(ये) जो ब्राह्मण (शूद्रात्) शूद्र से (अर्थं, अधिगम्य) धन लेकर (अग्निहोत्रं, उपासते) अग्निहोत्र करते हैं (ते) वह (ब्रह्मवादिषु, गर्हिताः) ब्रह्मवादियों में निन्दित हैं (हि) क्योंकि वह (शूद्राणां, ऋत्विजः) शूद्रों के ऋत्विक्= यज्ञ कराने वाले हैं ॥

तेषां सततमज्ञानां वृषलाग्न्युपसेविनाम् ।
पदा मस्तकमाक्रम्य दाता दुर्गाणि संतरेत् ॥४३॥

पदा०-(तेषां) उन (वृषलाग्न्युपसेविनां) शूद्रों के धन से सदा यज्ञ करने वाले (अज्ञानां) मूर्ख ब्राह्मणों के (मस्तकं, पदा, आक्रम्य) शिर पर पैर रखकर (दाता) दाता शूद्र (दुर्गाणि, संतरेत्) बड़े कठिन दुःखों से पार होते हैं, अर्थात् उस यज्ञ का फल शूद्र को होता है ॥

अकुर्वन्विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन् ।
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः ॥४४॥

पदा०-(विहितं, कर्म, अकुर्वन्) विहितकर्म न करता हुआ (च) और (निन्दितं, समाचरन्) निन्दित कर्मों को करता हुआ (च) तथा (इन्द्रियार्थेषु, प्रसक्तः) इन्द्रियों के विषयों में आसक्त (नरः) पुरुष (प्रायश्चित्तीयते) प्रायश्चित्त के योग्य होता है ॥

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ।
कामकारकृतेऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात् ॥४५॥

पदा०-(बुधाः) विद्वानों ने (अकामतः) अज्ञान से (पापे, कृते) किये हुए पाप का (प्रायश्चित्तं) प्रायश्चित्त (विदुः) कहा है (एके) दूसरे आचार्य्य (श्रुतिनिदर्शनात्) वेद के देखने से (आहुः) कहते हैं कि (कामकारकृते) जानकर किये हुए (पापे, अपि) पाप में भी प्रायश्चित्त होना चाहिये ॥

अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुध्यति ।
कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः ॥४६॥

पदा०-(अकामतः) अज्ञान से (कृतं, पापं) किया हुआ पाप (वेदाभ्यासेन) वेद के अभ्यास=वेदानुकूल आचरण करने से (शुध्यति) निवृत्त होजाता है (तु) और (मोहात्, कामतः, कृतं) मोहवश इच्छा से किया हुआ पाप (पृथक् विधैः, प्रायश्चित्तैः) अनेक प्रकार के प्रायश्चित्तों से नाश होता है ॥

सं०-अब कर्मानुसार फल कथन करते हैं :—

प्रायश्चित्तीयतां प्राप्य दैवात्पूर्वकृतेन वा ।
न संसर्गं व्रजेत्सद्भिः प्रायश्चित्तेऽकृते द्विजः ॥४७॥

पदा०—(दैवात्, वा, पूर्वकृतेन) दैवयोग अथवा पूर्वजन्म के पाप से (द्विजः) द्विज (प्रायश्चित्तीयतां, प्राप्य) प्रायश्चित्त के योग्य होकर (प्रायश्चित्ते, अकृते) प्रायश्चित्त बिना किये (सद्भिः, संसर्गं, न, व्रजेत्) श्रेष्ठ पुरुषों के साथ संसर्ग न करे॥

इह दुश्चरितैः केचित्केचित्पूर्वकृतैस्तथा ।
प्राप्नुवन्ति दुरात्मानो नरा रूपविपर्ययम् ॥४८॥

पदा०—(केचित्) कोई (इह) इस जन्म के तथा (केचित्, पूर्वकृतैः) कोई पूर्व जन्म के (दुश्चरितैः) दुराचार से (दुरात्मानः, नराः) दुष्टात्मा पुरुष (रूपविपर्ययं) रूप की विपरीतता को प्राप्त होते हैं, जैसाकिः—

सुवर्णचौरः कौनख्यं सुरापः श्यावदन्तताम् ।
ब्रह्महा क्षयरोगित्वं दौश्चर्म्यं गुरुतल्पगः ॥ ४९ ॥
पिशुनः पौतिनासिक्यं सूचकः पूतिवक्त्रताम् ।
धान्यचौरोऽङ्गहीनत्वमातिरेक्यं तु मिश्रकः ॥५०॥

पदा०—(सुवर्णचौरः) सुवर्ण के चुराने वाला (कौनख्यं) कुनख=कुत्सित नखों को (सुरापः, श्यावदन्ततां) मदिरा पीने वाला काले दांतों को (ब्रह्महा, क्षयरोगित्वं) ब्रह्महत्या करने वाला क्षय रोग को (गुरुतल्पगः, दौश्चर्म्यं) गुरु की स्त्री से गमन करने वाला निन्दित चर्म को पाता है—(पिशुनः, पौतिनासिक्यं) चुगली करने वाला दुर्गन्ध नासिका को (सूचकः, पूतिवक्त्रतां) झूठी निन्दा करने वाला दुर्गन्धमुख को (धान्यचौरः) धान्य का चुराने वाला (अंगहीनत्वं) अंगहीनता को (तु)

और (मिश्रकः, आतिरेक्यं) धान्य में अन्य वस्तु मिलाने वाला अधिक अंग को प्राप्त होता है ॥

अन्नहर्तामयावित्वं मौक्यं वागपहारकः ।
वस्त्रापहारकः श्वैत्र्यं पंगुतामश्वहारकः ॥ ५१ ॥

पदा०—(अन्नहर्ता, आमयावित्वं) अन्न चुराने वाला मन्दाग्नि को (वागपहारकः, मौक्यं) वाणी का चुराने वाला गूंगेपन को (वस्त्रापहारकः, श्वैत्र्यं) वस्त्रों का चुराने वाला श्वेतकुष्ठ को और (अश्वहारकः, पंगुतां) घोड़े का चुराने वाला पंगुपन को प्राप्त होता है ॥

दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत् ।
हिंसया व्याधिभूयस्त्वमरोगित्वमहिंसया ॥५२॥

पदा०—(दीपहर्ता, अन्धः, भवेत) दीपक चुराने वाला अन्धा होता, तथा (निर्वापकः, काणः, भवेत) चोरी से दीपक बुझाने वाला काणा होता है (हिंसया, व्याधिभूयः) हिंसा करने से रोगी (तु) और (अहिंसया, अरोगित्वं) अहिंसा से नीरोग रहता है ॥

एवं कर्मविशेषेण जायन्ते सद्विगर्हिताः ।
जडमूकान्धबधिरा विकृताकृतयस्तथा ॥ ५३ ॥

पदा०—(एवं) इसी प्रकार (कर्मविशेषेण) कर्मविशेष से (सद्विगर्हिताः) सज्जनों में निन्दित (जडमूकान्धबधिराः) जड, मूक, अन्ध, बहिरे (तथा) और (विकृताकृतयः) विकृत आकृति वाले (जायन्ते) होते हैं ॥

चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ।
निन्द्यैर्हि लक्षणैर्युक्ता जायन्तेऽनिष्कृतैनसः ॥५४॥

पदा०–(अनिष्कृतैनसः) किये हुए पाप का प्रायश्चित्त न करने वाले (निन्द्यैः, लक्षणैः, युक्ताः, जायन्ते) निन्दित लक्षणों से युक्त उत्पन्न होते हैं (अतः) इस कारण (विशुद्धये) शुद्धि के लिये (नित्यं) नित्य (प्रायश्चित्तं,चरितव्यं) प्रायश्चित्त कर्तव्य है॥

सं०–अब महापातकों का वर्णन करते हैं :—

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः ।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥५५॥

पदा०–(ब्रह्महत्या) वेदवेत्ता ब्राह्मण को मारना (सुरापानं) मदिरा पीना (स्तेयं) सुवर्ण की चोरी करना (गुर्वङ्गनागमः) गुरु की स्त्री से गमन करना (च) और (तैः, सह, संसर्गः, अपि) इनके साथ रहना भी (महान्ति, पातकानि, आहुः) यह पांच महापातक कहे हैं ॥

अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् ।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ॥५६॥

पदा०–(समुत्कर्षे, अनृतं) अपनी बड़ाई के लिये असत्य भाषण करना (राजगामि, पैशुनं) राजा से चुगली करना (च) और (गुरोः, अलीकनिर्बन्धः) गुरु की निन्दा करना, यह (ब्रह्महत्यया, समानि) ब्रह्महत्या के समान हैं ॥

ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः ।
गर्हितानाद्ययोर्जग्धिः सुरापानसमानि षट् ॥५७॥

पदा०-(ब्रह्मोज्झता) वेद को त्यागना (वेदनिन्दा) वेद की निन्दा करना (कौटसाक्ष्यं) झूठी साक्षी=गवाही देना (सुहृद्वधः) मित्र का वध करना (गर्हितानाद्ययोः, जग्धिः) निन्दित और अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण करना (षट्) यह छः (सुरापानसमानि) मद्यपान के समान हैं ॥

निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च ।
भूमिवज्रमणीनां च रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ॥५८॥

पदा०-(निक्षेपस्य) धरोहर (नराश्वरजतस्य, च) मनुष्य घोड़ा, चांदी तथा (भूमिवज्रमणीनां, च) भूमि, हीरा और मणियों का (अपहरणं) हरणं करना (रुक्मस्तेयसमं, स्मृतं) सुवर्ण की चोरी के समान कहा है ॥

रेतः सेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ।
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः ॥५९॥

पदा०-(स्वयोनीषु, कुमारीषु, अन्त्यजासु) सहोदर भगिनी, कुमारी तथा चण्डाली में (च) और (सख्युः, पुत्रस्य, स्त्रीषु) सखा तथा पुत्र की स्त्रियों में (रेतः, सेकः) वीर्य्य सिञ्चन=व्यभिचार करना (गुरुतल्पसमं, विदुः) गुरुस्त्री के गमन समान "महापातक" जानने चाहियें ॥

सं०-अब उपपातकों का वर्णन करते हैं :-

गोवधोऽयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्मविक्रयाः ।
गुरुमातृपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च ॥६०॥
परिवित्तितानुजेऽनूढे परिवेदनमेव च ।
तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ॥६१॥

पदा०—(गोवधः) गाय को मारना (अयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्मविक्रयाः) दुष्टों के यज्ञ करना,परस्त्रीगमन करना, अपनी आत्मा का बेचना अर्थात् निश्चय से विरुद्ध कहना (गुरुमातृपितृ) गुरु, माता, पिता (स्वाध्यायाग्न्योः, च, सुतस्य, त्यागः) स्वाध्याय=ब्रह्मयज्ञ, अग्निहोत्र और पुत्र का त्याग,—(अनुजे, अनूढे, परिविचित्ता) बड़े भाई के होते हुए छोटे का पहिले विवाह करने में उसकी " परिवित्ति " (च) और (एव) निश्चयकरके (परिवेदनं) ज्येष्ठ की " परिवेत्ता " संज्ञा होती है (तयोः, कन्यायाः, दानं) उन दोनों को कन्या देना (च) और (तयोः, याजनं) उन दोनों के यहां यज्ञादि कराना"उपपातक" है॥

कन्याया दूषणं चैव वार्धुष्यं व्रतलोपनम् ।
तडागारामदाराणामपत्यस्य च विक्रयः ॥६२॥
व्रात्यता बान्धवत्यागो भृत्याध्यापनमेव च ।
भृत्या चाध्ययनादानमपण्यानां च विक्रयः ॥६३॥

पदा०—(कन्यायाः, दूषणं) कन्या को दूषित करना (वार्धुष्यं) सूद का लेना (व्रतलोपनं) व्रत भंग करना (तडागारामदाराणां, अपत्यस्य, च) तालाब, बगीचा, स्त्री और सन्तान का (विक्रयः) बेचना,—(व्रात्यता) यथाकाल में उपनयन संस्कार न होना (बान्धवत्यागः) बान्धवों का त्याग (भृत्याध्यापनं) नियत वेतन लेकर पढ़ाना (च, एव) और ऐसे ही (भृत्या) वेतन देकर (अध्ययनादानं) विद्या ग्रहण करना (च) तथा (अपण्यानां, विक्रयः) न बेचने योग्य पदार्थों का बेचना "उपपातक" है ॥

सर्वाकरेष्वधीकारो महायन्त्रप्रवर्त्तनम् ।
हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवोऽभिचारो मूलकर्म च ॥६४॥
इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम् ।
आत्मार्थं च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनं तथा ॥६५॥

पदा०—(सर्वाकरेषु, अधीकारः) सुवर्ण आदि की सब कानों में अधिकार प्राप्त करना (महायन्त्रप्रवर्त्तनं) बड़े भारी यन्त्र का प्रयोग करना (औषधीनां, हिंसा) औषधियों का काटना (स्त्र्याजीवः) भार्यादि स्त्रियों से आजीवन करना (अभिचारः, मूलकर्म,च) मारण और वशीकरण कराना (अशुष्काणां,द्रुमाणां, इन्धनार्थं, अवपातनं) हरे वृक्षों को इन्धन के लिये काटना (च) तथा (आत्मार्थं, क्रियारम्भः) " देव, पितरों के उद्देश्य से विना" केवल अपने ही लिये पाकादि क्रिया करना (तथा) और (निन्दितान्नादनं) निन्दित अन्न का खाना "उपपातक" है ॥

अनाहिताग्निता स्तेयमृणानामनपक्रिया ।
असच्छास्त्राधिगमनं कौशीलव्यस्य च क्रिया ॥६६॥
धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ।
स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकम् ॥६७॥

पदा०—(अनाहिताग्निता) अग्निहोत्र न करना (स्तेयं) चोरी करना (ऋणानां, अनपक्रिया) ऋणों को न चुकाना (असच्छास्त्राधिगमनं) असत् शास्त्रों का पढ़ना (च) और (कौशीलव्यस्य, क्रिया) नाचने तथा गाने बजाने का सेवन करना,—(धान्यकुप्यपशुस्तेयं) धान्य, तांबा आदि धातु तथा

पशुओं की चोरी करना (मद्यपस्त्रीनिषेवणं) मद्यपान करने वाली स्त्री का सेवन करना (स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधः) स्त्री, शूद्र, वैश्य तथा क्षत्रिय का वध करना (च) और (नास्तिक्यं) नास्तिकता (उपपातकं) यह सब उपपातक हैं ॥

ब्राह्मणस्य रुजः कृत्या घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः ।
जैह्मयं च मैथुनंपुंसिजातिभ्रंशकरं स्मृतम् ॥६८॥

पदा०—(ब्राह्मणस्य, रुजः, कृत्या) ब्राह्मण को लाठी आदि से पीड़ा देने की क्रिया करना (अघ्रेयमद्ययोः, घ्रातिः) दुर्गन्ध युक्त पदार्थ तथा मद्य का सूंघना (जैह्मयं) कुटिलता करना (च) और (पुंसि, मैथुनं) पुरुष के साथ मैथुन करना (जातिभ्रंशकरं, स्मृतं) इनको जातिभ्रंशकर=जाति से पतित करने वाला पातक कहा है ॥

खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकंवधस्तथा ।
संकरीकरणंज्ञेयं मीनाहिमहिपस्य च ॥६९॥

पदा०—(खराश्वोष्ट्रमृगेभानां) गधा, घोड़ा, ऊंट, मृग, हस्ती (अजाविकं) बकरी, भेड़ (मीनाहिमहिषस्य, च) मछली सर्प और भैंसा, इनके (वधः) मारने वाले को (संकरीकरणं, ज्ञेयं) "संकरीकरण" जानना चाहिये अर्थात् इनका वध करने वाला वर्णसंकर होजाता है ॥

निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम् ।
अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम् ॥७०॥

कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम् ।
फलैधःकुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम् ॥७१॥

पदा०—(निन्दितेभ्यः, धनादानं) निन्दित पुरुषों से धन का दान लेना (वाणिज्यं) "वैश्य न होकर" व्यापार करना (शूद्रसेवनं) शूद्र की सेवा करना (च) और (असत्यस्य, भाषणम्) असत्यभाषण करना (अपात्रीकरणं, ज्ञेयं) इनको "अपात्रीकरण" जानना चाहिये अर्थात् ऐसे कर्म करने वाला प्रतिग्रह देने योग्य नहीं रहता,—(कृमिकीटवयोहत्या) कीड़े मकोड़े तथा पक्षियों की हत्या करना (मद्यानुगतभोजनं) मद्य के साथ भोजन करना (फलैधःकुसुमस्तेयं) फल,इन्धन तथा फूलों का चुराना (च) और (अधैर्यं) अधीरता को "मलिनीकरण" कहते हैं अर्थात् इन से अन्तःकरण मलिन होता है ॥

एतान्येनांसि सर्वाणि यथोक्तानि पृथक्पृथक् ।
यैर्यैर्व्रतैरपोह्यन्ते तानि सम्यङ्निबोधत ॥७२॥

पदा०—(एतानि, सर्वाणि, एनांसि) यह सब "ब्रह्महत्यादि" पाप (यथा) जैसे (पृथक्, पृथक्, उक्तानि) अलग २ कथन किये गये हैं वह (यैः, यैः, व्रतैः) जिन २ व्रतों से (अपोह्यन्ते) निवृत्त होते हैं (तानि) उन व्रतों को (सम्यक्,निबोधत) भलेप्रकार सुनो॥

सं०—अब पूर्वोक्त पापों की निवृत्ति के लिये व्रत कथन करते हैं:—

ब्रह्महा द्वादश समाः कुटीं कृत्वा वने वसेत् ।
भैक्षाश्यात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् ॥७३॥

पदा०—(ब्रह्महा) ब्रह्महत्यारा=ब्राह्मण का वध करने

वाला (वने, कुटीं, कृत्वा) वन में कुटी बनाकर (शवशिरोध्वजं, कृत्वा) मुरदे के शिर का चिन्ह धारण करके (भैक्षाशी) भीख मांगकर खाता हुआ (आत्मविशुद्ध्यर्थं) अपनी शुद्धि के लिये (द्वादश, समाः) बारहवर्ष (वसेत्) वन में ही रहे ॥

लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयात्मनः ।
प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धे त्रिरवाक्शिराः ॥७४॥

पदा०-(वा) अथवा (शस्त्रभृतां) शस्त्र धारण करने वाले (विदुषां) विद्वानों का (आत्मनः, इच्छया) अपनी इच्छा से (लक्ष्यं, स्यात्) लक्ष्य हो अर्थात् निशाना बने (वा) अथवा (अवाक्शिराः) नीचे सिर करके (समिद्धे, अग्नौ) जलती हुई अग्नि में(आत्मानं)अपने आपको(त्रिः,प्रास्येत्) तीन वार डाले॥

यजेत वाश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेन वा ।
अभिजिद्विश्वजिद्भ्यां वा त्रिवृताग्निष्टुतापि वा ॥७५॥

पदा०-(वा) अथवा (अश्वमेधेन) अश्वमेध यज्ञ करे (वा) वा (स्वर्जिता) स्वर्जित (गोसवेन) गोसवन (अभिजिद्विश्वजिद्भ्यां) अभिजित्, विश्वजित् (त्रिवृताग्निष्टुतापि, वा) त्रिवृत् अथवा अग्निष्टुत् से भी (यजेत) यजन करे अर्थात् इन यज्ञविशेषों को करके अपने प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध हो ॥

जपन्वान्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत् ।
ब्रह्महत्यापनोदाय मितभुङ्नियतेन्द्रियः ॥ ७६ ॥
सर्वस्वं वेदविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ।
धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् ॥७७॥

पदा०-(वा) अथवा (ब्रह्महत्यापनोदाय) ब्रह्महत्यारूप

पाप दूर करने के लिये (अन्यतमं, वेदं, जपन्) किसी एक वेद का जप करता हुआ (योजनानां, शतं, व्रजेत्) सौ योजन गमन करे (मितभुक्) थोड़ा खावे और (नियतेन्द्रियः) जितेन्द्रिय होकर रहे—(सर्वस्वं) अपना सर्वस्व (वा) अथवा (जीवनाय, अलं, धनं) अपने जीवनार्थ सम्पूर्ण धन (वा) अथवा (सपरिच्छेदं, गृहं) सब सामग्री सहित घर (वेदविदुषे, ब्राह्मणाय) वेदज्ञ ब्राह्मण को (उपपादयेत्) देदेवे ॥

हविष्यभुग्वाऽनुसरेत्प्रतिस्रोतः सरस्वतीम् ।
जपेद्वा नियताहारस्त्रिर्वै वेदस्य संहिताम् ॥७८॥
कृतवापनो निवसेद्ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा ।
आश्रमे वृक्षमूले वा गोब्राह्मणहिते रतः ॥७९॥

पदा०—(वा) अथवा (हविष्यभुक्) हविष्य खाता हुआ (सरस्वतीं, प्रतिस्रोतः, अनुसरेत) सरस्वती नदी के स्रोत की ओर गमन करे (वा) अथवा (नियताहारः) नियमपूर्वक आहार करता हुआ (वै) निश्चयकरके (वेदस्य, संहितां) वेद की संहिता को (त्रिः, जपेत्) तीन वार जपे,—(वा) अथवा (कृतवापनः) वारहवर्ष तक शिर मुड़ाकर (ग्रामान्ते) ग्राम के समीप (वा) वा (गोव्रजे) गोशाला में (आश्रमे) आश्रम में (वा) अथवा (वृक्षमूले) वृक्ष के नीचे (गोब्राह्मणहिते, रतः) गौ तथा ब्राह्मण के हित में रत होकर (निवसेत्) निवास करे ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेत् ।
मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोर्ब्राह्मणस्य च ॥ ८० ॥

पदा०—(वा) अथवा (ब्राह्मणार्थे, गवार्थे) ब्राह्मण तथा

गौ के अर्थ (सद्यः, प्राणान्, परित्यजेत्) उसी समय प्राण त्यागदे तो वह (गोः, ब्राह्मणस्य, च, गोप्ता) गौ तथा ब्राह्मण का रक्षक (ब्रह्महत्यायाः, मुच्यते) ब्रह्महत्यारूप पाप से छूट जाता है॥

त्रिवारं प्रतिरोद्धा वा सर्वस्वमवजित्य वा।
विप्रस्य तन्निमित्ते वा प्राणालाभे विमुच्यते ॥८१॥

पदा०-(विप्रस्य) ब्राह्मण के (सर्वस्वं) सर्वस्व को "चौर लेजाते हों तो" (त्रिवारं, प्रतिरोद्धा) तीन वार रोकने वाला (वा) अथवा (अवजित्य) जीतकर (तत्, निमित्ते) उस ब्राह्मण के निमित्त (प्राणालाभे) प्राणत्याग होने पर (विमुच्यते) उस ब्रह्महत्यारूप पाप से छूट जाता है॥

एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः।
समाप्ते द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ८२ ॥

पदा०-(एवं) इस प्रकार (दृढव्रतः) दृढ़व्रत करता हुआ (नित्यं) प्रति दिन (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचर्य्य से रहने वाला (समाहितः) सावधान किये हुए चित्त से (द्वादशे, वर्षे, समाप्ते) बारहवर्ष के समाप्त होने पर (ब्रह्महत्यां, व्यपोहति) ब्रह्महत्या को दूर करता है॥

शिष्ट्वा वा भूमिदेवानां नरदेवसमागमे।
स्वमेनोऽवभृथस्नातो हयमेधे विमुच्यते ॥ ८३ ॥

पदा०-(वा) अथवा (हयमेधे) अश्वमेध यज्ञ में (भूमिदेवानां, नरदेवसमागमे) ब्राह्मण और राजा के समागम में (स्वं, एनः) अपने ब्रह्महत्या रूप पाप का (शिष्ट्वा) निवेदन करके, यज्ञ के

अन्त में (अवभृथस्नातः) अवभृथ स्नान करता हुआ (विमुच्यते) ब्रह्महत्या के पाप से छूट जाता है ॥

धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राजन्य उच्यते ।
तस्मात्समागमे तेषामेनो विख्याप्य शुद्ध्यति ॥८४॥

पदा०-(ब्राह्मणः, धर्मस्य, मूलं) ब्राह्मण धर्म का मूल और (राजन्यः) राजा (अग्रं) अग्रभाग (उच्यते) कहागया है (तस्मात्, तेषां, समागमे) इस कारण उनके समागम में (एनः, विख्याप्य) अपने पाप का निवेदन करके (शुद्ध्यति) शुद्ध होता है, क्योंकिः-

ब्राह्मणः संभवेनैव देवानामपि दैवतम् ।
प्रमाणं चैव लोकस्य ब्रह्मात्रैव हि कारणम् ॥ ८५ ॥

पदा०-(ब्राह्मणः) ब्राह्मण (संभवेन, एव) उत्पत्ति से ही (देवानां, अपि) देवताओं का भी (दैवतं) पूज्य (च) और (लोकस्य, प्रमाणं) लोक को प्रमाण है (हि) निश्चयकरके (अत्र) इसमें (ब्रह्म) वेद (एव) ही (कारणं) कारण है ॥

तेषां वेदविदो ब्रूयुस्त्रयोऽप्येनःसुनिष्कृतिम् ।
सा तेषां पावनाय स्यात्पवित्रा विदुषां हि वाक् ॥८६॥

पदा०-(तेषां) उन ब्रह्महत्यादि करने वाले पापियों को (वेदविदः) वेद के जानने वाले (त्रयः, अपि) तीन भी विद्वान् (एनःसु) पापों के (निष्कृतिं) प्रायश्चित्त (ब्रूयुः) कहें तो (सा) वही वाणी (तेषां, पावनाय) उन पापियों की शुद्धि के लिये (स्यात्) हो (हि) क्योंकि (विदुषां) विद्वानों की (वाक्) वाणी (पवित्रा) पवित्र होती है ॥

अतोऽन्यतममास्थाय विधिं विप्रः समाहितः ।
ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहत्यात्मवत्तया ॥ ८७ ॥

पदा०-(समाहितः, विप्रः) स्वस्थचित्त हुआ ब्राह्मण (अतः) इन प्रायश्चित्तविषयक विधियों में से (अन्यतमं) किसी एक (विधिं) विधि को (आत्मवत्तया) अपने आत्मविचार से (आस्थाय) निश्चित करके (ब्रह्महत्याकृतं) ब्रह्महत्यारूप किये हुए (पापं) पाप को (व्यपोहति) दूर कर देता है ॥

हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेत् ।
राजन्यवैश्यौ चेजानावात्रेयीमेव च स्त्रियम् ॥८८॥

पदा०-(अविज्ञातं) विना जाने (गर्भं, हत्वा) गर्भ को नष्ट करके (वा) अथवा (ईजानौ) यज्ञ करते हुए (राजन्य-वैश्यौ) क्षत्रिय तथा वैश्य (च) और (आत्रेयीं, स्त्रियं) आत्रेयी* स्त्री को मारकर (एतत्, एव) यह ही (व्रतं, चरेत्) व्रत करे ॥

उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य गुरुं तथा ।
अपहृत्य च निक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधम् ॥ ८९ ॥

पदा०-(एव) निश्चयकरके (साक्ष्ये) साक्षी में (अनृतं) असत्य (उक्त्वा) बोलकर (तथा) तैसे ही (गुरुं, प्रतिरुध्य) गुरु का विरोध करके (निक्षेपं, अपहृत्य) धरोहर का हरण करके (च) और (स्त्रीसुहृद्, वधं) स्त्री तथा सुहृद् का वध (कृत्वा) करके भी यही प्रायश्चित्त करे ॥

---

* जो सब संस्कारों से संस्कृता विदुषी स्त्री अथवा गर्भिणी हो उसको "आत्रेयी" कहते हैं ॥

इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम् ।
कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते ॥ ९० ॥

पदा०-(इयं, विशुद्धिः) यह पूर्वोक्त शुद्धि (अकामः, द्विजं, प्रमाप्य) अज्ञान से ब्राह्मण को मारने में (उदिता) कही है, और (कामतः) ज्ञानपूर्वक (ब्राह्मणवधे) ब्राह्मण के वध में(निष्कृतिः)प्रायश्चित्त(न)नहीं (विधीयते) विधान किया॥

सं०-अब मद्यपान का निषेध करते हुए उसका प्रायश्चित्त वर्णन करते हैं :—

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत् ।
तया स काये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः॥९१॥

पदा०-(द्विजः) द्विज (मोहात्) अज्ञान से (सुरां, पीत्वा) मद्य पीकर (अग्निवर्णां, सुरां, पिबेत्) अग्नि के समान तप्त मद्य पीवे (तया) उससे (सः) वह (काये, निर्दग्धे) देह के जलने पर (ततः) उस मद्यपान के (किल्बिषात्) पाप से (मुच्यते) छूट जाता है, अर्थात् द्विज अज्ञान से मद्य पीले तो उसके प्रायश्चित्त के लिये अग्नि के समान गरम मद्य पीवे तब वह उस मद्यपानरूप पाप से छूटता है ॥

गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा ।
पयो घृतं वामरणाद्गोशकृद्रसमेव वा ॥९२॥

पदा०-(वा) अथवा (अग्निवर्णं) अग्नि के समान गरम (गोमूत्रं) गोमूत्र (उदकं) जल (पयः) दूध (घृतं) घृत (वा) अथवा (गोशकृद्रसं, एव) गौ के गोबर का रस ही

(आमरणात्, पिबेत्) मरणपर्य्यन्त पीता रहे-" तो मद्यपानरूप किये पाप से छूट जाता है " ॥

कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि ।
सुरापानापनुत्यर्थं वालवासा जटी ध्वजी ॥९३॥

पदा०-(वा) अथवा (कणान्) चावलों के कण (वा) वा (पिण्याकं) कटे हुए तिल (सकृत्, निशि) एक वार रात्रि को (अब्दं,भक्षयेत्) एक वर्ष तक भक्षण करे (सुरापानापनुत्यर्थं) सुरापान के पाप को दूर करने के लिये (वालवासा) कम्बल का वस्त्र पहने (जटी) सिर के सब वाल रखे, और (ध्वजी) सुरापान के चिन्हयुक्त होकर रहे ॥

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा मलमुच्यते ।
तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥९४॥
गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥९५॥

पदा०-(वै) निश्चयकरके (सुरा) मदिरा (अन्नानां, मलं) अन्न का मल है (च) और (मलं, पाप्मा, उच्यते) मल को पाप कहते हैं (तस्मात्) इस कारण (ब्राह्मणराजन्यौ, वैश्यः, च) ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य (न, सुरां, पिबेत्) सुरा को न पीवें,—(गौडी, पैष्टी, च, माध्वी) गुड़, पिट्ठी तथा महुआ (त्रिविधा, सुरा, विज्ञेया) यह तीन प्रकार की सुरा जाननी चाहिये (यथा) जिस प्रकार (एका) एक है (तथा) उसी प्रकार (सर्वाः) सब हैं, इसलिये (द्विजोत्तमैः) द्विजोत्तमों को (न, पातव्याः) कोई मदिरा नहीं पीनी चाहिये, क्योंकि:—

यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम् ।
तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः ॥९६॥

पदा०—(मद्यं, मांसं, सुरा, आसवं) मादक द्रव्य, मांस, मदिरा तथा आसव (यक्षरक्षःपिशाचान्नं) यक्ष, राक्षस और पिशाचों का भोजन है (देवानां, हविः, अश्नता) देवताओं की हवि खाने वाले (ब्राह्मणेन) ब्राह्मण को (तत, न, अत्तव्यं) मद्यादि का सेवन कदापि न करने चाहियें, क्योंकि :—

अमेध्ये वा पतेन्मत्तो वैदिकं वाप्युदाहरेत् ।
अकार्यमन्यत्कुर्याद्वा ब्राह्मणो मदमोहितः ॥९७॥

पदा०—(मदमोहितः) मद्य पीकर (मत्तः) उन्मत्त हुआ (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (अमेध्ये, पतेत) अपवित्र स्थान मोरी आदि में गिरेगा (वा) वा (वैदिकं, उदाहरेत) वेदवाक्य ऊटपटांग बोलेगा (वा) अथवा (अन्यत, अकार्यं, कुर्यात) अन्य कोई निषिद्ध कर्म करेगा,"इस कारण वह मद्यपान न करे"

यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत् ।
तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च स गच्छति ॥९८॥

पदा०—(यस्य) जिस ब्राह्मण के (कायगतं, ब्रह्म) शरीर में रहने वाला वेदज्ञान (सकृत) एकवार भी (मद्येन) मद्य से (आप्लाव्यते) भीगता है (तस्य) उसका (ब्राह्मण्यं) ब्राह्मणत्व (व्यपैति) नष्ट होजाता (च) और (सः) वह (शूद्रत्वं) शूद्रत्व को (गच्छति) प्राप्त होता है ॥

एषा विचित्राभिहिता सुरापानस्य निष्कृतिः ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सुवर्णस्तेयनिष्कृतिम् ॥९९॥

पदा०-(एषा) यह (सुरापानस्य) मद्यपान का (विचित्रा) विचित्र (निष्कृतिः) प्रायश्चित्त (अभिहिता) कहा (अतः) अब (ऊर्ध्वं) आगे (सुवर्णस्तेयनिष्कृतिं) सुवर्ण की चोरी का प्रायश्चित्त (प्रवक्ष्यामि) कहता हूं ॥

सं०-अब तीसरे महापातक "सुवर्ण चोरी" का प्रायश्चित्त कथन करते हैं:—

सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु ।
स्वकर्मख्यापयन्ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति ॥१००॥
गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम् ।
वधेन शुध्यति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव तु ॥१०१॥

पदा०-(सुवर्णस्तेयकृत्, विप्रः) सुवर्ण का चुराने वाला ब्राह्मण (राजानं, अभिगम्य) राजा के समीप जाकर (स्वकर्म) अपने कर्म को (ख्यापयन्) प्रसिद्ध करके (ब्रूयात्) कहे कि (भवान्) आप (मां) मुझे (अनुशास्तु, इति) दण्ड देवें,— तब (राजा) राजा (मुसलं) "उसके कन्धे पर लिये हुए" मूसल को (गृहीत्वा) ग्रहण करके (तं) उस चोर के (सकृत्, स्वयं, हन्यात्) एक बार अपने आप मारे (स्तेनः, ब्राह्मणः) ब्राह्मण चोर (वधेन) दण्ड से (शुध्यति) शुद्ध होता (तु) और (तपसा, एव) तप करने से भी शुद्ध होता है ॥

तपसाऽपनुनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् ।
चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥१०२॥

पदा०-(सुवर्णस्तेयजं, मलं) सुवर्ण की चोरी से उत्पन्न हुए पाप को (अपनुनुत्सुः) दूर करने की इच्छा वाला (द्विजः)

द्विज (चीरवासाः) चीर पहनकर (अरण्ये) वन में (ब्रह्महणः, व्रतं, चरेत) ब्रह्महत्या का व्रत करे ॥

एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः ।
गुरुस्त्रीगमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥ १०३ ॥

पदा०—(द्विजः) ब्राह्मण (स्तेयकृतं) चोरी से उत्पन्न हुए (पापं) पाप को (एतैः, व्रतैः, अपोहेत) इन पूर्वोक्त व्रतों से दूर करे (तु) और (गुरुस्त्रीगमनीयं) गुरु की स्त्री से व्यभिचार किये पाप को (एभिः, व्रतैः) इन वक्ष्यमाण व्रतों से (अपानुदेत) दूर करे ॥

सं०—अब गुरु की स्त्री से व्यभिचार करने वाले चौथे महापातकी के लिये प्रायश्चित्त कथन करते हैं:—

गुरुतल्प्यभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमये ।
सूर्मीं ज्वलन्तीं स्वाश्लिष्येन्मृत्युना स विशुध्यति ॥ १०४ ॥

पदा०—(गुरुतल्पी) गुरुभार्यागामी (एनः, अभिभाष्य) अपने पाप को प्रसिद्ध करके (तप्ते) तपाये हुए (अयोमये) लोहे की शय्या पर (स्वप्यात) सोवे, और (ज्वलन्तीं, सूर्मीं) लोहे की बनी हुई स्त्री जलती हुई को (स्वाश्लिष्येत) भलेप्रकार आलिंगन करे (मृत्युना) उससे मृत्यु पाकर (सः) वह (विशुध्यति) शुद्ध होता है ॥

स्वयं वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्जलौ ।
नैर्ऋतीं दिशमातिष्ठेदानिपातादजिह्मगः ॥ १०५ ॥

पदा०—(वा) अथवा (स्वयं) आपही (शिश्नवृषणौ,

उत्कृत्य) लिङ्ग तथा वृषणों को काट के (अंजलौ,आधाय) अंजली में लेकर (आनिपातात्) जबतक शरीर न गिरजावे तबतक (अजिह्मगः) टेढ़ी चाल न चलता हुआ (नैर्ऋतीं, दिशं, आतिष्ठेत्) नैर्ऋत्य दिशा में गमन करे ॥

खट्वांगी चीरवासा वा श्मश्रुलो विजने वने ।
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमब्दमेकं समाहितः ॥ १०६ ॥

पदा०—(वा) अथवा (खट्वाङ्गी) खट्वाङ्ग चिन्ह लगाये (चीरवासा) चीर पहिने (श्मश्रुलः) केश, नख, लोम तथा श्मश्रु रखाये हुए (समाहितः) सावधान होकर (विजने, वने) निर्जन वन में (एकं, अब्दं) एक वर्ष पर्य्यन्त (प्राजापत्यं, कृच्छ्रं, चरेत्) प्राजापत्यव्रत कठिनता से करेः—

चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्येन्नियतेन्द्रियः ।
हविष्येण यवाग्वा वा गुरुतल्पापनुत्तये ॥ १०७ ॥

पदा०— (वा) अथवा (नियतेन्द्रियः) जितेन्द्रिय रहकर (त्रीन्, मासान्) तीन मास तक (हविष्येण, यवाग्वा) हविष्य तथा यवागु का भोजन करता हुआ (गुरुतल्पापनुत्तये) गुरु भार्या गमनसम्बन्धी पाप दूर करने के लिये (चान्द्रायणं, अभ्यस्येत्) चान्द्रायण व्रत करे ॥

एतैर्व्रतैरपोहेयुर्महापातकिनो मलम् ।
उपपातकिनस्त्वेवमेभिर्नानाविधैर्व्रतैः ॥१०८॥

पदा०—(एतैः, व्रतैः) इन पूर्वोक्त व्रतों को करके (महापातकिनः) महापातकी (मलं) पाप को (अपोहेयुः) दूर

करें (तु) और (उपपातकिनः) उपपातकी (एभिः) आगे कहे हुए (नानाविधैः, व्रतैः) नानाप्रकार के व्रतों से पाप दूर करें॥

सं०—अब उपपातकियों के लिये व्रत विधान करते हैं :—

उपपातकसंयुक्तो गोघ्नोमासं यवान् पिबेत् ।
कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥ १०९ ॥

पदा०—(उपपातकसंयुक्तः) उपपातक से संयुक्त (गोघ्नः) गौ का हनन करने वाला (मासं, यवान्, पिबेत्) एक मास पर्य्यन्त यवों को पीवे तथा (कृतवापः) अपना मुण्डन कराके (तेन, चर्मणा, संवृतः) उस मारी हुई गाय के चाम को ओढ़कर (गोष्ठे, वसेत्) गौशाला में रहे, और :—

चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणंमितम् ।
गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः ॥११०॥

पदा०—(नियतेन्द्रियः) इन्द्रियों को वशीभूत करता हुआ (द्वौ, मासौ) दो मास पर्य्यन्त (गोमूत्रेण, स्नानं, आचरेत्) गोमूत्र से स्नान और (अक्षारलवणं) क्षार तथा लवण से शून्य (चतुर्थकालं) दिन के चौथे भाग में (मितं, अश्नीयात्) थोड़ा भोजन करे ॥

दिवानुगच्छेद्गास्तास्तु तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत् ।
शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत् ॥१११॥

पदा०—(तु) और (दिवा) दिन में (ताः) उन गौओं के (अनुगच्छेत्) पीछे जावे (तु) और (तिष्ठन्) खड़ा होकर (ऊर्ध्वं, रजः) उन गौओं के खुरों से उड़ी हुई धूलि को

(पिबेत्) पीवे, और (शुश्रूषित्वा, नमस्कृत्य) उनकी सेवा तथा चारा आदि से सत्कार करके (रात्रौ) रात्रि में (वीरासनं, वसेत्) वीरासन होकर पहरा देवे ॥

तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत् ।
आसीनासु तथासीनो नियतो वीतमत्सरः ॥११२॥
आतुरामभिशस्तां वा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः ।
पतितां पङ्कलग्नां वा सर्वोपायैर्विमोचयेत् ॥११३॥

पदा०-(तु) और (वीतमत्सरः) आलस्य, प्रमाद तथा क्रोधादि से रहित (नियतः) नियमपूर्वक दृढ़ होकर (आसीनासु, आसीनः) बैठी हुई गौ के पीछे बैठ जावे (व्रजंतीषु, अनुव्रजेत्) चलती हुई के पीछे चले (तथा) और (तिष्ठन्तीषु, अनुतिष्ठेत्) खड़ी हुई के साथ खड़ा रहे,—(आतुरां) किसी रोग से पीड़ित (चौरव्याघ्रादिभिः, भयैः) चोर तथा व्याघ्र आदि के भय से (अभिशस्तां) व्याकुल हुई (वा) अथवा (पङ्कलग्नां) कीचड़ में फंसी हुई गौ को (सर्वोपायैः, विमोचयेत्) सब उपायों से छुड़ावे ॥

उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ।
न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥११४॥
आत्मनो यदि वान्येषां गृहे क्षेत्रेऽथवा खले ।
भक्षयन्तीं न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम् ॥११५॥

पदा०—(उष्णे) गरमी (शीते) शीत (वर्षति) वर्षा (वा) अथवा (मारुते, भृशं, वाति) अधिक वायु के चलने

में (शक्तितः) यथाशक्ति (गोः, त्राणं, अकृत्वा) गौ की रक्षा न करके (आत्मनः, न, कुर्वीत) अपना बचाव न करे,— (आत्मनः) अपने (अन्येषां) दूसरे के (गृहे, क्षेत्रे, अथवा, खले) घर में, खेत में अथवा खलियान में (भक्षयन्तीं) भक्षण करती हुई गौ को (च) और (पिबन्तं, वत्सकं) दूध पीते हुए उसके बछड़े को (न, कथयेत्) प्रसिद्ध न करे ॥

अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति ।
स गोहत्याकृतं पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ॥ ११६ ॥

पदा०—(यः) जो (गोघ्नः) गोहत्यारा (अनेन, विधिना) इस विधान से (गां, अनुगच्छति) गौ की सेवा करता है (सः) वह (त्रिभिः, मासैः) तीन मास में (गोहत्याकृतं, पापं) गोहत्या से किये पाप को (व्यपोहति) नष्ट करता है ॥

वृषभैकादशागाश्च दद्यात्सुचरितव्रतः ।
अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ॥११७॥

पदा०—(सुचरितव्रतः) भलेप्रकार उपरोक्त प्रायश्चित्त व्रत करके (वृषभैकादशागाः, च) एक बैल तथा दश गाय (दद्यात्) देवे, और (अविद्यमाने) इतना न हो तो (सर्वस्वं) अपना सर्वस्व धन (वेदविद्भ्यः, निवेदयेत्) वेद के जानने वाले ब्राह्मणों को देदेवे ॥

एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः ।
अवकीर्णिवर्ज्यं शुद्ध्यर्थं चान्द्रायणमथापि वा ॥११८॥

पदा०—(अवकीर्णि, वर्ज्यं) अवकीर्णि को छोड़ (उपपातकिनः, द्विजाः) अन्य उपपातकी द्विज भी (शुद्ध्यर्थं) अपनी

शुद्धि के लिये (एतत्, एव, व्रतं) यह ही व्रत (वा, अथवा) अथवा (चान्द्रायणं, कुर्युः) चान्द्रायण व्रत करें ॥

हुत्वाग्नौ विधिवद्धोमानन्तश्च समेत्यृचा ।
वातेन्द्रगुरुवह्नीनां जुहुयात्सर्पिषाहुतीः ॥११९॥

पदा०—(विधिवत्, अग्नौ, होमान्, हुत्वा) विधिपूर्वक अग्नि में होम करके (अनन्तः) पीछे (स मा इति ऋचा) "सं मा सिञ्चन्तु मरुतः संपूषा सं बृहस्पतिः" अथर्व० ७।३।३३।१ इस ऋचा द्वारा (वातेन्द्रगुरुवह्नीनां) मरुत, इन्द्र, बृहस्पति तथा अग्नि के निमित्त (सर्पिषा, आहुतीः, जुहुयात्) घृत से आहुति दे ॥

सं०—अब "अवकीर्णी" का लक्षण कथन करते हैं:—

कामतो रेतसः सेकं व्रतस्थस्य द्विजन्मनः ।
अतिक्रमं व्रतस्याहुर्धर्मज्ञा ब्रह्मवादिनः ॥१२०॥

पदा०—(व्रतस्थस्य) ब्रह्मचर्य्यव्रत को धारण करने वाले (द्विजन्मनः) द्विज की (कामतः) इच्छा से (रेतसः, सेकं) वीर्य्यस्खलन को (ब्रह्मवादिनः, धर्मज्ञाः) वेद के जानने वाले धर्मज्ञ पुरुष (व्रतस्य, अतिक्रमं) ब्रह्मचर्य्यव्रत का खण्डित होना "अवकीर्णित्व" (आहुः) कहते हैं अर्थात् ब्रह्मचारी स्त्री का संग करके "अवकीर्णी" होता है ॥

मारुतं पुरुहूतं च गुरुं पावकमेव च ।
चतुरो व्रतिनोऽभ्येति ब्राह्मंतेजोऽवकीर्णिनः ॥१२१॥

पदा०—(व्रतिनः, अवकीर्णिनः) व्रत वाले अवकीर्णि का

(ब्राह्मंतेजः) ब्रह्मतेज (मारुतं, पुरुहूतं, गुरुं, च, पावकं) मारुत, इन्द्र, गुरु और अग्नि, इन (चतुरः) चारो में (अभ्येति) चला जाता है, "इसलिये इन चारो को आहुति देकर पुनः उस ब्रह्मतेज को प्राप्त करे तब उसका पातक निवृत्त होता है" औरः-

एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते वसित्वा गर्दभाजिनम् ।
सप्तागारांश्चरेद्भैक्षं स्वकर्म परिकीर्तयन् ॥१२२॥

पदा०-(एतस्मिन्, एनसि, प्राप्ते) इस पाप के प्राप्त होने पर (गर्दभाजिनं, वसित्वा) गधे की खाल ओढ़ के (स्वकर्म, परिकीर्तयन्) अपने किये अवकीर्णिरूप पाप को प्रसिद्ध करता हुआ (सप्त, आगारान्, भैक्षं, चरेत्) सात घरों से भिक्षा मांगे ॥

तेभ्यो लब्धेन भैक्षेण वर्तयन्नेककालिकम् ।
उपस्पृशंस्त्रिषवणं त्वब्देन स विशुध्यति ॥१२३॥

पदा०-(तेभ्यः) उन सात घरों से (लब्धेन) प्राप्त हुए (भैक्षेण) भिक्षा अन्न से (एककालिकं, वर्तयन्) एक समय भोजन करता हुआ (त्रिषवणं, उपस्पृशन्) त्रिकाल स्नान करने वाला (सः) वह पापी (अब्देन,विशुध्यति) एकवर्ष में शुद्ध होता है॥

जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतममिच्छया ।
चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया ॥१२४॥

पदा०-(जातिभ्रंशकरं) जाति से गिराने वाले (अन्यतमं, कर्म) किसी एक कर्म को (इच्छया,कृत्वा) इच्छा से करके(सान्तपनं, कृच्छ्रं) "सान्तपन व्रत" और (अनिच्छया, प्राजापत्यं, चरेत्) बिना इच्छा से करने पर "प्राजापत्य व्रत" करे ॥

संकरापात्रकृत्यासु मासं शोधनमैन्दवम् ।
मलिनीकरणीयेषु तप्तः स्याद्यावकैस्त्र्यहम् ॥१२५॥

पदा०—(संकरापात्रकृत्यासु) पूर्वोक्त "संकरीकरण" तथा "अपात्रीकरण" कर्म करने पर (शोधनं) शुद्धि के लिये (मासं) एक मास तक(ऐन्दवं)चान्द्रायण व्रत करे, और(मलिनीकरणीयेषु) "मलिनीकरण" कर्मों में (त्र्यहं) तीन दिन तक (तप्तः, यावकैः, स्यात्) गरम यवागु पीने पर शुद्ध होता है ॥

तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः ।
वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः ॥१२६॥

पदा०—(वृत्तस्थे) श्रेष्ठ आचरण करने वाले (क्षत्रियस्य, वधे) क्षत्रिय के वध में (ब्रह्महत्यायाः) ब्रह्महत्या का (तुरीयः) चौथा भाग (वैश्ये) वैश्य के वध में (अष्टमांशः) आठवां भाग (तु) और (शूद्रे) शूद्र के वध में (षोडशः) सोलहवां भाग "प्रायश्चित्त" (ज्ञेयः) जानना चाहिये ॥

अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः ।
वृषभैकसहस्रा गा दद्यात्सुचरितव्रतः ॥१२७॥

पदा०—(तु) और (द्विजोत्तमः) ब्राह्मण (अकामतः) अज्ञान से (राजन्यं) क्षत्रिय को (विनिपात्य) मारकर (सुचरितव्रतः) भलेप्रकार व्रत करता हुआ (वृषभैकसहस्राः, गाः) एक बैल और हज़ार गौ (दद्यात्) देवे ॥

त्र्यब्दं चरेद्वा नियतो जटी ब्रह्महणो व्रतम् ।
वसन्दूरतरे ग्रामाद् वृक्षमूलनिकेतनः ॥ १२८ ॥

पदा०-(वा) अथवा (नियतः) जितेन्द्रिय हो (जटी) जटा धारण करके (ऽप्दं) तीन वर्ष तक (ब्रह्महणः, व्रतं) ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त (ग्रामात्, दूरतरे) ग्राम से बहुत दूर (वृक्षमूलनिकेतनः,वसन्)वृक्ष के नीचे वास करता हुआ (चरेत्)करे॥

एतदेव चरेदब्दं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः ।
प्रमाप्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्याच्चैकशतं गवाम् ॥१२९॥

पदा०-(द्विजोत्तमः) ब्राह्मण (वृत्तस्थं, वैश्यं, प्रमाप्य) सदाचारी वैश्य को मारकर (एतत्, एव) यह ही (प्रायश्चित्तं) प्रायश्चित्त (अब्दं, चरेत्) एक वर्ष तक करे (च) और (एकशतं, गवां, दद्यात्) एकसौ गाय दान देवे ॥

एतदेव व्रतं कृत्स्नं षण्मासाञ्छूद्रहा चरेत् ।
वृषभैकादशा वापि दद्याद्विप्राय गाः सिताः ॥१३०॥

पदा०-(शूद्रहा) अज्ञान से शूद्र का हनन करने वाला ब्राह्मण (एतत्, एव) इस ही (कृत्स्नं, व्रतं) संम्पूर्ण प्रायश्चित्त को (षण्मासान्) छः मास तक (चरेत्) करे (वा) और (वृषभैकादशाः, सिताः, गाः) एक बैल तथा दश श्वेत गाय (अपि) भी (विप्राय, दद्यात्) ब्राह्मणों को दान देवे ॥

मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मण्डूकमेव च ।
श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥१३१॥

पदा०-(मार्जारनकुलौ) बिलाव, न्योला (चाषं) चाष (मण्डूकं) मेडक (श्वगोधोलूककाकान्, च) कुत्ता, गोधा, उलूक

और काक, इनको मारकर भी (शूद्रहत्याव्रतं, चरेत) शूद्रहत्या का प्रायश्चित्त करे ॥

पयः पिबेत् त्रिरात्रं वा योजनं वाऽध्वनो व्रजेत् ।
उपस्पृशेत्स्रवन्त्यां वा सूक्तं वाब्दैवतं जपेत् ॥१३२॥

पदा०-(वा) अथवा (त्रिरात्रं) तीन रात्रि पर्य्यन्त (पयः, पिबेत) दूध ही पीवे (वा) वा (योजनं) योजन भर (अध्वनः, व्रजेत) मार्ग चले (वा) अथवा (स्रवन्त्यां) नदी में तीन दिन तक (उपस्पृशेत) स्नान करे (वा) वा (अब्दैवतं) जल देवता वाले "आपोहिष्ठा०" ऋग्० १०।९ इस (सूक्तं) सूक्त का (जपेत) जप करे ॥

अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः ।
पलालभारकं षण्ढे सैसकं चैकमाषकम् ॥ १३३ ॥

पदा०-(द्विजोत्तमः) ब्राह्मण (सर्पं, हत्वा) सर्प को मार कर (कार्ष्णायसीं) लोहे की (अभ्रिं, दद्यात) करछी का दान देवे (षण्ढे) नपुंसक के मारने पर (पलालभारकं) धान के पलाल का एक भार (च) और (एकमाषकं) एक माषामात्र (सैसकं) सीसा (दद्यात) दान करे ॥

घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणं तु तित्तिरौ ।
शुके द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायणम् ॥१३४॥

पदा०-(तु) और (वराहे) सूकर के मारने पर (घृतकुम्भं) घी भरकर घड़ा (तित्तिरौ) तीतर के मारने पर (तिलद्रोणं) द्रोण भर तिल (शुके) तोते के मरजाने पर (द्विहायनं,

वत्सं) दो वर्ष का बछड़ा, और (क्रौंच, हत्वा) क्रौंच पक्षी को मारकर (त्रिहायणं) तीन वर्ष का बछड़ा दान करे ॥

हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च ।
वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद्ब्राह्मणायगाम् ॥१३५॥

पदा०—(हंसं) हंस (बलाकां) बगलों की पंक्ति (बकं) बगला (बर्हिणं) मोर (वानरं) बन्दर (श्येन, भासौ, च) बाज और भास, इनको (हत्वा) मारकर (ब्राह्मणाय) ब्राह्मण को (गां, स्पर्शयेत्) गो दान करे ॥

वासोदद्याद्धयं हत्वा पंच नीलान्वृषान्गजम् ।
अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनम् ॥ १३६ ॥

पदा०—(हयं, हत्वा) घोड़े को मारकर (वासः, दद्यात्) वस्त्र देवे (गजं) हाथी को मारकर (पंच, नीलान्, वृषान्) पांच नील बैल (अनड्वाहं) बैल को मारकर (अजमेषौ) बकरी तथा भेड़, और (खरं) गधे को मारकर (एकहायनं, वत्सं, दद्यात्) एक वर्ष के बछड़े को देवे ॥

क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ।
अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम् ॥१३७॥

पदा०—(क्रव्यादान्, मृगान्, हत्वा) कच्चा मांस खाने वाले व्याघ्रादिकों को मारकर (पयस्विनीं, धेनुं, दद्यात्) दूध देने वाली गाय देवे (अक्रव्यादान्) हरिणादि को मारकर (वत्सतरीं) बछिया (तु) और (उष्ट्रं, हत्वा) ऊंट को मारकर (कृष्णलं) एक रत्ती सुवर्ण दान करे ॥

जीनकार्मुकवस्तावीन्पृथग्दद्याद्विशुद्धये ।
चतुर्णामपि वर्णानां नारीर्हत्वाऽनवस्थिताः ॥१३८॥

पदा०—(चतुर्णां, वर्णानां) चारो वर्णों की (अनवस्थिताः, नारीः) व्यभिचार से दूषित स्त्रियों को (हत्वा) मारकर (जीन-कार्मुकवस्तावीन्) चमड़े का वक्स, धनुष्, बकरी तथा भेड़, इनको क्रम से ((विशुद्धये) अपनी शुद्धि के अर्थ (पृथक्, दद्यात्) पृथक् २ देवे, अर्थात् चारो वर्णों की दूषित स्त्रियों के क्रम से अज्ञात अवस्थामें मार देने पर अपनी शुद्धि के लिये क्रमानुसार उक्त पदार्थ दान करे ॥

दानेन वधनिर्णेकं सर्पादीनामशक्नुवन् ।
एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये ॥१३९॥

पदा०—(सर्पादीनां) सर्पादि के (वधनिर्णेकं, दानेन) वध के प्रायश्चित्तार्थ दान करने में (अशक्नुवन्) असमर्थ हुआ (द्विजः) द्विज (पापापनुत्तये) पाप दूर करने के लिये (एकैकशः) एक एक (कृच्छ्रं, चरेत्) कृच्छ्रव्रत करे ॥

अस्थिमतां तु सत्वानां सहस्रस्य प्रमापणे ।
पूर्णे चानस्यनस्थ्नां तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥१४०॥

पदा०—(तु) और (अस्थिमतां) अस्थि वाले (सहस्रस्य, सत्वानां) सहस्र क्षुद्र जीवों के (प्रमापणे) मारने पर (शूद्रहत्याव्रतं, चरेत्) शूद्र के वध करने का प्रायश्चित्त करे (तु) और (अनस्थ्नां) अस्थिरहित जीवों के (अनसि, पूर्णे) एक गाड़ी भर के वध में भी वही प्रायश्चित्त करे ॥

किञ्चिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे ।
अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुध्यति॥१४१॥

पदा०-(अस्थिमतां) अस्थि वाले जीवों के (वधे) वध में ब्राह्मण को (किञ्चित्, एव, दद्यात्) चाहे कुछ ही दान देदेवे (च) और (अनस्थ्नां) विना अस्थि वालों की (हिंसायां) हिंसा में (प्राणायामेन, शुध्यति) प्राणायाम से शुद्ध होता है ॥

फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम् ।
गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम् ॥१४२॥

पदा०-(तु) और (फलदानां, वृक्षाणां) फल देने वाले वृक्षों (गुल्मवल्लीलतानां) गुल्म, वेल, लता (च) और (पुष्पितानां, वीरुधां) पुष्पितवृक्षों के (छेदने) काटने में (ऋक्शतं, जप्यं) गायत्री आदि ऋचाओं को सौ वार जपे ॥

अन्नाद्यजानां सत्वानां रसजानां च सर्वशः ।
फलपुष्पोद्भवानां च घृतप्राशो विशोधनम् ॥१४३॥

पदा०-(अन्नाद्यजानां) अन्नादि में उत्पन्न हुए (रसजानां) रसों में उत्पन्न (च) और (फलपुष्पोद्भवानां) फल फूलों में उत्पन्न हुए (सर्वशः) सम्पूर्ण (सत्वानां) जीवों के वध में (घृतप्राशः, विशोधनं) घृत के भक्षण करने से शुद्धि होती है ॥

कृष्टजानामोषधीनां जातानां च स्वयं वने ।
वृथालम्भेऽनुगच्छेद्गां दिनमेकं पयोव्रतः ॥१४४॥

पदा०-(कृष्टजानां) खेती से उत्पन्न हुए (च) और (वने, स्वयं, जातानां) वन में अपने आप उत्पन्न हुए (ओष-

धीनां) धान्यों के (वृथालम्भे) वृथा छेदन करने पर (पयोव्रतः) दुग्ध का आहार करता हुआ (एकं, दिनं, गां, अनुगच्छेत्) एक दिन गाय के पीछे चले ॥

एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यादेनो हिंसासमुद्भवम् ।
ज्ञानाज्ञानकृतं कृत्स्नं शृणुतानाद्यभक्षणे ॥१४५॥

पदा०—(एतैः, व्रतैः) इन पूर्वोक्त प्रायश्चित्तों को करके (हिंसासमुद्भवं, कृत्स्नं, एनः) हिंसा से उत्पन्न हुए सम्पूर्ण पाप जो (ज्ञानाज्ञानकृतं) जाने वा बिना जाने किये हों उनसे पुरुष (अपोह्यं, स्यात्) निवृत्त हों, अब आगे (अनाद्य, भक्षणे, शृणुत) अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण में प्रायश्चित्त सुनो ॥

अभक्ष्य पदार्थों के सेवन करने में प्रायश्चित्त

सं०—अब अभक्ष्य पदार्थों के सेवन करने में प्रायश्चित्त कथन करते हैं :—

अज्ञानाद्वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति ।
मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणान्तिकमिति स्थितिः ॥१४६॥

पदा०—(अज्ञानात्, वारुणीं, पीत्वा) अज्ञान से मदिरा पीकर (संस्कारेण, एव, शुद्ध्यति) संस्कार से ही शुद्ध होता और (मतिपूर्वं) इच्छापूर्वक पीने से (प्राणान्तिकं, अनिर्देश्यं) प्राणान्तिक वध का विधान जानना चाहिये (इति, स्थितिः) यह शास्त्र मर्यादा है ॥

अपः सुराभाजनस्था मद्यभाण्डस्थितास्तथा ।
पंचरात्रं पिबेत्पीत्वा शंखपुष्पीश्रितं पयः ॥१४७॥

पदा०—(सुराभाजनस्थाः, तथा, मद्यभाण्डस्थिताः) मद्य की बोतल तथा मद्य के पात्र में रखे हुए (अपः) जल को (पीत्वा)

पीकर (शंखपुष्पीश्रितं, पयः) शंखपुष्पी औषध को दूध में औटाकर (पंचरात्रं, पिबेत) पांच दिन तक पावे ॥

स्पृष्ट्वा दत्त्वा च मदिरां विधिवत्प्रतिगृह्य च ।
शूद्रोच्छिष्टाश्च पीत्वापः कुशवारि पिबेत्त्र्यहम् ॥१४८॥

पदा०—(मदिरां, स्पृष्ट्वा) मदिरा को स्पर्श करके (दत्वा) देकर (च) तथा (विधिवत्प्रतिगृह्य) विधिपूर्वक ग्रहण करके (च) और (शूद्रः, उच्छिष्टाः, अपः, पीत्वा) शूद्र के उच्छिष्ट पानी को पीकर (त्र्यहं, कुशवारि, पिबेत) तीन दिन तक कुश औटाकर पीवे ॥

ब्राह्मणस्तु सुरापस्य गन्धमाघ्राय सोमपः ।
प्राणानप्सु त्रिरायम्य घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥१४९॥

पदा०—(तु) और (सोमपः) सोमयज्ञ किया हुआ (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (सुरापस्य) मद्यपान करने वाले की (गन्धं, आघ्राय) गन्ध को सूंघकर (अप्सु) पानी में (प्राणान्, त्रिः, आयम्य) तीन बार प्राणायाम करके (घृतं, प्राश्य, विशुद्ध्यति) घृत खाकर शुद्ध होता है ॥

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च ।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥१५०॥

पदा०—(अज्ञानात) बिना जाने हुए (विण्मूत्रं) मल, मूत्र (च) और (सुरासंस्पृष्टं, प्राश्य) मदिरा से छुए हुए पदार्थ को खाकर (द्विजातयः, त्रयः, वर्णाः) द्विजाति तीनों वर्ण (पुनः, संस्कारं, अर्हन्ति) फिर से संस्कार योग्य होते हैं ॥

वपनं मेखलादण्डौ भैक्षचर्या व्रतानि च।
निवर्त्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥१५१॥

पदा०—(द्विजातीनां) द्विजातियों के (पुनः, संस्कारकर्मणि) फिर से उपनयन संस्कार होने में (वपनं) मुण्डन (मेखलादण्डौ) मेखला तथा दण्ड का धारण (भैक्षचर्या, व्रतानि, च) भिक्षा और व्रत, यह सब (निवर्त्तन्ते) निवृत्त होजाते हैं अर्थात् नहीं होते॥

अभोज्यानां तु भुक्त्वाऽन्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च।
जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान् पिबेत्॥१५२॥

पदा०—(अभोज्यानां) जिनका अन्न अभक्ष्य है उनका (अन्नं) अन्न (च) और (स्त्रीशूद्रोच्छिष्टं) स्त्री तथा शूद्र का उच्छिष्ट (भुक्त्वा) खाकर (च) और (अभक्ष्यं, मांसं) अभक्ष्य मांस को (जग्ध्वा) भक्षण कर लेवे, तो (सप्तरात्रं, यवान्, पिबेत्) सात दिन तक जौ के सत्तू पीवे॥

शुक्तानि च कषायांश्च पीत्वा मेध्यान्यपि द्विजः।
तावत्भवत्यप्रयतो यावत्तन्न व्रजत्यधः ॥१५३॥

पदा०—(मेध्यानि) पवित्र (अपि) भी (शुक्तानि) सिरका आदि (च) और (कषायान्) काढ़े, इनको (द्विजः) द्विज (पीत्वा) पीकर (तावत्) तबतक (अप्रयतः) अशुद्ध (भवति) होता है (यावत्) जबतक (तत्) वह पदार्थ पचकर (अधः, न, व्रजति) नीचे नहीं जाते॥

विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः।
प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१५४॥

पदा०—(विड्वराहखरोष्ट्राणां) ग्राम का सूकर, खर, ऊंट (गोमायोः) शृगाल (कपिकाकयोः) वानर तथा कौवा, इनके (मूत्रपुरीषाणि) मल मूत्र को (द्विजः) द्विजाति (प्राश्य) भक्षण कर ले तो (चान्द्रायणं, चरेत्) चान्द्रायण व्रत करे ॥

शुष्काणि भुक्त्वा मांसानि भौमानि कवकानि च ।
अज्ञातं चैव सूनास्थमेतदेव व्रतं चरेत् ॥१५५॥

पदा०—(शुष्काणि, मांसानि) सूखे मांस (भौमानि, कवकानि) भूमि में उत्पन्न हुए छत्राक आदि (च) और (अज्ञातं) बिना जाने (सूनास्थं) हिंसास्थान का मांस अर्थात् हिंसक की दुकान पर के मांस को (भुक्त्वा) भक्षण करले तो (एव) भी (एतत्) यही चान्द्रायण (व्रतं, चरेत्) व्रत करे ॥

विडालकाकाखूच्छिष्टंजग्ध्वाश्वनकुलस्य च ।
केशकीटावपन्नं च पिबेद् ब्रह्मसुवर्चलाम् ॥१५६॥

पदा०—(विडालकाकाखूच्छिष्टं) बिल्ली, काक, चूहा, इनका उच्छिष्ट (श्वनकुलस्य) कुत्ता, तथा न्योला का उच्छिष्ट (च) और (केशकीटावपन्नं) बाल तथा कीट मिले हुए अन्न का भोजन करले तो (ब्रह्मसुवर्चलां, पिबेत्) ब्रह्मसुवर्चला जिसको ब्राह्मी-सुवर्चल भी कहते हैं उसको औटाकर पीवे ॥

अभोज्यमन्नं नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता ।
अज्ञानभुक्तं तूत्तार्यं शोध्यं वाऽप्याशु शोधनैः॥१५७॥

पदा०—(आत्मनः, शुद्धिं, इच्छता) अपने को पवित्र रखने की इच्छा वाला (अभोज्यं, अन्नं, न, अत्तव्यं) निषिद्ध अन्न

का भोजन न करे (तु) और (अज्ञानभुक्तं, उत्तार्यं) बिना जाने खाये हुए को वमन करके निकाले (वा) अथवा (शोधनैः) शोधन द्रव्यों से (आशु) शीघ्र (शोध्यं) शोधन करे ॥

एषोऽनाद्यादनस्योक्तो व्रतानां विविधो विधिः ।
स्तेयदोषापहर्तॄणां व्रतानां श्रूयतां विधिः ॥ १५८ ॥

पदा०—(अनाद्यादनस्य, व्रतानां) अभक्ष्य भक्षण में जो प्रायश्चित्त हैं उनके (एषः) यह (विविधः, विधिः) विविध प्रकार के विधान (उक्तः) कहे, अब (स्तेयदोषापहर्तॄणां) चोरी के दोष दूर करने वाले (व्रतानां, विधिः) व्रतों के विधान (श्रूयतां) सुनो ॥

सं०—अब चोर के लिये प्रायश्चित्त कथन करते हैं :—

धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्द्विजोत्तमः ।
स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्राब्देन विशुद्ध्यति ॥१५९॥

पदा०—(द्विजोत्तमः) ब्राह्मण (स्वजातीयगृहात्, एव) अपनी जाति वालों के घर से ही (धान्यान्नधनचौर्याणि) धान्य, अन्न तथा धन की चोरी (कामात्) इच्छा से (कृत्वा) करके (कृच्छ्राब्देन) एकवर्ष कृच्छ्रव्रत करने से (विशुद्ध्यति) शुद्ध होता है ॥

मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च ।
कूपवापीजलानां च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥१६०॥

पदा०—(तु) और (मनुष्याणां, स्त्रीणां, क्षेत्रगृहस्य) मनुष्य, स्त्री, क्षेत्र, गृह (कूपवापीजलानां, च) कुवा, बावड़ी और जलों के (हरणे) हरण करने में (चान्द्रायणं, शुद्धिः, स्मृतं) चान्द्रायण व्रत से शुद्धि कही है ॥

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मतः ।
चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये ॥ १६१ ॥

पदा०-(अल्पसाराणां, द्रव्याणां) अल्प सार वाले अर्थात् छोटे पदार्थों की (अन्यवेश्मतः, स्तेयं, कृत्वा) दूसरे के घर से चोरी करके (आत्मशुद्धये) अपनी शुद्धि के लिये (तत्, निर्यात्य) वह पदार्थ जिसके हैं उसको देकर (सान्तपनं, कृच्छ्रं, चरेत्) सान्तपनकृच्छ्रव्रत करे, जैसाकि :—

भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च ।
पुष्पमूलफलानां च पंचगव्यं विशोधनम् ॥१६२॥

पदा०-(भक्ष्यभोज्यापहरणे) मोदक, हलवा आदि के चुराने (च) और (यानशय्यासनस्य) सवारी, शय्या, आसन (पुष्पमूलफलानां, च) पुष्प, मूल तथा फलों की चोरी में (पंचगव्यं) पंचगव्य के पीने से शुद्धि होती है ॥

तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुड़स्य च ।
चैलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥१६३॥

पदा०-(तृणकाष्ठद्रुमाणां) घास, लकड़ी, वृक्ष (शुष्कान्नस्य; गुड़स्य) शुष्क=सूखा अन्न, गुड़ (चैलचर्मामिषाणां, च) वस्त्र, चर्म और मांस के चुराने में (त्रिरात्रं) तीन दिन रात (अभोजनं, स्यात्) उपवास करे ॥

मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च ।
अयः कांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्नता॥१६४॥

पदा०-(मणिमुक्ताप्रवालानां, ताम्रस्य, रजतस्य) मणि,

मोती, मूंगा, तांबा, चांदी (अयःकांस्योपलानां, च) लोहा, कांसी और उपल=पत्थर के चुराने में (द्वादशाहं) बारह दिन तक (कणान्नता) चावल के कणों का भक्षण करे ॥

कर्पासकीटजीर्णानां द्विशफैकशफस्य च ।
पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः ॥१६५॥

पदा०—(कर्पासकीटजीर्णानां) कपास, रेशम, ऊन (च) और (द्विशफैकशफस्य) बैल आदि दो खुर वाले, घोड़ा आदि एक खुर वाले (पक्षिगन्धौषधीनां, च, रज्ज्वाः) पक्षी, इतरादि गन्ध, औषध और रस्सी के चुराने में (त्र्यहं, पयः) तीन दिन तक दूध पीकर उपवास करे ॥

एतैर्व्रतैरपोहेत पापंस्तेय कृतं द्विजः ।
अगम्यागमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥ १६६ ॥

पदा०—(द्विजः) द्विज (एतैः, व्रतैः) इन व्रतों से (स्तेय, कृतं, पापं) चोरी के पाप को (अपोहेत) दूर करे (तु) और जो (अगम्यागमनीयं) स्त्रियां गमन करने के योग्य नहीं उनमें गमन करने के पाप को (एभिः) इन वक्ष्यमाण (व्रतैः) व्रतों से (अपानुदेत) निवृत्त करे ॥

सं०—अब गमन के अयोग्य स्त्रियों से व्यभिचार करने में प्रायश्चित्त कथन करते हैं :—

गुरुतल्पव्रतं कुर्याद्रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु ।
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ॥१६७॥

पदा०—(स्वयोनिषु) सहोदर भगिनी (सख्युः, पुत्रस्य,

स्त्रीषु) मित्र की स्त्री, पुत्र की स्त्री (कुमारीष्वन्त्यजासु, च) कुमारी और चण्डाली में (रेतः, सिक्त्वा) वीर्य्य सिंचन अर्थात् इनमें गमन करने से (गुरुतल्पव्रतं, कुर्यात्) गुरु की स्त्रीगमन का प्रायश्चित्त करे ॥

पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च ।
मातुश्च भ्रातुस्तनयां गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१६८॥

पदा०—(पैतृष्वसेयीं, भगिनीं) पिता की भगिनी की लड़की (च) तथा (मातुः, स्वस्रीयां) माता की बहिन की लड़की, (च) और (मातुः, भ्रातुः, तनयां) माता के भाई की लड़की इनके साथ (गत्वा) गमन करने से (चान्द्रायणं, चरेत्) चान्द्रायण व्रत करे ॥

एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत्तु बुद्धिमान् ।
ज्ञातित्वेनानुपेयास्ताः पतति ह्युपयन्नधः ॥१६९॥

पदा०—(एताः, तिस्रः) इन तीनों को (बुद्धिमान्) बुद्धिमान् (भार्यार्थे) भार्या के अर्थ (न, उपयच्छेत्) ग्रहण न करे, अर्थात् अपनी स्त्री न बनावे (हि) क्योंकि (ज्ञातित्वेन) यह अपनी ज्ञाति होने से (अनुपेयाः) विवाह करने के अयोग्य हैं (ताः) इनके साथ (उपयन्) विवाह करने वाला (अधः, पतति) नीचता को प्राप्त होता है ॥

अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु ।
रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥१७०॥

पदा०—(पुरुषः) पुरुष (अमानुषीषु) अमानुषी योनियों

(उदक्यायां) रजस्वला (अयोनिषु) योनि से भिन्न स्थल (च) और (जले) जल में (रेतः, सिक्त्वा) वीर्य्य सिंचन करने से भी (सान्तपनं, कृच्छ्रं, चरेत्) सान्तपन कृच्छ्र व्रत करे ॥

चण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ।
पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥१७१॥

पदा०—(विप्रः) ब्राह्मण (अज्ञानतः) अज्ञान से (चण्डालान्त्यस्त्रियः) चण्डाल तथा अन्त्यजों की स्त्रियों से (गत्वा) गमन कर (च) और (भुक्त्वा) इनके यहां भोजन करके (च) तथा (प्रतिगृह्य) दान लेकर (पतति) पतित होजाता (तु) और (ज्ञानात्, साम्यं, गच्छति) जानकर करने से उन्हीं में मिल जाता है ॥

सं०—अब व्यभिचारिणी स्त्री के लिये प्रायश्चित्त कथन करते हैं:—

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि ।
यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम् ॥१७२॥

पदा०—(विप्रदुष्टां, स्त्रियं) व्यभिचारिणी स्त्री को (भर्ता) भर्ता (एकवेश्मनि) एक घर में (निरुन्ध्यात्) बन्द करे (च) और (यत्पुंसः) जो पुरुष को (परदारेषु) पराई स्त्री के गमन करने में (व्रतं, चारयेत्) प्रायश्चित्त कहा है (तत्, एनां) वही उससे करावे ॥

सा चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपयन्त्रिता ।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तदस्याः पावनं स्मृतम् ॥१७३॥

पदा०-(चेत्) यदि (सदृशेन) अपने सजातीय पुरुष से (उपयन्त्रिता) छली हुई (सा) वह स्त्री (पुनः) फिर (प्रदुष्येत्) दूषित होजाय (तु) तो (तदस्याः) इसके (पावनं) पवित्र करने वाला (कृच्छ्रं, चान्द्रायणं, एव) कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत ही (स्मृतं) कहा है, अर्थात् एकवार दूषित हुई स्त्री सजातीय पुरुष के बहकाने से फिर दूषित होजाय तो वह उक्त व्रत कर पवित्र होती है ॥

यत्करोत्येकरात्रेण वृषली सेवनात् द्विजः ।
तद्भैक्षभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥१७४॥

पदा०-(द्विजः) द्विज (वृषली, सेवनात्) वेश्या गमन से (एकरात्रेण) एक रात्रि में (यत्) जो पाप (करोति) करता है (तत्) उस पाप को (नित्यं) नित्य (भैक्षभुक्) भिक्षा मांगकर भोजन तथा (जपन्) गायत्री का जप करके (त्रिभिः, वर्षैः, व्यपोहति) तीन वर्ष में निवृत्त करता है ॥

एषा पापकृतामुक्ता चतुर्णामपि निष्कृतिः ।
पतितैः संप्रयुक्तानामिमाः शृणुत निष्कृतीः॥१७५॥

पदा०-(एषा) यह (पापकृतां) पाप करने वाले (चतुर्णां) चारो वर्णों का (निष्कृतिः) प्रायश्चित्त (उक्ता) कहा, अब (पतितैः) पापियों के साथ (संप्रयुक्तानां) संसर्ग करने वालों का (इमाः) यह (निष्कृतीः) प्रायश्चित्त (शृणुत) सुनो ॥

सं०-अब पापियों का संग करने वालों के लिये प्रायश्चित्त कथन करते हैं :—

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ।
याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु यानासनाशनात्॥१७६॥

पदा०-(पतितेन, सह) पतित के साथ (यानासनाशनात्) सवारी, आसन तथा भोजन (आचरन्) करता हुआ (संवत्सरेण) एकवर्ष में (पतति) पतित होता है (तु) और (याजनाध्यापनाद्यौनात्) याजन, अध्यापन तथा विवाह करने से एकवर्ष में (न) नहीं, किन्तु तुरन्त ही पतित होता है ॥

भाष्य-भाव यह है कि पतित के साथ एक सवारी में बैठना, एक आसन पर बैठना तथा एक पंक्ति में साथ २ भोजन करना आदि संसर्ग से पुरुष एक वर्ष में पतित होता है परन्तु पतित के साथ यज्ञ करने, पढ़ने पढ़ाने और योनि सम्बन्ध से तत्काल ही पतित होजाता है ॥

यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः ।
स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये ॥१७७॥

पदा०-(यः, मानवः) जो पुरुष (एषां) इन पतितों में से (येन) जिस पतित के साथ (संसर्गं, याति) संसर्ग करता हुआ पतित होता है (सः) वह (तत्संसर्गविशुद्धये) उस संसर्ग की शुद्धि के निमित्त (तस्य, एव, व्रतं, कुर्यात्) वही व्रत करे ॥

एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थं किञ्चित्सहाचरेत् ।
कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित् ॥ १७८ ॥

पदा०-(अनिर्णिक्तैः, एनस्विभिः) विना प्रायश्चित्त किये हुए पापियों के साथ (किंचित्सहाचरेत्) कुछ भी व्यवहार न करे (च) और (कृतनिर्णेजनान्) प्रायश्चित्त किये हुओं की (कर्हिचित्) कभी (जुगुप्सेत, न) निन्दा न करे ॥

सं०—अब शुद्ध होने पर भी संसर्ग न करने वालों का कथन करते हैं :—

बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्मतः ।
शरणागतहन्तृंश्च स्त्रीहन्तृंश्च न संवसेत् ॥ १७९ ॥

पदा०—(बालघ्नान्) बालक को मारने वाले (कृतघ्नान्) किये हुए उपकार को न मानने वाले(शरणागतहन्तॄन्,स्त्रीहन्तॄन्,च) शरण आये हुए को और स्त्री को मारने वाले के साथ (धर्मतः) धर्म से (विशुद्धान्,अपि) शुद्ध होने पर भी (न, संवसेत्) संसर्ग न करे॥

येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथाविधि ।
तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथा विध्युपनाययेत्॥१८०॥

पदा०—(येषां) जिन (द्विजानां) द्विजातियों का (यथा-विधि) विधिपूर्वक (सावित्री, अनूच्येत) गायत्री उपदेश और उपनयन (न) न कियागया हो (तान्) उनको (त्रीन्, कृच्छ्रान्, चारयित्वा) तीन कृच्छ्रव्रत कराकर (यथाविधि) शास्त्रानुसार (उपनाययेत्) उपनयन करावे ॥

प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः ।
ब्रह्मणा च परित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् ॥ १८१ ॥

पदा०—(विकर्मस्थाः) शास्त्र से विपरीत कर्म करने वाले (तु) और (ब्रह्मणा, परित्यक्ताः) वेद को न पढ़े हुए (द्विजाः) द्विज (प्रायश्चित्तं, चिकीर्षन्ति) प्रायश्चित्त करना चाहें तो (तेषां, अपि) उनको भी (एतत्, एव) यही तीन कृच्छ्र का (आदिशेत्) उपदेश करे ॥

यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् ।
तस्योत्सर्गेण शुध्यन्ति जप्येन तपसैव च ॥१८२॥

पदा०-(यत्, ब्राह्मणाः) जो ब्राह्मण (गर्हितेन, कर्मणा) निन्दित कर्म करके (धनं, अर्जयन्ति) धन कमाते हैं (तस्य) वह उसके (उत्सर्गेण) छोड़ने (च) और (जप्येन, तपसा, एव) जप तप से ही (शुध्यन्ति) शुद्ध होते हैं ॥

जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः ।
मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् ॥१८३॥

पदा०-(समाहितः) ब्राह्मण एकाग्रचित्त होकर (त्रीणि, सहस्राणि) तीन सहस्र (सावित्र्याः, जपित्वा) गायत्री का जप करके, और (गोष्ठे) गोशाला में (मासं) महीने भर तक (पयः, पीत्वा) दूध पीकर (असत्प्रतिग्रहात्, मुच्यते) बुरे दान लेने के पाप से छूटता है ॥

उपवासकृशं तं तु गोव्रजात्पुनरागतम् ।
प्रणतं प्रतिपृच्छेयुः साम्यं सौम्येच्छसीतिकिम्॥१८४॥

पदा०-(उपवासकृशं) उक्त उपवास से कृश होकर (गोव्र-जात्,पुनः,आगतं) गोशाला से पुनः आये हुए (प्रणतं) नम्रतायुक्त हुए (तं) उसको ब्राह्मण लोग (प्रतिपृच्छेयुः) पूंछे कि हे सौम्य ! (किं) क्या तू (साम्यं) हमारी बराबरी की (इच्छसि, इति) इच्छा करता है ॥

सत्यमुक्त्वा तु विप्रेषु विकिरेद्यवसं गवाम् ।
गोभिः प्रवर्त्तिते तीर्थे कुर्युस्तस्य परिग्रहम् ॥१८५॥

पदा०-(विभेषु, सत्यं, उक्त्वा) "वह निन्दित दान का लेने वाला" ब्राह्मणों के सन्मुख ठीक २ कहकर (गवां, यवसं, विकिरेत) गौओं को घास देवे (गोभिः, प्रवर्तिते, तीर्थे) गौओं से पवित्र किये तीर्थरूप स्थान में (तस्य) उसका वह ब्राह्मण (परिग्रहं, कुर्युः) ग्रहण करें अर्थात् उसके साथ समान व्यवहार वर्तें॥

व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च ।
अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥१८६॥

पदा०-(व्रात्यानां, याजनं, कृत्वा) पूर्वोक्त व्रात्य अर्थात् संस्कारहीनों को यज्ञ कराने (परेषां, अन्त्यकर्म) अपने पिता आदि से भिन्न दूसरों की अन्त्येष्टि कराने (च) और (अभिचारं, अहीनं) अहीन अभिचार=श्येनादि याग जो शत्रुवध के निमित्त किये जाते हैं, उनके करने पर (त्रिभिः, कृच्छ्रैः, व्यपोहति) तीन कृच्छ्र व्रत करने पर शुद्ध होता है ॥

शरणागतं परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः ।
संवत्सरं यवाहारस्तत्पापमपसेधति ॥ १८७ ॥

पदा०-(शरणागतं, परित्यज्य) शरण आये को परित्याग करके (विप्लाव्य, वेदं) अनधिकारी को वेद पढ़ा के (द्विजः) द्विज (यत्पापं) उस पाप से (संवत्सरं) एक वर्ष तक (यवाहारः) जौ का आहार करके (अपसेधति) निवृत्त होता है ॥

श्वसृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्भिरेव च ।
नराश्वोष्ट्रवराहैश्च प्राणायामेन शुध्यति ॥ १८८ ॥

पदा०-(श्वसृगालखरैः) कुत्ता, सियार, खर (नराश्वोष्ट्र-

वराहैः) मनुष्य, घोड़ा, ऊंट और सूकर (च) वा अन्य (ग्राम्यैः) ग्रामवासी (क्रव्याद्भिः) मांसहारी जानवरों से (दष्टः) काटा हुआ मनुष्य (प्राणायामेन, शुध्यति) प्राणायाम से शुद्ध होता है॥

षष्ठान्नकालता मासं संहिताजप एव वा ।
होमाश्च सकला नित्यमपाङ्क्त्यानां विशोधनम् ॥१८९

पदा०—(षष्ठान्नकालता) तीन दिन उपवास करके (मासं) महीने भर तक सायंकाल में भोजन करना (संहिताजपः) वेदसंहिता का पाठ (च) और (होमाः, सकलाः) सम्पूर्ण होमों को (नित्यं) नित्य करना (अपाङ्क्त्यानां) पंक्ति से बाहर किये हुओं का यह (विशोधनं) प्रायश्चित्त है ॥

उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं तु कामतः ।
स्नात्वातु विप्रो दिग्वासाःप्राणायामेनशुध्यति॥१९०॥

पदा०—(उष्ट्रयानं, खरयानं, तु) ऊंट तथा गधे की सवारी पर (कामतः, समारुह्य) इच्छा से चढ़कर (विप्रः) ब्राह्मण (दिग्वासाः) नग्न हो (स्नात्वा) स्नान करके (प्राणायामेन, शुध्यति) प्राणायाम से शुद्ध होता है ॥

विनाद्भिरप्सु वाप्यार्तः शारीरं सन्निवेश्य च ।
सचैलो बहिराप्लुत्य गामालभ्य विशुध्यति ॥१९१॥

पदा०—(विना, अद्भिः) विना जल से (वा) वा (अप्सु) जल में (शारीरं, सन्निवेश्य) मल मूत्रादि त्याग करने वाला (आर्तः, अपि) चाहे रोगी भी हो, (सचैलः) वस्त्रसहित

(बहिः) नगर के बाहर नदी में (आप्लुत्य) स्नान करके (गां, आलभ्य) गौ को स्पर्श कर (विशुध्यति) शुद्ध होता है ॥

सं०—अब नित्यकर्म के छोड़ने में प्रायश्चित्त कथन करते हैं:—

वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे ।
स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ॥१९२॥

पदा०—(वेदोदितानां) वेदप्रतिपादित (नित्यानां, कर्मणां) नित्यकर्मों के (समतिक्रमे) छूटने (च) और (स्नातकव्रतलोपे) स्नातक ब्रह्मचारी के व्रत लोप में (अभोजनं) निराहार रहना (प्रायश्चित्तं) प्रायश्चित्त है ॥

सं०—अब बड़ों के अप्रसन्न करने में प्रायश्चित्त कथन करते हैं:—

हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारं च गरीयसः ।
स्नात्वाऽनश्नन्नहः शेषमभिवाद्य प्रसादयेत् ॥१९३॥

पदा०—(ब्राह्मणः) ब्राह्मण को (हुंकारं) हुम्=चुपबैठ वा मत बोल इत्यादि शब्द (उक्त्वा) बोलकर (च) और (गरीयसः) बड़े को (त्वङ्कारं) तू, तड़ाक कहकर (स्नात्वा) स्नान करके (अहः, शेषं) शेष दिन के रहने पर (अनश्नन्) निराहार रहकर(अभिवाद्य,प्रसादयेत)हाथ जोड़ अभिवादन से प्रसन्न करे॥

ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठे वा बध्य वाससा ।
विवादे वा विनिर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥१९४॥

पदा०—(तृणेन, अपि) तृण से भी ब्राह्मण को (ताडयित्वा) मारकर (वा) वा (कण्ठे) गले में (वाससा, बध्य) कपड़ा

बांध के (वा) अथवा (विवादे, विनिर्जित्य) विवाद में जीतकर (प्रणिपत्य, प्रसादयेत्) हाथ जोड़ के उसको प्रसन्न करे ॥

अवगूर्य्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्यशोणितम् ॥१९५॥

पदा०—(विप्रस्य) ब्राह्मण को (अवगूर्य) मारने के लिये दण्डा उठाने से (कृच्छ्रं, चरेत्) कृच्छ्र प्रायश्चित्त करे (निपातने, अतिकृच्छ्रं) दण्ड मारने पर अतिकृच्छ्र (च) और (शोणितं,उत्पाद्य) रुधिर निकालकर (कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ) कृच्छ्र तथा अतिकृच्छ्र दोनों प्रायश्चित्त (कुर्वीत) करे ॥

अनुक्तनिष्कृतीनां तु पापानामपनुत्तये ।
शक्तिं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥१९६॥

पदा०—(तु) और (अनुक्तनिष्कृतीनां) जिन पापों का प्रायश्चित्त नहीं कहा (पापानां, अपनुत्तये) उन पापों की निवृत्ति के लिये (शक्तिं, च, पापं, अवेक्ष्य) शक्ति और पाप को देखकर (प्रायश्चित्तं, प्रकल्पयेत्) प्रायश्चित्त की कल्पना करे ॥

यैरभ्युपायैरेनांसि मानवो व्यपकर्षति ।
तान्वोऽभ्युपायान्वक्ष्यामि देवर्षिपितृसेवितान् ॥१९७॥

पदा०—(यैः) जिन (अभ्युपायैः) उपायों से (मानवः) मनुष्य (एनांसि) पापों को (व्यपकर्षति) दूर करता है (तान्)उन (देवर्षिपितृसेवितान्)देव,ऋषि तथा पितरों के किये हुए (अभ्युपायान्) उपायों को (वः) तुम से (वक्ष्यामि) कहता हूं ॥

सं०—अब व्रतों के लक्षण कथन करते हैं :—

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् ।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात् प्राजापत्यं चरन्द्विजः ॥१९८॥

पदा०—(प्राजापत्यं, चरन्, द्विजः) प्राजापत्य व्रत का आचरण करने वाला द्विज (त्र्यहं, प्रातः) तीन दिन प्रातःकाल (त्र्यहं, सायं) तीन दिन सायंकाल भोजन करे (त्र्यहं, अयाचितं, अद्यात्) तीन दिन विना मांगा अन्न खावे (च) और (परं, त्र्यहं) पिछले तीन दिन (न, अश्नीयात्) न खावे अर्थात् उपवास करे, "इस प्रकार बारह दिन का एक" "प्राजापत्य" व्रत होता है ॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिः कुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥१९९॥

पदा०—(गोमूत्रं, गोमयं, क्षीरं, दधिसर्पिः, कुशोदकं) गोमूत्र, गोबर, दुग्ध, दधि, घृत तथा कुशों के पानी को एक दिन पीवे (च) और इसके पीछे (एकरात्रोपवासः) एक दिन रात का उपवास करे, इसको (सान्तपनं, कृच्छ्रं, स्मृतं) "सान्तपनकृच्छ्र" कहते हैं ॥

एकैकं ग्रासमश्नीयात् त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ।
त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन् द्विजः ॥२००॥

पदा०—(अतिकृच्छ्रं, चरन्, द्विजः) अतिकृच्छ्रव्रत को करता हुआ (द्विजः) द्विज (त्र्यहाणि, पूर्ववत्) तीन दिन पहले के समान (त्रीणि) तीन समय के भोजन में (एकैकं,

ग्रासं, अश्नीयात्) एक २ ग्रास खावे अर्थात् तीन सायं; तीन प्रातः और तीन अयाचित इन ९ दिन में एक २ ग्रास भोजन करे (अन्त्यं, त्र्यहं, उपवसेत्) अन्त के तीन दिन उपवास करे इसका नाम " **अतिकृच्छ्र** " व्रत है ॥

तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् ।
प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः ॥२०१॥

पदा०—(तप्तकृच्छ्रं, चरन्, विप्रः) तप्तकृच्छ्र का आचरण करता हुआ ब्राह्मण (समाहितः) स्थिर चित्त हो (सकृत्, स्नायी) एक वार स्नान करके (जलक्षीरघृतानिलान्) जल, क्षीर, घृत तथा वायु को (प्रतित्र्यहं, उष्णान्, पिबेत्) प्रति तीन दिन गरम करके पीवे, अर्थात् तीन दिन गरम जल, तीन दिन गरम दूध, तीन दिन गरम घृत और तीन दिन उष्णवायु पीवे, इसको " **तप्तकृच्छ्र** " व्रत कहते हैं ॥

यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम् ।
पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः ॥ २०२ ॥

पदा०—(यतात्मनः, अप्रमत्तस्य) स्वस्थ तथा प्रमादरहित चित्त वाले का (द्वादशाहं, अभोजनं) बारह दिन भोजन न करना (अयं) यह (पराकोनाम, कृच्छ्रः) " **पराक** " नाम व्रत (सर्वपापापनोदनः) सब पापों को दूर करता है ॥

एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत् ।
उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ २०३ ॥

पदा०—(त्रिषवणं, उपस्पृशन्) तीन काल स्नान करता

हुआ (कृष्णे) कृष्णपक्ष में (एकैकं, पिण्डं, ह्रासयेत्) एक २ ग्रास को घटावे (च) और (शुक्ले) शुक्लपक्ष में (वर्धयेत) एक २ ग्रास बढ़ावे (एतत्) इसको (चान्द्रायणं, स्मृतम्) "चान्द्रायण" व्रत कहा है ॥

एतमेव विधिं कृत्स्नमाचरेद्यवमध्यमे ।
शुक्लपक्षादिनियतश्चरंश्चान्द्रायणं व्रतम् ॥ २०४ ॥

पदा०-(शुक्लपक्षादिनियतः) शुक्लपक्ष के आदि से (चान्द्रायणं,व्रतं) चान्द्रायण व्रत को (चरन्) करता हुआ (यवमध्यमे) यवमध्यम चान्द्रायण में (एतं, एव, विधिं) इस ही विधि को (कृत्स्नं, आचरेत्) पूर्णतया करे ॥

भाष्य-पिण्ड=ग्रास को घटाने बढ़ाने और त्रिकाल स्नान करता हुआ " यवमध्यम चान्द्रायण " को शुक्लपक्ष से प्रारम्भ करके इस विधि को पूर्ण करे, अर्थात् जिस प्रकार "यव" बीच में मोटा और दोनों किनारों पर पतला होता है इसी प्रकार शुक्लपक्ष में आरम्भ करके ग्रासवृद्धि करता हुआ कृष्णपक्ष में ग्रास घटने से बीच के ग्रासों का भोजन यवमध्य के समान बड़ा होता है, इसको " यवचान्द्रायण " कहते हैं ॥

अष्टावष्टौ समश्नीयात् पिण्डान् मध्यन्दिने स्थिते ।
नियतात्मा हविष्याशी यति चान्द्रायणं चरन् ॥२०५॥

पदा०-(नियतात्मा) जितेन्द्रिय (हविष्याशी) हविष्य अन्न का भोजन करने वाला (यतिचान्द्रायणं, चरन्) "यतिचान्द्रायण" व्रत का आचरण करता हुआ (मध्यन्दिने, स्थिते)

मध्यान्ह में (अष्टौ, अष्टौ, पिण्डान्) आठ २ ग्रासों का (समश्नीयात्) भोजन करे ॥

चतुरः प्रातरश्नीयात् पिण्डान् विप्रः समाहितः ।
चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं स्मृतम् ॥२०६॥

पदा०-(समाहितः) स्वस्थचित्त हुआ (विप्रः) विप्र (चतुरः, पिण्डान्) चार ग्रास (प्रातः) प्रातःकाल और (चतुरः) चार (सूर्ये) सूर्य के (अस्तमिते) छिपने पर (अश्नीयात्) भक्षण करे, इसको (शिशुचान्द्रायणं, स्मृतं) "शिशुचान्द्रायण" कहते हैं ॥

यथा कथञ्चित्पिण्डानां तिस्रोऽशीतीः समाहितः ।
मासेनाश्नन्हविष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम् ॥२०७॥

पदा०-(समाहितः) स्वस्थ हुआ (हविष्यस्य) हविष्य अन्न के (तिस्रः, अशीतीः) तीनवार अस्सी अर्थात् दो सौ चालीस (पिण्डानां) ग्रासों को (यथाकथंचित्) कभी २ विना नियम (मासेन, अश्नन्) महीने भर खाने वाला (चन्द्रस्य, सलोकतां, एति) चन्द्र समान निर्मल देह को प्राप्त होता है ॥

एतद्रुद्रास्तथादित्या वसवश्चाचरन्व्रतम् ।
सर्वाकुशलमोक्षाय मरुतश्च महर्षिभिः ॥२०८॥

पदा०-(एतत्,व्रतं) इस चान्द्रायण व्रत को (रुद्राः,आदित्याः, तथा, वसवः, च, मरुतः) रुद्र, आदित्य तथा वसु और मरुत संज्ञा वाले विद्वानों ने (महर्षिभिः) महर्षियों के साथ (सर्वाकुशलमोक्षाय) सब पापों की निवृत्ति के लिये (आचरन्) किया ॥

महाव्याहृतिभिर्होमः कर्तव्यः स्वयमन्वहम् ।
अहिंसा सत्यमक्रोधमार्जवं च समाचरेत् ॥२०९॥

पदा०-(महाव्याहृतिभिः) "उक्त व्रत करने वाले को" भूः, भुवः, स्वः, इन महाव्याहृतियों से (स्वं) अपने आप (अन्वहं) प्रतिदिन (होमः) होम (कर्तव्यः) करना चाहिये (च) और (अहिंसासत्यमक्रोधमार्जवं) अहिंसा, सत्य, अक्रोध तथा नम्रता का (समाचरेत) आचरण करे ॥

त्रिरह्नस्त्रिर्निशायां च सवासा जलमाविशेत् ।
स्त्रीशूद्रपतितांश्चैव नाभिभाषेत कर्हिचित् ॥२१०॥

पदा०-(त्रिरह्नः) दिन में तीन वार (त्रिःनिशायां) रात्रि में तीन वार (सवासाः) वस्त्रों सहित (जलं, आविशेत) जल में स्नान करे (च) और (स्त्रीशूद्रपतितान्) स्त्री, शूद्र तथा पतितों से (कर्हिचित) कदापि (अभिभाषेत) संभाषण (न) न करे॥

स्थानासनाभ्यां विहरेदशक्तोऽधः शयीत वा ।
ब्रह्मचारी व्रती च स्याद्गुरुदेवद्विजार्चकः ॥२११॥

पदा०-(स्थानासनाभ्यां) स्थान तथा आसन द्वारा (विहरेत) विहार करे (वा) अथवा (अशक्तः) अशक्त हो तो (अधः, शयीत) भूमि पर सोवे (च) और (व्रती, ब्रह्मचारी) व्रतयुक्त ब्रह्मचर्य्य को धारण करने वाला (गुरुदेवद्विजार्चकः) गुरु, देव तथा ब्राह्मण का सत्कार करने वाला (स्यात) हो ॥

सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः ।
सर्वेष्वेव व्रतेष्वेवं प्रायश्चित्तार्थमादृतः ॥ २१२ ॥

पदा०—(शक्तितः) यथाशक्ति (नित्यं) नित्य (सावित्रीं) गायत्री (च) और अन्य (पवित्राणि) पवित्र मन्त्रों को (जपेत्) जपे (एवं) तथा (सर्वेषु, व्रतेषु) सब व्रतों में (एवं) इसी प्रकार (प्रायश्चित्तार्थं) प्रायश्चित्त के लिये (आदृतः) श्रद्धा से अनुष्ठान करे॥

एतैर्द्विजातयः शोध्या व्रतैराविष्कृतैनसः ।
अनाविष्कृतपापांस्तु मन्त्रैर्होमैश्च शोधयेत् ॥२१३॥

पदा०—(आविष्कृतैनसः) जिनका पाप प्रकट है ऐसे (द्विजातयः) द्विजाति (एतैः, व्रतैः) इन व्रतों से (शोध्याः) शुद्ध करने योग्य हैं (तु) और (अनाविष्कृतपापान्) जिनका पाप प्रकट नहीं हुआ, ऐसे द्विजातियों को (मन्त्रैः, होमैः, च) मन्त्र तथा होम से (शोधयेत्) शुद्ध करे ॥

सं०—अब पाप से मुक्त होने के लिये उपाय कथन करते हैंः—

ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्ययनेन च ।
पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि ॥२१४॥

पदा०—(पापकृत्) पाप करने वाला (ख्यापनेन) पाप के प्रकाश करने (अनुतापेन) पश्चात्ताप करने (तपसा) तप करने (च) और (अध्ययनेन) अध्ययन करने से (पापात्, मुच्यते) पाप से छूटता है (तथा) तथा (आपदि) आपत्ति काल में (दानेन) दान से पवित्र होता है ॥

यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वानुभाषते ।
तथा तथा त्वचेवाहिस्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥२१५॥

पदा०—(नरः) मनुष्य (यथा, यथा) जैसे २ (अधर्मं)

अधर्म (कृत्वा) करके (स्वयं, अनुभाषते) अपने आप कहता है (तथा, तथा) वैसे २ ही (तेन) उस (अधर्मेण) अधर्म से (मुच्यते) छूटता है, (इव) जैसे (अहिः) सर्प (त्वचा) कैंचुली से छूट जाता है॥

यथायथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति।
तथा तथा शरीरं तत्तेनाधर्मेण मुच्यते॥२१६॥

पदा०—(तस्य, मनः) उस पापी पुरुष का मन (यथा, यथा) जैसे २ (दुष्कृतं, कर्म) दुष्कर्म करके (गर्हति) निन्दा करता अर्थात् उसका कीर्तन करता है (तथा, तथा) वैसे २ ही (तत्) वह (शरीरं) शरीर (तेन) उस (अधर्मेण) अधर्म से (मुच्यते) छूट जाता है॥

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः॥२१७॥

पदा०—(हि) निश्चयपूर्वक (पापं, कृत्वा) पाप करके (संतप्य) सन्ताप युक्त होने से (तस्मात्, पापात्, प्रमुच्यते) उस पाप से छूट जाता है (नैवं, कुर्यां, पुनः, इति) "फिर न करूंगा" इस प्रकार पश्चात्तापपूर्वक कहकर (सः) वह पापी (तु) निश्चयकरके (निवृत्त्या) उस पाप से निवृत्त होकर (पूयते) पवित्र होता है॥

एवं संचिन्त्य मनसा प्रेत्य कर्मफलोदयम्।
मनोवाङ्मूर्त्तिभिर्नित्यं शुभकर्म समाचरेत्॥२१८॥

पदा०—(प्रेत्य) मरकर लोक में (कर्मफलोदयं) कर्म के फल का उदय होता है (एवं) इस प्रकार (मनसा) मन से

(संचिन्त्य) विचारकर (मनोवाङ्मूर्तिभिः) मन, वाणी तथा शरीर से (शुभकर्म, समाचरेत्) शुभ कर्म करे ॥

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम् ।
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन्द्वितीयं न समाचरेत् ॥२१९॥

पदा०—(यदि) यदि (अज्ञानात्, वा, ज्ञानात्) अज्ञान से अथवा ज्ञानपूर्वक (विगर्हितं, कर्म, कृत्वा) अशुभ कर्म करके (तस्मात्, विमुक्तिं, अन्विच्छन्) उससे छूटने की इच्छा वाला (द्वितीयं, न, समाचरेत्) फिर उसको दूसरी बार न करे ॥

यस्मिन्कर्मण्यस्य कृते मनसः स्यादलाघवम् ।
तस्मिंस्तावत्तपः कुर्याद्यावत्तुष्टिकरं भवेत् ॥२२०॥

पदा०—(यस्मिन्, कर्मणि, कृते) जिस अनुष्ठान के करने से (अस्य) इस पाप करने वाले के (मनसः) मन को (अलाघवं, स्यात्) असन्तोष हो (तस्मिन्) उसमें (तावत्) तबतक (तपः) अनुष्ठान (कुर्यात्) करे (यावत्) जबतक इसको (तुष्टिकरं, भवेत्) सन्तोष होवे, अर्थात् प्रायश्चित्त करने वाले का मन जब तक प्रायश्चित्त करने से सन्तुष्ट न हो तब तक बराबर प्रायश्चित्त करता रहे, और जब मन सन्तुष्ट तथा प्रसन्नता होजाय तब उसको छोड़कर आगे कुकर्म न करे ॥

तपो मूलमिदं सर्वं दैवमानुषकं सुखम् ।
तपो मध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभिः ॥२२१॥

पदा०—(इदं, सर्वं) इस सब (दैवमानुषकं, सुखं) देव तथा मनुष्यों के सुख का (मध्यं, अन्तं) आदि, मध्य और

अन्त भी (वेददर्शिभिः) वेद के जानने वाले (बुधैः) पण्डितों ने (तपः, प्रोक्तं) तप को ही कहा है, अर्थात् जितना सुख है वह सब तप से ही उपलब्ध होता है तप से बिना कोई पुरुष सुख अनुभव नहीं कर सक्ता ॥

सं०—अब चारो वर्णों का तप कथन करते हैं :—

ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् ।
वैश्यस्य तु तपो वार्त्ता तपः शूद्रस्य सेवनम्॥२२२॥

पदा०—(ब्राह्मणस्य, तपः, ज्ञानं) ब्राह्मण का ज्ञान उपलब्ध करना अर्थात् वेद शास्त्र का पढ़ना पढ़ाना तप है (क्षत्रस्य) क्षत्रिय का तप (रक्षणं) रक्षा करना (वैश्यस्य, तपः, वार्त्ता) वैश्य का तप व्यापार करना (तु) और (शूद्रस्य,तपः, सेवनं) शूद्र का तप सेवा करना है ॥

सं०—अब तप की महिमा वर्णन करते हैं :—

ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः ।
तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥२२३॥

पदा०—(संयतात्मानः) इन्द्रियों को जीतने वाले (फलमूलानिलाशनाः) कन्द, मूल, फलों का आहार करने वाले (ऋषयः) ऋषि (त्रैलोक्यं, सचराचरं) तीनों लोकों के चराचर को (तपसा, एव, प्रपश्यन्ति) तप से ही देखते हैं, अर्थात् इस सब का तप ही कारण है ॥

औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितिः ।
तपसैव प्रसिध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम् ॥२२४॥

पदा०-(औषधानि, अगदः, विद्या) औषध, आरोग्यता विद्या (च) और (विविधा, दैवी, स्थितिः) नानाप्रकार की देवताओं की स्थिति, यह सब (तपसा, एव, प्रसिध्यन्ति) तप ही से प्राप्त होते हैं (हि) क्योंकि (तेषां) इनका (साधनं) साधन (तपः) तप ही है ॥

यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम् ।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥२२५॥

पदा०-(यत्, दुस्तरं) जो दुस्तर है (यत्, दुरापं) जो दुःख से प्राप्त होने योग्य है (यत्, दुर्गं) जहां दुःख से पहुंचा जाता है (च) और (दुष्करं) जो कठिन कर्म है (तत्सर्वं) वह सब (तपसा, साध्यं) तप से सिद्ध करने योग्य है अर्थात् सब कठिन कार्य्यों की सिद्धि तप से ही होती है (हि) क्योंकि (तपः, दुरतिक्रमं) तप दुष्करकर्म का साधन है ॥

महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्यकारिणः ।
तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्बिषात्ततः ॥२२६॥

पदा०-(महापातकिनः) महापातकी (च) और (शेषाः) दूसरे (अकार्यकारिणः) उपपातकी, यह दोनों (सुतप्तेन) भलेप्रकार किये हुए (तपसा, एव) तप से ही (ततः) उस (किल्बिषात्) पाप से (मुच्यन्ते) छूटते हैं ॥

यत्किंचिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्त्तिभिर्जनाः ।
तत्सर्वं निर्दहन्त्याशु तपसैव तपोधनाः ॥२२७॥

पदा०-(जनाः) मनुष्य (मनोवाङ्मूर्त्तिभिः) मन, वाणी

तथा देह से (यत्) जो (किंचित्, एनः) कुछ पाप (कुर्वन्ति) करते हैं (तत्, सर्वं) उस सब को (तपोधनाः) तप करने वाले (तपसा, एव) तप से ही (आशु) शीघ्र (निर्दहन्ति) नष्ट करते हैं ॥

तपसैव विशुद्धस्य ब्राह्मणस्य दिवौकसः ।
इज्याश्चप्रतिगृह्णन्ति कामान् संवर्धयन्ति च ॥२२८॥

पदा०-(तपसा) तप से (विशुद्धस्य) शुद्ध हुए (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण के यज्ञ में (दिवौकसः) देवता (इज्याः) हवि को (प्रतिगृह्णन्ति) ग्रहण करते (च) और (कामान्) कामनाओं को (संवर्धयन्ति) पूर्ण करते हैं ॥

इत्येतत्तपसो देवा महाभाग्यं प्रचक्षते ।
सर्वस्यास्य प्रपश्यन्तस्तपसः पुण्यमुत्तमम् ॥२२९॥

पदा०-(अस्य) इस (सर्वस्य) सम्पूर्ण (तपसः, उत्तमं, पुण्यं) तप के उत्तम पुण्य को (प्रपश्यन्तः) देखते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (इति, एतत्, तपसः) इस प्रकार यह तप का (महाभाग्यं, प्रचक्षते) माहात्म्य कहते हैं ॥

वेदाभ्यासोऽन्वहंशक्त्या महायज्ञक्रियाक्षमा ।
नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥२३०॥

पदा०-(अन्वहं) प्रतिदिन (शक्त्या) यथाशक्ति (वेदा- ...) वेद का अध्ययन (महायज्ञक्रियाः) पञ्चमहायज्ञों का अनुष्ठान, और (क्षमा) किये हुए अपराध का सहन करना, यह (महापातकजानि) महापातक से उत्पन्न हुए (पापानि, अपि) पापों को भी (आशु) शीघ्र (नाशयन्ति) नाश करते हैं ॥

यथैधस्तेजसा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् ।
तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदवित् ॥२३१॥

पदा०-(यथा) जैसे (वह्निः) अग्नि (तेजसा) अपने तेज से (प्राप्तं) समीप के (एधः) काष्ठ को (क्षणात्) क्षणभर में (निर्दहति) जला देता है (तथा) वैसे ही (वेदवित्) वेद के जानने वाला (ज्ञानाग्निना) ज्ञानरूप अग्नि से (सर्वं) सम्पूर्ण (पापं) पापों को (दहति) भस्म कर देता है ॥

एनसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन्नपनोदनम् ।
अवेत्यृचं जपेदब्दं यत्किंचेदमितीति वा ॥२३२॥

पदा०-(स्थूलसूक्ष्माणां, एनसां) छोटे बड़े पापों का (अपनोदनं) नाश (चिकीर्षन्) करने की इच्छा वाला पुरुष (अवेत्यृचं) "अव ते हेड वरुण नमोभिः" ऋ० १।२४।१४ ऋचा (वा) अथवा "यत्किञ्चेदं वरुण दैव्ये जने" ऋ० ७।८९।५ (इति) इस ऋचा को (अब्दं, जपेत्) एकवर्ष तक जपे ॥

प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वा चान्नं विगर्हितम् ।
जपंस्तरत्समन्दीयं पूयते मानवस्त्र्यहात् ॥२३३॥

पदा०-(अप्रतिग्राह्यं, प्रतिगृह्य) दान के अयोग्य का दान लेकर (च) और (विगर्हितं, अन्नं, भुक्त्वा) निन्दित अन्न का भोजन करके (तरत्समन्दीयं) "तरत्समन्दी" ऋ० ८।५८ इत्यादि ऋचाओं का (त्र्यहात्) तीन दिन (जपन्) जप करता हुआ (मानवः) मनुष्य (पूयते) पवित्र होता है ॥

सोमारौद्रं तु बह्वेना मासमभ्यस्य शुध्यति ।
स्रवन्त्यामाचरन्स्नानमर्यम्णामिति च तृचम् ॥२३४॥

पदा०-(सोमारौद्रं) " सोमा रुद्रा " ऋ० ६ । ७४ । १-४ (अर्यम्णामिति) " अर्यमणं वरुणं " ऋ० ४ । २ । ५, इन (तृचं) तीन ऋचाओं का (मासं, अभ्यस्य) एक मास अभ्यास करने से (स्रवन्त्यां) वहती हुई नदी में (स्नानं) स्नान (आचरन्) करता हुआ (वहेना) वहुत पापों वाला (शुध्यति) शुद्ध होजाता है ॥

अब्दार्धमिन्द्रमित्येतदेनस्वी सप्तकं जपेत् ।
अप्रशस्तं तु कृत्वाप्सु मासमासित भैक्षभुक् ॥२३५॥

पदा०-(एनस्वी) पापी पुरुष (अब्दार्धं) छः मास तक (इन्द्रं, इति) " इन्द्रं मित्रं वरुणं० " ऋ० १ । १०६ । १-७ इत्यादि (एतत्) इन (सप्तकं, जपेत्) सात ऋचाओं का जप करे (तु) और (अप्सु) जलों में (अप्रशस्तं) मल मूत्र त्याग अथवा कोई न करने योग्य कर्म (कृत्वा) करके (मासं,भैक्षभुक्, आसीत) एक मास तक भिक्षा के भोजन से निर्वाह करे ॥

मन्त्रैः शाकलहोमीयैरब्दं हुत्वा घृतं द्विजः ।
सुगुर्वप्यपहन्त्येनो जप्त्वा वा नम इत्यृचम् ॥२३६॥

पदा०-(शाकलहोमीयैः, मन्त्रैः) " देवकृतस्यैनसो० " यजु० ८।१३ इत्यादि शाकलहोमीय मन्त्रों से (द्विजः) द्विज (घृतं) घृत का (अब्दं) एक वर्ष तक (हुत्वा) हवन करके (वा) अथवा (नमः, इति) "नमो मित्रस्य वरुणस्य०" ऋग्०१०।३७।१ इस (ऋचं) ऋचा को (जप्त्वा) जपकर एक वर्ष में (सुगुरु, एनः, अपि) वड़े पाप को भी (अपहन्ति) नाश करता है ॥

महापातकसंयुक्तोऽनुगच्छेद्गाः समाहितः ।
अभ्यस्याब्दं पावमानीर्भैक्षाहारो विशुध्यति ॥२३७॥

पदा०–(महापातकसंयुक्तः) बड़े २ पातकों से युक्त हुआ (समाहितः) जितेन्द्रिय होकर (गाः, अनुगच्छेत्) गौओं को चरावे, और (पावमानीः) पवमान देवता वाले "यः पावमानी" ऋग्० ९।१।१८ इत्यादि नवमें मण्डल की सम्पूर्ण ऋचाओं को (अब्दं, अभ्यस्य) एक वर्ष तक पढ़ता हुआ (भैक्षाहारः) भिक्षा का अन्न खाकर (विशुध्यति) शुद्ध होता है ॥

अरण्ये वा त्रिरभ्यस्य प्रयतो वेदसंहिताम् ।
मुच्यते पातकैः सर्वैः पराकैः शोधितस्त्रिभिः ॥२३८॥

पदा०–(त्रिभिः) पूर्वोक्त तीन (पराकैः) पराक व्रतों से (शोधितः) शुद्ध हुआ द्विज (अरण्ये) वन में (प्रयतः) स्वस्थ चित्त हो (वेदसंहितां) वेदसंहिता को (त्रिः, अभ्यस्य) तीन वार पढ़कर (सर्वैः, पातकैः, मुच्यते) सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है ॥

त्र्यहं तूपवसेद्युक्तस्त्रिरन्होऽभ्युपयन्नपः ।
मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिर्जपित्वाऽघमर्षणम् ॥२३९॥

पदा०–(तु) और (युक्तः) नियम में तत्पर हो (त्र्यहं, उपवसेत्) तीन रात्रि उपवास करे (अन्हः) दिन के (त्रिः) तीनों काल (अपः) जल से (अभ्युपयन्) स्नान करता हुआ (त्रिः) तीन वार (अघमर्षणं, जपित्वा) "ऋतं च सत्यं च०" ऋ०१०।१९०।१-३ इत्यादि अघमर्षण मन्त्र जपकर (सर्वैः, पातकैः, मुच्यते) सब पापों से छूट जाता है॥

सं०–अब अघमर्षण सूक्त का माहात्म्य कथन करते हैं:—

यथाऽश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः ।
तथाऽघमर्षणं सूक्तं सर्वपापप्रनोदनम् ॥२४०॥

पदा०–(यथा) जैसे (अश्वमेधः) अश्वमेध यज्ञ (क्रतुराट्)

सब यज्ञों में श्रेष्ठ, और (सर्वपापापनोदनः) सब पापों को दूर करने वाला है (तथा) इसी प्रकार (अघमर्षणं, सूक्तं) अघमर्षण सूक्त (सर्वपापापनोदनं) सब पापों का नाशक है ॥

सं०—अब ऋग्वेद का माहात्म्य कथन करते हैं :—

हत्वा लोकानपीमांस्त्रीनश्नन्नपि यतस्ततः ।
ऋग्वेदं धारयन्विप्रो नैनः प्राप्नोति किञ्चन ॥२४१॥

पदा०—(इमान्, त्रीन्, लोकान्, अपि) इन तीनों लोकों को भी (हत्वा) मारकर और (यतः, ततः, अपि) जहां तहां के अन्न को भी (अश्नन्) खाता हुआ (ऋग्वेदं, धारयन्) ऋग्वेद को धारण करने वाला (विप्रः) ब्राह्मण (किंचन) कुछ भी (एनः) पाप को (प्राप्नोति) प्राप्त (न) नहीं होता ॥

सं०—अब चारो वेदों का माहात्म्य वर्णन करते हैं :—

ऋक्संहितां त्रिरभ्यस्य यजुषां वा समाहितः ।
साम्नां वा सरहस्यानां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२४२॥

पदा०—(ऋक्संहितां) ऋक्संहिता (यजुषां) यजुर्वेद संहिता (वा) अथवा (साम्नां) सामवेद संहिता को (सरहस्यानां) अङ्गोपाङ्ग सहित (समाहितः) समाहित चित्त होकर (त्रिः, अभ्यस्य) तीन वार आवृत्ति करने से (सर्वपापैः, प्रमुच्यते) सब पापों से मुक्त होजाता है ॥

यथा महाह्रदं प्राप्य क्षिप्तं लोष्टं विनश्यति ।
तथा दुश्चरितंसर्वं वेदे त्रिवृतिमज्जति ॥ २४३ ॥

पदा०—(यथा) जैसे (महाह्रदं) बड़ी नदी में (क्षिप्तं) फेंका हुआ (लोष्टं) मिट्टी का ढेला (प्राप्य) जल को प्राप्त

होकर (विनश्यति) नाश होजाता अर्थात गल जाता है (तथा) इसी प्रकार (सर्वं, दुश्चरितं) सम्पूर्ण पाप (त्रिवृति) तीन आवृति किये हुए (वेदे) वेद में (मज्जति) डूब जाते हैं अर्थात फिर उनका फल नहीं मिलता ॥

सं०—अब वेद की त्रिवृति का कथन करते हैं :—

ऋचो यजूंषि चान्यानि सामानि विविधानि च ।
एष ज्ञेयस्त्रिवृद्वेदो यो वेदैनं स वेदवित् ॥ २४४ ॥

पदा०—(ऋचः) ऋग्वेद (यजूंषि) यजुर्वेद (सामानि) सामवेद के (विविधानि) नानाप्रकार के मन्त्र (च) और (अन्यानि) वेदों के अंग, उपांग (एष) यह सब (त्रिवृद्वेदः, ज्ञेयः) त्रिवृद्वेद जानने चाहियें (यः) जो ब्राह्मण (एनं) इस त्रिवृद्वेद को (वेद) जानता है (सः) वह (वेदवित) वेद के जानने वाला है ॥

आद्यं यत्त्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन् प्रतिष्ठिता ।
स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित् ॥ २४५ ॥

पदा०—(यत) जो (त्र्यक्षरं) तीन अक्षर वाला (आद्यं) सब वेदों का आदि अर्थात सब से प्रथम (ब्रह्म) ओंकाररूप ब्रह्म (यस्मिन्) जिसमें (त्रयी) तीनों वेद (प्रतिष्ठिता) स्थित हैं (सः) वह (अन्यः) दूसरा (त्रिवृद्वेदः) त्रिवृद्वेद (गुह्यः) गुप्त=अंकुरवत है (यः) जो (तं) उसको (वेद) जानता है अर्थात जो परमात्मा का ज्ञाता है (सः) वह (वेदवित) वेद का जानने वाला कहाता है ॥

इति मानवार्य्यभाष्ये
एकादशोऽध्यायः
समाप्तः

ओ३म्

अथ द्वादशोऽध्यायः

सं०—अब कर्मफल कथन करते हुए मोक्ष का क्रमपूर्वक वर्णन करते हैं:—

शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवम् ।
कर्मजा गतयो नृणामुत्तमाधममध्यमाः ॥ १ ॥

पदा०—(मनोवाग्देहसंभवं) मन, वाणी तथा शरीर से उत्पन्न (शुभाशुभफलं, कर्म) शुभाशुभ फल वाले कर्मों द्वारा (नृणां) मनुष्यों की (उत्तमाधममध्यमाः) उत्तम, मध्यम तथा अधम (गतयः) गति (कर्मजाः) कर्मों से उत्पन्न होती है, अर्थात् शुभाशुभ कर्मों द्वारा ही मनुष्य जन्मान्तर को प्राप्त होता है॥

तस्येह त्रिविधस्यापि त्र्यधिष्ठानस्य देहिनः ।
दशलक्षणयुक्तस्य मनोविद्यात्प्रवर्तकम् ॥ २ ॥

पदा०—(त्र्यधिष्ठानस्य) मन, वाणी तथा देह में स्थित (त्रिविधस्य, अपि) उत्तम, मध्यम, अधम भेद होने पर भी (तस्य) उस (देहिनः) जीवात्मा के (दशलक्षणयुक्तस्य) दशलक्षणयुक्त कर्मों का (प्रवर्तकं) चलाने वाला (मनः) मन को (विद्यात्) जाने ॥

सं०—अब कर्मों के दश लक्षण कथन करते हैं:—

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्टचिन्तनम् ।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥ ३ ॥

पदा०—(परद्रव्येषु, अभिध्यानं) (१) अन्याय से परद्रव्य लेने की इच्छा (मनसा, अनिष्टचिन्तनं) (२) मन से दूसरे का बुरा चाहना (च) और (वितथाभिनिवेशः) (३) "परलोक में कुछ नहीं, यह शरीर ही आत्मा है" ऐसा विश्वास (त्रिविधं, मानसं, कर्म) यह तीन प्रकार के मानस कर्म हैं ॥

पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः ।
असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥ ४ ॥

पदा०—(पारुष्यं) (१) कठोर भाषण (अनृतं) (२) झूठ बोलना (सर्वशः, पैशुन्यं) (३) सब प्रकार की चुगली (च) और (असंबद्धप्रलापः) (४) निष्प्रयोजन बकवाद करना (चतुर्विधं) यह चार प्रकार के (वाङ्मयं, स्यात्) वाणी के कर्म हैं ॥

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥ ५ ॥

पदा०—(अदत्तानां, उपादानं) (१) विना दिये हुए दूसरे का धन लेना (च) तथा (अविधानतः, हिंसा) (२) निरपराधी को दण्ड देना (च) और (परदारोपसेवा) (३) दूसरे की स्त्री से गमन करना (त्रिविधं, शारीरं, स्मृतं) यह तीन प्रकार के शारीरिक कर्म कहे हैं, यह दश कर्म हैं ॥

मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम् ।
वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम् ॥६॥

पदा०—(मानसं) मन से किये हुए (शुभाशुभं) शुभ अशुभ कर्मों का फल (मनसा, एव) मन से ही (वाचा, कृतं) वाणी से किये हुओं का (वाचा) वाणी से (च) और (कायिकं, कर्म) देह

से किये हुए कर्मों का फल (कायेन, एव) देह से ही (अयं) यह प्राणी (उपभुङ्क्ते) भोगता है, इसलिये पुरुष को उचित है कि:—

त्रिविधं च शरीरेण वाचाचैव चतुर्विधम्।
मनसा त्रिविधं कर्म दशाऽधर्मपथांस्त्यजेत् ॥ ७ ॥

पदा०—(त्रिविधं, शरीरेण) तीन प्रकार के शारीरिक (चतुर्विधं, वाचा) चार प्रकार के वाचिक (च) और (त्रिविधं, मनसा, कर्म) तीन प्रकार के मानसिक कर्म (दश, अधर्मपथान्, त्यजेत्) यह दश अधर्म के मार्ग त्यागदे ॥

शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् ॥ ८ ॥

पदा०—(शरीरजैः, कर्मदोषैः) शारीरिक कर्मदोषों से (नरः) मनुष्य (स्थावरतां) वृक्षस्थ योनि (वाचिकैः) वाणी के कर्मदोषों से पक्षी तथा मृग की योनि और (मानसैः) मन के कर्मदोषों से (अन्त्यजातितां) अन्त्यज=चण्डालादिकों के कुल में उत्पन्न होता है ॥

सं०—अब "त्रिदण्डी का लक्षण कथन करते हैं:—

वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च।
यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते ॥९॥

पदा०—(वाग्दण्डः) वाणी का दमन=वाणी को अशुभ कर्मों से रोकना (मनोदण्डः) मन का दमन (च) और (कायदण्डः) देह का दमन (एते, यस्य, बुद्धौ, निहिताः) यह तीनों जिस की बुद्धि में स्थित हैं (सः) वह (त्रिदण्डी, इति) "त्रिदण्डी" (उच्यते) कहाता है ॥

त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः ।
कामक्रोधौ तु संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति॥१०॥

पदा०—(मानवः) मनुष्य (सर्वभूतेषु) सम्पूर्ण जीवों पर (एतत्, त्रिदण्डं, निक्षिप्य) उक्त तीनों प्रकार के दण्डों का दमन करके अर्थात् वाणी, मन तथा काय से किसी को दुःख न देकर (तु) और (कामक्रोधौ, संयम्य) काम क्रोध को रोक के (ततः) फिर (सिद्धिं) सिद्धि को (नियच्छति) प्राप्त होता है ॥

योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते ।
यः करोति च कर्माणि स भूतात्मोच्यते बुधैः ॥११॥

पदा०—(यः) जो (अस्य) इस (आत्मनः) आत्मा को (कारयिता) कर्मों में प्रवृत्त कराने वाला है (तं) उसको (बुधैः) पण्डित लोग (क्षेत्रज्ञं, प्रचक्षते) "क्षेत्रज्ञ" कहते (च) और (यः) जो (कर्माणि, करोति) कर्म करता है (सः) उसको (भूतात्मा) शरीर सहित आत्मा (उच्यते) कहते हैं॥

जीवसंज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम् ।
येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥ १२ ॥

पदा०—(सर्वदेहिनां) सम्पूर्ण देहधारियों के (सहजः) साथ रहने वाला (अन्यः) दूसरा (जीवसंज्ञः, अन्तरात्मा) जीवसंज्ञा वाला अन्तरात्मा=अन्तःकरण है (येन) जिससे (जन्मसु) जन्मों में (सर्वं) सम्पूर्ण (सुखदुःखं) सुख दुःख (वेदयते) जाने जाते हैं ॥

तावुभौ भूतसंपृक्तौ महान् क्षेत्रज्ञ एव च ।
उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठतः ॥१३॥

पदा०—(महान्) अन्तःकरण (च) और (क्षेत्रज्ञः) क्षेत्रज्ञ (तौ, उभौ) यह दोनों (भूतसंपृक्तौ) पृथिव्यादि पंचभूतों से मिले हुए हैं, (च) और (एव) निश्चय करके (उच्चावचेषु, भूतेषु, स्थितं) छोटे बड़े सब भूतों में स्थित (तं) उस परमात्मा के (व्याप्य, तिष्ठतः) आश्रय रहते हैं ॥

असंख्या मूर्त्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः ।
उच्चावचानि भूतानि सततं चेष्टयन्ति याः ॥१४॥

पदा०—(तस्य) उस परमात्मा के (मूर्त्तयः) शरीर तुल्य पंचभूतसमुदाय से (असंख्याः, शरीरतः) असंख्य शरीर (निष्पतन्ति) निकलते हैं (याः) जो (उच्चावचानि, भूतानि) छोटे बड़े भूतों में परिणत हुए (सततं, चेष्टयन्ति) निरन्तर कर्म करते हैं॥

पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनां नृणाम् ।
शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम् ॥१५॥

पदा०—(दुष्कृतिनां, नृणां) दुष्ट कर्म करने वाले मनुष्यों का (प्रेत्य) मरकर (पंचभ्यः, मात्राभ्यः) पंचमात्रा से (यातनार्थीयं) दुःख सहन करने के लिये (ध्रुवं) निश्चयपूर्वक (अन्यत्, शरीरं) दूसरा शरीर (उत्पद्यते) उत्पन्न होता है ॥

तेनानुभूयता यामीः शरीरेणेह यातनाः ।
तास्वेव भूतमात्रासु प्रलीयन्ते विभागशः ॥१६॥

पदा०—(तेन, शरीरेण) उस शरीर से (यामीः) परमात्मा की दीहुई (ताः) उन (यातनाः) यातनाओं को (इह) यहां (अनुभूय) भोगकर प्राणी (तासु, एव) उन्हीं (भूतमात्रासु)

भूतमात्राओं में (विभागशः) विभागपूर्वक=यथा योग्य (प्रली-यन्ते) लीन होजाते हैं ॥

सोऽनुभूयासुखोदर्कान्दोषान्विषयसंगजान् ।
व्यपेतकल्मषोऽभ्येति तावेवोभौ महौजसौ ॥ १७ ॥

पदा०—(सः) वह प्राणी (असुखोदर्कान्) अधिक दुःख वाले (विषयसंगजान्) विषयों से उत्पन्न हुए (दोषान्) दोषों=दुःखों को (अनुभूय) भोगकर (व्यपेतकल्मषः) पाप को दूर करके (महौजसौ) महान् पराक्रम वाले (तौ, एव, उभौ) उन्हीं दोनों=महान् तथा क्षेत्रज्ञ को (अभ्येति) प्राप्त होता है ॥

तौ धर्मं पश्यतस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह ।
याभ्यां प्राप्नोति संपृक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम् ॥१८॥

पदा०—(तौ) महान् और क्षेत्रज्ञ वह दोनों (अतन्द्रितौ) आलस्य रहित होकर (तस्य) उस प्राणी के (धर्मं, च, पापं) धर्म तथा पाप को (सह) साथ २ (पश्यतः) देखते हैं (याभ्यां) जिन धर्म अधर्म से (संपृक्तः) मिला हुआ प्राणी (इह) इस लोक (च) और (प्रेत्य) परलोक में (सुखासुखं) सुख दुःख को (प्राप्नोति) प्राप्त होता है ॥

यद्याचरति धर्मं स प्रायशोऽधर्ममल्पशः ।
तैरेव चावृतो भूतैः स्वर्गे सुखमुपाश्नुते ॥ १९ ॥

पदा०—(यदि) यदि (सः) वह जीव (प्रायशः) अधिकता से (धर्मं) धर्म (च) और (अल्पशः) न्यूनता से (अधर्मं) अधर्म का (आचरति) आचरण करता है तो (तैः, भूतैः)

उन पृथिव्यादि पंचभूतों से (एव) ही (आवृतः) मिलकर (स्वर्गे) स्वर्ग में (सुखं) सुख (उपाश्नुते) भोगता है ॥

यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः ।
तैर्भूतैः स परित्यक्तो यामीः प्राप्नोति यातनाः ॥२०॥

पदा०-(तु) और (यदि) यदि (प्रायशः, अधर्मं) जीव अधर्म का अधिक तथा (धर्मं, अल्पशः, सेवते) धर्म का अल्प सेवन करे तो (सः) वह (तैः, भूतैः) उन भूतों से (परित्यक्तः) त्यागा हुआ (यामीः, यातनाः, प्राप्नोति) यम की यातनाओं को प्राप्त होता है, अर्थात् वही पंचभूत प्रतिकूल हुए उसको दुःख का कारण होते हैं ॥

यामीस्ता यातनाः प्राप्य स जीवो वीतकल्मषः ।
तान्येवपंचभूतानि पुनरप्येति भागशः ॥ २१ ॥

पदा०-(ताः) उन (यामीः) यम की (यातनाः) यातनाओं को (प्राप्य) प्राप्त होकर (सः, जीवः) वह जीव (वीतकल्मषः) पापरहित होने पर अर्थात् किये हुए अधर्म को भोगकर (पुनः) फिर (तानि, एव) उन्हीं (पंच, भूतानि) पंच भूतों को (भागशः) क्रम से (अप्येति) प्राप्त होजाता है, इसलिये उचित है कि :—

एता दृष्ट्वाऽस्य जीवस्य गतीः स्वेनैव चेतसा ।
धर्मतोऽधर्मतश्चैव धर्मे दध्यात्सदा मनः ॥ २२ ॥

पदा०-(अस्य, जीवस्य) इस जीव की (धर्मतः, च, अधर्मतः) धर्म तथा अधर्म से उत्पन्न हुई (एताः) इन (गतीः) गतियों को (स्वेन, एव) अपने ही (चेतसा) चित्त से (दृष्ट्वा)

देखकर (सदा) सर्वदा (धर्मे,एव) धर्म में ही (मनः) मन को (दध्याद) लगावे ॥

सत्त्वं रजस्तमश्चैव त्रीन्विद्यादात्मनो गुणान् ।
यैर्व्याप्येमान्स्थितो भावान्महान्सर्वानशेषतः ॥२३॥

पदा०—(सत्वं,रजः,तमः) सत्वगुण,रजोगुण,तमोगुण (त्रीन्, गुणान्) इन तीनो गुणों को (आत्मनः) आत्मा=प्रकृति के (गुणान्) गुण (विद्याद) जाने (यैः) जिन गुणों से (व्याप्य) व्याप्त हुआ यह (महान्)"महान्" (इमान्) इन स्थावर जंगमरूप (सर्वान्भावान्) सब भावों को (अशेषतः) सम्पूर्ण रूप से व्याप्त कर (स्थितः) स्थित है ॥

यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते ।
स तदा तद्गुणं प्रायं तं करोति शरीरिणम् ॥२४॥

पदा०—(यदा) जब (एषां) उक्त तीनों गुणों में से (यः) जो (गुणः) गुण (देहे) देह में (साकल्येन) सम्पूर्णतया (अतिरिच्यते) अधिक होता है (तदा) तब (सः) वह (तं) उस (शरीरिणं) प्राणी को (तद्गुणं, प्रायं) प्रायः उसी गुण वाला (करोति) कर देता है ॥

सं०—अब सत्वादि तीनो गुणों का लक्षण कथन करते हैं:—

सत्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतम् ।
एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः ॥ २५ ॥

पदा०—(ज्ञानं, सत्वं) पदार्थ का यथार्थ जानना "सत्व" (अज्ञानं, तमः) विपरीत ज्ञान का होना "तम" और (रागद्वेषौ,

रजः, स्मृतं) रागद्वेषरूप "रज" को कहा है (सर्वभूताश्रितं) सब भूतों के आश्रित (एतत्, वपुः) यह शरीर (एतेषां) इन सत्वादि गुणों की (व्याप्तिमत्) व्याप्ति वाला होता है ॥

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किंचिदात्मनि लक्षयेत् ।
प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्वं तदुपधारयेत् ॥ २६ ॥

पदा०—(तत्र, आत्मनि) उस आत्मा में (यत्, किंचित्) जो कुछ (प्रीतिसंयुक्तं) प्रीति से मिला हुआ (प्रशान्तं, शुद्धाभं, इव) शान्त, प्रकाशरूपसा (लक्षयेत्) जाना जावे (तत्) उसको (सत्वं) "सत्व" (उपधारयेत्) जानना चाहिये ॥

यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः ।
तद्रजोऽप्रतिघं विद्यात्सततं हारिदेहिनाम् ॥ २७ ॥

पदा०—(तु) तथा (यत्) जो (दुःखसमायुक्तं) दुःख से मिला हुआ (आत्मनः, अप्रीतिकरं) आत्मा को अप्रसन्न करने वाला (देहिनां, सततं) और जो सर्वदा देहधारियों को (अप्रतिघं, हारि) विषयों के प्रतिकूल खींचने वाला है (तत्, रजः, विद्यात्) उसको "रज" जाने ॥

यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥ २८ ॥

पदा०—(तु) और (यत्) जो (मोहसंयुक्तं) मोह से युक्त (अव्यक्तं) प्रकट न होने वाला (विषयात्मकं) विषयों की ओर खींचने वाला (स्यात्) हो और जो (अप्रतर्क्यं, अविज्ञेयं)

तर्क तथा बुद्धि द्वारा जानने के योग्य न हो (तत्) उसको (तमः) "तम" (उपधारयेत्) जानो ॥

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः ।
अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥२९॥

पदा०—(एतेषां, त्रयाणां, गुणानां) इन सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों का (अग्र्यः) उत्तम (मध्यः) मध्यम (च) और (जघन्यः) अधम (यः) जो (फलोदयः) फल का उदय है (तं) उसको (अशेषतः) सम्पूर्ण रूप से (प्रवक्ष्यामि) कथन करता हूं ॥

सं०—अब सत्त्वादि गुणों का फल कथन करते हैं :—

वेदाभ्यासस्तपोज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्विकं गुणलक्षणम् ॥३०॥

पदा०—(वेदाभ्यासः) वेद का अभ्यास (तपः) तप (ज्ञानं) ज्ञान (शौचं) पवित्रता (इन्द्रियनिग्रहः) इन्द्रियों को विषयों से रोकना (धर्मक्रिया) धर्माचरण (च) और (आत्मचिन्ता) आत्मा का मनन करना (सात्विकं, गुणलक्षणं) यह सात्विक गुण के लक्षण हैं ॥

आरम्भरुचिताधैर्यमसत्कार्यपरिग्रहः ।
विषयोपसेवाचाजस्रं राजसं गुणलक्षणम् ॥३१॥

पदा०—(आरम्भरुचिता) कार्य्यारम्भ करने में रुचि होना (अधैर्यं) फिर धैर्य न होना (असत्कार्यपरिग्रहः) निषिद्ध कर्म का आचरण करना (च) और (अजस्रं) निरन्तर विषय भोग में रत रहना, यह (राजसं) राजस (गुणलक्षणं) गुण के लक्षण हैं ॥

लोभःस्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता ।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥ ३२ ॥

पदा०—(लोभः) लोभ (स्वप्नः) निन्द्रा (अधृतिः) अधीरता (क्रौर्यं) क्रूरता (नास्तिक्यं) नास्तिकता (भिन्नवृत्तिता) अनाचारी होना (याचिष्णुता) याचना का स्वभाव (च) और (प्रमादः) प्रमादी होना, यह (तामसं, गुणलक्षणं) तामस गुण के लक्षण हैं ॥

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां त्रिषु तिष्ठताम् ।
इदं सामासिकं ज्ञेयं क्रमशो गुणलक्षणम् ॥ ३३ ॥

पदा०—(त्रिषु) तीनों कालों में (तिष्ठतां) विद्यमान (एतेषां, त्रयाणं, गुणानां) इन तीनो गुणों के (क्रमशः) क्रमपूर्वक (इदं) यह (सामासिकं) संक्षेपरूप से (गुणलक्षणं) गुणलक्षण (ज्ञेयं) जानने चाहियें ॥

सं०—अब संक्षेप से उक्त तीनों के गुणलक्षण वर्णन करते हैं:—

यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जति ।
तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम् ॥ ३४ ॥

पदा०—(यत्कर्म,कृत्वा) जिस कर्म को करके (च) तथा (कुर्वन्) करते हुए (च) और (करिष्यन्) आगे आगे का संकल्प करते हुए लज्जति) लज्जा आती है अर्थात् तीनों कालों में पुरुष जिस काम को करके लज्जित होता है (तद्, सर्वं) उस सब को (विदुषा) विद्वान् लोग (तामसं, गुणलक्षणं) तमोगुण का लक्षण (ज्ञेयं) जानें॥

येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम् ।
नच शोचत्यसंपत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् ॥ ३५ ॥

पदा०-(येन) जिस (कर्मणा) कर्म से (अस्मिन्, लोके) इस लोक में (पुष्कलां, ख्यातिं, इच्छति) बड़ी ख्याति की इच्छा करे (च) और (असंपत्तौ) असिद्धि में (न, शोचति) शोक न करे (तत्, राजसं, विज्ञेयं) उसको राजस जाने ॥

यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन् ।
येन तुष्यति चात्माऽस्य तत्सत्वगुणलक्षणम् ॥३६॥

पदा०-(यत्) जिस कर्म की (सर्वेण) सर्वथा (ज्ञातुं) जानने के लिये (इच्छति) इच्छा करता (च) और (यत्) जिस कर्म को (आचरन्) करता हुआ (न, लज्जति) लज्जित नहीं होता (च) तथा (येन) जिस कर्म से (अस्य, आत्मा, तुष्यति) इसके मन को आनन्द हो (तत्, सत्वगुणलक्षणम्) वह सत्वगुण का लक्षण है ॥

सं०-अब उक्त तीनों का प्रधान लक्षण कथन करते हैं:—

तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते ।
सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ॥३७॥

पदा०-(तमसः, लक्षणं, कामः) तम का प्रधान लक्षण "काम" (तु) तथा (रजसः, अर्थः, उच्यते) रज का प्रधान लक्षण "अर्थ" और (सत्वस्य, लक्षणं, धर्मः) सत्व का प्रधान लक्षण "धर्म" है, (एषां) इनमें (यथा, उत्तरं, श्रैष्ठ्यं) क्रम से उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है, अर्थात् विषयों में लम्पट रहना "तमोगुण" का, सब प्रकार से अर्थोपार्जन में ही लगे रहना और उसी में सुख मानना "रजोगुण" का, और धर्म को मुख्य समझना, उसी में प्रीति होना "सत्वगुण" का प्रधान लक्षण है ॥

येन यस्तु गुणेनैषां संसारान्प्रतिपद्यते ।
तान्समासेन वक्ष्यामि सर्वस्यास्य यथाक्रमम् ॥३८॥

पदा०-(एषां) इन सत्वादि गुणों में (येन, गुणेन) जिस गुण से जीव (संसारान्, प्रतिपद्यते) जिस गति को प्राप्त होता है (अस्य, सर्वस्य) उस सब के (तान्) उन गुणों को (समासेन) संक्षेप से (यथाक्रमं) क्रमपूर्वक (वक्ष्यामि) कहता हूं ॥

सं०-अब सत्वादि गुणों से जीवों की गति का वर्णन करते हैं:-

देवत्वं सात्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः ।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः॥३९॥

पदा०-(सात्विकाः, देवत्वं) सात्विक=सतोगुणी पुरुष देवत्व=देवयोनि (राजसाः, मनुष्यत्वं) राजस=रजोगुणी मनुष्यत्व=मनुष्ययोनि (च) और (तामसाः, नित्यं, तिर्यक्त्वं) तामस=तमोगुणी सदा तिर्यक्=पशुपक्षियों की योनि को (यान्ति) प्राप्त होते हैं (इति) इस प्रकार (एषा) यह (त्रिविधा, गतिः) तीन प्रकार की गति है ॥

त्रिविधा त्रिविधैषा तु विज्ञेया गौणिकी गतिः ।
अधमा मध्यमाऽग्र्या च कर्मविद्याविशेषतः ॥४०॥

पदा०-(एषा) यह (त्रिविधा, गौणिकी, गतिः) तीन प्रकार की सत्वादि गति "जो ऊपर कही है" वह (कर्मविद्याविशेषतः) कर्म तथा विद्या की विशेषता से (तु) फिर भी (अधमा, मध्यमा, अग्र्या, च) अधम, मध्यम और उत्तम भेद से (त्रिविधा) तीन २ प्रकार की (विज्ञेया) जाननी चाहिये ॥

सं०—अब तमोगुण की तीन प्रकार की गति कथन करते हैं :—

स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाः सकच्छपाः ।
पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः ॥४१॥

पदा०—(स्थावराः) वृक्षादि (कृमिकीटाः) कृमि, कीट (मत्स्याः) मत्स्य (सर्पाः) सर्प (कच्छपाः) कच्छप=कछुवे (पशवः) पशु (च, एव) और इसी प्रकार (मृगाः) मृग, यह (तामसी) तमोगुण की (जघन्या) निकृष्ट (गतिः) गति जाननी चाहिये ॥

हस्तिनश्च तुरङ्गाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिता ।
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च मध्यमा तामसी गतिः ॥४२॥

पदा०—(हस्तिनः) हाथी (तुरङ्गाः) घोड़े (शूद्राः) शूद्र (गर्हिताः, म्लेच्छाः) निन्दित म्लेच्छ (सिंहाः) सिंह (व्याघ्राः) व्याघ्र (च) और (वराहाः) वराह, यह (तामसी) तमोगुण की (मध्यमा, गतिः) मध्यम गति जाननी चाहिये ॥

चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दाम्भिकाः ।
रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गतिः ॥४३॥

पदा०—(चारणाः) चारण=प्रशंसा करने वाले (सुपर्णाः) पक्षी (च) तथा (दाम्भिकाः, पुरुषाः) दम्भ करने वाले पुरुष (रक्षांसि) राक्षस=हिंसक (च) और (पिशाचाः) पिशाच=अनाचारी दुष्ट (तामसीषु, उत्तमा, गतिः) यह तम प्रधान गतियों में उत्तम गति जाननी चाहिये ॥

सं०—अब रजोगुण की तीन प्रकार की गति कथन करते हैं :—

झल्लामल्लानटाश्चैव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः ।
द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः ॥४४॥

पदा०—(झल्लामल्लानटाः) झल्ल, मल्ल, नट (च) तथा (शस्त्रवृत्तयः) शस्त्र बनाकर उपजीविका करने वाले (च) और (द्यूतपानप्रसक्ताः) जुवा तथा मद्यपान में आसक्त (पुरुषाः) पुरुष (राजसी, जघन्या, गति) यह रजोगुण की निकृष्ट गति है ॥

भाष्य—जिनका यथासमय वेदारम्भसंस्कार न हुआ हो ऐसे क्षत्रिय से क्षत्रिया में उत्पन्न हुए क्षत्रियों को झल्ल तथा मल्ल कहते हैं अर्थात् लाठी आदि से युद्ध करने वाले को "झल्ल" और भुजाओं से युद्ध करने वाले को "मल्ल" कहते हैं, शेष सब स्पष्ट है॥

राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञश्चैव पुरोहिताः ।
वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः ॥ ४५ ॥

पदा०—(राजानः) राजा (क्षत्रियाः) क्षत्रिय (राज्ञः, पुरोहिताः) राजा के पुरोहित (च) और (वादयुद्धप्रधानाः) वादविवाद वा झगड़ा करने में आसक्त (मध्यमा, राजसी, गतिः) यह मध्यम राजस गति है ॥

गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचराश्च ये ।
तथैवाप्सरसः सर्वा राजसीषूत्तमा गतिः ॥ ४६ ॥

पदा०—(गन्धर्वाः) गन्धर्व (गुह्यकाः) गुह्यक (यक्षाः) यक्ष (च) और (ये) जो (विबुधानुचराः) देवताओं के

अनुचर हैं वह (तथा, एव) इसी प्रकार (सर्वाः) सब (अप्सरसः) अप्सरा (राजसीषूत्तमा, गतिः) यह रजोगुण की गतियों में उत्तम गति है ॥

सं०—अब सत्वगुण की त्रिविध गति वर्णन करते हैं :—

तापसा यतयो विप्रा ये च वैमानिका गणाः ।
नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्विकी गतिः ॥४७॥

पदा०—(तापसा) तप करने वाले (यतयः) यति=संन्यासी (विप्राः) ब्राह्मण (च) तथा (वैमानिकाः, गणाः) विमानों पर घूमने वाले गण (नक्षत्राणि) नक्षत्र=प्रकाशक (च) और (दैत्याः) दैत्य (सात्त्विकी, प्रथमा, गतिः) यह सत्वगुण की अधम गति है ॥

यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सराः ।
पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीया सात्विकी गतिः ॥४८॥

पदा०—(यज्वानः) यज्ञ करने वाले (ऋषयः) ऋषि (देवाः) देव (वेदाः) वेद (ज्योतींषि) सूर्य्यादि ज्योती (च) और (वत्सराः) काल के ज्ञाता (पितरः) पितर (च) तथा (साध्याः) साध्य (द्वितीया, सात्त्विकी, गतिः) यह मध्यम सात्विक गति है ॥

ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महानव्यक्तमेव च ।
उत्तमां सात्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥ ४९ ॥

पदा०—(ब्रह्मा) ब्रह्मा (विश्वसृजः) विश्व को उत्पन्न

करने वाले (धर्मः) धर्म (महान्) सृष्टि के आरम्भक ब्रह्माण्डादि (च) और (अव्यक्तं) अव्यक्त=मूलप्रकृति को (मनीषिणः) विद्वान् लोग (उत्तमां, सात्विकीं, गतिं, आहुः) उत्तम सात्विक गति कहते हैं ॥

एष सर्वः समुद्दिष्टस्त्रिप्रकारस्य कर्मणः ।
त्रिविधस्त्रिविधः कृत्स्नः संसारः सार्वभौतिकः ॥५०॥

पदा०—(एषः, सर्वः) यह सम्पूर्ण (त्रिप्रकारस्य, कर्मणः) तीन प्रकार के कर्मों का (त्रिविधः, त्रिविधः) तीन २ प्रकार का (सार्वभौतिकः) सार्वभौतिक (कृत्स्नः) सब (संसारः) संसार (समुद्दिष्टः) कहा ॥

इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्यासेवनेन च ।
पापान्संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमाः ॥५१॥

पदा०—(इन्द्रियाणां, प्रसङ्गेन) इन्द्रियों के पीछे चलने (च) और (धर्मस्य, असेवनेन) धर्म के आचरण न करने से (अविद्वांसः) मूर्ख (नराधमाः) अधम मनुष्य (पापान्, संसारान्, संयान्ति) निन्दित गतियों को प्राप्त होते हैं ॥

यां यां योनिं तु जीवोऽयं येन येनेह कर्मणा ।
क्रमशो याति लोकेऽस्मिंस्तत्तत्सर्वं निबोधत॥५२॥

पदा०—(अयं, जीवः) यह जीव (येन, येन, कर्मणा) जिस २ कर्म से (यां, यां, योनिं) जिस २ योनि को (अस्मिन्, लोके) इस लोक में (याति) प्राप्त होता है (तत्, तत्, सर्वं) वह सब (क्रमशः) क्रमपूर्वक (निबोधत) सुनो ॥

सं०—अब मनुष्यवर्ग के लिये कर्मानुसार योनियों की प्राप्ति कथन करते हैं :—

श्वसूकरखरोष्ट्राणां गोजाविमृगपक्षिणाम् ।
चण्डालपुक्कसानां च ब्रह्महा योनिमृच्छति ॥५३॥

पदा०—(ब्रह्महा) ब्रह्महत्या करने वाले (श्वसूकरखरोष्ट्राणां) कुत्ता, सूकर, गर्दभ, ऊंट (गोजाविमृगपक्षिणां) गौ, बकरी, मृग, पक्षी (चण्डाल, च, पुक्कसानां) चण्डाल और पुक्कसों की (योनिं) योनि को (ऋच्छति) प्राप्त होते हैं ॥

कृमिकीटपतंगानां विड्भुजांचैव पक्षिणाम् ।
हिंस्राणां चैव सत्वानां सुरापो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥५४॥

पदा०—(सुरापः) मद्यपान करने वाले (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (कृमिकीटपतङ्गानां) कीड़े, मकोड़े, पतंग (विड्भुजां, पक्षिणां) मैला खाने वाले पक्षियों (च, एव) और इसी प्रकार के अन्य (हिंस्राणां) हिंसक (सत्वानां) जीवों की योनि को (व्रजेत्) प्राप्त होते हैं ॥

लूताहिसरठानां च तिरश्चां चाम्बुचारिणाम् ।
हिंस्राणां च पिशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः॥५५॥

पदा०—(स्तेनः, विप्रः) चोरी करने वाले ब्राह्मण (लूताहिसरठानां) मकड़ी, सर्प, सरठ=करकेंटा (च) तथा (अम्बुचारिणां) जल में विचरने वाले (तिरश्चां) तिर्यक्गामी जीवों (च) और (हिंस्राणां) हिंसा करने वाले (पिशाचानां) पिशाचों की योनि को (सहस्रशः) हज़ारों बार प्राप्त होते हैं ॥

तृणगुल्मलतानां च क्रव्यादां दंष्ट्रिणामपि ।
क्रूरकर्मकृतां चैव शतशो गुरुतल्पगः ॥ ५६ ॥

पदा०—(गुरुतल्पगः) गुरुपत्नी से गमन करने वाले (तृणगुल्मलतानां) घास, गुच्छे, लता (च) तथा (क्रव्यादां, दंष्ट्रिणां) बड़ी २ दाढ़ों वाले मांसाहारी गिद्धादि पक्षी, सिंहादि पशु (च) और (क्रूरकर्मकृतां) क्रूर कर्म करने वालों की योनि को (अपि) निश्चयकरके (शतशः) सैकड़ों वार प्राप्त होते हैं ॥

हिंस्रा भवन्ति क्रव्यादाः कृमयोऽभक्ष्यभक्षिणः ।
परस्परादिनः स्तेनाः प्रेतान्त्यस्त्रीनिषेविणः ॥५७॥

पदा०—(हिंस्राः) हिंसक स्वभाव वाले पुरुष (क्रव्यादाः) गिद्धादि कच्चा मांस खाने वाले होते (अभक्ष्यभक्षिणः, कृमयः) अभक्ष्य के भक्षण करने वाले कृमि तथा (स्तेनाः) चोर (परस्परादिनः) परस्पर एक दूसरे को खाने वाले होते हैं, और (अन्त्यस्त्रीनिषेविणः) चण्डाल की स्त्री से गमन करने वाले भी (प्रेताः) मरकर इसी गति को (भवन्ति) प्राप्त होते हैं ॥

संयोगं पतितैर्गत्वा परस्यैव च योषितम् ।
अपहृत्य च विप्रस्वं भवति ब्रह्मराक्षसः ॥ ५८ ॥

पदा०—(पतितैः, गत्वा) पतितों के साथ रहने (च) तथा (परस्य, योषितं, संयोगं) दूसरे की स्त्री के साथ संयोग करने (च) और (विप्रस्वं, अपहृत्य) ब्राह्मण का धन चुराने से (ब्रह्मराक्षसः) ब्रह्मराक्षस (भवति) होता है ॥

मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवः ।
विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु ॥ ५९ ॥

पदा०—(मानवः) मनुष्य (लोभेन) लोभ से (मणिमुक्ता-प्रवालानि) मणि, मोती, मूंगा (च) और (विविधानि, रत्नानि) नाना प्रकार के रत्नों को (हृत्वा) चुराकर (हेमकर्तृषु) हेमकार पक्षियों में (जायते) उत्पन्न होता है ॥

धान्यं हृत्वा भवत्याखुः कांस्यं हंसो जलं प्लवः ।
मधु दंशः पयः काको रसं श्वा नकुलो घृतम् ॥६०॥

पदा०—(धान्यं, हृत्वा, आखुः) धान्य को चुराने से चूहा (कांस्यं, हंसः) कांसे को चुराने से हंस (जलं, प्लवः) जल को चुराने से मेंडक (मधु, दंशः) मधु को चुराने से डांस (पयः, काकः) दूध चुराने से कौवा (रसं, श्वा) रस को चुराने से कुत्ता, और (घृतं, नकुलः) घृत को चुराने से नेवला (भवति) होता है॥

मांसं गृध्रो वपां मद्गुस्तैलं तैलपकः खगः ।
चीरीवाकस्तु लवणं बलाका शकुनिर्दधि ॥ ६१ ॥

पदा०—(मांसं, गृध्रः) मांस को चुराने से गिद्ध (वपां, मद्गुः) वपा=चरबी चुराने से जलकौवा=जल में फिरने वाला पक्षी (तैलं) तैल को चुराने से (तैलपकः, खगः) तैलपक नामक पक्षी (लवणं, चीरीवाकः) लवण को चुराने से चीरी-वाक=उच्च शब्द करने वाला कीट (तु) और (दधि) दधि चुराने से (बलाका, शकुनिः) बलाका नाम पक्षी होता है ॥

कौशेयं तित्तिरिर्हृत्वा क्षौमं हृत्वा तु दर्दुरः ।
कार्पासतान्तवं क्रौञ्चो गोधा गां वाग्गुदो गुडम् ॥६२॥

पदा०—(कौशेयं, हृत्वा, तित्तिरिः) रेशमी वस्त्र चुराने से तीतर (तु) तथा (क्षोमं, हृत्वा, दर्दुरः) अलसी के वस्त्र चुराने से मेंडक (कार्पासतान्तवं, क्रौञ्चः) कपास के कपड़े चुराने से सारस (गां, गोधा) गाय के चुराने से गोधा; और (गुडं, वाग्गुदः) गुड़ के चुराने से वाग्गुद नामक पक्षी होता है ॥

छुच्छुन्दरिः शुभान्गन्धान्पत्रशाकं तु बर्हिणः ।
श्वावित्कृतान्नं विविधमकृतान्नं तु शल्यकः ॥ ६३ ॥

पदा०—(शुभान्, गन्धान्, छुच्छुन्दरिः) उत्तम सुगन्धित पदार्थों के चुराने से छछुन्दर (तु) तथा (पत्रशाकं, बर्हिणः) शाक पात के चुराने से मोर (विविधं, कृतान्नं, श्वाविद) नाना प्रकार का बना हुआ अन्न चुराने से गीदड़ (तु) और (अकृतान्नं, शल्यकः) कच्चा अन्न चुराने से शल्यक=शेही होता है ॥

बको भवति हृत्वाऽग्निं गृहकारी ह्युपस्करम् ।
रक्तानि हृत्वा वासांसि जायते जीवजीवकः ॥६४॥

पदा०—(अग्निं, हृत्वा) अग्नि को चुराने से (बकः, भवति) बगुला होता है (हि) निश्चयकरके (उपस्करं) शूप, मूसल, चक्की आदि चुराने से (गृहकारी) गृहकारी=मकड़ी, और (रक्तानि, वासांसि, हृत्वा) रंगे वस्त्रों के चुराने से (जीवजीवकः, जायते) चकोर होता है ॥

वृको मृगेभं व्याघ्रोऽश्वं फलमूलं तु मर्कटः ।
स्त्रीमृक्षः स्तोकको वारि यानान्युष्ट्रः पशूनजः ॥६५॥

पदा०—(मृगेभं, वृकः) मृग और हाथी को चुराने से भेड़िया (अश्वं, व्याघ्रः) घोड़े के चुराने से व्याघ्र (तु) तथा (फलमूलं, मर्कटः) फल मूल के चुराने से बन्दर (स्त्रीं, ऋक्षः) स्त्री के चुराने से रीछ (वारि, स्तोककः) जल के चुराने से चातक (यानानि, उष्ट्रः) रथादि यानों के चुराने से ऊंट, और (पशून्, अजः) पशुओं के चुराने से बकरा होता है ॥

यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः ।
अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः ॥६६॥

पदा०—(नरः) मनुष्य को (यद्वातद्वा, परद्रव्यं) दूसरे का कुछ भी द्रव्य (बलात्, अपहृत्य) बलपूर्वक चुराने (च) और (अहुतं, हविः) विना होम किये हवि के (जग्ध्वा) भक्षण करने से (अवश्यं) अवश्य (तिर्यक्त्वं) तिर्यक्योनि (याति) प्राप्त होती है ॥

स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन हृत्वा दोषमवाप्नुयुः ।
एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्वमुपयान्तिताः ॥ ६७ ॥

पदा०—(स्त्रियः) (स्त्रियें (अपि) भी (एतेन, कल्पेन, हृत्वा) इसी प्रकार चोरी करने से (दोषं, अवाप्नुयुः) दोषों को प्राप्त होती हैं, और उसी पाप से (ताः) वह स्त्रियां (एतेषां, एव, जन्तूनां) उन्हीं जन्तुओं की (भार्यात्वं, उपयान्ति) स्त्रीभाव को प्राप्त होतीं अर्थात् उनकी स्त्री बनती हैं ॥

सं०—अब आपत्ति से विना अपने कर्म न करने वाले चारो वर्णों के लिये योनियें कथन करते हैं :—

स्वेभ्यः स्वेभ्यस्तु कर्मभ्यश्च्युता वर्णा ह्यनापदि ।
पापान्संसृत्य संसारान्प्रेष्यतां यान्ति शत्रुषु ॥६८॥

पदा०—(तु) और (वर्णाः) चारो वर्ण (अनापदि) आपत्ति से विना (स्वेभ्यः, स्वेभ्यः, कर्मभ्यः, च्युताः) अपने २ नित्यकर्म न करने से (पापान्, संसारान्, संसृत्य) पापमय योनियों को प्राप्त होकर (हि) निश्चयकरके (शत्रुषु, प्रेष्यतां, यान्ति) अपने शत्रुओं के दासत्व को प्राप्त होते हैं ॥

वान्ताश्युल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः ।
अमेध्यकुणपाशी च क्षत्रियः कटपूतनः ॥ ६९ ॥

पदा०—(स्वकात्, धर्मात्, च्युतः, विप्रः) अपने धर्म से च्युत हुआ ब्राह्मण (प्रेतः) मरकर (वान्ताशी) वमन का भक्षण करने वाला तथा (उल्कामुखः) अग्नि के समान मुख वाला होता है (च) और (क्षत्रियः) स्वकर्मभ्रष्ट क्षत्रिय (अमेध्यकुणपाशी) पुरीष तथा शव का भक्षण करने वाला और (कटपूतनः) दीमक की योनि को प्राप्त होता है ॥

मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक् ।
चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः ॥७०॥

पदा०—(स्वकात्, धर्मात्, च्युतः, वैश्यः) अपने धर्म से च्युत हुआ वैश्य (प्रेतः) मरकर (पूयभुक्) पीप का भक्षण करने वाला तथा (मैत्राक्षज्योतिकः) मैत्राक्षज्योति=लाल आंखों वाली

हिंसक योनिविशेष को (भवति) प्राप्त होता है (च) और स्वकर्मभ्रष्ट शूद्र (चैलाशकः) कपड़े की जूं आदि खाने वाला (भवति) होता है॥

यथा यथा निषेवन्ते विषयान्विषयात्मकाः।
तथा तथा कुशलता तेषां तेषूपजायते ॥ ७१ ॥

पदा०—(विषयात्मकाः) विषयासक्त पुरुष (यथा, यथा) जैसे २ (विषयान्, निषेवन्ते) विषयों का सेवन करते हैं (तथा, तथा) वैसे २ ही (तेषु) उनमें (तेषां) उनकी (कुशलता, उपजायते) अत्यन्त रुचि उत्पन्न होती है, और :—

तेऽभ्यासात्कर्मणां तेषां पापानामल्पबुद्धयः।
संप्राप्नुवन्ति दुःखानि तासु तास्विह योनिषु ॥७२॥

पदा०—(ते) वह (अल्पबुद्धयः) निर्बुद्धि पुरुष (पापानां, कर्मणां, अभ्यासात्) पापकर्मों के अभ्यास से (इह) इस लोक में (तासु, तासु, योनिषु) उन २ योनियों में (दुःखानि, संप्राप्नुवन्ति) दुःखों को प्राप्त होते हैं, अर्थात् विषयासक्त पुरुष कुत्सित योनियों में पड़कर महान् दुःख भोगते हैं, जैसाकि :—

तामिस्रादिषु चोग्रेषु नरकेषु विवर्त्तनम्।
असिपत्रवनादीनि बन्धनच्छेदनानि च ॥ ७३ ॥

पदा०—(च) और वह निषिद्ध विषय सेवी (तामिस्रादिषु, उग्रेषु, नरकेषु) तामिस्रादि उग्र नरकों में (विवर्त्तनं) दुःख भोगते हैं (च) और (असिपत्रवनादीनि) असिपत्रवनादि तथा (बन्धनच्छेदनानि) बन्धन छेदन वाले घोर नरकों को प्राप्त होते हैं॥

विविधाश्चैव संपीडाः काकोलूकैश्च भक्षणम् ।
करम्भवालुकातापान्कुम्भीपाकांश्च दारुणान् ॥७४॥

पदा०—(च) और (विविधाः, संपीडाः) नाना प्रकार की पीड़ा (च) तथा (काकोलूकैः, भक्षणं) काक, उलूक आदि से भक्षण (करम्भवालुकाः, तापान्) तप्त बालु आदि से तपाये जाने (च) और (दारुणान्, कुम्भीपाकान्) दारुण कुम्भीपाकों को प्राप्त होते हैं ॥

सम्भवांश्च वियोनीषु दुःखप्रायासु नित्यशः ।
शीतातपाभिघातांश्च विविधानि भयानि च ॥७५॥

पदा०—(च) और इसी प्रकार (दुःखप्रायासु) अधिक दुःखों वाली (वियोनीषु) तिर्यक्योनियों में (नित्यशः) नित्य २ (संभवान्) उत्पन्न होते (च) और (विविधानि) नाना प्रकार की (शीतातपाभिघातान्) शीत आतप की पीड़ा (च) तथा (भयानि) अनेक प्रकार के भयों को प्राप्त होते हैं ॥

असकृद्गर्भवासेषु वासं जन्म च दारुणम् ।
बन्धनानि च कष्टानि परप्रेष्यत्वमेव च ॥ ७६ ॥

पदा०—(असकृद्गर्भवासेषु, वासं) वारंवार गर्भस्थानों में वास (दारुणं, जन्म) अति दुःखप्रद उत्पत्ति (च) तथा (बन्धनानि, कष्टानि) उत्पन्न होने पर शृङ्खला आदि के बन्धन (च, एव) और इसी प्रकार (परप्रेष्यत्वं) दूसरे के दासत्व को प्राप्त होना, इत्यादि अनेक दुःखों को प्राप्त होते हैं ॥

बन्धुप्रियवियोगांश्च संवासं चैव दुर्जनैः ।
द्रव्यार्जनं च नाशं च मित्रामित्रस्य चार्जनम् ॥७७॥

पदा०-(बन्धुप्रियवियोगान्) बन्धु तथा अपने प्यारों का वियोग=जुदाई (दुर्जनैः, संवासं) दुर्जनों के साथ रहना (द्रव्यार्जनं, च, नाशं) धन कमाने का परिश्रम तथा धन के नाश का दुःख (मित्रः, अर्जनं) बड़े कष्ट से मित्रों का मिलना (च) और (अमित्रस्य) विना कारण शत्रुओं का उत्पन्न होना, इन सब दुःखों को प्राणी भोगता है ॥

जरां चैवाप्रतीकारां व्याधिभिश्चोपपीडनम् ।
क्लेशांश्च विविधांस्तांस्तान्मृत्युमेव च दुर्जयम् ॥७८॥

पदा०-(अप्रतीकारां, जरां) जिसका कोई प्रतीकार न होसके ऐसी वृद्धावस्था (व्याधिभिः, उपपीडनं) अनेक रोगों से पीड़ित होना (च, एव) इसी प्रकार (तान्, तान्) उन २ क्षुधा पिपासादि (विविधान्, क्लेशान्) अनेक प्रकार के क्लेशों (च, एव) वऔर (दुर्जयं, मृत्युं) दुर्जय मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥

यादृशेन तु भावेन यद्यत्कर्म निषेवते ।
तादृशेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते ॥ ७९ ॥

पदा०-(यादृशेन, भावेन) जैसे भाव से (यत्, यत्, कर्म, निषेवते) जो २ कर्म करता अर्थात् सात्विक, राजस तथा तामस भाव से प्राणी जिन २ कर्मों में प्रवृत्त होता है (तादृशेन, शरीरेण) वैसे ही शरीर द्वारा (तत्, तत्, फलं, उपाश्नुते) उस २ फल को भोगता है ॥

एष सर्वः समुद्दिष्टः कर्मणां वः फलोदयः ।
नैःश्रेयसकरं कर्म विप्रस्येदं निबोधत ॥ ८० ॥

पदा०-(एषः, सर्वः) यह सब (कर्मणां, फलोदयः) कर्मों

को फलोदय (वः) तुम से (समुद्दिष्टः) भलेप्रकार कहा, अब (विप्रस्य) ब्राह्मण का (नैःश्रेयसकरं) कल्याणकारी (इदं) इस कर्म को (निबोधत) सुनो ।

सं०—अब उपसंहार में ब्राह्मण के लिये कल्याणकारी=मोक्षप्रद कर्म कथन करते हैं :—

वेदाभ्यासस्तपोज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम् ॥ ८१ ॥

पदा०—(वेदाभ्यासस्तपोज्ञानं) वेद का अभ्यास, तप=शीतोष्णादि द्वन्द्वों का सहारना, ज्ञान=यथार्थ जानना (च) तथा (इन्द्रियाणां, संयमः) इन्द्रियों का संयम=रोकना (अहिंसा) हिंसा न करना (च) और (गुरुसेवा) गुरु का सत्कार करना (निःश्रेयसकरं, परं) यह ब्राह्मण के लिये परम कल्याण का देने वाला है ॥

सर्वेषामपि चैतेषां शुभानामिह कर्मणाम् ।
किंचिच्छ्रेयस्करतरं कर्मोक्तं पुरुषं प्रति ॥ ८२ ॥

पदा०—(इह) इस लोक में (एतेषां, सर्वेषां, अपि, शुभानां, कर्मणां) इन सब शुभकर्मों में भी (किंचित, श्रेयस्करतरं) कुछ अधिक श्रेय का देने वाला (कर्म) कर्म (पुरुषं, प्रति) पुरुष के लिये आगे (उक्तं) कहा है ॥

सं०—अब आत्मज्ञान का महत्त्व कथन करते हैं:—

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।
तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥८३॥

पदा०—(एतेषां, सर्वेषां, अपि) पूर्वोक्त सब कर्मों में भी

(आत्मज्ञानं, परं, स्मृतं) आत्मज्ञान को श्रेष्ठ कहा है (हि) क्योंकि (तत्) वह (सर्वविद्यानां, अग्र्यं) सम्पूर्ण विद्याओं में प्रधान होने से (हि) निश्चयकरके (ततः) उसी से (अमृतं, प्राप्यते) मोक्ष प्राप्त होता है ॥

षण्णामेषां तु सर्वेषां कर्मणां प्रेत्य चेह च ।
श्रेयस्करतरं ज्ञेयं सर्वदा कर्म वैदिकम् ॥ ८४ ॥

पदा०-(तु) और (एषां, सर्वेषां, षण्णां, कर्मणां) इन सम्पूर्ण छः कर्मों में (इह, च, प्रेत्य) इस लोक तथा परलोक में (सर्वदा) सर्वदा (श्रेयस्करतरं) अतिशय करके श्रेय को देने वाला (वैदिकं, कर्म, ज्ञेयं) वैदिक कर्म जानना चाहिये, क्योंकि:-

वैदिके कर्मयोगे तु सर्वाण्येतान्यशेषतः ।
अन्तर्भवन्ति क्रमशस्तस्मिंस्तस्मिन्क्रियाविधौ ॥८५॥

पदा०-(वैदिके, कर्मयोगे) वैदिक कर्मयोग में (तु) निश्चयकरके (अशेषतः, एतानि, कर्माणि) सम्पूर्णरूप से यह सब कर्म (तस्मिन्, तस्मिन्, क्रियाविधौ) उस २ कर्मविधि में (क्रमशः) क्रमपूर्वक (अन्तर्भवन्ति) अन्तर्गत आजाते हैं ॥

सं०-अब वैदिक कर्मयोग कथन करते हैं :-

सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसिकमेव च ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥ ८६ ॥

पदा०-(सुखाभ्युदयिकं) सुख का अभ्युदय करने वाला (एव, च) और इसी प्रकार (नैःश्रेयसिकं) मोक्ष को प्राप्त कराने वाला (प्रवृत्तं, च, निवृत्तं) प्रवृत्त तथा निवृत्त (द्विविधं) यह दो प्रकार का (वैदिकं, कर्म) वैदिक कर्म है ॥

सं०—अब उक्त दोनों कर्मों का लक्षण कथन करते हुए उनका फल वर्णन करते हैं :—

इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते ।
निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु निवृत्तमुपदिश्यते ॥८७॥

पदा०—(इह) इस लोक (च) तथा (अमुत्र) परलोक में (काम्यं) जो कामना से (कर्म) कर्म क्रिये जाते हैं उनको (प्रवृत्तं, कीर्त्यते) "प्रवृत्त" कहते हैं (तु) और जो (निष्कामं) निष्काम तथा (ज्ञानपूर्वं) ज्ञानपूर्वक क्रिये जाते हैं उनको (निवृत्तं, उपदिश्यते) "निवृत्त" कहते हैं ॥

प्रवृत्तं कर्म संसेव्य देवानामेति साम्यताम् ।
निवृत्तं सेवमानस्तु भूतान्यत्येति पंच वै ॥ ८८ ॥

पदा०—(प्रवृत्तं, कर्म, संसेव्य) प्रवृत्त कर्म करने से पुरुष (देवानां, साम्यतां, एति) देवताओं की समता को प्राप्त होता (तु) और (वै) निश्चयकरके (निवृत्तं, सेवमानः) निवृत्त कर्मों के सेवन करने से (पंच, भूतानि, अत्येति) पंचभूतों को लांघता, अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होता है ॥

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति ॥८९॥

पदा०—(सर्वभूतेषु, आत्मानं) सब भूतों में आत्मा को (च) और (आत्मनि, सर्वभूतानि) आत्मा में सब भूतों को (समं, पश्यन्) समान देखने वाला अर्थात् समदृष्टि पुरुष जो (आत्मयाजी) आत्मयज्ञ करने वाला है वह (स्वाराज्यं, अधिगच्छति) मोक्ष को प्राप्त होता है ॥

यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः ।
आत्मज्ञाने शमे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान् ॥९०॥

पदा०—(द्विजोत्तमः) यदि ब्राह्मण चाहे तो (यथोक्तानि, कर्माणि, अपि) यथोक्त=शास्त्र में कथन किये हुए अवश्यकर्तव्य कर्मों को भी (परिहाय) त्यागकर (आत्मज्ञाने) आत्मज्ञान (शमे) इन्द्रियनिग्रह (च) और (वेदाभ्यासे) वेद के अभ्यास में (यत्नवान्, स्यात्) यत्न वाला हो, क्योंकि :—

एतद्धि जन्मसाफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः ।
प्राप्यैतत्कृतकृत्यो हि द्विजो भवति नान्यथा ॥९१॥

पदा०—(हि) निश्चयकरके (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण का (विशेषतः) विशेषकर (जन्मसाफल्यं) जन्म साफल्य (एतत्) यही है कि (एतत्, प्राप्य) इसको पाकर (द्विजः) द्विज (हि) निश्चयपूर्वक (कृतकृत्यः) कृतकृत्य (भवति) होता है (अन्यथा, न) अन्यथा नहीं, अर्थात् वेदाभ्यासादि में निरन्तर तत्पर रहने ही से ब्राह्मण का जन्म सफल होता और इसी से उसको कृतकृत्यता होती है अन्य कोई मार्ग नहीं ॥

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम् ।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः ॥९२॥

पदा०—(पितृदेवमनुष्याणां) पितर, देव तथा मनुष्यों का (वेदः, चक्षुः) वेद चक्षु है (च) और वह (सनातनं) सनातन है, वह (अशक्यं, अप्रमेयं) अशक्य तथा अप्रमेय है अर्थात् वेद अपौरुषेय होने से मनुष्य उसको पूर्ण प्रकार से जानने में असमर्थ है, वह किसी प्रमाणान्तर की अपेक्षा न रखने से अप्रमेय है,

वह ब्रह्मचर्य्यादि तप से ही जाना जाता है न्याय मीमांसादि के पढ़नेमात्र से नहीं (इति) इस प्रकार (वेदशास्त्रं, स्थितिः) वेद शास्त्र की व्यवस्था है ॥

सं०—अब वेदविरुद्ध स्मृतियों को अप्रामाणिक कथन करते हैं:—

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्चकाश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फलाःप्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताःस्मृताः॥९३॥

पदा०—(याः) जो (स्मृतयः) स्मृतियें (वेदबाह्याः) वेदविरुद्ध हैं (च) और (याः) जो (काः) कोई (कुदृष्टयः) कुदृष्टि=कुतर्कों से पूर्ण हैं (ताः, सर्वाः, निष्फलाः) वह सब निष्फल हैं (हि) क्योंकि (ताः) वह (स्मृताः) स्मृतियें (तमोनिष्ठाः, प्रेत्य) अन्धकार में लेजाने वाली हैं, अर्थात् मनुजी महाराज कहते हैं कि मेरी बनाई स्मृति में कोई अंश वेदविरुद्ध हो तो वह सर्वथा त्याज्य है, क्योंकि वेदविरुद्ध कल्पना सदा अनिष्टकारक होती है, इसी भाव को अग्रिम श्लोक में इस प्रकार स्फुट करते हैं कि :—

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित् ।
तान्यर्वाकालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥९४॥

पदा०—(यानि, कानिचित्) जो स्मृति अथवा अन्य ग्रन्थ (अतः, अन्यानि) वेदविरुद्ध हैं (तानि) वह सब (अर्वाक्कालिकतया) आधुनिक होने से (निष्फलानि, च, अनृतानि) निष्फल तथा असत्य हैं (च) और वह (उत्पद्यन्ते, च्यवन्ते) उत्पन्न तथा नष्ट होते रहते हैं, अर्थात् वेद से प्रमाणित ही प्रामाणिक हैं अन्य नहीं ॥

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ॥९५॥

पदा०–(चातुर्वर्ण्यं) चारो वर्ण (त्रयः, लोकाः) तीनो लोक (पृथक्) अलग २ (चत्वारः, आश्रमाः) चारों आश्रम (च) और (भूतं, भव्यं, भविष्यं) भूत, वर्त्तमान तथा भविष्यत् तीनों काल (सर्वं) यह सब (वेदात्) वेद से ही (प्रसिध्यति) प्रसिद्ध होते हैं ॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं रसो गन्धश्च पंचमः ।
वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिगुणकर्मतः ॥ ९६ ॥

पदा०–(शब्दः) शब्द (स्पर्शः) स्पर्श (रूपं) रूप (रसः) रस (च) और (पंचमः, गन्धः) पांचवां गन्ध (प्रसूतिगुणकर्मतः) इन सब की उत्पत्ति सत्वादि गुणों के कर्म से होने के कारण (वेदात्, एव, प्रसूयन्ते) वेद से ही प्रसिद्ध होते हैं ॥

बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥९७॥

पदा०–(सनातनं, वेदशास्त्रं) सनातन वेदशास्त्र(सर्वभूतानि, बिभर्ति) सम्पूर्ण जीवों का सर्वदा धारण तथा पोषण करता है (तस्मात्) इसलिये मैं (अस्य, जन्तोः) इस प्राणीवर्ग का (एतत्) इस शास्त्र को (परं, साधनं, मन्ये) परम साधन मानता हूं ॥

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥९८॥

पदा०-(सेनापत्यं) सेनापत्य (राज्यं) राज्य (च, एव) तथा (दण्डनेतृत्वं) दण्ड देने का स्वामीपन (च) और (सर्वलोकाधिपत्यं) सब लोगों पर आधिपत्य (वेदशास्त्रविद्, अर्हति) वेदशास्त्र का जानने वाला ही करसक्ता है ॥

यथा जातबलो वह्निर्दहत्यार्द्रानपि द्रुमान् ।
तथा दहति वेदज्ञः कर्मजं दोषमात्मनः ॥९९॥

पदा०-(यथा) जैसे (जातबलः, वह्निः) प्रचण्ड हुआ अग्नि (आर्द्रान्, द्रुमान्, अपि, दहति) गीले वृक्षों को भी जला देता है (तथा) इसी प्रकार (वेदज्ञः) वेद का जानने वाला पुरुष (आत्मनः, कर्मजं, दोषं) अपने कर्मों से उत्पन्न हुए दोषों को (दहति) भस्म कर देता है, परन्तु :—

न वेदबलमाश्रित्य पापकर्मरुचिर्भवेत् ।
अज्ञानाच्च प्रमादाच्च दहते कर्म नेतरम् ॥ १०० ॥

पदा०-(वेदबलं, आश्रित्य) वेदबल के आश्रय पर मनुष्य (पापकर्म) पापकर्म में (रुचिः) रुचि वाला (न, भवेत्) न हो, क्योंकि (अज्ञानात्, प्रमादात्) अज्ञान तथा प्रमाद से जो कर्म होजाते हैं उन्हीं का वेद द्वारा (दहते) नाश होसक्ता है (न, इतरं) अन्यों का नहीं ॥

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्रतत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१०१॥

पदा०-(वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः) वेदशास्त्र के अर्थ का तत्व जानने वाला (यत्रतत्राश्रमे, वसन्) चाहे जिस आश्रम में

रहकर (इहैव, लोके, तिष्ठन्) इसी लोक में रहता हुआ (सः) वह (ब्रह्मभूयाय, कल्पते) मोक्ष को प्राप्त होता है ॥

सं०—अब अनुष्ठान करने वाले को सर्वोपरि कथन करते हैं:—

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः ।
धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः॥१०२॥

पदा०—(अज्ञेभ्यः, ग्रन्थिनः, श्रेष्ठाः) अज्ञ=न पढ़ने वालों से ग्रन्थों के पढ़ने वाले श्रेष्ठ हैं (ग्रन्थिभ्यः, धारिणः, वराः) ग्रन्थ पढ़ने वालों से धारण=कण्ठस्थ करने वाले श्रेष्ठ हैं (धारिभ्यः, ज्ञानिनः, श्रेष्ठाः) धारण करने वालों से ज्ञानी श्रेष्ठ हैं, और (ज्ञानिभ्यः, व्यवसायिनः) ज्ञानियों से अनुष्ठान करने वाले श्रेष्ठ हैं ॥

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम् ।
तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥१०३॥

पदा०—(तपः, विद्या, च) तप और विद्या (विप्रस्य) ब्राह्मण का (परं, निःश्रेयसकरं) परम कल्याण करने वाले हैं, क्योंकि (तपसा, किल्बिषं, हन्ति) तप से पाप निवृत्त होते और (विद्यया, अमृतं, अश्नुते) विद्या से मोक्ष प्राप्त होता है ॥

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम् ।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥१०४॥

पदा०—(धर्मशुद्धि, अभीप्सता) धर्म का तत्व जानने की इच्छा करने वाले को (प्रत्यक्षं, च, अनुमानं) प्रत्यक्ष तथा अनुमान (च) और (विविधागमं, शास्त्रं) धर्म को बोधन कराने वाले अनेक प्रकार के शास्त्र (त्रयं) यह तीन (सुविदितं, कार्यं) भले प्रकार जानने चाहियें ॥

सं०—अब धर्म के ज्ञाता का कथन करते हैं :—

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना ।
यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥ १०५ ॥

पदा०—(आर्षं, धर्मोपदेशं, च) ऋषियों का कहा हुआ धर्मोपदेश तथा सामान्य पुरुषों के किये हुए उपदेश को (यः) जो (वेदशास्त्राविरोधिना) वेद शास्त्र के अविरोधी (तर्केण) तर्क से (अनुसंधत्ते) अनुसंधान करता है (सः) वह (धर्मं, वेद) धर्म का जानने वाला है (इतरः, न) इतर नहीं ॥

नैःश्रेयसमिदं कर्म यथोदितमशेषतः ।
मानवस्यास्य शास्त्रस्य रहस्यमुपदिश्यते ॥ १०६ ॥

पदा०—(इदं) यह (नैःश्रेयसं, अशेषतः, कर्म) मोक्ष के साधन सम्पूर्ण कर्म (यथा, उदितं) यथावत् कहे (अस्य) अब इस (मानवस्य, शास्त्रस्य) मानव शास्त्र का (रहस्यं) रहस्य (उपदिश्यते) उपदेश करते हैं ॥

सं०—अब मानव धर्म शास्त्र का उपसंहार करते हुए अन्त में इसका रहस्य वर्णन करते हैं :—

अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत् ।
यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशङ्कितः॥१०७॥

पदा०—(चेत्) यदि (अनाम्नातेषु, धर्मेषु) इस शास्त्र में अवर्णित धर्मों में (कथं, स्यात्) कौन हो अर्थात् जहां पर धर्म की सामान्य विधि हो विशेष न हो वहां पर कैसा होना चाहिये (इति) यह संशय होने पर (यं) जो (शिष्टाः, ब्राह्मणाः, ब्रूयुः)

शिष्ट ब्राह्मण कहें (सः) वही (अशंकितः, धर्मः, स्यात्) निश्चित धर्म है ॥

सं०—अब धर्म के व्यवस्थापक ब्राह्मण का कथन करते हैं :—

धर्मेणाधिगतोयैस्तु वेदः सपरिबृंहणः ।
ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ १०८ ॥

पदा०—(यैः) जिन्होंने (सपरिबृंहणः, धर्मेण) ब्रह्मचर्य्यपूर्वक धर्म का अनुष्ठान करते हुए अङ्ग और उपाङ्गों सहित (वेदः) वेद का (अधिगतः) अध्ययन किया है (ते) वह (श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः) श्रुति के प्रत्यक्ष करने वाले अर्थात् अनुष्ठानी लोग (शिष्टाः, ब्राह्मणः, ज्ञेयाः) शिष्ट ब्राह्मण जानने चाहियें ॥

दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत् ।
त्र्यवरा वाऽपि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥१०९॥

पदा०—(वा) अथवा (दशावरा) दश श्रेष्ठ विद्वानों की (परिषद्) सभा (यं) जिस (धर्मं) धर्म को (परिकल्पयेत्) कहे (वा) अथवा उनके अभाव में (वृत्तस्था) सदाचारी (त्र्यवरा) तीन विद्वान् (अपि) भी कहें तो (तं, धर्मं, न, विचालयेत्) उस धर्म का उल्लङ्घन न करे ॥

सं०—अब धर्मविषयक संशय निवारक दशावरा तथा त्र्यवरा सभा का वर्णन करते हैं :—

त्रैविद्यो हेतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः ।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥११०॥

पदा०—(त्रैविद्यः) तीन वेदों के ज्ञाता (हेतुकः) श्रुति-

स्मृति के अनुकूल न्यायशास्त्र के जानने वाले (तर्की) मीमांसा शास्त्र के ज्ञाता (नैरुक्तः) निरुक्त पठित (धर्मपाठकः) धर्मशास्त्र के पढ़े हुए (च) और (पूर्वे, त्रयः, आश्रमिणः) पूर्व के तीन आश्रम वाले अर्थात् ब्रह्मचारी, गृहस्थी तथा वानप्रस्थी जिसमें हों वह (दशावरा, परिषत्, स्यात्) दशावरा सभा है ॥

ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च ।
त्र्यवरापरिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥ १११ ॥

पदा०—(ऋग्वेदवित्, यजुर्वित्, च, सामवेदवित्) ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद जानने वालों की (एव) निश्चयकरके (धर्मसंशयनिर्णये) धर्मविषयक संशय निवारण के लिये (त्र्यवरा, परिषत्, ज्ञेया) त्र्यवरा सभा जाननी चाहिये ॥

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्द्विजोत्तमः ।
स विज्ञेयः परोधर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥११२॥

पदा०—(वेदवित्, द्विजोत्तमः) वेद के जानने वाला ब्राह्मण (एकः, अपि) एक भी (यं, धर्मं, व्यवस्येत्) जिस धर्म की व्यवस्था दे (सः) वही (परः, धर्मः, विज्ञेयः) परम=श्रेष्ठ धर्म जानना चाहिये (अज्ञानां, अयुतैः) अज्ञ दशहज़ार का भी (उदितः) कहा हुआ धर्म मानने योग्य (न) नहीं ॥

अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥ ११३ ॥

पदा०—(अव्रतानां, अमन्त्राणां) ब्रह्मचर्य्यादि व्रत तथा वेदाध्ययन से रहित (जातिमात्रोपजीविनां) जातिमात्र से जीविका

करने वाले (सहस्रशः समेतानां) हज़ारों इकट्ठे हुए ब्राह्मणों का भी (परिषत्त्वं, न, विद्यते) सभात्व नहीं है अर्थात् वह सभा धर्मनिर्णायक नहीं हो सकती॥

यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति॥११४॥

पदा०—(तमोभूताः) तमोगुणप्रधान (मूर्खाः) मूर्ख (धर्म, अतद्विदः) धर्मनिर्णायक वेद को न जानने वाले (यं) जिस प्रायश्चित्तादि को धर्म (वदन्ति) कहते हैं (तत्, पापं) उसका पाप (शतधा, भूत्वा) सौगुणा होकर (तद्वक्तॄन्, अनुगच्छति) उन बताने वालों को लगता है॥

एतद्वोऽभिहितं सर्वं निःश्रेयसकरं परम्।
अस्मादप्रच्युतो विप्रः प्राप्नोति परमां गतिम्॥११५॥

पदा०—(एतत्) यह (परं, निःश्रेयसकरं) परम कल्याण का साधन (सर्वं) सम्पूर्ण धर्म (वः) तुम्हारे प्रति (अभिहितं) वर्णन किया (अस्मात्, अप्रच्युतः, विप्रः) इसके अनुष्ठान से न गिरने वाले ब्राह्मण (परमां, गतिं, प्राप्नोति) परमगति=मोक्ष को प्राप्त होते हैं॥

सं०—अब प्राणियों को समदृष्टिरूप उपदेश कथन करते हैं:—

सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहितः।
सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्नाधर्मे कुरुते मनः॥११६॥

पदा०—(सदसत्, सर्वं) सत्, असत् सबको (समाहितः) समाहितचित्त होकर (आत्मनि, संपश्येत्) आत्मा में देखे (हि) क्योंकि (सर्वं, आत्मनि, संपश्यन्) सबको आत्मा में देखने वाला (अधर्मे, मनः, न, कुरुते) अधर्म में मन नहीं लगाता,

अर्थात् वह रागद्वेष से सदा पृथक् रहता है, इसी भाव को अन्तिम श्लोक में इस प्रकार वर्णन करते हैं कि:—

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् ।
आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥११७॥

पदा०—(आत्मा, एव, सर्वाः, देवताः) आत्मा ही सम्पूर्ण देवता है (हि) क्योंकि (सर्वं, आत्मनि, अवस्थितं) सब कुछ आत्मा में ही स्थित है, और (एषां) इन (शरीरिणां) जीवात्माओं के (कर्मयोगं) कर्मयोग=शुभाशुभ कर्मों को (आत्मा) आत्मा ही (जनयति) उत्पन्न करता है ॥

खं सन्निवेशयेत्खेषु चेष्टनस्पर्शनेऽनिलम् ।
पंक्तिदृष्ट्योः परंतेजः स्नेहेऽपो गां च मूर्तिषु ॥११८॥
मनसीन्दुं दिशः श्रोत्रे क्रान्ते विष्णुं बले हरम् ।
वाच्यग्निं मित्रमुत्सर्गे प्रजने च प्रजापतिम् ॥११९॥

पदा०—(खेषु) अपने हृदयादि के अवकाश में (खं) आकाश को (चेष्टनस्पर्शने, अनिलं) चेष्टा तथा स्पर्श में वायु को (पंक्तिदृष्ट्योः) जाठराग्नि तथा दृष्टि में (परंतेजः) परमतेज को (स्नेह, अपः) शरीर के स्नेह में जल को (च) और (मूर्तिषु, गां) शरीरों में पृथिवी को (सन्निवेशयेत्) सन्निवेश करे,—(मनसि, इन्दुं) मन में चन्द्रमा को (श्रोत्रे, दिशः) श्रोत्र में दिशाओं को (क्रान्ते, विष्णुं) गति में विष्णु को (बलं, हरं) बल में हर को (वाचि, अग्निं) वाणी में अग्नि को (उत्सर्गे, मित्रं) गुदा में मित्र को, और (प्रजने, प्रजापतिं) लिङ्ग में प्रजापति को निवेशित करे ॥

भाष्य—इन श्लोकों में ध्यानावस्थित होने का क्रम वर्णन

करते हुए उस परमपिता परमात्मा की प्राप्ति का उपाय वर्णन किया है जो सब पदार्थों की स्थिति का एकमात्र आधार है, जिन इन्द्रियों का इन श्लोकों में वर्णन किया है उन २ इन्द्रियों के यह सब अधिष्ठात्री देवता हैं, जैसाकि श्रोत्र का अधिष्ठात्री देवता दिशा है, इत्यादि, ध्यानकर्त्ता के लिये यह अवश्यकर्तव्य है कि वह प्रथम प्रत्येक इन्द्रिय के साथ उस २ के अधिष्ठातृ देवता की भी भलेप्रकार स्थिति सम्पादन करे अर्थात् इन्द्रियों की चंचलता तथा उनके अनुचित विषयग्रहण को समाहितचित्त से रोके, क्योंकि इन्द्रियों के निरोधपूर्वक ध्यानावस्थित हुआ २ पुरुष ही उस शान्तिमय धाम को प्राप्त होसक्ता है जिसकी प्राप्ति से सब अशुभ कर्म क्षय होजाते हैं वही परमपुरुष सबका आधार है ॥

सं०—अब उस परमपुरुष का वर्णन करते हुए ग्रन्थ को समाप्त करते हैं:—

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषंपरम् ॥ १२० ॥

पदा०—(सर्वेषां, प्रशासितारं) सबका नियन्ता (अणोः, अपि, अणीयांसं) सूक्ष्म से भी सूक्ष्म (रुक्माभं) दिव्य प्रकाश वाला, और जो (स्वप्नधीगम्यं) स्वप्न कीसी एकाग्रबुद्धि से जानने योग्य है (तं) उसको (परं,पुरुषं,विद्यात्)परमपुरुष जाने॥

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥१२१॥

पदा०—(एतं) इसको (एके) कोई (अग्निं) अग्नि (अन्ये, मनुं) कोई मनु (एके, प्रजापतिं) कोई प्रजापति (एके, इन्द्रं) कोई इन्द्र (अपरे, प्राणं) कोई प्राण (अपरे, शाश्वतं, ब्रह्म) और कोई इसको सनातन ब्रह्म (वदन्ति) कहते हैं ॥

एष सर्वाणिभूतानि पंचभिर्व्याप्य मूर्तिभिः ।
जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयतिचक्रवत् ॥ १२२ ॥

पदा०—(एषः) यह आत्मा (सर्वाणि, भूतानि) सब जीवों को (पंचभिः, मूर्तिभिः, व्याप्य) पंचमहाभूतों से व्याप्त करके (जन्मवृद्धिक्षयैः) जन्म, वृद्धि तथा क्षय से (नित्यं) नित्य (चक्रवत्) चक्र के समान (संसारयति) संसार में घुमाता अर्थात् कभी जन्म और कभी मृत्यु को प्राप्त कराता है ॥

एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना ।
स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम् ॥१२३॥

पदा०—(एवं) इस प्रकार (यः) जो (सर्वभूतेषु) सब प्राणियों में (आत्मना, आत्मानं, पश्यति) आत्मा से परमात्मा को देखता है (सः) वह (सर्वसमतां) समदृष्टि को (एत्य) प्राप्त होकर (परं, पदं, ब्रह्म, अभ्येति) परमपद ब्रह्म=परमानन्द को प्राप्त होता है ॥

इति श्रीमदार्य्यमुनिनोपनिबद्धे
मानवार्य्यभाष्ये
द्वादशोऽध्यायः
समाप्तः

समाप्तश्चायं ग्रन्थः

मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोकों की सूची

प्रथमाध्याय

तपो वाचं रतिं चैव कामं च क्रोधमेव च ।
सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजाः ॥२५॥

अर्थ—प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा करते हुए ने तप, वाणी, रति, काम तथा क्रोध को उत्पन्न किया ॥

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
यद्यस्य सोऽदधात्सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत् ॥२९॥

अर्थ—हिंसा, अहिंसा, मृदु=दयाप्रधान, क्रूर, धर्म, धृत्यादि, अधर्म, सत्य, असत्य, जिसका जो कुछ (पूर्वकल्प का) स्वयं प्रविष्ट था, वह २ उस२ को सृष्टि के समय उसने धारण कराया॥

द्विधा कृत्वात्मनोदेहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥३२॥

अर्थ—इस प्रभु ने अपने जगत्रूपी शरीर के दो भाग किये, अर्द्धभाग से पुरुष और अर्द्धभाग से स्त्री हुई, उसी स्त्री में विराट् उत्पन्न किया ॥

तपस्तप्त्वासृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट् ।
तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥३३॥
अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥३४॥

अर्थ—हे द्विजश्रेष्ठो ! उसी विराट् पुरुष ने तप करके जिस

को उत्पन्न किया उस संपूर्ण का उत्पन्न करने वाला मुझे जानो, मैंने प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से उग्र तप करके प्रजा के पति दश १० महर्षियों को प्रथम उत्पन्न किया, जिनके नाम यह हैं:—

मरीचीमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहंक्रतुम् ।
प्रचेतसंवसिष्ठं च भृगुं नारदमेवच ॥ ३५ ॥
एतेमनूंस्तु सप्तान्यानसृजन्भूरितेजसः ।
देवान्देवनिकायांश्च ब्रह्मर्षीश्चामितौजसः ॥ ३६ ॥

अर्थ—मरीची, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद, इन बड़े तेजस्वी दश प्रजापतियों ने अन्य बड़े कान्ति वाले सात मनु, देवता, उनके स्थान और ब्रह्मर्षियों को उत्पन्न किया ॥

यक्षरक्षः पिशाचांश्च गन्धर्वांप्सरसोऽसुरान् ।
नागान्सर्पान्सुपर्णांश्च पितृणां च पृथग्गणान् ॥ ३७ ॥
विद्युतोऽशनिमेघांश्चरोहितेन्द्रधनूंषि च ।
उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च ॥३८॥

अर्थ—यक्ष, रक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, असुर, नाग, सर्प, सुपर्ण, पितरों के गण और विद्युत्=जो बिजली बादलों में चमकती है, (अशनि) जो बिजली लोहे आदि पर गिरती है, मेघ=बादल, रोहित=जो वर्षाऋतु में नाना वर्ण दण्डाकार आकाश में दिखाई देते हैं, इन्द्रधनुष्, उल्का=जो रेखाकार आकाश से गिरती है, निर्घात=अन्तरिक्ष वा पृथिवी से उठा हुआ उत्पात शब्द, केतु=पूंछ वाले तथा नाना प्रकार के तारे ॥

किन्नरान्वानरान्मत्स्यान्विविधांश्च विहंगमान् ।
पशून्मृगान्मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतोदतः ॥ ३९ ॥
कृमिकीटपतङ्गांश्चयूकामक्षिकमत्कुणम् ।
सर्वंचदंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥ ४० ॥

अर्थ—किन्नर, वानर, मत्स्य, नाना प्रकार के पक्षी, पशु, मृग, मनुष्य, व्याल और जिनके दांत ऊपर नीचे होते हैं, कृमि, कीट, पतङ्ग, जूं, खटमल तथा सम्पूर्ण क्षुद्र जीव मच्छर इत्यादि काटने वाले और स्थावर=नाना प्रकार के वृक्ष, लता वल्ली आदि।

एवमेतैरिदं सर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः।
यथा कर्म तपोयोगात्सृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥४१॥

अर्थ—उन पूर्वोक्त मरीची आदि महात्माओं ने मेरी आज्ञा तथा अपने तप के प्रभाव से यह सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम जगत् कर्मानुसार रचा।

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना।
अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः ॥ ४९ ॥

अर्थ—यह वृक्ष अधिक तमोगुण और पाप कर्मों से व्याप्त हैं, इनके भीतर छिपा हुआ ज्ञान रहता तथा सुख दुःख से युक्त रहते हैं ॥

इदं शास्त्रं तु कृत्वासौ मामेव स्वयमादितः।
विधिवद् ग्राहयामास मरीच्यादींस्त्वहंमुनीन् ॥ ५८ ॥

अर्थ—मनु जी कहते हैं कि उस ब्रह्मा ने सृष्टि के आदि में इस धर्मशास्त्र का निर्माण करके विधिवत् मुझको उपदेश किया, अनन्तर मैंने मरीच्यादि मुनियों को पढ़ाया ॥

एतद्वोऽयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः।
एतद्धि मत्तोऽधिजगे सर्वमेषोऽखिलं मुनिः ॥ ५९॥
ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिर्मनुनाभृगुः।
तानब्रवीदृषीन्सर्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ६० ॥

अर्थ—इस संपूर्ण शास्त्र को भृगु आप लोगों को सुनावेगा, जो मुझसे संपूर्णतया पढ़ा है, इसके अनन्तर महर्षि भृगु ने मनु की आज्ञा पाकर प्रसन्नचित्त हो उन सब ऋषियों से कहा कि सुनोः—

स्वायंभुवस्यास्य मनोः षड्वंश्यामनवोऽपरे ।
सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वा महात्मानो महौजसः ॥६१॥
स्वारोचिषश्चौत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा ।
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्सुत एव च ॥ ६२ ॥

अर्थ—इस स्वायंभुव मनु के वंश में उत्पन्न हुवे छः मनु और हैं उन बड़े पराक्रम वाले महात्माओं ने अपनी २ सृष्टि उत्पन्न की थीं, जिनके नाम यह हैं—स्वारोचिष, औत्तम, तामस, रैवत चाक्षुष और वैवस्वत जो बड़े कान्ति वाले थे ॥

स्वायंभुवाद्याः सप्तैते मनवो भूरितेजसः ।
स्वे स्वेन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम् ॥ ६३ ॥

अर्थ—स्वायंभुव से लेकर सात मनु बड़े तेजस्वी हुए जिन्होंने अपने२ अधिकार में संपूर्ण चराचर सृष्टि उत्पन्न करके पालन किया॥

चतुष्पात्सकलोधर्मः सत्यंचैवकृतेयुगे ।
नाधर्मेणागमः कश्चिन्मनुष्यान् प्रतिवर्त्तते ॥ ८१ ॥
इतरेष्वागमाद्धर्मः पादशस्त्ववरोपितः ।
चौरिकानृतमायाभिर्धर्मश्चापैति पादशः ॥ ८२ ॥

अर्थ—सत्ययुग में धर्म पूर्ण चतुष्पाद और सत्य रहता है, क्योंकि तब अधर्म से मनुष्यों को धन प्राप्त नहीं होता, इतर तीन="त्रेता, द्वापर, कलि" में वेद से प्रतिपादित धर्म चोरी, झूठ, तथा माया आदि से क्रमशः चौथाई २ क्षीण होता है ॥

अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ।
कृते त्रेतादिषुह्येषामायुर्ह्रसति पादशः ॥ ८३ ॥
वेदोक्तमायुर्मर्त्यानामाशिषश्चैव कर्मणाम् ।
फलन्त्यनुयुगं लोके प्रभावश्चशरीरिणाम् ॥ ८४ ॥

अर्थ—सत्ययुग में सब रोग रहित होते, संपूर्ण मनोरथ पूर्ण होते और आयु ४०० वर्ष की होती है, आगे त्रेतादि में इनकी

चौथाई २ आयु घटती है, मनुष्यों की वेदानुकूल आयु, कर्मों के फल और शरीरधारियों के प्रभाव सब युगानुकूल फलते हैं ॥

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे परे।
अन्ये कलियुगेनृणां युगह्रासानुरूपतः ॥ ८५ ॥
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौयुगे ॥ ८६ ॥

अर्थ—युगों की हीनता के अनुसार मनुष्यों के धर्म सत्ययुग में और, त्रेता में दूसरे, द्वापर में अन्य और कलियुग के और ही हैं, कृतयुग में तप मुख्य धर्म है, त्रेता में ज्ञान प्रधान है, द्वापर में यज्ञ और कलि में एक दान ही प्रधान है ॥

तस्य कर्म विवेकार्थं शेषाणामनुपूर्वशः।
स्वायंभुवोमनुर्धीमानिदंशास्त्रमकल्पयत् ॥ १०२ ॥

अर्थ—उस ब्राह्मण के और शेष क्षत्रियादिकों के भी कर्म क्रमशः जानने के लिये बुद्धिमान् स्वायंभुव मनु ने यह धर्मशास्त्र बनाया है ॥

विदुषाब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः।
शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सम्यङ्‌ नान्येनकेनचित् ॥ १०३ ॥
इदंशास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः शंसितव्रतः।
मनोवाग्देहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यते ॥ १०४ ॥

अर्थ—विद्वान् ब्राह्मण को यह धर्मशास्त्र पढ़ना और शिष्यों को पढ़ाना योग्य है परन्तु अन्य किसी को नहीं, इस शास्त्र को पढ़कर इसकी आज्ञानुसार कर्म करने वाला ब्राह्मण मन वाणी और देह द्वारा उत्पन्न होने वाले पापों से लिप्त नहीं होता ॥

पुनाति पंक्तिं वंश्यांश्च सप्तसप्तपरावरान्।
पृथिवीमपिचैवेमां कृत्स्नामेकोपिसोर्हति ॥ १०५ ॥
इदंस्वस्त्ययनंश्रेष्ठमिदं बुद्धिविवर्धनम्।
इदं यशस्यमायुष्यमिदं निःश्रेयसं परम् ॥ १०६ ॥

अर्थ—अपवित्र पंक्ति को इस धर्मशास्त्र का जानने वाला पवित्र करदेता, और अपने वंश के पिता प्रपिता आदि सात ऊपर के तथा पुत्रादि सात नीचे के इस क्रम से चौदह पीढ़ियों को पवित्र करदेता है और इससम्पूर्ण पृथिवी को भी वह लेने योग्य है, यह शास्त्र कल्याण देने वाला, बुद्धिवर्द्धक, यश का देने वाला, आयु का बढ़ाने वाला और मोक्ष का भी सहायक है ॥

> अस्मिन्धर्मोखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम् ।
> चतुर्णामपिवर्णानामाचारश्चैवशाश्वतः ॥ १०७ ॥

अर्थ—इस स्मृति में संपूर्ण धर्म कहा और कर्मों के गुण दोष तथा चारो वर्णों का शाश्वत=परम्परा से चला आया आचार भी कथन किया है ॥

> जगतश्च समुत्पत्तिं संस्कारविधिमेवच ।
> व्रतचर्योपचारं च स्नानस्यचपरं विधिम् ॥ १११ ॥
> दाराधिगमनं चैव विवाहानां च लक्षणम् ।
> महायज्ञविधानं च श्राद्धकल्पश्चशाश्वतः ॥ ११२ ॥

अर्थ—प्रथम अध्याय में जगत् की उत्पत्ति, द्वितीय अध्याय में संस्कारों की विधि, ब्रह्मचारियों के व्रताचरण, स्नान की परम विधि, गुरु के अभिवादन का प्रकार तथा उपासनादि—और गुरु के समीप विद्याभ्यास करना, स्त्रीगमन, ब्राह्मादि ८ विवाहों का लक्षण, महायज्ञविधि, और श्राद्धकल्प जो अनादि काल से चला आता है "तीसरे अध्याय का विषय" है ॥

> वृत्तीनां लक्षणं चैव स्नातकस्यव्रतानिच ।
> भक्ष्याभक्ष्यंचशौचंचद्रव्याणांशुद्धिमेवच ॥ ११३ ॥
> स्त्रीधर्मयोगंतापस्यं मोक्षं संन्यासमेवच ।
> राज्ञश्च धर्ममखिलं कार्याणांचविनिर्णयम् ॥ ११४ ॥

अर्थ—वृत्तियों के लक्षण तथा स्नातक के व्रत "चतुर्थ-अध्याय में" भक्ष्य, अभक्ष्य, शौच, द्रव्यों की शुद्धि, स्त्रियों का धर्मोपाय "पांचवें अध्याय में" वानप्रस्थ आदि तपस्वियों का धर्म, और मोक्ष तथा संन्यास धर्म "षष्ठाध्याय में" और राजा का संपूर्ण धर्म "सप्तमाध्याय में," तथा कार्यों का निर्णय=मुक़द्दमों की छान बीन और:—

साक्षीप्रश्नविधानं च धर्मस्त्रीपुंसयोरपि ।
विभागधर्मद्यूतंचकण्टकानांचशोधनम् ॥ ११५ ॥
वैश्यशूद्रोपचारंच संकीर्णानांच सम्भवम् ।
आपद्धर्मंचवर्णानां प्रायश्चित्तविधितथा ॥ ११६ ॥

अर्थ—साक्षिप्रश्न=गवाहों से पूछना "अष्टमाध्याय में" स्त्रीपुरुष के धर्म, विभाग तथा ज्वारी, चोर आदि का शोधन, वैश्य शूद्रों के धर्म का अनुष्ठान प्रकार "नवमे अध्याय में" वर्णसङ्करों की उत्पत्ति और वर्णों का आपद्धर्म "दशमाध्याय में" और प्रायश्चित्त विधि "एकादश में" विधान की है ॥

संसारगमनंचैव त्रिविधं कर्मसम्भवम् ।
निःश्रेयसंकर्मणांच गुणदोषपरीक्षणम् ॥ ११७ ॥
देशधर्माञ्जातिधर्मान्कुलधर्मांश्चशाश्वतान् ।
पाषण्डगणधर्मांश्च शास्त्रेऽस्मिन्नुक्तवान्मनुः ॥ ११८ ॥

अर्थ—देहान्तर प्राप्ति जो उत्तम मध्यम अधम इन तीन प्रकार के कर्मों से होती है मोक्ष का स्वरूप और कर्मों के गुण दोष की परीक्षा "द्वादश में" और देश धर्म=जो प्रचार जिस देश में बहुत काल से चला आता है, जो धर्म जाति में नियत है,

जो कुल परम्परा से प्राप्त है, पाषण्ड=वेद शास्त्र से निषिद्ध कर्म" और गणधर्म इस शास्त्र में मनु ने कहे हैं ॥

यथेदमुक्तवान्शास्त्रं पुरापृष्टो मनुर्मया ।
तथेदंयूयमप्यद्य मत्सकाशान्निबोधत ॥ ११९ ॥

अर्थ—जिस प्रकार पहिले मनु जी से मैंने पूछा तब यह शास्त्र उन्होंने उपदेश किया, उसी प्रकार अब आप मुझ से सुनें ॥

द्वितीयाध्याय

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः ।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥ ७ ॥

अर्थ—जिस वर्ण के लिये जो धर्म मनु ने कहा है वह संपूर्ण वेद का आशय है, क्योंकि वेद सब विद्याओं का भाण्डार है

एतान् द्विजातयो देशान् संश्रयेरन् प्रयत्नतः ।
शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्वा निवसेद्वृत्तिकर्शितः ॥ २४ ॥

अर्थ—इस देश को द्विजाति लोग प्रयत्न से आश्रय करें और शूद्र चाहे किसी देश में वृत्ति से पीड़ित हुआ निवास करे ॥

कार्ष्णरौरवबास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः ।
वसीरन्नानुपूर्व्येण शाणक्षौमाविकानि च ॥ ४१ ॥

अर्थ—कृष्ण तथा रुरुमृग और अज इनके चर्मों का वस्त्र तीन वर्ण के ब्रह्मचारी क्रमशः रक्खें और सन, क्षौम=अलसी और ऊन वस्त्र भी क्रमपूर्वक धारण करें ॥

आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते ह्युदङ्मुखः॥५२॥

अर्थ—आयु के हित के लिये पूर्वाभिमुख, यश के अर्थ दक्षिण मुख, सम्पत्ति के निमित्त पश्चिम मुख और सत्य के अर्थ उत्तर की ओर मुख करके भोजन करे॥

अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम्॥ ६६॥

अर्थ—यह "जातकर्मादि" संपूर्ण कार्य उक्त काल और क्रम से शरीर के संस्कारार्थ स्त्रियों के अमन्त्रक करे अर्थात् स्त्रियों के इन संस्कारों में वेदोक्त मन्त्र न पढ़े॥

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पति सेवा गुरौवासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥ ६७॥

अर्थ—स्त्रियों की विवाह सम्बन्धी विधि ही वेदोक्त कही है और उसके लिये पतिसेवा ही गुरुकुलवास तथा गृहकृत्यादि सायं प्रातर्होम है॥

ब्राह्मणं दशवर्षं तु शतवर्षं तु भूमिपम्।
पितापुत्रौ विजानीयात् ब्राह्मणस्तु तयोः पिता॥ १३५॥

अर्थ—दश वर्ष का ब्राह्मण और सौ वर्ष का क्षत्रिय हो तो पिता पुत्र के समान जाने और ब्राह्मण उनमें पिता के समान है॥

अध्यापयामास पितॄन् शिशुराङ्गिरसः कविः।
पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान्॥ १५१॥
तेतमर्थमपृच्छन्त देवा नागतमन्यवः।
देवाश्चैतान्समेत्योचुर्न्याय्यं वः शिशुरुक्तवान्॥ १५२॥

अर्थ—अङ्गिरस् मुनि के विद्वान् पुत्र ने अपने पितृव्यादि चाचादि को पढ़ाया और अपने अधिक विद्याज्ञान से उनको शिष्य जानकर "हे पुत्रकाः!" अर्थात् हे लड़को! ऐसा कहा, वे

क्रोधयुक्त होकर देवताओं से पुत्र के शब्दार्थ को पूछने गये, देवताओं ने मिलकर उनसे कहा कि उस लड़के ने तुम से ठीक कहा है ॥

नाभिव्याहारयेद् ब्रह्म स्वधानि नयनादृते।
शूद्रेण हि समस्तावद्यावद्वेदे न जायते ॥ १७२ ॥

अर्थ—मौञ्जीबन्धन से पूर्व वेद का उच्चारण न करावे, परन्तु मृतकसंस्कार में वेदमन्त्रों का उच्चारण वर्जित नहीं, जब तक वेद में जन्म नहीं हुआ तब तक शूद्र के तुल्य है ॥

यद्यस्य विहितं चर्म यत्सूत्रं या च मेखला।
यो दण्डो यच्च वसनं तत्तदस्य व्रतेष्वपि ॥ १७४ ॥

अर्थ—जो जिसको चर्म, सूत्र, मेखला, दण्ड और वस्त्र, उपनयन में कहा है वही उसको व्रतों में भी जानो ॥

स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः ।
स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥ १८१ ॥

अर्थ—स्वप्न में द्विज ब्रह्मचारी का विना इच्छा शुक्र गिरजावे तो स्नान कर सूर्य का पूजन करके तीन वार "पुनर्मामेत्विन्द्रियम्" इस ऋचा को जपे ॥

॥ न भैक्ष्यं परपाकः स्यान्नच भैक्ष्यं प्रतिग्रहः ।
सोमपानसमं भैक्ष्यं तस्माद्भैक्ष्येण वर्त्तयेत् ॥ १ ॥
भैक्ष्यस्यागमशुद्धस्य प्रोक्षितस्य हुतस्य च ।
यांस्तस्य ग्रसते ग्रासांस्ते तस्य क्रतुभिः समाः ॥ २ ॥

अर्थ—भिक्षा का अन्न न तो परपाक है न प्रतिग्रह है, किन्तु सोमपान के तुल्य है, इसलिये भिक्षा के अन्न से वृत्ति करे, भिक्षा का अन्न शास्त्र से विहित, शुद्ध, प्रोक्षित तथा हुत हो तो उसके जितने ग्रास खाता है उतने यज्ञों का फल खाने वाले को होता है ॥

ब्राह्मणस्यैव कर्मैतदुपदिष्टं मनीषिभिः।
राजन्यवैश्ययोस्त्वेवं नैतत्कर्म विधीयते ॥ १९० ॥

अर्थ—परन्तु मनीषियों ने यह कर्म ब्राह्मण ब्रह्मचारी को कहा है, क्षत्रिय वैश्यों को यह कर्म ऐसा नहीं है ॥

परोक्षं सत्कृपा पूर्वं प्रत्यक्षं न कथंचन।
दुष्टानुचारी च गुरोरिहवाऽमुत्रचैत्यधः ॥ १९२ ॥

अर्थ—गुरु का नाम परोक्ष में लेना हो तो नामसे पूर्व "सत्कृपा" लगाकर नाम लेवे, प्रत्यक्ष में सर्वथा नहीं, गुरु का दुष्टाचारी शिष्य इस लोक और परलोक में नीचता को प्राप्त होता है ॥

परीवादात्खरो भवति श्वा वै भवति निन्दकः।
परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥ २०१ ॥

अर्थ—गुरु की निन्दा सुनने से मरकर गधा होता, निन्दा करने से दूसरे जन्म में कुत्ता होता, गुरु के अनुचित द्रव्य का भोक्ता शिष्य कृमि होता और मत्सरता करने वाला कीट होता है॥

स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम्।
अतोर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः ॥ २१३ ॥
अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः।
प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम् ॥ २१४ ॥

अर्थ—यह स्त्रियों का स्वभाव है कि पुरुषों को दोष लगा देती हैं इससे पण्डित लोग स्त्रियों में प्रमत्त नहीं होते सावधान रहते हैं, काम क्रोध के वश हुआ पुरुष विद्वान् हो वा मूर्ख हो, उसको बुरे मार्ग पर लेजाने को स्त्री समर्थ होती है ॥

यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किंचित्समाचरेत्।
तत्सर्वमाचरेद् युक्तो यत्र वाऽस्य रमेन्मनः ॥ २२३ ॥

अर्थ—जिस किसी धर्म का स्त्री वा शूद्र भी आचरण करता हो और उसमें इसका चित्त लगे तो उसको भी मन लगाकर करे॥

अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते ।
अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः ॥ २४१ ॥

अर्थ–आपत्तिकाल में ब्राह्मण के विना क्षत्रिय तथा वैश्य से भी पढ़ना कहा है और गुरुकी आज्ञा का पालन तथा शुश्रूषा =सेवा जब तक पढ़े तब तक करे ॥

तृतीयाध्याय

न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः ।
कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्योपदिश्यते ॥ १४ ॥

अर्थ–ब्राह्मण क्षत्रिय को आपत्काल में भी शूद्रा भार्य्या ग्रहण नहीं करनी चाहिये, क्योंकि कोई ऐसा दृष्टान्त नहीं पाया जाता ॥

हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः ।
कुलान्येव नयन्त्याशु ससन्तानानि शूद्रताम् ॥ १५ ॥
शूद्रा वेदीपतत्यत्रेरुतथ्यतनयस्य च ।
शौनकस्य सुतोत्पत्त्या तदपत्यतया भृगोः ॥ १६ ॥

अर्थ–ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य मोहवश अपने वर्ण से हीन वर्णस्थ स्त्री से विवाह करें तो सन्तान तथा कुल सहित शूद्रता को प्राप्त होजाते हैं, शूद्रा के साथ विवाह करने से पतित होता है, यह अत्रि और उतथ्य के पुत्र का मत है, शूद्रा से सन्तान उत्पन्न करने से पतित होता है, यह शौनक का मत है, और उस सन्तान के सन्तान होने से पतित होना भृगु का मत है ॥

शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ।
जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥ १७ ॥

दैवं पित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु।
नाश्नन्ति पितृदेवास्तन्न च स्वर्गं स गच्छति॥ १८॥

अर्थ—शूद्रा की शय्या पर शयन करने से ब्राह्मण नीच गति को प्राप्त होता और उससे सन्तान उत्पन्न करके तो ब्राह्मणत्व से ही हीन होजाता है, और जिस ब्राह्मण ने शूद्रा स्त्री के प्रधानत्व से होम, श्राद्ध और अतिथि भोजन कराया चाहा हो उसका अन्न पितृसंज्ञक और देवतासंज्ञक पुरुष ग्रहण नहीं करते और वह पुरुष स्वर्ग को प्राप्त नहीं होता॥

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च।
तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्नविधीयते॥ १९॥

अर्थ—शूद्रा का मुख चुम्बन करते हुए उसके मुख की भाफ लगने से उस पुरुष की तथा उससे उत्पन्न सन्तान की शुद्धि नहीं होती॥

योयस्य धर्म्यो वर्णस्य गुणदोषौ च यस्ययौ।
तद्वः सर्वं प्रवक्ष्यामि प्रसवे च गुणाऽगुणान्॥ २२॥

अर्थ—जो विवाह जिस वर्ण को योग्य है और जो गुण दोष जिसमें हैं, सो तुम से कहता हूं और सन्तान के गुण दोष भी कथन करता हूं॥

षडानुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरो घदान्।
विट्शूद्रयोस्तु तानेव विद्याद्धर्म्यानऽराक्षसान्॥ २३॥
चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रशस्तान्कवयो विदुः।
राक्षसंक्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः॥ २४॥

अर्थ—ब्राह्मण को क्रम से ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर और गान्धर्व यह छः विवाह धर्म्य हैं, और क्षत्रिय को आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व यह चार विवाह श्रेष्ठ हैं, वैश्य और शूद्र को भी यही चारो विवाह धर्म सम्बन्धी हैं, परन्तु किसी को भी राक्षस विवाह योग्य नहीं, ब्राह्मण को ब्राह्म,

दैव, आर्ष, प्राजापत्य यह पहले चार विवाह उत्तम हैं, क्षत्रिय को राक्षस विवाह श्रेष्ठ है और वैश्य, शूद्र को एक आसुर विवाह उत्तम है ॥

पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौस्मृताविह ।
पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्त्तव्यौ कदाचन ॥ २५ ॥
पृथक्पृथग्वामिश्रौ वा विवाहौ पूर्वचोदितौ ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्म्यौक्षत्रस्यतौ स्मृतौ ॥ २६ ॥

अर्थ—पांच विवाहों में तीन धर्म सम्बन्धी और दो अधर्म सम्बन्धी हैं, पैशाच और आसुर कभी करने योग्य नहीं, पूर्व कहे हुए पृथक् २ अथवा मिले हुए गान्धर्व और राक्षस विवाह क्षत्रियों के धर्म सम्बन्धी कहे हैं ॥

यो यस्यैषां विवाहानां मनुनाकीर्त्तितो गुणः ।
सर्वंश्रृणुत तं विप्राः सर्वंकीर्तयतो मम ॥ ३६ ॥

अर्थ—इन विवाहों में जो गुण जिस विवाह का मनु ने कहा है, सो हे ब्राह्मणो ! वह सब मुझ से सुनो ॥

पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपदिश्यते ।
असवर्णा स्वयं ज्ञेयो विधिरुद्वाह कर्माणि ॥ ४३ ॥
शरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वैश्यकन्यया ।
वसनस्य दशाग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने ॥ ४४ ॥

अर्थ—पाणिग्रहण संस्कार अपने वर्ण की स्त्री के साथ कहा है और अपने वर्ण से दूसरे वर्ण की स्त्रियों में विवाह कर्म में यह विधि जाननी चाहिये, उत्तम वर्ण का पुरुष हीनवर्ण की कन्या से विवाह करे तो क्षत्रिय की कन्या को बाण का एक सिरा और वैश्य की कन्या को सांटे का एक सिरा और शूद्र की कन्या को कपड़े का एक सिरा पकड़वाना चाहिये ॥

शिल्पेन व्यवहारेण शूद्रापत्यैश्च केवलैः।
गोभिरश्वैश्च यानैश्च कृष्या राजोपसेवया ॥ ६४ ॥

अर्थ-शिल्प और व्यवहार में, केवल शूद्र सन्तानों से, गाय घोड़े और सवारियों से, खेती और राजा की नौकरी से कुल नाश को प्राप्त होता है ॥

पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान्।
पिण्डान्वाहार्यकंश्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥ १२२ ॥

अर्थ-अग्निहोत्री अमावास्या में पितृयज्ञ करके "पिण्डान्वाहार्यक" श्राद्ध प्रतिमास किया करे ॥

न निर्वपति यः श्राद्धं प्रमीतपितृको द्विजः।
इन्दुक्षये मासि मासि प्रायश्चित्ती भवेत्तु सः ॥१॥

अर्थ-जिस द्विज के माता पिता मर गये हों और वह प्रतिमास अमावस्या को श्राद्ध न करे तो वह प्रायश्चित्ती होता है ॥

पितॄणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः।
तच्चामिषेण कर्तव्यं प्रशस्तेन समं ततः ॥ १२३ ॥
तत्र ये भोजनीयाः स्युर्येचवर्ज्या द्विजोत्तमाः।
यावन्तश्चैव यैश्चान्नैस्तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ १२४ ॥

अर्थ-पितरों के मासिक श्राद्ध को पण्डित अन्वाहार्य जानते हैं, इसलिये उस श्राद्ध को सर्वथा शास्त्रविहित अच्छे मांस से करे, उस श्राद्ध में जो भोजन योग्य ब्राह्मण हैं जो त्याज्य हैं और जितने जिस अन्न से जिमाने चाहियें यह सम्पूर्ण मैं आगे कहूंगा॥

द्वौदैवेपितृकार्येत्रीनेकैकमुभयत्रवा।
भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे ॥ १२५ ॥
सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसंपदः।
पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम् ॥ १२६ ॥

अर्थ-देवश्राद्ध में दो और पितृश्राद्ध में तीन ब्राह्मण वा देव

श्राद्ध में और पितृश्राद्ध में एक २ को भोजन करावे, अच्छा समृद्ध यजमान भी विस्तार न करे, अच्छी पूजा, देश, काल, पवित्रता और श्राद्धोक्त गुण वाले ब्राह्मण, इन पांचों को विस्तार नष्ट करता है इससे विस्तार न करे ॥

प्रथिता प्रेतकृत्यैषा पित्र्यं नाम विधुक्षये।
तस्मिन्युक्तस्यैति नित्यं प्रेतकृत्यैव लौकिकी ॥ १२७ ॥
श्रोत्रियायैवदेयानिहव्यकव्यानि दातृभिः।
अर्हत्तमाय विप्राय तस्मै दत्तं महाफलम् ॥ १२८ ॥

अर्थ—यह जो पितृकर्म सो प्रेतकृत्या विख्यात है, अमावास्या के दिन उस में युक्त होने वाला पुरुष नित्य के लौकिक श्राद्धों के फल को प्राप्त होता है, देने वाले लोग श्रोत्रिय को ही हव्य कव्य देवें और अधिक पूज्य को देवें तो बड़ा फल है ॥

एकैकमपि विद्वांसं दैवे पित्र्ये च भोजयेत्।
पुष्कलं फलमाप्नोति नामन्त्रज्ञान्बहूनपि ॥ १२९ ॥
दूरादेवपरीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम्।
तीर्थं तद्धव्य कव्यानां प्रदाने सोऽतिथिः स्मृतः ॥ १३० ॥

अर्थ—देवकर्म यज्ञादि में और पितृकर्म श्राद्ध में एक ही ब्राह्मण को भोजन कराने से भी बहुत फल प्राप्त होता है मूर्ख ब्राह्मणों के जिमाने से नहीं, प्रथम ही से एक सम्पूर्ण वेद की शाखाओं के पढ़ने वाले ब्राह्मण की परीक्षा करले वह हव्य कव्यों का पात्र है और देने में वह अतिथि कहा है ॥

सहस्रं हि सहस्राणामनृचां यत्र भुञ्जते।
एकस्तान्मन्त्रवित्प्रीतः सर्वानर्हति धर्मतः ॥ १३१ ॥
ज्ञानोत्कृष्टायदेयानि कव्यानि च हवींषि च।
नहि हस्तावसृग्दिग्धौ रुधिरेणैव शुद्ध्यतः ॥ १३२ ॥

अर्थ—जिस श्राद्ध में वेद के न जानने वाले दश लक्ष ब्राह्मण भोजन करें, और वेद का जानने वाला एक ही सन्तुष्ट हो तो वह एक उन सब के बराबर फल देता है, विद्या से उत्कृष्ट को हव्य कव्य देना चाहिये, क्योंकि रक्त से भरे हुवे हाथ रक्त ही से शुद्ध नहीं होते ॥

यावतोग्रसते ग्रासान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ।
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तान् शूलानयोगुडान् ॥ १३३ ॥
ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित् तपोनिष्ठास्तथा परे ।
तपः स्वाध्याय निष्ठाश्च कर्म निष्ठास्तथापरे ॥ १३४ ॥

अर्थ—वेद का न जानने वाला जितने ग्रास हव्य कव्य के खाता है उतने ही मरने पर जलते हुवे शूल और लोहे के गोले खाता है, कोई द्विज आत्मज्ञान परायण होते, दूसरे तपस्तत्पर होते, कोई तप अध्ययन में रत होते और कोई यज्ञादि कर्म में तत्पर होते हैं ॥

ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः ।
हव्यानि तु यथा न्यायं सर्वेष्वेव चतुर्ष्वपि ॥ १३५ ॥
अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्वेदपारगः ।
अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात्पिता स्याद्वेदपारगः ॥ १३६ ॥

अर्थ—उन में से ज्ञाननिष्ठ को श्राद्धों में यत्नपूर्वक भोजन देवे, अन्य यज्ञों में क्रम से चारों को भी भोजन देदे, जिसका पिता वेद न पढ़ा हो और पुत्र पढ़ा हो अथवा पुत्र न पढ़ा हो और पिता वेद का जानने वाला हो ॥

ज्यायांसमनयोर्विद्याद्यस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता ।
मन्त्रसंपूजनार्थं तु सत्कारमितरोऽर्हति ॥ १३७ ॥
न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः ।
नारिं न मित्रं यं विद्यात्तं श्राद्धे भोजयेद्द्विजम् ॥ १३८ ॥

अर्थ—इनमें श्रेष्ठ उसको जानो जिसका पिता श्रोत्रिय हो, परन्तु वेद पूजन को दूसरा योग्य है, श्राद्ध में मित्र को भोजन

न करावे. धन से इसका सत्कार करे और जिसको न मित्र जाने न शत्रु, ऐसे द्विज को श्राद्ध में भोजन करावे॥

यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च।
तस्य प्रेत्य फलं नास्ति श्राद्धेषु च हविष्षु च॥ १३९॥
यः संगतानि कुरुते मोहाच्छ्राद्धेन मानवः।
स स्वर्गाच्च्यवते लोकाच्छ्राद्धमित्रोद्विजाधमः॥ १४०॥

अर्थ—जिसके श्राद्ध और हवि मुख्यतः मित्र खाते हैं, उस को पारलौकिक फल न श्राद्ध और न यज्ञों का होता है,जो मनुष्य अज्ञानवश श्राद्ध द्वारा मित्रता करता है वह श्राद्ध से मित्र बनाने वाला अधम द्विज स्वर्गलोक से पतित होता है॥

सम्भोजनीयाभिहिता पैशाचीदक्षिणा द्विजैः।
इहैवास्ते तु सा लोके गौरन्धेवैकवेश्मनि॥ १४१॥
यथेरिणेबीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम्।
तथाऽनृचेहविर्दत्वा न दाता लभते फलम्॥ १४२॥

अर्थ—वह दान प्रक्रिया द्विजों ने पैशाची कही है कि जिस किसी के आप भोजन किया है, उसीको परस्पर जिमाना, यह इसी लोक में फल देने वाली है, जैसे अन्धी गौ एक ही घर में खड़ी रहती है दूसरी जगह नहीं जाती, जैसे ऊषर भूमि में बीज बोने वाला फल नहीं पाता, वैसे विना वेद पढ़े को हवि देने वाला फल नहीं पाता॥

दातॄन्प्रतिग्रहीतॄंश्च कुरुते फलभागिनः।
विदुषे दक्षिणां दत्वा विधिवत्प्रेत्य चेह च॥ १४३॥
कामं श्राद्धेर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम्।
द्विषताहि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम्॥ १४४॥

अर्थ—वेद जानने वाले ब्राह्मण को यथाशास्त्र दिया हुआ दान दाता और प्रतिग्रहीता दोनों को इस लोक और परलोक में

फल का भागी करता है, श्राद्ध में मित्र को चाहे बैठा देवे, परन्तु शत्रु विद्वान् हो तो भी उसको न बैठावे, क्योंकि द्वेषभाव से भक्षण किया हवि परलोक में निष्फल होता है ॥

यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बह्वृचं वेदपारगम् ।
शाखान्तगमथाध्वर्युं छन्दोगन्तु समाप्तिकम् ॥ १४५ ॥
एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्धमर्चितः ।
पितॄणां तस्य तृप्तिः स्याच्छाश्वती साप्तपौरुषी ॥ १४६ ॥

अर्थ—पूर्ण ऋग्वेदी को श्राद्ध में भोजन करावे, उसी प्रकार सशाखयजुर्वेदी और जो सम्पूर्ण सामवेद पढ़ा है और जिसने वेद समाप्ति की है, ऐसे ब्राह्मण को यत्नपूर्वक भोजन करावे, इनमें से कोई ब्राह्मण अच्छे प्रकार पूजित किया हुआ जिसके श्राद्ध में भोजन करता है, उसके पितरों की निरन्तर सात पुरुष तक तृप्ति होती है ॥

एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः ।
अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदासद्भिरनुष्ठितः ॥ १४७ ॥
मातामहं मातुलं च स्वस्रीयं श्वशुरं गुरुम् ।
दौहित्रं विट्पतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ॥ १४८ ॥

अर्थ—हव्य कव्य के देने में यह मुख्य कल्प कहा और इस के अभाव में आगे जो कहते हैं उसको अनुकल्प जाने, वह साधुओं से सर्वदा अनुष्ठान किया गया है, और नाना, मामा, भानजा, ससुर, गुरु, दौहित्र, जामात्र, मौसी का लड़का, ऋत्विज् तथा याज्य=यज्ञ कराने वाला, इन दश मातामहादि को भोजन करावे

न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवेकर्मणि धर्मवित् ।
पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ॥ १४९ ॥
येस्तेनपतितक्लीबा ये च नास्तिकवृत्तयः ।
तान् हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् ॥ १५० ॥

अर्थ—चाहे धर्म का जानने वाला, यज्ञ में भोजन के लिये ब्राह्मण की परीक्षा न करे, परन्तु श्राद्ध में यत्नपूर्वक परीक्षा करे, जो चोर, महापातकी, नपुंसक और नास्तिकवृत्ति वाले हैं ऐसे विप्र मनु ने हव्य कव्य के अयोग्य माने हैं ॥

जटिलं चानधीयानं दुर्बलं कितवं तथा ।
याजयन्ति च ये पूगांस्तांश्च श्राद्धे न भोजयेत् ॥ १५१ ॥
चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा ।
विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः ॥ १५२ ॥

अर्थ—अनपढ़ जटाधारी, दुर्बल, जुवारी और बहुत उद्यापन कराने वाला, इन सब को श्राद्ध में भोजन न करावे, वैद्य, पुजारी, मांस का बेचने वाला और वाणिज्य से जीविका करने वाला, यह सब हव्य कव्य ग्रहण करने के योग्य नहीं ॥

प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुनखी श्यावदन्तकः ।
प्रतिरोद्धा गुरोश्चैव त्यक्ताग्निर्वार्धुषिस्तथा ॥ १५३ ॥
यक्ष्मी च पशुपालश्च परिवेत्ता निराकृतिः ।
ब्रह्मद्विट् परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एव च ॥ १५४ ॥

अर्थ—ग्राम तथा राजा का हलकारा, कुनखी, काले दांत वाला, गुरु के प्रतिकूल चलने वाला, अग्निहोत्र का छोड़ने वाला, ब्याज से जीविका करने वाला, क्षय रोगी, वृत्ति के लिये गाय, भैंस, बकरी इत्यादि का पोषण करने वाला, परिवेत्ता, नित्य कर्मानुष्ठान से रहित, ब्राह्मण से द्वेष करने वाला, परिवित्ती, समुदाय के द्रव्य से अपना जीवन निर्वाह करने वाला, यह श्राद्ध में हव्य कव्य के योग्य नहीं ॥

कुशीलवोऽवकीर्णी च वृषलीपतिरेव च ।
पौनर्भवश्च काणश्च यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ १५५ ॥
भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितस्तथा ।
शूद्रशिष्यो गुरुश्चैव वाग्दुष्टः कुण्डगोलकौ ॥ १५६ ॥

अर्थ—कथा से वृत्ति करने वाला, जिसका ब्रह्मचर्य नष्ट होगया हो, शूद्रा से विवाह करने वाला, पुनर्विवाह का लड़का जिसकी स्त्री का जार हो, और वेतन लेकर पढ़ाने वाला, उसी प्रकार पढ़ने वाला, जिस गुरु का शूद्र शिष्य हो, कटु बोलने वाला, कुण्ड तथा गोलक यह हव्य कव्य के योग्य नहीं ॥

अकारणपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा ।
ब्राह्मैर्यौनैश्च सम्बन्धैः संयोगं पतितैर्गतः ॥ १५७ ॥
अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी ।
समुद्रयायी बन्दी च तैलिकः कूटकारकः ॥ १५८ ॥

अर्थ—विना कारण माता पिता तथा गुरु का त्यागने वाला, पतितों से अध्ययन और कन्यादानादि सम्बन्ध करने वाला, घर का जलाने वाला, विष देने वाला, कुण्ड का अन्न खाने वाला, सोम बेचने वाला, समुद्र यात्रा करने वाला, राजा की स्तुति करने वाला, तेली और झूठी साक्षी ॥

पित्रा विवदमानश्च कितवो मद्यपस्तथा ।
पापरोग्यभिशस्तश्च दाम्भिकोरसविक्रयी ॥ १५९ ॥
धनुः शराणां कर्ता च यश्चाग्रे दिधिषूपतिः ।
मित्रध्रुग्द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च ॥ १६० ॥

अर्थ—पिता से लड़ने वाला, धूर्त, मद्य पीने वाला, कुष्ठी, कलंकी, दम्भी, रस वेचने वाला, धनुषबाण का बनाने वाला "बड़ी बहिन से पहिले जिस छोटी का विवाह होता है वह अग्रेदिधिषु कहाती है" अग्रे दिधिषु का पति, मित्र से द्रोह करने वाला, जूए से वृत्ति करने वाला, पुत्र से पढ़ने वाला, यह सब हव्य कव्य के अधिकारी नहीं ॥

भ्रामरीगण्डमाली च श्वित्र्यथोपिशुनस्तथा ।
उन्मत्तोऽन्धश्च वर्ज्याः स्युर्वेदनिन्दक एव च ॥ १६१ ॥

हस्तिगोश्वोष्ट्रदमको नक्षत्रैर्यश्च जीवति ।
पक्षिणां पोषको यश्च युद्धाचार्यस्तथैवच ॥ १६२ ॥

अर्थ—मिरगी वाला, गण्डमाली, श्वेत कुष्ट वाला, चुग़ल खोर, उन्माद रोग वाला और अन्धा, यह श्राद्ध में वर्जित हैं, और वेद की निन्दा करने वाला, हाथी, बैल, घोड़ा और ऊंट इनको सीधा चलना सिखाने वाला, ज्योतिषी, पक्षियों का पालने वाला और युद्ध विद्या सिखाने वाला ॥

स्रोतसां भेदको यश्च तेषां चावरणे रतः ।
गृहसंवेशको दूतो वृक्षारोपक एवच ॥ १६३ ॥
श्वक्रीडी श्येनजीवीच कन्यादूषक एवच ।
हिंस्रो वृषलवृत्तिश्च गणानां चैव याजकः ॥ १६४ ॥

अर्थ—नहर आदि को तोड़ने तथा बन्द करने वाला गृह=वास्तुविद्या से जीविका करने वाला, दूत, वृक्षों का लगाने वाला, कुत्तों से खेलने वाला, बाज खरीदने तथा वेचने वाला, कन्या से गमन करने वाला, हिंसा करने वाला, शूद्रवृत्ति वाला, गणेशादि गणों की पूजा कराने वाला, श्राद्ध में भोजन करने का अधिकारी नहीं ॥

आचारहीनः क्लीवश्च नित्यं याचनकस्तथा ।
कृषिजीवी श्लीपदी च सद्भिर्निन्दित एव च ॥ १६५ ॥
औरभ्रिकोमाहिषिकः परपूर्वापतिस्तथा ।
प्रेत निर्यातकश्चैव वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ १६६ ॥

अर्थ—आचार से हीन, नपुंसक, नित्य भीख मांगने वाला, खेती करने वाला, पाण्डु रोग वाला, सत्पुरुषों से निन्दित, मैंढा तथा भैंस से जीने वाला, द्वितीया विवाहिता का पति, प्रेत का धन लेने वाला, यह ब्राह्मण यत्नपूर्वक श्राद्ध में वर्जनीय हैं ॥

एतान्विगर्हिताचारानपाङ्क्तेयान्द्विजाधमान् ।
द्विजातिप्रवरो विद्वानुभयत्र विवर्जयेत् ॥ १६७ ॥

ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ।
तस्मै हव्यं न दातव्यं नहि भस्मनि हूयते ॥ १६८ ॥

अर्थ–निन्दित आचार वाले और पंक्ति वाह्य अधमों को द्विजों में श्रेष्ठ विद्वान् देव तथा पितृ कर्मों में त्याग देवें। विना पढ़ा ब्राह्मण फूंस की अग्नि के समान ठण्डा होजाता है, इससे उस ब्राह्मण को हवि न देवे, क्योंकि राख में होम नहीं किया जाता॥

अपाङ्क्तदाने यो दातुर्भवत्यूर्ध्वं फलोदयः ।
दैवे हवींषि पित्र्ये वा तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ १६९ ॥

अर्थ–पंक्तिवाह्य ब्राह्मणों को देवताओं का हव्य और पितरों का कव्य देने में दाता को जो फल होता है, वह सम्पूर्ण आगे कहुंगा ॥

तौ तु जातौ परक्षेत्रे प्राणिनौ प्रेत्य चेह च ।
दत्तानि हव्य कव्यानि नाशयेते प्रदायिनाम् ॥ १७५ ॥
अपाङ्क्तयो यावतः पाङ्क्तयान्भुञ्जानाननुपश्यति ।
तावतां न फलं प्रेत्य दाता प्राप्नोति बालिशः ॥ १७६ ॥

अर्थ–दूसरे के क्षेत्र में उत्पन्न हुए पुरुष, देने वाले के हव्य कव्य को इस लोक तथा परलोक में निष्फल कर देते हैं, पंक्ति के अयोग्य पुरुष अपाङ्क्य=पूर्वोक्त स्तेनादि जितने भोजन करते हुए श्रोत्रियादिकों को श्राद्ध में देखते हैं, उतनों का फल भोजन कराने वाला मूर्ख नहीं पाता ॥

वीक्ष्यान्धोनवतेः काणः षष्टेः श्वित्री शतस्य तु ।
पापरोगी सहस्रस्य दातुर्नाशयते फलम् ॥ १७७ ॥
यावतः संस्पृशेदङ्गै ब्राह्मणाञ्छूद्रयाजकः ।
तावतां न भवेद्दातुः फलंदानस्य पौर्तिकम् ॥ १७८ ॥

अर्थ–अन्धा देखकर दाता के ९० श्रोत्रियादि ब्राह्मणों के भोजन का फल नष्ट करता है, काणा ६० का, श्वेत कुष्ठ वाला

१०० का, और पाप रोगी १००० ब्राह्मणों के भोजन का फल नष्ट करता है, शूद्र का यज्ञ कराने वाला अपने अङ्गों से जितने श्राद्ध में भोजन करने वालों को छुवे, उतनों के पूर्तसम्बन्धी श्राद्ध का फल दाता को नहीं होता ॥

वेदविद्यापि विप्रोऽस्य लोभात्कृत्वा प्रतिग्रहम् ।
विनाशं व्रजति क्षिप्रमामपात्रमिवाम्भसि ॥ १७९ ॥
सोमविक्रयिणेविष्ठाभिषजे पूयशोणितम् ।
नष्टं देवलकेदत्तमप्रतिष्ठं तु वार्धुषौ ॥ १८० ॥

अर्थ—वेद का जानने वाला भी विप्र शूद्रयाजक के साथ लोभ से प्रतिग्रह लेकर शीघ्र ही नष्ट होजाता है, जैसे कच्चा बरतन पानी में गल जाता है, सोम विक्रयी को जो हव्य कव्य देवे तो विष्ठा होती है, वैद्य को देने से पीव रक्त और पुजारी को देने से नष्ट होता है तथा व्याजवृत्ति को देवे तो अप्रतिष्ठित होता है ॥

यत्तुवाणिजके दत्तं नेह नामुत्रतद्भवेत् ।
भस्मनीवहुतं हव्यं तथा पौनर्भवे द्विजे ॥ १८१ ॥
इतरेषुत्वपांक्त्येषु यथोद्दिष्टेष्वसाधुषु ।
मेदोऽसृङ्मांसमज्जास्थिवदन्त्यन्नंमनीषिणः ॥ १८२ ॥

अर्थ—वैश्य वृत्ति करने वाले ब्राह्मण को देवे तो यहां तथा परलोक में कुछ फल नहीं, जैसे राख में घी जलाना वैसे पुनर्विवाह के लड़के को देना राख के होमवत निषिद्ध है, और इतर अपाङ्क्तयों को देने में मेद, रक्त, मांस, मज्जा, तथा हड्डी होती हैं, ऐसा विद्वान् कहते हैं ॥

अपाङ्क्तयोपहता पङ्क्तिः पाव्यतेयैर्द्विजोत्तमैः ।
तान्निबोधतकार्त्स्न्येन द्विजाग्रयान्पङ्क्तिपावनान् ॥ १८३ ॥
अग्रयाः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च ।
श्रोत्रियान्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः ॥ १८४ ॥

अर्थ—असाधुओं से भ्रष्ट हुई पंक्ति जिन द्विजोत्तमों से पवित्र होती है उन पंक्तियों के पवित्र करने वाले सब द्विजश्रेष्ठों को सुनो, जो चारो वेदों के जानने वाले, वेद के सम्पूर्ण अङ्गों को जानने वाले, श्रोत्रिय, परम्परा से वेदाध्ययन जिनके होता है उनको पंक्ति पावन जाने ॥

त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडंगवित् ।
ब्रह्मदेयात्म संतानो ज्येष्ठ सामग एवं च ॥ १८५ ॥
वेदार्थवित्प्र वक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः ।
शतायुश्चैव विज्ञेया ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ॥ १८६ ॥

अर्थ—कठोपनिषद् में कहे व्रत को त्रिणाचिकेत कहते हैं, उसको करने वाला भी त्रिणाचिकेत कहलाता है पूर्वोक्त पञ्चाग्नि वाला, वैसे ही ऋग्वेद के ब्राह्मणोक्त व्रत करने वाला त्रिसुपर्ण कहलाता है, छः अङ्गों का जानने वाला और ब्राह्म विवाहिता स्त्री से उत्पन्न हुआ, साम के आरण्यक का गाने वाला, वेद के अर्थ को जानने वाला, उसी का पढ़ाने वाला, ब्रह्मवादी, सहस्र गोदान करने वाला और सौ वर्ष की आयु वाला इन को पंक्ति के पवित्र करने वाला जाने ॥

पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा श्राद्धकर्मण्युपस्थिते ।
निमन्त्रयेत त्र्यवरान्सम्यग्विप्रान्यथोदितान् ॥ १८७ ॥
निमन्त्रितो द्विजः पित्र्ये नियमात्मा भवेत्सदा ।
नच छन्दांस्यधीयीत यस्य श्राद्धं च तद्भवेत् ॥ १८८ ॥

अर्थ—श्राद्ध के प्रथम दिन वा उसी दिन यथोक्त गुण वाले तीन वा न्यून ब्राह्मणों को सत्कार पूर्वक निमन्त्रण देवे, श्राद्ध में निमन्त्रित ब्राह्मण श्राद्ध के दिन नियम वाला होवे और वेदाध्ययन न करे, ऐसे ही श्राद्ध करने वाला भी नियम पूर्वक रहे ॥

निमन्त्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान्द्विजान् ।
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥ १८९ ॥
केतितस्तु यथा न्यायं हव्यकव्ये द्विजोत्तमः ।
कथंचिदप्यतिक्रामन्पापः सूकरतां व्रजेत् ॥ १९० ॥

अर्थ—पितर उन निमन्त्रित ब्राह्मणों के समीप आकर वायु तुल्य उन के पीछे चलते और बैठों के पास बैठे रहते हैं, श्रेष्ठ ब्राह्मण हव्य कव्य में यथा शास्त्र निमन्त्रित किया हुआ निमन्त्रण स्वीकार करके फिर किसी प्रकार भोजन न करे तो उस से जन्मान्तर में सूकर होता है ॥

आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे वृषल्या सह मोदते ।
दातुर्यद्दुष्कृतं किंचित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ १९१ ॥
अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः ।
न्यस्तशस्त्रामहाभागाः पितरः पूर्वदेवताः ॥ १९२ ॥

अर्थ—जो ब्राह्मण श्राद्ध में निमन्त्रित हुआ शूद्रा स्त्री के साथ मैथुन करे तो वह श्राद्ध करने वाले के संम्पूर्ण पाप को प्राप्त होता है, क्रोध रहित, भीतर बाहर से पवित्र, निरन्तर, जितेन्द्रिय, हथियार छोड़े हुवे और दयादि गुणों से युक्त पूर्व देवता पितर हैं ॥

यस्मादुत्पत्तिरेतेषां सर्वेषामप्यशेषतः ।
येच यैरुपचर्याः स्युर्नियमैस्तान्निबोधत ॥ १९३ ॥
मनोर्हैरण्य गर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः ।
तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ॥ १९४ ॥

अर्थ–इन सब पितरों की जिस से उत्पत्ति है और जो पितर जिन नियमों से पूजित होते हैं उन नियमों को सम्पूर्णतया सुनो, स्वायम्भुव मनु के पुत्र मरीच्यादिकों के पुत्रों को पितृगण कहा है ॥

विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः ।
अग्निष्वात्ताश्च देवानां मारीचालोक विश्रुताः ॥ १९५ ॥

दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
सुपर्णकिन्नराणां च स्मृता वर्हिषदोऽत्रिजाः ॥ १९६ ॥

अर्थ—विराट् के पुत्र सोमसद् नाम वाले साध्यों के पितर, मरीचि के पुत्र लोकप्रख्यात अग्निष्वात्त देवों के पितर हैं, वर्हिषद् नामक अत्रि के पुत्र दैत्य, दानव, यक्ष, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, सुपर्ण और किन्नरों के पितर हैं ॥

सोमपानाम विप्राणां क्षत्रियणां हविर्भुजः ।
वैश्यानामाज्यपानाम शूद्राणां तु सुकालिनः ॥ १९७ ॥
सोमपास्तुकवेः पुत्रा हविष्मन्तोऽङ्गिरः सुताः ।
पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिनः ॥ १९८ ॥

अर्थ—सोमपानाम ब्राह्मणों के और क्षत्रियों के हविर्भुज् तथा वैश्यों के आज्यपा नाम और शूद्रों के सुकालिन् पित्तर कहे हैं, भृगु के पुत्र सोमपा और अङ्गिरा के पुत्र हविष्मन्त, पुलस्त्य के पुत्र आज्यपा और वसिष्ठ के सुकालिन् यह पितर इन ऋषियों से उत्पन्न हुए हैं ।

अग्निदग्धानग्निदग्धान्काव्यान्वर्हिषदस्तथा ।
अग्निष्वात्तांश्च सौम्यांश्च विप्राणामेवनिर्दिशेत् ॥ १९९ ॥
य एतेतु गणा मुख्याः पितृणां परिकीर्त्तिताः ।
तेषामपीह विज्ञेयं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥ २०० ॥

अर्थ—अग्निदग्ध, अनग्निदग्ध, काव्य, वर्हिषद् और अग्निष्वात्त तथा सौम्यों को ब्राह्मणों का पितर कहा है, यह इतने पितरों के गण तो मुख्य कहे हैं परन्तु इस जगत में उनके पुत्र पौत्र अनन्त जानने चाहियें ॥

ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवमानवाः ।
देवेभ्यस्तु जगत्सर्वं चरःस्थाण्वनुपूर्वशः ॥ २०१ ॥
राजतैर्भाजनैरेषामथो वा राजतान्वितैः ।
वार्यपिश्रद्धयादत्तमक्षयायोपकल्पते ॥ २०२ ॥

अर्थ—ऋषियों से पितर, पितरों से देवता तथा मनुष्य हुवे और देवताओं से यह सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम जगत क्रम से उत्पन्न हुआ, चांदी के पात्रों, या चांदी लगे पात्रों से पितरों को श्राद्ध करके दिया पानी भी अक्षय सुख का हेतु होता है ॥

देवकार्याद् द्विजातीनां पितृकार्य्यं विशिष्यते ।
दैवं हि पितृकार्यस्य पूर्वमप्यायनं श्रुतम् ॥ २०३ ॥
तेषामारक्षभूतं तु पूर्वं दैवं नियोजयेत् ।
रक्षांसि हि विलुम्पन्ति श्राद्धमारक्षवर्जितम् ॥ २०४ ॥

अर्थ—द्विजातियों को देवकार्य से पितृकार्य अधिक कहा है, क्योंकि देवकार्य पितृकार्य्य का पूर्वाङ्ग तर्पण सुना है, पितरों के रक्षा करने वाले देवताओं को श्राद्ध में प्रथम स्थापन करे, क्योंकि रक्षक रहित श्राद्ध को राक्षस नष्ट कर देते हैं ॥

दैवाद्यन्तं तदीहेत पित्राद्यन्तं न तद्भवेत् ।
पित्राद्यन्तं त्वीहमानः क्षिप्रं नश्यति सान्वयः ॥ २०५ ॥
शुचिं देशं विविक्तं च गोमयेनोपलेपयेत् ।
दक्षिणा प्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत् ॥ २०६ ॥

अर्थ—श्राद्ध में प्रारम्भ और समाप्ति दोनों देवता पूर्वक करे, पित्रादि पूर्वक न करे, पित्रादि पूर्वक करने वाला शीघ्र वंश सहित नष्ट हो जाता है, एकान्त और पवित्र देश को गोबर से लीपे और दक्षिण की ओर को नीची वेदी प्रयत्न से बनावे ॥

अवकाशेषु चोक्षेषु नदीतीरेषु चैव हि ।
विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितरः सदा ॥ २०७ ॥
आसनेषूपक्लृप्तेषु बर्हिष्मत्सु पृथक्पृथक् ।
उपस्पृष्टोदकान्सम्यग्विप्रांस्तानुपवेशयेत् ॥ २०८ ॥

अर्थ—खुली जगह और पवित्र देश वा नदी के तीर पर या निर्जन देश में श्राद्ध करने से पितर प्रसन्न होते हैं, उस देश

में कुश सहित अच्छे प्रकार अलग २ बिछाये हुवे आसनों पर स्नान आचमन किये हुवे निमन्त्रित ब्राह्मणों को बैठावे ॥

उपवेश्य तु तान्विप्रानासनेष्वजुगुप्सितान् ।
गन्धमाल्यैः सुरभिभिरर्चयेद्देवपूर्वकम् ॥ २०९ ॥
तेषामुदकमानीय सुपवित्रांस्तिलानपि ।
अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो ब्राह्मणो ब्राह्मणैः सह ॥ २१० ॥

अर्थ—अनिन्दित ब्राह्मणों को आसन पर बैठा कर अच्छे सुगन्धित गन्धमाल्यों से देवपूर्वक पूजे अर्थात प्रथम देवस्थान के ब्राह्मणों को पूजकर पश्चात पितृस्थानीय ब्राह्मणों की पूजा करें, उन ब्राह्मणों को पवित्री और तिलों से युक्त अर्घ्योदक लाकर ब्राह्मणों के साथ श्राद्ध करने वाला ब्राह्मण अग्नि में होम करे॥

अग्नेः सोमयमाभ्यांच कृत्वाप्यायनमादितः ।
हविर्दानेन विधिवत्पश्चात् संतर्पयेत्पितॄन् ॥ २११ ॥
अग्न्यभावेतु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् ।
योह्यग्निः स द्विजोविप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते ॥ २१२ ॥

अर्थ—प्रथम यथाविधि होम करके अग्नि, सोम तथा यम का पर्युक्षण पूर्वक तर्पण करके पश्चात पितरों को तृप्त करे, अग्नि के अभाव में होम न करे तो ब्राह्मण के हाथ पर ही आहुति देदेवे, क्योंकि जो अग्नि है वही ब्राह्मण है, ऐसा मन्त्र के जानने वाले कहते हैं ॥

अक्रोधनान्सुप्रसादान्वदन्त्येतान् पुरातनान् ।
लोकस्याप्यायने युक्तान् श्राद्धदेवान् द्विजोत्तमान् ॥ २१३ ॥
अपसव्यमग्नौकृत्या सर्वमावृत्य विक्रमम् ।
अपसव्येन हस्तेन निर्वपेदुदकं भुवि ॥ २१४ ॥

अर्थ—क्रोध रहित, प्रसन्नचित्त, वृद्ध, लोगों की वृद्धि में उद्योग करने वाले द्विजोत्तमों को श्राद्ध पात्र कहते हैं, अपसव्य

से अग्नौकरणादि होम और अनुष्ठानक्रम करके पश्चात् दक्षिण हाथ से भूमि पर पानी डाले ॥

त्रींस्तु तस्माद्धविः शेषात्पिण्डान्कृत्वा समाहितः ।
औदकेनैवविधिना निर्वपेद्दक्षिणामुखः ॥ २१५ ॥
न्युप्यपिण्डांस्ततस्तांस्तु प्रयतो विधिपूर्वकम् ।
तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्याल्लेपभागिनम् ॥ २१६ ॥

अर्थ—उस होम द्रव्य के शेष से तीन पिण्ड बना कर जल वाली विधि द्वारा दक्षिण मुख होकर स्वस्थचित्त हुआ कुशों पर चढ़ावे, विधि पूर्वक उन पिण्डों को दर्भों पर स्थापन करके उन दर्भों के ऊपर लेपभागी पितरों की तृप्ति के लिये हाथ पोछ डाले ॥

आचम्योदक् परावृत्य त्रिरायम्यशनैरसून् ।
षड्ऋतूंश्च नमस्कुर्यात्पितॄनेव च मन्त्रवित् ॥ २१७॥
उदकांनिनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः ।
अवजिघ्रेच्चतान्पिण्डान्यथान्युप्तान्समाहितः ॥ २१८ ॥

अर्थ—तदनन्तर उत्तर मुख होकर आचमन और तीन प्राणायाम शनैः २ करके मन्त्र का जानने वाला षट् ऋतुओं और पितरों को भी नमस्कार करे, एकाग्रचित्त वाला पिण्ड-दान के पात्र में जो शेष पानी बचा हो, उस को पिण्डों के समीप धीरे २ छोड़े, सावधान हुआ जिस क्रम से पिण्डों को रक्खा था उसी क्रम से उनको सूंघे ॥

पिण्डेभ्यस्त्वल्पिकांमात्रां समादायानुपूर्वशः ।
तेनैव विप्रानासीनान् विधिवत्पूर्वमाशयेत् ॥२१९॥
ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् ।
विप्रवद्वापितंश्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् ॥ २२० ॥

अर्थ—क्रम पूर्वक प्रत्येक पिण्ड से थोड़ा २ भाग लेकर विधि पूर्वक उन्हीं अल्प भागों को भोजन के समय ब्राह्मणों को

प्रथम खिलावे, पिता जीवित हो तो बाबा आदि का ही श्राद्ध करे, वा पिता के स्थान में अपने जीवित पिता को भोजन करा देवे॥

पिता यस्य निवृतः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः।
पितुः सनामसंकीर्त्य कीर्त्तयेत्प्रपितामहम् ॥ २२१ ॥
पितामहोवातच्छ्राद्धं भुञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः।
कामं वासमनुज्ञातः स्वयमेव समाचरेत् ॥ २२२ ॥

अर्थ—जिस का पिता मरगया हो और बाबा जीता हो, तो पिता का नाम उच्चारण करके प्रपितामह का उच्चारण श्राद्ध में करे, वा उस श्राद्ध में जीवित पितामह को भोजन करावे, ऐसा मनु कहते हैं, अथवा पितामह की आज्ञा पाकर जैसा चाहे वैसा करे॥

तेषांदत्वातुहस्तेषु सपवित्रं तिलोदकम्।
तत्पिण्डाग्रंप्रयच्छेत स्वधैषामस्त्वितिब्रुवन् ॥ २२३ ॥
पाणिभ्यांतूपसंगृह्य स्वयमन्नस्यवर्धितम्।
विप्रान्तिके पितॄन्ध्यायन् शनकैरुपनिक्षिपेत् ॥ २२४ ॥

अर्थ—उन ब्राह्मणों के हाथ में सपवित्र तिलोदक देकर पितृ, पितामह, प्रपितामह के साथ "स्वधाअस्तु" ऐसा उच्चारण करता हुआ क्रम से पिण्ड का अल्प भाग देवे, परिपक्व अन्नों के पात्रों को अपने हाथों से "वृद्धिरस्तु" कह कर पितरों का स्मरण करता हुआ ब्राह्मणों के समीप धीरे २ रखे॥

उभयोर्हस्तयोर्मुक्तं यदन्नमुपनीयते।
तद्विप्रलुम्पन्त्यसुराः सहसा दुष्टचेतसः ॥ २२५ ॥
गुणांश्चसूपशाकाद्यान् पयोदधि घृतंमधु।
विन्यसेत्प्रयतः पूर्वं भूमावेव समाहितः ॥ २२६ ॥

अर्थ—ब्राह्मणों के लिये दोनों हाथों से न लाये हुए अन्न को अकस्मात् दुष्टबुद्धि वाले असुर छीन लाते हैं, इस लिये एक हाथ से लाकर न परोसे, चटनी, दाल, तरकारी इत्यादि

नाना प्रकार के व्यञ्जन दूध दही घृत और मधु को पवित्र हो कर तथा स्वस्थचित्त से प्रथम पात्र सहित भूमि पर रक्खे ॥

भक्ष्यं भोज्यं च विविधं मूलानि च फलानि च ।
हृद्यानि चैव मांसानि पानानि सुरभीणि च ॥ २२७ ॥
उपनीय तु तत्सर्वं शनकैः सुसमाहितः ।
परिवेषयेत प्रयतो गुणान्सर्वान्प्रचोदयन् ॥ २२८ ॥

अर्थ—नाना प्रकार के भक्ष्य भोजन, मूल, फल, हृदय के मांस और सुगन्धि युक्त पीने के द्रव्य, यह सम्पूर्ण अन्न धीरे२ ब्राह्मणों के समीप लाकर पवित्रता और स्वस्थचित्त से सब के गुण कहता हुआ परोसे ॥

नास्रमापातयेज्जातु न कुप्येन्नानृतं वदेत् ।
न पादेन स्पृशेदन्नं नचैतदवधूनयेत् ॥ २२९ ॥
अस्रंगमयति प्रेतान्कोपोऽरीननृतंशुनः ।
पादस्पर्शस्तु रक्षांसि दुष्कृतीनवधूननम् ॥ २३० ॥

अर्थ—श्राद्ध समय रुदन तथा क्रोध न करे, झूठ न बोले, अन्न में पैर न लगावे और अन्न को न फैंके, रोने से वह अन्न प्रेतों को मिलता, क्रोध करने में शत्रुओं को प्राप्त होता और असत्य भाषण से कुत्तों को पहुंचता है तथा पैर लगाने से राक्षस खाते हैं और फेंका हुआ पापी पाते हैं ॥

यद्यद्रोचेतविप्रेभ्यस्तत्तद्दद्यादमत्सरः ।
ब्रह्मोद्याश्च कथाः कुर्यात्पितॄणामेतदीप्सितम् ॥ २३१ ॥
स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैवहि ।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणान्यखिलानि च ॥ २३२ ॥

अर्थ—और जो २ पदार्थ ब्राह्मणों को अच्छा लगे वह २ देवे, मत्सरता रहित होकर ईश्वर सम्बन्धी बात करे, क्योंकि पितरों को यही इष्ट है, वेद, धर्मशास्त्र, आख्यान, इतिहास और पुराण इत्यादि श्राद्ध में सुनवावे ॥

हर्षयेद् ब्राह्मणांस्तुष्टो भोजयेच्च शनैः शनैः ।
अन्नाद्येनासकृच्चैतान् गुणैश्च परिचोदयेत् ॥ २३३ ॥
व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत् ।
कुतपञ्चासने दद्यात्तिलैश्च विकिरेन्महीम् ॥ २३४ ॥

अर्थ—आप प्रसन्नचित्त हुआ ब्राह्मणों को प्रसन्न करे, जल्दी न करता हुआ भोजन करावे, और मिष्टान्न के गुणों से ब्राह्मणों को प्रेरणा करे, श्राद्ध में दौहित्र ब्रह्मचारी हो तो उसे भी यत्न से भोजन करावे, बैठने को नैपालीकम्बल देवे और श्राद्ध भूमि में तिल डाले ॥

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः ।
त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम् ॥ २३५ ॥
अत्युष्णं सर्वमन्नं स्याद्भुञ्जीरंस्तेच वाग्यताः ।
नच द्विजातयो ब्रूयुर्दात्रा पृष्टाहविर्गुणान् ॥ २३६ ॥

अर्थ—दौहित्र, कम्बल और तिल यह तीन श्राद्ध में पवित्र हैं और क्रोध न करना, पवित्रता तथा जल्दी न करना प्रशंसनीय है, बोलना बन्द करके ब्राह्मण भोजन करें, भोजन योग्य सब पदार्थ गरम होने चाहियें और श्राद्ध करने वाला भोजनों का गुण पूछे तो भी विप्र न बोलें ॥

यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्नन्ति वाग्यताः ।
पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥ २३७ ॥
यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद् भुङ्क्ते दक्षिणामुखः ।
सोपानत्कश्चयद्भुङ्क्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥ २३८ ॥

अर्थ—जब तक अन्न उष्ण है, जब तक मौन युक्त भोजन करते हैं और जब तक ब्राह्मणों द्वारा भोजन के गुण नहीं कहे जाते, तब तक पितर भोजन करते हैं, सिर बांधे हुए जो भोजन करता है और दक्षिण मुख हो जो भोजन करता है तथा जूता पहरे हुए जो खाता है, वह सब राक्षस भोजन करते हैं पितर नहीं ॥

चण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च ।
रजस्वला च षण्डश्च नेक्षेरन्नश्नतो द्विजान् ॥ २३९॥
होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिवीक्ष्यते ।
दैवेकर्मणि पित्र्ये वा तद्गच्छत्ययथातथम् ॥ २४० ॥

अर्थ—चण्डाल, सूकर, मुरगा, कुत्ता, रजस्वलास्त्री और नपुंसक, यह सब भोजन करते हुए ब्राह्मणों को न देखें, अग्नि होत्र, दान, ब्रह्मभोज, देवकर्म, वा पितृकर्म में जो यह पूर्वोक्त देखें तो सब निष्फल हो जाता है ॥

घ्राणेन सूकरो हन्ति पक्षवातेन कुक्कुटः ।
श्वा तु दृष्टिनिपातेन स्पर्शेनाऽवरवर्णजः ॥ २४१ ॥
खञ्जो वा यदिवाकाणोदातुः प्रेष्योऽपि वा भवेत् ।
हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्पुनः ॥ २४२ ॥

अर्थ—सूकर उस अन्न को सूंघने से, परों की हवा से मुरगा देखने से कुत्ता और छूने से शूद्र निष्फल कर देता है, जिसका पैर मारा गया हो=लंगड़ा, काणा वा दाता का दास हो वा न्यूनाधिक अङ्ग वाला हो, तो उस को भी श्राद्ध के स्थान से हटा दे ।

ब्राह्मणं भिक्षुकं वापि भोजनार्थमुपस्थितम् ।
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः शक्तितः प्रतिपूजयेत् ॥ २४३ ॥
सार्ववर्णिकमन्नाद्यं सन्नीयाप्लाव्य वारिणा ।
समुत्सृजेद् भुक्तवतामग्रतोविकिरन्भुवि ॥ २४४ ॥

अर्थ—भिक्षुक वा ब्राह्मण श्राद्ध काल में भोजनार्थ प्राप्त हो तो उस का भी ब्राह्मणों की आज्ञा पाकर यथाशक्ति पूजन करे, अर्थात् भोजन करावे या भिक्षा देवे, सर्व प्रकार के अन्नादि को एकत्र करके पानी से छिड़क कर भोजन किये हुए ब्राह्मणों के आगे दर्भों पर बखेरता हुआ रखे ॥

असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनां कुलयोषिताम् ।
उच्छिष्टं भागधेयंस्याद्दर्भेषु विकिरश्च यः ॥ २४५ ॥

उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च।
दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥ २४६ ॥

अर्थ—संस्कार के अयोग्य मरे बालक तथा त्यागियों और कुलस्त्रियों का उच्छिष्ट कुशा पर का भाग विकिर कहा गया है, भूमि पर गिरा हुआ श्राद्ध में उच्छिष्ट है और वह दासों के समुदाय का भाग है, ऐसा मनु कहते हैं, परन्तु वह दास समुदाय सीधा हो कुटिल न हो ॥

आसपिण्डक्रियाकर्म द्विजातेः संस्थितस्य तु।
अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥ २४७॥
सहपिण्डक्रियायां तु कृतायामस्य धर्मतः।
अनयैवावृता कार्यं पिण्डनिर्वपणं सुतैः ॥ २४८ ॥

अर्थ—मरे द्विजों की सपिण्डी तक वैश्वदेवरहित श्राद्धान्न ब्राह्मण को जिमावे और एक पिण्ड देवे, परन्तु धर्म से सपिण्डी हो जाने पर पुत्रों को उक्त प्रकार से पिण्डदान करना चाहिये ॥

श्राद्धं भुक्त्वा य उच्छिष्टं वृषलाय प्रयच्छति।
समूढो नरकं याति कालसूत्रमवाक्शिराः ॥ २४९ ॥
श्राद्धभुग्वृषलीतल्पं तदहर्योऽधिगच्छति।
तस्याः पुरीषे तन्मासं पितरस्तस्य शेरते ॥ २५० ॥

अर्थ—जो श्राद्ध के उच्छिष्ट भोजन को शूद्र के लिये देता है वह मूर्ख कालसूत्र नामक नरक को जाता है जिसका नीचे को शिर और ऊपर को पैर होते हैं, जो श्राद्धान्न को भोजन करके उस दिन वेश्या गमन करता है उसके पितर और मांस उस स्त्री के मल में गिरते हैं ॥

पृष्ट्वा स्वदितमित्येवं तृप्तानाचामयेत्ततः।
आचान्तांश्चानुजानीयादभितो रम्यतामिति ॥ २५१ ॥
स्वधास्त्वित्येव तं ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम्।
स्वधाकारः परं ह्याशीः सर्वेषु पितृकर्मसु ॥ २५ ॥

अर्थ—तृप्तब्राह्मण को "भोजन अच्छा हुआ" इस प्रकार श्राद्धकर्त्ता पूछ कर आचमन करावे, पश्चात् आचमन किये हुओं को "आराम कीजिये" ऐसा कहे, इस कथनानन्तर ब्राह्मण श्राद्धकर्त्ता के प्रति "स्वधाऽस्तु" ऐसा कहें, क्योंकि सब श्राद्ध कर्म में स्वधा शब्द का उच्चारण परम आशीर्वाद है॥

ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत्।
यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्ततो द्विजैः॥ २५३॥
पित्र्ये स्वदितमित्येव वाच्यं गोष्ठे तु सुश्रुतम्।
संपन्नमित्यभ्युदये दैवे रुचितमित्यपि॥ २५४॥

अर्थ—स्वधा शब्द के उच्चारणानन्तर निवेदन करे कि "यह शेष अन्न है" तब ब्राह्मण इस को जैसा कहें वैसा करे, पितृश्राद्ध में "स्वदितम्" ऐसा कहे और गोष्ठ में "सुश्रुतम्" ऐसा कहे और अभ्युदय श्राद्ध में "सम्पन्नम्" इस प्रकार कहे और दैवश्राद्ध में "रुचितम्" ऐसा कहे॥

अपराह्णस्तथा दर्भा वास्तुसंपादनं तिलाः।
सृष्टिर्मृष्टिर्द्विजाश्चाग्र्याः श्राद्धकर्मसु संपदः॥ २५५॥
दर्भाः पवित्रं पूर्वाह्णो हविष्याणि च सर्वशः।
पवित्रं यच्च पूर्वोक्तं विज्ञेया हव्यसंपदः॥ २५६॥

अर्थ—दोपहर का समय, दर्भ, गोबर से लेपन, तिल, उदारता से अन्नादि का देना, अन्न का संस्कार और पूर्वोक्त पंक्तिपावन ब्राह्मण, यह सब श्राद्ध की सम्पत्ति है, दर्भ, पवित्र, पहिला पहर, सब मुनियों के अन्न, और पूर्वोक्त गोमय=गोबर आदि पवित्र, यह हव्य की सम्पत्ति जानो॥

मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम्॥
अक्षारलवणं चैव प्रकृत्या हविरुच्यते॥ २५७॥
विसृज्य ब्राह्मणांस्तांस्तु नियतो वाग्यतः शुचिः।
दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन्याचेतेमान्वरान् पितॄन्॥ २५८॥

अर्थ—मुनियों के अन्न, दूध, सोम लता का रस, मांस जो पकाया नहीं गया और सैंधवनमक को स्वभाव से हवि कहते हैं, उन ब्राह्मणों को विसर्जन करके एकाग्रचित्त और पवित्र, मौनी दक्षिण दिशा में देखता हुआ पितरों से अपने अभिलषित यह वर मांगे कि :—

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेवच।
श्रद्धा च नोमाव्य गमद्‌बहुधेयं च नोऽस्त्विति ॥ २५९ ॥

अर्थ—हमारे कुल में देने वाले, वेद तथा पुत्र पौत्रादि बढ़ें हमारे कुल से श्रद्धा न हटे और धनादि बहुत होवे ॥

एवं निर्वपणं कृत्वा पिण्डांस्तदनन्तरम्।
गां विप्रमजमग्निं वा प्राशयेदप्सु वा क्षिपेत् ॥ २६० ॥
पिण्डनिर्वपणं केचित्पुरस्तादेव कुर्वते ॥
वयोभिः खादयन्त्यन्ये प्रक्षिपन्त्यनलेऽप्सु वा ॥ २६१ ॥

अर्थ—उक्त प्रकार से पिण्डदान करके उन पिण्डों को गाय, ब्राह्मण, बकरा, वा अग्नि को खिलावे वा पानी में डाल दे, कोई ब्राह्मण भोजन के अनन्तर पिण्ड दान करते हैं और कोई पक्षियों को पिण्ड खिलाते हैं और दूसरे अग्नि वा पानी में डाल देते हैं।

पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा।
मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक् सुतार्थिनी ॥ २६२ ॥
आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम्।
धनवन्तं प्रजावन्तं सात्विकं धार्मिकं तथा ॥ २६२ ॥

अर्थ—सजातीय विवाहिता, पतिव्रत धर्म का आचरण करने वाली, श्राद्ध में श्रद्धा रखने वाली, पुत्र की इच्छा वाली स्त्री, उन तीनों में से विधि युक्त बीच के पिण्ड का भक्षण करे, उस पिण्ड भक्षण से वह स्त्री दीर्घायु, कीर्ति, यश धारण करने वाला, भाग्यवान, सन्तति वाला, सत्वगुणी, धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न करती है ॥

प्रक्षाल्यहस्ता वाचम्य ज्ञातिप्रायं प्रकल्पयेत् ।
ज्ञातिभ्यः सत्कृतं दत्वा बान्धवानपि भोजयेत् ॥ २६४ ॥
उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः ।
ततो गृहबलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ २६५ ॥

अर्थ—हाथ धोकर आचमन करके जाति वालों को अन्न देकर भाइयों को भी भोजन करावे, वह ब्राह्मणों का उच्छिष्ट अन्न ब्राह्मणों के विसर्जन तक रहे उसके अनन्तर वैश्वदेव करे, यह धर्म व्यवस्था है ॥

हविर्यच्चिररात्राय यच्चानन्त्याय कल्पते ।
पितृभ्यो विधिवद्दत्तं तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ २६६ ॥
तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा ।
दत्तेन मासंतृप्यन्ति विधिवत्पितरोनृणाम् ॥ २६७ ॥

अर्थ—जो हवि पितरों को यथा विधि दिया हुआ बहुत काल पर्यन्त और अनन्त तृप्ति देता है वह सम्पूर्ण आगे कहते हैं, तिल, धान्य, यव, उड़द, जल, मूल और फलों के विधिवत् देने से मनुष्यों के पितर एक मास पर्यन्त तृप्त रहते हैं ॥

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन् मासान्हारिणेन तु ।
औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुननाथ पञ्च वै ॥ २६८॥
षण्मासांश्छागमांसेन पार्षतेन च सप्त वै ।
अष्टावेणस्य मांसेन रौरवेण नवैव तु ॥ २६९ ॥

अर्थ—मछली के मांस से दो महीने तक, हरिण के मांस से तीन महीने, मेंढा के मांस से चार महीने, पक्षीयों के मांस से पांच महीने, बकरे के मांस से छः महीने, चित्रमृग के मांस से सात महीने, एणमृग के मांस मे आठ महीने और रुरुमृग के मांस से नौ महीने पितर तृप्त रहते हैं ॥

दशमासांस्तुतृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः ।
शशकूर्मयोस्तु मांसेन मासानेकादशैव तु ॥ २७० ॥

अर्थ—सूकर तथा भैंसे के मांस से दश महीने शशा तथा कछुवे के मांस से ग्यारह महीने पितर तृप्त रहते हैं ॥

संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च ।
वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ २७१ ॥
कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु ।
आनन्त्यायैवकल्पन्ते मुन्यन्नानिच सर्वशः ॥ २७२ ॥

अर्थ—गाय के दूध वा उस की खीर से वर्ष पर्यन्त, वार्ध्रीणस=लम्बे कान वाले वकरे के मांस से बारह वर्ष तृप्ति रहती है, कालशाक, महाशल्क, यह मछलियों के भेद हैं और गेंडा, लाल-वकरा, मधु और सम्पूर्ण मुनियों के अन्न, यह अनन्त तृप्ति करते हैं॥

यत्किञ्चिन्मधुनामिश्रं प्रदद्यात्तु त्रयोदशीम् ।
तदप्यक्षयमेव स्याद्वर्षासु च मघासु च ॥ २७३ ॥
अपिनः सकुले जायाद्योनोदद्यात् त्रयोदशीम् ।
पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च ॥ २७४ ॥

अर्थ—वर्षाकाल की मघायुक्त त्रयोदशी में श्राद्ध के निमित्त ब्राह्मण को जो कुछ मधुयुक्त देवे उस से अक्षय तृप्ति होती है, इस प्रकार का कोई हमारे कुल में हो जो हम को त्रयोदशी में दूध मधु घृत से युक्त भोजन देवे या हस्ती की पूर्व दिशा की छाया में देवे " यह पितर आशा करते हैं " ॥

यद्यद्ददाति विधिवत्सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ।
तत्तत्पितॄणां भवति परत्रानन्तमक्षयम् ॥ २७५ ॥
कृष्णपक्षे दशम्यादौवर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।
श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैतानतथेतराः ॥ २७६ ॥

अर्थ—अच्छे श्राद्धयुक्त जो कुछ विधिपूर्वक पितरों को देता है वह परलोक में पितरों की अक्षय तृप्ति के लिये होता है, कृष्णपक्ष में दशमी से लेकर चतुर्दशी छोड़ कर यह तिथि श्राद्ध में जैसी प्रशस्त हैं वैसी और नहीं ॥

युक्षु कुर्वन् दिनर्क्षेषु सर्वान्कामान्समश्नुते ।
अयुक्षु तु पितॄन्सर्वान्प्रजां प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥ २७७ ॥
यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते ।
तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते ॥ २७८ ॥

अर्थ—युग्म तिथि और युग्म नक्षत्रों में श्राद्ध करने वाला सम्पूर्ण इष्ट पदार्थों को प्राप्त होता है, अयुग्म तिथि तथा अयुग्म नक्षत्रों में श्राद्ध करने वाला पुत्रादि सन्तति को पाता है, जैसे शुक्लपक्ष से कृष्णपक्ष श्राद्धादि करने में अधिक फल का देने वाला है, वैसे ही पहिले पहर से दूसरे पहर में अधिक फल होता है ॥

प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा ।
पित्र्यमानिधनात्कार्यं विधिवद्दर्भपाणिना ॥ २७९ ॥
रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता हि सा ।
संध्ययोरुभयोश्चैव सूर्ये चैवाचिरोदिते ॥ २८० ॥

अर्थ—दाहिने कन्धे पर यज्ञोपवीत करके आलस्य रहित हो दर्भ हाथ में लेकर अपसव्य हो शास्त्रानुसार सब पितृसम्बन्धी कर्म मृत्युपर्यन्त करे, रात्रि में श्राद्ध न करे क्योंकि उस को राक्षसी कहा है और दोनों संध्याओं तथा सूर्योदय से छः घड़ी वा थोड़ा दिन चढ़े तक भी श्राद्ध न करे ॥

अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत् ।
हेमन्तग्रीष्मवर्षासु पाञ्चयज्ञिकमन्वहम् ॥ २८१ ॥
न पैतृयज्ञियो होमो लौकिकेऽग्नौ विधीयते ।
न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः ॥ २८२ ॥

अर्थ—इस विधि से एक वर्ष में तीनवार श्राद्ध करे, हेमन्त, ग्रीष्म तथा वर्षा में और पञ्च यज्ञान्तर्गत श्राद्ध को प्रतिदिन करे, श्राद्ध सम्बन्धी होम लौकिक अग्नि में नहीं कहा और न आहिताग्नि ब्राह्मणादि को अमावस्या से अतिरिक्त तिथि में श्राद्ध कहा है

यदेव तर्पयत्यद्भिः पितॄन्स्नात्वा द्विजोत्तम ।
तेनैव कृत्स्नमाप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम् ॥ २८३-३ ॥

अर्थ—जो द्विज स्नान करके जल से ही प्रतिदिन पितृतर्पण करता है, वह उसी से सम्पूर्ण नित्य श्राद्ध का फल पाता है ॥

चतुर्थाध्याय

नानिष्ट्वा नवसस्येष्ट्या पशुना चाग्निमान्द्विजः ।
नवान्नमद्यान्मांसं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥ २७ ॥
नवेनानर्चिता ह्यस्य पशुहव्येन चाग्नयः ।
प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगर्द्धिनः ॥ २८ ॥

अर्थ—दीर्घ आयु की इच्छा करने वाला अग्निहोत्री नवीन अन्न से इष्टि किये विना नवान्न भक्षण न करे और पशुयाग किये विना मांस भक्षण न करे, नवीन अन्न और पशु से यजन किये विना अग्नि इस के प्राणों को खाने की इच्छा करता है, क्योंकि अग्नि नवीन अन्न और मांस की अत्यन्त अभिलाषा वाली है ॥

न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् ।
नचास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥ ८० ॥

अर्थ—शूद्र को बुद्धि, उच्छिष्ट, तथा हविष्कृत=होमशेष का भाग न दे, न उसको धर्मोपदेश करे, और उसको व्रत भी न बतावे ॥

यो ह्यस्य धर्ममाचष्टे यश्चैवादिशति व्रतम् ।
सोऽसंवृतंनामतमः सहतेनैव मज्जति ॥ ८१ ॥

अर्थ—जो इस शूद्र को धर्मोपदेश और प्रायश्चित्त का उपदेश करे वह उस शूद्र के साथ "असंवृताख्य"=बड़े अन्धकार वाले नरक में गिरता है ॥

न राज्ञः प्रतिगृह्णीयादराजन्य प्रसूतितः ।
सूना चक्रध्वजवतां वेषेणैव च जीवताम् ॥ ८५ ॥
दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ।
दशध्वजसमो वेशो दशवेशसमो नृपः ॥ ८६ ॥

अर्थ—क्षत्रिय से भिन्न अन्य जाति में उत्पन्न राजा से दान न लेवे, सूना=हिंसास्थान से, गाड़ी आदि से, कलालपन से वृत्ति करने वाले और बहुरूपियों के भी धन को ग्रहण न करे, दश हिंसकों के बराबर एक गाड़ी वाला, इन दश के बराबर एक कलाल, दश कलाल के समान एक बहुरूपिया, दश बहुरूपियों के बराबर एक क्षत्रिय से भिन्न राजा, अर्थात् यह उत्तरोतर अधिक निषिद्ध हैं ॥

> दशसूना सहस्राणि यो वाहयति सौनिकः ।
> तेन तुल्यः स्मृतो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः ॥ ८६ ॥
> यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्रवर्त्तिनः ।
> सपर्यायेण यातीमान्नरकानेकविंशतिम् ॥ ८७ ॥

अर्थ—दस हज़ार जीवों को मारने का अधिष्ठाता सौनिक कहाता है, उक्त राजा उसके बराबर कहा है, इस लिये इस का प्रतिग्रह घोर है अतएव न ले, जो कृपण और शास्त्र का उल्लंघन करने वाला राजा का प्रतिग्रह लेता है, वह क्रम से इन वक्ष्यमाण इक्कीस नरकों को प्राप्त होता है :—

> तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ ।
> नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च ॥ ८८ ॥
> संजीवनं महावीचिं तपनं सम्प्रतापनम् ।
> संघातं च सकाकोलं कुड्मलं प्रतिमूर्त्तिकम् ॥ ८९ ॥

अर्थ—तामिस्र (१) अन्धतामिस्र (२) महारौरव (३) रौरव (४) नरक (५) कालसूत्र (६) महानरक (७) सञ्जीवन (८) महावीचि (९) तपन (१०) संप्रतापन (११) संघात (१२) सकाकोल (१३) कुड्मल (१४) प्रतिमूर्त्तिक (१५) ॥

लोहशंकुमृजीषं च पन्थानं शाल्मलीं नदीम् ।
असिपत्रवनं चैव लोहदारकमेव च ॥ ९० ॥
एतद्विदन्तो विद्वांसो ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
न राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति प्रेत्य श्रेयोऽभिकाङ्क्षिणः ॥ ९१ ॥

अर्थ—लोहशंकु (१६) ऋजीष (१७) पन्थान (१८) शाल्मलीनदी (१९) असिपत्रवन (२०) और लोहदारक (२१) यह इक्कीस नरक हैं, "यह प्रतिग्रह नाना प्रकार के नरकों का हेतु है" इसप्रकार जानने वाले विद्वान् वेद के जानने वाले और परलोक में कल्याण की इच्छा करने वाले ब्रह्मवादी ब्राह्मण ऐसे राजा का प्रतिग्रह नहीं लेते ॥

विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च संप्लवे ।
आकालिकमनध्यायमेतेषु मनुरब्रवीत् ॥ १०३ ॥

अर्थ—" विजली गरजते हुवे, वर्षा में और उल्काओं के गिरने में अनध्याय उस समय तक करे जिस समय तक यह उत्पात वा वर्षा होते रहें, ऐसा मनु कहते हैं ॥

उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रस्य विसर्जने ।
उच्छिष्टः श्राद्धभुक्चैव मनसाऽपि न चिन्तयेत् ॥१०९॥
प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम् ।
त्र्यहं न कीर्तयेद् ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके ॥११०॥

अर्थ—जल, तथा, मध्यरात्र में, मलमूत्र त्यागने के समय, भोजनादि करके जूठे मुंह और श्राद्ध में भोजन करके वेद को मन से भी याद न करे, विद्वान् ब्राह्मण एकोद्दिष्ट श्राद्ध का निमन्त्रण ग्रहण करके तीन दिन वेद का अध्ययन न करे और राजा के (पुत्रजन्मादि के) सूतक तथा राहु के सूतक में तीन दिन अनध्याय करे ॥

यावदेकानुदिष्टस्य गन्धो लेपश्च तिष्ठति ।
विप्रस्य विदुषो देहे तावद् ब्रह्म न कीर्तयेत् ॥ १११ ॥
शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम् ।
नाधीयीतामिषं जग्ध्वासूतकान्नाद्यमेव च ॥११२॥

अर्थ—जब तक एकोदिष्ट श्राद्ध का देह में गन्ध और लेप रहता है, विद्वान् ब्राह्मण तब तक वेद न पढ़े, लेटा हुआ और पैरों को ऊंचा किये बैठने में दोनों पैरों को भीतर की ओर मोड़े हुए मांस तथा सूतकियों का अन्न भोजन करके भी न पढ़े ॥

अमावास्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति चतुर्दशी ।
ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत् ॥ ११४ ॥

अर्थ—अमावास्या में पढ़ने से गुरु नष्ट होता, चतुर्दशी में में शिष्य और वेद अष्टमी तथा पौर्णमासी में पढ़ने से नष्ट होता है॥

प्राणि वा यदि वाऽप्राणियत्किंचिच्छ्राद्धिकं भवेत् ।
तदालभ्याप्यनध्यायः पाण्यास्यो हि द्विजः स्मृतः ॥११७॥

अर्थ—श्राद्धसम्बन्धी पशु वा शाकादि को हाथ से काटकर न पढ़े, क्योंकि ब्राह्मण का "पाण्यास्य"=हाथ ही मुख कहा है॥

ऋग्वेदो देवदैवत्यो यजुर्वेदस्तु मानुषः ।
साम वेदः स्मृतः पित्र्यस्तस्मात्तस्याऽशुचिर्ध्वनिः ॥१२४॥

अर्थ—ऋग्वेद देवताओं का, यजुर्वेद मनुष्य सम्बन्धी और पितृसम्बन्धी साम है, इस कारण उस सामवेद की ध्वनि अशुचि है, यह श्लोक अधिक है :—

षष्ठ्यष्टम्यौ त्वमावास्यामुभयत्र चतुर्दशीम् ।
वर्जयेत्पौर्णमासीं च तैले मांसे भगे क्षुरे ॥ १ ॥

अर्थ—दो षष्ठी दो अष्टमी, अमावास्या दो चतुर्दशी और पौर्णमासी इन तिथियों में मर्दन, मांस भक्षण, बाल बनवाना और स्त्री संयोग न करे ॥

मध्यंदिनेऽर्धरात्रे वा श्राद्धं भुक्त्वा च सामिषम् ।
संध्ययोरुभयोश्चैव न सेवेत चतुष्पथम् ॥ १३१ ॥

अर्थ—दोपहर दिन, आधी रात्री और श्राद्ध में मांससहित भोजन करके और दोनों सन्ध्याओं में चौराहे पर अधिक काल तक न रहे ॥

शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति महीतलात् ।
तावतोऽब्दानमुत्रान्यैः शोणितोत्पादकोऽद्यते ॥ १६८ ॥

अर्थ—शस्त्रादि के मारने से निकला हुआ ब्राह्मण के शरीर का रुधिर, जितने पृथिवी के धूल के कणों को शोषण करता है, उतने वर्ष पर्यन्त मारने वाला मरकर जन्मान्तर में अन्य कुत्ता आदिकों से खाया जाता है ॥

अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम् ।
वैश्यान्नमन्नमित्याहुः शूद्रस्य रुधिरं स्मृतम् ॥ २०१ ॥

अर्थ—ब्राह्मण का अन्न अमृत, क्षत्रिय का दूध, वैश्य का अन्न और शूद्र का अन्न रुधिर समान है ॥

चन्द्रसूर्यग्रहेनाद्यादद्यात्स्नात्वा तु मुक्तयोः ।
अमुक्तयोरस्तगतयोरद्याच्चैव परेऽहनि ॥ २२३ ॥

अर्थ—चन्द्र सूर्य के ग्रहण में भोजन न करे, जब ग्रहण होकर मुक्त हो जाय, तब स्नान करके भोजन करे, यदि विना मुक्त हुए छिप जावे तो अगले दिन भोजन करे ॥

एधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं च यत् ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान् मध्वथा भयदक्षिणाम् ॥ २४७ ॥
आहृताभ्युद्यतांभिक्षां पुरस्तादप्रचोदिताम् ।
मेने प्रजापतिर्ग्राह्यामपि दुष्कृतकर्मणः ॥ २४८ ॥

अर्थ—इन्धन, जल, मूल, फल, अन्न और अभयदक्षिणा यह बिना मांगे प्राप्त हों तो सब से ग्रहण करले, लाकर सामने

रक्खी हुई और लेने वाले ने पूर्व न मांगी हुई भिक्षा पापकारी से भी ग्रहण करे, यह ब्रह्मा ने माना है ॥

नाश्नन्ति पितरस्तस्य दशवर्षाणि पञ्च च।
नच हव्यं वहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते ॥ २४९ ॥

अर्थ—उस के किये श्राद्ध में पितर पन्द्रह वर्ष भोजन नहीं करते और अग्नि उसके हवि को ग्रहण नहीं करता जो कि अयाचित्त भिक्षा का अपमान करता है, "यह आगे के दो श्लोक अधिक हैं" ॥

चिकित्सककृतघ्नानां शिल्पकर्त्तुश्चवार्धुषेः।
षण्ढस्य कुलटायाश्च उद्यतामपि वर्जयेत् ॥
न विद्यमानमेवैवं प्रतिग्राह्यं विजानता।
विकल्प्याविद्यमाने तु धर्महीनः प्रकीर्त्तितः ॥

अर्थ—वैद्य, कृतघ्न, शिल्पी, व्याज जीवी, नपुंसक और वेश्या का प्रतिग्रह विना मांगे मिलने पर भी न ले, यह प्रतिग्रह जान बूझ कर अपने पास होते हुए न ले, परन्तु कुछ न होते हुए लेने में विकल्प करने से धर्महीन होजाता है ॥

शय्यांगृहान्कुशान्गन्धानपः पुष्पंमणीन्दधि।
धानान्मत्स्यान् पयो मांसं शाकं चैव न निर्नुदेत् ॥२५०॥

अर्थ—शय्या, घर, कुशा, गन्ध, जल, पुष्प, मणि, दधि, धान्य, मत्स्य, दूध, मांस और शाक इन का प्रत्याख्यान न करे अर्थात् कोई देवे तो न लौटावे ॥

गुरून्भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन्नर्चिष्यन्देवतातिथीन्।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्नतु तृप्येत्स्वयं ततः ॥ २५१ ॥
गुरुषु त्वभ्यतीतेषु विनावातैर्गृहे वसन् ॥
आत्मनो वृत्तिमन्विच्छन्गृह्णीयात्साधुतः सदा ॥ २५२ ॥

अर्थ—गुरु, भृत्य तथा भार्या आदि क्षुधा से पीड़ित हों तो इन की तृप्ति और देवता तथा अतिथि के पूजनार्थ सब से ग्रहण करले परन्तु आप उस में से भोजन न करे, माता पिता के मरने पर वा उनके विना घर में रहता हुआ अपनी वृत्ति की इच्छा वाला निरन्तर सज्जन से ही ग्रहण करे ॥

आर्धिकः कुलमित्रं च गोपालो दासनापितौ ।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥ २५३ ॥

अर्थ—आधे साझे की खेती आदि करने वाला, कुलमित्र गोपाल, दास, तथा नापित यह शूद्रों में भोज्यान्न हैं अर्थात् इन का अन्न भोजन योग्य है, और जो अपने को निवेदन करें, उसका भी अन्न भोजन योग्य है ।

पंचमाध्याय

स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः ।
श्रूयतां येन दोषेण मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ ३ ॥

अर्थ—मनुवंशी भृगुजी उन महर्षियों के प्रति बोले कि सुनिये, जिस दोष से मृत्यु "अकाल में" विप्रों को मारना चाहता है ॥

वृथाकृसरसंयावं पायसा पूपमेव च ।
अनुपाकृतमांसानि देवान्नानि हवींषि च ॥ ७ ॥

अर्थ—कृसरसंयाव=तिल, चांवल मिलाकर बनाई हुई लपसी वा खीर तथा मालपुआ यह सब पकान्न वैश्वदेव के विना वृथा तथा बलि विना मांस और हवन के पुरोडाशों को भक्षण न करे, यह श्लोक अधिक है :—

क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि तद्विकाराशने बुधः।
सप्तरात्रव्रतं कुर्यात्प्रयत्नेन समाहितः ॥ १ ॥

अर्थ—जो दूध अभक्ष्य हैं उनका बना पदार्थ खालेवे तो पश्चात् जानने पर एकाग्रता से यत्नपूर्वक सात रात्रि व्रत करे ॥

क्रव्यादाञ्छकुनान्सर्वांस्तथा ग्रामनिवासिनः।
अनिर्दिष्टांश्चैकशफांष्टिट्टिभं च विवर्जयेत् ॥ ११ ॥
कलविङ्कं प्लवं हंसं चक्राङ्गं ग्रामकुक्कुटम्।
सारसं रज्जुवालं च दात्यूहं शुकसारिके ॥ १२ ॥

अर्थ—कच्चे मांस के खाने वाले सब जानवर, ग्राम के रहने वाले, न बताये हुवे एक खुर वाले, गर्दभ तथा टिड्डी इनका और चिड़िया, परेव, हंस, चकवा, ग्राम का मुरग़ा, सारस, बड़ी गर्दन वाला जलकाक, पपीहा, तोता और मैना, इनका मांस न खाय ॥

प्रतुदाञ्जालपादांश्च कोयष्टिनखविष्किरान्।
निमज्जतश्च मत्स्यादान् शौनंवल्लूरमेवच ॥ १३ ॥
बकं चैव बलाकां च काकोलं खञ्जरीटकम्।
मत्स्यादान्विड्वराहांश्च मत्स्यानेव च सर्वशः ॥ १४ ॥

अर्थ—चोंच से फाड़कर खाने वाले, जिनके पैरों में जालसा हो, बाज़ आदि, चील्ह और जो नखों से फाड़कर खाते तथा पानी में डूबकर जो मछलियों को खाते हैं, शौन=पशु मारने के स्थान का मांस और शुष्क मांस, बगुला, बत्तक, करेरुवा, खञ्जन, मछली के खाने वाले तथा विष्ठाभक्षी सूकर और सम्पूर्ण मछलियों को न खाय ॥

यो यस्य मांसमश्नाति स तन्मांसाद उच्यते।
मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मान्मत्स्यान्विवर्जयेत् ॥ १५ ॥

पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ हव्यकव्ययोः ।
राजीवान्सिंहतुण्डांश्च सशल्कांश्चैव सर्वशः ॥ १६ ॥

अर्थ–जो जिसका मांस खाता है वह उस मांस को खाने वाला कहाता है "मछली सब का मांस खाती है" इसको जो खावे वह सब का खाने वाला कहाता है, इससे मछली को न खावे, पाठा और रोहू यह दो मछलीं हव्य कव्य में लीगई हैं, इसलिये भक्षण योग्य हैं, राजीव, सिंह तुण्डा=तेंदुआ और सब मोती खाने वाली मछलीं, यह सब भक्ष्य हैं ॥

न भक्षयेदेकचरानज्ञातांश्च मृगद्विजान् ।
भक्ष्येष्वपिसमुद्दिष्टान् सर्वान्पञ्चनखांस्तथा ॥ १७ ॥
श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा ।
भक्ष्यान्पञ्चनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः ॥ १८ ॥

अर्थ—अकेले चरने वाले सर्पादि और मृगपक्षी जो जाने नहीं गये हैं और जो भक्ष्यों में भी कहे हों, वह पञ्चनख सब भक्ष्य नहीं, जैसे वानरादि श्वाविध, शल्यक, गोधा, खड्ग, कछवा शशा यह पांच नख वालों में भक्षण योग्य हैं और ऊंट को छोड़ कर एक ओर दांत वाले भी भक्ष्य हैं ॥

छत्राकं विड्वराहंच लशुनं ग्रामकुक्कुटम् ।
पलाण्डुं गृञ्जनं चैव मत्याजग्ध्वा पतेद्द्विजः ॥ १९ ॥
अमत्यैतानि षड्जग्ध्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ।
यतिचान्द्रायणं वापि शेषेषूपवसेदहः ॥ २० ॥

अर्थ—छत्राक, ग्रामसूकर, लसुन, ग्राम का मुर्ग़ा, पियाज़, गाजर, यह सब जानकर जो द्विज भक्षण करे वह पतित हो जाता है, इन छः को बुद्धि पूर्वक भक्षण करके "एकादशाध्याय में कहे" सान्तपन वा यतिचान्द्रायण प्रायश्चित्त करे और इस से शेष भक्षण करने वाला एक दिन उपवास करे ॥

संवत्सरस्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रं द्विजोत्तमः ।
अज्ञातभुक्तशुद्धयर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः ॥ २१ ॥
यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः ।
भृत्यानां चैव वृत्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्पुरा ॥ २२ ॥

अर्थ—बिना जाने निषिद्ध का भक्षण किया हो तो द्विज एक वर्ष का एक कृच्छ्रव्रत करे और जान बूझ कर किया हो तो विशेष कर व्रत करे, यज्ञ और पोष्यवर्ग की तृप्ति के लिये ब्राह्मण भक्ष्य मृग पक्षियों को मारें, क्योंकि पहिले अगस्त्य मुनि ने भी ऐसा किया है ॥

बभूवुर्हि पुरोडाशा भक्ष्याणां मृगपक्षिणाम् ।
पुराणेष्वपि यज्ञेषु ब्रह्मक्षत्रसवेषु च ॥ २३ ॥

अर्थ—प्राचीन ऋषियों और ब्राह्मण क्षत्रियों के यज्ञों में भक्ष्य मृग पक्षियों के पुरोडाश हुआ करते थे ॥

एतदुक्तं द्विजातीनां भक्ष्याभक्ष्यमशेषतः ।
मांसस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं भक्षणवर्जने ॥ २६ ॥

अर्थ—यह द्विजातियों का निःशेष भक्ष्य अभक्ष्य कहा, अब इसके अनन्तर मांस के भक्षण और त्याग की विधि कहेंगे ॥

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया ।
यथा विधिनियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये ॥ २७ ॥
प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिरकल्पयत् ।
स्थावरं जङ्गमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम् ॥ २८ ॥

अर्थ—ब्राह्मणों की कामना मांस भक्षण की हो तो यज्ञ में प्रोक्षण विधि से शुद्ध करके भक्षण करें और प्राणरक्षा के निमित्त विधि के नियम से मांस भक्षण करें, प्राण का यह सम्पूर्ण अन्न प्रजापति ने बनाया है, स्थावर और जङ्गम सम्पूर्ण प्राण का भोजन है ॥

चराणामन्नमचरा दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः ।
अहस्ताश्च सहस्तानां शूराणां चैव भीरवः ॥ २९ ॥
नात्ता दुष्यत्यदन्नाद्यान्प्राणिनोऽहन्यहन्यपि ।
धात्रैव सृष्टा ह्याद्याश्च प्राणिनोऽत्तार एव च ॥ ३० ॥

अर्थ—चर जीवों के अचर घास आदि और दंष्ट्रि=व्याघ्रादिकों के अदंष्ट्रि=हरिणादि, हाथ वाले मनुष्यों के हाथ रहित=मछली आदि और शूरों के भीरु, ऐसे एक का एक भोजन बनाया है, भक्षण योग्यों को भक्षण करते हुए खाने वाले को दोप नहीं लगता, क्योंकि विधाता ने ही यह भोजन और भोजन करने वालों को उत्पन्न किया है ॥

यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येष दैवो विधिः स्मृतः ।
अतो अन्यथा प्रवृत्तिस्तु राक्षसो विधिरुच्यते ॥ ३१ ॥
क्रीत्वा स्वयं वाप्युत्पाद्य परोपकृतमेव वा ।
देवान्पितृंश्चार्चयित्वा खादन्मांसं न दुष्यति ॥ ३२ ॥

अर्थ—यज्ञ के निमित्त मांसभक्षण करना देव विधि है और इसके अतिरिक्त भक्षण करना राक्षस विधि कही है, मोल लेकर अथवा आप ही मारकर या दूसरे किसी ने लाकर दिया हो तो उसको देवता और पितरों को चढ़ाकर खाने में दोष नहीं ॥

नाद्यादविधिना मांसं विधिज्ञोऽनापदि द्विजः ।
जग्ध्वा ह्यविधिना मांसं प्रेत्य तैरद्यतेऽवशः ॥ ३३ ॥
न तादृशं भवत्येनो मृगहन्तुर्धनार्थिनः ।
यादृशं भवति प्रेत्य वृथामांसानि खादतः ॥ ३४ ॥

अर्थ—अनापत्ति में विधि का जानने वाला द्विज विना विधि के मांस भक्षण न करे, क्योंकि विना विधि जो मांस भक्षण करता है उसके मरने पर जिन का मांस उस ने खाया है

उसे वह खाते हैं, जीविकार्थ जो पशुओं को मारते हैं, उनको वैसा पाप नहीं होता जैसा कि विना देव पितरों को चढ़ाये हुए मांस भक्षण करने वाले को होता है ॥

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः ।
स प्रेत्य पशुतां याति संभवानेकविंशतिम् ॥ ३५ ॥
असंस्कृतान्पशून्मन्त्रैर्नाद्याद्विप्रः कदाचन ।
मन्त्रैस्तु संस्कृतानद्याच्छाश्वतं विधिमास्थितः ॥ ३६ ॥

अर्थ—मधुपर्क वा श्राद्ध में विधि से नियुक्त हुआ जो मांस भक्षण न करे, वह मरकर इक्कीस वार पशु योनी में जन्म लेता है, मन्त्रों से जिनका संस्कार नहीं हुआ उन पशुओं को विप्र कभी भक्षण न करे और शाश्वत वेद की विधि से यागादिकों में संस्कृत किये हुओं को अवश्य भक्षण करे ॥

कुर्याद्घृतपशुं संगे कुर्यात्पिष्टपशुं तथा ।
नत्वेव तु वृथाहन्तुं पशुमिच्छेत्कदाचन ॥ ३७ ॥
यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वो ह मारणम् ।
वृथापशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि ॥ ३८ ॥

अर्थ—खाने की इच्छा हो तो घृत का पशु वा पिष्ट=मैदा का पशु बनाकर यथाविधि खावे परन्तु विना देवता के उद्देश से पशु मारने की इच्छा न करे, विना देवता के उद्देश से जो पशु मारता है वह मरने पर जितने पशु के रोम हैं उतने ही जन्मों तक अन्यों से मारा जाता है ॥

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ।
यज्ञस्यभूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥ ३९ ॥
ओषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणस्तथा ।
यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीः पुनः ॥ ४० ॥

अर्थ—ब्रह्मा ने स्वयं ही सब यज्ञ की सिद्धि वृद्धि के अर्थ

पशु वनाये हैं इसलिये यज्ञ में पशुवध वध नहीं, औषधि, पशु, वृक्ष कूर्मादि और पक्षी, यह सव यज्ञ के निमित्त मारे जावें तो उत्तम योनि को प्राप्त होते हैं ॥

मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि ।
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥ ४१ ॥
एष्वर्थेषुपशून् हिंसन्वेदतत्त्वार्थविद्द्विजः ।
आत्मानं च पशुंचैव गमयत्युत्तमां गतिम् ॥४२॥

अर्थ–मधुपर्क, यज्ञ, श्राद्ध तथा देवकर्म, इनमें पशु वध करे अन्यत्र नहीं, यह मनु ने कहा है, वेद का तत्वार्थ जानने वाला द्विज इन्हीं मधुपर्कादिकों में पशुहिंसा करता हुआ आप और पशु दोनों को उत्तम गति प्राप्त कराता है ॥

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।
अनभ्यर्च्य पितृन्देवांस्ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत् ॥ ५२ ॥

अर्थ–देव तथा पितरों का पूजन किये विना जो पराये मांस से अपना मांस वढ़ाने की इच्छा करता है उससे वढ़कर कोई पापी नहीं ॥

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये नच मैथुने ।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥ ५६ ॥

अर्थ–मांस भक्षण, मद्यपान तथा मैथुन में मनुष्यों की प्रवृत्ति होती है इसलिये इनमें दोष नहीं और इनको छोड़दे तो वड़ा पुण्य है ॥

निरस्य तु पुमान् शुक्रमुपस्पृश्यैव शुद्ध्यति ।
वैजिकादभिसम्वन्धादनुरुन्ध्यादघंत्र्यहम् ॥ ६४ ॥

अर्थ–पुरुष अपना वीर्य निकालकर स्नानमात्र से शुद्ध होता और पराई भार्या में पुत्र उत्पन्न करने से तीन दिन अशौच रहता है॥

स्त्रीणामसंस्कृतानां तु त्र्यहाच्छुद्ध्यंति बान्धवाः ।
यथोक्तेनैवकल्पेन शुद्ध्यंति तु सनाभयः ॥ ७२ ॥

अर्थ–जिन स्त्रियों का संस्कार नहीं हुआ उनके मरने में उनके बान्धव और सजाति तीसरे दिन शुद्ध होते हैं ॥

अक्षारलवणान्नाः स्युर्निमज्जेयुश्च ते त्र्यहम् ।
मांसाशनं च नाश्नीयुः शयीरंश्च पृथक्क्षितौ ॥ ७३ ॥

अर्थ–क्षार लवण रहित अन्न का भोजन करें और तीन दिन नदी में स्नान करें और मांस भक्षण न करें तथा भूमि पर अकेले सोवें ॥

विप्रः शुद्ध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधम् ।
वैश्यः प्रतोदं रश्मीन्वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः ॥ ९९ ॥

अर्थ–प्रेतक्रिया करके ब्राह्मण जल को स्पर्श कर, क्षत्रिय शस्त्र और वाहनादि को तथा वैश्य हांकने के दण्डे या बाग को और शूद्र लाठी को छूकर शुद्ध होता है, अर्थात् अशौच समाप्ति के दिन इन २ को यह २ छूनी चाहियें यह रीति है, यह आगे एक अधिक श्लोक है :—

त्र्यहकृतशौचानां तु वायसी शुद्धिरिष्यते ।
पर्युक्षणाद्धूपनाद्वा मलिनामतिधावनात् ॥

अर्थ–तीन दिन में जिनकी शुद्धि कही है उन मृत बालकों के वस्त्र उनकी आयु के अनुसार शुद्ध होते हैं। किन्हीं के छिड़कने, किन्हीं के धूप देने और किन्हीं मैले वस्त्रों की अत्यन्त धुलाने से शुद्धि जानो ॥

नित्यमास्यं शुचिस्त्रीणां शकुनिः फलपातने ।
प्रस्रवे च शुचिर्वत्सः श्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥ १३० ॥

अर्थ—स्त्रियों का मुख सर्वदा पवित्र माना जाता है तथा

पक्षी फल गिराने में और बछड़े का मुख दूध दोहन के समय और कुत्ते का मुंह शिकार पकड़ने के समय पवित्र माना जाता है ॥

श्वभिर्हतस्ययन्मांसं शुचितन्मनुरब्रवीत् ।
क्रव्याद्भिश्च हतस्यान्यैश्चण्डालाद्यैश्च दस्युभिः ॥ १३१ ॥

अर्थ—कुत्तों से मारे हुए का मांस पवित्र है, ऐसा मनु ने कहा है और दूसरे व्याघ्र, चण्डाल आदि, वा दस्युओं से मारे हुए का मांस भी पवित्र हैं । यह पांच श्लोक अधिक हैं :—

अजाश्वं मुखतो मेध्यं गावो मेध्याश्च पृष्ठतः ।
ब्राह्मणा पादतो मेध्याः स्त्रियोमेध्याश्च सर्वत; ॥ १ ॥
गौरमेध्या मुखे प्रोक्ता अजा मेध्या ततः स्मृता ।
गोः पुरीषं च मूत्रं च मेध्यमित्यब्रवीन्मनुः ॥ २ ॥

अर्थ—बकरे, घोड़े मुख से पवित्र हैं, गौ पीठ से पवित्र, ब्राह्मण पांव से पवित्र, और स्त्रियां सब ओर से पवित्र हैं, गौ का मुख अपवित्र है परन्तु बकरी का मुख पवित्र है और गौ का मूत्र तथा गोबर पवित्र है, यह मनु ने कहा है ॥

दन्तवद्दन्तलग्नेषु जिह्वास्पर्शेषु चेन्न तु ।
परिच्युतेषु तत्स्थानान्निगिरन्नेव तच्छुचिः ॥

अर्थ—दांतों में घुसा अन्न दांतों के तुल्य शुद्ध है, परन्तु जीभ से न लगता हो और वह अन्न दांतों से छूटने पर निगलने में ही शुद्ध है ॥

अनृतौ तु मृदा शौचं कार्यं मूत्रपुरीषवत् ।
ऋतौ तु गर्भशङ्कित्वात्स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ॥

अर्थ—ऋतु से भिन्न काल में मैथुन करने वाले को मिट्टी से शौच करना चाहिये, जैसे मल मूत्र त्याग कर करते हैं, परन्तु ऋतु में गर्भ की शङ्कायुक्त होने से स्नान करना कहा है ॥

पत्यौ जीवति या तु स्त्री उपवासं व्रतं चरेत् ।
आयुष्यं बाधते भर्त्तुर्नरकं चैव गच्छति ॥

अर्थ—जो स्त्री पति के जीवित रहने पर उपवास करती है वह पति की आयु को बाधा पहुंचाती तथा नरक को प्राप्त होती है ॥

षष्ठाध्याय

अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मं वैखानसाश्रमम् ।
वन्यमूलफलानां च विधिं ग्रहणमोक्षणे ॥ १ ॥

अर्थ—इसके आगे वानप्रस्थाश्रमी का धर्म और वनस्थ मूल, फलों के लेने तथा त्यागने का विधान कहूंगा ॥

अलाबुंदारुपात्रं च मृण्मयं वैदलं तथा ।
एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ५४ ॥

अर्थ—तूंबी, लकड़ी, मिट्टी वा बांस के बने हुए यतियों के भिक्षापात्र हों, यह स्वायम्भुव मनु ने कहा है ॥

संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदं तु न परित्यजेत् ।
परित्यागाद्धि वेदस्य शूद्रतामनुगच्छति ॥ ९५ ॥

अर्थ—सब काम छोड़ दे परन्तु वेद को न छोड़े क्योंकि वेद के छोड़ने से शूद्रता को प्राप्त हो जाता है ॥

सप्तमाध्याय

वेनो विनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैव पार्थिवः ।
सुदासो यवनश्चैव सुमुखो निमिरेव च ॥ ४१ ॥
पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान्मनुरेव च ।
कुबेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यञ्चैव गाधिजः ॥ ४२ ॥

अर्थ—वेन, नहुष, सुदास, यवन, सुमुख, और निमि भी अविनय से नष्ट हुए, पृथु तथा मनु विनय से राज्य पागये और कुबेर ने विनय से धनाधिपत्य पाया तथा गाधि के पुत्र विश्वामित्र विनय से ब्राह्मण होगये ॥

न स्कन्दते न व्यथते न विनश्यति कर्हिचित् ।
वरिष्ठमग्निहोत्रेभ्यो ब्राह्मणस्य मुखे हुतम् ॥ ८४ ॥
सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ।
प्राधीते शतसाहस्रमनन्तं वेदपारगे ॥ ८५ ॥

अर्थ—अग्नि में जो हवन किया जाता है वह कभी गिर जाता, कभी सूख जाता, और कभी नष्ट हो जाता है, परन्तु ब्राह्मण को खिलाया हुआ अन्न दूषित नहीं होता, इस लिये अग्निहोत्र की अपेक्षा ब्राह्मण को खिलाना श्रेष्ठ है, अब्राह्मण को देने में समान फल होता, ब्राह्मण की क्रिया से रहित अपने को ब्राह्मण कहने वाले को देने से दूना और पढ़े हुए को देने से लाख गुणा तथा पूर्ण वेद पढ़े हुए ब्राह्मण को दानादि देने से अनन्त फल होता है ॥

अष्टमाध्याय

तद्वदन्धर्मतोऽर्थेषु जानन्नप्यन्यथा नरः ।
न स्वर्गाच्च्यवते लोकाद्दैवीं वाचं वदन्ति ताम् ॥ १०३ ॥
शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां यत्रर्तोक्तो भवेद्वधः ।
तत्र वक्तव्यमनृतं तद्धि सत्याद्विशिष्यते ॥ १०५ ॥

अर्थ—जो मनुष्य जानता हुआ भी धर्म के व्यवहारों में अन्यथा कहने वाला है, वह स्वर्गलोक से भ्रष्ट नहीं होता क्योंकि उस (असत्य) को देववाणी कहते हैं, जिस मुकद्दमे में शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मणों का सच बोलने से वध हो वहां झूठ बोलना चाहिये, क्योंकि वह सत्य से अधिक है ॥

वाग्दैवत्यैश्च चरुभिर्यजेरंस्ते सरस्वतीम् ।
अनृतस्यैनसस्तस्य कुर्वाणा निष्कृतिं पराम् ॥ १०५ ॥
कूष्माण्डैर्वापि जुहुयाद् घृतमग्नौ यथाविधि ।
उदित्यृचावावारुण्या तृचेनाब्दैवतेन वा ॥ १०६ ॥

अर्थ—उस झूठ बोलने के पाप का अत्यन्त प्रायश्चित करते हुए वह साक्षी वाग्देवता सम्बन्धी चरु से सरस्वती का यजन करें, अथवा कूष्माण्डों "यद्देवदेवहेडनम् इत्यादि यजु० २०।१४ मन्त्रों" से यथाविधि घृत को अग्नि में हवन करें, वा "उदुत्तमं वरुणपाशमं०" यजु० १२।१२ इस वरुण देवता वाले मन्त्र से, वा "आपोहिष्ठा०" यजु० ११।५० इन जल देवता की तीन ऋचाओं से पूर्वोक्त आहुति करें ॥

महर्षिभिश्च देवैश्च कार्यार्थं शपथाः कृताः ।
वसिष्ठश्चापि शपथं शेपे पैयवने नृपे ॥ ११० ॥

अर्थ—महर्षि और देवतों ने कार्य के लिये शपथें कीं, वसिष्ठ जी ने भी यवन राजा के पास शपथ किया था ॥

कामिनीषु विवाहेषु गवांभक्ष्ये तथेन्धने ।
ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम् ॥ ११२ ॥

अर्थ—सुरतलाभ को कामिनी के विषय में, विवाहों में गौओं के चारे, इन्धन और ब्राह्मण की रक्षा के लिये वृथा शपथ करने में पातक नहीं है ॥

अग्निं वाहारयेदेनमप्सु चैनं निमज्जयेत् ।
पुत्रदारस्य वाप्येनं शिरांसि स्पर्शयेत्पृथक् ॥ ११ ॥

अर्थ—प्रज्वलित अग्नि को शूद्रसाक्षी से उठवावें और पानी में इस को डुबावें तथा पुत्र स्त्री के शिर पर पृथक् २ हाथ रखवावें ॥

यमिद्धोनदहत्यग्निरापो नोन्मज्जयन्ति च ।
न चार्तिमृच्छति क्षिप्रं स ज्ञेयः शपथे शुचिः ॥११५॥
वत्सस्य ह्यभिशस्तस्य पुराभ्रात्रा यवीयसा ।
नाग्निर्ददाह रोमापि सत्येन जगतः स्पृशः ॥ ११६ ॥

अर्थ—जिस को जलती आग नहीं जलाती, जिस को जल नहीं डुबाता, जिस को पुत्रादि के वियोग से बहुत पीड़ा नहीं होती, उस शूद्र को शपथ में सच्चा जानना चाहिये, क्योंकि पूर्व काल में वत्सऋषि को छोटे भ्राता ने कहा कि " तू शूद्र का पुत्र है, ब्राह्मण का नहीं " इस कहने से उस ने जगत् के शुभाशुभ जानने वाले अग्नि में प्रवेश किया सो सत्य के कारण अग्नि ने उस का एक रोम भी नहीं जलाया ॥

दशस्थानानि दण्डस्य मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।
त्रिषु वर्णेषु यानि स्युरक्षतो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥ १२४ ॥

अर्थ—जो दण्ड के १० स्थान स्वायम्भुव मनु ने कहे हैं, वह क्षत्रियादि तीन वर्णों को हैं और ब्राह्मण को बिना दण्ड दिये केवल देश से निकाल दे ॥

वसिष्ठविहितां वृद्धिं सृजेद्वित्तविवर्धिनीम् ।
अशीतिभागं गृह्णीयान्मासाद्वार्धुषिकः शते ॥ १३९ ॥
ऋणे देये प्रतिज्ञाते पञ्चकंशतमर्हति ।
अपन्हवे तद्द्विगुणं तन्मनोरनुशासनम् ॥ १४० ॥

अर्थ—धन को बढ़ाने वाली वसिष्ठोक्त वृद्धि सूद अस्सीवां भाग सौपर ब्याज लेने वाला मासिक ग्रहण करे अर्थात् सवा-रुपया सैकड़ा ब्याज ले, यदि ऋणी सभा में कहदे कि मुझे महाजन का रुपया देना है तो पांच प्रति सैकड़ा दण्ड देने योग्य है और यदि न कहे तथा पुनः सभा में निश्चित होजावे, तो दश प्रति सैकडा दण्ड देने योग्य है इस प्रकार मनु की आज्ञा है॥

अन्यां चेद्दर्शयित्वान्या वोढुः कन्या प्रदीयते ।
उभे ते एकशुल्केन वहेदित्यब्रवीन्मनुः ॥ २०४ ॥

अर्थ—विवाह ठहराते समय किसी अन्य कन्या को दिख-लावे, पुनः विवाह समय दूसरी कन्या देदेवे तो उन दोनों कन्याओं को एक ही ठहराये मूल्य पर विवाह ले, ऐसा मनु का कथन है॥

एकजातिर्द्विजातींस्तु वाचा दारुणया क्षिपन् ।
जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यप्रभवो हि सः ॥२७०॥

अर्थ—यदि शूद्र द्विजातियों को गाली दे तो जीभ छेदन का दण्ड पावे, क्योंकि वह निकृष्ट से उत्पन्न है ॥

नामजातिग्रहणन्त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः ।
निक्षेप्योयोमयः शङ्कुर्ज्वलन्नास्ये दशाङ्गुलः ॥ २७१ ॥

धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः ।
तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥ २७२ ॥

अर्थ—जो शूद्र द्विजातियों के नाम तथा जाति का उच्चारण करे तो उसके मुंह में तप्ती हुई दश अंगुल लोहे की कील ठोकनी चाहिये, जो शूद्र अहङ्कार से ब्राह्मणों को धर्म का उपदेश करे, उसके मुख और कान में राजा तप्त तैल डलवावे ॥

विट्शूद्रयोरेवमेव स्वजातिं प्रति तत्त्वतः ।
छेदवर्जं प्रणयनं दण्डस्येति विनिश्चयः ॥ २७७ ॥

अर्थ—वैश्य शूद्रों को आपस में इसी प्रकार गाली गलौज करने में अपनी २ जाति के प्रति ठीक २ छेदरहित दण्ड का प्रयोग करे ॥

वानस्पत्यं मूलफलं दार्वग्न्यर्थं तथैव च ।
तृणञ्च गोभ्यो ग्रासार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत् ॥ ३३९ ॥

अर्थ—वनस्पति सम्बन्धी मूल फल और जलाने को काष्ठ तथा गायों के लिये घास "इनका चुराना" चोरी नहीं, ऐसा मनु ने कहा है ॥

अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति ।
चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा ॥३५९॥

अर्थ—ब्राह्मण को छोड़कर अन्य सब परस्त्रीसंग्रहण में प्राणान्त दण्ड के योग्य और चारो वर्ण की स्त्रियां अत्यन्त रक्षा के योग्य हैं॥

कन्यां भजन्तीमुत्कृष्टं न किञ्चिदपि दापयेत् ।
जघन्यं सेवमानां तु संयतां वासयेद्गृहे ॥ ३६५ ॥
उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति ।
शुल्कं दद्यात्सेवमानः समामिच्छेत्पिता यदि ॥ ३६६ ॥

अर्थ—ब्राह्मणादि उत्तम वर्ण वाले के साथ गमन करने

वाली कन्या को थोड़ा भी दण्ड न देवे और हीन जाति से सम्बन्ध करने वाली को रक्षापूर्वक घर में रक्खे, उत्तमवर्ण वाली कन्या के साथ हीनवर्ण का पुरुष यदि गमन करे, तो वह वध के योग्य है और समानवर्ण का गमन करने वाला "कन्या का पिता स्वीकार करे तो उसको" शुल्क देदेवे ॥

मौण्ड्यं प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते ।
इतरेषां तु वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत् ॥ ३७९ ॥
न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम् ।
राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम् ॥ ३८० ॥
न ब्राह्मणवधाद्भूयानधर्मो विद्यते भुवि ।
तस्मादस्य वधं राजा मनसापि न चिन्तयेत् ॥ ३८१ ॥

अर्थ—ब्राह्मण का शिर मुंड़ाना ही प्राणान्तिक दण्ड कहा है, अन्य वर्णों का प्राणदण्ड ही प्राणान्तिक है, सम्पूर्ण पापों में स्थित भी ब्राह्मण को कभी न मारे, किन्तु समस्त धन सहित विना मारे पीटे राज्य से निकाल देवे ॥

ब्राह्मण के वध से बड़ा कोई पाप पृथिवी में नहीं है, इस लिये राजा इसके वध का मन से भी चिन्तन न करे ॥

नवमाध्याय
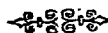
नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः ।
सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥ १४ ॥

अर्थ—यह स्त्रियें न तो रूपका विचार करतीं, न इनकी

आयु का ठिकाना है, सुरूप अथवा कुरूप पुरुष मात्र हो, उसे ही भोगती हैं ॥

पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैस्नेह्याच्च स्वभावतः ।
रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्त्तृष्वेता विकुर्वते ॥ १५ ॥
एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजापति निसर्गजम् ।
परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥ १६ ॥

अर्थ—पुंश्चली, चित्त की चञ्चला तथा स्वभाव से ही स्नेह रहिता होने से यत्नपूर्वक रक्षित स्त्रियें भी, पति में विकार कर बैठती हैं ॥

ब्रह्मा के सृष्टि काल से साथ रहने वाले इस प्रकार स्त्रियों के स्वभाव को जानकर पुरुष इनकी रक्षा का परम यत्न करें ॥

शय्यासनमलंकारं काम क्रोधमनार्जवम् ।
द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयत् ॥ १७ ॥
नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरितिधर्मे व्यवस्थितिः ।
निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमितिस्थितिः ॥ १८ ॥

अर्थ—शय्या, आसन, अलङ्कार, काम, क्रोध, अनार्जव, द्रोह-भाव और कुचर्या यह मनु ने स्त्रियों के लिये उत्पन्न किये हैं ॥

जातकर्मादि क्रिया स्त्रियों की मन्त्रों से नहीं, यह धर्म-शास्त्र की मर्यादा है, स्त्रियां निरिन्द्रिया और अमन्त्रा हैं तथा इनकी स्थिति भी असत्य है ॥

तथा च श्रुतयो बह्वयो निगीता निगमेष्वपि ।
स्वालक्षण्यपरीक्षार्थं तासां शृणुत निष्कृतिः ॥ १७ ॥
यन्मे माता प्रलुलुभे विचरन्त्यपतिव्रता ।
तन्मे रेतः पितावृक्तामित्यस्यैतन्निदर्शनम् ॥ २० ॥

अर्थ—व्यभिचारशीला स्त्रियों के स्वभाव की परीक्षा के निमित्त वेदों में बहुत श्रुतियें पठित हैं, उन श्रुतियों में जो व्यभिचार की प्रायश्चित्तभूत श्रुतियां हैं उनको सुनो :—

"कोई पुत्र माता का मानस व्यभिचार जान कर कहता है कि—" जो मेरी माता अपतिव्रता हुई परपुरुष को चाहने वाली थी उस दुष्टता को मेरा पिता शुद्ध वीर्य्य से शोधन करे, यह उन श्रुतियों का निदर्शन=नमूना दिखाया गया ॥

ध्यायत्यनिष्टं यत्किञ्चित्पाणिग्राहस्य चेतसा ।
तस्यैव व्यभिचारस्य निन्हवः सम्यगुच्यते ॥ २१ ॥
यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथाविधि ।
तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा ॥ २२ ॥

अर्थ—भर्त्ता के विपरीत जो स्त्री अन्य पुरुष के साथ गमन चाहती है उस मानस व्यभिचार की शुद्धि के निमित्त यह शोधन मन्त्र कहा ॥

जिस गुण वाले पति के साथ स्त्री रीत्यनुसार विवाह करके रहे "समुद्र के साथ मिलकर नदियों के समान" वैसे ही गुणों वाली वह स्त्री होजाती है ॥

अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा ।
शारङ्गीमन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् ॥ २३ ॥
एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः ।
उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः ॥ २४ ॥

अर्थ—अक्षमाला नाम की निकृष्टयोनि स्त्री वसिष्ठ से युक्त होकर, तथा शारङ्गी, मन्दपाल से युक्त होकर पूज्यता को प्राप्त हुई ॥

इस लोक में यह तथा अन्य अधमयोनियों की स्त्रियां अपने २ पति के शुभ गुणों से उच्चता को प्राप्त हुई हैं ॥

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता।
सा भर्तृलोकानाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते॥ २९॥
व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्।
शृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते॥ ३०॥

अर्थ—जो स्त्री मन, वाणी और देह से संयमवाली पति से भिन्न अन्य किसी से गमन नहीं करती वह पतिलोकों को प्राप्त होती तथा शिष्ट लोगों से साध्वी कही जाती है॥

पुरुषान्तरसम्पर्क से स्त्री, लोगों में निन्दा और जन्मान्तर में शृगालयोनि को पाती तथा पाप रोगों से पीड़ित होती है॥

अत्र गाथा वायुगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः।
यथा बीजं न वप्तव्यं पुंसा परपरिग्रहे॥ ४२॥
नश्यतीषुर्यथा विद्धः खे विद्धमनुविद्ध्यतः।
तथा नश्यति वै क्षिप्रं बीजं परपरिग्रहे॥ ४३॥
पृथोरपीमां पृथिवीं भार्यां पूर्वविदो विदुः।
स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम्॥ ४४॥

अर्थ—भूतकालज्ञ इस विषय में वायु की कही कथा "छन्दोविशेषयुक्त वाक्यों" को कहते हैं, जैसे दूसरे के वींधे मृग में पुनः मारने वाले का वाण निष्फल होता है, एवं दूसरे की स्त्री में बीज बोया हुआ शीघ्र निष्फल होजाता है, इस पृथिवी को जो पहिले राजा पृथु की भार्या थी अनेक राजाओं के सम्बन्ध होने पर भी लोग पृथु की ही भार्या कहते हैं, ऐसे ही लकड़ी आदि पर प्रथम खेत बनाने वाले का खेत और जिसने पहिले शिकार किया हो उसी का मृग है, इस प्रकार प्रथम विवाह करने वाले का पुत्र होता है पश्चात् उत्पन्न करने वाले का नहीं॥

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित्।
न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः॥ ६५॥

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः।
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेनेराज्यं प्रशासति ॥ ६६ ॥

अर्थ—विवाह सम्बन्धी मन्त्रों में कहीं नियोग नहीं कहा और न विवाह की विधि में विधवा का पुनर्विवाह कहा है, यह उक्त विधान किया हुआ भी मनुष्यों का नियोग राजा वेन के शासन काल में विद्वान् द्विजों द्वारा पशुधर्म और निन्दा-युक्त कहा गया, क्योंकि:—

स महीमखिलां भुञ्जन् राजर्षिप्रवरः पुरा।
वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः ॥ ६७ ॥
ततः प्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां स्त्रियम्।
नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः ॥ ६८ ॥

अर्थ—वह वेन राजा जो राजर्षियों में बड़ा और पूर्वकाल में सम्पूर्ण पृथिवी को भोगता था काम से नष्ट बुद्धि होकर वर्ण संकर करने लगा था, उस वेन राजा के समय से जो कोई मोह के कारण सन्तान के लिये विधवा स्त्री का नियोग करता है उसकी सज्जन पुरुष निन्दा करते हैं किन्तु वेन से पूर्व इस की निन्दा न थी।

यदि स्वाश्चापराश्चैव विन्देरन्योषितो द्विजाः।
तासां वर्णक्रमेण स्याज्ज्यैष्ठ्यं पूजा च वेश्म च ॥ ८५ ॥
भर्तुः शरीरशुश्रूषां धर्मकार्यञ्च नैत्यिकम्।
स्वा चैव कुर्यात्सर्वेषां नास्वजातिः कथञ्चन ॥ ८६ ॥
यस्तु तत्कारयेन्मोहात्सजात्या स्थितयान्यया।
यथा ब्राह्मणचण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः ॥ ८७ ॥

अर्थ—यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विज, सजातीय अथवा विजातीय स्त्री से विवाह करें तो उन की बड़ाई, मान तथा घर,

वर्णक्रम से हों, पति के शरीर की सेवा तथा नैत्यिक धर्म कार्यों को सब की सजातीय स्त्रियां ही करें, अन्य जाति की कभी न करें, जो सजातीय के रहते हुए विजातीय स्त्री से मोहवश पूर्वोक्त तीन कर्म करावे, वह जैसा ब्राह्मण चाण्डाल पुरातन मुनियों ने कहा वैसा ही है॥

पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमतीं हरन् ।
स हि स्वाम्यादतिक्रामेदृतूनां प्रतिरोधनात् ॥ ९३ ॥
त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥ ९४ ॥

अर्थ—ऋतुमती कन्या का हरण करता हुआ उसके पिता को शुल्क न दे, क्योंकि रजस्वला को रोकने के कारण पिता स्वामित्व से हीन होजाता है, तीस वर्ष का पुरुष बारह वर्ष की मनोहारिणी कन्या से और चौबीस वर्ष का पुरुष आठ वर्ष की कन्या के साथ विवाह करे, जब कि शीघ्र न करने से धर्म पीड़ित होता हो ॥

कन्यायां दत्तशुल्कायां म्रियेत यदि शुल्कदः ।
देवराय प्रदातव्या यदि कन्यानुमन्यते ॥ ९७ ॥

अर्थ—कन्या का शुल्क देने पर शुल्कदाता यदि मरजाय और पुनः कन्या स्वीकार करे तो शुल्कदाता के कनिष्ठ भ्राता को कन्या देदेनी चाहिये।

पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः ।
कथं तत्र विभागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत् ॥ १२२ ॥
एकं वृषभमुद्धारं संहरेत स पूर्वजः ।
ततोऽपरे ज्येष्ठवृषास्तदूनानां स्वमातृतः ॥ १२३ ॥

ज्येष्ठस्तु जातो ज्येष्ठायां हरेद् वृषभषोडशाः ।
ततः स्वमातृतः शेषा भजेरन्निति धारणा ॥ १२५ ॥
सदृशस्त्रीषु जातानां पुत्राणामविशेषतः ।
न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्ति जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते ॥ १२६ ॥

अर्थ—प्रथम विवाहिता में कनिष्ठ और द्वितीय विवाहिता में ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न होवे तो वहां किस प्रकार विभाग होना चाहिये, यदि इस प्रकार का संशय हो तो :—

प्रथम विवाहिता में उत्पन्न हुआ कनिष्ठ पुत्र एक श्रेष्ठ बैल भेंट में ग्रहण करे, उसके उपरान्त द्वितीय विवाहिताओं से उत्पन्न पुत्र क्रम पूर्वक अपनी २ माताओं के विवाहक्रमानुसार ज्येष्ठ है, वह एक २ बैल ग्रहण करे, यदि ज्येष्ठ पुत्र ज्येष्ठा स्त्री में उत्पन्न हो तो एक बैल के साथ पन्द्रह गौ भी ग्रहण करे, उसके अनन्तर अपनी २ माताओं की छोटाई बड़ाई के अनुकूल शेष सब भाग बांट लेवें, यह निर्णय है, समस्त समान जाति की स्त्रियों में उत्पन्न हुए पुत्रों की माता की ज्येष्ठता से ज्येष्ठता नहीं, किन्तु जन्म से ज्येष्ठता कहाती है ॥

अनेन तु विधानेन पुरा चक्रेऽथ पुत्रिकाः ।
विवृद्ध्यर्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः ॥ १२८ ॥
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सोमाय राज्ञे सत्कृत्य प्रीतात्मा सप्तविंशतिम् ॥ १२९ ॥

अर्थ—पहिले अपने वंश की वृद्धि के लिये स्वयं दक्ष प्रजापति ने भी इस विधान से पुत्रिकाएं की थीं :—

प्रीतात्मा दक्ष प्रजापति ने सत्कार करके दश "धर्म" को और तेरह "कश्यप" को तथा सत्ताईस कन्या "चन्द्र" को पुत्रिकाधर्म से दी थीं ॥

एतद्विधानं विज्ञेयं विभागस्यैकयोनिषु ।
बह्वीषु चैकजातानां नानास्त्रीषु निबोधत ॥ १४८ ॥
ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण चतस्रस्तु यदि स्त्रियः ।
तासां पुत्रेषु जातेषु विभागेऽयं विधिः स्मृतः ॥ १४९ ॥
कीनाशो गोवृषो यानमलङ्कारश्च वेश्म च ।
विप्रस्यौद्धारिकं देयमेकांशश्च प्रधानतः ॥ १५० ॥

अर्थ—समान जाति की भार्या में एक पति से उत्पन्न पुत्रों के विभाग का यह पूर्वोक्त विधान जानना चाहिये, अब नाना जाति की बहुत स्त्रियों में एक पति से उत्पन्न पुत्रों का विभाग सुनो :—

ब्राह्मणी आदि के वर्ण क्रम से ब्राह्मण के यदि चार भार्या होवें तो उन के पुत्रों में यह विभाग विधि कही है कि :—

कृषि वाला बैल, अश्वादि सवारी, आभूषण, घर तथा प्रधान अंश, प्रधानभूत ब्राह्मणी के पुत्र को दें और अन्यों को आगे कहे अनुसार देवें ॥

त्र्यंशं दायाद्धरेद्विप्रो द्वावंशौ क्षत्रियासुतः ।
वैश्याजः सार्धमेवांशमंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥ १५१ ॥
सर्वं वा रिक्थजातं तद्दशधा परिकल्प्य च ।
धर्म्यं विभागं कुर्वीत विधिनानेन धर्मवित् ॥ १५२ ॥

अर्थ—पिता के अंश से ब्राह्मणी का पुत्र तीन अंश लेवे और क्षत्रिया का पुत्र दो अंश, तथा वैश्य का पुत्र डेढ़ अंश और शूद्रा का पुत्र एक अंश लेवे ॥

अथवा विना उद्धार निकाले सम्पूर्ण धन के दश भाग करके धर्मज्ञ इस वक्ष्माण विधि से धर्मानुकूल विभाग करे कि:—

चतुरोंऽशान्हरेद्विप्रस्त्रीनंशान्क्षत्रियासुतः ।
वैश्यापुत्रो हरेद् द्व्यंशमंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥ १५३ ॥

यद्यपि स्यात्तु सत्पुत्रोऽप्यसत्पुत्रोऽपि वा भवेत् ।
नाधिकं दशमाद्दद्याच्छूद्रापुत्राय धर्मतः १५४॥

अर्थ—पूर्वोक्त दश भागों में चार अंश ब्राह्मणी का पुत्र क्षत्रिया का तीन अंश, वैश्या का पुत्र दो अंश और शूद्रा का पुत्र एक अंश लेवे, यद्यपि सत्पुत्र वा असत्पुत्र हो परन्तु धर्म से शूद्रा के पुत्र को दशमांश से अधिक न देना चाहिये ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रो न रिक्थभाक् ।
यदेवास्य पिता दद्यात्तदेवास्य धनम्भवेत् ॥ १५५ ॥
समवर्णासु ये जाताः सर्वे पुत्रा द्विजन्मनाम् ।
उद्धारं ज्यायसे दत्त्वा भजेरन्नितरे समम् ॥ १५६॥

अर्थ—शूद्रा से उत्पन्न पुत्र, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों के धन का भागी नहीं, किन्तु जो कुछ उसका पिता देदे वही उसका धन है, समान जाति की भार्या में द्विजातियों से उत्पन्न पुत्र ज्येष्ठ भ्राता का उद्धार देकर शेष को समभाग करके बांट लेवें॥

शूद्रस्य तु सवर्णैव नान्या भार्या विधीयते ।
तस्यां जाताः समांशाः स्युर्यदि पुत्रशतम्भवेत् ॥ १५७ ॥
पुत्रान् द्वादश यानाह नृणां स्वायम्भुवो मनुः ।
तेषां षड्बन्धुदायादाः षडदायादबान्धवाः ॥ १५८ ॥

अर्थ—शूद्र को समान जाति की ही भार्या कही है विजाति की नहीं, उस शूद्रा में चाहे सौ पुत्र उत्पन्न हों तब भी समान अंश के ही भागी होवें ॥

जो मनुष्यों के बारह पुत्र स्वायम्भुव मनु ने कहे हैं, उनमें छः बन्धुदायाद=हिस्सेदार बान्धव हैं और छः नहीं ॥

यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च महोदधिः ।
क्षयी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान् ॥ ३१४ ॥
लोकानन्यान्सृजेयुर्ये लोकपालांश्च कोपिताः ।
देवान्कुर्युरदेवांश्च कः क्षिण्वंस्तान्समृध्नुयात् ॥३१५॥

यानुपाश्रित्यतिष्ठन्ति लोका देवाश्च सर्वदा ।
ब्रह्म चैव धनं येषां को हिंस्यात्तान्जिजीविषुः ॥ ३१६ ॥

अर्थ—जिन ब्राह्मणों ने अग्नि को सर्वभक्षी और समुद्र को खारा करदिया, तथा क्षयी चन्द्र को अप्यायित किया, उनको रुष्ट करके कौन नाश को प्राप्त न हो ? ॥

जो क्रोधित हुए अन्य लोकों को उत्पन्न करदें, देवतों को अदेव करदें, उनको पीड़ा देता हुआ कौन वृद्धि को प्राप्त हो ?

जिनके आश्रय पर देव तथा लोक स्थित हैं, और वेद जिनका धन है, जीने की इच्छा वाला पुरुष उनको कौन दुःखी करे ॥

अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ॥ ३१७ ॥
श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति ।
हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिवर्द्धते ॥ ३१८ ॥
एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु ।
सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत् ॥ ३१९ ॥

अर्थ—जैसे प्रणीत अथवा अप्रणीत अग्नि महती देवता है, एवं मूर्ख वा विद्वान् ब्राह्मण भी महती देवता है, तेजयुक्त अग्नि श्मशानों में शव को जलाता हुआ भी दूषित नहीं होता किन्तु पुनः यज्ञ में हवन किया हुआ वृद्धि को प्राप्त होता है, इसी प्रकार यद्यपि ब्राह्मण सम्पूर्ण दुष्कर्मों में लिप्त रहे तो भी सर्वथा पूजनीय ही हैं, क्योंकि वह महती देवता हैं ॥

दशमाध्याय

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते ।
अश्रेयान्श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात् ॥ ६४ ॥

अर्थ—शूद्रा में ब्राह्मण से उत्पन्न पारशवाख्य कन्या दैववश ब्राह्मण को विवाही जाय, पुनः उससे उत्पन्न कन्या फिर ब्राह्मण को विवाही जाय, इस प्रकार सातवीं कन्या के विवाहने वाले ब्राह्मण से जो सन्तान होगी वह बीज की प्रधानता से ब्राह्मण कहावेगी ॥

यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयोऽभवन् ।
पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशस्यते ॥ ७२ ॥

अर्थ—बीज के माहात्म्य से तिर्यग्योनि "अर्थात् हरिणादि से उत्पन्न हुए श्रृङ्गी ऋष्यादि" ऋषित्व पूजन तथा स्तुति को प्राप्त हुए, इसलिये बीज की प्रधानता है ॥

इदन्तु वृत्तिवैकल्यात्त्यजतो धर्मनैपुणम् ।
विट्पण्यमुद्धृतोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्द्धनम् ॥ ८५ ॥
सर्वान्रसानपोहेत कृतान्नं च तिलैः सह ।
अश्मनो लवणञ्चैव पशवो ये च मानुषाः ॥ ८६ ॥
सर्वञ्चतान्तवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च ।
अपि चेत्स्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः ॥ ८७ ॥
अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गंधांश्च सर्वशः ।
क्षीरं क्षौद्रं दधिघृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ॥ ८८ ॥

अर्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय अपनी वृत्ति के अभाव में तथा धर्म की यथोक्त निष्ठा के त्याग होजाने पर निषिद्ध पदार्थों को छोड़कर वैश्य के बेचने योग्य धनवृद्धिकारक द्रव्यों का विक्रय करें, परन्तु :—

सम्पूर्ण रस, तिलमिश्रित पकान्न, पत्थर, लवण और मनुष्यों के पालनीय पशु इनको न बेचें, सब रङ्गीन वस्त्र, फलमूल तथा औषधियों को न बेचें, जल, शस्त्र, विष, मांस, सोमलता तथा

सब प्रकार के गन्ध, दूध, शहद, दधि, घी, तेल, मधु, गुड़ और कुशा इन पदार्थों को न वेचें ॥

आरण्यांश्च पशून्सर्वान्दंष्ट्रिणश्च वयांसि च।
मद्यं नीलिञ्च लाक्षाञ्च सर्वांश्चैकशफांस्तथा ॥ ८९ ॥
काममुत्पाद्य कृष्यान्तु स्वयमेव कृषीवलः।
विक्रीणीततिलाञ्छुद्धान्धर्मार्थमचिरस्थितान् ॥ ९० ॥
भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुतेतिलैः।
कृमिभूतः श्वविष्ठायां पितृभिः सह मज्जति ॥ ९१ ॥
सद्यः पततिमांसेन लाक्षया लवणेन च।
त्र्यहेण शूद्री भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥ ९२ ॥

अर्थ—जङ्गली पशु, बड़ी २ दाढ़ों वाले सिंहादि और पक्षी तथा मद्य, नील, लाख और एक खुरवाले घोड़ा आदिकों को न वेचें, किसान स्वयं खेत में तिल उत्पन्न करके किसी अन्य अन्न में विना मिलाये धर्मार्थ शीघ्र वेचदें तो दोष नहीं, भोजन, अङ्गमर्दन और दान के सिवाय तिलों से जो अन्य काम लेता है वह कृमि वन कर पितरों के सहित कुत्ते की विष्ठा में डूबता है, मांस, लाख और लवण के वेचने से ब्राह्मण उसी समय पतित हो जाता और दूध के वेचने से ब्राह्मण तीन दिन में शूद्रता को प्राप्त होता है ॥

इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः।
ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यभावं नियच्छति ॥ ७३ ॥
रसारसैर्निमातव्या नत्वेव लवणं रसैः।
कृतान्नश्चाकृतान्नेन तिला धान्येन तत्समाः ॥ ७४ ॥

अर्थ—ब्राह्मण उक्त मांसादि से अतिरिक्त पण्यों को इच्छा पूर्वक वेचने से सात दिन में वैश्य हो जाता है ॥

गुड़ादि का घृतादि से वदला करले, परन्तु लवण को इन से न वदले, पकान्न को अपकान्न से वदले, और धान्यों के

समान होने से तिल को अन्य धान्य से बदल लेवे ॥

वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्ब्राह्मणः स्वे पथि स्थितः ।
अवृत्तिकर्षितः सीदन्निमं धर्मं समाचरेत् ॥ १०१ ॥
सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद् ब्राह्मणस्त्वनयङ्गतः ।
पवित्रं दुष्यतीत्येतद् धर्मतो नोपपद्यते ॥ १०२ ॥
नाध्यापनाद्याजनाद्वा गर्हिताद्वा प्रतिग्रहात् ।
दोषो भवति विप्राणां ज्वलनाम्बुसमा हि ते ॥ १०३ ॥
जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः ।
आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते ॥ १०४ ॥

अर्थ—अपने धर्म में स्थित ब्राह्मण जीविका के अभाव में दुःखित हुआ वैश्यवृत्ति न करसके तो वक्ष्यमाण वृत्ति करे :—

विपत्ति को प्राप्त हुआ ब्राह्मण सब से दान लेवे क्योंकि पवित्र को दोष लगना धर्म से नहीं पाया जाता।

निन्दित पढ़ाने, यज्ञ कराने अथवा दान लेने से ब्राह्मण दूषित नहीं होते, क्योंकि वह अग्नि और जल के समान हैं॥ प्राणात्यय को प्राप्त हुआ जो ब्राह्मण जहां तहां भोजन करता है वह कीचड़ से आकाश के समान पाप से लिप्त नहीं होता॥

अजीगर्तः सुतं हन्तुमुपासर्पद्बुभुक्षितः ।
न चालिप्यत पापेन क्षुत्प्रतीकारमाचरन् ॥ १०५ ॥
श्वमांसमिच्छन्नार्त्तोऽत्तुं धर्माधर्मविचक्षणः ।
प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् ॥ १०६ ॥
भरद्वाजः क्षुधार्त्तस्तु सपुत्रो विजने वने ।
बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपाः ॥ १०७ ॥
क्षुधार्त्तश्चात्तुमभ्यगाद्विश्वामित्रः श्वजाघनीम् ।
चण्डालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः ॥ १०८ ॥

अर्थ—अजीगर्त नामक ऋषि क्षुधा से पीडित हुआ २ पुत्र को मारने के लिये चला परन्तु क्षुधा के निवारणार्थ ऐसा करता

हुआ पाप से लिप्त नहीं हुआ, धर्माधर्मज्ञ वामदेव क्षुधा से पीड़ित हुआ प्राणों के रक्षार्थ कुत्ते का मांस खाने की इच्छा करता हुआ पाप का भागी नहीं हुआ, तपस्वी पुत्र सहित निर्जन वन में क्षुधा से दुःखित हुए भरद्वाज ने वृधु नामक बढ़ई की बहुत सी गौयें ग्रहण कीं, धर्माधर्मज्ञ विश्वामित्र ऋषि क्षुधा से पीड़ित हुए २ चाण्डाल के हाथ से कुत्ते की जंघा का मांस लेकर खाने को तय्यार हुए "परन्तु पाप से लिप्त नहीं हुए॥

एकादशाध्याय

कृतदारोऽपरान्दारान्भिक्षित्वा योऽधिगच्छति ।
रतिमात्रं फलन्तस्य द्रव्यदातुस्तु सन्ततिः ॥ ५ ॥

अर्थ—जो विवाहित पुरुष भिक्षा मांग कर द्वितीय विवाह करता है उसको रतिमात्र फल है और उस की सन्तान तो द्रव्य देने वाले की होती है ॥

इष्टिं वैश्वानरीं नित्यं निर्वपेदब्दपर्यये ।
क्लृप्तानां पशुसोमानां निष्कृत्यर्थमसम्भवे ॥ २७ ॥

अर्थ—"वर्ष के समाप्त होने में दूसरे वर्ष की प्रवृत्ति को अब्दपर्यय कहते हैं" उस चैत्र शुक्ल से आदि लेकर वर्ष की प्रवृत्ति में विहित सोमयाग तथा पशुयाग के न हो सकने पर दोष की निवृत्ति के निमित्त वैश्वानर यज्ञ को शूद्र आदि से धन लेकर भी करे ॥

अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे ।
पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ॥ ११८ ॥

अर्थ—अवकीर्णी, काणे गधे पर चढ़ कर रात को चौराहे में जा, पाकयज्ञ के विधान से निर्ऋति देवता का यज्ञ करे ॥

क्रव्यादसूकरोष्ट्राणां कुक्कुटानां च भक्षणे ।
नरकाकखराणां च तप्तकृच्छ्रं विशोधनम् ॥ १५६ ॥
मासिकान्नन्तु योऽश्नीयादसमावर्त्तको द्विजः ।
स त्रीण्यहान्युपवसेदेकाहञ्चोदके वसेत् ॥ १५७ ॥
ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधुमांसं कथञ्चन ।
स कृत्वा प्राकृतं कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत् ॥ १५८ ॥

अर्थ—मांसाहारी जीव को और सूकर, उष्ट्र, मुरगा, नर, काक तथा गधे को भक्षण करले तो तप्त कृच्छ्रव्रत करें, यह शोधन है, जो ब्रह्मचारी मासिक श्राद्ध के अन्न को भोजन करे तो वह तीन दिन उपवास, और एक दिन जल में निवास करे, जो ब्रह्मचारी मधु मांस को किसी प्रकार भक्षण करले तो वह प्राकृत कृच्छ्रव्रत करके व्रतशेष को समाप्त करे ॥

मैथुनं तु समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः ।
गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ १७४ ॥

अर्थ—द्विजाति, पुरुष वा स्त्री के साथ बैल की सवारी में, जल में तथा दिन में मैथुन का सेवन करके वस्त्रों सहित स्नान करे ॥

पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैर्बहिः ।
निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसन्निधौ ॥ १८२ ॥
दासीघटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्पदा ।
अहोरात्रमुपासीरन्नशौचं बान्धवैः सह ॥ १८३ ॥
निवर्त्तेरंश्च तस्मात्तु सम्भाषणसहासने ।
दायाद्यस्य प्रदानं च यात्रा चैव हि लौकिकी ॥ १८४ ॥

अर्थ—सपिण्ड बान्धव लोग जीते हुए ही पतित की ग्राम के बाहर मृतकवत् उदकक्रिया निन्दित दिन के सायं काल में

समान जाति वाले ऋत्विज् तथा गुरु के समक्ष में करें, और दासी जल भरे घड़े को प्रेतवत् दक्षिणाभिमुख होकर पैर से गिरावे, और कर्मकर्ता सपिण्डी अन्य बान्धवों के साथ एक दिन रात आशौच रक्खें, तथा उस पतित से भाषण,साथ बैठना, दायभाग देना और खाने पीने का व्यवहार सब त्यागदें ॥

ज्येष्ठता च निवर्त्तेत ज्येष्ठावाप्यञ्च यद्धनम् ।
ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान्गुणतोऽधिकः ॥ १८५ ॥
प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम् ।
तेनैव सार्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥ १८६ ॥
स त्वप्सु तं घटं प्राश्य प्रविश्य भवनं स्वकम् ।
सर्वाणि ज्ञातिकार्याणि यथापूर्वं समाचरेत् ॥ १८७ ॥
एतदेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि ।
वस्त्रान्नपानं देयं तु वसेयुश्च गृहान्तिके ॥ १८८ ॥

अर्थ—और बड़ाई तथा ज्येष्ठतापने का उद्धार भी छूट जावे और बड़े का भाग जो छोटा गुणों में अधिक हो वह पावे, परन्तु प्रायश्चित्त करने पर पानी से भरे हुए नवीन घड़े को उसके साथ बान्धव लोग पवित्र जलाशय में स्नान करके डाल देवें, उस घड़े को पानी में फेंक देने के पश्चात् अपने घर आकर यथोक्त सम्पूर्ण जातिकर्मों को करने लगें, पतित स्त्रियों के विषय में भी यही विधि करें और भोजनाच्छादन देकर अपने घर के समीप में पृथक् दूसरे घर में रक्खें ॥

अवगूर्य त्वब्दशतं सहस्रमभिहत्य च ।
जिघांसया ब्राह्मणस्य नरकं प्रतिपद्यते ॥ २०६ ॥
शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति महीतले ।
तावन्त्यब्दसहस्राणि तत्कर्त्ता नरके वसेत् ॥ २०७ ॥

अर्थ—ब्राह्मण को मारने की इच्छपूर्वक दण्ड उठाने से सौ वर्ष तक नरक को प्राप्त होता और यदि दण्ड से मारे तो

१००० वर्ष तक नरक में रहता है, मारे हुए ब्राह्मण का रुधिर भूमि के जितने धूलिकणों को भिगोता है उतने हज़ार वर्ष रुधिर निकालने वाला नरक में वास करता है ॥

कीटाश्चाहिपतङ्गाश्च पशवश्च वयांसि च ।
स्थावराणि च भूतानि दिवं यान्ति तपोबलात् ॥ २४

अर्थ—कीड़े, सांप, पतङ्ग, पशु, पक्षी और वृक्षलता इत्यादि सब तप के प्रभाव से स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥

प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवासृजत्प्रभुः ।
तथैव वेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे ॥ २४३ ॥

इत्येतदेनसामुक्तं प्रायश्चित्तं यथाविधि ।
अत ऊर्ध्वं रहस्यानां प्रायश्चित्तं निबोधत ॥ २४५ ॥

सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ।
अपि भ्रूणहणं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥ २४८ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त प्रत्यक्ष पापों के प्रायश्चित्त कहे, अब छुपे पापों का प्रायश्चित्त सुनो :—

प्रणव और व्याहृति के साथ प्रतिदिन किये हुए सोलह प्राणायाम मास भर में भ्रूणहत्या वाले को भी पवित्र कर देते हैं॥

कौत्सं जप्त्वाप इत्येतद्वासिष्ठं च प्रतीत्यृचम् ।
माहित्रं शुद्धवत्यश्च सुरापोऽपि विशुद्धयति ॥ २४७ ॥

सकृज्जप्त्वास्य वामीयं शिवसंकल्पमेव च ।
अपहृत्य सुवर्णं तु क्षणाद्भवति निर्मलः ॥ २५० ॥

हविष्यन्तीयमभ्यस्य नतमंह इतीति च ।
जपित्वा पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुतल्पगः ॥ १५१ ॥

अर्थ—कुत्स ऋषि की देखी हुई "अपनः शोशुचदघं" इत्यादि ८ ऋचा का ऋग्वेदस्य १।९७ सूक्त और वसिष्ठ ऋषि वाली "प्रतिस्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा०" इत्यादि ७।८०।१ ऋचा "महित्रीणामवोस्तु०" इत्यादि १०।१८५।१ और

"एतोन्विन्द्रंस्तवाम शुद्धं शुद्धेन०" इत्यादि ८।९५।७ शुद्धवती ऋचाओं को जप कर सुरापान करने वाला भी शुद्ध होजाता है। सोना चुराकर एकवार प्रतिदिन "अस्यवामीयं=जिसमें "अस्यवाम" शब्द है "मतौच्छः सूक्तसाम्नोः" अष्टा० ५।२।५९ उस "अस्यवामस्य पलितस्य होतुः" इत्यादि १।१६५।१-५२ ऋचा के सूक्त को पढ़कर वा "शिवसङ्कल्पमस्तु" यजुः ३४। १-६ इस सूक्त को पढ़कर क्षणभर में निर्मल होता है। "हविष्यान्तमजरं स्वर्विदि०" ऋ० १०।८८ इस १९ ऋचा के सूक्त को और "न तमंहो न दुरितं०" २।२३।५ अथवा १०।१२६।१ और "इति वा इति मे मनः" १०।११९।१ इसको तथा "सहस्रशीर्षा०" इत्यादि १०।९०।१-१६ ऋचाओं के सूक्त को पढ़कर गुरुपत्नीगमन का पाप छूट जाता है॥

द्वादशाध्याय

चातुर्वर्ण्यस्य कृत्स्नोऽयमुक्तो धर्मस्त्वयाऽनघ।
कर्मणां फलनिर्वृत्तिं शंस नस्तत्वतः पराम्॥ १॥
स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः।
अस्य सर्वस्य शृणुत कर्मयोगस्य निर्णयम्॥ २॥

अर्थ-हे निष्पाप भृगुजी! तुमने चारो वर्णों का यह सम्पूर्ण धर्म कहा, अब कर्मों की शुभाशुभपरमार्थरूप फल प्राप्ति हम से कहिये,इस प्रकार महर्षियों ने भृगुजी से पूछा। वह धर्मात्मा मनु के पुत्र भृगुजी उन महर्षियों से बोले कि इस सम्पूर्ण कर्मयोग के निश्चय को सुनिये॥

बहून्वर्षगणान्घोरान्नरकान्प्राप्य तत्क्षयात् ।
संसारान्प्रतिपद्यन्ते महापातकिनस्त्विमान् ॥५४॥

अर्थ—ब्रह्महत्यादि महापातक करने वाले जीव बहुत वर्ष पर्यन्त घोर नरकों में पड़कर उसके क्षय से संसार में यह जन्म धारण करते हैं ॥

एवं स भगवान्देवो लोकानां हितकाम्यया ।
धर्मस्य परमं गुह्यं ममेदं सर्वमुक्तवान् ॥ ११७ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त प्रकार से भगवान् मनु ने लोगों के हितार्थ धर्म के परम गुह्यरहस्य का मुझे उपदेश किया, " यह भृगु का वचन है " ॥

इत्येतन्मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तं पठन्द्विजः ।
भवत्याचारवान्नित्यं यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥ १२६ ॥

अर्थ—इस पूर्वोक्त प्रकार से भृगु के प्रति मनु से कहे हुए इस मानवधर्मशास्त्र को पढ़ने वाला द्विज सर्वदा आचारयुक्त रहता और यथेष्ट गति को प्राप्त होता है ॥